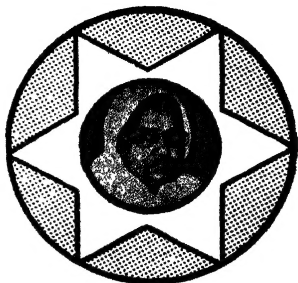


पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती
अभिनन्दन ग्रन्थ




प्रकाशक
श्री राजकुमार सेठी
प्रकाशन मंत्री, भारतवर्षीय दि० जैन महासभा,
प्रकाशन विभाग
डीमापुर (नागालैण्ड)




वी० नि० सं० २५१०
सन् १९८३
मूल्य : ५१) रुपया





प्राप्ति स्थान

- श्री त्रिलोकचन्द्र जी कोठारी
  प्रधानमंत्री, भारतवर्षीय दि० जैन महासभा
  ३०-३१, नई धान मण्डी, कोटा (राजस्थान)
- श्री दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
  हस्तिनापुर (उ० प्र०)





मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस
भेलूपुर, वाराणसी-१०





परम तपस्वी आचार्य श्री १०८ धर्मसागरजी महाराज





पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती अभिनन्दन-ग्रन्थ

सम्पादक मण्डल

डॉ० पन्नालाल साहित्याचार्य पं० कुञ्जीलाल शास्त्री
डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल पं० बाबूलाल जमादार
ब्र० सुमति बेन जी, शाह ब्र० विद्युलता शाह
ब्र० कु० माधुरी शास्त्री श्री अनुपम जैन

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा
प्रकाशन विभाग




समर्पण

शान्ति की साकार मूर्ति

प्रतिभा सम्पन्न

अनेक त्यागियों की साक्षात् जननी

स्वयं भी

श्रमण संस्कृति पथ पर अग्रसर

नारीचर्या के सर्वोत्कृष्ट

आर्यिका पद से अलंकृत

रत्नत्रय की कठिन साधना

की

अप्रतिम धनी

परमपूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी

के

करकमलों

में

श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक

सादर सविनय

समर्पित






अनेकग्रन्थगतार्थविमर्शम्
यया प्रसूतं समलङ्कृतोऽसौ
ग्रन्थंमजानन्वञ्चर्शीनम्
नामार्यिकां "ज्ञानमतीं" नमामि ।
डा० पं० दामोदर शास्त्री, दिल्ली



आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी एवं रत्नमती माताजी



दो शब्द

जिन महान् विभूतियों के अनुपम योगदानों से समाज बहुत लाभान्वित होता है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने हेतु एवं अन्य जनोपयोगी विविध विषयों के प्रचारार्थ अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कराया जाता है जिसमें उस विशिष्ट विभूति के स्व पर कल्याण की भूमिका का उल्लेख कर उनके जीवन से समाज को प्रेरणा प्रदान की जाती है। ऐसे अभिनन्दन ग्रन्थ से हम उनके अहं की तुष्टि नहीं वरन् स्व अहं का नाश कर उनके अनुगामी बन कर कल्याण-पथ की ओर अग्रसर होते हैं। इसी शृंखला मे पूज्य १०५ आर्यिका रत्नमती माताजी का अभिनन्दन ग्रन्थ एक प्रेरक ग्रन्थ है। इसमें न केवल विविध अनुपम रत्नों की खान इस महान् माँ का जीवन परिचय, संस्मरण एवं विनयांजलियाँ मात्र हैं, वरन् जैन धर्म, दर्शन, साहित्य, भूगोल, खगोल, गणित, पुरातत्त्व आदि विविधविषयक गवेषणापूर्ण लेख, प्राचीन एवं अर्वाचीन आर्यिकाओं की परम्परा, इतिहास तथा जैनधर्म एवं संस्कृति के उन्नयन में उनका योगदान, उनकी चर्या, वर्तमान स्थिति एवं नारी जीवन से सम्बन्धित सामग्री का अद्भुत संकलन है। इस अभिनन्दन ग्रन्थ को एक संग्रहणीय ऐतिहासिक ग्रन्थ का स्वरूप प्रदान करने की आकांक्षा से एक अछूते विषय का सामायिक रूप से चयन किया गया है। यह ग्रन्थ पूज्य माता जी द्वारा उपकृत समस्त समाज द्वारा उनके चरणों में विनय पूर्ण कृतज्ञता ज्ञापन मात्र ही नहीं वरन स्वयं समाज को अध्यात्म के मार्ग पर अग्रसर कर शान्ति प्रदान करने का माध्यम भी है।

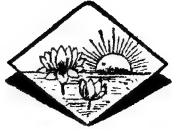
भौतिकता से संतप्त मानव को आध्यात्मिकता ही शान्ति प्रदान कर सकती है। यद्यपि आज के भौतिकवाद के युग में अध्यात्म के प्रति रुचि बहुत कम परिलक्षित होती है तथापि इस पंचम काल में भी जो कतिपय महान् विभूतियाँ आत्मसाधना के साथ साथ जन कल्याण में रत हैं उनमें विविध विषयक, सामायिक, प्रामाणिक, सर्वोपयोगी सरस साहित्य सृजनकर्त्री, जम्बूद्वीप निर्माण की प्रणेता एवं निर्देशिका तथा जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति की प्रेरक परम तपस्विनी पूज्य आर्यिका-रत्न ज्ञानमती माता जी आदि विश्ववंद्य विभूतियों एवं अनुपम रत्नों की जन्मदात्री पूज्य आर्यिका रत्नमती माता जी का विशिष्ट स्थान है। रत्नों की खान आर्यिका रत्नमतीजी, जिनका पूर्व नाम मोहिनी था, का जन्म सन् १९१४ में महमूदाबाद (जिला सीतापुर) उ० प्र० में श्रेष्ठी

श्री सुखपाल जी की पुत्री के रूप में हुआ। विवाह सन् १९३२ में टिकैतनगर (जिला बाराबंकी) उ० प्र० निवासी सेठ धनकुमार जी के सुपुत्र श्री छोटेलाल जी के साथ सम्पन्न हुआ। वही मोहिनी अब वर्तमान में आर्यिका रत्नमती जी है। पूज्य आर्यिका रत्नमती जी का आचार-व्यवहार बहुत ही उत्कृष्ट रहा है। उनका व्यवहार सबके साथ समान है। इतनी वृद्ध अवस्था में अस्वस्थ रहते हुए भी आप शास्त्रोक्त चर्या का पूर्ण पालन करती है। सदैव धर्मध्यान में संलग्न रहती हैं। आपने प्रारम्भ से ही अपनी सन्तानो मे ऐसे सुसंस्कार अकुरित किए जो वर्तमान में देश समाज की सांस्कृतिक-साहित्यिक एवं धार्मिक परम्पराओं में अनुकरणीय हैं। आपकी १३ सन्तानों में से दो आर्यिका (बालब्रह्मचारिणी आर्यिकारत्न ज्ञानमती जी, बालब्रह्मचारिणी आर्यिका अभयमती जी), एक ब्रह्मचारी (ब्रह्मचारी रवीन्द्रकुमार जैन शास्त्री), दो ब्रह्मचारिणी (कु० मालती जैन शास्त्री तथा कु० माधुरी जैन शास्त्री) है। यह एक विशेष गौरव की बात है। वैराग्य पूर्ण जीवन की ऐसी शृंखला विरले किसी परिवार मे मिलती है। १९७१ में आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज से अजमेर में दीक्षा लेकर अनेक त्यागियों की माँ स्वयं भी आर्यिका रत्नमती बन गईं। पू० रत्नमती माताजी की जन्मस्थली महमूदाबाद के विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा ज्ञात हुआ कि वहाँ की समाज के निर्णयानुसार आ० रत्नमती जी की स्मृतिस्वरूप एक "कीर्तिस्तंभ" का निर्माण किया जायगा जिसका शिलान्यास शीघ्र ही शुभ मुहूर्त मे होने जा रहा है। धन्य है ऐसी अनुपम माँ एवं उनका जीवन।

भगवान् महावीर के २५०० सौंवे निर्वाण महोत्सव के शुभ अवसर पर प्रथम बार दिल्ली में मैंने भी माता जी के दर्शन किये थे तब मैं आपकी धार्मिक प्रवृत्ति एवं मृदु व्यवहार से बड़ा ही प्रभावित हुआ। ऐसी माता जी का अभिनन्दन करना हम सबके—समाज के लिए बड़े गौरव की बात है। इस ग्रन्थ को तैय्यार करने की रूपरेखा दो वर्ष पूर्व बनाई गई थी परन्तु कुछ कारणवश इसको कार्यान्वित होने में समय लग गया। इस ग्रन्थ के संयोजक का कार्य मुझे सौंपा गया था। कुछ अस्वस्थ रहने के कारण मैं इसमें अपेक्षित समय न दे सका। जिसके लिये मैं सबसे क्षमाप्रार्थी हूँ। किन्तु फिर भी मैंने अपनी ओर से इस कार्य को निभाने का पूरा प्रयास किया है। जिस किसी भी महानुभाव ने किसी भी प्रकार से इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोग दिया है—परिचय, संस्मरण-लेख, विनयांजलि, शुभकामनायें, इतिहास, आशीर्वाद आदि भेजे हैं। मैं उन सबका हृदय से आभारी हूँ क्यों कि उनके सहयोग से ही यह कार्य सम्भव हो सका है। मैं सम्पादक मंडल का भी बड़ा आभारी हूँ जिन्होंने अपना काफी समय लगाकर इसका संकलन किया है। विशेष तौर पर मैं अ० भा० दि० जैन महासभा का आभारी हूं जिन्होंने इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने में मन वचन-काय से पूरा सहयोग दिया है। अन्त में जिनेन्द्रदेव से कामना करता हूँ कि पूज्य माता जी के संयममय जीवन से हमारी सबकी—समाज की प्राणी मात्र की आत्मा को संयम-मार्ग की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा मिले।

बोलो महावीर भगवान् की जय।

सुमत प्रकाश जैन
संयोजक



प्रकाशकीय

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा जैन समाज की सर्वाधिक प्राचीन संस्था है इस संस्था को चारित्र चक्रवर्ती परमपूज्य १०८ आचार्य श्री शान्तिसागर जी से लेकर समस्त आचार्यों का आशीर्वाद प्राप्त रहा है। इस संस्था का उद्देश्य समाज में संगठन मजबूत बनाना एवं आर्ष परम्परा का प्रचार करना रहा है। भगवान् महावीर एवं परवर्ती आचार्यों की वाणी हमारे लिए परम श्रद्धा का विषय है। उसका प्रचार करना तथा उसका संरक्षण करना हमारा उत्तरदायित्व है।

समय-समय पर समाज में यदि कोई विघटन की स्थिति उत्पन्न हुई तो दिगम्बर जैन महासभा ने जोड़ने का प्रयास किया है। सरसेठ हुकुमचंद जी इन्दौर, सरसेठ भागचंद जी सोनी अजमेर आदि अनेक प्रतिष्ठित जैन समाज के नेता इस संस्था के अध्यक्ष व प्राण रहे हैं। आज उसी परम्परा को निर्वाह करने के लिए श्री निर्मलकुमार जी सेठी इस सभा के अध्यक्ष हैं एवं श्री त्रिलोकचंद जी कोठारी इस सभा के महामंत्री हैं। दोनों महानुभावों ने जब से इस संस्था की बागडोर सम्भाली है तब से अपने जीवन का बहुत सा समय इसकी उन्नति के लिए प्रदान कर रहे हैं। बड़े-बड़े व्यापारों का संचालन करते हुए भी सभा को इतना समय व शक्ति प्रदान करना यह जैन समाज की उन्नति का द्योतक है। आज इस महासभा की हर प्रान्त में प्रान्तीय शाखायें खुल चुकी हैं तथा बड़ी संख्या में लोग इसके सदस्य बने हैं। सभा का मुखपत्र जैन गजट भी गरिमा के साथ जैन समाज की सेवा में निरन्तर प्रकाशित हो रहा है।

दिगम्बर जैन देव शास्त्र गुरु तीनों• हमारे आराध्य है सौभाग्य से आज हमें ऐसे दिगम्बर जैन मुनि, आर्यिकाओं का दर्शन करने का अवसर मिल रहा है जिसके लिए हमारे पूर्वज केवल कथा कहानियों में पढ़ा करत थे। वर्तमान में जिस प्रकार आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज अपनी सिंह वृत्ति से दिगम्बर चर्या का पालन करते हुए साक्षात् मोक्ष मार्ग को आगे बढ़ाने में तत्पर हैं उसी प्रकार पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी का जैन समाज पर बड़ा भारी उपकार है। आपने अपनी कोख से ऐसी सन्तानों को जन्म दिया है जिनके द्वारा जैनधर्म की जो राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति हो रही है वह सबके सामने स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही है। आपकी सबसे बड़ी सुपुत्री श्री ज्ञानमती माताजी ने जितना विपुल साहित्य अपनी लेखनी से लिखा है बड़े-बड़े विद्वान् भी इतना साहित्य नहीं लिख सके हैं। इसी प्रकार जम्बूद्वीप रचना का निर्माण, जम्बूद्वीप ज्ञान

ज्योति का प्रवर्तन आदि जो भी कार्य हो रहा है वह सब जैनधर्म की उच्चकोटि की प्रभावना के कारण हैं। ऐसी सन्तानों को जन्म देने वाली पूज्य श्री रत्नमती माताजी जो स्वयं वृद्धावस्था में आर्यिका बनकर अपने मूल गुणों का पालन करती हुई मोक्ष-मार्ग पर अग्रसर हैं उनके सम्मान में आज अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है और इसके प्रकाशन का सौभाग्य हमारी महासभा को प्राप्त हुआ है। यह महासभा के लिए विशेष गौरव की बात है।

इसके प्रकाशन में सम्पादक मण्डल का मैं विशेष आभारी हूँ। जिन्होंने सामग्री एकत्रित करके एक महान् कार्य सम्पन्न किया है तथा उन सभी लेखकों का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने अपने लेख, कविताएँ, संस्मरण आदि भेजकर पूज्य माताजी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। श्री बाबूलाल जी फागुल्ल वाराणसी के भी हम आभारी हैं जिन्होंने अल्प समय में ग्रन्थ को सुन्दरतम प्रकाशित करके हमें प्रदान किया है। तथा उन सभी लोगों को मैं धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में तन, मन, धन से किसी भी प्रकार का सहयोग प्रदान किया है। महासभा की ओर से हम पूज्य रत्नमती माताजी के चरणों में अपने श्रद्धासुमन समर्पित करते हुए भगवान् महावीर से यह प्रार्थना करते हैं कि इसी प्रकार चिरकाल तक आपका वरदहस्त व आशीर्वाद समाज को प्राप्त होता रहे।

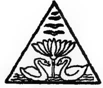
राजकुमार सेठी
मंत्री, प्रकाशन विभाग
भा० दि० जैन महासभा

सहयोग

१.	श्री अमरचन्द जी पहाड़िया	कलकत्ता	२५००)
२.	श्री निर्मल कुमार जी सेठी	लखनऊ	२५००)
३.	श्री कैलाशचन्द, जम्बूकुमार जैन सर्राफ	टिकैतनगर	११००)
४.	श्री अमोलकचन्द फूलचन्द सा० सर्राफ	सनावद	११००)
५.	श्री शीतलप्रसाद जैन सर्राफ	मेरठ	११००)
६	श्री मोतीचन्द जी कासलीवाल	दिल्ली	११००)
७	श्री वैद्य शांतिप्रसाद जी जैन	दिल्ली	११००)
८.	श्री सुखानन्द जयप्रकाश जैन	दरियाबाद	११००)
९.	श्री प्रकाशचन्द जी पाड्या	कोटा	११००)
१०	श्री गुलशन राय जैन चेरिटेबल ट्रस्ट	मुजफ्फरनगर	११००)
११.	श्री श्रीनिवास राजकुमार जी जैन बड़जात्या	कोटा	११००)
१२.	श्री गणेशीलाल जी रानीवाला	कोटा	११००)
१३.	श्री रमेशचन्द जी जैन	नवीन शाहदरा, दिल्ली	११००)
१४	श्री राजकुमार जी सेठी	डीमापुर	११००)
१५.	श्री प्रकाशचन्द जैन	टिकैतनगर	५०१)
१६.	श्री सुभाषचन्द जैन	टिकैतनगर	५०१)
१७.	श्री आनन्द प्रकाश जी जैन 'मोरम वाले'	दिल्ली	५०१)
१८.	श्री मदनलाल जी चांदवाड़	रामगंजमण्डी	५५१)
१९.	श्रीमती कमलाबाई जी पाड्या	सनावद	५५१)
२०.	श्रीमती शांतीदेवी जी जैन	मोरीगेट दिल्ली	२५१)

नोट—उपरोक्त दानी महानुभावों ने यह ग्रन्थ वितरण के लिए दान देकर सहयोग प्रदान किया है, इसके लिए हम सभी दातारों के हृदय से आभारी है।

—राजकुमार सेठी



सं पा द की य

मेरी स्मृति में सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य के महारथी विद्वान् महावीरप्रसाद द्विवेदी की साहित्यिक सेवाओं का अभिनन्दन करने के लिये 'महावीरप्रसाद द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' का प्रकाशन हुआ था। पश्चात् जैन जगत् के प्रसिद्ध साहित्य सेवक इतिहासज्ञ श्री नाथूराम जी प्रेमी की साहित्यिक सेवाओं का समुल्लेख करने के लिये 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ' प्रकाशित हुआ था। इन ग्रन्थों मे साहित्य की विविध विधाओं का दिग्दर्शन विद्वान् लेखकों के द्वारा किया गया था। साहित्य की दृष्टि से ये ग्रन्थ संग्रहणीय सिद्ध हुए।

धीरे-धीरे अभिनन्दन ग्रन्थों की परम्परा चल पड़ी और उसी परम्परा में पूज्यवर चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज, सरसेठ हुकमचन्द्र जी, महासभा के अध्यक्ष श्री भँवरलाल जी, पुरातत्त्व के प्रेमी श्री बाबू छोटेलाल जी कलकत्ता, ब्र० चन्दाबाई आदि के अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हुए। अखिल भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद् ने गुरूणां गुरु श्री गोपालदास जी वरैया के शताब्दी समारोह पर 'गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ' और पूज्यवर क्षु० गणेशप्रसाद वर्णी शताब्दी समारोह के प्रसङ्ग पर 'गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति ग्रन्थ' प्रकाशित किये। इसके पूर्व इन्हीं वर्णी जी की हीरक जयन्ती के अवसर पर सागर से 'वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ' प्रकाशित हुआ था। गत वर्षों में आचार्य शिवसागर स्मृति ग्रन्थ, समाज सेवी सेठ सुनहरीलाल जी आगरा, पं० बाबूलाल जी जमादार बड़ौत, पण्डित श्री कैलाश चन्द्र जी, डॉ० दरबारीलालजी कोठिया और दिगम्बर समाज के सर्वमान्य आचार्य धर्मसागर जी महाराज का अभिवन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। यह अभिवन्दन ग्रन्थ आकार प्राकार और सामग्री संकलन की दृष्टि से श्लाघनीय रहा। इसी शृङ्खला मे पूज्य श्री आर्यिका इन्दुमती जी का अभिनन्दन ग्रन्थ गत वर्ष प्रकाशित हुआ था। आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज और स्व० पं० मक्खनलाल जी शास्त्री का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने वाला है। श्री सत्यन्धरकुमार सेठी उज्जैन और मिश्रीलाल जी गंगवाल इन्दौर के अभिनन्दन ग्रन्थ तैयार हो रहे है।

आर्यिका माताओं के अभिनन्दन की शृङ्खला में यह 'पूज्य आर्यिका रत्नमती अभिनन्दन ग्रन्थ' प्रकाशित हो रहा है। पूज्य श्री आर्यिका रत्नमती जी आर्यिकारत्न श्री १०५ ज्ञानमती माताजी की माता हैं। रत्नमती माता जी का जीवन सात्त्विक जीवन रहा है उन्होंने अपनी सन्तानों में जन्मघुटी के साथ जो जैन संस्कार निहित किये थे उन्हीं के फलस्वरूप हम आर्यिका ज्ञानमती जी, आर्यिका अभयमती जी ब्र० पं० रवीन्द्र कुमार जी, कुमारी माधुरी शास्त्री और कुमारी मालती शास्त्री को समाज और धर्म की सेवा में संलग्न देख रहे हैं। पूज्य श्री रत्नमती माताजी का पूरा परिवार जैन संस्कारों से सुसस्कृत है।

इस आर्यिका रत्नमती अभिनन्दन ग्रन्थ के पाँच खण्डों में निम्नाङ्कित सामग्री संकलित है और उसके संकलन में कुमारी माधुरी शास्त्री ने बहुत परिश्रम किया है।

प्रथम खण्ड में आचार्यों के शुभाशीर्वाद, नेताओं की शुभकामनाएँ, विद्वानों की विनयाञ्जलियाँ, संस्मरण कविताएँ तथा प्रशस्तियाँ आदि दी गई हैं।

द्वितीय खण्ड में ब्र० पं० मोतीचन्द्र जी शास्त्री द्वारा लिखित आर्यिका रत्नमती जी का प्रारम्भ से लेकर अब तक का जीवन-दर्शन दिया गया है। इसमें ज्ञानमती माताजी की डायरी से, उनसे प्राप्त अनुभवों से तथा माताजी के पारिवारिक सदस्यों का सहयोग प्राप्त किया गया है। पश्चात् इसी खण्ड में रत्नमती माताजी की जन्मभूमि महमूदाबाद का परिचय पं० बाबूलाल जी शास्त्री के द्वारा लिखा गया है। माताजी के गृहस्थ जीवन सम्बन्धी परिवार का समुल्लेख भी है।

तृतीय खण्ड में दीक्षा गुरु आचार्य धर्मसागर जी का परिचय है। पश्चात् क्रम से आर्यिका ज्ञानमती जी, आर्यिका अभयमती जी संघस्थ आर्यिका शिवमती जी तथा संघस्थ ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियों का परिचय है।

चतुर्थ खण्ड में पू० ज्ञानमती माताजी द्वारा लिखित, महापुराण, उत्तरपुराण तथा पद्मपुराण के आधार से अनेक प्रमुख आर्यिकाओं का एवं प्रसिद्धि प्राप्त एक क्षुल्लिका—अभयमती का परिचय है। अनन्तर प्रत्येक तीर्थंकरों के समवसरण में चतुर्विध संघ में आर्यिकाओं की संख्या का चार्ट है। अनन्तर अर्वाचीन आर्यिकाओं में जितने भी नाम उपलब्ध हो सके हैं उनका परिचय अकारादि क्रम से दिया गया है।

पञ्चम खण्ड में कतिपय सैद्धान्तिक लेख दिये गये हैं। स्थानाभाव से जिन लेखकों को लेख नहीं दिये जा सके हैं उनसे क्षमा प्रार्थी हैं। जब-जब अभिनन्दन ग्रन्थ की चर्चा सामने आई तब-तब रत्नमती माताजी ने अत्यन्त आग्रहपूर्वक मना किया है। उनके परोक्ष में ही ग्रन्थ निर्माण का कार्य किया गया है। यह उनकी स्वाभाविक निस्पृहता ही रही है।

सम्पादक मण्डल ने प्रकाशनार्थ आगत सामग्री का अवलोकन कर उसे क्रमवार संलग्न किया। इस कार्य में डॉ० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल, कु० माधुरी शास्त्री तथा ब्र० रवीन्द्रकुमार जी शास्त्री ने बड़ा परिश्रम किया है। पूज्य आर्यिका ज्ञानमती जी का मार्ग निर्देश प्राप्त होता रहा है। आदरणीय निर्मलकुमार जी सेठी अध्यक्ष भारतवर्षीय दि० जैन महासभा ने इस ग्रन्थ के निर्माण में पूर्ण प्रोत्साहन दिया है तथा महासभा की ओर से ही इसका प्रकाशन कराने की व्यवस्था की है इसके लिए सम्पादक मण्डल उनका आभारी है।

डॉ० पन्नालाल साहित्याचार्य

सम्पादक मण्डल



डॉ० पन्नालाल साहित्याचार्य



पं० बाबूलाल जैन जमादार



ब्र० विद्युल्लता शाह



पं० कुञ्जीलाल जैन शास्त्री



ब्र० सुमति बेन शाह



डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल



श्री अनुपम जैन



ब्र० माधुरी शास्त्री



सम्पादक की कलम से

भगवान् ऋषभदेव से लेकर भ० महावीर तक चतुर्विध संघ में साधुओं के समान आर्यिकाओं का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। तीर्थंकरों के समवशरण में मुनियों से आर्यिकाओं की संख्या अधिक रही है। महावीर भगवान् के निर्वाण के पश्चात् भी साधु संस्था में आर्यिकाओं की दीक्षाएँ अधिक होती रही। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण वर्तमान समय में आर्यिकाओं की संख्या से दिया जा सकता है। स्त्रियों में त्याग एवं तपस्या की भावना पुरुषों की अपेक्षा अधिक रहती है और उनकी साधु जीवन को अपनाने में अधिक रुचि होती है। साधु-साध्वियों की सेवा भी जितनी महिलाएँ करती हैं उतनी सेवा पुरुष वर्ग में सम्भव नहीं है।

लेकिन जब हम साधु संस्था का इतिहास उठा कर देखते हैं तो कुछ आचार्यों के अतिरिक्त शेष साधु-साध्वियों का इतिहास मे कोई उल्लेख नही मिलता। हम इसको नही मान सकते कि देश में आचार्य परम्परा एवं आर्यिका परम्परा खण्डित रही। समाज में साधु परम्परा बराबर जीवित रही है लेकिन उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का हमने बहुत कम मूल्यांकन किया और इतिहास में उनको कोई स्थान नहीं दिया। यद्यपि आज का वातावरण इसका अपवाद है लेकिन व्यवस्थित रूप में सामाजिक इतिहास लिखने की परम्परा आज भी नहीं पाई जाती इसलिए समाज का लिपिबद्ध इतिहास कही नहीं मिलता और इसी कारण साधु-साध्वियों का भी हमें कोई व्यवस्थित परिचय उपलब्ध नहीं होता।

४३वी शताब्दी के पश्चात् देश में भट्टारकों का युग आया। उनके विशाल व्यक्तित्व के सामने अन्य साधु-साध्वियों का व्यक्तित्व उभर नही सका। इसलिए ६००-७०० वर्षो तक देश एवं समाज में अनेक आचार्य, उपाध्याय, मुनिराज, आर्यिकाएँ एवं ब्रह्मचारिणियाँ होते हुए भी इतिहास में वे उपेक्षित ही बने रहे। भट्टारक परम्परा चलती रही। एक भट्टारक के पश्चात् दूसरे भट्टारक होते रहे। उन्हीं के संघ मे अन्य साधु भी होते रहे लेकिन इतिहास निर्माण एवं प्रतिष्ठा विधान तथा अन्य धार्मिक कार्यों में उनके योगदान का कभी उल्लेख नही हुआ। कुछ ब्रह्मचारियों का नाम इस दृष्टि से अवश्य उल्लेखनीय है लेकिन सब मिलाकर साधु संस्था का इतिहास नहीं होने के बराबर ही लगता है।

वर्तमान युग में आचार्य शांतिसागर महाराज का उदय साधु परम्परा के लिए वरदान सिद्ध हुआ। आचार्यश्री के कठोर त्याग, तपस्या एवं साहसिक मनोवृत्ति के कारण सारे देश मे मुनियों एवं आर्यिकाओं का निर्विघ्न विहार होने लगा। उनकी प्रेरणा एवं उद्‌बोधन से पचासों व्यक्तियों ने साधु जीवन अपनाया। आचार्य शांतिसागरजी के पश्चात् आचार्य वीरसागरजी, शिवसागरजी जैसे आचार्यों के अतिरिक्त आचार्य सूर्यसागरजी, आचार्य ज्ञानसागरजी, आचार्य महावीरकीर्तिजी जैसे आचार्य हुए जिन्होंने देश मे साधु परम्परा में पुनः मान प्रतिष्ठा की इसलिए सैकड़ो श्रावक-श्राविकाओं ने साधु जीवन ग्रहण किया। वास्तव मे विगत ५० वर्षो का समय इस दृष्टि से स्वर्ण-युग के नाम से जाना जा सकता है। वर्तमान मे १५० से अधिक आचार्य, उपाध्याय एवं मुनियों तथा २०० से भी अधिक आर्यिकाओं का देश मे एक छोर से दूसरी छोर तक मिलना भी उसी का चमत्कार है। नहीं तो देश के कितने ही नगरों में तो रथयात्रा भी निकालना कठिन था। नग्न मुनियों का एकाकी विहार तो बहुत दूर की बात थी। देहली मे जब प्रथम बार रथयात्रा निकली थी तो समाज को कितना संघर्ष करना पड़ा था। लेकिन गत ५० वर्षो मे होनेवाले आचार्यो के अद्‌भुत व्यक्तित्व के कारण देश मे साधु जीवन को एक नया रूप प्रदान किया। मुनि एवं आर्यिका जीवन अपनाने के लिए पचासों पुरुष एवं स्त्रियाँ आगे आई। इन साधुओं एवं आर्यिकाओं ने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक विहार किया और आसाम एव नागालैण्ड जैसे सुदूर प्रान्तो में आर्यिका इन्दुमती एवं सुपार्श्वमतीजी ने विहार करके सामाजिक एवं धार्मिक इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा।

साधुओं के समान आर्यिकाओं ने भी विगत २० वर्षों में अपने त्याग एवं तपस्या के अतिरिक्त साहित्यिक निर्माण के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात किया है। आर्यिका ज्ञानमतीजी, आर्यिका विशुद्धमतीजी, आर्यिका सुपार्श्वमती एवं आर्यिका विजयमतीजी जैसी साध्वियों ने पचासों ग्रन्थों का निर्माण करके अपने गहन ज्ञान का ही परिचय नहीं दिया किन्तु आर्यिका परम्परा का नाम भी उजागर किया। जहाँ एक ओर आर्यिका•ज्ञानमती माताजी से सैकड़ों ग्रन्थों की रचना के साथ जम्बूद्वीप एवं जैनभूगोल पर देश एवं समाज को एक नई दिशा प्रदान कर रही हैं वही दूसरी ओर आर्यिका विशुद्धमतीजी 'तिलोयपण्णत्ती' जैसे ग्रन्थ का सम्पादन कर रही हैं इसलिए साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में आर्यिकाओं का योगदान जहाँ नगण्य रहा वही आज के युग मे वह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर रहा है।

आर्यिका रत्नमती अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पण वर्तमान युग की आर्यिकाओं के प्रति कृतज्ञता

ज्ञापन का एक अंग मात्र है। इसके पूर्व पूज्य आर्यिका इन्दुमतीजी अभिनन्दन ग्रन्थ इसी सन् ८३ में पूज्य आर्यिका इन्दुमती माताजी को समर्पित किया गया था। तथा सम्पूर्ण समाज के प्रतिनिधियों द्वारा उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रति कृतज्ञता प्रगट की गई थी। पूज्य माताजी के अभिनन्दन ग्रन्थ का समाज ने अच्छा स्वागत किया और अभिनन्दन ग्रन्थों की परम्परा में एक नये अध्याय का प्रारम्भ हुआ।

पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी का जीवन अभिनन्दनीय है। गार्हस्थ अवस्था में रहते हुए जहाँ उन्होंने समाज को कितने ही रत्न दिए जिनके चरणों में आज समस्त समाज नतमस्तक है वहाँ दूसरी ओर उनका साधु जीवन भी त्याग, तपस्या एवं निस्पृहता का अनुपम उदाहरण है। आर्यिका पूज्य ज्ञानमती माताजी के संघ मे रहकर उनकी गुरुओं एवं आर्यिका के प्रति कितनी भक्ति एवं श्रद्धा है। आर्यिका रत्नमती माताजी का आर्यिका दीक्षा धारण करना त्याग एवं तपस्या के क्षेत्र में अनुपम उदाहरण है। जिसने भी उनका सांसारिक एवं त्यागी जीवन देखा है वही उनके समक्ष स्वतः नतमस्तक हुआ है तथा मन में प्रशंसा के गीत गाने लगता है। अपनी पुत्री आर्यिका ज्ञानमतीजी के संघ में रहकर वे जिस प्रकार अपने साधु जीवन में आगे बढ़ रही हैं वह अत्यधिक प्रशंसनीय है। उनका जीवन स्फटिक मणि के समान है जो निर्मल, उज्ज्वल एवं शुद्ध है। इसलिए जब उनके सम्मान मे एवं कृतज्ञता प्रगट करने के लिए एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन का निर्णय लिया गया तो समाज में उसका चारों ओर से स्वागत हुआ।

अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रारूप तैयार करने एवं सामग्री संकलन करने की योजना के साथ यह भी निर्णय किया गया कि अभिनन्दन ग्रन्थ में पू० रत्नमती माताजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालने के अतिरिक्त उसमें सम्पूर्ण आर्यिका परम्परा के अतीत एवं वर्तमान इतिहास पर भी विभिन्न दृष्टियों से प्रकाश डाला जावे जिसमे अब तक विस्मृत एवं उपेक्षित आर्यिकाओं की भी समाज को विस्तृत जानकारी मिल सके। इसलिए प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ को आर्यिकाओं के कोश के रूप में तैयार किया गया है। इसमें सम्पादक मण्डल एवं ग्रन्थ प्रकाशन समिति को कितनी सफलता मिली है इसका मूल्यांकन तो पाठकगण ही कर सकेंगे लेकिन इतना अवश्य है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में इस प्रकार की सामग्री का अधिक से अधिक संकलन करने का प्रयास किया गया है। संपूर्ण अभिनन्दन ग्रन्थ को पाँच खण्डों में विभक्त किया गया है।

आर्यिका रत्नमती माताजी के प्रति जैनाचार्यों के शुभाशीर्वाद, देश एवं समाज के प्रतिनिधियों की माताजी के प्रशस्त एवं तपस्वी जीवन पर विनयाञ्जलियाँ एवं शुभकामनाएँ, संस्मरण तथा प्रशस्तियाँ दी गई हैं। रत्नमती माताजी के जीवन ने सैकड़ों हजारों व्यक्तियों को कितना प्रभावित किया है, त्याग मार्ग की ओर मोड़ा है यह भी दर्शाया गया है।

संघस्थ ब्र० मोतीचन्द जी शास्त्री, न्यायतीर्थ ने अपनी ललित किन्तु प्राञ्जल भाषा में माताजी की जीवन गाथा को लिपिबद्ध किया है। ब्र० मोतीचन्द जी को बहुत वर्षों से माताजी का जीवन समीप से देखने का अवसर मिला है इसके अतिरिक्त उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करने में पू० ज्ञानमती माताजी का तथा माताजी के पारिवारिक सदस्यों का सहयोग प्राप्त किया है।

माताजी ने गृहस्थावस्था में अपनी सन्तानों के जीवन निर्माण में कितना परिश्रम किया होगा इस ग्रन्थ के अवलोकन से पाठकों को भलीभाँति परिचय मिल सकेगा।

ऐसी मान्यता है कि एक माता अपनी सन्तान के जीवन निर्माण के लिए सौ शिक्षकों से भी अच्छी सिद्ध होती है और यह कहावत आर्यिका रत्नमती माताजी के लिए एकदम सही उतरती है।

वर्तमान युग में आचार्य धर्मसागर महाराज वरिष्ठतम आचार्य हैं जिनके निस्पृही जीवन, कठोर त्याग तपस्या के लिए सारा जैन समाज उनके चरणों में नतमस्तक है। आज सारा समाज उनसे गौरवान्वित है। ऐसे महान् आचार्यश्री की आप शिष्या हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में भी आचार्यश्री का भी परिचय दिया गया है। पू० आर्यिका ज्ञानमती माताजी, अभयमती माताजी, शिवमती माताजी एवं संघस्थ ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियों का भी संक्षिप्त परिचय दिया है।

परम पूज्य आर्यिका ज्ञानमती जी की लेखनी द्वारा प्राचीन आर्यिकाओं का सुन्दर विवेचन है।

इसी प्रकार से देश एवं समाज के जैन विद्या के धनी विद्वानों के दर्शन, साहित्य, इतिहास एवं संस्कृति पर प्रकाश डालने वाले निबन्ध दिये गये हैं। जैन विद्या में अभिरुचि रखने वाले विद्वानों एवं शोधार्थियों के लिए ये उपयोगी सिद्ध होंगे ऐसा हमारा विश्वास है। जैन विद्या पर वर्तमान में पर्याप्त संख्या में विद्वान् मिलने लगे हैं यह हमारे लिए गौरव की बात है।

अन्तिम निवेदन

अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पण करने के सम्बन्ध में जब कभी पूज्य रत्नमती माताजी के समक्ष चर्चा आई तो उन्होंने इस प्रकार के आयोजन के लिए अपनी कभी स्वीकृति नहीं प्रदान की किन्तु उसका अत्यन्त आग्रह पूर्वक निषेध भी किया। अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन का सारा कार्य उनके परोक्ष में ही किया गया। उन्होंने अपने अभिनन्दन का विरोध करते हुए यही कहा कि मेरा कोई अभिनन्दन नहीं करना है क्योंकि मैंने जीवन में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। ये शब्द माताजी के यश एवं कीर्ति से दूर रहने के संकेत हैं।

कृतज्ञताज्ञापना

अभिनन्दन ग्रन्थ संपादन के कार्य में जिन पूज्य सन्तों, साध्वियों, विद्वानों एवं लेखकों का सहयोग मिला है उसके लिए सम्पादक मण्डल उन सबका पूर्ण आभारी है क्योंकि उनके सहयोग के बिना अभिनन्दन ग्रन्थ सम्पादन के गुरुतर कार्य को मूर्तरूप नहीं दिया जा सकता था। जिन विद्वानों के लेखों को हम स्थानाभाव से ग्रन्थ में स्थान नहीं दे सके उसके लिए हम उनसे क्षमाप्रार्थी हैं। आशा है भविष्य में उनका हमें इसी प्रकार सहयोग मिलता रहेगा। हम इस सम्बन्ध में पूज्य ज्ञानमती माताजी के भी विशेष कृतज्ञ हैं जिन्होंने कितनी ही असाध्य सामग्री को जुटाने में हमारी पूर्ण सहायता की तथा अपनी डायरी का उपयोग करने की स्वीकृति प्रदान की। हम ब्र० रवीन्द्र कुमार शास्त्री, कु० माधुरी शास्त्री जी के भी आभारी हैं जिनकी तत्परता में ग्रन्थ की सामग्री इतनी जल्दी एकत्रित की जा सकी।

अन्त में हम अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति के सभी सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादन का बीड़ा उठाया और उसे पूर्ण रूप से सफल बनाने में अपना पूरा सहयोग दिया। हम महावीर प्रेस, वाराणसी के मालिक बाबूलाल जी जैन फागुल्ल के भी आभारी हैं जिन्होंने ग्रन्थ का तत्परता से ही मुद्रण नहीं किया किन्तु उसे आकर्षक एवं सुन्दरतम बनाने में भी पूरा सहयोग दिया।

दि० २०-१०-८३

कस्तूरचन्द कासलीवाल
कृते सम्पादक मण्डल

अनुक्रम

प्रथम खण्ड

[शुभाशीर्वाद : शुभकामना : विनयांजलि : संस्मरण : काव्यांजलि]

द्वितीय खण्ड

[जीवनदर्शन : जन्मभूमि परिचय : गृहस्थाश्रम के परिवार का परिचय]

गृहस्थाश्रम के परिवार का परिचय

तृतीय खण्ड

[दीक्षागुरु का परिचय : संघ का परिचय : चित्रावली]

चतुर्थ खण्ड

[प्राचीन एवं अर्वाचीन आर्यिकाएँ]

प्राचीन आर्यिकाएँ

अर्वाचीन आर्यिकाएँ

पंचम खण्ड

[जैनदर्शन एवं सिद्धान्त]

परिशिष्ट

□ णमो अरिहन्ताणं

□ णमो सिद्धाणं

□ णमो आइरियाणं

□ णमो उवज्झायाणं

□ णमो लोए सव्वसाहूणं

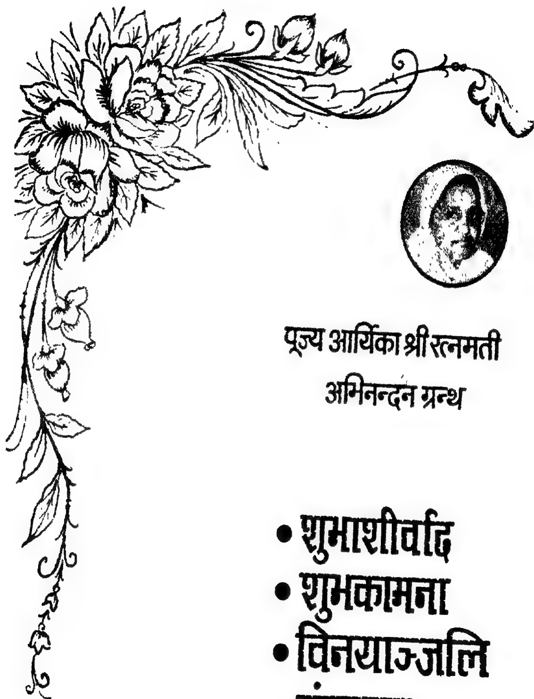
अस्मिन् बीजे स्थिताः सर्वे ऋषभाद्या जिनोत्तमाः ।
वर्णैर्निजैर्निजैर्युक्ता, ध्यातव्यास्तत्र सगताः ॥
नादश्चन्द्रसमाकारो, बिंदुर्नीलसमप्रभः ।
कलारुणसमाः सान्तः स्वर्णाभः सर्वतोमुखः ॥
शिरःसंलीन ईकारो, विनीलो वर्णतः स्मृतः ।
वर्णानुसारि संलीनं तीर्थकृन्मंडलं नमः ॥
चन्द्रप्रभपुष्पदन्तौ, नादस्थितसमाश्रितौ ।
बिंदुमध्यगतौ नेमिसुव्रतौ जिनसत्तमौ ॥
पद्मप्रभवासुपूज्यौ कलापदमधिश्रितौ ।
शिर ईस्थितिसंलीनौ, पार्श्वपार्श्वौ जिनोत्तमौ ॥
शेषास्तीर्थंकराः सर्वे, रहस्थाने नियोजिताः ।
मायाबीजाक्षरं प्राप्ताश्चतुर्विंशतिरर्हताम् ॥

अर्थ—इस 'ह्रीं' बीजाक्षर मे ऋषभदेव आदि चौबीस तीर्थंकर स्थित है, वे अपने-अपने वर्णो से युक्त है उनका ध्यान करना चाहिये। इस ह्रीं मे जो नाद (ँ) है वह चन्द्र के समान आकार व वर्ण वाला है, जो बिंदु (०) है वह नील मणि की प्रभा वाली है। जो कला (—) है वह लाल वर्ण की है और जो 'ह' वर्ण है वह स्वर्ण के समान आभा वाला है। शिर के ऊपर जो (ी) ईकार है वह हरित वर्ण का है। इस तरह उन-उन वर्णवाले तीर्थंकर देव उन-उन वर्ण के स्थानो मे स्थित है उन सबको मेरा नमस्कार होवे।

चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त श्वेत वर्ण वाले होने से ये दोनो नाद (ँ) मे स्थित है। नेमिनाथ और मुनिसुव्रत भगवान् नील वर्ण वाले है अतः वे बिंदु (०) में विराज मान है। पद्मप्रभ तथा वासुपूज्य देव लाल वर्ण वाले होने से वे कला (—) मे विराजमान है। तथा सुपार्श्व और पार्श्वनाथ भगवान् हरित वर्ण के है अतः वे शिर के ऊपर स्थित ईकार (ी) मे स्थित है तथा शेष सोलह तीर्थंकर सुवर्ण के समान छवि वाले होने से र् और ह् (ह्र्) मे स्थापित किये गये है। इस प्रकार ये चौबीसों ही तीर्थंकर इस माया बीजाक्षर (ह्रीं) को प्राप्त हो गये हैं। अर्थात् चौबीसो ही तीर्थंकर इस बीजाक्षर रूप को प्राप्त हो गये है।



ॐ ह्रीँ नमः



पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती
अभिनन्दन ग्रन्थ

- शुभाशीर्वाद
- शुभकामना
- विनयाञ्जलि
- संस्मरण
- काव्याञ्जलि

प्रथम खण्ड



शुभाशीर्वाद

आचार्य धर्मसागर जी महाराज



आर्यिका रत्नमती माताजी वयोवृद्ध साध्वी हैं बारह वर्ष से आर्यिका के व्रतों का पालन कर रही हैं। शारीरिक अस्वस्थता के रहते हुए भी आत्मसाधना के मार्ग में सजग हैं। "देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति ही संसार समुद्र से उत्तीर्ण करने में परम सहायक है" इसी आर्षवाणी के परिप्रेक्ष्य में आपने अपना जीवन ढाला है तथा निरन्तर आत्मोत्थान की ओर अग्रसर हैं। उनको हमारा यही शुभाशीर्वाद है कि वे अपने लक्ष्य में सफल हों एवं आधि-व्याधि से रहित समाधि—साम्य परिणति प्राप्त करें।







शुभाशीर्वाद

परमपूज्य १०८ आचार्यरत्न श्री देशभूषण महाराज

आर्यिका रत्नमती माताजी से तो मैं सन् १९५२ से ही भलीभाँति परिचित हूँ। जब उनकी पुत्री मैना ने आजीवन ब्रह्मचर्य दीक्षा लेकर मेरे संघ में रहने का सक्रिय कदम उठाया था। समाज तथा परिवार के बड़े विरोध के बावजूद भी जब वह अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रही उस समय माँ (रत्नमती जी) का सहयोग मैना को मिला। और वह अपने मनोरथ को सफल कर सकी थी। वास्तव में यह माता सच्ची माता है जिसने अपनी सन्तानों को मोक्षमार्ग पर कदम रखने में बाधक न बन कर साधक का कार्य किया। इतना ही नही स्वयं भी उसी पथ पर चलकर आत्मा का कल्याण कर रही हैं।

मेरा यही आशीर्वाद है कि माता रत्नमती जी स्वस्थ एवं चिरायु होकर अपने अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की सिद्धि करें।



मंगल आशीर्वाद

परमपूज्य आचार्य श्री १०८ विमलसागर महाराज

आर्यिका रत्नमती अभिनंदन ग्रन्थ प्रकाशन योजना के बारे मे सुनकर प्रसन्नता हुई। ऐसी विभूति के गुणों को समाज के समक्ष दिग्दर्शन कराने का श्रेय प्रकाशकों को है क्योंकि यह जैनधर्म की प्रभावना का एक प्रमुख अंग है।

आर्यिका रत्नमती जी ने अपने गृहस्थ कर्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन करके कठोर महाव्रतों को धारण कर प्राचीन इतिहास को साकार किया है। आप अपने शिथिल शरीर के द्वारा भी साधुचर्या का निर्बाध रूप से पालन कर रही है अतः अवश्य ही आप निकट संसारी हैं।

पंचमकाल को दुरूह यह दैगम्बरी दीक्षा आपके लिए शीघ्र ही मुक्तिपथ मे हेतु बने यही मेरा शुभाशीर्वाद है। ग्रन्थ प्रकाशक आयोजकों तथा संपादकों को भी मेरा यही शुभाशीर्वाद है कि वे इसी प्रकार से जैनधर्म तथा धर्मायतनों की रक्षा और प्रभावना के कार्य करते रहें। इति शुभम्



शुभाशीर्वाद

परमपूज्य श्री १०८ आचार्य सुबलसागर महाराज

यह दिगम्बर जैन समाज का परम सौभाग्य है कि वैराग्ययुक्त ज्ञानसम्पन्न पुत्र-पुत्रियों को जन्म देकर उनको धर्म मार्ग में लगाकर स्वयं धर्म मार्ग में लगी हुई रत्न मिली हैं जो कि वर्तमान में आर्यिका १०५ श्री रत्नमती नाम से प्रसिद्ध हैं। जब १९६९ में टिकैतनगर में हमारा चातुर्मास हुआ था तब उनकी श्रावक धर्म के अनुकूल देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप के साथ-साथ तन-मन-धन पूर्वक दान क्रिया वगैरह देखकर हमें ऐसा लगता था कि ये नारी होते हुए सर्वगुणरूपी रत्नों की खान है। आगे चलकर वह सही में ही रत्नमती नाम की रत्न ही साक्षात्कार हो गयी हैं। जिस प्रकार खान से निकली हुई हीरा, मोती, माणिक वगैरह रत्न समाज को प्रिय हैं, उसी प्रकार प्रिय पुत्र-पुत्रियों को जन्म देकर मन्दालसा के समान बोध देकर संसार सागर से पार होने की शिक्षा दी जैसे—

सिद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि,
संसारमाया परिवर्जितोऽसि।
शरीर भिन्नस्त्यज सर्वचेष्टां,
मन्दालसा वाक्यमुपास्व पुत्र॥

अर्थ—हे पुत्र! तू सिद्ध है, बुद्ध है, निरंजन है, संसाररूपी माया जाल से रहित है, शरीर से भिन्न है, इसलिये सर्व चेष्टाओं को छोड़। इस प्रकार मन्दालसा अपने पुत्रों को बोध करती है। इसी प्रकार बोध देनेवाली माता ही धन्य है! जो संसार सागर से दूसरों को तारकर स्वयं भी तारे।

इसी प्रकार ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, चारित्रवृद्ध, पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी का समय आगे भी स्वपर कल्याण के साथ-साथ जम्बूद्वीप के समान विस्तार, सुमेरु पर्वत के समान अचल धर्म लाभ समाज को युग-युगों तक मिलता रहे यही हमारा समाधि वृद्धिरस्तु शुभाशीर्वाद है।

ॐ

शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!





शुभाशीर्वाद

परमपूज्य एलाचार्य मुनि श्री विद्यानन्द महाराज

ॐ

'शूराः संति सहस्रशः सुचरितैः पूर्णं जगत् पंडितैः।
संख्या नास्ति कुलावतां बहुतरैः शान्तैर्वनान्तश्रिताः॥
त्यक्तुं यः किल वित्तमुत्तममतिः शक्नोतिजीवाधिकं।
सोऽस्मिन् भूमिविभूषणं शुभनिधिर्भव्यो भवे दुर्लभः॥'

—क्षेमेन्द्र

'नारी गुणवती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदं'—उक्ति को चरितार्थ करने वाली महिमामयी साध्वीरत्न आर्यिका श्री १०५ रत्नमती जी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन योजना सुनकर चित्त प्रमुदित हुआ। आर्यिका श्री रत्नमती जी का रत्नत्रय समाराधित भव्य जीवन हर नारी के लिए एक उज्ज्वल निदर्शन है। 'दंसणणाणचरित्ताणि' की साकार मूर्ति श्री रत्नमती जी स्वयं में साध्वी मात्र ही नहीं अपितु अपने आप में वह फलभरित वटवृक्ष हैं—जिसमें रत्नत्रय संपन्न अनेक साध्वी रत्न प्रसूत हुए हैं। 'स्त्रीणां शतानि शतशो' ''वाली उक्ति उन पर सर्वथा अन्वित होती है। वस्तुतः प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ योजना परमस्तुत्य व सामयिक कर्त्तव्य है—'गुणिषु प्रमोदं'—गुणीजन, व्रतीजन, महाव्रतियों का आदर सत्कार समादर वैयावृत्य—यह सब कार्य करणीय व अनुकरणीय है—पुनीत हैं।

माता जी को बोधिलाभ व समाधिलाभ हो इस आशीर्वाद के साथ विराम।'—

आशीर्वाद

आचार्य श्री विद्यासागर महाराज

साधुवर्ग समाज की चलती-फिरती पाठशालायें हैं। श्री रत्नमती माताजी को हमने किशनगढ़ चातुर्मास के समय गृहस्थावस्था में देखा था। उसके बाद तो उन्होंने उसी चातुर्मास के बाद आचार्य धर्मसागर जी महाराज से दीक्षा ले ली थी, यह सुनकर हृदय को अपार हर्ष हुआ था। पूज्य माताजी रत्नत्रय की वृद्धि करती हुई अपनी इस कठिन साधना में सफल हों यही हमारा शुभाशीर्वाद है।

शुभाशीर्वाद

श्री १०८ संभवसागर महाराज

अनादिकाल से जैन दर्शन में मुनि-आर्यिका की परंपरा चलती आई है। यह परंपरा "श्रमणसंस्कृति" का मूल है। मूल के बिना धर्म रूपी वृक्ष ठहर नहीं सकता है अतः इस पद को धारण करने के बाद प्रत्येक मुनि-आर्यिका को अपनी आत्मोन्नति की ओर विशेष लक्ष्य रखना परमावश्यक है। कारण कि इस युग में बिगड़ना सरल है, सुधरना कठिन है। दोण्णेगे कन्नड़ में कहावत है (कुम्हारनिगे बर्षा दोण्णेगे निमिष) एक वर्ष पर्यंत परिश्रम कर बनाये हुये घड़ों को लाठी से एकबार मारने पर एक सेकेंड में एक वर्ष का परिश्रम नष्ट होता है उसी प्रकार इस पद में आकर यदि आत्मोन्नति के कारणभूत हमारा व्रत, नियम, तपश्चरणादि नहीं हुआ तो कुम्हार के समान अनेक वर्ष का परिश्रम जैसा व्यर्थ हुआ वैसे ही इस जीवन में किया हुआ पुरुषार्थ भी व्यर्थ माना जाता है। इस परंपरा में अनेकों भव्यात्मायें मुनि आर्यिका का पद धारण किये हैं और कर भी रहे हैं। हमने इस पद परंपरा से जो आत्मोन्नति की उसी के मार्ग में चलकर आत्म-कल्याण करना चाहिये यही हमारा रत्नमतीजी के लिये शुभाशीर्वाद। समाधि वृद्धिरस्तु।

तप का फल

श्री १०८ आचार्य शांतिसागर महाराज

साधु समाधि का तात्पर्य है साम्यभाव। शुद्धात्म तत्त्व की उपासना का मूल कारण सम्यग्दर्शन है। श्रद्धा की निश्चलता मोक्ष का कारण है। श्रद्धा के बिना आत्म-तत्त्व की उपलब्धि नहीं होती। श्रद्धा से शान्ति मिलती है आपका रत्नत्रय निर्विघ्न पलता रहे तथा धर्म की प्रभावना होती रहे। सम्यग्दृष्टि का आठवां अंग है "धर्म-प्रभावना"। यथासम्भव समाज में धर्म की प्रभावना होती रहे। यही शुभाशीर्वाद है।

आशीर्वाद

श्री १०८ परमपूज्य आचार्य सुमतिसागर महाराज

श्री आर्यिका रत्नमती जी निरंतर धर्मध्यान करते हुए साधु पद के अन्तिम लक्ष्य सल्लेखना समाधि को प्राप्त करें एवं जीवन पर्यन्त विहार करते हुए धर्म प्रचार में जीवों के कल्याण में सलग्न रहें। यही शुभ कामना है।

आशीर्वाद

मुनि आर्यनंदी

आदरणीया ध० श्री आर्यिका रत्नमती जी का गुण गौरव पर 'अभिनंदन ग्रंथ का' प्रकाशन योग्य है। स्वयूथ्यान् प्रति सद्भावसनाथाऽपेतकैतवा।

प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥ १७ ॥ र० श्रा०

उनके गौरव पर हमारा भी अभिनंदन पूर्वक शुभ समाधि वृद्धि आशीर्वाद।

शिल्पीकार का शिल्पीकार को कोटि कोटि आशीर्वाद

मुनि दयासागर महाराज

संसार मे अनेकों प्राणी जन्म लेते मरते हैं। किसको कौन पहिचानता है। चौरासी लाख योनियों में एक मनुष्य योनि ही एक ऐसी योनि है जिसमें पैदा हुआ ही मनुष्य आत्मा विश्वव्यापी नाम पा सकता है जैसे तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करने वाला आत्मा जो कि तीर्थंकर प्रकृति का परमुख वा स्वमुख से उदय आने पर यह सबसे विशिष्ट पुण्य और इससे नीचे जिसका जितना पुण्य होता है उसके अनुसार उसमें विशेषता आती है उस विशेषता में एक परम तपस्विनी आर्यिका ज्ञानमती माता जी हैं। उन्होंने कई युवक-युवतियों को गृहस्थाश्रम रूपी खान से सत् उपदेश द्वारा संयम रूपी छैनी से तोड़ कर बाहर निकाला, किसी को संयम की, किसी को चेतन मूर्ति बनाया और इससे संतुष्ट न हुई तो भारत भूमि में विख्यात भूमि हस्तिनापुर जो कि तीर्थंकरों की जन्म-भूमि है, वहाँ आपने दृश्यकारी विशाल सुमेरु पर्वत का और जम्बूद्वीप का निर्माण कार्य कराकर भव्य आत्माओ को प्रेरणा देने में संलग्न हुई हैं और ज्ञान प्रचार हेतु अनेकों ज्ञानरूपी कलशों को (पुस्तकों) को ज्ञान सागर से भर-भर कर निकाल रही हैं और ज्ञान पिपासुओं की प्यास बुझा रही हैं ऐसे विख्यात शिल्पीकार को पैदा करने वाली शिल्पी-कार अर्थात् उनकी जन्मदात्री माता रत्नमती परम तपस्विनी है और चेतन रत्नों की खान हैं और चेतन को ललकारने वाला मोहराज, यमराज व कामराज से सामना करने को अभ्यासशाला में भरती हैं अर्थात् आर्यिका के व्रतों का पालन कर रही हैं। ऐसी साध्वी रत्न चिरायु रहे, तारण-तरण बनकर शिवधाम को प्राप्त होवें ऐसा मेरा मंगल शुभ आशीर्वाद है।

आशीर्वाद

मुनि श्री वृषभसागर महाराज

आर्यिका रत्नमती जी अभिनंदन ग्रन्थ का प्रकाशन उचित कार्य है इस प्रकार धर्म और जिनवाणी की ही शुभ सेवा है जो ग्रंथ सब समाज को स्वयं प्रकाशित हो के सबको धर्म ज्ञान दीप प्रकाश देता रहेगा। इस उचित कार्य को हमारा शुभ आशीर्वाद है

श्री रत्नमती जी ने आज तक धर्म प्रभावना का प्रचार उचित ढंग से करके सर्व समाज को सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप मोक्ष मार्ग पर अच्छे ढंग से स्थापित करके सम्यक् धर्म का खूब प्रचार व प्रसार किया है जो माता जी को केवलज्ञान प्राप्त होने में शुद्ध संस्कार हुआ है, होयेगा यह बड़ी सौभाग्य की बात है। रात-दिन उनका निश्चय ज्ञान समाज को उन्नत मार्ग पर कदम बढ़ाने में पथ प्रदर्शक होवो यही शुभकामना के साथ हमारा शुभ आशीर्वाद।

शुभाशीर्वाद

श्री १०८ मुनि श्रुतसागर महाराज

पूज्य आर्यिका श्री १०५ रत्नमती अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन कार्य प्रभावना-जनक एवं रत्नत्रय धारक भव्य जीवों के प्रति भक्ति भाव का द्योतक है। मेरा शुभाशीर्वाद है।

शुभाशीर्वाद

मुनि श्री शीतलसागर महाराज

आर्यिका श्री रत्नमती माताजी का अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशन करने का प्रबन्ध जानकर मेरा शुभाशीर्वाद है।

शुभाशीर्वाद

श्री १०८ मुनि श्री पार्श्वकीर्ति

बड़े हर्ष की बात है कि आर्यिका रत्नमती माता जी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। आ० रत्नमती माताजी ने अपनी कोख से ज्ञानमती जैसी माताजी को जन्म दिया एवं अभयमती, रवीन्द्र कुमार आदि सभी धर्मात्मा पुत्र-पुत्रियों का जीवन साध्य बनाया, आखिर में आर्यिका के व्रत ग्रहण किये यह बड़ी बात है। ऐसी माताजी को अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट कर रहे हैं। मेरा शुभाशीर्वाद है।

शुभाशीर्वाद

मुनि श्री शांतिसागर

वीर प्रसवणी मां ने जिस रत्न को अपनी कुक्षि में धारण कर समाज को अर्पण किया वह तो परम गौरवमयी है।

आर्यिकारत्न परम विदुषी तथा क्लिष्ट न्याय ग्रन्थों की अनुपम सरल व्याख्याकार 'ज्ञानमती जी' की जन्मदात्री सरल स्वभावी एवं स्वयं चारित्र धारण कर आत्म-कल्याण पथ पर आरोहण करने वाली आर्यिका माताजी अपने जीवन में सदैव धर्म-ध्यान में तत्पर रहकर जनसाधारण को कल्याण मार्ग में लगाते हुए साधु जीवन के उत्कृष्ट ध्येय को प्राप्त करें।

हमने आर्यिका ज्ञानमतीजी के इन्दौर आगमन (सनावद चार्तुमास काल) ब्यावर, महावीर जी आदि स्थानों पर दर्शन किये (गृहस्थ ब्रह्मचारी) आपकी सरल सौम्य मुखाकृति, सरस प्रवचन शैली, शिष्यों को ज्ञानदान देने में विशेष अनुग्रही प्रकृति ने जैन-अजैन समाज को अपने जीवन की अनुपम देन दी है अतः वे दोनों माताजी शतायु हों, धर्मदेशना द्वारा कल्याण पथ पर सदैव अग्रसर हों।

शुभाशीर्वाद

मुनि श्री आगमसागर महाराज

आपने गृहस्थाश्रम में धार्मिक क्रिया करते हुए कई रत्नों को पैदा किया है जिनमें से १०५ आर्यिका ज्ञानमती का सारे भारत में नाम है। धर्म और संस्कृति के प्रति माताजी की कट्टर श्रद्धा है। ऐसी ही श्री आर्यिका रत्नमती माता जी हैं।

आपकी कोख से बाल ब्र० रवीन्द्रकुमार जैन तथा बाल ब्रह्मचारिणी मालती जैन भी हुए हैं। ये सभी परम सुखीन धर्म की रक्षा करनेवाले रहें यही मेरा आशीर्वाद है।

शुभकामना

आर्यिका ज्ञानमती माता जी

जैनधर्म जिनकी पैतृक निधि है। ऐसी मोहिनी देवी को कन्या अवस्था में ही स्वाध्याय प्रेम विरासत में मिला था। जिन्होंने छोटेलाल जी के साथ दांपत्य जीवन में देवदर्शन, स्वाध्याय, जिनपूजन और दान से गृहस्थाश्रम को सद्गार्हस्थ्य परमस्थान से विभूषित किया। संतानों को अपना दूध पिलाते हुए उन्हें धर्मपीयूष भी पिलाती गईं। स्वयं सम्यक्त्व में दृढ़ रह कर संयमासंयम धारण कर गृहस्थाश्रम को सफल किया। पुनः आचार्य धर्मसागर जी महाराज से ५७ वर्ष की उम्र में स्त्री पर्याय में सर्वोत्कृष्ट जैनेश्वरी आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर आर्यिका रत्नमती बन गईं। आज ११ वर्ष तक सतत आत्मसाधना में तत्पर होती हुई अपने आत्म वैभव को बढ़ा रही हैं। मैं जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करती हूँ कि मेरे शरीर की जननी, मेरे संपूर्ण धर्मकार्य मे सहयोगिनी ऐसी आर्यिका रत्नमती माताजी शतायु हों। उनकी छत्रछाया बहुत दिनों तक भव्यों को मिलती रहे। इस चारित्रमय जीवन में उनके सम्यक्त्व की विशुद्धि बढ़ती रहे, संयम निरतिचार पलता रहे और जीवन के अन्त में उन्हें सत्समाधि की प्राप्ति होकर परंपरा से स्वात्मसिद्धि स्वरूप निर्वाण की प्राप्ति होवे।

शुभकामना

आर्यिका अभयमती माताजी

माता मोहिनी ने पहले अपने गार्हस्थ्य जीवन को सफल बनाया। इस पंचमकाल में दुर्लभ और दुष्कर ऐसे आर्यिका पद को धारण कर "रत्नमती" यह नाम पाया है। इनके संतान रत्नों में एक मैं भी कन्यारत्न हूँ जो कि आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माता जी और आचार्य शिरोमणि धर्मसागर जी का वरदहस्त पाकर संयम पथ में निरत हूँ। इन रत्नमती माताजी का संयम जीवन के अंत तक निराबाध पलता रहे और ये अपने लक्ष्य में सफल हों, मैं श्री जिनेन्द्रदेव से यही प्रार्थना करते हुए इनके प्रति शुभकामना व्यक्त करती हूँ।

मंगलकामना

आर्यिका सुपार्श्वमति जी

आर्यिका रत्नमती त्यागियों की जननी है। जैन समाज का जो उपकार किया है उसका जैन समाज चिरकाल तक ऋणि रहेगा। आप चिरायु हों। धर्म ध्यान आपका वृद्धिगत हो यही मेरी मंगल कामना है।



शुभकामना

आर्यिका श्री पार्श्वमती जी

रत्नमती माता रत्नज्योति हैं। आप चिरायु हों। आत्म साधना में सदैव संलग्न हों यही है अभ्यर्थना।



नारी नर की खान है

आर्यिका गुणमती माताजी

नारी नारी मत कहो नारी नर की खान।
नारी से पैदा हुए, तीर्थंकर भगवान॥

इसी प्रकार से नारी जाति को सार्थक बनाने वाली पू० आर्यिका श्री रत्नमती माताजी ने ज्ञानमती माताजी आदि महान् रत्नों को जन्म दिया है। ज्ञानमती माताजी की बृहत् शिष्य परम्परा में मैं भी हूँ। मैंने रत्नमती माताजी की शान्त मुद्रा तथा चर्या का दिग्दर्शन किया है वे हमेशा शास्त्र स्वाध्याय और धर्म-ध्यान में लीन रहती हैं। अन्त में मैं आपके निर्बाध संयम की कामना करती हूँ।

लड़का से लड़की भली जो कुलवन्ती होय।
नाम रखावे बाप का जगत बड़ाई होय॥



विनयाञ्जलि

आ० शिवमती माताजी

परम पू० आर्यिका १०५ श्री रत्नमती माताजी के अभिनन्दन-ग्रन्थ की योजना सराहनीय ही नहीं बल्कि स्तुत्य है। वर्तमान युग में ऐसी सच्ची माता का मिलना समाज के लिए दुर्लभ विषय है कि जिन्होंने अपनी सन्तानों को त्यागमार्ग दिखाकर स्वयं भी उस महान् पद को धारण कर आत्मकल्याण कर रही हैं। मैं अधिक क्या कहूँ रत्नत्रय की इस महान् साधिका को बारम्बार वंदामि करते हुए पुष्पांजलि अर्पण करती हूँ।



साधना की प्रतिमूर्ति

क्षुल्लक सिद्धसागर जी

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि आर्यिका १०५ श्री रत्नमती माताजी का अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है। माताजी के दर्शन करने का सौभाग्य मुझे कई बार मिला है, आप साधना की प्रतिमूर्ति हैं। वृद्धावस्था के कारण शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा न होने पर भी आप सामायिक, प्रतिक्रमण आदि दैनिक क्रियाओं में सावधान रहती है, आपके हृदय में त्याग, तपस्या, भद्रता और शान्तिरस की अनुपम धारा अविरल रूप से बहती रहती है, आप तपश्चर्या की प्रतीक प्रकाश स्तम्भ हैं; विशेषता यह है कि जब देखो तब आप स्वाध्याय व ध्यान (माला फेरना) आदि सत् क्रियाओं मे रत रहती हैं, जिससे आपका हृदय कोमलता और मधुरता के रस से ओतप्रोत रहता है अर्थात् आप आत्मकल्याण के मार्ग में सतत जागरूक रहती हैं।

सचमुच में रत्नमती माताजी रत्नों की खान हैं, आपकी कोख से उत्पन्न होने वाले 'रत्न' अपनी आभा से आज जैन जगत् को चमका रहे हैं। कौन नहीं जानता कि आपके उदर से उदित होने वाला आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी रूपी सूर्य अपने तेज से अज्ञान अंधकार में भटकने वाले प्राणियों को प्रकाश दे रहा है, आज जैन जगत् की विश्रुत विदुषी, उदारचेता ज्ञानमती माताजी का साहित्य जैनधर्म की प्रभावना में चार चाँद लगाकर जनजीवन को सन्मार्ग की ओर मोड़ दे रहा है। वास्तव में माताजी के विचारों में उदारता, चिन्तन में नया उन्मेष और शैली में सजीवता दिखाई देती है, आपके प्रवचनों में विशालता के साथ-साथ युगानुकूल साहस और अध्यात्मवाद की गूँज सुनाई देती है, जो कि आधुनिक युग के मानवों को विचारों

की निर्मलता व कर्मठता की नई लहर प्रदान करने में समर्थ है, आपके प्रवचनों में गाम्भीर्य ओज एवं मर्म को स्पर्श करने की शक्ति है, जटिल विषय को सहज बनाकर समझाने की आपकी अद्‌भुत क्षमता श्रोतागणों को मंत्र मुग्ध किए बिना नहीं रहती है।

अन्त में मै पूजनीया रत्नमती माताजी के पावन चरणों में अपनी भक्ति सिंचित विनयाञ्जलि समर्पित करता हुआ अपना अहोभाग्य मानता हूँ और वीरप्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि आप आत्मकल्याण के पथ पर उत्तरोत्तर बढ़ते हुए दो-चार भवों में मुक्ति प्राप्त करें।



शत-शत वन्दना

क्षु० रत्नकीर्ति

वर्तमान आध्यात्मिक जीवन के जन्मदाता प० पू० आचार्य श्री १०८ धर्मसागर जी महाराज तथा प० पू० आर्यिका ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा का मैं आजन्म आभारी हूँ।

आपकी प्रेरणा से आपके परिवार-जन रत्नत्रय मार्ग में सावधान हैं तथा आपके वचनामृत से मैं उपकृत हुआ। इस उपकार को मैं शब्दों द्वारा व्यक्त नही कर सकता। मेरी प० पू० रत्नमती माताजी को मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हेतु सश्रद्धा विनयाञ्जलि।



वात्सल्यमयी माँ

क्षुल्लक सूर्यसागर

जिस प्रकार से माँ को अपने बच्चे के भविष्य की चिन्ता रहती है और वह उसका उज्ज्वल भविष्य बनाने के लिए कटिबद्ध रहती है उसी प्रकार पू० रत्नमती माताजी भी सम्पूर्ण मानव समाज के कल्याण के लिए वात्सल्य भाव से कटिबद्ध हैं। धन्य है ऐसी माँ ! उनके चरणों में मैं भी सविनय नमस्कार करता हूँ।



धर्म-जननी

क्षु० समतासागर

हे रत्नप्रदाता—रत्नमती माता, आपके जन्मजात रत्न स्वयं प्रकाशित हैं। आपने अपना जीवन सार्थक किया। धर्म प्रभावना—ज्ञानज्योति से ज्ञान की झलक भारतभर में फैल रही है। आप सचमुच धर्म जननी हैं। आपके आशीर्वाद से हम सदा धर्म संलग्न रहें यही है अभ्यर्थना।



रत्नत्रय की मूर्ति

क्षु० श्री यशोमती माता जी

इस चतुर्गति रूप संसार में लाखों प्राणी नित्य प्रति जन्म लेते है व मृत्यु को प्राप्त होते है परन्तु विरले प्राणी ही ऐसे होते है जो जन्म तो लेते है किन्तु मृत्यु को प्राप्त नहीं होते। मृत्यु को प्राप्त न होने का तात्पर्य कि वह अपने जीवन की साधना से अपने नाम को अजर अमर कर जाते हैं, मनुष्य शरीर रूपी पर्याय का नाश होते भी जिनका नाश (मरण) नही होता जिनके जीवन की यशोगाथा भारत में उत्पन्न होने वाले प्राणी हमेशा गाया करते हैं।

उन्हीं विरले प्राणियों मे से एक है आर्यिका **रत्नमती माता जी**! जिन्होंने अपने जीवन को आत्म-साधना में लगा नारी जीवन की उच्चतम श्रेणी को प्राप्त किया है। चर्म चक्षुओं से दिखने वाला यह मूर्तिमान शरीर तो हम सबके समक्ष है ही, लेकिन चर्म चक्षुओं से नहीं दिखने वाला अमूर्त स्वभाव धारी वह आत्मा आज हम सबके बीच रत्नत्रय की मूर्ति का साक्षात्कार कर रहा है। धन्य है ऐसी इस जगतीतल पर निर्विकार रूप को धारण करने वाली आर्यिका रत्नमती जी। यहाँ निर्विकार कहने का तात्पर्य जिनके वेष-भूषा में विकार जन्म नही लेते, तथा जहाँ विकार पुष्ट भी नहीं होते। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने आर्यिकाओं का वेष-भूषा निर्विकार बतलाया है। ऐसी निर्विकार मुद्रा को धारण करने वाली रत्नत्रय की मूर्ति आर्यिका रत्नमती माताजी के चरणों में श्रद्धा भक्ति सहित शत-शत वन्दन (वंदामि)।



संयममूर्ति माताजी

क्षु० जयकीर्ति महाराज

ज्ञान, ध्यान, तप में निरत पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी शरीर से क्षीण होने पर आर्यिका के महाव्रत को निरतिशय पालन कर हम सबको सत्मार्ग—मोक्षमार्ग दिखाकर कल्याण कर रही हैं। धन्य हैं।

जीवन भर उन्होंने निर्मल निर्लोभ भाव से रहकर तथा सांसारिक भोगों से विरत होकर वैराग्यभाव से आत्मकल्याण किया तथा साथ मे अपने परिवार को धर्म-संस्कार पैदा कर वैराग्य मार्ग पर लगाया यह सौभाग्य की बात है। आपकी जितनी गौरवगाथा का गुणगान किया जाय वह थोड़ा ही है।

इस अभिनन्दन ग्रन्थ के समर्पण पर विनत भाव से दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।



शुभकामना

Jnanayogi, Swasti Sri Bhattaraka

Charukeerti Panditacharyavarya Swami, *MOODBIDRI*

It is heartening to note that you are going to bring out Pujya Aryika Ratnamati Mataji Abhinandan Grantha to commemorate her best services to the society. Pujya Mataji has adorable qualities and has the power of cleansing the devotees heart of all sinful impuritees. She is adored in the whole Samaj for following in the strict sense the path of the Ratnatraya the trio of spiritual jewels Samayagdarshan, Samyagjnana and Samyak Charitra.

It is good that you have come forward to honour her appropriately. We send you our best wishes and pray God to bless your vneture with great success. Our Namostu to Pujya Mataji.

"Bhadram Bhuyat Varadhatam Jinashasanam"



शुभकामना

कर्मयोगी चारुकीर्ति स्वामी, श्रवणबेलगोला

भारतीय महिलाओं के त्याग, तप और चारित्र के क्षेत्र में पूज्य आर्यिकाओं का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। पू० आर्यिका रत्नमती माता जी का अभिनन्दन कार्य-क्रम जैनादर्शों के संरक्षण और संवर्धन के साथ यशस्वी हो, यही हमारी शुभकामना है।

—भद्रं भूयात् वर्धतां जिनशासनम्—

शुभकामना

श्रीमती इन्दिरा गांधी

प्रधानमंत्री, भारत सरकार





PRIME MINISTER
INDIA

New Delhi,
July 14, 1983

From ancient times, the ideals of non-violence, universal love and tolerance have been the basis of our country's culture. These ideas are among the most precious gifts that we can offer to the world, particularly in these difficult times.

By their dedication and learning contemporary sages like Ratnamati Mataji have helped to maintain the continuity of India's philosophical achievements.

Yours sincerely,

(Indira Gandhi)



शुभकामना

श्री प्रकाशचन्द सेठी
गृहमंत्री, भारत सरकार

It is pleasure to know that the Digambar Jain Institute of Cosmographic Research, Hastinapur, District Meerut, is proposing to bring out an Abhinandan Grantha in honour of the noted Jain Sadhwi Pujya Ratnamati Mataji. Mataji has rendered dedicated services in the cause of non-violence and universal love as well as religious tolerance. There can be no better honour for a Siant like her than to follow and practice the ideals she has been preaching. I send my best wishes on this occasion and wish the efforts of the Institute all success.



शुभकामना

श्री जे० के० जैन, संसद सदस्य

प्राचीन एवं अर्वाचीन आर्यिका परम्परा के अनुरूप माता जी श्री रत्नमती जी का सम्पूर्ण जीवन सेवा एवं समर्पण की एक प्रत्यक्ष झाँकी है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में, विशेष रूप से जम्बूद्वीप निर्माण योजना आदि में उनका जो बहुविध योगदान रहा है, वह उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व को उजागर करता है।

पूज्य माताजी के प्रति अपनी विनयांजलि भेंट करते हुए प्रस्तावित अभिनंदन-ग्रंथ की योजना के लिए मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ भेजता हूँ।



शुभकामना

श्रीमती निर्मल जैन (धर्मपत्नी श्री जे० के० जैन)



I am glad to learn that Digambar Jain Trilok Shodh Sansthan, Hastinapur, Meerut, has planned to bring out an Abhinandan Granth to honour Pujya Ratnamati Mataji.

As a keen follower and close associate of Pujya Gyanmati Mataji, Pujya Ratnamati Mataji has been helpful in promoting her noble mission of Jamboo Dweep Project and the like.

I take this opportunity to pay my respectful regards to the Jain Sadhwi and wish her a long life.

With kind regards.



विनयाञ्जलि

सर सेठ भागचन्द सोनी, अजमेर

पूज्य रत्नमती माताजी का गार्हस्थ जीवन अद्वितीय रहा है। आपकी विश्रुत सन्तान जो मोक्षमार्ग की सच्ची पथिक हैं यह प्रशंसनीय ही नहीं अनुकरणीय भी है। आपकी प्रथम सन्तान आज पूज्य माताजी ज्ञानमतीजी है जिन्होंने अपने ज्ञानाराधन प्रकाश से समस्त भारत को आलोकित किया है साथ ही हस्तिनापुर में अद्वितीय जम्बूद्वीप रचना को प्रारम्भ किया है। पूज्य अभयमती जी माता जी यत्र-तत्र बिहार कर जैनधर्म की प्रभावना कर रही हैं। अवशिष्ट सन्तानों में बहुभाग ज्ञानाराधना में लवलीन है और सदैव धर्मोद्योत में अपनी शक्ति का सदुपयोग कर रही हैं।

यह सब कुछ होने के बाद आपकी विशिष्टता यह है कि आपने गार्हस्थ छोड़ कर संयम की शरण ली और मानव पर्यन्त सम्भव आर्यिका पद से जीवन अलंकृत किया है। मुझे आपके दर्शन करने का सौभाग्य मिला है। आपकी सरलता, मृदुता देखते ही बनती है।

आपका संयम साधन निर्विघ्न हों और आप दीर्घजीवी होकर आत्म-कल्याण में रत रहें यही मेरी शुभ कामना है।



विनयाञ्जलि

साहू श्रेयांसप्रसाद जैन, बम्बई

पूज्य माता जी ने समाज में जो धार्मिक प्रभावना जागृत की है, वह प्रेरणादायक है और उनका सतत मार्गदर्शन हमें मिलता रहेगा, यही मेरी भगवान से प्रार्थना है।



विनयाञ्जलि

श्री निर्मल कुमार जैन सेठी, लखनऊ
अध्यक्ष, भारतवर्षीय दि० जैन महासभा

त्यागीजनों का जब भी सम्मान होता है तो मुझे बहुत ही आन्तरिक खुशी होती है। इस सम्मान के पीछे मूलभूत भावना यही रहती है कि जो गुण उन त्यागीजनों में विद्यमान है, उन गुणों में से कुछ गुण हमें भी प्राप्त हों, और हम भी अपने जीवन में सुधार कर सकें।

दिगम्बर जैन समाज ने हमेशा त्याग करनेवालों का त्याग के प्रति उन्मुख होने वाले तथा त्यागरत होने वाले प्राणियों का हमेशा ही अभिनन्दन व अभिवन्दन किया है। हाल ही में समाज ने आचार्य धर्मसागर जी महाराज का तथा कुम्भोज बाहुबली में समन्तभद्राचार्य जी का अभिवन्दन व पूज्य आर्यिका इन्दुमती माताजी का अभिवन्दन खूब उत्साह व विशाल रूप से कर यह जाहिर कर दिया है कि समाज में मुनि व आर्यिकाओं के प्रति महान् आस्था है और समाज उनकी तरफ मार्गदर्शन के लिए लालायित रहती है।

आर्यिका रत्नमती माता जी एक पूर्ण धर्मनिष्ठ साध्वी हैं, उन्होंने अपने गृहस्थ-जीवन में धर्म के प्रति प्रगाढ़ आस्था रखते हुए अपने समस्त बालक-बालिकाओं में इस तरह के संस्कार भरे कि आज उनके पुत्र व पुत्रियों में दो महान् आर्यिका पूज्य ज्ञानमती माता जी व पूज्य अभयमती माता जी के रूप मे और श्री रवीन्द्र जी तथा बहिन मालती व माधुरी ने ब्रह्मचर्य व्रत लिया और वे समाज की महान् सेवाएँ कर रही हैं।

पूज्य ज्ञानमती माता जी ने सारे भारतवर्ष में साहित्य के माध्यम से, ज्ञान ज्योति के माध्यम से व अपने बिहार के माध्यम से आर्ष परम्परा को अक्षुण्ण रखने में

जो महान् योगदान दिया है वह अविस्मरणीय रहेगा। उन्होंने जैन कासमोलोजी के प्रति विश्व का जो ध्यान आकर्षित किया है वह बीसवीं शताब्दी की महान् घटनाओं में गिनी जाएगी। जब भी मैं पूज्य रत्नमती माता जी का दर्शन करने गया उन्होंने हमेशा यही आशीर्वाद दिया कि मैं धर्म कार्य में लगा रहूँ और समाज की सेवा करूँ। पूज्य पिताजी जब दिल्ली मे सन् १९७९-८० में बीमार थे, और वे "आल-इण्डिया-इन्सटीट्यूट-आफ साइंस" मे भर्ती थे तब माता जी के दर्शन अक्सर किया करते थे। उन्होंने हमारे पिताजी को एवं सारे परिवार को अपने अन्तःकरण से जो मार्गदर्शन दिया, वह हमारा परिवार कभी नहीं भूल सकता। सरल हृदय माताजी के सम्मान में जो अभिनन्दन ग्रन्थ बना रहे हैं, वह एक स्तुत्य कार्य है और जिन लोगों ने भी इस कार्य मे सहयोग दिया है, उन सबको मैं हृदय से धन्यवाद देता हूं और आशा करता हूँ कि समाज में पूज्य रत्नमती माता जी के अमिट गुणों की छाप जैन-जाति के साथ-साथ अन्य सब लोगों पर भी पड़े, और वे सब लोग अपने जीवन को उज्ज्वल महान् बनाने में सफल होवें।



हार्दिक मंगलकामना

श्री त्रिलोकचन्द कोठारी, कोटा
महामन्त्री, भारतवर्षीय दि० जैन महासभा

परमपूज्य आर्यिका १०५ रत्नमती माता जी के अभिनन्दन के लिये हमारी हार्दिक मंगल कामना स्वीकार करें।

बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह व ममता से रहित, आडम्बरहीन, सरल, धैर्यशील, इन्द्रिय सुखों की लिप्सा से दूर, राग-द्वेष मोह-माया-अहंकार एव कषायों के आवेश से विरत, ज्ञान ध्यान में लीन, परोपकार की साक्षात् मूर्ति पूज्य रत्नमती माता जी के चरणों में मेरा सविनय शत-शत वन्दन।

वात्सल्यमयी करुणा मूर्ति माता जी जिन्होने आर्यिकारत्न ज्ञानमती जी, श्री अभयमती जी, ब्रह्मचारी रवीन्द्र कुमार जो, कुमारी मालती, माधुरी आदि त्यागी व्रतियों को जन्म देकर समाज का बहुत बड़ा उपकार किया है, ऐसे आदर्श परिवार की जननी पूज्य माता जी शतायु होकर भव्य जीवों के अभ्युत्थान एवं जिनवाणी की रक्षा के साथ-साथ आत्मकल्याण कर परमस्थान प्राप्ति की साधना में सफल हों यही मेरी जिनेन्द्र प्रभु से प्रार्थना है।





विनयाञ्जलि

श्री अमरचन्द पहाड़िया, कलकत्ता
अध्यक्ष, दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर

पूज्य माताजी का उपकार व अवदान समाज में बहुत ही श्रद्धा के साथ स्वीकारा जा रहा है। वे अपना सम्पूर्ण जीवन समाज हित में अर्पित कर रही हैं। जैन दर्शन और संस्कृति की मर्मज्ञ विदुषी होने के साथ ही न्याय, व्याकरण, भूगोल एवं खगोल क्लिष्ट एवं अनेकशः उपेक्षित विषयों पर ग्रन्थ रचना के साथ ही आधुनिक शैली में सरल, सरस एवं बोधगम्य आर्ष परम्परानुकूल नाटकों एवं काव्यों का सृजन कर आपने अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया है।

ऐसी कर्ममयी भाग्यशालिनी मां बहुत कम ही होती हैं जिनकी सन्तानें आज समाज और धर्म मे सक्रिय रूप से संलग्न हैं। यह तो प्रायः निश्चित ही है कि माता-पिता के संस्कारों एवं विचारों की छाप सन्तान पर जरूर पड़ती है क्योंकि मोहनी, मैना और आपका इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। आप लोग समाज को व्यापक धर्म ध्यान दे रहे है जो बहुत ही प्रशंसनीय है। जम्बूद्वीप के निर्माण हेतु महती प्रेरणा, सुयोग्य निर्देशन एवं मंगल सांनिध्य प्रदान करना आपके विलक्षण एवं नितान्त मौलिक चिन्तन का द्योतक है। खुशी की बात है कि पू० आर्यिका ज्ञानमती माता जी के शुभाशीर्वाद से प्रवर्तित जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति अपने लक्ष्य और उद्देश्य में व्यापक सफलता प्राप्त की है।

ऐसे कर्ममयी माता जी के सम्मान में आपने जो अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन योजना को हाथ में लिया है वह वास्तव में सराहनीय है। यह ग्रन्थ उनके कार्य-कलापों के अनुरूप हो यही मेरी हार्दिक शुभकामना है।



शुभकामना

श्री शशिकान्त शर्मा

पूज्य आर्यिका माताजी एक परम एवं परम वीतराग अनुकरणीय चरित्र की देवी हैं उनके दर्शन मात्र से ही मनुष्य में अच्छे विचारों का उद्‌भव होता है। तब उनके विचारों तथा उनके द्वारा दिये गये ज्ञान का पालन करने से तो मनुष्य शीघ्र दैवी सम्पदा को प्राप्त होता है और शीघ्र समाज के लिये एक उपयोगी जीव बन जाता है।





लोकैषणा से दूर

डॉ० पन्नालाल साहित्याचार्य, सागर
अध्यक्ष, भा० दि० जैन विद्वत्परिषद

श्री १०५ आर्यिका रत्नमती जी, एक ऐसी आदर्श साध्वी हैं जिन्होंने संसार, शरीर और भोगों से निर्विण्ण रहने के संस्कार अपनी सन्तानों मे निहित किये हैं। जिनकी सन्तानों में श्री ज्ञानमती माताजी और अभयमती माताजी ये दो पुत्रियाँ आर्यिकाएँ हैं। कुमारी मालती और कुमारी माधुरी ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर रक्खा है। श्री रवीन्द्र कुमार जी शास्त्री भी बाल ब्रह्मचारी बनकर समाज सेवा में संलग्न है और दिगम्बर दीक्षा धारण करने की उत्सुकता रखते है। शेष पुत्र-पुत्रियाँ भी घर में रहती हुई आत्म साधना में लीन रहती हैं। यह कौलिक संस्कार ही समझना चाहिये कि इस प्रकार के विरक्तपरिणामी जीव एक ही माँ से समुत्पन्न हुए। इसी प्रकार पूज्य आचार्य विद्यासागर जी की भी कुलपरम्परा है कि पिता मुनि है, माता आर्यिका है, और स्वयं लघु बन्धुओं के साथ दिगम्बर दीक्षा धारण कर जन-जन का कल्याण कर रहे हैं। ये सब पूर्वभव के संस्कारी जीव एक कुल में उत्पन्न हुए हैं तथा इस भोगप्रधान युग में विरक्ति का आदर्श प्रदर्शित कर रहे हैं।

पूज्य आर्यिका रत्नमती जी बहुत ही सरल और शान्त स्वभाव वाली हैं। श्री १०५ आर्यिका ज्ञानमती माताजी के संघ में दो चार बार जाने का प्रसंग प्राप्त हुआ और इस वर्ष तो पर्युषण में दिल्ली जाने पर उन्हीं के संघ मे ठहरा था। १०-१२ दिन तक अनवरत श्री आर्यिका रत्नमती जी की शान्त प्रवृत्ति देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई थी। मुझे लगा कि इस युग में लोकैषणा से दूर रहने वाली इन जैसी साध्विओं का अस्तित्व विरल है।

आयोजकों ने अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित कर इनके अभिनन्दन का विचार प्रस्तुत किया और इस माध्यम से प्राचीनतम काल से लेकर अब तक की आर्यिकाओं का ऐतिहासिक तथा पौराणिक परिचय प्रकाशित करने का संकल्प किया, यह प्रसन्नता की बात है। अभिनन्दन की इस प्रशस्त वेला में पूज्य श्री १०५ आर्यिका रत्नमती माताजी के प्रति श्रद्धा सुमन समर्पित करता हुआ उनके दीर्घायुष्क होने की कामना करता हूँ।



विनयाञ्जलि

सेठ भगवानदास शोभालाल जैन, सागर

भारतीय संस्कृति धर्मप्रधान है। समय-समय पर हमारे देश में महान् विभूतियाँ उत्पन्न हुईं; जिन्होंने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अन्तर्गत देश एवं समाज में धर्म की जागृति कर तथा ज्ञान एवं वैराग्य का अलख जगाकर इस भौतिक संसार को असार एवं दुःखमय सिद्ध कर दिया है।

माताजी के परिचय का अध्ययन कर हमने समिष्टि में विशिष्टि को पाया। लौकिक-सांसारिक जीवन से ऊपर उठकर अध्ययन-मनन एवं चिंतन के फलस्वरूप जो वैराग्यपूर्ण जीवन को अपनाया और उसके अनुरूप गुणों का अभ्युदय उनकी सन्तानों पर भी पड़ा—यह उनके जीवन की विशेषता है।

"धर्म-धुरंधर, धर्मवीर: अरु धर्म-ध्यान के धारी।
सम्यग्,दर्शन-ज्ञान-चरित्र से; शिव-पद के अधिकारी।।"

इन्ही भाव-प्रसूनों के साथ माताजी के चरणों में विनयाञ्जलि सादर समर्पित है।



विनयाञ्जलि

श्री बद्रीप्रसाद सरावगी, पटना

प० पू० आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी सरीखे कई अमोलक रत्नों को पैदा करनेवाली माता का नाम तो रत्नमती सार्थक ही है। सन् १९७१ में प० पू० आचार्य श्री १०८ धर्मसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा लेकर और भी विशेषता प्राप्त कर ली, स्वपर आत्मकल्याण का मार्ग अपना कर मानव-जीवन सफल एवं सार्थक कर लिया।

प० पू० आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी के दर्शन तो पटना में एवं अन्यत्र कई जगह कई बार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और उनके विद्वत्तापूर्ण उपदेश सुनने एवं आहार दान देने का भी मौका मिला है लेकिन दुर्भाग्य से प० पू० रत्नमती माताजी का दीक्षा लेने के बाद उनके सम्पर्क मे रहने का मौका मेरे को नहीं मिल पाया लेकिन फिर भी उनके तपस्वी जीवन की गौरवगाथा तो सुनता ही रहता हूँ। इस अवसर पर मैं उनके पुनीत चरणों में सादर सविनय श्रद्धा, भक्तिपूर्वक विनयांजलि समर्पित करता हुआ भावना भाता हूँ कि प० पू० माताजी दीर्घ आयुष्य की भोक्ता होकर आत्म कल्याण करते हुए मानव जीवन को सफल करें।





चिरस्थायी वे क्षण

श्री कैलाशचन्द जैन सर्राफ, टिकैतनगर

यह बात मैंने स्वप्न में भी नही सोची थी कि मै अपनी पुत्रत्व भावना को सार्थक नहीं कर पाऊँगा। पिताजी की सेवा तो वहुत की और उनका लाड़ प्यार सब कुछ मैंने बड़े पुत्र होने के नाते प्राप्त किया अन्त मे उनकी समाधि बनाकर तो मानों मैंने सच्चा पितृऋण अदा किया था किन्तु माँ की सेवाओं का अवसर मुझे बहुत कम प्राप्त हो पाता है क्योंकि गार्हस्थिक व्यस्तता और मीलों की दूरी मुझे उस सौभाग्य से वंचित कर देती है।

यूं तो संयोग और वियोग दुनियां के चक्र हैं ही किन्तु कुछ क्षण चिर स्मृति के प्रतीक बन जाते हैं। माँ (रत्नमती माताजी) जो दीक्षा लेने से पूर्व मैना, मनोवती मालती आदि को उस मार्ग में जाने से रोकनी थीं। दीक्षा लेने के बाद तव मै बड़े दुःख के साथ माँ से कहने लगा कि दुनिया हमें क्या कहेगी। भाइयों ने शादी नही की। माँ का एक ही उत्तर मिला—सबकी होनहार सबके साथ है। इस उत्तर मे मुझे सन्तोष नहीं हुआ अतः मैंने सन् १९७४ मे (निर्वाणोत्सव के प्रसंग पर) दरियागंज बाल आश्रम में विशाल संघनायक आ० धर्मसागर महाराज से भी निवेदन किया— महाराज! हम क्या करें, दुनिया को क्या उत्तर दें? महाराज ने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा—

"तुम साधु नहीं बनो तो दूसरों को रोककर पाप बन्ध क्यों करो। दुनियां तो सबको कहती है कहती रहेगी। इसकी सुनने वाला व्यक्ति कभी अपना कल्याण नहीं कर सकता।"

आचार्यों की वाणी तो सत्य की कसौटी है वास्तव मे कल्याण का इच्छुक व्यक्ति किसी की नही सुनता कहने वाले मात्र पाप बन्ध करके रह जाते हैं। मैं देखता हूँ कि मेरे वे भाई बहन (रवीन्द्र, माधुरी आदि) माँ और गुरु दोनों ही सेवा का लाभ उठा रहे है। धन्य है उनका भी भाग्य। भगवान् उन्हें सहनशीलता और धैर्य प्रदान करें तथा मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं माँ या जगत्माँ माँ की वैयावृत्ति का सुअवसर शीघ्र प्राप्त कर सकूँ। अन्त में पू० श्री के चरणों में त्रिबार नमन।

शिक्षा का वरदान

श्रीमती चन्दारानी जैन
धर्मपत्नी श्री कैलाशचन्द जैन सर्राफ, टिकैतनगर

पू० आर्यिका श्री रत्नमती माता जी के बारे में कुछ शब्द लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। उनकी कूख तो धन्य है ही जिन्होंने महान् रत्नों को जन्म दिया था ही मैं भी अपने को धन्य समझती हूँ कि मुझे भी उनका वरदान सास के रूप में प्राप्त हुआ। उनसे प्राप्त शिक्षाओं के एक-एक अंश में मैं सूक्ष्म रहस्य खोजती हूँ तो वही रहस्य मेरे जीवन में सुखद आनन्द की अनुभूति देता है। मैं उन्हें श्रद्धा भक्ति पूर्वक नमन करते हुए भव-भव में उनके वरदहस्त की प्राप्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ।



श्रद्धा सुमन

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल
निदेशक एवं प्रधान सम्पादक, श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

आर्यिका रत्नमती माता जी के जब प्रथम बार दर्शन करने का सौभाग्य मिला तो उनके तपस्वी एवं त्यागमय जीवन को देख कर मन में उनके प्रति सहज श्रद्धा उमड़ आयी। आर्यिका रत्नमती जी वैसे आर्यिकारत्न ज्ञानमती जी माताजी की गृहस्थ अवस्था की माँ हैं लेकिन उन्होंने धार्मिक दीक्षा ज्ञानमती जी माताजी से ली है इसलिये उनके प्रति वे उतना ही आदर, सम्मान एवं विनय प्रदर्शित करती हैं जितना एक गुरु के प्रति शिष्या को होना चाहिये। आर्यिका रत्नमती से समाज स्वयं गौरवान्वित है कि उनके परिवार के सबसे अधिक सदस्य निवृत्ति मार्ग में आगे बढ़ चुके हैं। घर का ऐसा वातावरण पैदा करना भी प्रत्येक के लिये सहज कार्य नही है। आज तो उनका पूरा परिवार ही जैनधर्म, साहित्य एवं संस्कृति की सेवा में लगा हुआ है। और वह भी पूरे मनोयोग से। उन्होंने वर्तमान युग को एक चुनौती दी है कि माता-पिता चाहे तो अपनी सन्तान को भगवान् महावीर के आदर्शो के प्रति सहज श्रद्धा भर सकता है, समाज सेवा के भाव भर सकता है तथा धर्म एवं संस्कृति पर मर मिटने की तीव्र इच्छा पैदा कर सकता है। माता जी रत्नमती जी ने यह सब कार्य किया है इसलिये उनका जीवन अभिनन्दनीय है। उन्होंने अपनी पुत्री से दीक्षा लेकर तथा



उन्हीं के संघ में रह कर एक आदर्श उपस्थित किया है। "तपसि वयः न समीक्षते" अर्थात् तपस्या में आयु नहीं देखी जाती इस उक्ति का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

उनका अभिनन्दन ग्रंथ निकालना एक अभिनन्दनीय का अभिनन्दन है जिनके लिये अभिनन्दन समिति की जितनी प्रशंसा की जावे वही कम रहेगी। मैं उनके पावन चरणों में अपने श्रद्धा सुमन समर्पित करता हुआ उनके यशस्वी जीवन की सुरभि चारों ओर फैल कर समस्त समाज को सुरभित बनावे यही मंगल कामना करता हूँ।



विनम्र श्रद्धा-प्रसून

डॉ० प्रेमचन्द जैन

अध्यक्ष, राजनीति विभाग, शासकीय महाविद्यालय, गंजबासोदा

प० पू० आर्यिका रत्नमती जी की परम सौम्य छवि के दर्शन करके हृदय अनायास ही परम श्रद्धा से विनयावभूत हो जाता है और सहसा आचार्यप्रवर मानतुंग का 'स्त्रीणां शतानि शतशो' वाले पद्य की पंक्तियाँ स्मरण हो उठती हैं :—

रत्नमती माता के कोख से आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी ने जन्म लिया जो आज श्रुतसेवा, धर्म प्रभावना, आगम और आयतन की रक्षा हेतु अत्यन्त दृढ़ता से संलग्न हैं। समाज इसके लिये युगयुगान्तर तक उनका ऋणी रहेगा।

माँ की कोख से ही संस्कार प्राप्त आपकी एक अन्य पुत्री आर्यिका अभयमती जी भी धर्म प्रचार में रत है। दो अन्य पुत्रियाँ और एक पुत्र आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेकर धर्माराधना और उसके प्रचार-प्रसार के लिये समर्पित है।

ऐसी परम विदुषी आर्यिका रत्नमती जी के चरणों में शत-शत वंदन।





विनयाञ्जलि

श्री अनन्तवीर्य जैन, हस्तिनापुर

धन्य मात हे, रत्नमती !

पूज्य रत्नमती माता जी का मंगल सांनिध्य प्राप्त करने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। सन् १९७७ फाल्गुन के महीने में मै सपरिवार हस्तिनापुर तीर्थ क्षेत्र पर सिद्धचक्र मण्डल विधान करने के निमित्त आया था। पू० आर्यिका श्री ज्ञानमती माता जी ने मेरे निवेदन को स्वीकार करके संघ सानिध्य में ही विधान करवाया। तभी से मेरा संघ के साथ निकटता से परिचय हुआ। पूज्य रत्नमती माताजी को मैंने काफी



नजदीकी से देखा है। शांति और सरलता की प्रतिमूर्ति इस युग में ऐसी माँ मिलना सन्तानों के लिए भी सौभाग्य का विषय है। मैंने उस समय से हस्तिनापुर में ही अपना निवास बना लिया है और अब तो मुझे प्रतिदिन प्रायः आपके दर्शन प्राप्त होते हैं। तीव्र शारीरिक अस्वस्थता होते हुए भी आप निरन्तर अपनी दैनिक क्रियाओं में सावधान रहते हुए किसी प्रकार की क्रियाओं में शिथिलता नहीं आने देतीं। धन्य है आपका त्याग और मातृत्व। जिसके प्रति मैं सदैव नतमस्तक हूँ।



विनयाञ्जलि

श्रीमती आदर्श जैन
धर्मपत्नी श्री अनन्तवीर्य जैन, हस्तिनापुर

मुझे बचपन से ही साधुओं के प्रति बड़ा विश्वास और आदर की भावना रही है यही कारण है कि उनके सांनिध्य से एक अजीब आनन्द और शान्ति की अनुभूति होनी है। यह तो मेरे लिए और भी अधिक सौभाग्य का विषय है कि हस्तिनापुर में रहकर मुझे ज्ञानमती माताजी के निमित्त से अधिकतर धर्म लाभ मिलता रहता है। इनके ही संघ में मैंने रत्नमती माताजी के भी दर्शन किये लेकिन उनकी वाणी सुनने का सौभाग्य बहुत कम प्राप्त हुआ। मातृत्व गुण की धनी पू० रत्नमती माताजी शांति पूर्वक अपने धर्मध्यान में लीन रहती हैं बाह्य प्रपंचों से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। वास्तव मे इस पंचमकाल में भी ऐसी-ऐसी महान् विभूतियाँ धरातल पर विद्यमान हैं तभी तो विश्व में जैनधर्म की आवाज गूँज रही है। पू० माता जी इसी प्रकार से अपनी संयम साधना करती हुई हम सबको चिरकाल तक शुभाशीर्वाद प्रदान करती रहें यही मंगल कामना है।



विनयाञ्जलि

श्री मोतीचन्द कासलीवाल, दिल्ली

श्री १०५ माता रत्नमती जी का जीवन स्वयमेव निज के अपूर्व व्यक्तित्व और कृतित्व को झलकाता है। वर्तमान में हस्तिनापुर में बन रही 'जम्बूद्वीप रचना' और उसी का प्रतिरूप "जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति" जो देश के कोने-कोने में भ्रमण करती हुई जैनधर्म का प्रचार-प्रसार कर रही है। ये सब आपकी ही अमूल्य कृतियाँ हैं। एक कवि ने कहा है—

पुण्यतीर्थे कृतं येन तपः क्वाप्यति दुष्करम् ।
तस्य पुत्रो भवेद्वश्यः समृद्धो धार्मिकः सुधी ॥

अर्थात् जिसने पूर्व जन्म में या इस जन्म में किसी पुण्य तीर्थ पर या धार्मिक आयतन पर कोई विशेष तपस्या किया था जिसके प्रभाव से उन्हें समृद्ध, धार्मिक और बुद्धिमान पुत्र प्राप्त होता है। उसी के प्रतिफल स्वरूप आपने भी ज्ञानमती माता जी जैसी कन्या को जन्म दिया जिनके सर्वतोमुखी कार्यकलापों से आज जनमानस परिचित है। अतः आपके अभिनन्दनीय जीवन मे चार चाँद लग जाते है।

आपकी शान्त मुद्रा, सहनशीलता तथा रत्नत्रय की सतत आराधना का अवलोकन कर चरणों में हृदय श्रद्धा से नत हो जाता है।

शतशः नमन

श्री मनोज कुमार जैन, एडवोकेट, मेरठ

जम्बूद्वीप सेमिनार—८२ में मुझे आ० रत्नमती माताजी के दर्शन का सौभाग्य मिला। मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि माताजी स्वयं तो दिगम्बर परम्परा में दीक्षित हैं ही साथ ही साथ उनके पुत्र पुत्रियाँ भी इसी परम्परा में साधनापथ पर उनके आगे पीछे चल रहे हैं। धन्य है उनका मातृत्व, परिवार संचालन एवं संस्कारित करने की शैली एवं त्याग।

मैं उनके चरणों में शतशः नमन करता हूँ।

अनेकशः नमन

श्री प्रद्युम्न कुमार जैन, मेरठ

जम्बूद्वीप सेमिनार—८२ में मुझे आ० रत्नमती माताजी के प्रथम दर्शन का सुअवसर मिला। मेरे जीवन की यह अविस्मरणीय घटना थी। अनेकशः मैने विद्वानों से प्रवचन एवं उपदेश सुने थे किन्तु इतनी निकटता से कुछ समय गुरु के समीप बैठने का यह शायद प्रथम अवसर था। जिनदर्शन एवं धर्माराधन की जितनी प्रेरणा मुझे उस दिन मिली शायद ही कभी मिली हो। यह शायद उनके त्याग एवं साधनामय जीवन का ही फल था। गुरु सान्निध्य का प्रताप मुझे उसी दिन ज्ञात हुआ। मैं उन सहित सभी आर्यिकाओं के चरणों मे अनेकशः नमन करता हूँ।

विनयाञ्जलि

श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन (कम्मोजी), दिल्ली

रत्नत्रय के खजाने से युक्त माता रत्नमती जी इस देश की प्रथम महिलारत्न हैं जिन्होंने स्वयं के द्वारा उत्पन्न किये हुए रत्नों को ही नहीं बल्कि अपने आपको भी धर्म के लिए अर्पण कर दिया। आचार्य श्री उमास्वामी का सूत्र "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" आपके जीवन के लिए स्पष्ट रूप से सार्थक दृष्टिगत होता है। क्योंकि प्रथमतः आपने अनेक जटिल समस्याओं तथा विरोधों के बावजूद अपनी कन्या मैना को धार्मिक पथ पर कदम रखने मे उन्हें सहयोग दिया अनन्तर आपके वृद्धिगत वैराग्य के सुअवसर पर मैना ने ज्ञानमती के रूप में आपको जैनेश्वरी दीक्षा लेने में पारिवारिक मोह और विरोध को सहन करने मे आपका अपूर्व सहयोग दिया। मैं तो इसे कई पूर्वजन्मों के संस्कार मानता हूँ।

आपने अपने स्वकीय जीवन से कुल, धर्म एवं समाज को समुन्नत करने के लिए ही मानो अयोध्या के निकटस्थ ग्राम में जन्म लिया। मैं आपके दीर्घ तथा स्वस्थ जीवन की कामना करता हुआ नतमस्तक हूँ। आपके शुभाशीर्वाद से मुझे भी रत्नत्रय पथ का पथिक बनने का सौभाग्य प्राप्त हो।



वन्दना

श्री प्रद्युम्नकुमार जैन, टिकैतनगर

संसार में अनेक प्राणी जन्म लेकर मरण को प्राप्त होते हैं किन्तु कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो समाज की, राष्ट्र की, धर्म की सेवा करके अपना जीवन तो सफल करते ही है किन्तु समाज एवं धर्म तथा राष्ट्र का कल्याण कर जाते हैं। वर्तमान में परमपूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी का इन सीमित शब्दों में अनुबद्ध अभिनन्दन ग्रंथ की योजना सराहनीय तो है ही किन्तु वास्तव में इनके गुणों की कीमत इतने मात्र से नही आंकी जा सकती। यह तो केवल नियोगपूर्ति है।

आज से १०० वर्ष पूर्व वर्तमान में लुप्तप्रायः मुनि परम्परा को साकार एवं अक्षुण्ण बनाने वाले नररत्न आ० श्री शांतिसागर महाराज ने जन्म लिया जिसके प्रतिफलस्वरूप आज हमें सुलभतया मुनियों के दर्शन प्राप्त होते हैं तथा उन्हीं का यह उपकार है कि दिगम्बर साधु स्वतन्त्रता पूर्वक सारे देश में निर्बाध रूप से विहार

करते हैं। उसी प्रकार आज से ५० वर्ष पूर्व आपने ऐसी कन्या को जन्म दिया जिन्होंने ब्राह्मी और सुन्दरी का मार्ग दिखाकर कुमारी कन्याओं के लिए भी वैराग्य का पथ प्रशस्त किया। वह समय यह था जब नारी विधवा हो जाने के बाद दुःख और विषाद से युक्त अपने जीवन को बिल्कुल निराश्रय समझती थी। यदि उनमें से किसी के हृदय में कदाचित् वैराग्य की प्रभा झलकती थी तो वे अपने आपको धर्म का आश्रय देकर दीक्षा आदि व्रतों को धारण करती थी। कुवारी कन्या को तो घर से बाहर भी नही निकलने दिया जाता था ऐसे समय में आपके संस्कारों से संस्कारित बालिका मैना ने १८ वर्ष की अल्पायु में ही सन् १९५२ में परिवार तथा समाज के घोर विरोधों के बावजूद भी अपने को आत्म कल्याण के मार्ग पर अग्रसर किया। उस समय का तनाव पूर्ण भयानक दृश्य भी अद्वितीय था जिसने भी वह राग और वैराग्य का विराट् युद्ध देखा उनके दिल कांप गये किन्तु मैना के आत्मबल के समक्ष सबके प्रयत्न असफल रहे। आज भी उनका आत्मबल और संयम का प्रभाव ही धार्मिक तथा सामाजिक जगत् को नारी के प्राचीनकालीन महत्त्व सिद्ध करने को बाध्य कर देता है। आपकी छत्र-छाया अभी भी उन्हे प्राप्त है किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि आप मां के स्थान पर न होकर उनका शिष्यत्व स्वीकार कर उन्हें प्रथम नमस्कार करती हैं। दस धर्मो में उत्तम मार्दव धर्म का आपने पूर्णरूपेण आश्रय लिया है इसीलिए रत्नों की खान होते हुए भी लेशमात्र अभिमान आपके जीवन पक्ष में दृष्टिगत नही होता है।

ऐसी तपःपूत आर्यिका माताजी रत्नमतीजी के चरणों मे सादर वन्दन करता हू।

श्रद्धा सुमन

श्री जयनारायण जैन, मेरठ

महामंत्री, उत्तर प्रदेश दि० जैन महासमिति

त्याग व संयम की दृष्टि से मुनि, आचार्य व आर्यिका का पद ही अभिनन्दन ग्रन्थों से बढ़कर अधिक वंदनीय व महत्त्व का है। पुनरपि उनका अभिनन्दन ग्रन्थ द्वारा अभिनन्दन करना प्रशंसनीय बात है। पूज्य माताजी अत्यन्त शांत स्वभाव, त्याग, संयम व ध्यान की मूर्ति हैं। सबसे अधिक महत्त्व की बात यह है कि पूज्य माताजी की कुक्षि से ही समाज का बहुमूल्य रत्न ज्ञान की निधि विदुषीरत्न पूज्य माताजी आर्यिका श्री ज्ञानमतीजी का जन्म हुआ है। जिनकी प्रेरणा से ही हस्तिनापुर क्षेत्र मे जैन इतिहास के जागरण के रूप में जम्बूद्वीप, सुमेरु पर्वत व त्रिलोक शोध-संस्थान का निर्माण हुआ है और हो रहा है। इस अवसर पर मैं पूज्य माताजी के चरणों में इन श्रद्धा के सुमनों के द्वारा अपनी विनयाञ्जलि-समर्पित करता हूँ।

विनयाञ्जलि

डॉ० सुशील जैन, मैनपुरी

प्रथमानुयोग के ग्रन्थों में ऐसे उदाहरण हमें अनेकों स्थलों पर पढ़ने को मिलते हैं जहाँ समस्त परिजनों के धर्म मार्ग में अग्रसर होने की बात आती है वर्तमान युग में उन घटनाओं की स्मृति कराने वाला 'मोहिनी' का यह मोहक परिवार उन्हीं की भाँति धर्म मार्ग पर अग्रसर है। और न केवल स्वयं का उपकार किया है वरन् दिगम्बर समाज के लिए एक ऐतिहासिक कार्य किया है। माँ और बेटी दोनों ही आर्यिका के रूप में प्रस्तुत हों ऐसा वर्तमान में अनूठा ही देखने को मिला है। वर्तमान के इस भोग, फैशनपरस्त आधुनिक युग मे जब नारी पथभ्रष्ट होकर आधुनिकता व पाश्चात्य संस्कृति के भोगप्रधान प्रवाह मे बहकर जहाँ दिग्भ्रमित हो रही है वहाँ ऐसी नारियाँ वंदनीय, अभिवंदनीय स्तुत्य है जिनकी कोख से जन्मे रत्न आज हम सबको दिशा प्रदान कर रही हैं। आचार्य मानतुग के 'स्त्रीणां शतानि शतशोः' को स्मरण होकर यह सच ही लगता है कि स्त्रियाँ अनेकानेक सन्तानों को जन्म देती है पर ऐसी माँ और ऐसी सन्तानें विरली ही होती हैं जैसी मोहिनी और मैना अर्थात् रत्नमती और ज्ञानमती।

सरल स्वभाव, शांत, गंभीर चेहरे पर ऐसा भोलापन जो माँ की ममता तो लिए है पर समता के भाव को और भी आगे किए हुए हैं। अनेकों बार अनेकों स्थलों पर उनके दर्शन कर अपने को सौभाग्यशाली माना, पर कभी भी न कषाय न कुछ सदैव चिंतन, आत्मध्यान, धर्मध्यान। ऐसी स्वपर उपकारी माँ रत्नमती के चरणों में अपनी विनयांजलि अर्पित करते हुए मैं अपने को कृत-कृत्य मानता हुआ शतशः वंदन करता हूँ।



विनयाञ्जलि

श्री सुरेन्द्रकुमार रानीवाला, जयपुर

इस संसार में करोड़ों लोगों ने जन्म लिया। करोड़ों स्वर्गवासी हुए लेकिन अमर वही होते है जो अपने जीवनकाल में देश व समाज की सेवा कर जाते हैं। यों मनुष्य की आयु १०० वर्ष मानी जाती है और कुछ उससे पहले भी चले जाते हैं लेकिन सत्कार्य करने वालों को लोग भूलते नहीं हैं। वे मर कर भी अमर होते हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती जी का गौरव करने हेतु अभि-नन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है। आपने श्री ज्ञानमती माता जैसी आर्यिकारत्न

को जन्म दिया है। और ज्ञानमती माता ने जो साहित्य लिखा है, वह अमर रहेगा, इसमें कोई सन्देह नही।

किसी कवि ने कहा है कि—

गुण गौरव की कोमल कलियाँ
नित नूतन जीवन भरती।
खुशबूदार प्रेम मे मानव
मन को आह्लादित करतीं।

ठीक उसी प्रकार श्री रत्नमती माता जी का जीवन मानवों को सत्य, प्रेम व करुणा की ओर आकर्षित करता है। वे सत्पथ की ओर अग्रसर होने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

जिसकी हम सेवा करते हैं, उसे अपने से अलग नही समझते, मानों हम अपनी ही सेवा करते है। इसलिए अहंकार का भी लेश नहीं रहता। सेवा मे हमने किसी दूसरे पर उपकार नही किया, अपनी ही सेवा करते है तो अहंकार को स्थान ही कहाँ? इस तरह जहाँ निरहंकार सेवा की जाती है, वहाँ उसका बोझ नहीं रहता, थकान नही रहती।

महिलाओं पर बड़ी जिम्मेदारी होती है। ऋषि विनोबा जी कहते हैं कि भारत की स्त्रिया अपनी आत्मशक्ति का भान रखकर सामने आ जायें। इसके आगे नारियों के हाथ में समाज का अकुंश रहेगा। उसके लिए नारियों को तैयार होना पड़ेगा। स्त्रियाँ शांति का काम उठा लेंगी, तो दुनिया बदल जायगी और आज देश और दुनिया के सामने जो मसले उपस्थित है, उनसे मुक्ति होगी। पुरुषों से यह सब होने वाला नहीं है। महिलाएँ अपनी मातृशक्ति के द्वारा करुणा का राज्य स्थापित कर सकती हैं। श्री रत्नमयी माता जी का जीवन धन्य है। वे आदर्श माता हैं।

मै उनके चरणों में अपनी आदरांजलि व्यक्त करता हूँ।



प्रणामाञ्जलि

पं० सुमेरुचन्द्र दिवाकर, सिवनी

इस दु:षम पंचमकाल में असंयम पोषक सामग्री की बहुलता पाई जाती है। ऐसे युग मे आर्यिका माता रत्नमती जी ने अपने को रत्नत्रयमती बनाकर आत्म-कल्याण किया यह अपूर्व बात है। ऐसी पवित्रात्मा के चरणों को सविनय प्रणाम है।



अवाग्विसर्गं वपुषा निरूपयन्ती

डॉ० रमेशचन्द्र जैन
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, वर्द्धमान कॉलेज, बिजनौर

आर्यिकारत्न रत्नमती माता जी के दिल्ली एवं हस्तिनापुर में अनेक बार दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके मुखमण्डल पर सदैव ऐसी सौम्यता एवं वीतरागता के दर्शन किये कि मन उनके चरणों में झुक गया। दि० जैन त्रिलोक संस्थान की अनेकविध प्रवृत्तियों के बीच मैंने उन्हे निर्लिप्त पाया। वे "जल तैं भिन्न कमल" की उक्ति को चरितार्थ करती हैं। उनके वैराग्यमय संस्कारों के सुपरिणाम स्वरूप ही उनका परिवार त्याग मार्ग की ओर अग्रसर हुआ। ऐसी मातायें ही संसार को सन्मार्ग पर लगा सकती हैं। बिना कुछ बोले ही वीतरागता का उपदेश देने वाली माँ का उनकी सन्तति अभिनन्दन करे, यह स्वाभाविक ही है। इस सुअवसर पर मैं उनके चरणों में एक प्रणाम समर्पित करता हूँ।



विनयाञ्जलि

पं० श्रेयांसकुमार जैन शास्त्री, एम० ए०, किरतपुर

पूज्य आर्यिका श्री गृहावस्था की वह भाग्यशालिनी अनूठी माँ है जिनकी दो पुत्री रत्नों (मैना और मनोवती) ने संसार और शरीर के स्वभाव का खूब बारीकी से चिन्तन करते हुए भरी यौवनावस्था में लुभावने सांसारिक भोग-विलासों से विरक्त होकर आत्म-कल्याणकारी आर्यिका-दीक्षा धारण की। जिनमे पूज्य आर्यिका ज्ञानमती पूर्व जन्मोपार्जित सर्वतोमुखी प्रतिभा की धनी है। उनके द्वारा निर्मित एवं अनूदित विशाल सर्वोपयोगी साहित्य उनकी अद्वितीय प्रतिभा का स्वयं परिचय दे रहा है।

उनके पुत्र रत्न श्री रवीन्द्रकुमार जी शास्त्री एवं पुत्रीरत्न कु० मालती शास्त्री और कुमारी माधुरी शास्त्री ने आजन्म के लिये निर्मल ब्रह्मचर्यव्रत से अपने जीवन को अलंकृत किया है। वैराग्यपूर्ण जीवन की ऐसी आदर्श परम्परा संसार में बिरले ही परिवारों मे मिलती है। इन दीक्षाओं की सतत परम्परा ने मोहिनी माँ के वैराग्यमय अन्तःकरण को वैराग्य की दिशा में झकझोर डाला और संसार की लुभावनी मोहिनी माया उन्हें अब और अधिक मोहित न रख सकी। अन्ततोगत्वा अनेक त्यागियों की माँ ने स्वयं भी सन् १९७१ में परमपूज्य आचार्य श्री धर्मसागर महाराज जी से अजमेर में आत्मकल्याण हेतु संसार की मोहिनी माया को लात मारकर आर्यिका-दीक्षा धारण



कर ली। तभी से वे धर्म की धुरा को अत्यन्त दृढ़ता से धारण करते हुए आत्म-कल्याण में सतत अग्रसर हो रही हैं।

मैं अभिनन्दन या पूज्य आर्यिका श्री के चरणों में अपनी सभक्ति विनयाञ्जलि समर्पित करते हुए श्री वीर प्रभु से उसके धर्ममार्ग प्रदर्शक दीर्घायु जीवन की मंगल-कामना करता हूँ।



विनयाञ्जलि

श्री कैलाशचन्द्र जैन, दिल्ली

पूज्य १०५ आर्यिका रत्नमती माताजी वास्तव में हर प्रकार से आदर्श माता जी हैं। गृहस्थ जीवन में उन्होंने ऐसी आदर्श सन्तानों को जन्म दिया जो आज जैन समाज में धर्म, तप, अध्यात्म की ज्योति प्रज्ज्वलित कर रही हैं। श्री १०५ पूज्य आर्यिका-रत्न ज्ञानमती माताजी, १०५ पूज्य आर्यिका अभयमती माताजी, धर्मालंकार कुमारी मालती शास्त्री, कुमारी माधुरी शास्त्री, श्री रवीन्द्रकुमार जी शास्त्री सब के सब अति-प्रतिभाशाली हैं तथा जिन्होंने समाज हित में ही अपना जीवन लगा दिया है।

आर्यिका जीवन में भी आप एक प्रशांत मूर्ति हैं तथा धैर्य, साहस तथा शांति तो मानो आपमें हर समय विराजते है ऐसी पुण्यमयी माताजी को हमारा शतशत प्रणाम नमोऽस्तु।



विनयाञ्जलि

श्री गणेशीलाल रानीवाला, कोटा

नारी सृजन का आधार है चाहे वह सृजन सृष्टि का हो, चाहे किसी समाज का या चाहे परिवार का। इस सत्य को समग्र रूप में आर्यिका श्री रत्नमती माताजी ने साकार किया है। गृहस्थ जीवन भी आपका सम्पूर्ण रूप से धर्म के निमित्त समर्पित था। धर्म के प्रति इस समर्पण को आपने स्वयं तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि सम्पूर्ण परिवार को धर्ममय बना दिया है। आपके परिवार में धर्म की ज्योति इस प्रकार प्राप्त हो गई है कि आपकी प्रत्येक सन्तान धर्म की प्रखर ज्योति के रूप में प्रतिष्ठित हो गई है। आपकी पुत्री आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी से भला कौन परिचित नहीं है जो आज धर्म का ज्योति स्तम्भ बनकर जन-जन की आत्मा को धर्म, ज्ञान के आलोक से भर रही हैं।

आपके द्वारा स्थापित पारिवारिक परम्परा जो ज्ञान एवं साधना की सुरभि से आप्लावित है, का ही यह सुफल है कि आपकी सन्तान धर्म के लिए सम्पूर्ण समर्पित है। यह परम्परा निश्चित रूप से सभी जैनधर्मावलम्बियों की प्रेरणा का स्रोत बनकर रहेगी। धर्म के प्रति ऐसी अगाढ़ आस्था एवं समर्पण अन्यत्र दुर्लभ है। ऐसी गौरव मंडित विभूति को अपनी विनयांजलि समर्पित करते हुए मैं स्वयं को अत्यन्त सौभाग्यशाली मानता हूँ।



विनयाञ्जलि

श्री प्रकाशचन्द जैन, कोटा

पूज्या श्री १०५ श्री आर्यिका रत्नमती माताजी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन कर रहे हैं, पढ़कर अपार हर्ष हुआ।

जिस माँ ने अपने बच्चों को मोह त्याग कर मोक्षमार्ग पर लगा दिया तथा स्वयं भी उसी मार्ग पर चलकर आर्यिका दीक्षा ले ली, ऐसी माता आर्यिका रत्नमती के चरणों को मेरा शतशत वन्दन। पूज्य माताजी की एक और देन—पूज्यनीया माताजी श्री ज्ञानमती जी तथा श्री अभयमती जी समाज के सामने हैं। ऐसी माता श्री रत्नमती जी मोक्षमार्ग की साधना करते हुए हमें भी चिरकाल तक आशीर्वाद देती रहें यही भगवान् वीर प्रभू से याचना है।



विनयाञ्जलि

श्री राजकुमार सेठी, डीमापुर

वर्तमान में परमपूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी समस्त मानव समाज की एक विभूति हैं। इस विभूति की माँ बनने का सौभाग्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी को ही है। आपकी तेरह सन्तानों में दो ने आर्यिका व्रत ग्रहण किया है। २ बाल ब्रह्मचारिणी हैं एवं एक बाल बालब्रह्मचारी हैं। आपके द्वारा उत्पन्न किये गये धार्मिक वातावरण का ही यह फल है। इस तरह अनेक व्यक्तियों की माँ आप स्वयं ही आर्यिका रत्नमती बन गई हैं। धन्य है ऐसी माँ!

आप शतायु हों! आपके उपदेश से समस्त मानव आत्म कल्याण करें ऐसी मेरी मनोकामना है।





मंगलकामना

श्रीमती राधा रानीवाला, कोटा

महान् पुरुषों के अनेक महान् लक्षणों में से एक सहज सुलभ लक्षण यह है कि उनके सान्निध्य मात्र से दूसरों को सुख शांति एवं प्रेरणा प्राप्त होती है। ऐसा ही सुख मुझे सदैव आदरणीय आर्यिका श्री रत्नमती माता जी के सान्निध्य में प्राप्त हुआ है। उनका मृदुत्व एवं आत्मीयतापूर्ण व्यवहार बरबस ही मुझे उनके प्रति श्रद्धा से अभिभूत करता रहा है।

आपका धर्म के लिए महान् त्याग है। आपने स्वयं को ही नही बल्कि अपने सम्पूर्ण परिवार को लोक कल्याण के लिए समर्पित कर दिया है। आज आपके सभी पुत्र एवं पुत्रियाँ जैनधर्म के रत्न हैं। परम विदुषी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी जो आपको पुत्री हैं को कौन नही जानता। वे एक सुप्रसिद्ध लेखिका, विचारक एव साधिका हैं। आपके मार्ग दर्शन में जेनधर्म की उन्नति के लिए कई महान् योजनायें चल रही हैं।

आपकी साधना और समर्पण जैनधर्मावलम्बियों के लिए सदैव आदर्श, अनुकरणीय एवं प्रेरणास्पद रहेगा। आप चिरायु हों और लोक कल्याण मे निरन्तर प्रवृत्त रहते हुए हमारा मार्ग दर्शन करती रहे, यही कामना है।



आदर्श साध्वी

डॉ० हरीन्द्रभूषण जैन
मंत्री, अ० भा० दि० जैन विद्वत्परिषद्, उज्जेन

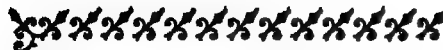
कोई भी व्यक्ति आदरणीया आर्यिका प्रवरा रत्नमतीजी के जीवन चरित्र को पढ़कर प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। जिसने ज्ञानमती माताजी जैसी सर्वमान्य विभूति विश्व को प्रदान की और जिसने तीन चमकते-दमकते सितारे ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणियों के रूप में समाज को समर्पित किये वह आत्मा साधारण नहीं होनी चाहिये, प्रत्युत् सौभाग्यशालिनी एवं भव्य !

मेरी इस अवसर पर कामना है कि आर्यिका रत्नमतीजी शताधिक वर्ष का जीवन जीते हुए भारत राष्ट्र में जैनधर्म की ज्योति को सदा प्रज्ज्वलित रखने में तत्पर हों।

'शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमुवसन्तान्'—ऋग्वेद १०-१६१-४







शत-शत नमन

श्री संतोष कुमारी बड़जात्या, नागौर

पूज्य माता रत्नमतीजी के सान्निध्य लाभ का सुअवसर तो मुझे नहीं मिला परन्तु जैन समाचार पत्रों द्वारा व सम्यग्ज्ञान पत्रिका के माध्यम से आपसे अवश्य परिचित हूँ।

तपोनिधि, अध्यात्ममूर्ति, परम कारुण्यशीला पू० माताजी रत्नमतीजी ने पूर्व भव में महान् पुण्य संचय किया था उसी के प्रभाव से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्-चारित्र की ज्योति प्रकाशित की है व जिनका जीवन मात्र परोपकार में ही बीत रहा है। ऐसी रत्नमती माताजी के चरणों में मेरा शतशत वंदन है।



विनयाञ्जलि

श्री छोटेलाल बरैया, उज्जैन

पूज्य १०५ श्री रत्नमती माताजी एक वयोवृद्ध साध्वी हैं निरन्तर तप साधना में रहकर अपने जीवन को पावन बनाने में निरत रह रही हैं। उनके जीवन की यह विशेषता है कि वे किसी भी प्रकार के प्रपंचों में न रहकर अपनी दैनिक क्रिया में निरत रहकर आत्म समुज्ज्वल बना रही हैं। ऐसी पवित्रात्मा एवं अभिनन्दनीय माता के चरणों में अपनी भक्त्याञ्जलि अर्पण कर अपने आपको कृतकृत्य मानता हूँ।



विनयाञ्जलि

श्री सुकुमारचन्द्र जैन, मेरठ

महामंत्री, दिगम्बर जैन महासमिति, दिल्ली

श्री १०५ पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी ने अपने गृहस्थ जीवन का सफलतापूर्वक यापन करने के पश्चात् अपनी आत्मजा श्री १०५ आर्यिका ज्ञानमती माताजी से दीक्षा लेकर आर्यिका व्रत धारण किया है, यह उनकी सुवचिार बुद्धि एवं विवेक का परिचायक है। उनका संयमी जीवन अनुकरणीय है।

वे उत्तरोत्तर साधना के पथ पर अग्रसर होकर आत्म कल्याण करती रहें और हम सभी को आशीर्वाद प्रदान करती रहें। इन्हीं हार्दिक भावनाओं साथ।







विनयाञ्जलि

पं० गणेशीलाल जी साहित्याचार्य, हस्तिनापुर

इस परम पुनीत अवसर पर शोध संस्थान, एवं विद्यापीठ के कार्यकर्ता एवं छात्रगण आपका हार्दिक भक्तिभाव से अभिनन्दन करते हैं।

आपकी सतत मन्दप्रहसित मुद्रा हमको अपने शैक्षिक एवं सेवा सम्बन्धी कार्यों में अद्भुत प्रेरणा एवं उत्साह प्रदान करती रहती है। आपका तपोमय सान्निध्य हमारे लिये सदैव वरदान स्वरूप रहा है। आपका प्रत्येक क्षण धर्मध्यान एवं तत्त्वानुचिंतन में व्यतीत होता है, आपके इस आदर्श से प्रेरित होकर अनेक भव्यात्माओं ने संयम के कल्याण मार्ग को अपना लिया है।

आपने अपने परिवार के पांच भाग्यशाली सदस्यों को संयम के सन्मार्ग पर लगाकर, अपने आपको गुरु से भी गुरुतर मार्ग पर आरूढ किया है, यह देखकर हमारी आँखों के समक्ष प्राचीन ऋषियों के दृश्य और उदाहरण साकार हो जाते है।

हमारी कामना है कि आप शतायुषी होकर भव्यात्माओं का पथ प्रदर्शन और हम सबको आशीर्वाद प्रदान करती रहें।



विनयाञ्जलि

कु० शशि जैन, तावली

परमपूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी जिनका सान्निध्य प्राप्त करने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है, के चरणों में मेरा शत-शत वन्दन।

लगभग तीन चार वर्षों से मुझे भी हस्तिनापुर निवास से आपकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। मैं तो अपने को बहुत ही भाग्यशाली समझती हूँ कि जो मुझे आप जैसे गुरु मिले। मैं तो सोचती हूँ कि आपके पास रहने का एवं आपके मुख से मधुर वाणी में प्रवचन सुनने का सौभाग्य हर किसी को प्राप्त नहीं होता। आप हर समय दूसरों की भलाई एवं दूसरों के स्वास्थ्य पर बहुत ध्यान रखती हैं। वैसे मैं तो एक अज्ञान बालिका हूँ। आपके गुणों का कुछ भी वर्णन नहीं कर सकती हूँ फिर भी मैंने जो गुण आपमें देखे हैं शायद ही सब माताओं में होते हों। आपने अपने गृह पिंजड़े को छोड़कर सबसे मोह त्याग दिया लेकिन फिर भी आपके दिल में स्नेह है। मुझे तो आपसे इतना स्नेह मिलता है शायद ही किसी बच्चे को अपनी माता से मिलता हो। आपका स्वास्थ्य खराब रहते हुए एवं अत्यल्प आहार लेते हुए भी अपनी दिनचर्या में काफी सावधान रहती हैं।



हस्तिनापुर में बन रही जम्बूद्वीप रचना यह भी आपकी ही देन है। क्योंकि आपने ही ऐसी कन्या को जन्म दिया जिनका यश सारे भारतवर्ष में फैल रहा है वह ज्ञानमती माता आज पूरे विश्व में ज्ञान की गंगा बहा रही हैं। पूज्य माताजी से देश-विदेश के बहुत से उच्चकोटि के विद्वान् आकर जम्बूद्वीप रचना के विषय में चर्चा करते हैं।

मैं तो भगवान् से यही प्रार्थना करती हूँ कि आप हमेशा स्वस्थ रहें और हमको सदैव आपका शुभाशीर्वाद एवं स्नेह मिलता रहे।

विनयाञ्जलि

श्री इन्दरचन्द्र जैन, लखनऊ

यह महान् गौरव की बात है कि पू० आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी की जननी पू० आ० रत्नमतीजी का वरदहस्त हम सब पर है। जिनकी योग्य पुत्रियां आज भारतवर्ष ही नहीं विदेशों में भी जैन साहित्य की धूम मचा रही हैं।

मैं पू० रत्नमती माताजी को गृहस्थ जीवन से पूर्ण परिचय से जानता हूँ। विगत १९६६ की श्रवणबेलगोला यात्रा आप ही के साथ लखनऊ से चलकर पुन: लखनऊ में सम्पूर्ण हुई थी। साथ में धर्म ध्यान, पूजा और शान्त परिणाम से अद्वितीय आनन्द स्रोत उमड़ता रहता था।

धन्य है धरा जिसने ऐसी नारीरत्न पूज्य रत्नमती माता जो रत्नों की खान हैं उन्हें जन्म दिया।

मैं बार-बार चरणों में नतमस्तक हो विनयाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

विनयाञ्जलि

श्री रमेशचन्द जैन, देहली

उपाध्यक्ष, श्री दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर

धन्य हैं माता रत्नमतीजी जिन्होंने धर्मनिष्ठ, विद्वद्श्रेष्ठ माता ज्ञानमतीजी को जन्म दिया और स्वयं अपने जीवन के उत्तर काल में दिगम्बरी दीक्षा से दीक्षित होकर अपने आत्मोत्थान का मार्ग प्रशस्त कर रही हैं। धर्मप्रेमी श्रावक-श्राविकाओं को उनका मार्ग दर्शन लम्बी अवधि तक प्राप्त होता रहे और धर्मप्रभावना बढ़ती रहे। यही मेरी शुभकामना है।

विनयाञ्जलि

श्री अनन्त प्रकाश जैन, लखनऊ

पूज्य माता जी जिन्होंने मेरी पुत्रवधू त्रिशला जैन शास्त्री के अतिरिक्त ऐसे रत्नों को जन्म दिया जिनके नाम पर आज सारा संसार गर्व का अनुभव करता है जो आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी के नाम से प्रसिद्ध है। आपकी एक और पुत्री ने भी आर्यिका पद ग्रहण किया जो आर्यिका अभयमती के नाम से प्रसिद्ध है। आपने भी अजमेर के चातुर्मास मे आ० धर्मसागर महाराज से आर्यिका दीक्षा ली। आपका स्वास्थ्य अत्यन्त शिथिल होते हुए भी लगभग ७० वर्ष की आयु मे भी पूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी के सघ में रह कर दृढ़तापूर्वक अपने व्रतों का पालन करते हुए आत्म साधन कर रही हैं।

वीर प्रभु से यही प्रार्थना है कि मुझको भी ऐसी सद्बुद्धि प्राप्त हो कि पूज्य माताजी के गुणों को ग्रहण कर सकूँ।

विनयाञ्जलि

श्री श्रवणकुमार जैन विशारद, सोंरई

पूज्य १०५ आर्यिका रत्नमती माताजी के चरणों में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मैंने उन्हें हमेशा आत्म-चिन्तन, मनन मे ही व्यस्त देखा। आप गृहस्थों और व्रतियों के लिए सच्ची मार्ग दर्शक है। उनके वात्सल्य पूर्ण व्यवहार ने मेरे जीवन को बदल दिया और सन्मार्ग में लगा दिया।

पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी आर्यिका समाज की महान् विभूतियो में से एक है जिन्होंने आत्म साधना के द्वारा एक ओर अपना अध्यात्म मार्ग प्रशस्त किया और दूसरी ओर समाजोत्थान का पवित्र कार्य भी किया। ऐसी परोपकारी माताजी के चरणों मे श्रद्धा सुमन समर्पित है।

विनयाञ्जलि

श्री केशरीमल, सनावद

परमपूज्य १०५ आर्यिका रत्नमती माताजी महान् रत्नों की खान हैं, अपरिग्रह, अनासक्ति की अद्वितीय उपासिका, त्याग तपस्या की सजीव मूर्ति, मुक्ति पथ की अनुगामिनी हैं। मै जिनेन्द्र भगवान से कामना करता हूँ कि ऐसी आदर्श आर्यिका माताजी का दीर्घ जीवन हो व अन्तिम उनकी समाधि पूर्णरूपेण उत्तम शान्तिमय हो। उनके चरणों में विनयाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

दिव्याञ्जलि

श्री सुमेरचन्द जैन 'पाटनी' लखनऊ

परमपूज्य आ० श्री रत्नमती माताजी अवध प्रान्त की पवित्र रज में जन्म लेने वाली वह नारीरत्न है जिनके बल पर मात्र महिला जगत् ही नही सम्पूर्ण जैन समाज का मस्तक गौरव से ऊँचा उठा हुआ है। मैने माताजी के कई जगह दर्शन किये, उनकी शांत मुख मुद्रा सदैव हमे उनकी याद दिलाती रहती है। मै उनके बारे में क्या लिखूं वे तो देश की महान् विभूति हैं।

मैं अपनी तथा अपने परिवार की ओर से पू० माता जी के चरणों मे दिव्यांजलि अर्पित करता हूँ और भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि माताजी शतायु हों तथा जैन-धर्म के अनुयायियों को अपना आशीर्वाद देकर उनका सतत पथ प्रदर्शन करती रहे।

अन्त मे पू० माताजी के चरणों मे नमोऽस्तु।



विनयाञ्जलि

श्री श्रेयांसकुमार जैन, महमूदाबाद

जैन साधुओं का सान्निध्य प्राप्त कर यूं तो प्रत्येक व्यक्ति अपने को पुण्यशाली समझता है किन्तु पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी का सामीप्य मैं अपने लिए विशेष रूप से गौरवपूर्ण मानता हूँ। क्योंकि उनकी ही जन्मभूमि की पवित्र रज में मुझे भी जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होने निज के तथा सन्तानों के कार्यकलापों से भारत की जैन समाज का जो उपकार किया है उसके लिए हर आने वाला व्यक्ति स्वयमेव ही श्रद्धा से नतमस्तक हो जाता है। ऐसी त्यागमयी तथा शान्ति की साक्षात् मूर्ति पू० माताजी के चरणों में शतशः वन्दन।



विनयाञ्जलि

श्री डूंगरमल सबलावत 'डूंगरेश' डेह

परम पूज्य आर्यिका श्री १०५ रत्नमती माताजी वयोवृद्ध हो गयी। गृहस्थ अवस्था में आप मिलनसार, सरल स्वभावी, देवशास्त्र गुरुओं के प्रति श्रद्धानी, धर्म कार्यों पर विशेष अनुरागी थीं। धार्मिक संस्कारों से ओत-प्रोत होने से आपने देश-समाज, धर्म का प्रसार करने वाले ऐसे पुत्र-पुत्रियों को जन्म दिया—श्री ज्ञानमती माता जी जैसी विभूति-महान् तपस्वी जिनके कण्ठ में जिनवाणी विद्यमान है, महान् ज्ञान की धारी जैन संस्कृति का प्रचार-प्रसार करने के लिये अनेक उच्चकोटि के ग्रन्थों का अनुवाद एवं छोटे-छोटे ट्रैक्टों पुस्तकों का प्रकाशन कराके तथा "सम्यग्ज्ञान"

पत्रिका निकलवा कर प्राणीमात्र का कल्याण कर सही मार्ग का दिग्दर्शन करा रही हैं।

जम्बूद्वीप की रचना एवं जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति का प्रसार समस्त भारत में भ्रमण से जैनधर्म-जैन-संस्कृति का विज्ञान की दृष्टि से जैन भूगोल की खोज करा कर प्रकाश में ला रही हैं जो अद्वितीय है।

ऐसी आ० श्री रत्नमती माता जी ने रत्नों को बिखेर दिया समस्त भारत में जो जगह-जगह ज्ञान की ज्योति प्रकाशित हो रही है।

अभिनन्दन ग्रन्थ की पूर्णतम सफलता चाहता हूँ एवं आर्यिका माता जी के दीर्घायु की मैं कामना करता हूँ।



श्रद्धास्पद माताजी

आचार्य राजकुमार जैन, नई दिल्ली

पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती जी के रूप में समाज को एक ऐसा अपूर्व रत्न प्राप्त हुआ है जिसकी आध्यात्मिक प्रतिभा एव धर्म प्रभावना ने समाज में धर्म की अजस्र धारा प्रवाहित की। वर्तमान विषम वातावरण में धर्म विमुख लोगों को धर्म की ओर प्रेरित करना और उनमें धर्माचरण की प्रवृत्ति को जाग्रत कर उनके जीवन में धार्मिक भाव उतार देना एक दुष्कर कार्य है जिसे आपने सहज भाव से किया है। दूसरों को धर्माचरण का उपदेश देना तो सरल है किन्तु स्वयं उसे जीवन में उतारना कठिन है। पूज्य आर्यिका रत्नमती जी ने प्रथम स्वयं धर्माचरण में प्रवृत्ति की तत्पश्चात् उसके लिए लोगों को समाज को प्रेरित किया।

आप अत्यन्त सरल स्वभावी, धर्मनिष्ठ एवं मृदुभाषिणी आर्यिका हैं। हृदय की ऋजुता, वाणी की मधुरता व मृदुता आपकी व्यक्तिगत विशेषता है। आपका गृहस्थ जीवन भी अत्यन्त सादगी पूर्ण रहा है जिससे आपके सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति आपके आचरण एवं व्यवहार से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। आपकी अपूर्व धर्मनिष्ठा एवं लगन का ही यह सुपरिणाम है कि आज आप आर्यिका वेश में हमारे सम्मुख विराजमान हैं। आपके द्वारा की गई धर्म प्रभावना एवं आपके दर्शन मात्र से जो आत्मिक शान्ति का अनुभव होता है वह वर्णनातीत है।

आपका शुभाशीर्वाद एव मार्गदर्शन चिरकाल समाज को प्राप्त होता रहे यही हार्दिक कामना है। आपका त्यागमय जीवन समाज के लिए एक अनुकरणीय आदर्श है। आपके अभिनन्दनावसर पर आपके प्रति श्रद्धावनत हो आपके चरणारविन्द में मैं अपनी विनयांजलि सादर अर्पित करता हूँ।



माता रत्नमती के महान् रत्न

संहितासूरि पं० नारेजी प्रतिष्ठाचार्य, आष्टा

पूज्य माता रत्नमती जी श्री १००८ भगवान् महावीर की लोक कल्याणकारी वाणी का प्रचार एवं प्रसार करने के लिये स्वयं निवृत्तिमार्ग रूप आर्यिका पद पर आरूढ़ हैं। आपके धार्मिक संस्कारों का प्रभाव अपने रत्नों पर भी अच्छा पड़ा है। आपके तरासे हुए महारत्न हैं श्री उदीयमान परम पूज्य आर्यिकारत्न श्री १०५ ज्ञानमती माताजी, द्वितीय रत्न हैं पूज्य आर्यिका श्री १०५ अभयमती माताजी जिन्होंने अपनी सुयोग्य मँजी हुई लेखनी से महान् ग्रन्थ राजों की गूढ़ गुत्थियों को सुलझा कर एक आदर्श उपस्थित किया है।

श्री पूज्य ज्ञानमती माताजी ने अपने जैन दर्शन के गहरे अध्ययन मनन से हस्तिनापुर क्षेत्र की पवित्र भूस्थली पर जैन भूगोल का साधारण जन मानस को भी ज्ञान कराने के लिये विशाल जम्बूद्वीप की रचना का कार्य प्रारम्भ अपने सदुपदेश से कराया है। जो आने वाली पीढ़ी के लिये भी मार्ग दर्शक सिद्ध होगा। आपने कई ग्रन्थों की स्वतंत्र रचनाएँ की हैं जिसमें 'इन्द्रध्वज विधान' बड़ी रोचक शैली में सुलभ अर्थों से भरा गागर मे सागर वाली कहावत को चरितार्थ करने वाला महान विधान है जो सब में लोक प्रिय हो चुका है। 'सम्यक्ज्ञान' मासिक में अच्छी-अच्छी सामग्री का समावेश होता है जिसमें चारों अनुयोगों पर अच्छे लेख एवं चर्चायें रहती हैं जो एक ज्ञान वर्धक पत्रिका है। इस प्रकार आपके ज्ञान की गंगा अविरल अभय के साथ बह रही है। इन महान् रत्नों के त्याग तपस्या संयम की छाप अपने और अन्य रत्नों पर भी पड़ी है उनको भी एक महान् आदर्श के दायरे में ला कर खड़ा कर दिया है। वह हैं हमारे नर वीर रत्न श्रीमान बाल ब्र० भाई रवीन्द्रकुमार जी शास्त्री बी० ए० द्वितीय हैं श्री बाल ब्र० आदर्श कुमारिका श्री मालती जी शास्त्री धर्मालंकार, तृतीय हैं श्री बाल ब्र० आदर्श कुमारिका श्री माधुरी जी शास्त्री। ऐसी माँ पूज्य रत्नमती जी हैं जिन्होंने अपने धार्मिक संस्कारों से अपने कुल वंश और समस्त समाज को धार्मिक संस्कारों से सुसंस्कारित किया है के पुनीत चरणों में शत-शत बार प्रणाम है।



विनयाञ्जलि

श्रीमती तारा देवी कासलीवाल, जयपुर

पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी के गार्हस्थ जीवन एवं वैराग्यमय जीवन के बारे मे जब मैंने अनेक घटनाएँ सुनीं तो मन प्रसन्नता से भर गया। आपने देश एवं समाज को माता ज्ञानमती जी के रूप में जो अमूल्य धरोहर दी है उससे सारा समाज आपका चिरकाल तक ऋणी रहेगा। इसके अतिरिक्त आपने स्वयं भी आर्यिका दीक्षा

लेकर जो आदर्श उपस्थित किया है उससे पूरे महिला समाज का मस्तक गौरवान्वित हुआ है। इसलिये आपका अभिनन्दन स्वयं ही अभिनन्दनीय का अभिनन्दन है। मैं भी अपनी पूर्ण भक्ति एवं श्रद्धा सुमन आपके चरणों में अर्पित करके अपने आपको धन्य समझती हूँ।



विनयाञ्जलि

डॉ० (श्रीमती) कोकिला सेठी

संयुक्त मन्त्री, महिला जाग्रति संघ, जयपुर

भगवान् ऋषभदेव से लेकर आज तक लाखों की संख्या में आर्यिकाएँ हुई हैं। ब्राह्मी, सुन्दरी, मैना सुन्दरी, सीता, राजुल एवं चन्दनबाला जैसी महिलाओं ने आर्यिका दीक्षा धारण कर जिस प्रकार देश एवं समाज को नयी दिशा प्रदान की थी उसी तरह मैना एवं मोहिनी ने आर्यिका ज्ञानमती एवं रत्नमती के रूप मे आर्यिका दीक्षा लेकर समस्त जैन समाज में एक नयी क्रान्ति का संचार किया है। आपके त्याग एवं संयमी जीवन को देखकर आज सारा समाज आपके प्रति नतमस्तक है। आपका वरद-हस्त हमें सैकड़ों वर्षों तक मिलता रहे यही मेरी मंगल भावना है।



विनयाञ्जलि

श्रीमती सुमति जैन

उपाध्यक्ष, महिला जाग्रति संघ, जयपुर

परम पूज्यनीया आर्यिका ज्ञानमती माताजी की माताजी आर्यिका रत्नमतीजी का वर्तमान साध्वी समाज मे उल्लेखनीय स्थान है। उन्होंने पहिले अपनी दो पुत्रियों को आर्यिका दीक्षा दिलवाकर तथा एक पुत्र एवं दो पुत्रियों को भी त्याग मार्ग की ओर अग्रसर करके समाज में एक आदर्श उपस्थित किया था तथा उसके पश्चात् स्वयं भी आर्यिका दीक्षा लेकर समस्त जैन समाज में एक ऐसा अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसके लिये सारा समाज उनका चिर ऋणी रहेगा। वास्तव मे जीवन में कोई त्याग सीखे तो आपसे एवं पूज्य आर्यिका ज्ञानमती माताजी से।

मैं अपने समस्त परिवार एवं महिला समाज की ओर से आपका शतशत अभि-नन्दन करती हूँ।



विनयाञ्जलि

श्रीमती सुशीला बाकलीवाल
मंत्री, महिला जाग्रति संघ, जयपुर

पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी ने अपने भरे-पूरे परिवार को छोड़कर गृह-त्याग करके तथा जैनेश्वर दीक्षा लेकर महिला समाज का नाम ऊँचा किया है। तथा महिलाओं में त्याग के प्रति विशेष रुचि होती है इसका उदाहरण प्रस्तुत किया है। पूज्य माताजी अत्यन्त शान्त स्वभावी एवं कठोर साधना मे संलग्न रहती हैं। आपके अभिनन्दन के लिये मैं महिला जाग्रति संघ, जयपुर की ओर से आपके चरणों में शतशत वन्दन करती हूँ।



महान् साध्वी

पं० शिखरचन्द जैन, प्रतिष्ठाचार्य, भिण्ड

श्री १०५ आर्यिका रत्नमती माताजी सरल स्वभावी, चरित्रवान, तपोमूर्ति, तत्त्ववेत्ता, स्वपरकल्याणकर्त्ता महान् साध्वी हैं। पूज्य माताजी के दर्शन करने का सौभाग्य कई बार मिला। आप रत्नत्रय धर्म में दृढ़ हैं। आपने अनेक जीवों को मोक्ष पथ पर चलने की प्रेरणा दी है। पूज्य माताजी के चरण कमलों मे मेरी श्रद्धा सहित विनयांजलि स्वीकृत हो। भावना है माताजी जिस पथ पर चल रही हैं उसी पथ का अनुसरण कर मोक्ष का पथिक बनूँ।



श्रद्धाञ्जलि

पं० सुमतिबाई शहा, शोलापुर

श्री रत्नमती जी ने गृहस्थाश्रम में सुपुत्र और सुपुत्रियों को जन्म दिया। भगवान् महावीर को जैसे त्रिशला देवी ने जन्म दिया। आज आपकी सुपुत्री पूज्य आर्यिका ज्ञानमती माताजी ने भारत मे जैनधर्म का ध्वज फहराया है और हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप की रचना करके जैन भूगोल के लिए एक चिरस्थायी कार्य किया है। आपके एक पुत्र श्री रवीन्द्रकुमार बालब्रह्मचारी हैं। आपकी बेटी मालती बालब्रह्मचारिणी और माधुरी धर्मालङ्कार की पदवी लेकर धर्मप्रभावना कर रही हैं। ऐसी आदर्श रत्नमती माताजी के चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जली समर्पित करती हूँ।



विनयाञ्जलि

श्री प्रद्युम्न कुमार जैन, मुजफ्फरनगर

वृक्ष की सार्थकता केवल बड़ा हो जाने से नहीं प्रत्युत् फल देने से होती है। फल की प्राप्ति कराने वाले वृक्ष फलभार को नम्रता से झुके हुए होते हैं न कि अपने फलों के अभिमान से तनाव लिये हुए सीधे खड़े रहते हैं। ठीक उसी प्रकार परमपूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी विश्व के लिये रत्नफलों को प्रदान करती हुईं भी नम्रता एवं रत्नगुणों की भण्डार हैं। मुझे जब भी आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ आपकी सरलता एवं हितमितप्रियवादिता ने मेरा अन्तरंग अत्यन्त प्रभावित किया। स्वयं ज्ञान धन से धनिक होने के कारण ही आपने अनेक अमूल्य कृतियों को जन्म दिया है।

वदनं प्रसादसदनं सदनं हृदयं सुधामयो वाचः।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः॥

पूज्य रत्नमती माताजी की निर्मल आत्मा वास्तव में इन गुणों का आयतन है। प्रसन्नता से रम्य सर्वदा मुखकमल, दया से ओतप्रोत हृदय, अमृत तुल्य प्रिय वचन तथा परोपकार करना ही जिनका परम कर्तव्य है ऐसे मनुष्य सभी के द्वारा वन्दनीय होते हैं। वस्तुतः आप निश्चय ही अभिनन्दनीय हैं।

मैं ऐसी सहृदया सच्ची माता के चरणों अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए उनके निर्बाध रत्नत्रय पालन की अनुमोदना करता हूँ।



श्रद्धा सुमन

श्री प्रेमचन्द जैन बी० ए० बी० एड०, महमूदाबाद

श्री १०५ आर्यिका रत्नमती माताजी के सम्यक् बोध द्वारा सारा ही परिवार आत्म कल्याणार्थ मुक्ति मार्ग में लग सका वह कितनी महान् हैं। मैं इन्हें किन वाक्यों में श्रद्धा सुमन अर्पित करूँ, शक्ति से परे है।

मेरी उत्कृट अभिलाषा है कि इस अभिनन्दन ग्रन्थ को पढ़कर लोग विराग के मार्ग के पथिक बनें और जन-जन का कल्याण हो।



श्रद्धा सुमन

डॉ० प्रेमचन्द रावकां, मनोहरपुर

प्राचीन काल से ही आर्यिकाओं ने देश व समाज के सांस्कृतिक, साहित्यिक एव धार्मिक जागरण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। भगवान् महावीर के संघ में मुनियों से आर्यिकाओं की संख्या कहीं अधिक थी। उसी आर्यिका परम्परा मे हम आज पूज्य ज्ञानमती माताजी, पूज्य रत्नमती माताजी को पाकर अत्यधिक गौरवान्वित हैं। आप जहाँ भी विराजती हैं, श्रमण संस्कृति का साक्षात् रूप देखने को मिलता है। पूज्य रत्नमतीजी माता जी समाज के लिये आदर्श आर्यिका है जिन्होंने अपने त्यागमय जीवन से सभी साधर्मी बन्धुओं के लिये एक अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

मैं आपके पावन एवं वीतरागी जीवन पर आपको शतशत श्रद्धा सुमन समर्पित करता हूँ।

रत्नत्रय की प्रतिमूर्ति

श्री कमलेश कुमार शास्त्री, हस्तिनापुर

भारत एक धर्म प्रधान, ऋषि प्रधान देश है। यहाँ की पावन वसुन्धरा ने अनेकों ऐसे नर-नारियों को जन्म दिया जिन्होंने स्वत्याग तपस्या से अपना व अपने जन्म-दाता तक के जीवन को रत्नत्रयरूपी महती पावन सुगन्ध से ही सुगन्धित कर दिया। ऐसे ही सन्तों में से माता रत्नमती एक है। जिन्होंने अपनी संतानों को पहले इस पवित्र मार्ग पर लगाया तथा स्वयं भी उसी मार्ग पर लग गई।

जैसा आपका शुभ नाम है वैसा ही आपकी भावनायें भी बड़ी शुभ है। आपकी संतानों में कुछ ने महाव्रत, कुछ अणुव्रत तथा कुछ ने बालब्रह्मचर्य व्रत लेकर अपने जीवन को सार्थक किया। आर्यिकारत्न १०५ श्री ज्ञानमती माताजी इस बात की एक ज्वलन्त उदाहरणस्वरूप है। यदि माता रत्नमतीजी के हृदय पर रत्नत्रय की अमिट छाप न होती तो आप अपनी प्रथम संतान को ही इस मार्ग पर न लगाती और न स्वयं ही। धन्य है वे माँ जिन्होंने स्व पर का उपकार करने के लिये अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। ऐसी पूज्य १०५ रत्नमती माताजी के पावन चरणों मे शतशत वंदन !

श्रद्धा सुमन

श्री शशिकला बाकलीवाल, जयपुर

पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी के त्यागमय जीवन के बारे में जब से मैंने चर्चा सुनी है, हृदय में स्वतः ही माताजी के प्रति अपूर्व भक्ति एवं श्रद्धा जागृत हो गयी है। आप पूज्य १०५ ज्ञानमती माताजी के गृहस्थावस्था की माताजी हैं यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई। आज पूज्य ज्ञानमती माताजी तो समाज की ऐसी निधि हैं जिससे सारा समाज ही नहीं, सारा देश गर्व करता है तथा जिन्होंने समस्त समाज को एक नयी दिशा प्रदान की है। पूज्य रत्नमती माताजी ने अपने परिवार के अन्य सदस्यों को जो त्याग का मार्ग बतलाया है वह सभी के लिये अनुकरणीय है। आप जैसी आर्यिका से आज सारा महिला समाज गौरवान्वित है। मैं अपनी ओर से तथा अपने पूरे परिवार की ओर से आपके अभिनन्दन से अवसर पर पूर्ण भक्ति के साथ श्रद्धा सुमन अर्पित करती हुई अपने आपको भाग्यशाली मानती हूं।

निस्पृहता एवं परोपकार

श्री कैलाशचन्द जैन, नई दिल्ली

जहाँ तक मैं सोच पाया हूँ अभिनन्दन किसी व्यक्ति विशेष का नही वरन् उसके गुणों को प्रकाश मे लाने के लिये किया जाता है। गुणों के धनी कतिपय महापुरुष सम्पूर्ण जीवन परोपकार मे लगाकर भी समाज की दृष्टि से छिपे रहते है उसमें मूल उद्देश्य होता है उनकी निस्पृहता।

परमपूज्य १०५ आर्यिका श्री रत्नमती माताजी भी एक ऐसी ही मौन धर्मसेविका रही हैं। दि० जैन० त्रि० शो० सं० का कार्यकर्ता होने के नाते मुझे कई बार आपके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। शान्त और सरल प्रकृति वाली पू० माताजी हमेशा-हमेशा बाह्य कार्यों से उपेक्षित अपने धर्मध्यान में लीन रहकर दर्शनार्थियों को अपना प्रसन्नचित्त आशीर्वाद प्रदान करती है। आपके शुभाशीर्वाद से हम सभी का उत्साह वृद्धिगत होता है तथा संस्थान की चहुँमुखी प्रगति हो रही है। मैं पू० रत्नमती माताजी के चरण कमलों मे अपनी हार्दिक पुष्पाजलि अर्पित करते हुए उनके स्वस्थ जीवन की कामना करता हूँ।

विनयाञ्जलि

श्री महेशचन्द जैन, जयपुर
अर्थमंत्री राज० जैन साहित्य परिषद्, जयपुर

मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी का अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित होने जा रहा है। पूज्य माताजी के त्यागमय जीवन के बारे में जब कभी चर्चा सुनता हूँ तो हृदय प्रसन्नता से भर जाता है। पूज्य आर्यिका अभयमती माताजी की आप माताजी हैं यही नहीं आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी की भी आप जननी है। अपनी दो सुपुत्रियों को आर्यिका बनने की स्वीकृति देकर तथा स्वयं भी आर्यिका दीक्षा लेकर धार्मिक इतिहास में एक नया कीर्तिमान प्रस्तुत किया है।

ऐसी पुण्यश्लोका माता रत्नमतीजी के चरणो मे अपना सादर एवं भक्ति-पूर्वक विनयाजलि अर्पित करता हूँ।



विनयाञ्जलि

श्री प्रकाशचन्द जैन
मैनेजर, दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर

महाव्रतियों मे आर्यिकाओं का भी प्रमुख स्थान है। वर्तमान में अनेक आर्यिकायें इस महाव्रत को धारण करके संयम की साधना कर रही हैं उनमें परमपूज्य श्री रत्नमती माताजी का प्रमुख स्थान है। पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी के अभिनन्दन ग्रन्थ के अवसर पर मैं अपनी श्रद्धा और विनयांजलि अर्पण करता हूँ। वे युग-युग तक जीकर मोक्षमार्ग को प्रदर्शित करती रहें।



श्रद्धा की पात्र

श्री शीलचन्द जैन, तावली

भारतवर्ष मे सदैव नारी का स्थान सर्वोच्च रहा है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब जब भारत में धर्म और आजादी का अस्तित्व खतरे मे पड़ा है तब तब नारियों ने दुर्गावती, लक्ष्मीबाई बनकर जहाँ स्वतन्त्रता के अस्तित्व की रक्षा की है। वहीं धर्म को ऊँचा उठाने में ब्राह्मी, सुन्दरी, मैना सुन्दरी, सीता, चन्दनबाला जैसी

नारियों ने भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। जैन पुराणों से यह बात सिद्ध होती है कि प्रत्येक तीर्थंकर भगवान् के समवसरण में आर्यिकाओं और अणुव्रती श्राविकाओं की संख्या तीन गुणी से अधिक रहती है। ऐसी ही नारी रत्न आर्यिका रत्नमती माताजी के चरणों में मैं अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूं।



रत्न की खान

ब्र० कपिल कोटडिया, हिम्मतनगर

सुवर्ण खान से सुवर्ण निकलता है किंतु वह होता है पाषाणमिश्रित। किन्तु जो खान से रत्न निकलते हैं वे शुद्ध निकलते हैं जैसे टिकैतनगर की एक महिला।

पूज्य रत्नमती माताजी ने अपने जीवन में रत्न की खान का ही कार्य किया है। पू० ज्ञानमती माताजी आदि विदुषी आर्यिका के जन्मदात्री होके पूज्य रत्नमती माताजी स्वयं धन्य है और जैनधर्म को भी धन्यरूप बनाया है। वे ज्यादातर मौन रहती हैं। अपने जीवन मे चारित्र का चरितार्थपणा ही उनकी एकमात्र वन्दना है। कु० मालती, माधुरी बालब्रह्मचारिणी एवं श्री अभयमतीजी विदुषी जैन साध्वी है वे भी माताजी की प्रछन्न प्रेरणा के कारण है। उनको मेरी विनम्र श्रद्धाञ्जलि है।



क्या यह एक संयोग नहीं था ?

श्री अनुपम जैन, फिरोजाबाद

२७ सितम्बर ८१ को मैं सर्वप्रथम हस्तिनापुर अपने एक शुभचिंतक के परामर्शानुसार माताजी (आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमतीजी) के दर्शनार्थ गया। संयोग से उस दिन माताजी का मौन था। उसी दिन पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी एवं आ० शिवमतीजी के दर्शन भी करने का अवसर प्राप्त हुआ। परिचयोपरान्त मौन की मर्यादा के अन्तर्गत माताजी ज्ञानमतीजी ने मुझे जो संकेतात्मक आदेश दिया उसको मैं किंचित् भी न समझ सका किन्तु पूज्य रत्नमती माताजी ने मुझे बताया कि माताजी मुझे अतिशीघ्र पुनः आने का आदेश दे रही हैं। उनकी यह भावना मेरे लिये आह्लादकारी थी। मैं ४ अक्टूबर ८१ को पुनः उपस्थित हुआ।

श्रावकोचित विनयादि के उपरान्त मैंने उनसे विषयगत मार्गदर्शन प्राप्त किया। उन्होंने बताया कि जम्बूद्वीपपण्णत्ति संग्रहों में ज्यामिति विषयक विपुल सामग्री है। चर्चा के मध्य आपने मुझे जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति सेमिनार—८१ में उप-



स्थित होने की प्रेरणा की। उनकी आज्ञानुसार सेमिनार—८१ में मैंने अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया।

सेमिनार—८१ में रोपित परिचय का बीज श्रद्धा, विनय एवं स्नेह का सम्बल प्राप्त कर सेमिनार—८२ तक शनैः शनैः विकसित हो चला। लौकिक शिक्षा दीक्षा से सम्बद्ध मुझे धार्मिक क्षेत्र से सम्बद्ध करने हेतु उत्तरदायी आ० रत्नमती माताजी के चरणों मे हार्दिक विनयाञ्जलि प्रस्तुत करते हुए अत्यधिक प्रसन्नता है।



विनयाञ्जलि

श्री सूर्यकांत कोटडिया, बम्बई

बन्दे मातरम् !

वृक्ष कबहु न फल भखे, नदी न संचे नीर।
परमारथ के कारणे, साधून धरा शरीर॥

उक्त कहावत को चरितार्थ करने में पू० आर्यिका रत्नमती माताजी पूर्ण सफल रही हैं। उनसे जगत् का जो हित हुआ है वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जायेगा। वास्तव में उनसे जैन समाज को पू० आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी, अभयमती माता जी के रूप में महान् उपलब्धियाँ हुई हैं। उन्हें समाज कभी भुला न पायेगा। पू० रत्नमती माताजी में उत्कृष्ट आर्यिका के सभी गुण पल्लवित हो रहे हैं। शान्त स्वभाव, रत्नों जैसी बुद्धि, कठिन तपश्चर्या, वात्सल्यमयी रत्नमती माताजी के पावन चरणों में वंदामि करता हुआ भावना करता हूँ कि वे युग-युग तक युग को धर्म दिशा प्रदान करती रहें।



विनयाञ्जलि

श्री अक्षयकुमार जैन, दिल्ली

पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी को विनयाञ्जलि अर्पित करने के लिये अभिनन्दन ग्रन्थ की योजना उचित ही है। माताजी के दर्शनों का सौभाग्य मुझे हुआ है। उनकी निस्पृहता एवं चारित्राराधना से मैं प्रभावित हुआ हूँ।

उनको मेरे अनेक प्रणाम एवं नमोस्तु।







अज्ञात संयोग

श्री बीनारानी जैन, टिकैतनगर

लगभग ५ वर्ष पूर्व मेरा इस परिवार के साथ सम्बन्ध जुडा। इससे पूर्व मैं केवल इस रत्नाकर परिवार का नाम अवश्य सुना करती थी कि टिकैतनगर में एक ऐसी भी मां हैं जिन्होंने समाज के लिए कई रत्नों को प्रदान किया और एक दिन स्वयं भी उसी मार्ग पर चल पड़ीं।

जब मेरी शादी हुई मुझे बताया गया कि तुम्हारी दादी जी रत्नमती माताजी के रूप में ज्ञानमती माताजी के साथ मे हैं। मुझे कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं थी। मेरे सास ससुर जी आज भी मुझे मेरे माता-पिता से भी कही अधिक स्नेह करते हैं वे लोग मुझे उनके दर्शन करवाने हस्तिनापुर लाये। मैंने सबके दर्शन किये, बड़े वात्सल्य पूर्वक मुझे दोनों माताजी का आशीर्वाद मिला। स्त्रियोचित शिक्षायें व नियम भी मुझे प्रदान किये गये। सारे परिवार के सदस्यों के मुंह से इस मां के प्रति प्रशंसात्मक शब्द सुनती रहती हूँ और सोचती हूँ कि मुझे भी उनका कुछ गार्हस्थ्य स्नेह प्राप्त होता किन्तु यह संभव कहां ? खैर ! मैं अपना सौभाग्य समझती हूँ कि इस घर में बहू के रूप में आकर मुझे समय-समय पर आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होता रहता है और आपके मुखारविन्द से बहुत सी शिक्षायें भी प्राप्त होती रहती हैं।

मुझे आपकी अस्वस्थता और ऐसी कठिन साधना देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि जैनधर्म में क्या अस्वस्थ साधु के लिये भी किसी प्रकार की छूट नही है लेकिन पिताजी (ससुर) बताते रहते हैं कि जैन चर्या बालक, युवा और वृद्ध सबके लिये समान होती है। हे भगवन् ! इस कठिन चर्या का पालन क्या मैं भी कभी कर सकती हूँ। मुझे तो अभी डर ही लगता रहता है। आप जैसी सरलता एवं वात्सल्य की मूर्ति का सान्निध्य बार-बार मिलने से हो सकता है मेरा यह भय दूर हो जाये।

आपका स्वास्थ्य नीरोग रहे, संयम की साधना अनमोल रहे तथा हम सबके ऊपर आपका आशीर्वादात्मक वरदहस्त बना रहे यही आन्तरिक भावना है।





विनयाञ्जलि

श्री मिश्रीलाल पाटनी, लश्कर

पूज्य श्री रत्नमती माता जी चारों अनुयोगों की महान् विदुषी हैं तथा उत्तम चारित्र रथ पर आरूढ़ हैं। मैं पूज्य माता जी के दीर्घ जीवन की कामना करता हुआ अपनी विनम्र विनयाञ्जलि अर्पित करता हूं।





विनयाञ्जलि

श्री पूनमचन्द गंगवाल, झरिया

पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी जो आज के इस भौतिक युग में रत्नत्रय की साधना में लीन हैं। मैं उन पूज्य माताजी को अपनी हार्दिक विनयाञ्जलि समर्पित करते हुए उनके दीर्घतपस्वी जीवन की अभिवृद्धि की कामना करता हूँ ताकि देश और समाज को सुयोग्य आध्यात्मिक नेतृत्व लम्बे समय तक प्राप्त होता रहे।

विनयाञ्जलि

पं० दयाचन्द्र साहित्याचार्य, सागर
प्राचार्य श्री गणेश दि० जैन संस्कृत महाविद्यालय, सागर

वर्तमान में भारत देश के प्राङ्गण में एक दो नहीं किन्तु अनेकों आर्यिका, क्षुल्लिका, ऐलिका माताएँ विराजमान है उन आर्यिका माताओं मे गणनीय एक स्मरणीय श्री १०५ रत्नमती माता जी हैं जिन्होंने पूर्व समय में गृहस्थाश्रम मे रहकर भौतिक कुटुम्ब का उत्पादन संरक्षण किया है, परन्तु भौतिक कुटुम्ब को असार जानकर उसका परित्याग कर पारमार्थिक कुटुम्ब की ओर अपना कदम बढ़ाया है। जिस प्रकार आपने भौतिक कुटुम्ब की वृद्धि को किया है, विरागता होने पर उसी प्रकार धार्मिक कुटुम्ब बढ़ाया है, अधिक क्या कहा जाय, अपनी पुत्रियो तथा पुत्रों को भी भौतिक कुटुम्ब से निकाल कर मोक्षमार्ग के धार्मिक कुटुम्ब मे उनका जन्म करा दिया है यह माता जी की विरागता का ही परिणाम है। पहिले वे भौतिक कुटुम्ब की माता कहलाती थी और अब जगत् की माता कही जाती है। नीतिकारों ने घोषणा की है

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह कुटुम्ब हमारा है और यह आपका है यह विचार संकुचित ज्ञान वालो का होता है परन्तु जिनका ज्ञान तथा चारित्र विशाल है उनका तो अखिल विश्व ही कुटुम्ब है। इसी कारण से आप जगत् का हित करने मे संलग्न है।

वास्तव में आप रत्नमती सार्थक नामधारी है कारण कि आप सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्ररूप रत्नों की साधना करती हैं।

अन्त में हमारी मांगलिक कामना है कि आप दीर्घ जीवन प्राप्त कर विश्व मे सत्यार्थ धर्म की प्रभावना करें। यही विनयपुष्प आपकी प्रतिष्ठा में समर्पित है।

विनयाञ्जलि

श्री श्रीपति जैन, अजमेर
उपाध्यक्ष, भा० दि० जैन महासभा

पूज्य १०५ आर्यिका श्री रत्नमती माता जी ने स्त्री पर्याय की सार्थकता का मूल्य जानते हुए संयम का अवलम्बन लिया है यह नारी जगत् के लिये अनुकरणीय है। वैसे आपका गृहस्थ जन्य सारा ही परिवार संयम का आराधक है और अपनी प्रतिभा से जैन धर्म की प्रभावना कर रहा है। मैं आपके रत्नत्रय की साधना की प्रशंसा करता हुआ विनम्र विनयाञ्जलि समर्पित करता हूँ।



लोकोत्तर माँ श्री

श्रीमती गजरादेवी जैन, सोंरया, टीकमगढ़

भक्तामर स्तोत्र में 'स्त्रीणाम् शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्' पद्य लिखकर मानतुङ्ग आचार्य ने कहा है कि लोक में अनेकों नारियाँ हैं और अनेकों बेटे पैदा करती हैं परन्तु हे आदिदेव, तुम जैसे पुत्र को जन्मने वाली माँ ही त्रिलोक माँ हैं। कैसा पुत्र जिससे मोक्ष की परम्परा चली और तीर्थों का उद्भव हुआ। पंचम काल में ऐसी ही पूज्य माँ १०५ आर्यिका रत्नमती माताजी हैं जिनकी मैं स्तुति करती हुई गौरवान्वित हूँ। माँ रत्नमती जी ने अपने जीवन को तप संयम की साधना में स्वयं साधित तो किया ही। अपनी सन्तान पुत्र और पुत्रियों को भी वैराग्य की उस पावन गंगा में नहलाया जिससे अनेक भव्यों को ज्ञानाचरण का दिव्य मार्ग प्राप्त हुआ। बीसवीं शताब्दी में माँ का ऐतिहासिक गौरवमय जीवन दर्शन युगों-युगों तक वन्दनीय रहेगा।

जिस माँ ने महान् विदुषी परम तपस्वी युग प्रतीक १०५ आर्यिका ज्ञानमती माताजी जैसी पुत्री को जन्म दिया हो वह जननी तो यथार्थतः धन्य हो गई। माँ श्री का सारा परिवार संयम की सुगन्ध से वासित एवं ज्ञानाराधना की दिव्यता से प्रभावित है। आज उस महान् माँ के यशस्वी दीर्घ कल्याण की भावना का साकार रूप यह अभिनन्दन ग्रन्थ है। मैं उनके पावन श्री चरणों में कोटि-कोटि नमन करती हुई दीर्घ जीवन की सद्भावना के साथ श्री चरणों में श्रद्धाञ्जलि समर्पित करती हूँ।



हार्दिक विनयाञ्जलि

श्री ताराचन्द शाह, बम्बई

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी के सम्मान मे अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। यह बहुत ही प्रशंसनीय कार्य है।

इस अभिनन्दन ग्रन्थ से विश्वधर्मीय जैन समाज को जानकारी प्राप्त होगी कि जिस भव्य माता जी का अभिनन्दन हो रहा है, उसके कोख से ही पूज्य ज्ञानमती माता जी जैसी आर्यिकारत्न का जन्म हुआ है, जो आज आत्म उद्धार के साथ-साथ धर्म जागृति कर रही हैं। जिनकी प्रेरणा से जम्बूद्वीप जैसी महान् रचना का निर्माण हस्तिनापुर मे हो रहा है। उसी साथ मे ज्ञानज्योति ग्रन्थमाला का भी भव्य संग्रहालय बन रहा है। इतना ही नहीं जो इस कार्य में अपना जीवन समर्पण कर रहे हैं जैसे—श्री रवीन्द्र भाई, कु० मालती, माधुरी। वे पू० रत्नमती माताजी की देन है। मुझे आशा है कि यह ग्रन्थ समाज को चारित्र निर्माण करने मे बहुत उपयोगी रहेगा।

मैं माताजी के चरणों में विनयाञ्जलि अर्पित करके वीर प्रभु को प्रार्थना करता हूँ, उनको उत्तम स्वास्थ्य के साथ दीर्घायु प्राप्त हो।



विनयाञ्जलि

श्री बाबूलाल पाटोदी, इन्दौर

पूज्य माताजी ने अपने संयमित जीवन के साथ-साथ जिन दर्शन, जिन साहित्य एवं आचार्यों के पुनीत ग्रन्थों का आलोढ़न कर जो समाज एवं राष्ट्र को दिशा दर्शन दिया है वह वंदनीय है।

पूज्य माताजी ने साहित्य की सेवा करके बालकों के हृदय पटल पर आस्था एवं श्रद्धा जागृत करने का स्तुत्य प्रयास किया है। अपनी कठिन साधना एवं आत्मोन्नति के पथ पर चलते हुए अपनी साधुचर्या का अहंनिश पालन करते हुए माताजी ने धर्म की अटूट सेवा की है। वे वंदनीय है।

श्री हस्तिनापुर क्षेत्र को प्रगति के शिखर पर पहुँचाने का श्रेय भी इन्ही को है। पूज्य ज्ञानमती माताजी का अपूर्व तेजमय जीवन उनको प्रभावी शैली यह सब हम सभी के लिये गौरव की गाथा है।

अभिनन्दन ग्रन्थ विशिष्टता से प्रकाशित हो। मेरी हार्दिक विनयांजलि।



विनयाञ्जलि

श्री सुनहरीलाल जैन, आगरा

प्रातःस्मरणीय वयोवृद्ध त्याग तपस्या की मूर्ति पूज्य आर्यिका श्री रत्नमतीजी के सम्मान में अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। आपने अपने जीवन में सच्ची त्याग व तपस्या करते हुए जो महाव्रत धारण किया है वह समाज के लिये एक आदर्श है।

पूज्य आ० ज्ञानमती माताजी जैसी विदुषी और गृहस्थ अवस्था की आपकी पुत्री हैं तथा अन्य पुत्र-पुत्रियां व परिवार के अन्य सदस्य भी त्यागी एवं विद्वान् हैं। यह आपकी अनुकरणीय विशेषता है। आप साध्वी होने के साथ-साथ स्वाध्यायप्रेमी, सरल प्रकृति की उच्चकोटि की विदुषी हैं। इस अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन के समय मुझ जैसे तुच्छ प्राणी भी आपके चरणों मे सादर विनयांजलि अर्पित करते हुये कामना करता हूँ कि अपना आत्मकल्याण करते हुए हम जैसे सासारिक प्राणियों का मार्ग दर्शन करती रहें।



रत्नत्रय को साक्षात् प्रतिमूर्ति

श्री मदनलाल चांदवाड़, रामगंजमंडी

परम पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी का जीवन भव-भव में भटकते प्राणियों के लिए प्रेरणा का स्रोत है आर्षमार्ग व आगम की पोषिता, त्याग की प्रतिमूर्ति, धर्म-संरक्षिका पूज्य मातुश्री का जीवन अत्यन्त गौरवपूर्ण व श्रद्धा का आधार केन्द्र है। माताजी का स्वभाव अत्यन्त दयालु एवं सरल है, जो भी आपके दर्शन कर लेता है अपने जीवन को धन्य मानने लगता है। पूज्य माताजी के प्रवचन सुनकर मन अत्यन्त प्रसन्न व प्रभावित होता है।

परम पूज्य आर्यिका १०५ रत्नमती माताजी अनेक गुणों की पुज है आपकी सौम्य व सरल आकृति आपके आन्तरिक वैराग्य की परिचायिका है। पूज्य माताजी का हृदय निष्कपट व उदार है। विश्ववन्द्य वीतराग प्रभु के आगमानुकूल चर्या वाली प्रातः स्मरणीया, परम तपोधन, प्राणीमात्र की हितचिन्तक, बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह व ममता से रहित इन्द्रिय सुखों की लिप्सा से दूर, लोकोत्तर गुण सम्पन्न, धैर्यशालिनी, करुणामूर्ति पूज्य माताजी चिरायु होकर अबाध संयम को पालन करती रहें व हम जैसे अनभिज्ञ संसार कूप में गिरे प्राणियों को प्रेरणा का प्रकाश देकर मुक्ति पथ की ओर ले जाने वाला मार्ग दिखाती रहें यही भावना है।



विनयाञ्जलि

श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर

मैं परम पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी के प्रति विनयाञ्जलि अर्पित करते हुए महान् गौरव अनुभव करता हूँ कि वे आधिभौतिक-आधिदैविक व आध्यात्मिक त्रितापों से जीवों की रक्षा कर रही हैं। मुझे सद्विश्वास है कि उनका दिव्य व्यक्तित्व ही हम जीवों को सच्ची अध्यात्मानुभूति कराता रहेगा।



Vinayanjali

Dr. Sajjan Singh Lishk

M. A. (Maths), Ph. D. (Jaina Jyotisha) PATIALA

It is gratifying to give expression to my feelings through the holy medium of Āryakā Śri Ratnamatiji Abhinandana Grantha, a commemorative volumeto perpetuate the memory of Her Holiness Āryakā Śri Ratnamatiji who not only has herself denounced the worldly attachments and pleasure while treading upon the path of libration as propounded by the Holy Jinas since time immemorial, but has also given birth to, among other childern, two Āryakās, two Brahmacharinis, and one Brahmachari, including Her Holiness Āryakā Ratna Śri Gyanmatiji who has not only lighted the Gyanjyoti to ward off the darkness and to spread the message of happiness, welfare, peace and prosperity, but has also erected a Holy monument 'The Meru' a wonder in itself at Hastinapur and also leading the world on the path of knowledge through Digamber Jaina Triloka Research Institute of Cosmographic Research at Hastinapur and several National and International seminars, including the Jambūdvipa Gyan Jyoti Seminar held at Delhi in November 1982 wherein I had the opportunity to have her first audience, the first audience with a Digamber saint emitting a rare bliss to be found by myself for the first time after having attended the several seminars of other Jaina sects; thus but natural the remote corners of my mind are excited to express my deep sense of gratitude towards Her Holiness Āryakā Ratna Śri Gyanmatiji and Her Holiness Āryakā Śri Ratnamatiji.



ओजपूर्ण व्यक्तित्व

श्री महताब सिंह जैन, दिल्ली

आज कल त्याग धर्म का निभाना अति कठिन है काल का प्रभाव ऐसा है कि कोई वस्तु बिना मिलावट के मिलती नहीं है फिर भी ऐसी विषमताओं में त्यागी, व्रती लोग अपना जीवन सिंह वृत्ति से निभाते हैं धन्य है उनको इन काल के प्रभाव से तथा व्रती जीवन में घोर तपस्याओं के कारण ही उँगलियों पर गिने-जाने व्रती ही हमारी दिगम्बर समाज में हैं। परीषहजयी त्यागी जीवन अति कठिन होता है—फिर भी ये लोग आचार्य चूड़ामणि श्री १०८ शान्तिसागर महाराज द्वारा बताये आगमानुकूल मार्ग पर चल रहे हैं धन्य है उनको जिन्होंने मनुष्य जन्म पाकर और जैनधर्म में पैदा होकर त्याग व्रत ग्रहण किया ऐसे त्यागियों में हमारी पूज्य माता रत्नमती जी हैं निश्चय से यथा नाम तथा गुण वाली हैं यह अवश्य ही रत्न हैं जैसे रत्न की खान में रत्न ही उत्पन्न होते हैं इन्होंने ही नर-नारी रत्न पैदा किये हैं जिससे आपका रत्न होना और भी सार्थक हो जाता है।

स्वभाव से माता रत्नमती जी इतनी सरल प्रकृति और मन मोहने वाली हैं कि हमेशा अस्वस्थ रहते हुए भी चेहरे पर हँसी और शांति रहती है क्रोध का नाम कभी भी नहीं यह सब ऐसी हालत में और भी प्रशंसनीय है रोगरूपी परीषह को सहन करती हुई और साधु जीवन की सब क्रियायों को निभाती हैं। ऐसी पूज्यनीय माताजी को उपर्युक्त श्रद्धा के शब्दों के साथ पुनः पुनः नमोस्तु।



शत-शत वन्दन

श्री जयचन्द्र जैन एडवोकेट, जयपुर

पूज्य माताजी एवं उनका परिवार धन्य है जिनकी १३ सन्तानों में आज ४ पुत्री एवं एक पुत्र बाल ब्रह्मचारी हैं जो आज के युग में बिरले ही परिवारों में होगा। यह पाँचों ही सन्तानें विदुषी, मृदुल स्वभावी एवं धर्म प्रेमी हैं। ऐसा परिवार किसी के देखने में नहीं आया।

पूज्य रत्नमती माताजी परम तपस्वी, मृदुल स्वभावी हैं। इतना लम्बा गार्हस्थ्य जीवन एवं परिवार को त्याग कर दीक्षा ग्रहण कर कठोर महाव्रतों का पालन इस वृद्धावस्था में उनकी अपनी स्तुत्य कृति हैं। पूज्य आर्यिका माताजी चिरायु हों, यह मेरी भावना है।

पूज्य माताजी के चरणों में मेरा शत-शत वन्दन।



धन्य मातृत्व

मुनि श्री वर्धमानसागर जी
[आचार्य श्री धर्मसागरजी संघस्थ]

अखिल विश्वमें मातृत्व का गौरव नारी जाति को ही प्राप्त है और सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् ही उनका वह मातृत्व प्रगट होता है। विश्वमें लाखों-करोड़ों-अरबों माताएँ हैं जिन्हें सन्तानोत्पत्ति का गौरव प्राप्त है, किंतु यह इतनी महत्त्वपूर्ण बात नहीं है क्योंकि यह क्रम निरन्तर सन्तान क्रम से चला आ रहा है। अर्थात् इस विश्व में माताएँ भी हैं और सन्तानें भी हैं। मातृत्व उसी नारी का सफल है जिसने ऐसी सन्तान रत्नों को प्रसवित किया जो जगज्जीवों के लिये प्रकाश स्तम्भ का कार्य करती है। इस श्रेणी में तीर्थंकर आदि महापुरुषों की माताएँ आती हैं, जिन्होंने आदर्श महापुरुषों को जन्म दिया और वे आदर्श पुरुष विश्वके समक्ष ऐसी महान् ज्योति बनकर प्रकाशित हुए, जिनसे अनेकों ज्योतियाँ प्रकाशित हुईं। तीर्थङ्कर आदि शलाकापुरुषों—पुराणपुरुषों के समान ही अनेकों पुरुषार्थी आत्माओं ने इस पृथ्वीतल पर प्रकट होकर विश्व के समक्ष आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। ऐसे ही महापुरुष ईस्वी सन् की १९-२० वी शताब्दी मे भी प्रकट हुए हैं जिनमें आचार्य श्री शांतिसागरजी, वीरसागरजी, शिवसागरजी, धर्मसागरजी, देशभूषणजी, महावीरकीर्तिजी, विमलसागरजी आदि अनेकों नाम परिगणित किये जा सकते हैं। ये ऐसी ज्योतियाँ प्रगट हुई हैं जिन्होंने इस भौतिक चकाचौंध प्रधान युगमें भी रत्नत्रय धर्म का परिपालन स्वयं किया और अनेकों भव्यों को इस मार्ग पर लगाया।

इसी नारी जाति की शृंखला में हम आर्यिका श्री रत्नमतीजी को परिगणित कर सकते है। उन्होंने भी अपनी प्रथम सन्तानरूप में एक ऐसी कन्यारत्न को उत्पन्न किया जो आज भारतवर्ष में "गर्भाधान क्रिया से रहित होकर भी" जगन्माता के गौरव को प्राप्त है। वे है आर्यिकारत्न ज्ञानमतीजी माताजी जो १८ वर्ष तक 'मैना' के रूप मे घर मे रहकर भी अपने वैरागी जीवन का ही ताना-बाना बुनती रही और १८ वर्ष की अवस्था में आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर गृह पिंजरे से उड़ गईं। स्वयं तो उड़ी ही, किन्तु अनेकों जीवों को भी गृह कारागार से मुक्त कराने में सफल हुईं। सर्वप्रथम उनका पुरुषार्थ क्षुल्लिका दीक्षा के रूप में महावीरजी मे प्रगट हुआ जब उन्होंने आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज से उत्कृष्ट श्राविका के व्रतों को ग्रहणकर संयम के प्रथम सोपान पर आरोहण किया। ३ वर्ष के पश्चात् ही आपने स्त्रियोचित उत्कृष्ट संयम के रूप में आर्यिका के व्रतों को प्राप्त किया आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज से माधोराजपुरा (राज०) में। चारित्रोन्नति के साथ-साथ ज्ञान भी प्राप्त किया। ज्ञानाभ्यास में सदैव प्रयत्नशील रहते हुए आपने जैनदर्शन के अनेकविध विषयों से सम्बन्धित विभिन्न ग्रन्थों का आलोड़न-मन्थन किया और अपने विशिष्ट क्षयोपशम से न्याय, व्याकरण, सिद्धान्त, भूगोल आदि से सम्बन्धित विषयों पर साधिकार ज्ञान प्राप्त

किया। यद्यपि ज्ञानाभ्यास की अतृप्ति तो अद्यप्रभृति आपमें विद्यमान है तथापि ज्ञानाभ्यास का भी आपका अपना अनोखा ढंग है। आपको गुरुमुख से विशेष अध्ययन का सुयोग प्राप्त नहीं हो पाया फिर भी आपने अपने निकटस्थ बालब्रह्मचारी युवकों तथा बालब्रह्मचारिणी युवतियों को अध्यापन कार्य करके एवं विभिन्न चातुर्मासों मे शिक्षण द्वारा इतना विशाल चतुर्मुखी ज्ञान प्राप्त किया है। वस्तुतः आर्यिका ज्ञानमती माताजी ज्ञान व चारित्र की अनुपम रत्नज्योति हैं जो निरन्तर प्रकाशशील है।

ज्ञानमती माताजी की वाणी मे ही ऐसा आकर्षण है कि जब वे किसी भी प्राणी को संसार कूप से उद्धरित करने के लिये सम्बोधित करती हैं तो लगता है जैसे माता ही अपनी सन्तान को अमृत पान करा रही हैं। उनकी इस आकर्षक वाणी के जादुई प्रभाव से मै भी अछूता नहीं रह पाया। सन् १९६७ का सनावद नगर का वह चातुर्मास और वह मंगल दिवस १५ वर्ष के पश्चात् भी आज ज्यों का त्यों मेरे स्मृति पटल पर अंकित है जिस चातुर्मास में और जिस दिन आत्महित पथ पर चलने की प्रेरणा मुझे प्राप्त हुई थी। वह दिवस मेरे जीवन का स्वर्णिम दिवस है, उस दिन मैने आपको साक्षात् माता के रूप में पाया और पाया वह अमृतपान सदृश मधुर एवं हितकर आत्मसम्बोधन जिसने मेरे जीवन के भावी उन सारे सपनों को भंग कर दिया जो विश्व का प्रत्येक सामान्य व्यक्ति देखा करता है तथा बुनता रहता है अपने गृहारम्भ के मधुर ताने-बाने। आपसे मात्र सम्बोधन ही नही मिला अपितु मिला वह वात्सल्य जो एक आत्महित प्रेरिका माँ से अपेक्षित होता है। आपमें वात्सल्यामृत की वह अजस्रधारा बहती है जो सभी को निरन्तर तृप्त करती रहती है। आपको पाकर ऐसा अनुभव हुआ जैसे साक्षात् माता को ही पाया।

आज मैं जो कुछ भी हूँ वह सब माताजी की ही देन है। उनकी प्रेरणा एवं धर्मवात्सल्य को पाकर ही मैं आत्मकल्याण के इस उच्चतम पुरुषार्थ मे संलग्न हो सका हूँ। माताजी के जीवन की मधुरतापूर्ण अनुशासनात्मक पद्धति का जो अमृतफल आज समाज के समक्ष है वह नारी जाति को गौरवान्वित करता है कि एक नारी अपने संयमित जीवन के २८–२९ वर्षों में लगभग इतने ही प्राणियों को मोक्षमार्ग पर चलने हेतु प्रेरणा स्रोत बनीं। आपसे प्रेरित लोगों में आज कई प्राणी मुनि आर्यिका जैसे उच्च चारित्र का पालन कर रहे हैं तथा कुछ लोग अपनी युवावस्था में ही आजीवन ब्रह्मचर्य जैसी कठिन साधना का व्रत ग्रहण कर आत्मसाधना के साथ-साथ सामाजिक एवं धार्मिक गतिविधियों मे अपने आपको समर्पित किये है। माताजी के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि आपसे प्रेरणा पाकर आपकी जन्मदात्री माँ और एक बहिन भी आपके साथ ही आर्यिका के व्रतों को ग्रहणकर आत्मकल्याण के मार्ग में संलग्न हैं। आपके द्वारा प्रेरित लोगों में कुछ को छोड़कर शेष सभी बालब्रह्मचारी हैं। धन्य है वह माता और उसका मातृत्व जिन्होंने ऐसी सन्तान को जन्म दिया और स्वयं भी अपनी उसी सन्तान के पथ पर चल पड़ीं। मैं पूज्य आर्यिका श्री रत्नमतीजी के भी स्वस्थ जीवन एवं स्वस्थ रत्नत्रय की मंगल भावना भाता हूँ।



सतत जागरूक

आर्यिका जिनमती माताजी

[आचार्य श्री धर्मसागरजी संघस्थ]

निरतिशयं गरिमाणं तेन जनन्याः स्मरंति विद्वांसः।
यत्कमपि वहति गर्भं महतामपि यो गुरुर्भवति ॥

किसी नीतिज्ञ ने कहा है कि विद्वान् पुरुष ऐसी माता को अत्यधिक महत्त्व देकर स्मरण करते हैं जो अपने गर्भ में विलक्षण आत्मा को धारण करती है जो आत्मा आगे महान् का भी गुरु होता है—मार्गदर्शक होता है। ऐसी माता स्तुत्य है अभिवंदनीय अभिनंदनीय है जिसके संतान द्वारा वंश, समाज और धर्म उन्नत हो, आर्यिका रत्नमती माताजी ऐसी ही माता हैं जिनके कारण आज जैन समाज नयी-नयी सातिशय पुण्यमयी उपलब्धियाँ प्राप्त कर रहा है। आज भारत के कोने कोने मे जहाँ भी जैन समाज है परम पूज्या आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी का नाम विश्रुत है। ऐसे महान् संतान की जन्मदात्री माता रत्नमती जी है।

जब से ही मैंने इनको देखा कर्त्तव्यशील, सतत जागरूक, सच्चे देवगुरु शास्त्र के प्रति अटूट श्रद्धावान् ही देखा है। पहले गृहिणी अवस्था मे भी ये संसार परिभ्रमण कराने वाले मोह ममता से दूर रहती थीं, मेरे को आज भी वह दृश्य स्मृति में है जब परम पूज्या आर्यिका ज्ञानमती माताजी अनादिनिधन अनंतानंत तीर्थंकरों की निर्वाणभूमि तीर्थराज सम्मेदशिखर की यात्रार्थ पावन विहार कर रही थीं। साथ मे हम चार आर्यिकायें थी। क्रमशः तीर्थ वंदना करते हुए टिकैतनगर पहुँचे, कुछ दिन रहकर जब आगे विहार हुआ तब पुत्री मनोरमा [वर्त्तमान मे आर्यिका अभयमती माताजी] का माताजी के साथ जाने का दृढ़ निश्चय देखकर इस माता ने वियोगजन्य और स्नेहजन्य अपनी आंतरिक पीड़ा को दबाकर मनोरमा को गले लगा कर विदा किया था वह उनके धर्मश्रद्धा का ज्वलंत प्रतीक था। ऐसे तो सभी मातायें अपनी पुत्रियों को विवाह बंधन में बद्ध करके भी वियोग जन्य दुःख का अनुभव करती हैं, किन्तु वह माता धन्य है जो बन्धन से मुक्त होने के मार्ग में जाते हुए संतान के वियोग को सहर्ष सहती है, जिस प्रकार देश रक्षा हेतु वीरमाता अपने संतान को संग्राम में सहर्ष भेजकर वियोग को सहती हैं। आगे चलकर कुमारी मालती आदि और स्वयं माता मोहिनी देवी भी त्याग मार्ग में अग्रेसर हुईं। इन घटनाओं को देखकर एक दिन श्रीमान् कैलासचंद्र सर्राफ ने [माता मोहिनी देवी के जेष्ठ पुत्र] हँसी विनोद में कहा था कि हमारे यहाँ के 'म' प्रथम अक्षर वाले नामयुक्त सभी व्यक्ति मोक्षमार्गस्थ हो रहे हैं इसलिये अब नाम रखने में सावधान होना पड़ेगा। क्योंकि मैना, मनोरमा, मालती, माधुरी, मोहिनी, मंजु—इनमें प्रथम अक्षर म है और ये सबके सब महान् बनने के मार्ग में स्थित हैं।

रत्नमती माताजी जो भी कार्य या कर्त्तव्य करती हैं वह पूर्ण दक्षता एवं मनोभाव से करती हैं। गृहस्थ जीवन में देव पूजा आदि श्रावक संबंधी आवश्यकों को बिना व्यवधान के तन्मयता के साथ किया तो अब साधु जीवन के आवश्यकों को उसी तन्मयता के साथ करती हैं। स्वास्थ्य शिथिल और ढलती अवस्था में दीक्षित होने पर भी साधु जीवन के नित्य क्रिया सम्बन्धी स्तोत्र भक्ति आदि कंठस्थ कर लिये जब कि अन्य वृद्ध आर्यिकायें अनेक वर्षों से पूर्व दीक्षित होने पर भी उक्त विषय को कंठस्थ नहीं कर सकी थीं। वास्तव में बाप जैसा बेटा कुम्हार जैसा लोटा उक्ति है वैसी ही माँ जैसी बेटी उक्ति भी माताजी में सर्वथा चरितार्थ है।

यह माताजी तो मेरे लिये 'गुरूणां गुरुः' हैं, क्योंकि गाढ़ अज्ञान और मोहरूप अंधकार में फँसी हुई मुझको महान् प्रकाशमय रत्नत्रय मार्ग में लाने वाली परम पूज्या जगद्वंद्या आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी हैं और उनकी जन्मदात्री रत्नमती माताजी हैं। ज्ञानमती माताजी ने मुझको केवल त्याग मार्ग पर ही नही लगाया अपितु आगम, साहित्य, न्याय, व्याकरण आदि विषयों का अध्ययन भी कराया, इसमें माताजी को कठनाई भी हुई थी, क्योंकि मेरी अभिरुचि शास्त्राभ्यास में नही थी। किन्तु जिस प्रकार माता दुग्ध को नही पीने वाले बालक को जबरदस्ती दुग्धपान कराती है, औषधि को भी जबरन देकर नीरोग करती है उसी प्रकार मेरे को आगम ज्ञानरूप दुग्धपान कराके स्त्री पर्याय के उच्चतम आर्यिका पदरूप औषधि देकर मोहरूप रोग से मुक्त होने के लिये प्रयत्नशील किया, ऐसी परमपूज्या गर्भाधान क्रिया विहीन माता आर्यिका ज्ञानमती माताजी की प्रसवित्री रत्नमती माताजी चिरकाल तक संयमाराधना करते हुए इस धरातल पर विराजें यही पवित्र भावना है।



जननी धन्य हुई

आर्यिका आदिमती जी

[आचार्य श्री धर्मसागरजी संघस्थ]

यह भारतभूमि सदा से ही मातृ गौरव गरिमा से गौरवान्वित रही है। क्योंकि इस वसुन्धरा पर अनेक ऋषि महर्षि माता की पवित्र कुक्षि से अवतरित होकर सत्-पथगामी हुए तथा वर्तमान में भी अनेक महानात्माओं की जगमगाती हुई आत्म-ज्योति में भव्यजीव अपने चित्त को उज्ज्वल करने के लिए सतत प्रयत्नशील है।

यदि विचार करके देखें कि इन मनस्वियों में महानता कैसे प्राप्त हुई तो उत्तर स्वयं मिलता है कि ये उस जननी की देन है जिसके पवित्र संस्कारों से संस्कारित होकर उत्पत्ति एवं वृद्धि हुई।

ऐसी ही श्रेष्ठ जन्मदात्रियों में से माता रत्नमती जी को भी यह सौभाग्य प्राप्त है, जिन्होंने जिनशासन प्रभाविका आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी को जन्म देकर

अपने को धन्य माना । माताजी जन्मान्तर के सुसंस्कारों से तो संस्कारित ही थीं परन्तु मां (मोहिनी) रत्नमती जी के संस्कार पाकर तो इतनी प्रबलता प्राप्त हुई कि स्वयं मोहिनी माँ भी इनको मोहित न कर सकी, 'तथा अपने मैना' इस जन्म नाम को सार्थक करते हुए १८ वर्ष की अल्पवय में गृह पिंजरे से निकल अनेक विरोधों को सहन करते हुए वीरता का परिचय दिया और चारित्र जैसे दुःसह मार्ग पर चलने के लिए अग्रसर देख कर गुरु देशभूषण जी ने क्षुल्लिका दीक्षा का नाम वीरमती रखा तथा वृद्धिगत ज्ञान और चारित्र को देखकर आ० वीरसागर जी ने आर्यिका दीक्षा देकर ज्ञानमती इस नाम से संबोधित किया ।

त्याग तपस्या के इन ३० वर्षों में आत्महित के साथ साथ परहितार्थ जो कार्य किये वे माताजी के साहस एवं कार्यनिष्ठा का परिचय दे रहे हैं, स्त्री जाति के अन्दर इस प्रकार की कर्मठता का होना साधारण बात नहीं । गर्भाधान क्रिया से रहित इस मां के अनंत उपकारों से मैं भी उपकृत हूँ जिन्होंने पूर्ण वात्सल्य प्रदान करके विद्याध्ययन एवं आर्यिका पद के योग्य बनाया, इस प्रकार अनेक बालक बालिकाओं को चारित्र निर्माण में संलग्न किया है ।

समाजोत्थान के लिए साहित्य सृजन करने में अहर्निश प्रयत्नशील हैं, साथ ही इनके उपदेश से प्रेरित होकर जम्बूद्वीप (जैन भूगोल) की रचना का कार्य भी प्रारंभ है । एवं साधना की जाज्वल्यमान ज्ञानज्योति के प्रकाश में चिर प्रसुप्त अनेक आत्माओं को आत्म जागरण का सुअवसर प्राप्त हो रहा है । ज्ञान विज्ञान से संपन्न विशिष्ट क्षयोपशम एवं प्रतिभा देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि सचमुच में ही इस ज्ञान ने मूर्तरूप धारण करके जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति के छल से भारत में भ्रमण करना प्रारंभ कर दिया हो । यह जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति संस्कृति की प्राचीनता का स्मरण दिला रही है तथा वर्तमान रचनात्मक जम्बूद्वीप की ओर जन समुदाय का ध्यान केंद्रित कर रही है कि वास्तव में जैन भूगोल क्या है और हमारी पृथ्वी कितनी बड़ी है तथा पृथ्वी किस प्रकार की रचना से विशिष्ट है ।

वर्तमान युग में ऐसी महान् साध्वी का आविर्भाव समाज के लिए सौभाग्य की बात है । यह धरातल ऐसी महान् विभूतियों से पवित्र एवं गौरवशाली है, इस प्रकार माताजी 'यावदेते पवर्गः' हमको मार्ग दर्शन देवें ।

माताजी की इन सब विशेषताओं को देखकर मैं तो ऐसा मानती हूँ कि यदि रत्नमती जी नही होतीं तो ये विभूति हमको कहाँ से प्राप्त होती इसलिये ये सब आ० रत्नमतीजी का ही प्रताप है तथा माँ महापुण्यशालिनी है जो स्वयं भी पुत्री के पद का अनुसरण करके अपने जीवन को सफल कर रही हैं ऐसी माँ को धन्य है ।

सच्चा इलाज

आर्यिका अभयमती माताजी

मैं सन् १९५७ से घर में माता पिता से कहती रहती थी कि मुझे आर्यिका ज्ञानमती माताजी के दर्शन करा दो, मैं उन्हीं के पास रहूँगी, पढ़ूँगी और दीक्षा लेऊँगी। किन्तु मेरे पिता बहुत ही मोही जीव थे। वे किसी भी हालत मे मुझे माताजी के पास भेजना तो क्या दर्शन कराने को भी तैयार नहीं थे। इस मानसिक चिंता से मैं अस्वस्थ रहने लगी। फिर भी पिताजी अनेक डाक्टर वैद्यों के इलाज कराते रहे लेकिन संघ में भेजने की बात आते ही गुस्सा होने लगते। ऐसी स्थिति मे ५ वर्ष निकल गये। अंत-तोगत्वा मेरे पुण्य का उदय आया। सन् १९६२ में लाडनू मे पंचकल्याणक प्रतिष्ठा थी। माता मोहिनीजी मुझे लखनऊ दवाई दिलाने ले गई थी। मंदिर जी मे कुकुम पत्रिका पढ़ते ही उनके मन मे माताजी के दर्शन करने की भावना जाग्रत हो उठी। मेरी अस्वस्थता देखकर उन्होंने यह भी सोचा कि एक बार इस मनोवती को भी माता जी का दर्शन करा दूँ जिससे इसे मानसिक शांति मिले। इन्होंने उस समय पिता से बिना पूछे ही बहुत बड़े साहस से लाडनू जाने का निश्चय कर लिया और छोटे से रवीन्द्र कुमार को तथा मुझे साथ लेकर लाडनू पहुँच गई। वहाँ से घर सूचना करा दी कि मैं यहाँ आ गई हूँ। आप लोग चिन्ता नही करना। ये वहाँ प्रतिष्ठा के बाद लगभग एक माह ठहरीं और संघ को आहार देने का लाभ लिया।

वहाँ पहुँचकर माताजी का दर्शन करके तथा इतने बड़े संघ का दर्शन करके मैं बहुत प्रसन्न हुई। मुझे ऐसा लगा कि मानों कोई अपूर्व निधि ही मिल गई हो। मैंने माँ से कहा कि अब चाहे जो कुछ भी हो जाय मैं घर नहीं जाने की। मुझे तो बस तुम दीक्षा दिला दो। खैर! बहुत कुछ पुरुषार्थ करके मैने एक वर्ष तक का ब्रह्मचर्य व्रत ले ही लिया। अब मैं बिना औषधि के भी स्वस्थ हो गई। सन् ६२ का चातुर्मास लाडनू ही हुआ। अनंतर माताजी ने आर्यिकाओं का संघ लेकर सम्मेदशिखर के लिये विहार कर दिया। रास्ते में छह महीने लगे मैंने बराबर चौका किया और रास्ते को सर्दी-गर्मी को सहन किया। मुझे सन् १९६४ में दीक्षा भी मिल गई। तब से लेकर आज मैं अनेक बार सोचा करती हूँ कि माता मोहिनी ने मेरा सच्चा इलाज कर दिया था। मुझे माता जी के दर्शन कराकर सच्ची दवाई दिलाई थी। सचमुच में यह साधु संगति ऐसी दवा है कि जो जन्म मरण के रोगों को भी नष्ट कर देती है। पुनः छोटे मोटे रोग दूर हो जायें तो क्या बड़ी बात है।

मैं सोचती हूँ कि यदि ये मुझे उस समय दर्शन कराने न लातीं तो आज मुझे यह रत्नत्रय की निधि कैसे मिलती इसलिये ये मेरे शरीर की माता होने के साथ-साथ मेरी सच्ची हितैषिणी माता भी हैं।

यद्यपि मेरा पौद्गलिक शरीर कमजोर है फिर भी मेरा मनोबल अच्छा है। इसी के बल पर मैंने सन् १९७१ में माता मोहिनी की दीक्षा के बाद बुन्देलखण्ड की

यात्रा के लिये संघ छोड़ा था। आज १२ वर्ष हो गये इसी रुग्ण शरीर से मैंने सारी बुन्देलखण्ड की यात्रायें कर ली हैं। मुझे देवगढ़, चन्देरी, कुण्डलपुर के बड़े बाबा आदि का दर्शन कर कितना आनन्द हुआ है सो मैं कह भी नहीं सकती हूँ। मुझे आर्यिका ज्ञानमती माताजी और आ० शिवसागरजी, आ० धर्मसागरजी महाराज से १० वर्ष तक जो ज्ञानामृत का लाभ मिला है मैं उसी को जन-जन में बाँट रही हूँ। माता मोहिनी ने दीक्षा से पूर्व किशनगढ़ मे मेरे पास एक माह रहकर मुझे यही प्रेरणा दी थी कि तुम सतत ज्ञानाराधना में लगी रहो।

आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव ने भी कहा है—

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं ममियभूदं।
जरमरण बाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं॥

जिनेन्द्रदेव के वचन एक महान् औषधि रूप हैं, ये विषयसुखो का विरेचन—त्याग कराने वाले हैं, अमृत स्वरूप है, जरा, मरणरूपी व्याधि को दूर करने वाले हैं और सम्पूर्ण दुःखों का भी क्षय करने वाले है। इसमे कोई सन्देह नही कि जिनेन्द्र देव के वचनरूपी अमृत से ही मै अपने जीवन मे तृप्ति का अनुभव करती रहती हूँ।

मैं प्रत्येक माताओं से यही कहूँगी कि वे अपने पुत्र-पुत्रियों को कभी भी धर्म पथ में चलने से न रोकें। प्रत्युत माता मोहिनीजी अर्थात् आर्यिका रत्नमती माताजी के समान वे उन्हें मोक्षमार्ग में चलते समय सहायता करते हुए सच्ची माता बनें। रत्नमती माताजी मे जितने गुण हैं मै उनका क्या वर्णन कर सकती हूँ। उनके आदर्श जीवन को पढकर जो महिलायें अपने में उनका एक गुण भी ले लेंगी तो वे अपने गार्हस्थ्य जीवन को भी सुखी बना लेंगी और परलोक में भी स्त्री पर्याय से छूटकर कुछ ही भवों में मोक्ष प्राप्त कर लेंगी, इसमें सन्देह नही है।

आर्यिका रत्नमती माताजी का स्वास्थ्य अस्वस्थ सुनकर इनको देखने की इच्छा हो जाती है। देखो कब सुयोग मिलता है।



कर्त्तव्यपरायणा माताजी

पूज्य आर्यिका शुभमती जी

[आचार्य श्री धर्मसागरजी संघस्थ]

इस संसार में सैकड़ों नारियां अनेकों पुत्रों को जन्म देती हैं किन्तु सभी नारियाँ स्वयं गुणवती, बुद्धिमती, भाग्यवती नहीं हुआ करतीं। न उनकी संतानें गुणवान् भाग्यवान् होती हैं। कतिपय ही महिलायें गुण विशिष्ट होती है। कला चातुर्य आदि गुण हैं, ज्ञानावरण दर्शनावरण तथा अन्तराय कर्मों के विशिष्ट क्षयोपशम की प्राप्ति बुद्धि है जिसके द्वारा हेयोपादेय का विवेक होना है, सातावेदनीय आदि पुण्य प्रकृतियों में से मनुष्य के योग्य अधिकाधिक पुण्य प्रकृतियाँ उदय स्थित होना भाग्य है। जगत्

में उक्त कला चातुर्यादि गुण युक्त गुणवान् व्यक्ति जितने उपलब्ध हैं उनकी अपेक्षा हेयोपादेय का विवेक कराने वाली बुद्धि से संपन्न व्यक्ति अल्पसंख्यक हैं और उनसे भी अल्पसंख्यक वे हैं जिनके पास पूर्वोपार्जित विशिष्ट शुभ कर्मोदय है। भाग्य के साथ यदि कला चातुर्यादि हैं तो वे गुण प्रकाश में आयेंगे अन्यथा जनशून्य वन में विकसित केतकी पुष्प के समान उदित होकर मुद्रित हो जायेंगे। इसी प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति (हेयोपादेय विवेक युक्त) भाग्य के अभाव में लौकिक या पारमार्थिक कार्यों में अग्रसर होकर जन जन को मार्गदर्शन नहीं करा सकता है भले ही वह स्वकल्याण कर ले वह तो घट दीपक सदृश ही रहेगा।

गुणवान् और बुद्धिमान् होते हुए भी भाग्यहीनता के कारण (विशिष्ट पुण्योदय के अभाव के कारण) पाण्डवों पर अनेक विपत्तियां आयीं, माता कुन्ती ने बुद्धिमान पुत्रों को तो जन्म दिया किन्तु भाग्यवान् को नहो, अतः उस माता को भी विपत्ति का सामना करना पड़ा। परन्तु माता मोहिनी देवी स्वयं गुणवती, बुद्धिमती और भाग्यवती थी और उन्होंने इन्हीं गुणों से परिपूर्ण पुत्र पुत्रियो को जन्म दिया, जिनको पाकर यह वसुन्धरा भी सार्थक नामवाली हुई। जिस प्रकार रत्नों की खानि से विशिष्ट-विशिष्ट रत्न प्रादुर्भूत होते हैं उसी प्रकार माता **मोहिनी देवी** के रत्न कुक्षि से विशिष्ट रत्न महान् विदुषीरत्न आर्यिकारत्न पूज्या ज्ञानमती माताजी, पूज्या विदुषी अभयमती माताजी, बाल ब्र० रवीन्द्र कुमार, कुमारी मालती, कुमारी माधुरी उत्पन्न हुए अतः सर्वथा सार्थक नाम आर्यिका रत्नमती माता जी हुआ। प्रायः करके मातायें सन्तान योग्य बनाकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेती हैं, किन्तु माता मोहिनी देवी ने गृहस्थ सम्बन्धी कर्तव्य के पूर्ण होते ही स्वकल्याण का अन्तिम उच्चतम पद आर्यिका पद स्वीकार किया और इस भौतिकवाद में महिलाओं के लिए एक अपूर्व आदर्श उपस्थित किया।

प्रतापगढ़ चातुर्मास में मैंने माता मोहिनी देवी का दर्शन किया, साक्षात्कार किया, आहारदान से निवृत्त होकर यह पूज्या ज्ञानमती माता जी के निकट धर्म सम्बन्धी प्रश्न किया करती। तभी उनकी तेजस्विता का स्पष्ट आभास हुआ। मातायें अपनी सन्तानों के पालन मे तो दक्ष हो सकती हैं किन्तु उन्हें कर्तव्य अकर्तव्य का भान कराने में प्रायः शिथिल देखो जाती हैं किन्तु माता मोहिनी देवी जब जगत् माता के रूप में पूज्या आर्यिका रत्नमती माताजी हुईं। इसके बाद राजधानी देहली की एक मधुर स्मृति मेरे मानस पटल पर आज भी अंकित है कि दरियागंज बालाश्रम में सम्पूर्ण संघ विराजमान था श्रीमान् कैलाशचंद जी सर्राफ (माता मोहिनी देवी के जेष्ठ-सुपुत्र) सपरिवार दर्शनार्थ पधारे। उनका एक वर्षीय बालक आदिकुमार अपनी बहिन मंजु के केश क्रीड़ावश खींच रहा था यह देख कैलाशचंद को हँसी आ रही थी किन्तु पूज्या माताजी ने कहा क्या तुम इस तरह हँस कर बच्चे को अवगुण सिखा रहे हो ? कितनी अनुशासनबद्धता एवं कर्तव्यपरायणता है इन माता के हृदय में ? इन माता ने जिस प्रथम कन्यारत्न को जन्म दिया है जिससे जैन जगत् में जो अपूर्व

लाभ, अपूर्व ज्ञान गंगा बही है उसका तो मूल्यांकन ही नहीं किया जा सकता। परम-पूज्या विदुषीरत्न, न्याय प्रभाकर, सिद्धान्तवारिधि, आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी रूप सूर्य के प्रताप एवं प्रकाश में आज संपूर्ण जैन समाज उद्योतित है। ऐसी जगत् पूज्या आर्यिका रत्नमती मानाजी दीर्घायु हों। इसी शुभ भावना एवं वंदामि के साथ मैं उनके प्रति अपनी विनयाञ्जलि अर्पित करती हूँ।



रत्नत्रय की जन्मदात्री माँ

श्री १०५ आर्यिका विशुद्धिमती जी

जगत् मे नारी जीवन के नाम से भी ग्लानि करने वाले बहुत से नर पाये जाते हैं, भविष्य में बनने वाली नारी जब कन्या रूप में जन्म धारण करती है तब माता-पिता, कुटुम्बी, स्वजन और परिजन सभी के चेहरे फीके उदासीन दिखाई देने लगते है। स्वजनादिको द्वारा पूछे जाने पर कि "क्या हुआ है" तो नीचा सिर किये रूखा-सा उत्तर मिलता है कि "लड़की हुई" है। मेरे भाइयो ! जन्म से ही उदासीनता उत्पन्न कराने वाली यह कन्या जब यौवनावस्था को प्राप्त होती है तब तो माता-पिता की उदासीनता देखते ही बनती है। "न दिन में भूख है तो न रात में नींद" इस स्थिति से छुटकारा पाने वाले माता-पिता बड़ी स्वतन्त्रता का अनुभव करते हैं। पाठकगण देखेंगे कि माँ-बाप ने स्वतन्त्रता का अनुभव कर सन्तोष की श्वांस ली है लेकिन क्या उस कन्या ने भी स्वतन्त्रता की चादर ओढी है, वही बालिका जिसने नारी का रूप धारण किया है वह पतिगृह की परतन्त्रता में जकड़ी। पितागृह मे फिर भी स्वतन्त्रता से हँमती बोलती थी, लेकिन अब ……सभी जानते हैं, उस मर्यादा को कहने की आवश्यकता नही। आगे इसी जीवन की तीसरी अवस्था में प्रवेश किया, जिसने नारी को माता का रूप दिया वही बच्चों की परतन्त्रता ग्रहण किये हैं, पतिगृह में समय पर बड़ों को भोजन करा कर भोजन करती थी यहां अब भोजन के समय का भी पता नही और वह भी दो चार सुनने के बाद।

आइये, देखें इस नारी जीवन को वास्तविकता को कि यह पर्याय स्वयं ही दुःख रूप है। मायाचार तथा कुटिलता की प्रचुरता के कारण आगम में भी नारी को तिरस्कार रूप भाषा मे पढ़ते हैं और उसके व्यामोह से सदा दूर रहे ऐसी शिक्षा भी उसी आगम से ओर आचार्यों से पाते है।

लेकिन ध्यान रहे यह जैनागम एकान्त कथन को स्वीकार नही करता। जहाँ परमात्मा बनने में बाधक इस नारी को स्वीकार किया वहीं परमात्मा बनने वाली आत्मा को जन्म देने वाली रिक्त स्थान को पूर्ति भी यही नारी बनी अर्थात् नारायण को उत्पन्न करने वाली भी यही नारी है।

आज हम जिन आर्यिका माँ का स्मरण कर रहे हैं वह भी इस पदवी के पूर्व सद्गृहिणी (नारी) का रूप धारण किये थीं। इनमें भी हम पूर्व कथित आगम में कही

जाने वाली माँ नन्दा और सुनन्दा की छटा देखते हैं। जिस तरह माँ नन्दा ने ब्राह्मी और सुनन्दा ने सुन्दरी को जन्म देकर करीबन १८ कोड़ाकोड़ी सागर से लुप्त नारी जीवन की उच्चतम अवस्था को धारण करने वाली पुत्रियों को जन्म दिया था, उसी तरह सद्गृहिणी नाम को सार्थक करने वाली मोहिनी देवी ने (जो वर्तमान में आर्यिका रत्नमती जी हैं) एक नहीं, दो नहीं, बल्कि ९ कन्या और ४ पुत्रों को जन्म दिया। जिनमें ३ पुत्र और ५ पुत्रियाँ सद्गृहस्थ और सद्गृहिणी का रूप धारण किये हैं जिन्होंने शायद अपनी माँ से भी होड़ लगाई हो ऐसे रत्नों को उत्पन्न करने में अर्थात् धर्म मार्ग यथावत् चलता रहे इसलिये। और १ पुत्र व ४ पुत्रियाँ गृहस्थ धर्म स्वीकार किये बिना ही जिन्होंने रत्नत्रय मार्ग को प्राप्त किया व करने के लिये अग्रसर हैं इनमें भी २ पुत्रियाँ नारी जीवन में प्राप्त होने वाले रत्नत्रय की उच्चतम साधिका बन चुकी हैं। जिसमें प्रथम यथानाम तथागुण को प्राप्त होने वाली पूज्य आर्यिका ज्ञानमती जी हैं जो कर्तृत्व और वक्तृत्व गुण से तथा लेखनी के द्वारा अपने नाम को अजर-अमर बना चुकी हैं। तथा आत्मा के अमरत्व बनने की भूमिका मे परम साधिका के रूप में सतत संलग्न हैं। तथा द्वितीय नं० को प्राप्त आर्यिका अभयमती जी है वह भी सोये हुए जगत् को जगाने में सावधान रहकर निरन्तर अपनी साधना में कुशल है, व १ पुत्र रवीन्द्रकुमार भी ब्रह्मचर्य व्रत से अपनी आत्मा को सुशोभित कर रहे हैं ऐसे रत्नो को उत्पन्न करने वाली माँ है वर्तमान आर्यिका रत्नमती जी। लेकिन रत्नों की उपमा भी क्यों ? वह तो जड़ है। अरे ! जिनके अन्दर साक्षात् रत्नत्रय का प्रकाश प्रस्फुटित हुआ है ऐसे रत्नत्रय को प्राप्त होने वाली आत्माओं की जन्मदात्री को "रत्नत्रय की जन्मदात्री" कह देना अयुक्त न होगा, क्यों की संगति में भी यह कथन असत्य न होगा। अतः रत्न व रत्नत्रय की जन्मदात्री माँ आर्यिका रत्नमती माताजी के चरणों में श्रद्धा भक्ति युक्त वंदामि व शत शत वन्दन।



चतुर कुंभकार का सुन्दर घड़ा

आ० शिवमती माताजी

जिस प्रकार से कुंभकार घड़े को बनाते समय ऊपर से उसे खूब ठोकता-पीटता है किन्तु अन्दर से उसे मुलायम हथेलियों से संभालता है। यदि यह प्रक्रिया न अपनाई जाए तो घड़ा सुन्दर और सुडौल नहीं बन सकता है। उसी प्रकार से पू० रत्नमती माताजी ने भी अपनी सन्तानों को बाह्य कठोर अनुशासन और अन्तरंग के वात्सल्य और स्नेह से सींचा है जिसका फल हमें प्रत्यक्ष में दिख रहा है कि आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माता जी और आ० अभयमती आदि महान् रत्नों का प्रकाश संसार में फैल रहा है। मुझे भी आपका सान्निध्य १० वर्षों से निरन्तर प्राप्त हो रहा है। अभी भी आपका संघस्थ मालती, माधुरी आदि शिष्याओं पर कड़ा अनुशासन रहता है किन्तु अन्तरंग से हम सभी के प्रति जो वात्सल्य भाव है वह वास्तविक मातृत्व की पहचान

कराता है। आपको शास्त्र स्वाध्याय सुनाते समय कई बार मैंने यह लक्ष्य किया है कि जरा-सी शाब्दिक या सैद्धांतिक त्रुटि आपको बर्दाश्त नहीं होती है। कई बार सूक्ष्म शंकास्पद विषयों पर आप माता जी से चर्चा करके समाधानी करती हैं। मैं समझती हूँ कि आपके इन्हीं धार्मिक संस्कारों ने ही सन्तानों पर अमिट छाप डाली है।

आपका स्वास्थ्य प्रतिकूल होते हुए भी चर्या सदैव आगम के अनुकूल रहती है। कभी किसी प्रकार की आपकी क्रिया में मैंने शिथिलता नहीं देखी। मैंने आपके पास रहकर जो स्नेह और वात्सल्य प्राप्त किया है वह मेरे लिए अकथनीय है।

मैं जिनेन्द्र भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि पू० रत्नमती माता जी दीर्घ काल तक हम लोगों को छत्र-छाया प्रदान करते रत्नत्रय की आराधना करती रहें।



वीरप्रसवा आर्यिका माता

सुश्री ब्र० विद्युलता हीराचन्द्र शाह, शोलापुर

माताजी रत्नमती का प्रथम दर्शन



श्रवणबेलगोला भ० गोमट्टेश्वर सहस्राब्धि महामस्तकाभिषेक के १२ साल पहले का समय था। उत्तरप्रांतीय यात्रियों के ठहरने के लिये शोलापुर श्राविकासंस्थानगर एक अनिवार्य स्थान है। इसलिये श्राविकाश्रम में उत्तर प्रांतीय यात्रियों का आवागमन चालू था। एक दिन की घटना मैं कभी नहीं भूलूँगी। कार्यालय में मै कुछ कामकाज में व्यस्त थी। सहसा मेरे सामने एक उत्तरप्रांतीय महिला आकर खड़ी आवाज में पूछ-ताछ कर रही थी। "मुझे विद्युलताजी को मिलना है।" पहले पहल मैंने पूछा—"आपको क्या चाहिये ? कहाँ से पधार रही हो।" उन्होंने एक वाक्य में परिचय दिया—"मै ज्ञानमती माताजी की अम्मा (माँ) हूँ। टिकैतनगर से आई हूँ। मानो अपनी सुपुत्री पर माँ को गौरव हो रहा था। कन्या को माँ के प्रति गौरव सहज बात है। लेकिन माँ को कन्या के प्रति गौरव आना विशेषता है। इसमें माँ कन्या की महती सन्तुलित होती है। वीरप्रसवा माँ मोहिनी की अमिट छाप अभी दिल पर है।

पूज्या रत्नमती माताजी गृहस्थावस्था में पार अपनी जान पहचान दे रही थी। गृहस्थावस्था की आदर्श श्राविकोत्तमा, सुगृहिणी की सौंदर्याकृति देखकर मैं क्षणभर चकाचौंध हो गई। क्योंकि सौ० माँ मोहिनीबाई जी के बारे में तब तक बहुत कुछ सुना था। देखना तो आज हो गया। पूज्या रत्नमती माताजी की सुकन्या ज्ञानमती माताजी से मेरा परिचय इसके पहले था। मेरी जन्मदा स्व० पूज्या चन्द्रमती माताजी ने १०८ स्व० पू० वीरसागर, स्व० आ० शांतिसागरजी के प्रथम पट्टाधीश महाराजजी से क्षुल्लिका दीक्षा जयपुर खानिया मंदिर में उन्हीं के प्रेरणा से धारण की थी। तब स्व० पूज्य वीरसागरजी के संघ में पूज्या ज्ञानमती माताजी का अध्ययन नेत्रदीपक था। उनसे प्रभावित मेरी माँ (पूज्या चन्द्रमती) और मैं काफी मात्रा में थी।

शोलापुर श्राविका संस्थानगर में प्रथम पदार्पण

षोडशवर्षीया एक युवती वैराग्य की तेजपुंज काया से शोलापुर आर्यिका संस्थानगर को स्व० पू० पायसागरजी के शुभागमन के समय आकृष्ट किया था। तब वह क्षु० वीरमती थीं। क्षु० वीरमती को तब श्राविकाश्रम में अध्ययन हेतु रहने के लिये हमने तथा समाज ने खूब आग्रह किया था। लेकिन जो स्वयं प्रकाशी ज्ञानमय है—उन्हें कुछ अन्य साधनों की आवश्यकता नहीं होती। आगे चलकर क्षु० वीरमतीजी का आर्यिका ज्ञानमतीजी में रूपांतर हुआ। तब तो मैं और कई छात्रवृन्द, माताजी के सुशिष्य बन गये।

पू० माताजी का उत्कृष्ट आदर्श

स्व० पूज्य माताजी चन्द्रमती का मुझे दीक्षा के बाद कभी कभी आशीर्वाद पत्र आता था। हर पत्र में ज्ञानमती माताजी का ही 'आदर्श' सामने खीचने के लिये प्रेरणा रहती। प्रत्यक्ष में हर छुट्टियों में स्व० आचार्य शिवसागर संघ मे जानी थी। मोहवश जाना होता था, तो भी सत्संग का 'पारस' पाकर लोह सदृश जीवन भी सुवर्ण जैसा मोल पाता था। मेरी माँ मुझे तब कहा करती "देखो कितनी छोटी सी उमर में वह कैसा महान् पुरुषार्थ कर रही है। उनका अनुकरण करना चाहिये।" कई छुट्टियाँ पूज्य ज्ञानमती माताजी के अमृतयोग मे बिताई हैं। वात्सल्यमूर्ति ज्ञानमती माताजी ने हर बार मुझे ज्ञानामृत पिलाया ? मेरी सारी व्यवस्था छुट्टियों मे रहने की स्वय श्रावको द्वारा करती थीं। आहारदान देने के लिये मै और मेरी सहेली प्रभावती बेन (सुप्रभा माता) जाया करती तब माताजी हमारा और श्राविकाश्रम का कितना गौरव दिल खोलकर समाज से करवाती। माताजी का आदर्श तब से मानस पट पर अंकित हुआ है। जैसे आइने में सुन्दर चित्र उत्कीर्ण किया हो।

शोलापुर में अमृत की बरसात

१९६६ का चौमासा शोलापुर की संस्था के इतिहास में सुवर्णाङ्कित हो चुका है। पूज्य ज्ञानमती माताजी का संघ ६ आर्यिकाओ का था। श्राविकाश्रम का अहोभाग्य जाग उठा। सत्संगति की अमृत वर्षा हो रही थी। श्राविकाश्रम की छात्राओं के सामने कितने ऊँचे और पवित्र आदर्शमयी जीवन थे। बालिकाओं का जीवन गठन होने मे अपूर्व सहयोग मिलता रहा। श्राविकाश्रम की अणुरेणु पावन बन गई। महीने सत्संग पाया। पूज्य माताजी के ओजस्वी प्रवचन स्नेह निर्झर बहते थे। शोलापुर का ही नही—सारी भारतीय जनता अपनी प्यास 'ज्ञानामृत' से बुझाया करती थी। आज भी उनके 'ग्रन्थ' 'प्याऊ' बनकर ज्ञानपिपासा तृप्त करते हैं। हर शनिचर में सुबह स्कूल की सहस्र छात्राओं के लिये माताजी प्रवचन दिया करती थी। आश्रम में संघ का निवास था। पूज्या अभयमती माताजी तो हँसी-मजाक में कहा करतीं "जिस माँ का दूध ज्ञानमतीजी ने पिया है—उसी माँ का मैंने भी पिया है—मैं भी उनके समान बनूँगी।" तब वे नवदीक्षिता क्षुल्लिका थी। आज बड़ा गौरव हो रहा है कि—अभयमती माताजी ने भी अपना अनोखा आदर्श निर्माण किया। चौमासा जहाँ होता है, वहाँ

काफी प्रभावना एवं धर्म जागृति समाज में साहित्य, प्रवचन, तथा महाव्रतों के पालन से हो रही है। संक्षेप में पूज्य रत्नमती माताजी ने हमे ऐसे अनमोल रत्न दिये हैं जिनका मूल्यांकन सही-सही कर नहीं सकेंगे।

ऐसी स्वपरोपकारमयी माताजी के चरणों में बार-बार सविनय त्रिवार नमोऽस्तु ।



धन्य है ऐसी अनुपम माँ

ब्र० कमलाबाई
संचालिका, श्री दि० जैन आदर्श महिला विद्यालय, श्रीमहावीरजी

इस अवनितल पर अवनरित हुए मानव-समाज को सत्पथगामी एवं यशभागी बनाने का श्रेय किसको है ? भूले भटकों का मार्ग प्रदर्शक कौन है ? प्रतीची के अंचल में प्रयाण करते हुए भगवान् भास्कर को रोकने मे कौन समर्थ है ? विश्व बन्धुत्व के निर्मल नीर को प्रवाहित करने वाली सरिता कौन है ? इन सबका उत्तर है—

'सती साध्वी त्यागिनी नारी'

आदि सृष्टि से ही नारी अपने क्षेत्र में अद्वितीय रही है। अतीत के अंचल में पलकर युग आलोकित किया है। निराशा सरोवर मे आशा अम्बुज खिलाकर कमनीयता की वृद्धि की है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कहा है कि—"भारत का धर्म भारत के पुत्रो से नही अपितु पुत्रियों की कृपा पर स्थिर है। यदि भारत की नारियाँ अपना धर्म छोड़ देतीं तो अब तक भारत नष्ट हो गया होता।" अतः हम देखते हैं—नारी के नेत्रों में प्रेम, सहानुभूति, त्याग, रक्षा एवं आशा की मूर्तियाँ विराजमान हैं।

वह भारत वसुन्धरा धन्य है जहाँ की नारियाँ अपने शील, त्याग, धर्माचरण के द्वारा पुरुषों के समान ही साफल्य का स्वागत करती है। ऐसी ही पूजनीया, अर्चनीया, वन्दनीया, अनुपम ज्योति के समान जग को प्रकाशित और पवित्र करने वाली १०५ श्री आर्यिका ज्ञानमती जी की जन्मदात्री अनुपम माँ की ओर ध्यान बरबस ही खिंच जाता है, जिसने अपनी सौभाग्यशालिनी कुक्षि से १३ कान्तिमान मणियों को उत्पन्न कर उनमें से ५ मणियों को धर्म के सूत्र में पिरोकर एक अनुपम माँ ने एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है। कहा भी है कि—बच्चे की प्रथम शिक्षिका माँ होती है, जिसकी छाप बालक पर अमिट रूप से पड़ती है। अतः १०५ आर्यिका श्री रत्नमतीजी के शील और आचरण आदि का प्रभाव उनकी सन्तति पर पड़ा, जिससे उनकी पुत्रियों ने यौवनावस्था मे ही असि-धार के मार्ग के सदृश कठोर मार्ग पर प्रस्थान कर लिया। १०५ आर्यिका श्री रत्नमतीजी पूर्व नाम से मोहिनीजी ने भारतीय नारी हिन्दू संस्कृति के अनुरूप पतिव्रत-धर्म का पालन किया। पुत्रियों को देखकर मन मे वैराग्य उत्पन्न होने पर भी पति-आज्ञा बिना वैराग्य नहीं लिया और अन्त में पति की आज्ञा

लेकर उनकी मृत्यु के २ वर्ष पश्चात् अजमेर में सन् १९७१ में १०८ मुनि श्री धर्मसागर जी महाराज से दीक्षा ग्रहण की। यद्यपि इस कार्य के लिये सम्पूर्ण समाज का अनुरोध तथा परिवार का तीव्र विरोध भी उनके धर्मोन्मुखी अटल निश्चय को न डिगा सका और अन्ततः परिवार की अनुमति से उन कान्तिमान त्यागियों की जननी आर्यिका बन गईं।

इस प्रकार माँ रत्नमतीजी ने भारतीय नारियों के सम्मुख पतिव्रत के धारण करने तथा पति आज्ञा पालन का अनोखा उदाहरण देकर आदर्श प्रस्तुत किया है तथा अपनी सन्तति के त्याग और शील के द्वारा भारतीय सच्ची माँ ने बालकों को बचपन से ही शुभ संस्कार डालने की शिक्षा प्रदान की है। अतः यह कथन युक्तिसंगत ही है कि माँ रत्नमतीजी एक अनुपम माँ हैं। **'धन्य है ऐसी अनुपम माँ को!'**



धन्य हो गई भारत वसुन्धरा

पं० बाबूलाल जैन जमादार, बड़ौत
महामंत्री, अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद, संचालक—जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति

हजारों वर्षों का इतिहास पुनः दोहराया गया है। जब इस भारत वसुन्धरा पर एक माँ ने अपनी कूख से उस महारत्न को पैदा किया जिसने इतिहास को ही नहीं दुहराया किन्तु नया इतिहास बनाया, यदि भगवान् ऋषभदेव की पुत्रियों ने अंकन और गणित विद्या के माध्यम से नारी जाति का सुन्दर और पवित्र इतिहास बनाया था तो टिकैतनगर बाराबंकी की वधू ने (मोहिनी ने) मैना जैसी कन्या को जन्म दिया जिसने संसार मे जैनधर्म की पताका फहराई, अनेकों ग्रन्थों को लिखकर, टीकाकर, अनुवाद कर तथा भौतिक आध्यात्मिक लौकिक चिंतन विचार देकर संसार के मनीषियों का ध्यान अपनी ओर खीचा। ध्यान ही नहीं खीचा महाव्रत की शरण में स्वयं पहुँची, अपनी जननी भगिनी भ्राता आदि को खींचा। मोहिनी देवी का मोह इन वैरागियो को न जीत सका और आखिर में मोहिनी साक्षात् रत्नमती बन गईं।

आज समस्त भारत मे एकमात्र उर्दू हिन्दी सस्कृत की पढ़ने वाली आर्यिका कोई हैं तो वह है पूज्य आर्यिकारत्न माता रत्नमती जी। जिनकी भव्य छटा वैराग्य से ओत-प्रोत, वात्सल्य की सौम्य मूर्ति, गुणियों के प्रति वात्सल्य और अपने प्रति उदासीनता, लेकिन धर्म प्रभावना की चिन्ता से ओतप्रोत, स्वाध्यायी, शांत भाव से रहने वाली परमविभूति हैं माता रत्नमती जी आर्यिका।

जम्बूद्वीप रचना का स्वप्न संजोये साक्षात् आज जम्बूद्वीप पर विराज रहीं है। सोलह जिनमन्दिरों के नित्य भव्य दर्शन करने वाली मेरु की प्रदक्षिणा देकर जिन्होंने लाखों नर-नारियों को उस महान् कृति का अवलोकन (अपनी पूर्व पुत्री वर्तमान पूज्य आर्यिकारत्न माता ज्ञानमती के चरणों में नतमस्तक) झुककर कर

रहीं हैं उस रत्नों की खान के सामने कौन न झुक जावेगा ? सभी झुकते हैं भेदभाव रहित स्नेहाशीष जिनका सभी को पल प्रतिपल मिलता है ऐसी अध्यात्म गंगा में नहाने वाली उस पावन मूर्ति रत्नमती माँ के चरणों में मुझे १३ वर्ष से बैठने का सौभाग्य मिला, आशीर्वाद मिला, मैं व मेरा परिवार तथा मेरे साथी विद्वान् सभी कृत-कृत्य हैं। उस ममतामयी धर्ममूर्ति के चरणों मे विनम्र श्रद्धासुमन समर्पित करते हुए कह सकता हूँ कि रत्नमती जी माँ को पा भारत वसुन्धरा धन्य हो गई।



सम्यक्चारित्र शिरोमणि माँ

श्री शशिप्रभा जैन शशांक, आरा

पूज्या माता श्री आर्यिका रत्नमती माताजी आर्यिकारत्न है, सम्यक्चारित्र शिरोमणि तपःभूत हैं, आपने अपनी कुक्षि से ऐसे-ऐसे रत्न पैदा किये जिससे समाज, देश को महान् गौरव है। सिद्धांत विदुषी, माताजी ने आधुनिक वैज्ञानिक युग मे भी जैनदर्शन का जो सम्यक् आलोक, तर्क युक्तियों से जो आलोकित किया है, वह उनकी अपूर्व गवेषणात्मक बुद्धि की सूझबूझ है। आगम प्रणीत क्रियाओं को सफल उपासिका, धर्मध्वजा की कुशल रक्षिका, ज्ञान चन्द्रिका, आध्यात्मिकता का निरन्तर गंगा प्रवाहित करने वाली माताजी वास्तव में गुणों के रत्नो की खान हैं। सूर्योदय होने पर प्रकाश और प्रताप दोनों ही साथ-साथ उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अपने निवृति-साधना युक्त मार्ग से आपने वैराग्य जीवन की पुनीत शृंखला से मानव समाज को वह ज्ञान का प्रकाश और उसका अचिंत्य प्रताप दिया है, जिससे यह धरा धन्य-धन्य हो गई है—आपने स्पष्ट दर्शाया है, कि—

"ज्ञानेन जानाति भावान् दर्शनेन च श्रद्धत्ते
चारित्रेण निगृह्णाति, तपसा परिशुद्धति"

आत्मा ज्ञान से जीवादि भावों को जानता है, दर्शन से श्रद्धान करता है, चारित्र से नवीन कर्मों का आगम रोकता है, और तप से कर्मों की निर्जरा करता है, जिसे उसका मानवीय चोला शत-प्रतिशत तपाये हुए शुद्ध स्वर्ण की तरह चमकदार शोभित होता है। माताजी ने साधना, संयम और चारित्रिक आराधना से अपने जीवन को रत्नतुल्य अमूल्य बना डाला है, जीवन मे सैद्धान्तिक गुणों को आत्मीय रूप में ढालकर क्रियाओं को पंच समितियों से ओतप्रोत कर लिया है, क्योंकि जीवन में शुद्ध सात्त्विक क्रियाएँ ही दूसरों के लिये प्रेरणाप्रद, फलीभूत होती है, क्रियाओं से शून्य मानव कितने ही व्रतोपवास कर लें पर उसमे वह सफल कल्याणकारी नही हो सकता जब तक कि वह क्रियात्मक शुद्धि की ओर लक्ष्य न करें, अतः कहा भी है—

"शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा, यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।
संचिन्त्ययामौषधमातुरं हि न ज्ञानमात्रेण करोत्यरोगम्" ॥

शास्त्रों का कितना भी कोई अध्ययन क्यों न कर लें, क्रिया की परिशुद्धता बिना निरर्थक है, मुंह से कहे कि संयमी बनो, अष्ट मुलगुणों का पालन करो, सप्त-व्यसन, पंच पाप, चार कषायों के त्यागी बनो, श्रावक के नित्य कर्मों का पालन करो, किन्तु जब स्वयं क्रिया शून्य हो तो हमारी आवाज का किस प्रकार असर पहुँचेगा दूसरों पर, यह स्वयं के लिए चिन्तनीय बात है, औषधि बीमार व्यक्ति के लिए उपलब्ध है, वह उसका सेवन न करे, मात्र देखकर रह जाये तो क्या वह कभी ठीक हो सकता है ? आर्यिका श्री रत्नमती माताजी की साधनामयी क्रियाएँ, उनका सद्ज्ञान वास्तव में अनुकरणीय है, ग्राह्य है, और है मुक्तिमार्ग का निरंकुश पथ ! जिस पर चलकर आप अपना आत्मकल्याण तो कर ही रही हैं, साथ ही जिन श्रद्धालु जनों को भी उसी कठिन मार्ग को सुगम पथ बताकर चलने के लिए आदर्श प्रेरणा दे रही हैं। आप चारित्र सम्यक्त्वी जैनरत्न कुल में जन्मी नाम भी 'मोहिनी' पाया, और आपके वचन ने भी मोहित करके सबको चारित्ररत्न में सरोबर कर दिया, अतः आप "रत्नमती" इस संज्ञा से पूज्यपद को प्राप्त कर सब के लिए परम श्रद्धामयी जननी बन गयी। आपके संसर्ग में आने वाला कांच का टुकड़ा रत्न तुल्य हो गया। अपने आप में ज्ञान की प्रखर किरण हैं, संतप्त मानव हृदय में शीतल सुखद धर्म की सुखद चन्द्रिका हैं, और है वात्सल्य, समता क्षमता की शांति रत्नमयी मुद्रा। आपको अनेकशः वन्दन है।

"वात्सल्यकी परमस्रोत तुम, करुणामयी माँ क्षमा निधान।
आत्मतेज विकसित करने वाली, रत्नज्योति माँ तुम्हे प्रणाम॥"



ज्ञान और चारित्र की अभूतपूर्व जागृति

श्री श्यामलाल, जिनेन्द्र प्रसाद जैन, ठेकेदार, दिल्ली

माताजी तपस्वियों में प्रमुख लोक कल्याणकारी आर्यिकारत्न है जिनके प्रताप से पीयूषमयी धारा की तरह अनेक उज्ज्वल स्रोत प्रकट हुए जिनके द्वारा समाज और देश का महान् उपकार हो रहा है।

यह हमारे देश का सौभाग्य है कि प्राचीन काल से जैनधर्म पालन करने वाली अनेक महिलारत्न धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रही हैं। आज जो हमें गगन स्पर्शी विशाल मन्दिर, मनोहर मूर्तियाँ, नयनाभिराम मानस्तंभ, आश्चर्यजनक कला और सौन्दर्य के प्रतीक सांस्कृतिक जागृति के अद्भुत तीर्थ स्थल दृष्टिगोचर हो रहे हैं इनके निर्माण में नारी जाति का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

भ० बाहुबली का विशाल प्रतिबिम्ब सेनापति चामुंडराय की माताजी, आबू-का विश्व विख्यात भ० आदिनाथ का मन्दिर के निर्माण में मंत्री वस्तुपाल की गृहिणी का ही हाथ था। धवल, जयधवल, महाधवल आदि ग्रंथराजों को ताड़पत्रों पर लिखवाने का श्रेय महारानी शान्तल देवी को है। इसी प्रकार के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य हैं जो

स्त्रियों द्वारा किये गये हैं। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने तो अपने प्रसिद्ध ग्रंथ रत्नकरण्डश्रावकाचार के अन्तिम श्लोक में कहा है।

जिस प्रकार कामिनी अपने पति को सुख देती है। माता अनेक कष्टों को उठा कर पुत्र का पालन करती है। सुयोग्य कन्या अपने पिता और पति के वंश को ऊँचा करती है ठीक इसी प्रकार सम्यग्दर्शन रूपी लक्ष्मी संसार के जीवों का कल्याण करें।

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव,
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा, कन्यका सम्पुनीतात्,
जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः॥

आचार्य सोमदेव सूरि ने अपने संस्कृत के उत्कृष्ट महाकाव्य यशस्तिलक में कहा है—स्त्री का हृदय एक सरोवर के समान है यदि उन्हें धर्म की शिक्षा दोगे तो उनमें दया, करुणा, वात्सल्य, उदारता, त्याग आदि गुण प्रकट हो जायेंगे, नहीं तो ईर्ष्या, द्वेष, कलह आदि अवगुण उत्पन्न होंगे। इसलिए बालिकाओं को प्रारम्भ से ही धर्म की शिक्षा देना चाहिए। शास्त्रकारों ने यहाँ तक कहा है—एक विदुषी माता सौ शिक्षकों से बढ़कर है। माता का बालक के जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

शिवाजी की माता जीजाबाई, गांधीजी की माता पुतलीबाई के धार्मिक संस्कारों का ही यह फल है कि उनसे ऐसे लोकोत्तर पुत्ररत्नों का जन्म हुआ।

आज के समय जैन समाज में विदुषीरत्न मगनबेन, चंदाबाई जैसी नारी रत्नों ने जागृति पैदा की। जैसे पद्मराग मणि की खान से रत्न-रत्न ही निकलते हैं इसी प्रकार माता रत्नमतीजी की कोख से जो सन्तानें हुईं उनमें दो आर्यिका—आर्यिका-रत्न ज्ञानमती जी, आर्यिका अभयमती जी और विदुषी मालती और माधुरी दोनों बहिनें बाल ब्रह्मचारिणी हैं। पुत्र श्री रवीन्द्रकुमार जी बी० ए० उस दुर्धर मार्ग पर अग्रसर होकर सतत ज्ञानाराधन और धार्मिक जागृति का कार्य कर रहे हैं। चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के प्रताप से जो निर्ग्रन्थ मार्ग फिर से उदित हुआ उसी मार्ग पर स्वयं चलकर और दूसरों को प्रेरणा देकर महान् गौरवशाली कार्य कर रही है। जिन्होंने अपने ज्ञान और चारित्र के द्वारा अभूतपूर्व जागृति की है। माताजी सौम्य, शांत, तपस्वी, गम्भीर स्वभाव वाली हैं। कष्टसहिष्णु हैं। अस्वस्थ रहते हुए भी अपने व्रतों के पालन करने में दृढ़ हैं।

ऐसी पुण्याधिकारिणी रत्नत्रय की प्रतीक माताजी के चरणों में हमारा नमस्कार। हम श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करते हैं कि वे नीरोग रह कर अपने व्रतों का पालन करती हुईं क्रमशः शाश्वत सुख की अधिकारिणी बनें।

पूज्य माताजी से साक्षात्कार—एक बातचीत

श्री सुमत प्रकाश जैन, दिल्ली

सन् १९७२ ई० में विद्यावारिधि-सिद्धान्तवाचस्पति परम पूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी संघ सहित देहली से हस्तिनापुर विहार करते समय शाहदरा जैन मन्दिर जी में लगभग एक सप्ताह ठहरीं। उस समय ही सर्व प्रथम उनके तथा संघस्थ अन्य त्यागियों के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय संघ में पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी थीं। संघ में बातों-बातों में पता चला कि संघस्थ रत्नमती माताजी न केवल आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी की गृहस्थ धर्म की माँ हैं अपितु अन्य कई बाल ब्रह्मचारिणियों—ब्रह्मचारी एवं एक अन्य आर्यिका (अभयमती) जी की भी वह गृहस्थ धर्म की माँ हैं। ऐसी माता रत्नमतीजी के दर्शन करके मैं भी प्रभावित हुए बिना न रह सका। उस दिन से आज तक ग्यारह वर्षों के अन्तराल में मैंने कई बार जगह-जगह पर माता रत्नमतीजी के दर्शन किये तथा इस विलक्षण माँ के बारे में और अनेकों उदाहरण सुने। तथा उनके समीप में बैठ कर उनके हृदय की गहराइयों को जानना चाहा। आकस्मिक एक दिन मुझे वह सुअवसर मिल गया और उस दिन माता रत्नमतीजी के समीप बैठे-बैठे मैंने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। माताजी शान्तिपूर्वक मेरे प्रश्न को सुनती थीं और धीरे-धीरे शान्तिपूर्वक मुझे बताती रही। तब से ही मैं उनकी महानता को जान पाया। मैंने घर आकर उन प्रश्नोत्तरों मे से कुछ को अपने पास नोट कर लिया था। उस शृंखला में से ही कुछ को मै यहाँ पर दे रहा हूँ ताकि एक माँ की उदार भावनाओं का प्रत्यक्षीकरण हो सके :—

सर्व प्रथम मैंने पूछा—माताजी ! आपकी पहली ही सन्तान मैना ने बचपन से ही त्याग के कठिन मार्ग पर कदम रखे—उस समय आपको कैसा लगा होगा।

माताजी—अरे उस समय का तो दृश्य ही एक विलक्षण था—हम लोगों को तो पता ही नहीं था कि कुँवारी कन्या भी इस तरह का मार्ग अपना सकती है। लेकिन होनहार बड़ी प्रबल होती है—सब संघर्षों को सहन करके और घर में सबको समझा-बुझा कर पूरी तसल्ली दे कर मैना ने इस पथ को अपनाया।

मैंने जिज्ञासा की कि माताजी आपने शुरू से ही उन्हें धार्मिक संस्कारों में ढाला होगा अन्यथा वैराग्य के विचार उनके मन में कैसे आते।

माताजी—मेरे गृहस्थावस्था के पिताजी ने शादी के समय मुझे एक शास्त्र "पद्मनंदि पंचविंशतिका" नाम का दिया था। जिसका ससुराल में रोज मैं स्वाध्याय करती थी। इस ग्रन्थ को मैंने कई बार पढ़ा। जब मैना लगभग ९-१० वर्ष की हुई तब मैंने उसे भी इस शास्त्र का स्वाध्याय करने को कहा। बस इस ही ग्रन्थ के स्वाध्याय से मैना को संसार से वैराग्य होता गया। हमें क्या पता था कि इतनी छोटी अवस्था में इस ग्रन्थ का सारा सार ही वह अपने जीवन में उतार लेगी।

मैंने कहा—तब तो उनका जीवन शुरू से ही विशेष रहा होगा।

माताजी—हाँ। पता नहीं ये किस जन्म जन्मांतर के सम्यक्त्व संस्कारों को ग्रहण करके आई थीं कि बचपन से ही इन्होंने घर में पुरानी पीढ़ियों से चले आ रहे मिथ्यात्व का हम सबको त्याग करवा दिया।

मैंने पूछा—केवल ज्ञानमती माताजी ही नहीं बल्कि एक और अभयमती माता जी, मालती, माधुरी और रवीन्द्र—सभी ने तो यही मार्ग स्वीकार किया है—आपने क्या सबको खुशी-खुशी यह आज्ञा दे दी थी या मन मे कभी दुःख भी हुआ।

माताजी - अपने बच्चों को अपने से छूटते समय किस माँ बाप को दुःख नहीं होता। गृहस्थावस्था में तो मुझे भी बहुत मोह था लेकिन पूर्व संस्कारों वश कर्म सिद्धान्त को ध्यान में रख कर सन्तोष हो जाता था। रवीन्द्र और माधुरी ने तो मेरे दीक्षा लेने के पश्चात् ही अपने आजीवन ब्रह्मचर्य की बात खोली तब मै अपने पद के प्रतिकूल उन्हे संसार बसाने को कैसे कहती। पहले तो मनोवती जो अब आर्यिका अभयमती बनी है, उन्हें और मालती को भी बहुत रोकने का प्रयास किया था लेकिन सब ही अपने वचन की बड़ी पक्की रहीं और अपने लक्ष्य को साहस से सिद्ध किया।

मैंने सुना है कि आपका स्वास्थ्य पहले से ही नाजुक रहता था फिर भी आपने इस पथ को अपनाने का साहस कैसे किया।

माताजी—शरीर तो प्रति क्षण सेवा माँगता है और कोई न कोई रोग उत्पन्न करता ही रहता है—यह तो इसका स्वभाव है। आत्मा किसी की भी नाजुक नही होती। मुझे तो प्रारम्भ से ही त्याग में रुचि थी किन्तु गृहस्थी की परिस्थितियाँ उसमें बाधक बन जाती थी। गृहस्थ में भी मैंने अपने योग्य व्रतों को दो से लेकर सात प्रतिमाओं का पालन किया और कर्तव्य निर्वाह के बाद मैंने निजात्मबल पर दीक्षा ग्रहण की।

मैंने कहा—सारी दुनिया आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी के गीत गाती है—समाज आपकी अन्य सन्तानों और आपको बड़े गौरव की दृष्टि से देखती है क्या इससे आपके मन मे कभी गर्व और अहंकार का अनुभव होता है।

माताजी—ये खोटे भाव ही तो जीव को पतन के गर्त में डालने में हेतु हैं। मुझे ज्ञानमती माताजी तथा अन्य सन्तानों के कार्य-कलापों से खुशी तो अवश्य होती है और यह भी भाव होता है कि इन लोगों के द्वारा धर्म की जितनी भी प्रभावना होवे अच्छी है। मेरे दिल में अभी तक न अहं भावना आई है और न ही भविष्य में आये—यही भगवान् से मैं प्रार्थना करती हूँ। वैसे अपने द्वारा सीचे हुए बगीचे मे फल-फूलों की सुन्दरता देखकर हर माली प्रसन्न होता है बस यही प्रसन्नता मुझे भी है।

मैंने पूछा—आपको अपनी शारीरिक अस्वस्थता से तो खिन्नता होगी—क्या आपका संयम इसी तरह पलता रहेगा।

माताजी—शरीर तो रोगों का घर है ही। संयम साधना के लिये थोड़ा बहुत उपचार भी करना पड़ता है। साधु का परम लक्ष्य तो समाधिमरण की ओर होता है। मेरी भी यही इच्छा है कि धीरे-धीरे शांतिपूर्वक सल्लेखना व्रत धारण करूँ।

मैं बोला—कुछ लोग कहते हैं कि आजकल के साधु ढोंगी हैं—ऐसा कहने वालों के प्रति आपके कैसे भाव होते हैं।

माताजी—भैय्या ! संसार की स्थिति बड़ी विचित्र है। स्वाध्याय की अपूर्णता के कारण लोग यद्वा-तद्वा बोलते हैं। खैर—बाह्य प्रपंचों में पड़कर साधु को अपने परिणाम नहीं बिगाड़ने चाहिये। हर जीव अपने-अपने भावों का कर्ता-धर्ता है। मुझे तो ऐसे लोगों के प्रति करुणा की भावना जागृत होती है।

मैं कई बार सोचता हूँ कि यह माँ तो वास्तव में एक विलक्षण व्यक्तित्व की धनी है जिसके हृदय में सम्पूर्ण विश्व के प्राणीमात्र के प्रति करुणा की भावना है। मुझे उनके पास बैठ कर एक अपूर्व शान्ति का अनुभव प्राप्त होता है—अपनी शारीरिक अस्वस्थता को भी इन साधुओं के चरण सान्निध्य में आकर भूल जाता हूँ।

हस्तिनापुर में स्थापित दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान का कार्यकर्ता होने के नाते मुझे आप लोगों का अधिक सान्निध्य व वात्सल्य प्राप्त होता रहा है। भविष्य में भी मुझे आपका वरदहस्त प्राप्त होता रहे यही शुभाशीर्वाद की इच्छा है।



आर्यिका दीक्षा समारोह का आँखों देखा वर्णन

श्री शांतीलाल बड़जात्या, अजमेर

विक्रम संवत् २०२८ तदनुसार वीर निर्वाण संवत् २४९७ आषाढ शुक्ल २ अजमेर के पावन इतिहास मे स्वर्णाक्षरों में अंकित है। जिस मंगल प्रभात में परम पूज्य प्रातःस्मरणीय प्रशममूर्ति बाल ब्रह्मचारी, शिक्षा दीक्षा कुशल, चारित्ररथ-संचालक, निर्लिप्त चारित्ररत्न आचार्य शिरोमणि श्री १०८ श्री धर्मसागर महाराज ने राष्ट्र के सर्वोपरि विशालतम संघ सहित नगर में चातुर्मास हेतु प्रवेश किया। जग प्रसिद्ध विश्ववंद्य श्री १००८ श्री सिद्धकूट चैत्यालय (सर सेठ सा० श्री भागचंदजी सा० सोनीजी की नसियाँ जी) में आचार्य संघ का भावभीना स्वागत हुआ। जनता का भी भक्तिपूर्ण धर्मोत्साह देखते ही बनता था। कविराजों की "चौमासो" कर अजमेर में, "म्हाने पार उतारो, डूब रह्या छाँ भव फेर में।" आज भी हजारों हजारों नर नारियो के हृदय पटल पर अंकित है। इस चातुर्मास में धर्मामृत की वृष्टि होती रही। नित्य प्रति प्रभात से रात्रि तक चतुर्थ काल सा दृश्य हृदयस्पर्शी एवं कल्याणकारी प्रवचन. आहार की वेला में त्यागीवृन्द की पधारने की सुखद झाँकी, १ माह व १५ दिन में केशलोंच, बाहर के दर्शनार्थी धर्मप्राण समाज का शुभागमन अजमेर जैन समाज के लिये ५ माह तक के लम्बे समय में निरन्तर मेला का रूप बन गया।

जहाँ चातुर्मास काल में ४ परम पूज्या माताजी की समाधियाँ, श्री बड़ा धड़ा नसियाँजी में विशाल स्तर पर ऐतिहासिक एवं स्वर्णिम चातुर्मास, परमपूज्या महान् विदुषी न्यायप्रभाकर, सिद्धान्त वाचस्पति, बालब्रह्मचारिणी आर्यिका माताजी श्री १०५ श्री ज्ञानमती जी माताजी का राजकीय मोनिया इस्लामिया हाई स्कूल के विशाल सभा

भवन में सार्वजनिक प्रवचन आदि कई सुन्दर अविस्मरणीय मंगल कार्य हुए। वहाँ चातुर्मास का समापन तो अजमेर के इतिहास को सदा सदा के लिए धन्य कर गया।

चातुर्मास समापन की वेला में मार्गशीर्ष कृष्णा २ को कोई तीस हजार नर-नारियों के समक्ष में आचार्यश्री ने ११ आत्मार्थियों को भव्य जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान की। अजमेर वासी इस भव में तो क्या आने वाली कई भवों में वह मंगल घड़ी स्मरण करते रहेंगे। इन्हीं दीक्षार्थियों में श्रीमती मोहिनी देवी धर्मपत्नी स्वर्गीय श्रेष्ठि श्री छोटेलालजी जैन टिकैतनगर जिला बाराबंकी (उ० प्र०) भी एक थी। ऐसी बड़भागी अत्यन्त मृदुभाषी परिणामों वाली, हरेभरे घर की जननी, ५ श्रेष्ठ सुपुत्रों की मातेश्वरी ने जब अजमेर में दीक्षा ग्रहण करने की महाराजश्री से प्रार्थना की तो सकल बुद्धिजीवी यशस्वी व्यक्ति तो निहाल ही हो गये तथा सारा नगर ही हर्ष के सागर में गोते लगाने लगा। जो सर्व गार्हस्थिक सुख छोड़कर बेटे, बहुयें, पोते-पोतियाँ छोड़कर वास्तविक वैभव को धारण करके दीक्षा ग्रहण करें वे विशेष आदर के पात्र बन ही जाते हैं। दीक्षा के समय आपका गृहस्थ परिवार अजमेर में विद्यमान था तथा उनकी भद्रता देखते ही बनती थी।

अत्यन्त शुभ मुहूर्त में आपने परम पूज्य आचार्यदेव को श्रीफल दीक्षा हेतु भेंट किया। वह दृश्य इसलिये देखते ही बनता था कि इस प्रौढ़ावस्था में सर्व पारिवारिक सुख को तिलांजलि देकर यह महिलारत्न आर्यिका माताजी बनने पधार रही हैं। अत्यन्त सुन्दर शालीन शोभायात्राएँ हुईं। सभी दीक्षार्थियों का अपना अपना भव्य स्वरूप था। १८ वर्ष से ६० वर्ष तक के ११ सभी दीक्षार्थी जब यथानुकूल वाहनों पर विराजते थे तो उसी क्षण से शोभा-यात्रा समापन तक हजारों-हजारों नर-नारी साथ धर्म की जय-जय गुंजाते रहते। लक्षों नर-नारी अजमेर के तथा बाहर के पचासों मील के धार्मिकजन पधार-पधार कर यह धर्मोत्सव देख-देखकर मुदित होते थे।

मोनिया इस्लामिया स्कूल के अत्यन्त विशाल भव्य प्रांगण में अत्यन्त सुन्दर मण्डप की व्यवस्था की गई। जब आचार्य महाराज विशाल संघ (३६ पिच्छिकाओं सहित) जुलूस के साथ पधार कर विराजे। चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज, चारित्रचूड़ामणि आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज, चारित्रतीर्थ संचालक आचार्यदेव श्री शिवसागरजी महाराज, आचार्य शिरोमणि श्री १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज, सकल आचार्य संघ की जय-जयकार से नभ मण्डल गूँज उठा। अजैन बन्धुओं को सही अर्थ में जैनेश्वरी दीक्षा के महत्त्व को आंकने का सुअवसर मिला। क्रम से दीक्षार्थियों के परिवार वाले स्वीकृति प्रदान करते रहे। सकल दीक्षा संस्कार विधि आचार्य धर्मसागर जी महाराज ने सम्पन्न करवाई। आपके ज्येष्ठ सुपुत्र श्रीमान् कैलाशचन्दजी सा० सर्राफ सपरिवार ने महाराजश्री के समक्ष ज्यों ही भरे गले से किन्तु उत्कृष्ट धर्म परिणामों से आपके दीक्षा ले लेने की गार्हस्थिक स्वीकृति प्रदान की, सभी नर-नारी उत्कृष्ट वैराग्य से भावना से परिपूर्ण हो गये। आचार्यश्री ने तुमुल हर्ष नाद एवं जय-जयकारों के मध्य आपको आर्यिका दीक्षा प्रदान करके "रत्न-

मती" नाम प्रदान किया। जिसके सुनते ही उपस्थित समाज को विशेष हर्ष हुआ। मंगलाचरण, भजन, कवितायें, स्तुतियाँ, महाराजश्री के आशीर्वाचन, जिनाभिषेक, फूलमाल, पग-पग पर जयकारों के मध्य, अजमेर के मस्तक पर गौरव का तिलक कर देने वाली यह दीक्षायें सुसम्पन्न हुईं।

स्थानीय दिगम्बर जैन समाज ने बाहर से पधारे हुए हजारों अतिथि बन्धुओं का श्रेष्ठ भोजन सम्मान किया। ठीक १ बजे सुप्रसिद्ध जातिशिरोमणि धर्मवीर सर सेठ साहब के नशियांजी की सकल सवारियों सहित प्रमुख रथ पर श्री जी को विराजमान कर सकल संघ सहित रथयात्रा प्रारम्भ हुई। ३६ पिच्छिकाओं मे चातुर्मास में ३२ रह गई थीं। आज वह धन्य घड़ी थी जब ४३ पिच्छिकायें हो गईं थी। रथयात्रा का दृश्य नगरवासियों का मन मोह गया। विशाल सभा मण्डप से केसरगंज, मदारगेट, नयाबाजार तथा मार्ग के बाजारों से लाखों नर-नारी भगवान् की रथयात्रा के इस विशाल जुलूस के साथ विशाल संघ के दर्शन करके अपने आपको धन्य मान रहे थे।

दीक्षा के पश्चात् परमपूज्या आर्यिका माताजी श्री १०५ श्री रत्नमती जी के दर्शनों का मुझे हस्तिनापुर, देहली आदि में सौभाग्य प्राप्त होता रहा। अब एक युग बीतने के मास ६ ही शेष हैं। वही भद्रता, वही सरलता, वही सौम्यता, वही धर्म वृद्धि, वही सब शैली देखकर मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। आयु का तकाजा, किन्हें छोड़ता है। कई बार औरों के मुख से सुना कि आपके जोड़ों मे भयंकर दर्द है, बुखार है, यह है वह है। किन्तु मैने कभी भी आपके श्रीमुख से २-३ दिन लगातार सान्निध्य मे रहने पर भी एक अक्षर भी यह नही सुना। कम से कम विकल्प करने वाले, संसार को त्याग कर प्राणी-मात्र के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत करनेवाली आर्यिका माताजी का मेरा सपरिवार का, सकल अजमेर नगरवासियों सहित शतः शतः नमन है। उनके शतायु परोपकारी जीवन की प्रभु से कामना करते हुए, उन सरीखी, भद्रता, सज्जनता सौम्यता एवं वैराग्य वृद्धि हमे प्राप्त हो, की कामना करते हुए अभिनन्दन ग्रन्थ के समिति के हम कृतज्ञ हैं। जिसने यह सुन्दर सामयिक, मंगल कार्य कर कर्त्तव्य पालन का सुपरिचय दिया।



प्रकाश-स्तम्भ

(प्राचार्य) नरेन्द्रप्रकाश जैन, फिरोजाबाद

चतुर्थ काल के भव्य जीव भले और भोले होते थे। गृहस्थी मे रहते हुए भी उनकी दशा 'जल तें भिन्न कमल' की तरह हुआ करती थी। संसार, शरीर और भोगों से उन्हे भय लगता था। इसीलिए जरा-सा निमित्त पाकर उन्हें झट वैराग्य हो जाता था। पानी के बुलबुलों का बनना-मिटना, बादलों का विघटन, बिजली की क्षणभंगुरता अथवा सिर के श्वेत बाल को देखकर दीक्षा लेने वालों के वर्णन शास्त्रों में खूब मिलते

हैं। पिता के साथ बेटे भी मुनि हो जाते थे। मुनि-आर्यिकाओं के विशाल संघ यत्र-तत्र-सर्वत्र विचरण करते हुए देखे जाते थे। कितना शानदार था वह युग।

आज जमाना बदल गया है। जीवन में बड़ी-से-बड़ी दुर्घटना होने पर भी किसी को संवेग नहीं होता। सिर के एक बाल की तो बात ही क्या, सारे बाल सफेद हो जाने पर भी खिजाब लगाकर लोग यमराज को धोखा देने की कोशिश करते हैं। स्वयं तो दीक्षा लेने के भाव होते नही, जो उस पथ पर चल पड़ते हैं उनका उपहास उड़ाया जाता है। संयम के नाम से ये भलेमानुष ऐसे डरते बिदकते हैं, जैसे वह कोई हौआ हो। अजीब जमाना है यह भी!

भोग-विलास की अंधी दौड़ में शामिल होने से आज कुछ लोगों का इनकार करना हमें आश्चर्य-सरीखा लगता है। पूज्य आर्यिका श्री रत्नमतीजी और उनका परिवार भी एक ऐसा ही अचरज है। एक ही परिवार में से माँ, बेटियाँ और भाई ऐसे भागे हैं, जैसे कोई सामने आते हुए मरखने बैल को देखकर भागता है। ये सब मिलकर चतुर्थ काल की स्मृतियों को ताजा कर रहे हैं। कमाल है!

सौम्यमूर्ति माताजी समाज के लिए एक प्रकाश-स्तम्भ की तरह है। समाज को उनसे एक नया दिशा-बोध मिला है। उनकी छत्रछाया में जो कार्य हुए है, वे सभी ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। अनेक ग्रन्थों का प्रणयन-प्रकाशन, जैन भूगोल, खगोल, गणित आदि विषयों के अनेक अछूते पहलुओं का उद्‌घाटन, जम्बूद्वीप की रम्य रचना, ज्ञान का व्यापक प्रचार-प्रसार आदि अनेक ऐसे उपकार है, जो कभी भुलाए नही जा सकते। पूज्य आर्यिका रत्नमतीजी का अभिनन्दन हमारी कृतज्ञ भावना का प्रतीक है। ऐसा उपक्रम या आयोजन कर समाज स्वयं गौरवान्वित हुआ है। पूज्य माताजी के चरणों में त्रिवार नमोऽस्तु करते हुए हम यही भावना भाते हे कि दिनोंदिन उनका रत्नत्रय वृद्धिगत हो और हमारी मति सदा ज्ञान से संतृप्त रहे।



अवध की विभूति

ब्र० रवीन्द्रकुमार जैन

मंत्री, श्री दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर

भारत का इतिहास विभिन्नताओं से भरा हुआ है। जब हम अपने अतीत की ओर दृष्टिपात करते हैं, इतिहास का अवलोकन करते हैं तो पाते हैं कि हमारे देश में एक ऐसा युग था जिसे इतिहासकार स्वर्णयुग कहते हैं। सम्राट् चन्द्रगुप्त तथा राजा अशोक के युग का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उस समय भारतीय जनता में आपस में सौहार्द और प्रेम था, सब न्यायप्रिय थे, अपने घरों में कोई ताले नहीं लगाते थे, लोग अहिंसा प्रेमी थे।

इसी प्रकार हमारे देश के इक्ष्वाकुवंश की भी बहुत अनूठी परम्परायें रही हैं। उनसे ज्ञात होता है कि उस युग में राजाओं-शासकों के क्या कर्तव्य होते थे जिनके बल पर स्वर्णयुग को आज भी हम स्मरण करते हैं। इक्ष्वाकुवंश की राजधानी अयोध्या थी। जिनसेनाचार्य ने "अयोध्या" की व्याख्या की है—अ + युद्धा अर्थात् जिसे कोई युद्ध में जीत न सका। अयोध्या की पवित्र भूमि को अनंतानंत तीर्थंकरों की जन्मस्थली होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अनंत शक्तिमान महापुरुष भगवान् वृषभदेव के एकछत्र शासन काल में प्रजा अपूर्व सुखानुभव कर रही थीं यही उनके लिए स्वर्णयुग था। जहाँ तीर्थंकर स्वयं राज्य संचालन करते थे। सुरनिर्मित वह अयोध्या नगरी आज भी जगत्पूज्य है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र का इतिहास यहाँ के कण-कण में लिखा हुआ है। जिस प्रकार मृग की नाभि में कस्तूरी का निर्माण होता है उसके परमाणु कहीं बाहर से मँगा कर नहीं रखे जाते। किन्तु उसकी गन्ध जन-मानस को आकर्षित कर लेती है उसी प्रकार अयोध्या नगरी स्वयं महापुरुषों की निर्माणशाला है उसकी सुरभि छिपी नहीं है।

अयोध्या की भूमि पर जन्म लेने वाला प्रत्येक प्राणी अपने को सौभाग्यशाली मानता है। वह पुण्यधरा आज भी महापुरुषों की जननी प्रसिद्ध है। ब्राह्मी और सुन्दरी के आदर्श को दर्शाने वाली दिव्य विभूतियों ने जन्म लेकर चतुर्थकाल का दृश्य उपस्थित किया है। जहाँ भारत की नारी अपने को अबला महसूस करती थी वहीं ज्ञानमती माताजी ने जन्म लेकर नारी को सबला कहलाने का साहस प्रदान किया।

अवध प्रान्त में बाराबंकी जिले के टिकैतनगर ग्राम में माता मोहिनी की गोद में सन् १९३४ में एक सरस्वती कन्या का अवतार हुआ जिसे सारा परिवार 'मैना' नाम से सम्बोधित करता था। वह मैना आज सारे विश्व की विभूति धरोहर के रूप में है। बीसवी शदी की प्रथम बालसती बनकर देश की कितनी कुमारियों के लिए मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया। अवध प्रान्त को तो विशेष रूप से इस विभूति पर गौरव है जिनके बल पर जैनधर्म की बागडोर अविच्छिन्न रूप से चल रही है तथा आगे भी चिरकाल तक चलती रहेगी। साहित्यिक रचनाओं का निर्माण कार्य जो आपके कर-कमलों द्वारा आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे हुआ है वह प्राचीन इतिहास में दृष्टिगोचर नहीं होता है कि किसी आर्यिका के द्वारा इतनी बहुमात्रा में साहित्य संरचना का कार्य सम्पन्न हुआ हो। आपकी इन अपूर्व कृतियों के द्वारा युग-युग तक आपकी यशोगाथा गाई जायेगी।

परमपूज्य आर्यिका अभयमती माताजी जिन्होंने अपने मनोवती नाम को सार्थक कर दृढ़ प्रतिज्ञा का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। आपने भी अल्पायु में ही धार्मिकता की ओर कदम बढ़ाकर ज्ञानमती माताजी के मार्ग का अनुसरण किया। आज बुन्देलखण्ड में पदयात्रा करते हुए अपूर्व धर्म की प्रभावना कर रही हैं। बुन्देलखण्ड की महिला समाज को विशेष रूप से जागृत कर महिला संगठन को दृढ़ किया है।

इन दोनों ही विभूतियों की जन्मदात्री माता मोहिनी ने भी आत्मोन्नति के पथ पर अपने दृढ़ कदमों को अग्रसर किया। जैन समाज को इस माँ पर विशेष गौरव है कि जिन्होंने अपने संस्कारों से सुवासित करके विश्व के लिए इन रत्नों को प्रदान किया। धन्य है ऐसी माँ जिन्होंने भरे पूरे परिवार के अपूर्व स्नेह को त्याग कर सन् १९७१ में अजमेर नगरी में जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। आज भी जब हमें उस दीक्षा-तिथि का स्मरण होता है तो रोमांच हो जाता है। राग और विराग का वह विराट् संगम था। वास्तव में गृहस्थ धर्म में प्रवेश किये बिना उसे त्याग देना तो सरल है किन्तु निज के पुरुषार्थों द्वारा पारिवारिक वृक्ष को हरा-भरा करके उसके मोह को तिलांजलि देना अत्यन्त दुरूह है। आप इस वृद्धावस्था में शारीरिक अस्वस्थता होते हुए भी रत्नत्रय का निरन्तर निर्विघ्नतया पालन कर रही हैं। प्रत्येक माँ को इस आदर्श से शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए कि हम भी अपनी सन्तानो को संस्कारों से संस्कारित करके एक नहीं अनेक ज्ञानमती इस देश को प्रदान कर सकते हैं।

अयोध्या नगरी यूं तो स्वयं पूज्य व श्लाघनीय है ही तथापि इन विभूतियों के कार्यकलापों से उसमें चार चाँद लग गये हैं। यदि अवध को हम हीरे की खान कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी जो आज भी हमें चतुर्थ काल का स्मरण कराता है। भगवान् वृषभदेव की उत्तुंग महामनोज्ञ प्रतिमा वहाँ की धरोहर है। जो कि वहाँ की छवि को निरन्तर निखारती रहेगी।



परमपूज्य आचार्य श्री शिवसागर महाराज की १५वीं पुण्यतिथि के शुभ अवसर पर

आर्यिका श्री रत्नमती माताजी के हृदयोद्गार

विद्यावाचस्पति कु० माधुरी शास्त्री

हस्तिनापुर, १४ मार्च ११८३ फाल्गुन वदी अमावस्या को परमपूज्य १०५ आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी के सान्निध्य में आ० वीरसागर संस्कृत विद्यापीठ की ओर से स्वर्गीय आचार्य १०८ श्री शिवसागरजी महाराज की १५ वीं पुण्यतिथि-सल्लेखना दिवस पर सभा का आयोजन किया गया।

विद्यापीठ के विद्यार्थी नरेश कुमार, सुरेश कुमार, राजकुमार, कमलेश कुमार, मुकेश, शशिकान्त आदि विद्यार्थियों ने पूज्य आचार्य श्री के चरणों में अपने-अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किये। संस्कृत विद्यापीठ के सुयोग्य अनुशासनप्रिय प्राचार्य श्री गणेशीलालजी साहित्याचार्य ने भी आ० श्री के सान्निध्य से प्राप्त अपने अनुभव सुनाते हुए उनकी महानता के विषय में बतलाया। संघस्थ कु० माधुरी शास्त्री ने आचार्य श्री की गंभीरता, सरलता पर प्रकाश डालते हुए अपनी परोक्ष श्रद्धांजलित अर्पित की। संघस्थ पूज्य आर्यिका श्री शिवमती माताजी ने भी आचार्य श्री से प्राप्त शिक्षाओं के बारे में बतलाते हुए श्रद्धांजलि अर्पित की।

तत्पश्चात् परमपूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी ने भावभीनी विनयांजलि अर्पित करते हुए अपने कुछ संस्मरण सुनाकर अपनी सरल वाणी से सबको आह्लादित कर दिया। उन्होंने बताया कि आर्यिका ज्ञानमती माताजी के दर्शनों के निमित्त हम गृहस्थावस्था में भी सपरिवार संघ के दर्शनार्थ आया करते थे। ज्ञानमती माताजी ने जब से दीक्षा ली थी तब से मेरा जीवन शुष्क हो गया था। हमेशा मेरी इच्छा रहती थी कि मैं भी उन्हीं के साथ रहूँ। लेकिन गृहस्थ का मायाजाल छोड़ने में मैं सक्षम न हो सकी।

एक बार सन् १९६२ में जब आ० शिवसागर महाराज का ससंघ चातुर्मास लाडनू मे हो रहा था, ज्ञानमती माताजी भी वहीं पर थी। मैं अपनी लड़की मनोवती को लेकर छोटे से बालक रवीन्द्रकुमार के साथ दर्शनों के लिए गई। लगभग एक माह वहाँ रहकर आहार दान दिया। जब मैं वहाँ से घर के लिए प्रस्थान करने लगी तो मनोवती ने काफी जिद की कि मैं ज्ञानमती माताजी के पास ही रहूँगी। मैंने बहुत समझाया बुझाया और कहा कि तुम्हारे पिताजी मुझे क्या कहेगे, घर में भी नहीं रहने देंगे, उन्हें बड़ा धक्का लगेगा। बेटी! तुमने तो देखा था ज्ञानमती माताजी के समय ही वे अपने को कितना असहाय महसूस कर रहे थे। इस तरह तो वे कभी दर्शन भी नहीं करने आयेंगे, अभी तो तुम चलो फिर आ जाना। लेकिन मनोवती ने किसी की न मानी और संघ में रह गई। हम घर आ गये। घर में सभी नाराज। उसके पिताजी तो मेरे ऊपर बरस पड़े और बोले कि धीरे-धीरे तुम सबको ज्ञानमती के जाल में फँसा दोगी और खुद भी उसी में फँस जाओगी। तभी तुम्हे शांति मिलेगी। यह तुम्हारा धर्म-कर्म ही मेरी सन्तानों को मुझसे छुड़ाये दे रहा है। अब यदि तुम भलाई चाहती हो तो वहाँ जाने को कोई आवश्यकता नही। मोह से विह्वल यह उनका क्रोध बोल रहा था। मैं चुप रही एक अपराधिन की तरह कुछ बोल न सकी लेकिन मेरा हृदय कह रहा था कि देखती हूँ तुम कितने दिन अपने को कठोरता के बन्धन में रख सकते हो। कभी न कभी तो अपनी संतानों को देखने की इच्छा प्रगट होगी ही। लाडनू में ही मैंने आ० शिवसागर महाराज से अपने संयमित जीवन करने की दृष्टि से दो प्रतिमा के व्रत धारण किये। यह मेरा सौभाग्य है कि आचार्य श्री के द्वारा ही मेरे ऊपर संयम का प्रथम बीजारोपण हुआ।

सन् १९५९ में हम प्रकाशचन्द को लेकर अजमेर गये। ज्ञानमती माताजी को देखते ही हम लोगों की अश्रुधारा बह चली। रूँधे गले से सारे संघ के दर्शन किये। दूसरे दिन से अपनी दैनिक क्रिया प्रारम्भ हो गई। प्रातः भगवान का पूजन, आहार-दान आदि देते हुए दिन आनन्द से बीतने लगे। एक महीने बाद हम घर जाने को तैयार हुए, आश्चर्य की बात प्रकाश ने कहा कि मैं भी माताजी के पास रहूँगा। अब तो मेरा कलेजा मुँह को आ रहा था। अब क्या होगा। कितने दिनों में तो हम दर्शनों के लिए आ पाये हैं, आगे तो जिन्दगी भर के लिए आना बन्द हो जायेगा। मैंने अपनी पूरी शक्ति से प्रकाश को डाँट लगाई, यह क्या तमाशा बना रखा है। तुम अपने

पिताजी को बिल्कुल पागल कर देना चाहते हो क्या ! आइन्दा से कभी भी अपनी जबान पर यह मत लाना, चुपचाप घर चलो। वह कुछ नहीं बोला।

हम चलने लगे तो प्रकाश का कहीं पता नहीं। सभी धर्मशालाओं के एक-एक कमरे को छान मारा, सारा शहर देख लिया पर प्रकाश नही मिला। उस दिन हम नहीं जा पाये। संघस्थ सभी साधुओं ने, ब्र० श्रीलाल जी ने, पं० खूब जी आदि लोगोने हम लोगों को काफी समझाया कि कोई बात नहीं, बालक की इच्छा है तो थोड़े दिन रहने दो। हम गारन्टी से कहते हैं कि माताजी का जाल इस बालक पर नहीं पड़ने देंगे। थोड़ी देर बाद पता चला कि बाबाजी की नसियां में ही पीछे इमली के पेड़ पर चढ़ा बैठा था। माताजी के मुख से यह शब्द सुनते ही हँसी का ठहाका गूंज गया। सब कहने लगे कि धन्य हैं ऐसे माता-पिता जिनकी प्रत्येक सन्तान में पौरुषता का प्रबल स्रोत बहता है। प्रकाश के पिताजी तो बड़े विक्षिप्त हो रहे थे किन्तु सबके सम्बोधन से कुछ दिनों के लिए उसे छोड़ दिया और दुखी मन से घर चल दिये। गाँव वालों के लिए भी यह एक विचित्र स्थिति हो गई थी कि ये लोग जिस सन्तान को लेकर माताजी के पास जाते हैं वही उनके पास रह जाती है। इतना सम्पन्न परिवार माँ-बाप का इतना स्नेह फिर भी यह त्याग। सब सोचते थे कि ज्ञानमती माताजी में कोई अवश्य चुम्बकीय शक्ति है।

खैर ! ६ महीने बाद घर से प्रकाश के बड़े भाई कैलाश पिताजी की आज्ञानुसार संघ में जाकर जबरदस्ती पिताजी की सख्त बीमारी का बहाना बताकर प्रकाश को ले आये। कुछ दिनों बाद उनकी शादी कर दी गई। आज वह कई बच्चों के पिता हैं। रत्नमती माताजी कहतो गईं बीच-बीच मे उनकी आवाज काफी धीमी हो जाती शायद अशक्तता के कारण। वे बहुत कम बोलती हैं। आज भी हम लोगों के बड़े अनुरोध ने उन्हें कुछ सुनाने को बाध्य कर दिया। उनके अमृत वचनों को सुनती हुई सभा बिल्कुल शान्त थी। इस प्रकार उन्होंने बताया कि हम जब भी माताजी के दर्शन के लिए आये मेरे साथ जो भी बालक-बालिका होती उसे ही ये अपने जाल में फँसाने की कोशिश करतीं। सन् १९६७ में प्रतापगढ़ में कामिनी को लेकर आये उसके साथ भी पूरी कोशिश की लेकिन वह पिताजी की डाँट फटकार के समक्ष बोल न सकी। सन् १९६८ में महावीर जी पंचकल्याणक में हम लोग आये तब इनके पिताजी काफी अस्वस्थ रहने लगे थे। वहाँ आते ही हमें पता लगा कि आ० शिवसागर महाराज की समाधि हो गई। सुनकर बड़ा धक्का लगा। सारे संघ में मासूमी छाई हुई थी। इस आकस्मिक निधन ने सबके धैर्य को परास्त कर दिया था। सब साधुओं की आँखों में अश्रु थे मानों सभा अपने को निपट असहाय महसूस कर रहे थे। दुर्भाग्यवश मुझे आपके अंतिम दर्शन नही हुए। मैंने परोक्ष में ही श्रद्धापूर्वक गुरुवर की वंदना की और सारा अतीत पूर्व में प्राप्त उनका सान्निध्य मुझे आज भी याद आता है तो अनायास ही ऐसे गुरुराज के प्रति मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है। आज उनकी इस पुण्य तिथि पर मैं भगवान से यह प्रार्थना करती हूँ कि वे शीघ्र ही संसार का नाश

कर मुक्ति धाम पधारें और मुझे आशीर्वाद प्रदान करें मैं भी अपने संयम की निर्विघ्न साधना करते हुए समाधिमरण को प्राप्त करूँ।

इतना कहकर माता रत्नमती अपना वाक्य समाप्त कर रही थीं कि विद्यापीठ के समस्त विद्यार्थी एवं प्राचार्य जी ने कहा कि माताजी महावीर जी में ज्ञानमती माताजी से ही आपको कैसे प्रेरणा प्राप्त हुई। आप माताजी बनकर उनके कहने में कैसे आ गयीं ! यह सब आप जरूर बतायें हम आपके मुँह से सुनना चाहते हैं।

कुछ सेकेण्डों की विश्रान्ति के बाद सबके अनुरोध को स्वीकार करके रत्नमती माताजी मुस्कराती हुई पुन बतलाने लगीं—

मनोवती जो पहले क्षुल्लिका बन चुकी थीं महावीरजी में उनकी आर्यिका दीक्षा होने वाली थी। आ० श्री के स्वर्गस्थ होने के बाद नये आचार्य की खोज थी अतएव संघ के सभी साधुओं ने विचार विमर्श करके मुनि धर्मसागर जी को आचार्य पट्ट प्रदान किया। अब संघ का नया जीवन प्रारंभ हुआ। जो दीक्षायें होने वाली थीं उनको आ० धर्मसागर जी ने दीक्षायें प्रदान कीं। क्षुल्लिका अभयमती भी आर्यिका बन गईं। हम दोनों दीक्षा के समय उनके माता-पिता बने। हमारे लिए यह प्रथम और अन्तिम अवसर था माता-पिता बनने का क्योंकि इससे पूर्व ज्ञानमती माताजी और अभयमती जी की दीक्षाओं में हम कभी शामिल ही नही हुए थे। वहाँ हम मालती को ले गये थे। जब हम लोग घर के लिए रवाना होने लगे तब सब लोग बस मे बैठ चुके थे। ज्ञानमती माताजी ने मुझे बुलाकर धीरे से कहा कि मैने मालती को ब्रह्मचर्यव्रत दे दिया है ध्यान रखना। मैं कुछ बोली नहीं, जल्दी-जल्दी बस में आकर बैठ गई। मस्तिष्क उलझन में था आखिर माताजी को क्या हो गया है। क्या ये सारे घर को साधु बनाना चाहती हैं। फिर सोचा दे दिया होगा क्या हम लोगों से पूछा था। माँ बाप की आज्ञा के बिना कहीं इतने बड़े जीवन का मार्ग चुना जाता है। मैने किसी से कुछ नहीं कहा। सन् १९६९ में जब टिकैतनगर में मुनि सुबलसागर जी महाराज का चातुर्मास हुआ तब मालती ने सबके मोह एवं विरोध को ठुकराकर आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया। उसी समय मैंने पांचवीं प्रतिमा के व्रत लिए। पहले तो उसके पिताजी को कुछ बताया नहीं गया लेकिन धीरे-धीरे जब पता लगा तो उनको असह्य वेदना हुई। वे गम्भीर रूप से बीमार रहने लगे और २५ दिसम्बर १९६९ को णमोकार मंत्र सुनते-सुनते समाधिमरण को प्राप्त हो गये। संयोग और वियोग तो संसार के चक्र ही हैं जो आया है वह जायेगा भी अवश्य। इसी विचार से दुःख से राहत मिली। मैं अगले ही वर्ष सन् १९७० में टोंक (राज०) में आ० धर्मसागर जी के संघ के दर्शन हेतु गई। वहाँ मैंने सप्तम प्रतिमा के व्रत ले लिये। इसके पूर्व ही मालती ज्ञानमती माताजी के पास अध्ययन हेतु आ चुकी थी। उसे भेजने रवीन्द्र टोंक (राज०) आया था तब वह बी० ए० की परीक्षा पास कर चुका था। ज्ञानमती माताजी ने उसे भी समझा बुझाकर पढ़ाने के बहाने अपने संघ में रख लिया। सन् १९७१ में मै माधुरी और त्रिशला सहित कैलाश के परिवार के साथ अजमेर आई हुई थी वहीं पर मेरे दीक्षा

के भाव हुए। अब मुझे समझ में आ गया था कि जब मन में वैराग्य की तरंगें उठती हैं तो सारे विरोध सहन करने की स्वयमेव क्षमता आ जाती है और दिल पत्थर सा कड़ा हो जाता है। मैंने भी सब कुछ सहन करके दीक्षा ली। बाद मे मुझे ज्ञात हुआ कि माधुरी ने भी दशलक्षण की सुगन्ध दशमी के दिन ज्ञानमती माताजी से ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया है। अब मैं क्या कह सकती थी। स्वयं त्याग मार्ग पर चल कर उसे संसार बढ़ाने का उपदेश कैसे देती।

अस्तु, आज मैं जो कुछ भी हूँ गुरुओं का आशीर्वाद है। ज्ञानमती माताजी के जिस जाल में मैं अपनी सन्तानों को भी फँसने नहीं देना चाहती थी प्रसन्नता है कि मैं भी उसी जाल में खुशी-खुशी फँस गई। मैं ऐसे अपना सौभाग्य समझती हूँ कि यह जाल संसार का न होकर क्रम परम्परा से मुक्ति का जाल है। मेरी तो यही भावना है कि सभी लोग अपने-अपने मार्ग पर चलते हुए कल्याण करें और मैं भी आत्म-साधना के पथ पर निरन्तर उन्नति करती रहूँ।

"आ० शिवसागर महाराज की जय"

इसके बाद परमपूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी ने आ० श्री के संघ में आर्यिका रूप में रहकर जो कुछ अनुभव सुनाये उनके बारे में कई रोमांचक घटनायें बताईं। आ० श्री कितने तपस्वी, कुशल संघ संचालक एवं अनुशासन प्रिय थे इसकी भी १-२ घटनायें सुनाईं।

अन्त में आ० श्री शिवसागर महाराज की जयघोष के साथ सभा सम्पन्न हुई। सबने नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ कर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।



मेरी हृदय व्यथा

श्री सुभाषचन्द्र जैन, टिकैतनगर



मैं अपने किंचित् विस्मृत अतीत की स्मृतियों को ताजगी नहीं प्रदान करना चाहता था किन्तु हाथ में आया वह अवसर भी नहीं खोना चाहता। विश्ववन्दनीय अभिनन्दनीय पूज्य रत्नमती माताजी का यह अभिनन्दन मात्र उन्हीं की विशेषताओं को सूचित नहीं करता बल्कि त्याग धर्म को अपनाने वाले प्रत्येक प्राणी को एक सुखद प्रेरणा देता है कि हम गुणीजनों के प्रति सदा आदर भाव रखें तथा उनकी प्रभावना करने के लिए हमेशा तत्पर रहें।

एक पुत्र होने के नाते आशायें तो बहुत-सी संजोई थी किन्तु दुर्भाग्य कि कुछ आशायें ही स्मृतियाँ बनकर रह गईं। जिसका हम स्वप्न में भी विश्वास नहीं कर सकते थे हमारी सुकोमल काया वाली माँ कभी ऐसे कठिन आर्यिका पद को धारण कर सकती हैं। वैसे धार्मिकता से ओतप्रोत तो उनका जीवन गृहस्थ में ही था लेकिन इतने में उन्हें सन्तोष न हो सका। शायद आपको हम सभी की ममता बिसरानी ही

थी इसीलिए हृदय में पूर्ण वैराग्य की धारा प्रवाहित हो चली जहाँ पुत्रों के लिए स्नेह का कोई स्थान नहीं था। "माँ" यह शब्द आज हम लोगों से कितना दूर हो गया। कौन सा अभागा बच्चा होगा जो माँ जैसा प्यारा शब्द अपने मुँह से कहने का इच्छुक न हो। माँ के लिए बालक चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो जाये उसकी दृष्टि में बालक ही रहता है। पुत्र भी चाहे स्वयं अपनी सन्तानों की अपेक्षा पिता क्यों न बन जाये किन्तु माता-पिता के समक्ष वह उनसे पुत्रत्व के स्नेह पाने की ही आशायें रखता है। इन्हीं कुछ असीमित आशाओं का बाँध मैंने भी अपने जीवन में बांधा था किन्तु आशातीत निराशाओं ने वह बाँध तोड़ दिया।

सन् १९७२ का वह दिन मगसिर वदी तीज उसे शुभ कहूँ या अशुभ जिस रूप में भी वह मैं भूल नहीं पाता हूँ। रात्रि के स्वप्न में भी वही दृश्य दिखाई देने लगता है कि मेरे सिर पर हाथ फेरती हुई माँ मुझे गिलास से दूध पिला रही हैं। जिस प्रकार से अजमेर में माँ ने अपनी दीक्षा की पूर्व रात्रि को मुझे कई दिन से निराहार देखकर प्यार से समझाते हुए दूध का गिलास मेरी ओर बढ़ाया था। मेरी उन्मन-स्कता देख उन्होंने स्वयं ही गिलास मेरे मुँह से लगा दिया था। बेटे दूध तो पी लो दो-तीन दिन से कुछ खाया नहीं। कहीं तुम जैसे समझदार बच्चे ऐसी नादानी करते हैं। क्यों मैं वह दूध भी पी पाया था! माँ के इन ममतापूर्ण शब्दों ने तो मेरे धीरज की सीमा तोड़ दी थी। उस समय केवल यही तीव्र कामना भगवान् से मन ही मन कर रहा था कि हे भगवन्! आज की यह रात्रि मेरे पास से कभी दूर न हो क्योंकि प्रातः होते ही मेरी माँ मुझसे छूट जायेगी। मैं अपनी माँ के स्नेह को विश्वप्रेम में परिवर्तित नहीं करना चाहता था और न ही अपने हरे-भरे आंगन को सूना ही करना चाहता था। उन्होंने अपने मस्तिष्क में जो भी कुछ सोचा हो हम तो अपने जीवन में केवल माँ की छत्रछाया और कदम-कदम पर उनके निर्देशन को अपना सौभाग्य समझते थे और भविष्य में इसी की अपेक्षा थी किन्तु इस सौभाग्य के लिए हम तरसते रह गये। हो सकता है हमारी ऐसी बलवती भावना अगले जन्म में हमे पुनः उनके पुत्र होने का सौभाग्य और मातृत्व की अखण्ड छत्रछाया प्रदान करने में सक्षम हो सके।

मैं सोचता हूँ कि यदि उस समय मेरी एक ही बात मान ली जाती तो शायद जैसी कि काफी दिन से मेरी हार्दिक इच्छा थी कि एक बार मैं स्वयं अपने साथ माँ को सम्मेदशिखर, गोम्मटेश्वर आदि तीर्थों की यात्रा करवाने के लिए ले जाऊँगा। हम दोनों पति-पत्नी मिलकर उनकी सेवा करेंगे और सुखपूर्वक यात्रा का आनन्द लेंगे। बहुत-बहुत कहा मैंने माँ! मेरी यही इच्छा मुझे पूरी कर लेने दो। आप चाहें तो यात्रा से वापस आकर दीक्षा ले लेना तब शायद मुझे इतना असह्य दुःख न होगा। यदि होगा भी तो मैं आपके समक्ष प्रगट न होने दूँगा। और आपका असीम उपकार मानूँगा। लेकिन माँ के हृदय में तो मानों सारे तीर्थ उसी वैराग्य के रूप में ही समाहित हो गये थे। सारे परिवार वालों के रोते-बिलखते प्रश्नों के उत्तर में उनका एक संक्षिप्त सा वाक्य था "मुझे अब कीचड़ में नहीं फँसना है, मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया।" यह

शब्द सुनकर दिल में बड़ी झनझनाहट पैदा होती। आज भी वे शब्द कान में गूंजा करते हैं। "क्या गृहस्थी सचमुच कीचड़ है" आखिर भगवान् ऋषभदेव ने भी तो शादी की थी, गृहस्थी बसाई थी। लेकिन समाधान स्वयंमेव मिल जाता है कि उन्होंने भी हरा-भरा परिवार छोड़कर दीक्षा धारण की तब मोक्ष को प्राप्त किया। चूंकि यही अनादि परम्परा है।

पूज्य माँ श्री के शुभाशीर्वाद से हम सभी भाई-बहन अपनी-अपनी गृहस्थी को धार्मिकता पूर्वक चला रहे हैं किन्तु आपका अभाव इस घर के लिए एक शूल के रूप में सभी सदस्यों को चुभता रहता है। बहन मालती व माधुरी जब कचित् कदाचित् घर में आती है तो सबके हृदय खुशी से फूले नही समाते है। कुछ समय के लिए माँ के वियोग से दुःखी हृदय को कुछ राहत मिलती है किन्तु उनके घर से जाने के पश्चात् पुनः नीरवता का वातावरण छा जाता है। जिन छोटे-छोटे बच्चों ने अपनी दादीजी का प्यार दुलार प्राप्त भी नही किया वे भी प्रतिदिन कहते हैं कि बाबू ! दादी जी घर क्यों नहीं आती ! दोनों बुआजी हमारे घर में हमेशा क्यो नहीं रहती हैं। अब जब बुआजी आयें तो कभी मत जाने देना। उन्हें नहीं पता कि दादीजी ने तो घर ही छोड़ दिया। और बुआजी भी उन्ही की छत्रछाया मे धर्म मार्ग पर अग्रसर हो रही हैं।

सारा विश्व इस स्नेह और मोह से अवगत है। सब जानते हैं कि मोह संसार बन्धन को दृढ़ करने वाला है किन्तु अनादिकालीन संस्कार शायद एकदम तो नहीं छूट पाते। प्रयास तो सदा यही करता हूँ कि सब कुछ भूल जाऊँ। होनी सो हो गई अब तो उन पूर्व स्मृतियों को विस्मृत करना ही पड़ेगा। शनैः शनैः सफलता मिलने की आशा लिए हुए पूज्य माँ श्री की चरण वंदना करते हुए उनके स्वस्थ जीवन की कामना करता हूँ।





कुछ भूली बिसरी स्मृतियाँ

श्रीमती सुषमा जैन, टिकैतनगर

आज से लगभग १८ वर्ष पूर्व जब मैं यौवन की देहली पर पैर रक्खा था मेरे पिताजी मेरी शादी के सम्बन्ध में बातचीत करते रहते थे। मैं उस समय ज्ञानमती माताजी की विद्वत्ता के बारे में काफी चर्चायें सुना करती थी। मेरे मन में कई बार ऐसा विचार आता कि क्या मैं उस घर की बहू नही बन सकती। फिर सोचा मेरे ऐसे भाग्य कहाँ ! लेकिन बार-बार यह अज्ञात भावना जाने क्यों हृदय में जागृत होती। कई बार सोचा माँ से अपनी इच्छा प्रकट करूँ लेकिन साहस नहीं होता था।

सुना है कि कर्म का तीव्र बन्ध (निदान) कर लेने पर उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है और तीव्र भावनाओं की शृंखला भी एक-न-एक दिन फलित होकर उन्नति के शिखर पर अवश्य पहुँचा देती है। मेरे साथ भी यही हुआ आखिर एक दिन

पिताजी के मन में भी उस परिवार के साथ सम्बन्ध जोड़ने के भाव उत्पन्न हुए शायद मेरी भावना ही फल गई। पिताजी ने प्रयास किया उधर से समाचार आया कि हम अयोध्याजी के पंचकल्याणक में लड़की देखना चाहते हैं।

पंचकल्याणक का समय भी नजदीक ही था तेज गर्मी के दिन थे। माता-पिता मुझे साथ लेकर अयोध्या आये। प्रतिष्ठा के कार्यक्रम अपनी गति से चल रहे थे। हम लोग दोनों ही उद्देश्यों को सफल कर रहे थे। निश्चित तिथि के अनुसार मुझे माँ ने साड़ी पहनाई, सिर पर पल्ला ढका और एक मूर्ति के समान मुझे स्थिर बिठा दिया। मन में धुक-धुकी थी, शरीर में पसीना आ रहा था। सोच रही थी पता नहीं मुझे पसन्द करेंगे या नहीं। देखते ही देखते कुछ महिलायें मेरे पास आईं। माँ ने मुझे उनके चरणस्पर्श करने को कहा। शायद मेरी होने वाली सासूजी थी। मैंने चरणस्पर्श किये उन्होंने मुझे छाती से चिपका लिया और कहा बड़ी प्यारी बहू है मेरी। मेरी मानों जान आई कि इन्होंने मुझे पसन्द कर लिया है। मैं मौन रही, शर्म से आँखें नीची थीं। सब ननदें भी मुझे प्यार भरी नजरों से देख रही थीं।

कुछ ही महीनों में मेरी शादी हो गई। जैसा कि प्रारम्भ से ही मुझे शिक्षा मिली थी तदनुरूप मुझे सास-ससुर और पति की सेवा में अपूर्व आनन्द मिलता था। छोटी ननदें मुझे दिन भर भाभी-भाभी कह कर छेड़ती रहतीं शायद मेरे साथ सबका अधिक ही स्नेह था।

जिस माँ के बारे में आज मैं कुछ लिखने का साहस कर रही हूँ मैं समझती हूँ कि वह स्वयं ही कोई दैवी अवतार थी जिन्होंने अपनी सन्तानों पर ऐसे सुसंस्कार डाल कर सुवासित किया जिनकी सुगन्धि आज सारे विश्व में फैल रही है। जब भी मैं आपकी सेवा करने बैठती, मालिश करती तो कहती—बेटी ! धीरे-धीरे करो दुखता है। और बड़े कोमल हाथों से स्पर्श करवातीं। भोजन की शुद्धि में आपका विशेष ध्यान रहता था। साधुओं के समान चौके का शुद्ध भोजन प्रतिदिन मैं आपके लिए बनाती चूँकि मैंने आपको प्रारम्भ से ही व्रतिक रूप में देखा था। आपने कुछ दिनों बाद चारपाई पर सोने का त्याग कर दिया था। पिताजी काफी नाराज होते लेकिन आप जमीन पर ही अपना बिस्तर लगातीं। पिताजी ने जब देखा कि ये किसी की बात मान नहीं सकती, शरीर कमजोर है कहीं बीमार न हो जायें क्योंकि घर के अन्दर रहकर भूमि पर सोना एक आश्चर्यजनक बात थी अतः उन्होंने इनके लिए एक छोटा लकड़ी का तख्त बनवाया और कहा कि ठीक है तुम इस पर सोया करो। आज भी वह तख्त घर में आपकी स्मृति में सुरक्षित है। अपनी धार्मिक क्रियाओं में अत्यन्त दृढ़ रहती थीं और दिनों-दिन अपने जीवन को विशेष संयमित करने का ही आपका प्रयास रहता था। लेकिन आप घर छोड़कर कभी दीक्षा ले लेंगी ऐसी आशा हमें स्वप्न में भी नहीं थी। घर में हम तीन बहुयें हैं सबमें छोटी मैं ही हूँ। मुझे आपके पास रहकर कभी किसी तरह की जिम्मेदारी का सामना नहीं करना पड़ा था। सभी बच्चों की भाँति मैं भी आपकी लाड़ली बहू थी। ईश्वर जाने

किसकी नजर ने मुझे और सारे परिवार को आपसे बिछुड़ने को बाध्य कर दिया। मुझे भी अब अपनी गृहस्थी की जिम्मेदारी निभानी पड़ती है। आपके द्वारा अल्प समय में प्राप्त कुछ शिक्षायें मेरे जीवन के साथ आत्मसात् हैं उन्हें मैं सदैव अपना लक्ष्य बनाकर चलती हूँ। आगे भविष्य में भी मैं आपकी अमूल्य शिक्षाओं को सदा ग्रहण करती रहूँ यही भावना है।

अपने पति तथा बच्चों के साथ मुझे निरन्तर आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होता रहता है इसी माध्यम से पूज्य ज्ञानमती माताजी के मर्मज्ञ प्रवचनों का लाभ भी प्राप्त होता है। ऐसा सुअवसर मुझे जीवन के अन्तिम क्षणतक प्राप्त हो यही भगवान् से प्रार्थना है।



अपनी ही माँ को 'अपनी' कहने का अधिकार नहीं

श्री प्रकाशचन्द जैन, टिकैतनगर

पाठकगण सोचेंगे ऐसी क्या बात कि व्यक्ति अपनी ही सगी माँ को अपनी न कह सके, ऐसी क्या मजबूरी हो सकती है, पर यह सत्य है ·······एक भरा-पूरा परिवार अपने बहन-भाइयों के साथ, अपने माता-पिता के प्यार के साथ अपना जीवन श्रावकों के कर्तव्यों का पालन करते हुए व्यतीत कर रहा था। मैं बहुत छोटा था, मुझे चेचक निकली थी, मेरे बचने की कोई आशा न थी, माँ ने अपनी बड़ी बेटी मैना (पूज्य आर्यिका ज्ञानमतीजी) से कहा, इस बच्चे को गंधोदक पिलाओ व छिड़को यह ठीक हो जायेगा, घर में धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा जो थी, प्रभु के चरणों का जल पीते-पीते शनैः शनैः मैं ठीक होने लगा, बड़ी बहन मैना जीजी के अथक परिश्रम, उनकी सेवा से मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया। वर्तमान में पूज्य आ० ज्ञानमतीजी (घर का नाम मैना जीजी) का स्नेह बराबर मुझे मिलता रहा, गोद में खिलाया, उनकी ही गोद मे मैं कुछ समझने योग्य होकर बड़ा होने लगा, घर में जीजी की शादी की चर्चा होने लगी, इन्होंने शादी से इन्कार कर दीक्षा लेने की ठानी, मुझे क्या पता कि दीक्षा क्या होती है, घर में सभी रोते हम भी रोते। एक दिन इन्होंने आचार्य देशभूषणजी के समक्ष बाराबंकी स्थान पर अपने केशों को अपने हाथों से उखाड़कर फेंक दिया। घर के लोग तड़फ रहे थे, रो रहे थे, हम बहुत रोये, साथ ही सोते थे, उँगली पकड़कर साथ ही उठते थे, ऐसी ममतामयी जीजी अब कभी घर नहीं आयेंगी ऐसा सुनकर रोते रहे, बिलखते रहे, पर वैराग्य को राग से क्या वास्ता ? जीजी हम सबको छोड़कर चली गईं, जले हुए घाव को समय का मलहम मिला, दस वर्ष बीत गये। हमारी उम्र १५

साल हो गई, सन् १९५९ ई० में पूज्य माताजी का चातुर्मास पूज्य आ० शिवसागरजी के संघ के साथ अजमेर नगर में हुआ। अपने माता-पिता के साथ हम भी दर्शन करने अजमेर गए, दस वर्षों के बाद अपनी स्नेहमयी जीजी को देखा, गला भर आया, रोने लगे। दो चार दिन बाद ही माताजी ने केशलुंचन किया। वह दृश्य देखकर हम बहुत रोये। आज के दस वर्ष पूर्व बाराबंकी के केशलुंचन का दृश्य आखों के सामने आ गया तब अबोध शिशु के रूप में थे, अब तो सोचने-समझने की शक्ति थी। वह दृश्य देखा नहीं गया, माँ पिताजी एक माह अजमेर में रहे। घर वापसी की तैयारी होने लगी, हमारी लौकिक शिक्षा हाई स्कूल की हो चुकी थी। गाँव मे आगे पढ़ाई का साधन था नहीं। हमने माँ से पिताजी से बड़ा आग्रह किया कि मैं महीने दो महीने माताजी के सान्निध्य में रहकर कुछ धार्मिक पढ़ाई करना चाहता हूँ, मेरे बहुत जिद्द करने पर एक माह के लिए मुझे छोड़ दिया, उस समय पूज्य ज्ञानमती माताजी के चरण सान्निध्य में मुझे ६ महीने रहने का सौभाग्य मिला। अनन्तर घर आकर मैं व्यापार में लग गया। सन् १९६२ ई० में पूज्य माताजी शिखरजी की यात्रार्थ निकली, मुझे मालूम हुआ, माताजी शिखरजी जा रही हैं। इस समय मथुरा चौरासी में हैं, माताजी के साथ पदयात्रा, शिखरजी जैसे महान् क्षेत्र की जगह-जगह का अनुभव, गाँव-गाँव का परिचय ऐसे लोभ को मैं रोक न सका, माँ से कहा, अपनी इच्छा जाहिर की, माँ की स्वीकृति ने पिता की स्वीकृति दिला दी, पुनः मुझे माताजी के साथ उनकी सेवा करने का ४–५ माह का अवसर प्राप्त हो गया। जीवन मे कभी न भूलने वाली वह पदयात्रा प्रातःकाल की मधुर वेला मे माताजी का कमण्डलु लेकर साथ चलना, गाँव-गाँव की प्राकृतिक छटा का आनन्द.......क्या जीवन मे दोबारा मिल सकेगा। शायद असंभव है। घर में धार्मिक वातावरण होने की वजह से कभी तीर्थ-यात्रा की मनाही नही रही। माताजी को सकुशल सम्मेद शिखरजी पहुँचा कर ६ माह बाद घर वापस आकर व्यापार मे लग गये, माता-पिता के प्यार मे हम सभी का जीवन सकुशल बीतने लगा। माँ का स्वास्थ्य धीरे-धीरे कमजोर होता गया, सन् १९६५ ई० में हम गृहस्थ बंधन मे बँध गये। शादी हो गई। माँ की सेवा करने के लिए घर में बहू आ गई।

२५ दिसम्बर सन् १९६९ ई० का वह मनहूस दिन आया उस दिन हमारे ऊपर से पिताजी का साया उठ गया, बस यहीं से तो शुरू होता है भरे-पूरे परिवार का खण्डन। पिताजी की मृत्यु के समय हम सभी पिताजी को घेरे बैठे हुए थे, णमोकार-मन्त्र चल रहा था। आ० सुमतिसागर जी महाराज दरियाबाद (गाँव से ६ किमी० दूरी पर) पधारे थे, पता चला। हम महाराज के पास पहुँचे—महाराज हमारे पिताजी का अन्तिम समय है उनकी समाधि बन जाये। आप चलिए, महाराज चल दिए, घर आए देखा, पिताजी की चेतना धीरे-धीरे मन्द पड़ रही थी। महाराजजी ने पिताजी के ऊपर पीछी रखी, बोले होश में हो। शिखरजी की यात्राएँ की थी, याद है पिताजी ने धीरे से आँख खोलीं। महाराज ने पुनः वही प्रश्न दोहराया, पिताजी ने स्वीकृति में सर

हिलाया और बड़े ही शांत भाव से णमोकार मन्त्र सुनते-सुनते आँखें मूँद लीं; हाथ पैर ठण्डे हो चले, शरीर में हलचल बन्द हो गई। हम लोग रोने लगे, माँ ने कहा नहीं कोई बच्चा नही रोयेगा, खबरदार अभी प्राण निकल रहे हैं। जोर-जोर से णमोकार मन्त्र बोलते जावो, आधे घण्टे तक णमोकार मन्त्र चलता रहा, पर पिताजी जा चुके थे। हमारे धीरज का बाँध टूट गया, पिताजी की छाती से लगकर सभी रोने लगे, माँ सभी को चुप कराती। हम रोते—माँ हम पिता को कहाँ पायेंगे। इनका साया हम पर से उठ गया, माँ समझाती यही तो संसार है, धन्य है ऐसी माँ को। ऐसी धरती माँ को धन्य है जिन्होंने ऐसी माँ को पैदा किया। अपने कर्तव्य पर अडिग रहकर क्षणिक मोह को रोककर पिता की ऐसी समाधि बनाई। पति के प्रति वास्तविक प्रेम को प्रकट कर दिया। सच्चा प्रेम तो किसी को मोह में न मरने देना—उसकी अन्तिम समाधि बना देना ही है।

पिता की मृत्यु का हमलोगों पर गहरा प्रभाव हुआ। ऐसी मृत्यु न कभी देखी थी न सुनी थी। इन्हें कहते है बचपन के संस्कार। धार्मिक संस्कारो के कारण ही पिता की समाधि कितनी अच्छी बनी, यह पूज्य माताजी ज्ञानमती जी के उपदेश का ही प्रतिफल था।

हम अनाथ हो गये पर माँ ने पिता का अभाव कभी खटकने नहीं दिया। माँ का प्यार इतना मिला कि पिताजी की मृत्यु का दुःख धीरे-धीरे कम होता रहा। ऐसी करुणा की मूर्ति, हमलोग व्यापार से जब घर आते सभी भाई, बहन, बहुएँ माँ को घेर कर बैठ जाते, माँ को हँसाते, व्यापार के संस्मरण सुनाते, कही धार्मिक चर्चा का दौर चलता ऐसा लगता कि मेरी माँ बिल्कुल गाय के सदृश सीधी सादी, भोली भाली, हँसती, मुस्कराती हम लोगों की थकान हर लेती। प्रति दिन माँ के पास से इस भावना के साथ हम लोग उठते कि हे प्रभु, मेरी माँ की ऐसी उमर हो कि ऐसी ममतामयी माँ का साया हमलोगों पर से कभी न उठे। ईश्वर करे ऐसी माँ सबको मिले, समय बीतता रहा। माँ का जीवन पूजन, सामायिक, त्याग की ओर बढ़ता गया, समय-समय पर पूज्य माता ज्ञानमती के संसार की असारता के निर्देश मिलते रहे।

विशेषकर माँ का अधिकाश समय पूजन मे बीतता रहा। गाँव के समाज की प्रतिष्ठित महिला छोटी साह जैन की माँ वह भी प्रतिदिन मंदिर मे अभिषेक पूजन करती थी, इन दोनों का साथ-साथ पूजन करने से दोनों मे बड़ा स्नेह हो गया, यह युगल जोड़ी वर्षों साथ-साथ पूजन करती रही, आपस में विचारों का आदान-प्रदान होता रहता, इस स्नेह ने धर्म सहेली का रूप ले लिया। छोटी साह की माँ का स्वास्थ्य नरम चलता था, अचानक अधिक बिगड़ गया। माँ को अनुभूति हुई शायद यह बच नही पावेगी, इनका अधिकांश समय छोटी साह के घर पर बीतने लगा। समय-समय पर सम्बोधन, सामायिक पाठ, बारह भावना सुनाना किये गये—यात्राओं के संस्मरणों को याद दिलाना मुख्य ध्येय हो गया। अन्त समय मे दान करवाया, रस, फल आदि त्याग करवा दिया, पूछा होश ठीक है, सोचने-समझने की शक्ति कार्य कर

रही है, की हुई यात्राओं को ध्यान करो, श्री सम्मेदशिखर की वन्दना याद करो। हूँ—की स्वीकृति में धर्म सहेली का सर हिला, णमोकार मन्त्र सुनाती रहीं और उनके भी धीरे-धीरे ओठ हिलते रहे। लगा णमोकार मन्त्र पढ़ रही हैं। पढ़ते-सुनते शरीर ढीला पड़ता गया………पड़ता गया, ठण्डा हो गया, धर्म सहेली ने अपना आश्रम स्वर्ग में बना लिया। इधर माँ का अखण्ड मन्त्र तब तक चलता रहा, जब तक उनकी सहेली ने नया जन्म नहीं धारण कर लिया, ऐसा था माँ का सच्चा स्नेह।

इसी तरह थोड़े दिन बाद।

अपने गाँव में जैन परिवार में लालचंद की माँ की तबियत ज्यादा खराब थी, सभी लोग देखने जा-आ रहे थे, माँ भी गई, उनके बच्चों ने कहा—आज कई दिन के बाद जरा नींद आई है जगाइयेगा नहीं, दूर से ही देख लीजिए। पर माँ की नजरें देख रही थीं, उनकी इच्छा थी इन्हें णमोकार मन्त्र सुनाना चाहिए। इनका अन्तिम समय है इस समय सबको दूर रखना, मोह माया में इनके प्राण निकलना ठीक नहीं। उनके बच्चों के स्नेह को देखकर कुछ कह न सकीं, घर वापस आकर बोलीं—लालचंद की माँ की हालत ठीक नहीं, लोग कहते हैं सोने दो पर वह १०-१५ मिनट की मेहमान लगती है। उन्हें इस समय णमोकार मन्त्र की जरूरत है, मैं कुछ सुना पाती, उनके लड़कों के स्नेह की स्थिति को देखते हुए ऐसा कहने का साहस नहीं हुआ कि यह अधिक देर की हमान नहीं हैं। १५ मिनट के बाद ही खबर मिली कि उन माँ साहब का स्वर्गवास हो गया।

सन् १९७१ ई० में मैं भगवान् महावीर की निर्वाण भूमि पावापुरी में निर्वाण-लाडू चढ़ाने गया था। इधर माँ भाई के साथ पूज्य ज्ञानमती माताजी के दर्शनार्थ अजमेर गई थीं। मैं निर्वाण लाडू चढ़ाकर राजगृही आ गया, पूज्य आचार्य श्री विमल-सागर जी महाराज वहाँ विराजमान थे। मैं उनके दर्शनार्थ मंदिर जी गया। आचार्य श्री सामायिक में बैठे थे। हम उसी जगह बैठ गये। महाराज की सामायिक समाप्त हुई। नमोऽस्तु किया। महाराज का आशीर्वाद मिला, पूछा कब आये—महाराज कल आये थे। निर्वाण लाडू चढ़ाने, पावापुरी होकर आज ही यहाँ आये हैं। कहाँ ठहरे—अभी तो स्थान नहीं मिल पाया। आचार्य श्री ने मैनेजर से कहकर उचित व्यवस्था कराई, पुनः बोले, क्यों प्रकाश तेरी माँ दीक्षा ले रही हैं, नहीं महाराज ऐसा नहीं है—उनका अभी तीन दिन पूर्व पत्र आया था कि हम भाई के साथ २-४ दिन में घर आ जावेंगे। बोले, ले रही हैं। अरे नहीं महाराज ! आपको गलतफहमी हुई है पुनः बोले, ले रही हैं। महाराज आपके पास कोई सूचना आई है क्या ? बोले, नहीं ऐसे ही तुझे देखकर मेरे मन में आ गया। बड़ा आश्चर्य हुआ, दीक्षा की कल्पना मात्र से सिहर उठे, लगा हजारों बिच्छुओं ने एक साथ डंक मार दिया, सोचा ऐसा नहीं हो सकता। माँ का ऐसा शरीर ही नहीं जो दीक्षा ले सकें। पत्नी जब सर में तेल डालती है तो अधिक देर मालिश तो करवा नहीं पाती, जोर से हाथ लगने पर कराह उठती है, ऐसा हो ही नहीं सकता, कुछ मन हल्का हुआ। पुनः-पुनः वही बात मन में आती रही। यदि

ऐसा हो गया तो ····क्या होगा, हे प्रभु, क्या माँ का साया भी छीन लेना चाहते हो, नहीं ऐसा नहीं होगा। मन तो भर आया, रोने को जी होने लगा। कहीं तबियत नहीं लगी। सीधे घर आये, कोई समाचार न देख मन को शांति मिली। अभी १० दिन भी नही बीते कि अजमेर से श्री जीवनलाल जी पधारे। उन्हें देखकर ही माथा ठनका, हे भगवन् क्या बात है, सब कुशल तो है। कैसे आना हुआ, तुम्हारी माँ दीक्षा लेने वाली हैं अतः सूचना देने आया हूँ, न··· ही····ऐसा नही हो सकता। आँखों के सामने अंधेरा छा गया। कहो जी, यह झूठ है, ऐसा मजाक आपको नहीं करना चाहिए, बोले, नहीं यह सच है मार्गसिर वदी ३ मे दीक्षा होना निश्चित हो गया है।

किसको खाना किसको पीना, उसी दिन की गाड़ी से पूरा परिवार अजमेर चल दिया। पहुँच गये, माँ को देखा। सभी माँ को घेर कर बैठ गये। क्या बात है माँ घर चलो। नही अब हम घर नही जायेंगे, क···यू····य···ा यह क्या कह रही हो, नहीं हमें दीक्षा लेना है। अपना कल्याण करना है। नहीं माँ घर मे रहकर धर्मध्यान करो। नहीं, घर मे रहकर नही हो पाता। सभी भाई-बहन बच्चे, बहुएँ माँ से लिपटकर रोने लगे ऐसा-रोये ऐसा रोये कि अजमेर के देखने वाले जन समूह भी रो पड़े। हे प्रभु पिछले जन्म में जरूर हम लोगों ने किसी को किसी के माँ बाप से वियोग कराया होगा। नही माँ ! अपना संकल्प बदलो। नही ·······अब हम घर नही जायेंगे। घर में क्या है तुम सबको पाल-पोसकर बड़ा कर दिया। अपने-अपने पैरो पर खड़े हो गये। जब तक तुम्हारे पिता थे उनकी सेवा कर ली। अब हमें घर क्यों ले जाना चाहते हो ? अरे हमें अपना कल्याण करने दो, इसी में तुम सबकी सही अर्थों में ममता है। माँ ने कहा—जाओ तुम लोग पहले कुछ खाओ पिओ। नहीं माँ ! हम लोग मुँह मे पानी नहीं डालेंगे। सबने जोर से कहा। जब तक तुम्हारा संकल्प नहीं बदलेगा। व्यर्थ जिद नही करते, तुम सब अच्छे लड़के हो।

इसके बाद हम लोग झोली फैलाकर आचार्य महाराज से भीख माँगने लगे। हमारी माँ हमें दे दो। महाराज यदि आपने माँ को दीक्षा दे दी तो अनर्थ हो जायेगा। हम लोग सर पटक-पटक कर जान दे देंगे। ऐसा रोना देखकर अजमेर समाज भी भाव विह्वल होकर बोली—महाराज ऐसी दीक्षा मत देवो महाराज। पूज्य आचार्य धर्मसागरजी कल्याण की मूर्ति हैं, असमंजस में पड़ गये महाराज। हम लोग बालक की तरह आचार्य श्री का मुख देखने लगे। क्या कहते हे महाराज। बोले धीरज रखो किसी को इस तरह दीक्षा जबरन नहीं दी जायेगी। सब कार्य स्वीकृति से ही होगा। जय हो, जय हो, जय हो, महाराज की। धन्य हैं प्रभु करुणा की मूर्ति, बहुत दयावान हैं महाराज। देखो महाराज ने मेरी माँ मुझे दे दी, उठो भैया सुभाष, आओ बच्चों देखा महाराज साक्षात् करुणा की मूर्ति हैं तुम्हारी दादी तुम्हे मिल जायेगी। आओ माँ के पास चलें आखिर ममता में भी शक्ति है, सच्ची पुकार है। हम अनाथ होने से बच गये, आचार्य श्री का गुण गान करते हुए अपनी माँ की प्राप्ति की खुशी में माँ के पास आये। माँ ने कहा यदि मुझसे कोई बात करनी है तो पहले सभी लोग खा-





पीकर आओ तब हम तुम्हारी बात सुनेंगे। चलो ठीक है माँ कहती हैं तो कुछ खा-पी लें। बच्चे भी कल से भूखें हैं, यदि माँ को ममता नहीं होती तो खाने के लिए क्यों कहती आखिर माँ माँ हैं। इतनी ममता कैसे खतम हो जायेगी। हल्का सा जलपान लेकर सभी लोग जल्दी-जल्दी माँ के आँचल में घुस गये। अच्छा माँ बोलो ठीक है ना कल घर चलोगी ना। तुमने अपना निर्णय बदल दिया ना। आचार्य श्री, मान गये हैं। हम लोगों ने उन्हें मना लिया है।

नही सुनो यदि तुम लोगों ने दीक्षा रोकने की कोशिश की तो हम अन्न-जल का त्याग कर देंगे। नहीं न''''ही माँ ऐसा मत कहो मत कहो ऐसा माँ '''तुम अपना शरीर देखो। इतना भयानक सर में दर्द उठता है जोर से तेल नहीं लगवा पाती कैसे करोगी केशलोंच, माँ कैसे करोगी। इस उमर में माँ पैदल कैसे चलोगी, कैसे जमीन पर बिना बिस्तर के लेटोगी, पत्नी बोली माँ जी हमसे सबसे ऐसी कौन सी गलती हुई है क्षमा कर दो। माँ जी एक बार क्षमा कर दो। माँ जी के पैर पकड़ लिए अभी हमने तुम्हारी क्या सेवा की है। बड़ी बहन जीजी बोली—माँ हम पीहर किसके पास आवेंगी जब माँ नहीं होगी, पिता तो हैं ही नहीं तो कैसे मन लगेगा, बच्चे पुनः हम सबको रोते देखकर दादी-दादी कहकर माँ से लिपट कर फूट-फूटकर रो पड़े। पर माँ के वैराग्य के आगे हम सभी के राग, मोह, ममता, हार गई। माँ का आखिरी निर्णय सुनो—आज इसी समय से हमारा अन्न-जल का त्याग है। जब तक दीक्षा नहीं हो जाती तब तक के लिए'''''''हे भगवन् यह क्या हो गया माँ ने तो अन्न-जल छोड़ दिया। हम लोगों ने बहुत आग्रह किया परन्तु सब बेकार'''' '' ''''''''

आखिर उस घड़ी को क्या कहें शुभ या अशुभ या अपने-अपने पूर्वोपार्जित कर्मों को दोष दें। "दीक्षा घड़ी" आचार्य पूछ रहे हैं—भरी सभा में इनको दीक्षा दी जा रही है किसी को एतराज तो नहीं। सब मौन पूरे परिवार को जैसे किसी ने बेहोशी की दवा सुँघा दी हो, सब चुप, किसी के मुँह से कोई शब्द न सुनकर "मौनं स्वीकृति-लक्षणं" ऐसा कहकर आचार्य श्री ने दीक्षा विधि चालू कर दी। सर्वप्रथम माँ की केशलुंचन क्रिया प्रारम्भ की गई। पूज्य माँ ज्ञानमतीजी ने उठकर माँ के केशों का उखाड़ना शुरू किया, अब परिवार को होश आया। सभी की बेहोशी हिचकियों में बदल गई, माँ के सर के बाल उखाड़े जा रहे थे। अब माँ स्वयं अपने हाथों से केश-लुंचन कर रही थी, हम सब मौन खड़े हिचकियाँ ले लेकर रो रहे थे। ४ भाई नौ बहिनों को जन्म देने वाली ५८ वर्ष के उम्र की करुण शरीर वाली माँ के चेहरे पर अलौकिक आभा, वैराग्य का तेज चेहरे पर चमक रहा था, धन्य है ऐसी माँ। लेकिन हम सबको अपनी माँ को अपनी माँ कहने का अधिकार छिन रहा था'''' ' छिन'''''''' रहा '''''''था और छिन गया अधिकार अब वह जगन्माता आप सबकी माता पूज्य माँ रत्नमती माताजी बन गईं। हम सब अनाथ हो गये—बिना माँ बाप के हो गये। आखिरी समय माँ से आचार्य श्री ने पूछा मोहिनी बोलो अभी तुम्हें किसी से मोह तो नही। माँ खड़ी हुई भरी सभा में हाथ जोड़ कर बोलीं नहीं महाराज मैंने संसार

देखा है यहाँ कोई किसी का नहीं। सब अकेले आए हैं अकेले जायेंगे। न कोई किसी का बेटा है न कोई किसी की माँ है। आप दीक्षा दीजिए। हम अपना कल्याण करें। माँ की दीक्षा हो गई, दूसरे दिन माँ को सभी भाई-बहन-बहनोई ने मिलकर आहार दिया। भारी मन से सभी चल दिये घर को। कोई किसी से नही बोल रहा है, सभी घर पहुँच गये ऐसी खामोसी ऐसी वीरानी लगता है क्या हो गया। क्या नही हुआ सभी कुछ तो लुट गया, जिस घर मे जन्मे, जिस घर में पले, वही घर आज काट रहा था। जगह सूनी-सूनी देखकर सभी का मन भर आया सभी का एक बार फिर करुण रुदन चालू हुआ रोते रहे……दिन……दिन ‥ हफ्तो ‥ महीनों। कहते हैं समय एक ऐसा मलहम है जो बड़े से बड़े घाव भरा करता है। समय बीतता गया, गृहस्थी में रमते रहे। समय-समय पर माँ बाप का अभाव खटकता रहा…… धीरे-धीरे स्वाध्याय से मन को शांति मिली। इसी का नाम संसार है।

मन में विचार उठता है आखिर परिवार में ऐसा क्यों है। ऐसा कैसे हुआ—बड़ी बहन पूज्य माँ ज्ञानमतीजी बन गईं। माँ रत्नमतीजी हो गई। दूसरी बड़ी बहन अभयमती जी बनी। छोटे भाई रवीन्द्र ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेकर समाज सेवा का बीड़ा ले लिया। छोटी बहन मालती, माधुरी ब्रह्मचारिणी बन त्याग मार्ग में अग्रसर हैं।

पूज्य माँ ज्ञानमतीजी पूज्य माँ रत्नमतीजी के दर्शनों की लालसा लेकर वर्ष में एक आध बार दर्शनों का सौभाग्य अवश्य प्राप्त हो जाता है।

ऐसी जगन्माता के समक्ष एक बार ऐसी जिज्ञासा प्रगट की कि माँ एक ही परिवार से इतने-इतने सदस्यों का धर्म से जुड़ने को क्या कहा जाये। संयोग ही कहा जा सकता है।

नहीं भगवान् आदिनाथ के परिवार मे भी तो स्वयं भगवान् आदिनाथ, कुँवर बाहुबली, महाराज भरत, पुत्री ब्राह्मी, सुन्दरी सभी ने तो दीक्षा ली थी। इसे संयोग नहीं बल्कि संस्कार कहो। माँ-बाप, गुरुओं के द्वारा दिए हुए संस्कारों का बड़ा महत्त्व है। यह सब संस्कारों का ही प्रतिफल है।

संस्कार……संस्कार……संस्कार शब्द मस्तिष्क को हिलाये दे रहा था साढ़े तीन अक्षरों का शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है, आज के भौतिक युग मे बच्चे का बचपन रेडियो की धुनें सुनता है। बड़ा होते-होते रेडियो, टेलीविजन सुनता है, देखता है, मम्मी पापा को टा-टा करना सीखता है, काँटेदार चम्मच से भोजन करना सीखता है। ऐसे संस्कारों में पला बच्चा भगवान् का पूजा-पाठ, माता-पिता के पैर छूकर प्रणाम करना, गुरुओं के प्रति आदर भाव रखना नहीं सीख सकता, सदाचारी, शाकाहारी नहीं बन सकता।

कौन सा उपाय है, माँ बताओ,

है, उपाय, नन्हें मुन्ने शिशु कोमल डाली के सदृश हैं इनमें छोटी-छोटी पाठशालाओं के माध्यम से धार्मिक छाप छोड़ी जा सकती है। मनोवैज्ञानिक ढंग से

लौकिक अध्ययन कराया जा सकता है। बच्चों को सुसंस्कारित कर सदाचारी, शाकाहारी बनाया जा सकता है।

माँ श्री की प्रेरणा से जीवन के लक्ष्य को एक दिशा मिली और उनके उपदेश से ऐसी विधि को कार्यान्वित करने की जिज्ञासा मन में जागृत हुई। समय बीतता रहा।

एक दिन अपने ही गाँव टिकैतनगर में "पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती बाल विद्या मंदिर" की स्थापना की गयी। ९ कमरों से युक्त विद्यालय भवन का निर्माण कराकर कुशल आचार्यों द्वारा बच्चों को धार्मिक लौकिक शिक्षा मिले, धर्म एव गुरुओं के प्रति अटूट श्रद्धा बने, भारत के होनहार अनमोल रतन बनें यही मंगल कामना है।

प्रातःवन्दनीय अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, महान् विदुषी, विश्व विभूति, विश्व धर्मप्रेरक, न्यायप्रभाकर पूज्य माँ ज्ञानमती, वात्सल्यमयी साक्षात् करुणा की मूर्ति पूज्य माँ रत्नमती का वरदहस्त, आशीर्वाद इन सैकड़ों बच्चों पर बना रहे, मिलता रहे।

ऐसी महान् जगन्माताओं को हमारा शत-शत वन्दन है।



स्मृतियों के झरोखों से

श्री वीरकुमार जैन, टिकैतनगर

कुछ दिन पूर्व ही मैंने हस्तिनापुर त्रिलोक शोध संस्थान से प्रकाशित "सम्यग्ज्ञान" मासिक पत्रिका के फरवरी १९८३ के अंक में पढ़ा कि "परमपूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने के लिए प्रेस मे जाने वाला है जिनकी विनयाजलि व संस्मरण न आये हों वे शीघ्र भेजें।" इस छोटे से कालम को पढ़कर मैं भी अपना लोभ सवरण न कर सका। १६ वर्ष के अपने निजी जीवन मे मैंने जिस रूप मे भी उनका सान्निध्य प्राप्त किया वह सब स्मृति में आकर आँखें सजल हो गईं। मैंने सोचा कि क्या मै सचमुच ही इतना भाग्यशाली हो सकता हूँ कि ऐसो जगत्पूज्य माता की गोद मे खेलने का तथा उनके लाड़-प्यार मे पलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो चुका है। अनायास ही मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा। मुझे स्मरण हो गया कि अम्मा ने मुझे एक दिन बताया था कि तेरा वीरकुमार यह नाम दादीजी (रत्नमती माताजी जब गृहस्थ मे थी) ने ही रखा था क्योंकि तूने दीपावली के दिन ही जन्म लिया था।

ओह! मै सोचता हूँ कि क्या वे विस्मृत क्षण आज मुझे नहीं प्राप्त हो सकते जिन्हें मैं सर्वदा के लिए साकार रख सकू। वह दिवस तो मुझे पूरी तरह से याद भी नही हैं, मै बहुत छोटा था। दादीजी ने दीक्षा ले ली थी और उनके लिए पुत्र, पौत्र, सारा कुटुम्ब अब बिराना हो गया था। यह स्मृति अवश्य है कि कई बार अपने बाबूजी, चाचाजी, अम्मा, चाची, ताईजी, ताऊ आदि को रोते हुए देखा, पूछने पर

पता चला कि माँ का वियोग सभी के हृदय की अशांति का कारण बना हुआ है। उस समय तक मैं इतना ही समझ पाता था कि सन्तानों को अपने माता-पिता से मोह होता है इसीलिए वियोग असह्य वेदना को प्राप्त कराता है किन्तु आज जब मैं कभी-कभी पूज्य माताजी के दर्शनार्थ जाता हूँ तो उनकी तत्त्वज्ञान प्रतिभा, सहनशीलता, कोमलवाणी, सर्वजन हिताय की भावना देखता हूँ तो प्रतिभासित होता है कि ऐसी अच्छी माँ को भला सबने क्यों दीक्षा लेने दिया। हम भी तो उनके असीम स्नेह का लाभ उठाते। हो सकता है यह मेरी अज्ञानता हो किन्तु इतनी कठिन तपस्या–एक बार बिना नमक का भोजन, केशलोंच आदि सब कुछ ऐसा, बीमार होते हुए भी अपने आवश्यक नियमों का पालन करना इस प्रकार उनका वैराग्यमयी जीवन देख कर हृदय में उत्कट भावना होती है कि मैं भी ऐसी त्यागमूर्ति माताजी की कुछ सेवा करूँ। यद्यपि मैं अभी तक विद्यार्थी हूँ लेकिन मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं अपने अध्ययन में से कुछ समय निकाल कर यदि आपके चरणों की यत्किंचित् सेवा कर सका तो अपने को विशेष सौभाग्यशाली समझूँगा।

मैं अपने पिताजी (प्रकाशचन्दजी) की हार्दिक भावनाओं को आज भी देखता हूँ और अपने भविष्य के लिए नोट करता हूँ। आज भी उनके दिल में अपनी माँ के प्रति कितनी श्रद्धा, आदर और विश्वास है। हर दम माता रत्नमतीजी की स्मृति को चिरस्थायी रखने का प्रयास पिताजी के जीवन का मूल अंग बन चुका है। घर में भी हम सभी बच्चों के साथ में मनोरंजन करते हुए कई बार अपने जीवन की स्मृतियों को सुनाते-सुनाते मानों माँ की याद मे खो जाते हैं और अकस्मात् ही उन की आँखों में आँसू दिखाई देने लगते है। इतना ही नहं जब कभी मालती बुआजी और माधुरी बुआजी जो आज बाल ब्रह्मचारिणी हैं, जिनका हम सभी को बहुत सामीप्य प्राप्त है, जिनकी गोद में हम खेले भी है वे लोग जब घर आ जाती है सारे घर मे हर्ष की लहर दौड़ जाती है जैसे पिताजी व हम सभी को कौन-सी निधि मिल गई हो। अपने से छोटी-छोटी इन बहनों के प्रति भी इतना असीम स्नेह, आदर भाव आखिर क्यों। क्योंकि उन्होंने भी माँ के ही मार्ग का अनुसरण किया और उन्हें माँ की छत्रछाया आज भी प्राप्त है। पिताजी की लगनशीलता व गृहस्थ कार्यों को सम्भालते हुए भी उनकी कर्मठता देखकर मुझे भी उनके साथ कार्य करने मे बड़ी प्रसन्नता होती है। अभी डेढ़-दो वर्ष पूर्व ही टिकैतनगर मे एक प्रारम्भिक पाठशाला की स्थापना उन्होंने अपने आत्मबल पर किया जिसका नाम रखा गया "आ० रत्नमती बाल विद्या मंदिर" जिसे मेरे ताऊजी (कैलाशचन्दजी) चाचाजी (सुभाषचन्द्रजी) आदि सभी का पूर्ण सहयोग प्राप्त है। इस विद्या मंदिर के नन्हे-नन्हे छात्र आधुनिक शैली से लौकिक तथा धार्मिक शिक्षण प्राप्त कर अपने को उन्नति मार्ग मे अग्रसर कर रहे हैं।

माता रत्नमतीजी के त्यागमयी जीवन से हमें यही शिक्षा प्राप्त होती है कि हम भी अपनी सामर्थ्यानुसार त्याग और तपस्या को अपने जीवन में धारण करें।

बन्धवो बन्धमूलं

कु० मालती शास्त्री धर्मालंकार

महान् आत्माओं का बचपन अपने आप में एक विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न होता है। बचपन की प्रतिभाशक्ति का सम्बन्ध परनिरपेक्ष स्वभावतः रहता है साथ ही उन संस्कारों पर अवलंबित होता है जो कि माँ-बाप के कार्यकलापों के माध्यम से अन-जाने, अनचाहे विरासत में मिल जाया करते हैं। माँ की गोद में बच्चा प्यार से, खेल खिलवाड़ से जितना सीख सकता है उतना किसी प्रारम्भिक स्कूल, नर्सरी, कान्वेन्ट से भी नहीं सिखाया जा सकता है। अतः माँ की शिक्षा ही बच्चे के लिए सबसे बड़ी पाठशाला है। इसी पाठशाला पर हर बच्चे की उन्नति या अवनति के विकास का अंकुरारोपण द्रुतगति से सेकेण्डों, मिनटों, घन्टों आदि के समान उसी प्रकार बढ़ता चला जाता है जिस प्रकार बच्चे के द्वारा ग्रहण किये दूध, पानी या अन्न के जरिए प्रतिसमय उसके शरीर की लम्बाई, चौड़ाई बढती रहती है। लेकिन प्रति समय तो क्या प्रति सेकण्ड भी हम और आप उस बढनी हुई लम्बाई, चौड़ाई को नहीं देख पा रहे हैं। ठीक इसी प्रकार माँ-बाप के संस्कार बच्चों मे प्रति समय अपनी छाप अंकित करते रहते हैं जिन्हे हम, आप नहीं देख पाते है और यही वे स्वर्णिम क्षण होते हैं जो भविष्य में महनीयता पूज्यता मे साधक सिद्ध हो जाते है। अतः गुणज्ञ को कभी भी अपनी गुणज्ञता का गर्व नहीं होता। कारण उसे इस बात का भी ध्यान नहीं रहता है कि बढ़ते हुए विकास के चरण-पथ का स्रोत कहाँ से प्रसूत हुआ है। और तब श्रद्धा केन्द्रित होती है अपने पू० माँ-पिताजी (अथवा गुरु-जनों) पर जिन्होंने शरीर को प्रसवित करने के साथ-साथ अनेकानेक सुसंस्कारों की मोहक सुगन्ध जीवन मे अनायास ही सुरभित कर दी थी।

प्राचीन आचार्यों ने यत्र, तत्र, सर्वत्र इन संस्कारों की महती व्याख्या की है। पुस्तकों मे अभिमन्यु के चक्रव्यूह की भेदन विद्या अत्यन्त प्रसिद्ध है ही साथ ही हम आपका ध्यान आकर्षित करते हैं वर्तमान भारत देश की स्थिति पर। विचार कीजिए आज के इस युग में भारत देश का नेतृत्व करने वाली हमारे देश की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के जीवन में राजनीति की कुशल कला कहाँ से आई। यदि कालेज या यूनिवर्सिटी ही इसके माध्यम होते तो अन्य भी अनेकों महापुरुषों में इतनी सुन्दर नेतृत्व कला पाई जा सकती थी लेकिन शायद इतनी जनप्रियता और अपनी कार्य प्रणाली द्वारा विशिष्टता प्राप्त करके राजनीतिक अनुभव का श्रेय उनके पू० पिता स्व० जवाहरलाल नेहरू को ही है जिन्होंने प्रारम्भ से ही कुशलता, योग्यता के संस्कार डालने प्रारम्भ कर दिये थे।

ये संस्कार इतने अमिट होते हैं कि जीव के इस भौतिक शरीर के समान नष्ट नही होते बल्कि गत्यन्तर में भी अनुचर के समान आत्मा पर अपनी वफादारी का जाल फैलाये रखते हैं। देखिये, हम सभी बोलते है "भरतजी घर में वैरागी"

इतिहास को देखने से विदित होता है कि इस विरागता को प्राप्त करने में भरतजी ने पूर्व के कितने ही भवों में कितनी तपस्यायें, आराधनायें की हैं। जम्बूस्वामी सुहाग-रात में मनोहारिणी रूपवती कामिनियों के बीच बैठकर तत्त्व (वैराग्य) की चर्चा करते रहे। इस दृढ़ता को करने वाली उनकी पूर्व भवावली की महिमा भी कम रोमांच-कारी नहीं है। शिवकुमार की पर्याय में यही जम्बूस्वामी ने अपनी अनेकानेक (३ हजार) सुन्दर स्त्रियों के मध्य मे रहते हुए ६० हजार वर्ष तक कठोर ब्रह्मचर्य की साधना करते हुए असिधारा व्रत का पालन किया था। उन्हीं अमिट संस्कारों के प्रभाव से चारों सुन्दरियों की रागभरी अँखियों मे विराग की धारा प्रवाहित करने में सफल हो गये। फलस्वरूप स्वयं तो मुनि बने ही उन चारों श्रेष्ठिपुत्रियों ने भी सर्वोच्च त्याग रूप आर्यिका पद धारण कर अपनी स्त्री पर्याय का छेदन कर डाला।

पुराणों में स्वर्णिम पृष्ठों पर ऐसी हजारों-हजारों स्मृतियाँ अंकित हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि चेतन तो क्या अचेतन भी यदि संस्कारों की दुनिया में अपना कदम रख दे तो व्यक्ति उसे सिर पर धारण कर लेता है। चंद कीमत वाला मिट्टी का घड़ा जब अग्नि में संस्कारित हो जाता है तो महिलायें पानी भरकर सिर पर रख कर ले आती है और शीतल जल से सबकी प्यास बुझा देती हैं। संस्कारों से सुसज्जित पाषाण भगवान् बन जाते है। जब इन संस्कारों के बल से अचेतन में प्राण फूंके जा सकते हैं तो इससे अधिक महत्त्वपूर्ण बात और क्या हो सकती है। अतः यह सुनिश्चित है कि बचपन की प्रतिभा माँ-बाप के संस्कारों की वह बसन्त मञ्जरी है जिसका समय पर उत्तम मधुर फल प्राप्त होता ही है।

ऐसे ही उत्तम संस्कारों को प्राप्त किया माँ मोहिनी ने अपने पू० पिताजी से और संभवतः पूर्व जन्म मे की गई आराधनाओं के बल से। अतः माँ मोहिनी की जीवन गाथा शब्दांकित करने से पूर्व प्रसंगोपात्त संक्षिप्त रूप में मैं उनके पू० पिताजी की कुछ विशेष स्मृतियों को यहाँ लिखना आवश्यक समझती हूँ। मेरे ख्याल से उन्हीं की प्रेरणाप्रद शिक्षाओं ने इनके जीवन मे अमृतमयी ज्ञान किरण प्रस्फुटित की जिसका फल प्राप्त हुआ ज्योतिपुंज ज्ञानदिवाकर सरस्वती की प्रतिमूर्ति "ज्ञानमती" सी माता।

"बन्धवो बन्धमूलं" गुणभद्र स्वामी के इन वाक्यों के अनुसार यद्यपि बन्धु-बान्धव बन्धन के ही कारण होते हैं लेकिन सुखपालदासजी केवल बन्धन के हेतु न थे यह उनकी अपनी विशेषता थी। हालांकि सभी बच्चों को खिलाने-पिलाने का वे अत्यधिक ध्यान रखते पर साथ ही देवदर्शन-पूजन-स्वाध्याय आदि का नियमित स्वयं पालन करते और बच्चों से पालन करवाते। सुखपालदासजी की जिनभक्ति और जिनपूजन के ही कारण उनके नगरनिवासी बड़े आदर से उनको "पण्डितजी" के नाम से संबोधित करते थे। जब तक वह महमूदाबाद में रहे तब तक प्रतिदिन हमेशा पूजन अवश्य करते थे साथ ही सुबह-शाम दोनों समय शास्त्र का वाचन करते जिसको नगरनिवासी तन्मयता से श्रवण करते थे और सदाचरण से युक्त सुखपाल-

दासजी की इस निःस्वार्थ धर्मपरायणता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते रहते थे। बच्चों में भी इसी प्रकार की परम्परा कायम रहे इसीलिए घर में भी "रात्रि मे" एक घण्टा प्रतिदिन अपनी छोटी लड़की "मोहिनी" से शास्त्र पढवाते। कुशाग्रबुद्धि होने से मोहिनी भी शास्त्र के तथ्य को भली प्रकार समझती थी। इस प्रकार बाप-बेटी की धर्म-चर्चाओं से निरन्तर आत्मा सुसंस्कारों में गोते लगाती रहती थी। मोहिनी देवी के जीवन की यह सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता रही कि संस्कृत के अनेकों पाठ बिना किसी की सहायता के स्वतः पढ़कर याद कर लिए। हाँ। ऐसे संस्कृत और हिन्दी के अनेकों बचपन के पाठ आज तक आपको शाश्वत याद हैं जो कि बचपन की सुखद अनुभूतियों को अपने मे संजोये हुए हैं।

सुखपालदासजी अपने समय में पहलवानी के बडे शौकीन थे, व्यायाम से युक्त सुदृढ़ शरीर था, प्रतिदिन सबेरे एक छटांक बादाम की गिरी अपने हाथ से ही पीस कर एक किलो दूध में मिलाकर पी जाया करते थे और अपने लड़कों को भी इसी प्रकार देते। साथ ही कुशल व्यापारी थे तथा इस सूक्ति "तेते पाँव पसारिये जैसी लाँबी सौर" के कट्टर अनुयायी थे। संसार मे प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे कई मोड़ आते हैं क्योकि कर्म का उदय प्रति क्षण चल ही रहा है खास कर साता और असाता वेदनीय, मोहनीय, अन्तराय कर्मों के अधीन हुआ प्राणी सुख के समय प्रफुल्लित और दुःख के समय खेदखिन्न हो जाता है। लेकिन प्रकृति का अटल नियम है कि दिन के बाद रात्रि और रात्रि के बाद दिवस उदित होते रहते हैं अतः अन्धकार युक्त रात्रि की विभीषिका से न घबराना ही धैर्य की कसौटी है। दिन की अपेक्षा रात्रि भी अपना कम महत्त्व नहीं रखती। कारण दुख की रात्रि व्यतीत होने पर सुखप्रभात अवश्य आता ही है। विवेकीजन अपनी कर्त्तव्यपरायणता पर अटूट विश्वास रखते हैं और तभी वे हर परिस्थिति में सफलतापूर्वक मंजिल पार कर जाते है। सुखपाल-दासजी का व्यापार कुछ ढीला हो गया तो उनको व्यापार के लिए पास के गाँव बीसलपुर में जाना पड़ा। वहाँ वे अपना माल लेकर जाते और जब पूरा बिक जाता तो वापस आ जाते। चूँकि बीसलपुर गाँव में जैन मन्दिर नहीं था ना ही जैनियों के घर थे इस कारण देवदर्शन पूजन में व्यवधान तो पड़ता था फिर भी वह अपनी नित्य क्रियाओं को किये बिना किसी ग्राहक से बात नहीं करते थे ऐसा सुदृढ़ नियम था। सुबह ३-४ बजे से ही सामायिक पाठ, स्तोत्र पाठ, जाप्य, पूजन आदि प्रारम्भ कर देते थे और काफी तन्मयता से लगातार कई घण्टे तक करते रहते थे। उसके अनन्तर ही व्यापार सम्बन्धी कार्य करते थे। हाँ ! इस प्रकरण मे यह उल्लेखनीय है कि बीसलपुर ग्राम मे सुखपालदासजी एक वैष्णव परिवार के मध्य ठहरते थे। शुरू से अन्त तक हमेशा उसी घर मे ठहरे। उस वैष्णव परिवार के लिए सुखपालदासजी बच्चे से बड़ों तक घरेलू व्यक्ति के समान बन गये थे क्योंकि वह प्रतिदिन शाम को सारे परिवार के मध्य बैठकर धर्म कथायें सुनाया करते थे। परिवार का हर व्यक्ति अपने योग्य सम्मान प्रदान करता था और हर बच्चे तक की यही भावना रहती थी कि आप यहीं रहे। महमूदाबाद चले जाने से हमारा घर सूना हो जाता है।

बन्धुओ ! आप सोच सकते हैं कि कितनी उदारता और मिलनसारता रही होगी उनके व्यक्तित्व मे जिससे कि परिवार के अभिन्न अंग बन गये थे। परिवार पोषण की जिम्मेदारी के साथ-साथ आप अपनी आत्मा के परिपोषक धर्म का पूर्णरीत्या पालन करते थे क्योंकि कहा भी है—

आयुःश्रीवपुरादिकं यदि भवेत्पुण्यं पुरोपार्जितं,
स्यात् सर्वं न भवेत्तच्च नितरामायासितेऽप्यात्मनि।
इत्यार्याः सुविचार्य कार्यकुशलाः कार्येऽत्र मन्दोद्यमा
द्रागागामिभवार्थमेव सततं प्रीत्या यतन्तेतराम् ॥

अर्थ—आयु, वैभव, अंगोपांग की परिपूर्णता आदि सामग्री पूर्व जन्म में किये गये पुण्य के उदय से ही प्राप्त होती है अगर पूर्व में पुण्य का उपार्जन नहीं किया है तो यत्नों के करते हुए भी सफलता नहीं मिल पाती। इसलिए कार्यकुशल सज्जन पुरुष वर्तमान के उपलब्ध सुखों आदि के प्रति उदासीनता धारण करते है और आगामी भव के हितार्थ प्रीतिपूर्वक धर्मा राधन करते रहते है।

इस प्रकार आगामी भव में साथ जाने वाली धर्मरूपी सम्पत्ति का आपने जीवन भर सम्पादन किया जिसके फलस्वरूप "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति-तादृशी" के अनुसार समाधिमरणपूर्वक आपका स्वर्गारोहण हुआ यह भी आपके पुण्य प्रताप की विचित्र घटना रही। क्योंकि इस समाधिपूर्वक मरण के लिए तपस्वी मुनि-जन जीवन भर अनेक साधनाओं के द्वारा मन को नियंत्रित करते है, प्रतिक्षण भावना भाते है 'दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं" अर्थात् दुखों का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति गमन हो, समाधिपूर्वक मरण हो और हे जिनेन्द्र भगवान्, आपके गुणरूपी सम्पत्ति की मुझे प्राप्ति होवे। हम और आप भी ऐसी ही कामना करते रहते है कि—"दिन रात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ। देहान्त के समय मे तुमको न भूल जाऊँ" ॥ इस प्रकार की भावना करते रहते हैं लेकिन भावना तभी सफल हो पाती है जब तदनुरूप प्रवृत्ति बनी रहे। शान्तिपरिणामी होना, रागद्वेष मे अत्यधिक हर्ष-विषाद अन्तपरिणति को सही दिशा प्रदान कराने में निमित्त बन जायेंगे। समाधिमरण की सबसे महत्त्वपूर्ण कड़ी यह है कि—"जागे नहीं कषायें नहिं वेदना सताये। तुमसे ही लौ लगी हो दुर्ध्यान को भगाऊँ" ॥ समाधिमरण को प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए ऐसा आचार्यों ने स्थान-स्थान पर कहा है यथा—"मारणान्तिकी सल्लेखना जोषिता" अंत समय में प्रीतिपूर्वक सल्लेखना करना चाहिए। समन्तभद्रस्वामी ने कहा है—

"अन्तःक्रियाधिकरणे तपःफलसकलदर्शितः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणं प्रयतितव्य ॥"

सर्वज्ञदेव ने सम्पूर्ण तप का फल यही कहा है कि अन्त समय मे समाधिपूर्वक मरण की क्रिया का होना। अतः अपनी पूरी सामर्थ्य के अनुसार इस समाधिमरण के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। अभिप्राय यह है कि सम्यग्दृष्टि के सारे पुरुषार्थ

इस समाधिपूर्वक मरण के लिए किये जाते हैं क्योंकि गौतम स्वामी ने प्रतिक्रमण पाठ में कहा है कि अणुव्रतों या महाव्रतों का पालन करते हुए जो श्रावक, मुनि सल्लेखना पूर्वक मरण करता है वह……। जीव उत्कृष्ट से दो या तीन भव और जघन्य से सात या आठ भव इससे अधिक ग्रहण नहीं करता। इन सब तथ्यों से स्पष्ट होता है कि मनुष्य के जीवन में समाधिमरण का कितना अधिक महत्त्व होता है और अनायास ही जिनका मरण समाधिपूर्वक हो जाये वे व्यक्ति सचमुच में कितने पुण्यशाली हैं। अन्धे के हाथ बटेरपक्षी का आ जाना भी उतना कठिन नहीं है जितना कि अंत समय मे स्वयमेव परिणामों का बन जाना कठिन है। सुखपालदासजी के समाधिमरण की घटना भी कुछ इसी प्रकार की है—व्यापार के लिए गये हुए सुखपालदासजी को एक दिन पत्र मिला। समाचार था उनके छोटे लड़के भगवानदास के नवजात शिशु का व्रताचार होना है यानि मंदिर ले जाना है अतः आप आ जाइये। यह समाचार पाकर सुखपालदासजी ने दूसरे दिन सुबह ही अपने घर महमूदाबाद के लिए रवानगी का प्रोग्राम बनाया। शाम को कमर से रुपयों की पोटली निकाल कर मकान मालिक को सँभालते हुए बोले—भैया। इन्हें रख लो, घर जाते समय मैं ले लूँगा। और इस प्रकार निसंग होकर सो गये, दूसरे दिन सुबह नित्यप्रति की भाँति उठकर सामायिक के लिए बैठ गये। थोड़ी देर बाद घर वालों ने देखा कि माला फेरते-फेरते लालाजी की गर्दन टेढ़ी क्यों हो रही है। पास में गये और उनकी मुखमुद्रा से उन लोगों के हृदय मे कुछ आशंकायें हुईं। फौरन मकान मालिक ने अपने बेटों से डाक्टर बुलाने को कहा लेकिन तभी सुखपालदासजी ने हाथ के इशारे से उन्हें मना कर दिया। फिर कहा कि आप लोग बिल्कुल न घबरायें। मेरे पार्थिव शरीर का दाह संस्कार यहीं कर देना, महमूदाबाद नहीं भेजना और फिर ध्यानमग्न हो गये। देखते ही देखते चंद क्षणों मे उस जीर्ण-शीर्ण शरीर से उनके प्राण पखेरू सदाचरण से युक्त जीवन के द्वारा बनाई हुई मंजिल की ओर प्रयाण कर गये। इस आकस्मिक दुर्घटना से परिवार के सभी जन फूट-फूटकर रो पड़े। किंकर्त्तव्यविमुढ़ हुए सेठ जी भी बड़ी देर तक रोते रहे। फिर ग्रामवासियों ने सेठ जी को समझा-बुझाकर शांत किया और बोले—सर्वप्रथम महमूदाबाद मे इनके पारिवारिक जनों को सूचना भेजो। तदनुसार व्यवस्था की गई। सूचना पाते ही सुखपालदासजी के घरवालों के ऊपर दुख का पहाड़ टूट पड़ा। उनके बड़े पुत्र महीपालदासजी और छोटे पुत्र भगवानदासजी दोनों भाई रोते-बिलखते पिताजी के पार्थिव शरीर को लेने जब बीसलपुर ग्राम मे पहुँचे तो दिन छिप रहा था। इधर दिन भर की इन्तजार के बाद सेठ जी ने भरे हुए दिल से लालाजी की दहन क्रिया सम्पन्न कर दी थी। अपने पिताजी की जलती हुई चिता को देखकर महीपालदास व भगवानदास चीत्कार कर उठे और उनके करुण क्रन्दन से ग्रामवासी भी रो पड़े। सेठ जी उन दोनों छोटे भाइयों को हृदय से लगाकर बहुत देर तक रोते रहे फिर स्वयं धैर्ययुक्त हो दोनों भाइयों को धीरज बँधाते हुए बोले—तुम दोनों छोटे हो मैं उनका बड़ा पुत्र था—इस प्रकार हम तीनों ही सगे भाई के समान हैं। हम सभी अपने पिताजी के अभाव में दुखी हैं लेकिन लालाजी परम

पुण्यशाली कोई महान् दैवी अवतार मालूम पड़ते थे। उनकी निकटता से हमारा परिवार पवित्र हो गया था। यह हमारा कोई पुण्य कर्म का उदय था कि ऐसे संत-महात्मा के शरीर के दहन संस्कार का योग हमे मिल सका। श्मशान वैराग्य को लिए हुए सेठ जी ने दोनों भाइयों के दुख को यथायोग्य प्रयासों से उपशमित किया। पश्चात् अन्त समय में उनने जो कहा था वो बताया और बोले—चूँकि वे हमारे भी पिताजी थे और उनकी भावना के अनुसार ही हमने कार्य किया है अतः उनकी सारी रस्मे अर्थात् तीजा-दसवाँ व मरणभोज आदि सब हम ही करेंगे। दोनों भाइयों की अनिच्छा के बावजूद सेठ जी के आग्रहपूर्ण निवेदन को स्वीकार करना पड़ा और सेठ जी ने भी अपने पिताजी के समान दुःख भरे हृदय से सब कार्य सम्पन्न किया। बाद में लाला सुखपालदासजी द्वारा प्रदत्त रुपयों की पोटली महीपालदासजी को देते हुए बोले—यह है लालाजी अन्तिम निधि लो इसे सँभालो। लेकिन महीपालदासजी ने उसे लेना अस्वीकार कर दिया और बोले—पिताजी ने यह संपत्ति आपको दी थी अतः इस पर हमारा कोई अधिकार नही है। सेठ जी ने रुपए देने का अत्यधिक प्रयास किया लेकिन महीपालदासजी ने उस पोटली को देखा भी नही कि कितनी सम्पत्ति है लेना तो दूर की बात थी। हो भी क्यों न ऐसा आखिर उदार पिता के उदार भाव बेटों में आते ही हैं।

बन्धुओ ! जिनके पिताजी ऐसे कर्मनिष्ठ व कर्त्तव्यपरायण हों उनकी सन्तानों में वही गुण अनुप्रविष्ट हो जाये इसमें आश्चर्य ही क्या है। चूँकि नारी का हृदय अत्यन्त कोमल होता है, कोमल डाली के समान उसको जिधर भी मोड़ा जाये आसानी से उधर ही मोड़ी जा सकती है। इसी के अनुसार माँ मोहिनी ने प्राप्त किया उनसे धर्मरूपी रसायन की संजीवनी बटी को जो कि उनके अपने जीवन के लिए भवरोग दूर करने मे कारण बन गई। उन्हीं के पावन संस्कारों के निमित्त से आज वह रत्नमती माताजी के रूप में मात्र परिवारवालों के लिए ही नही बल्कि पूरे जैन समाज के लिए आदर्श उपस्थित कर रही है। उनके पावन आदर्शों पर चलकर हम भी शीघ्रातिशीघ्र अपना कल्याण कर सकें यही शुभाशीर्वाद की कामना करते है।





मैं अपना सौभाग्य कहूँ या दुर्भाग्य

कु० सुगन्धबाला जैन, टिकैतनगर

एक विचार मुझे कई बार स्वयं से प्रश्न करने के लिए बाधित करता है। मैं आज भी उसे समझ नहीं पाती हूँ। अपना सौभाग्य कहूँ या दुर्भाग्य ! पाठक शायद हँसेंगे भी कि अजीब-सा प्रश्न है। स्वयं को ही निज का सौभाग्य या दुर्भाग्य नहीं ज्ञात किन्तु कुछ ऐसी ही विचित्रताओं को लिए हुए मेरे छोटे से जीवन की छोटी-छोटी स्मृतियाँ हैं। एक ओर माँ कहती हैं कि अपने भाई-बहिनों में सबसे अधिक भाग्यशालिनी तुम्हीं हो क्योंकि तुम्हें अपनी दादीजी की प्यार भरी गोद मे खेलने का आनन्द मिला, उन्हीं

की सुगन्धित वाणी से तुम्हें "सुगन्धबाला" यह संज्ञा मिली। किन्तु मुझे तो वे स्नेहित क्षण याद ही नहीं है। क्योंकि मैं उस समय बहुत छोटी थी। मैं सोचती हूँ कि यदि मैं उस समय कुछ बड़ी होती तो उन्हें किसी भी हालत में दीक्षा न लेने देती। रो-रोकर आँसुओं की धारा से अवश्य उनके पत्थर दिल को पिघला देती। आज मैं जब किसी को उसकी दादीजी के साथ प्यार-दुलार देखती हूँ तो मेरे दिल में एक टीस उठती है कि मेरी भी दादी होतीं मुझे भी लाड़-प्यार करतीं। शायद इसे ही मैं अपना दुर्भाग्य समझती हूँ।

एक बार मैंने जबरदस्ती माँ से पूछा कि हमारी दादीजी ने दीक्षा क्यों ले ली। क्या आप लोगों ने उन्हे रोका नही। मेरा कहना था कि माँ की आँखों से आसुओ की धारा बह निकली। कुछ देर की सिसकियों के बाद उन्होंने बताया—बेटी, तू बहुत छोटी थी इसलिये दादी तुझे बहुत चाहती थी। किन्तु एक बार अजमेर में आ० धर्मसागर महाराज के संघ का चातुर्मास हो रहा था। उनके संघ मे आ० श्री ज्ञानमती माताजी जो कि कभी दादीजी की प्रथम सन्तान थीं, के दर्शन करने के लिए परिवार के साथ गई हुई थी। ईश्वर जाने इनके विचारों में भी उस समय कैसा मोड़ आया इन्होंने भी दीक्षा लेने का निर्णय ले लिया। हम सभी को सारे परिवार को रोता बिलखता छोड़ दिया। उस समय का दृश्य आज भले ही तुझे याद नहीं है लेकिन दादी की गोदी छिन जाने के कारण रो-रोकर पागल हो रही थी। एक महीने तक बुखार रहा। अब तो तुम समझदार हो गई हो। वह एक दिन था दीक्षा के दो दिन पूर्व तेरे पिताजी बेहोशी हालत में थे। जब भी होश आता रोते चिल्लाते कि मेरी माँ को दीक्षा मत दो-मत दो। जब उन्हे पूर्ण होश आया वह दीक्षा की पूर्व रात्रि थी। कुछ व्यावहारिक परम्पराओं के लिए (दीक्षार्थी की बिनोरी आदि) के लिए अजमेर के लोग उनको माँ को साथ ले जा रहे थे। तुम अपने पिताजी की गोद मे थी, वे भागे कि जब मेरी माँ की दीक्षा ही नहीं होनी है तो बिनोरी कैसी। जब तुझे गोद में लिए हुए माँ को रोकने में सक्षम न हो पाये तो एक वस्तु के समान तुझे एक ओर फेंक दिया और माँ के पीछे दौड़े। उन्हे वापस घर लाने के मोह मे उनकी विक्षिप्त दशा हो रही थी। मै उस स्थान पर नहीं थी तू रोती रही। पीछे जा रहे तेरे ताऊजी (कैलाशचन्दजी) ने तुझे सँभाला। मुँह से खून बह रहा था, दो दाँत टूट गये थे। पास के हास्पिटल से दवाई दिलवाई। उस समय अधिक निगरानी का तो वक्त ही न था—सभी एक स्वर से माँ की दीक्षा रोकने में लगे हुए थे। हम लोग तो असहाय से किंकर्तव्य विमूढ अपने अन्धकारमय भविष्य को सोचते हुए रो रहे थे लेकिन हमारे आँसुओं को देखने वाला था ही कौन। वहाँ तो मात्र वैराग्य की चर्चा थी। कई वर्ष तक तेरे मुँह मे वे दो दांत नहीं आये। यहाँ से आगे की घटना तो मुझे भी स्मरण है कि लखनऊ, बाराबंकी के कई दंत चिकित्सकों का इलाज करवाया गया पुनः मुझे वे दो दांत प्राप्त हुए। यह संक्षिप्त करुण कथा सुनकर मुझे बड़ा धक्का लगा। मैं सोचती हूँ क्या कुछ दिन सबकी इच्छानुसार दादीजी घर मे रह नही सकती थीं। लेकिन शायद जैनधर्म मे वैराग्य के पास राग की कोई शरण ही नहीं होती है या नियति की

ऐसी ही इच्छा थी। आज भी घर में छोटे-बड़े सबके हृदय में माँ कहिए उन जगन्माता के प्रति अनूठी श्रद्धा, भक्ति और मोह है। उनकी अमूल्य शिक्षायें माँ के दैनिक जीवन से परिलक्षित होती हैं। मैं माता-पिता का यह असीम उपकार समझती हूँ जिनके सौजन्य से मुझे भी ऐसी पू० दादीजी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। मैं भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि जब तक मुझे मोक्ष न मिले तब तक ऐसे ही रत्नाकर परिवार में मैं जन्म लेती रहूँ। सब कुछ सोच-समझ कर मुझे लगता है कि शायद मेरे जीवन में सौभाग्य और दुर्भाग्य का मिश्रण है। जो कुछ भी हो अब तो मेरी दादी विश्व के सर्वश्रेष्ठ पद पर हैं अतः मैं उनसे बारम्बार यह आशीर्वाद चाहती हूँ कि मेरी बुद्धि का विकास हो। आपके गुणों का कुछ अंश मेरे अन्दर भी अवतरित हो। समय तथा योग्यतानुसार मैं भी कुछ नियमों को पालन करने में सक्षम हो सकूँ। आपके स्वास्थ्य एवं रत्नत्रय कुशलता की इच्छुक।



जिनके दर्शन मात्र से लौह भी स्वर्ण बन जाता

पं० बाबूलाल शास्त्री, महमूदाबाद

जीवन की सार्थकता के लिए सुसंस्कृत संस्कार, संस्कार से उच्च विचार, विचार से परिणति, तद्रूप शुभाचरण यह सब सहभागी विशिष्टाएँ हैं। और यह सब पूजनीया माताजी को अपने जनक स्वनामधन्य परमसंतोषी निस्पृही सुप्रतिष्ठित गृहस्थ श्री सुखपालदासजी एवं मातेश्वरी से सहज प्राप्त हुई थी। आपके पिताश्री और माताजी की देव शास्त्र गुरु पर अगाढ़ श्रद्धा थी। नित्यप्रति जिनेन्द्र पूजनानुरागी होने से 'पुजारी' नाम से विख्यात थे। आपके दो सुपुत्र और दो सुपुत्रियाँ हुईं। सारा ही परिवार धर्म के प्रति पूर्ण आस्थावान है। सबसे बड़ी सुपुत्री राजदुलारी सरल स्वभाव की थी। ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारिणी, सदैव शुद्ध सात्त्विक एकभुक्ताहार, तीनों समय सामायिक, व्रतोपवास रखकर नित्यप्रति शास्त्र स्वाध्याय, पठन-पाठन तथा घर में ही उदासीन भाव से ही रहती थीं। माताजी के भ्राता श्री महीपालदास जी अपने समय के नामी पहलवान थे। किन्तु अपनी शारीरिक शक्ति का दुरुपयोग नहीं किया। महमूदाबाद एक मुस्लिम रियासत है। यहाँ के राजा साहब अ० भा० मुस्लिम लीग के खजांची थे। और मुसलिम बाहुल्य क्षेत्र होने के कारण लीग का बोल-बाला था, मूर्ति पूजा को बुतपरस्ती कहते थे, नग्न प्रतिमा देखना ही गुनाह समझते थे। उस समय जिनेन्द्र भगवान् की शोभा यात्रा निकालना बड़ी टेढ़ी खीर था। श्री महीपालदासजी ने रथोत्सव का प्रस्ताव समाज के समक्ष रखा। सशंकित समाज ने कहा कि बड़ा गड़बड़ हो जायगा। लोग हमला कर देंगे। किन्तु आपने बड़े साहस और आत्मविश्वास से सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और बड़े धूमधाम से

अपने ही बलबूते पर शानदार 'रथ यात्रा' निकाली। एक बार एक आर्य समाजी वक्ता ने जैनधर्म की कटु आलोचना की। उनकी अनर्गल ऊटपटांग बातों को सुनकर श्री महीपालदासजी ने कड़ा विरोध किया और डट गये कि इन बेतुकी बातों को सिद्ध करें या फिर माफी मांगे और अपने वाक्यों को वापस लें। अन्त में विवश होकर उन्हें भरी सभा में माँफी ही माँगनी पड़ी ऐसे थे आपके भ्राता। धर्मायतनों का सम्मान और नवदेवताओं मे अपार भक्ति। इन्हीं परम धार्मिक परिवार की सदस्या होने के नाते परम पूजनीया माताजी भी सरलस्वभावी बनी थीं। मन निश्छल, दयालुता, साहस, प्रबल आत्म-विश्वास, निर्ममत्व, निरभिमानता इस तरह माताजी की जन्मस्थली महमूदाबाद में ही मूलभूत संस्कार की जड़ें काफी गहराई में थी। यहाँ के स्वच्छ वातावरण से ही माताजी को प्रेरणा मिली और माताजी ने अपने ही शुद्धाचरण से इस नगरी को यश तथा गौरव प्रदान किया। वैवाहिक तथा पारिवारिक जीवन का संयोग भी बड़ा सुलभ था। टिकैतनगर अवध की धर्मनगरी के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर प्रतिदिन धर्मामृत की अविरल वर्षा होती रहती है। जन-जन में त्याग और श्रद्धा तथा भक्ति की सरल सरिता निरन्तर प्रवाहित होती रहती है, अपने सहधर्मी भाइयों के प्रति वात्सल्य, विद्वानों का सम्मान, अभ्यागतो की यथेष्ट सेवा यहाँ का दैनिक आचरण है, निर्ग्रन्थ मुनियों के प्रति भक्ति भावना मे तो योंही होड़-सी लगी रहती है। जब भी कभी यहाँ गुरुओं का समागम हुआ तो यहाँ की समाज बिना चातुर्मास कराये नहीं मानती। ऐसी धर्मप्रिय नगरी मे आकर माताजी के संस्कार और प्रबल हुए तथा लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक बनी। यहाँ के अधिकतर परिवार माताजी से सम्बन्धित हैं।

वर्तमान में माताजी के चार सुयोग्य पुत्र और नौ विदुषी पुत्रियाँ हैं। ज्येष्ठ पुत्र श्री कैलाशचन्द जी बड़े ही समाजसेवी और तीर्थभक्त है, वैयक्तिक सामाजिक और धार्मिक दायित्व को बड़ी योग्यता से निर्वाह करते हैं। नयी युवा पीढ़ी अपने आर्ष मार्ग से विचलित न हो इसकी सतत चिन्ता रहती। आप श्री अ० भा० दि० जैन युवा परिषद् के अध्यक्ष हैं तथा अन्य कई सस्थाओं की निस्वार्थ भाव से सेवा कर रहे हैं। बड़े ही सुयोग्य मिलनसार, श्रावकोचित दैनिक नियमों का पालन सदैव करते है। आपके भाई श्री प्रकाशचन्दजी आपसे ही प्रकाश पा रहे है। श्री सुभाषचन्दजी की भाषा बड़ी मिष्ठ है। धार्मिक क्षेत्र में आप भी कम नहीं हैं। श्री ब्र० रवीन्द्रकुमार जी शास्त्री बी० ए० माताजी के सान्निध्य में रहकर निरन्तर अपनी अमिट लेखनी द्वारा समाज को सम्यक् दिशा प्रदान कर रहे है। आप सरल, निरभिमानी, उच्च-कोटि के लेखक, समालोचक, सम्पादक और समाज के उत्थान के सतत चिन्तक हैं। आर्यिकारत्न परम विदुषी ज्ञानमती माताजी की महत्ता के विषय मे लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान हैं।

सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम्।

रत्नत्रयी रत्नमती माँ श्री के रूप में प्राची दिशा से उदित ज्ञान मार्त्तण्ड अपनी सहस्र ओजस्विनी ज्योत्स्नाओं से समस्त संसार का अज्ञानतिमिर विनष्ट कर रहा है। आपकी प्रवाहित ज्ञानगंगा सतत भूखण्ड की पिपासा शांत करती हुई अगाध बोध सागर का रूप धर चुकी है। आपकी मन्दराचल लेखनी के मंथन से अनेकों रत्नों का प्रादुर्भाव हुआ है और हो रहा है। ज्ञानध्यानतपोरक्तः पूज्य माताजी अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगी, प्रकाण्ड विदुषी, इस युग की नारी जगत् की अद्वितीय प्रभा जिसमें चतुरनुयोग, न्याय, व्याकरण, सिद्धान्त, प्राकृत जैसे क्लिष्ट ग्रन्थों की सरल हिन्दी टीका के रूप में ज्योतिर्मयी हो रही है, दर्शन साहित्य काव्य कथा स्तुति भाव भाषा पूजा त्रिषष्टि शलाकापुरुषों का सजीव चरित्रचित्रण, भावाभिव्यक्ति, सम्यग्दर्शन जिनागमों का मधुर आख्यान आदि अनेकों किरणें फूट रही हैं। आपके ज्ञान में ऐसा कौन-सा विषय है जो समाहारित नही हैं। हर विषय मे बड़ी गहन पकड़ है आपकी। इसके साथ ही कृश शरीर द्वारा आत्म ध्यान में निरन्तर संलग्न भव्य जीवो की अपनी धारावाहिक अमृतमयी वाणी से प्रवचनों द्वारा सदैव तृप्त कर रही है, अष्टसहस्री जैसे दुरूह अन्य कई ग्रन्थो की अपूर्व सरल हिन्दी टीका आप ही के वश की बात थी।

मै ज्ञानमती माताजी को बाल्यकाल से जानता हूँ। आज लगभग ३१ वर्ष पूर्व जब आचार्यरत्न १०८ देशभूषण जी महाराज का पदार्पण बाराबंकी में हुआ था वह धर्म का अद्वितीय महोत्सव था। उस समय माताजी ने आचार्य श्री के सान्निध्य मे गृह त्याग कर ब्रह्मचर्य व्रत लेने की इच्छा व्यक्त की थी। और समाज में यह चर्चा का विषय बना हुआ था। यौवनावस्था, कोमल लावण्य, आकर्षित तन, कायक्लेश का कंटकाकीर्ण मार्ग, संयम की भावी कठिनाइयों से अनभिज्ञ, कैसे निभेगा इस अबोध कन्या से ? मगर धन्य है पूजनीया माताजी ने जिस विरागता के मुक्ति पथ पर पग बढ़ा दिये लौटकर भी नही देखा संसारिक विडम्बनाओं की ओर। अविकार और दृढ़ आत्मविश्वास के ये सबल चरण तथोत्तर बढ़ते ही गये। और आज अनेकों धर्म-जिज्ञासुओं को अपनी दिव्यवाणी से ज्ञानगंगा में अवगाहन करा रही हैं। अनेकों अज्ञानियों को आपने सरलता बोध देकर चारित्र के शिखर पर आरूढ़ किया। पार-दृश्वन किया। धन्य है माँ श्री को जिन्होंने उग्रतम असिधार पर चलकर यह सिद्ध कर दिया कि मोह ममता की चट्टानों से टकराकर गिरने वाली मै, ना, हूँ (मैनावती पूर्व नाम) और इन अपार गुणों के योग के लिए हम उस स्वर्णिम प्राची दिशि (पू० रत्नमती माता) की महत्ता को स्वीकार करें जिसने इस प्रतापी सूर्य को जगति पथ पर भेजा अथवा उस प्रचण्ड दिवाकर को जिसने प्राचीदिशि के गर्भ से उदित होकर अपनी प्रभुसत्ता से प्राचीदिशि को गौरवान्वित किया ? मेरी दृष्टि में तो सचमुच दोनों का ही अपनी-अपनी जगह प्रतिष्ठा का स्थान नियत है। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि पूजनीया रत्नमती माता के द्वारा समादृत शिक्षा और संस्कार का ही योग है। बाल्यकाल मे जो नैतिक शिक्षण माँ के द्वारा शिशु को प्रदत्त होता है वह मूलभूत से बड़ी गहराई में उतरकर अपनी जड़ें सदैव के लिए मजबूत कर लेता है और मातृ श्री के पथ की अनुगामिनी अभयमती माताजी का स्थान भी ध्यान, तप, संयम,

आत्मचिन्तन में कम नहीं है। बाल ब्रह्मचारिणी कुमारी मालती देवी और माधुरी देवी शास्त्री ने अल्पवय में ही व्रत लेकर आत्म स्वातंत्र मार्ग को अपनाया है यह एक अच्छा उदाहरण है। शास्त्रोक्त विधि से विधान पूजन को जिस माधुर्यलय में शुद्ध रूप से सम्पन्न कराती हैं देखते ही बनता है। माताजी के संरक्षण में निरन्तर ज्ञान प्राप्त कर रही हैं और एक दिन आत्मरती होकर अवश्य आत्मकल्याण करेंगी।

इसके अतिरिक्त सुसंस्कारित सुपुत्रियाँ जिस भी घर में ब्याही गयी हैं वहीं उनके पुण्यभाव से सुख समृद्धि शांति सभी कुछ है। बड़े भाग्यशाली परिवार हैं जहाँ इन पावन कन्याओं का सम्बन्ध हुआ है। भावात्मक एकता, समसामयिक विचार, सुमति और गृहस्थधर्म के नियमों का पालन उस गृह का परम कर्त्तव्य बन गया है। इन परिवारों में विसंगतियाँ सुनने में भी नही आयीं। यह सब परम पूजनीया चारित्र-शिरोमणि रत्नमती माताजी के शिक्षण और संस्कारों का ही प्रताप है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि प्रातःस्मरणीय रत्नमती माताजी के दर्शन रूपी पारस रत्न से लौह भी स्वर्ण बन जाता है। आपके गुणों का वर्णन कहाँ तक करूँ ऐसी पवित्र विशिष्ट आत्मायें ही अपना और लोक का कल्याण करती हैं धन्य है आपके उग्रतम ध्यान, विराग, तप को। अन्त मे मैं मातृश्री के पदकमलों में त्रिकाल त्रिवार नमोऽस्तु अर्पण करता हूँ और भावना आता हूं कि आपके प्रताप से मेरा भी आत्मकल्याण होवे।

बहुत हर्ष की बात है कि महमूदाबाद की जैन समाज ने माताजी की स्मृति मे एक कीर्तिस्तम्भ, निर्माण करने का विचार किया है।

जयन्ति ते महाभागा, स्वपरहिते परायणाः।
जन्म-मृत्युभयं नास्ति येषां कीर्तितनोः क्वचित् ॥

मेरी वीरप्रभु से प्रार्थना है कि माताजी शतायु होवें।



सम्यक्त्व की दृढ़ता

श्रीमती शान्ति देवी, लखनऊ

मानव जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्त्व है। २–३ वर्ष का नन्हा बच्चा जब सिनेमा घर मे रंगीन धुनों के गाने सुनकर आता है तो ठीक उसी प्रकार हाव-भावों को प्रदर्शित करके उस गीत को बार-बार गुनगुनाता है। यह बात हम नित्य-प्रति अपने बच्चों में देखते हैं। यदि उसी बच्चे को जब वह प्रारम्भ मे तोतली भाषा में बोलने का प्रयास करता है उस समय णमोकार मंत्र या धार्मिक भजनों की पंक्तियाँ हम सिखाने का प्रयास करें तो वे सहज ही सीख जाते हैं। कोमल बुद्धि शिशु उन्हे शीघ्र ही ग्रहण कर लेते हैं। यहाँ तक कि बच्चे में तो गर्भकाल से ही संस्कार पड़ने प्रारम्भ हो जाते हैं। जिस समय सन्तान गर्भ में आती है माँ की शुभ अशुभ चेष्टाओं के द्वारा उसकी होनहारता का अनुमान लगा लिया जाता है। तभी

तो तीर्थंकर शिशु के गर्भ मे आते ही माता में ऐसी विशेषतायें प्रगट हो जाती हैं कि वे दिक्कन्याओं के विलक्षण प्रश्नों का समाधान आसानी से करने में सक्षम हो जाती हैं। तीर्थंकरों के चरित्र का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि कितने भवों मे किया गया प्रयास तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध में कारण बनता है। भगवान् पार्श्वनाथ का जीव कितने जन्मों के सुसंस्कारों से संस्कारित होकर महान् उपसर्गों को सहन करने के पश्चात् भगवान् बने। मनुष्यों की बात जाने दो हम देखते हैं कि मिट्टी का घड़ा जब कुम्हार बनाता है तो उसके कच्चे घड़े को उपयोग में नही लाया जा सकता है लेकिन जब वही घडा अग्नि के संसर्ग से संस्कारित हो जाता है तो उसमें भरे हुए शीतल जल से हम अपनी प्यास बुझाते हैं। जब अचेतन वस्तु संस्कारों को ग्रहण कर चेतन को लाभ पहुँचा सकती है तो मनुष्य संसार में क्या नही कर सकता।

मानव शब्द की व्याकरण व्युत्पत्ति है—मनोरपत्यं मानवः। मनु की परम्परा में होने के कारण मनुष्यों को मनुष्य यह संज्ञा प्राप्त हुई। मनुष्य धर्म और समाज के बीच की एक कड़ी है जो संसार में जन्म लेकर स्वयं अपनी आत्मा का कल्याण करता हुआ समाज धर्म और राष्ट्र की सेवा करता है। किसी कवि ने कहा है—

"सेवा धर्म समाज की आगम के अनुकूल"

आगम के अनुकूल धर्म और समाज की सेवा किस प्रकार हो सकती है। केवल जगह-जगह स्कूल कालेजों का निर्माण करना, अस्पताल खोलना या गरीबों को धन देना इतने मात्र में सेवा धर्म सीमित नही हो जाता बल्कि सबसे बड़ी सेवा है—जीवों को मिथ्यात्व मार्ग से छुड़ाकर सम्यक्त्व में प्रवृत्त करना। जिसके द्वारा इस लोक और परलोक दोनों का सुधार हो जाता है।

रत्नकरंड श्रावकाचार में समंतभद्र स्वामी ने कहा है—

न सम्यक्त्वसमं किंचित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम्॥

अर्थात् तीनों लोक और तीन काल में इस जीव के लिए सम्यक्त्व के समान कोई कल्याणकारी तथा मिथ्यात्व के समान दुखकारी वस्तु नही है।

प्रसंगोपात्त मैं अपनी पूज्य माँ मोहिनी जो आज रत्नमती माताजी के नाम से प्रसिद्ध हैं, जिनका अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है उनके जीवन का प्रत्येक क्षण नवीन विशेषताओ को लिए हुए था। मात्र शब्दों की सीमाओं मे उनकी विशेषताओं को नहीं बाँधा जा सकता। वैसे भी मैं उनकी बेटी होने के कारण उनके गुणों का वर्णन क्या कर सकती हूँ तथापि मिथ्यात्व त्याग के विषय में बहुत पुरानी घटना का स्मरण आता है। जिसका श्रेय मेरी बड़ी बहिन मैना को था जो आज ज्ञानमती माताजी के रूप में जगत्पूज्य है। सच पूछा जाय तो हमारे घर का सुधारा ही मैना जीजी ने।

आज से लगभग ३५ वर्ष पुरानी बात है। एक बार गर्मी के दिनों मे जब टिकैतनगर गाँव में चेचक की बीमारी फैली हुई थी। कर्म का उदय किसी के द्वारा

रोका नहीं जा सकता है। पड़ोस में कई बच्चों को चेचक निकली हुई थीं। हमारे छोटे दो भाई प्रकाशचन्द और सुभाषचन्द को भी चेचक ने घेर लिया। अनेकों उपचार करते हुए भी रोग अधिक बढ़ता ही जा रहा था। प्राचीन मिथ्यात्व परम्परा के अनुसार बुजुर्ग लोग नीम और पीपल के पेड़ों को सींचने जाया करते थे—उसके द्वारा रोग की उपशान्ति होना मानते थे। पड़ोसी बुजुर्गों ने मेरे पिताजी को भी मिथ्यात्व क्रियायें करने को कहा। पिताजी अपने बेटों की दिन पर दिन बिगड़ती हालत को देखकर अत्यन्त चिंतित थे। मजबूर होकर पुत्रों की जिंदगी के मोह से सब कुछ करने को तैयार थे। किन्तु जैसा कि मैंने पहले बताया कि घर का कोई भी कार्य मैना जीजी से पूछे बिना नहीं होता था। पिताजी ने उनसे चिंतित स्वर में कहा कि बेटी जिन्दगी और मौत का सवाल है मुझे इन लोगों के साथ उपचार के लिए जाने दो। लेकिन मैना को कभी हार स्वीकार नही थी उन्होंने कहा कि भला मरने वाले को कोई कभी बचा सका है। यदि आयु पूर्ण हो जायेगी तो आप क्या कर सकते हैं। संकट तो धर्म से टलते है। आप तो निश्चित होकर केवल धर्म की शरण लें। अशुभ कर्म के उदय से बीमारियाँ आती हैं। ऐसे समय में धर्म से विचलित नहीं होना चाहिये। पिताजी को सांत्वना के शब्दों से समझा-बुझा कर मिथ्यात्व कर्म से रोक दिया। पिताजी तथा माँ जो मैना के कहे अनुसार प्रत्येक कार्य करती थी, उनको मैना ने कहा—माँ ! मैं घर कार्य और बच्चों की देख-भाल करूँगी, आप मन्दिर में भगवान् का अभिषेक तथा नवग्रह पूजन करके गंधोदक लाकर बच्चों को लगायें। माँ ने यही किया। आप सच मानें सच्ची भक्ति का प्रत्यक्ष चमत्कार हुआ। मैं निरन्तर इन लोगों के कार्य कलापों को देखती रही। चूँकि मैना से छोटी दूसरे नम्बर की ही बेटी हूँ दोनों सदृश उम्र की होने से मै भी मैना जीजी के साथ सभी कार्यों में हाथ बँटाती थी। परिवार वालों के चेहरे पर कुछ मुस्कान आने लगी। उसमें कारण था दोनों भाइयों की हालत कुछ सुधरती नजर आ रही थी। नगर के लोग पिताजी से कठोर शब्दों में कहते कि तुम एक लड़की के कहने के ऊपर प्यारे बेटों की जिन्दगी से खेल खेल रहे हो। हमेशा अपनी परम्परा में जो कार्य होते आये हैं उनको तो तुम्हें करना ही चाहिये। पिताजी सबकी बातों को सुन लेते किन्तु भाग्य पर भरोसा करते।

अन्त मे धर्म की विजय हुई, लोग कहते रह गये। पड़ोस का एक बच्चा काल के गाल में चला गया। हमारे दोनों भाई आज भी स्वस्थ हैं। माँ की भक्ति की दृढ़ता आज भी स्मृति मे आती है। आपके ही संस्कारों मे पला हुआ सारा परिवार आज भी उसी प्रकार जैनधर्म में अगाढ़ श्रद्धा रखता है। घर में कोई भी मिथ्यात्व की क्रिया नही होती है। परिवार के सभी सदस्यों में मैं इस समय सबसे बड़ी हूँ। आपके द्वारा प्रदत्त शिक्षाओं को यथासम्भव अपने जीवन में उतारने का प्रयास करती हूँ तथा अपने बच्चों में भी उन्ही संस्कारों के कुछ कण डाल कर उनके जीवन को सुवासित करने की उत्कट अभिलाषा है। आपके शुभाशीर्वाद से मेरा प्रयास सफल होगा ऐसी आशा है।

प्रतिज्ञा की दृढ़ता

श्रीमती जैन, पखरपुर

भारतवर्ष का इतिहास देखने से पता चलता है कि यहाँ की भूमि अनादिकाल से महापुरुषों की जन्मस्थली रही है। महापुरुषों की पदरज से भारत का कण-कण पवित्र माना जाता है। जिस प्रकार वृक्ष स्वभावतः छाया प्रदान करते हैं, फल देते हैं, पृथ्वी अनेकों रत्नों को देती है, नदियाँ जल देती है उसी प्रकार महापुरुष सदा परोपकार में रत रहते हैं। मनुष्य का जन्म ही संसार मे इसीलिए होता है कि वह निज आत्मा का कल्याण करते हुए धर्म, समाज और राष्ट्र के प्रति अपनी सेवाओ को अर्पित करे। इसीलिए मनुष्य को धर्म और समाज के बीच की एक कड़ी कहा है। हम चाहें तो अपने जीवन को सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के बल पर परमोज्ज्वल बना सकते हैं और जीवन के उन्हीं चन्द क्षणों में विषयासक्ति के बल पर संसार बन्धन को बढ़ा भी सकते हैं। हमें कितने ही उदाहरण देखने को मिलते है कि एक प्राणी यावज्जीवन परोपकार करके अपने यशःशरीर को अमर कर लेता है एवं दूसरा व्यक्ति निज को ही सँवारने, सजाने में जीवन समाप्त कर देता है। खेद है कि हम मात्र एक परिवार की सेवाओं मे ही सीमित रह जाते हैं। किन्तु उस सेवा में भी कुछ स्वार्थ निहित होता है। मैं कभी अपने बचपन का स्मरण करती हूं तो मुझे ऐसा लगता है कि मेरी माँ का जीवन मात्र परोपकार के लिए ही विधाता ने प्रदान किया था। तेरह रत्नों को जन्म देकर उन्हे सुसंस्कारों से सुवासित कर स्वयं भ जगत्पूज्य महान् आर्यिका पद धारण किया। हम सभी के प्रबल मोह को त्याग कर अपनी विशिष्ट संतान मैना (आर्यिका ज्ञानमती) के पदचिन्हों पर कदम रख दिये। आज आप शारीरिक अस्वस्थ होते हुए भी पूर्ण सतर्कता पूर्वक अपने रत्नत्रय का पालन कर रही हैं। आपकी सर्वप्रथम पुत्री मैना (मेरी बड़ी बहिन) ने प्रारम्भ से ही आपकी दृढ़ता में चार चाँद लगाए। मैं तो इन्हे कोई पूर्व जन्मो के संस्कार समझती हूँ कि मैना ने आठ वर्ष की अल्पवय से ही घर में होने वाले मिथ्यात्वो को पूर्ण रूप से त्याग करवाया, जिनेन्द्र भक्ति में आपको अग्रसर किया उसी के फलस्वरूप प्रारम्भ से ही आपने अभिषेक पूजन का नियम लिया।

टिकैतनगर जैन समाज में विरोध होने पर भी आपने अपने नियम का दृढ़तापूर्वक पालन किया। शनैः शनैः आपके साथ में अनेकों महिलाएँ नित्य अभिषेक करने लगीं। आज उसका प्रतिफल देखने को मिलता है कि टिकैतनगर के जैन मन्दिर में प्रातः ४ बजे से ही माताओं बहनों की मधुर लय संगीत की धारा हृदय को मोहित कर देती है। आपके जीवन के कितने ही उदाहरण हमें अमूल्य शिक्षाएँ प्रदान करते हैं। आपकी दीक्षा के दो वर्ष पूर्व का एक उदाहरण मुझे स्मरण आता है— अभिषेक की दृढ़ता।

सन् १९६९ में फाल्गुन मास में बहराइच (मेरी ससुराल) में पंचकल्याणक

प्रतिष्ठा महोत्सव के शुभ अवसर पर आप कामिनी और माधुरी दोनों बालिकाओं को लेकर हमारे यहाँ पधारीं। पंचकल्याणक के प्रतिष्ठाचार्य थे पं० प्रद्युम्न कुमारजी शास्त्री मथुरा वाले। बहराइच में स्त्री अभिषेक की परम्परा न होने से पहले दिन आपको अभिषेक के लिए रोका गया। आप समाज के नियम का उल्लंघन न कर सकी। किन्तु अपने नियम पर भी पूर्ण दृढ़ता रखकर अन्न का त्याग कर दिया। मेरे लिए यह असहनीय बात थी। आखिर कितने दिन बिना अन्न के निकलेंगे किन्तु बहू होने के नाते मैं बोलने की हिम्मत न कर सकी। अनन्तर मुझे एक उपाय सूझा—बहराइच से लगभग १० मील की दूरी पर मेरा गाँव है—पखरपुर। अभी भी जहाँ हम निवास करते हैं वहां गृह चैत्यालय का निर्माण काफी अरसे से है। मैंने आपको दूसरे दिन अपने साथ गाँव ले जाकर अभिषेक पूजा करवाया। आपके नियम की पूर्ति करवा कर मुझे तथा मेरे सास, ससुर आदि सभी लोगों को अपार हर्ष हुआ। ऐसी महान् आत्मा के चरणों से हमने अपने घर को धन्य माना तथा उस दिन गृहचैत्यालय की सार्थकता हम सभी को मालूम हुई। इस घटना से बहराइच जैन समाज में हलचल मची। प्रतिष्ठाचार्य तथा विशिष्ट लोगों ने मीटिंग में आपकी दृढ़ता की चर्चा की तथा यह महसूस किया कि हमारी समाज के लिए यह अशोभनीय विषय है कि ज्ञानमती माताजी की मां हमारे यहां आकर निराहार रहें। पंचों के निर्णयानुसार आपको बुलाकर अभिषेक करने की महर्ष स्वीकृति प्रदान की गई। अनन्तर आप जितने दिन बहराइच मे रहीं अपने नियमानुसार अभिषेक करके उल्लास पूर्ण वातावरण मे पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का आनन्द लिया। आज भी मुझे प्रसन्नता है कि बहराइच मे स्त्री अभिषेक की परम्परा खुली और मेरी माँ का नियम पूर्ण हुआ। माँ की स्मृतियाँ तो जीवन मे उभरती ही रहती है। लेकिन मैं आपके गुणों का अधिक बखान तो क्या कर सकती हूँ आप मुझसे बहुत दूर है तथा मात्र मेरी मां के रूप मे ही नही जगन्माता के रूप में पूज्यता को प्राप्त हो रही हैं। गार्हस्थिक उलझनों से छूट कर कभी-कभी हमे भी आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होता है। मैं भगवान् महावीर से यही प्रार्थना करती हूँ कि आप आरोग्यलाभ करते हुए शतायु हों। आपके जीवन से हमें भी दृढ़ता के संस्कार प्राप्त हों और आपका मंगल आशीर्वाद हम सबके लिए सदा फलदायी हो।



श्रद्धा के सुमन

ब्र० कु० कलावती जैन

परम पूजनीया १०५ श्री जगज्जननी रत्नों की खान माता श्री रत्नमती माताजी जिनकी सरलता, विशालता एवं गम्भीरता हमारे मन को प्रफुल्लित कर देती है।

जिन्होंने महान् रत्नों को जन्म देकर सारे जगत् का अज्ञानान्धकार दूर कर दिया। आज हम बाल-गोपाल सभी जानते हैं कि इन्ही माता की गोद सुशोभित

करती हुई नारीरत्न परम पूजनीया १०५ श्री आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी जिनकी ज्ञानरूपी ज्योति द्वारा सारे भारत में प्रकाश फैल रहा है।

पंचेन्द्रियों के विषयों में फँसा हुआ आज का मानव जिनागम के ज्ञान से अनभिज्ञ है। इसका मूल कारण है भौतिक युग में धार्मिक शिक्षा का अभाव। इसलिए जैन भूगोल व सारे विश्व की जानकारी कैसे प्राप्त हो? क्योंकि नेत्रों द्वारा जितना दृष्टिगोचर हुआ उसे ही विश्व मान लिया किन्तु विश्व का ज्ञान हम पूजनीया श्री ज्ञानमती माताजी के उपदेश द्वारा आयोजित हस्तिनापुर में बन रही जम्बूद्वीप की रचना द्वारा साक्षात् प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार का अद्‌भुत साहस द्वारा एक अमौलिक वस्तु प्रदर्शित करना हर व्यक्ति की सामर्थ्य नहीं। क्योंकि उस विश्व को पूज्यश्री माताजी ने एक चित्र रूप में चित्रित कर दिखाया यह एक आश्चर्य है।

तथा पूज्य श्री माताजी ने अपनी लेखन शैली द्वारा आधुनिक शिक्षाप्रद अनेक ग्रन्थों की रचना की व अनेक ग्रन्थों की हिन्दी टीका करके प्रकाशित कराया। जिससे इस युग के व्यक्तियों के लिए सुलभता से ज्ञान प्राप्त हो सकता है और अधिक कहने से क्या? पू० श्री माताजी के श्रेय से ही मुझ अबोध बालिका व और भी अनेक प्राणियों को संसाररूपी कीचड़ से निकाल कर उन्नति के पथ पर पहुँचाया। ऐसी परमोपकारिणी माताजी द्वारा किये गये उपकार को मैं अनेक जिह्‌वाओं द्वारा कहने मे समर्थ नहीं। उनका प्रत्युपकार जन्मान्तर मे भी चुकाने की सामर्थ्य मुझमे नहीं। परम सौभाग्य से मुझे इन्हीं पू० श्री ज्ञानमती माताजी के चरण सान्निध्य में रहकर शास्त्री तक विद्याध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ तथा अनेकों भव्य जीवों को संसार के दुःख से छुड़ाकर कल्याण पथ का अनुसरण कराना ही पू० श्री माताजी के जीवन का लक्ष्य रहा है। इस प्रकार श्रुतज्ञान की पुञ्ज माताजी की विद्वत्ता को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो सम्पूर्ण श्रुतज्ञान कण्ठगत ही हो। परम पूजनीया माताजी का उपकार हमारे लिए सराहनीय है।

धन्य है पू० माता श्री रत्नमती जी को जो ऐसी नारीरत्न को ही नहीं बल्कि और भी प० पू० श्री आर्यिका १०५ श्री अभयमती माताजी तथा आजन्म बाल ब्रह्मचारी पुत्र-पुत्रियों जैसे रत्नों को जन्म देकर उन्हें कल्याण पथ को प्राप्त कराकर स्वयं उन्नति के मार्ग पर लगकर अपने इस मनुष्यभव को सार्थक किया। जन्मदात्री जननी हो तो ऐसी ही हो, ऐसी मेरी शुभकामना है।

अन्त में परम पूजनीया जगज्जननी माता श्री रत्नमती माताजी के चरण कमलों में मेरा शत-शत नमन।



गृहस्थाश्रम की दादी व आज की रत्नमती

श्री जम्बूकुमार जैन सर्राफ, लखनऊ

मुझे याद है जब मैं छोटा-सा था और घर मे हमारी दादी माँ का अनुशासन पूर्णरूपेण था। शाम व सुबह दोनों ही समय उनको सामायिक में लीन देखकर ऐसा लगता था मानों कोई शान्ति की मूर्ति ही हों। घर में अगर कोई भी धर्म में अभिरुचि लेना कम पसन्द करता था तो उसके प्रति आपका अनुशासन और भी कठोर हो जाता था, अर्थात् वह तुरन्त अपने सही मार्ग पर चलने लगता। हमारे बाबा का स्वर्गवास होने के बाद आपके समय का अधिकांश भाग श्री जिनेन्द्रदेव की भक्ति में व्यतीत होने लगा।

आज से करीब १२ वर्ष पूर्व आप जब अजमेर में श्री पूज्य आचार्य धर्मसागरजी के संघ दर्शनार्थ गयी थीं, तभी वहां से एक सज्जन घर (टिकैतनगर) पधारे। वे बोले कि आपकी मां ने जो कि अभी तक''''प्रतिमाधारी थी, महाव्रत (दीक्षा) ग्रहण करने का निश्चय कर लिया हैं। यह सुनकर घर में सभी को मोहाग्नि जलाने लगी किन्तु अब उपाय ही क्या था।

सभी लोग अजमेर (राजस्थान) पूज्य आचार्य के दर्शनों हेतु गये व टिकैतनगर समाज से कई गणमान्य व्यक्ति गये। वे आचार्य श्री से प्रार्थना कर रहे थे कि महाराज इनका अत्यन्त कृश व बुढ़ापा का शरीर महाव्रत का भार कैसे ग्रहण कर सकेगा ? कृपया आप इनको दीक्षा मत दीजिए। लेकिन हमारी दादी संसार से पूर्णरूपेण उदास थीं फलतः वे चारों प्रकार का आहार तजने को तैयार हो गयीं। उनकी इस प्रतिज्ञा को देखकर सभी ने उनके चरणों में माथा टेक दिया।

और तभी से वे आज तक निराबाध होकर आर्यिका व्रत का पूर्णरूपेण पालन कर रही हैं। यद्यपि उनका स्वास्थ्य उनके अनुरूप नही फिर भी साधना मे कोई आँच नहीं आने देती है। धन्य है उनका जीवन, उनके चरणों में शत-शत अभिवन्दन।



दृढ़प्रतिज्ञ माताजी

कु० मंजू, टिकैतनगर

आपने जब अजमेर में दीक्षा का नारियल चढ़ाया था तब उस समय रवीन्द्र चाचा, मालती बुआजी और मैं वहां थी। नारियल चढ़ाने के दो दिन पूर्व आपने कहा कि अभी सर्दी आने वाली है अतः हमारी रजाई गद्दे घर से मंगवा दो। हम लोगों को यह स्वप्न में भी विश्वास न था कि आप में इतनी बड़ी साधना साधने की एवं आर्यिका व्रत ग्रहण करने की शक्ति होगी या है।

केशलोंच के समय कितनी शान्त मुद्रा थी। लोग जय-जयकार कर रहे थे यद्यपि दो दिन पूर्व ही आपके सर में दर्द काफी था।

आप हमेशा हम लोगों को त्याग की शिक्षा एवं धर्म में रहने की शिक्षा देती रही और देती हैं।

धन्य हैं ऐसी माता जो एक रोटी और उबाली हुई दलिया (आहार में) लेकर भी संयम को दिन प्रतिदिन बढ़ाती रहीं।

श्रीमज्जिनेश से प्रार्थना है कि ऐसी गुणी साध्वी तपस्वी व दृढ़ प्रतिज्ञ शिरोमणि माताजी शतायु हों और हमको भी ऐसी शक्ति दें।



राग और वैराग्य की एक झलक

श्री भगवानदास जैन, महमूदाबाद

संसार में सभी कर्मों में मोह कर्म सबसे अधिक बलवान माना गया है। इसी मोह के कारण जीव पंचपरावर्तनों को करता हुआ संसार में परिभ्रमण करता है। माता रत्नमती जी जो कि गृहस्थावस्था में मोहिनी के रूप में मेरी बड़ी बहिन थी जिन्होंने मुझे गोद में लाड़-प्यार से खिलाया था उनके प्रति मेरा प्रगाढ़ स्नेह था। अभी भी मैं जब अपने बचपन को याद करता हूँ तो प्रबल मोह उत्पन्न होता है और अश्रु रोकने पर भी नहीं रुकते। मैं सोचता हूँ कि विधाता को शायद हमारा भाई बहिनों का स्नेह सहन न हो सका। उसने उस स्नेह को विश्वप्रेम में परिवर्तित कर दिया। इसी के फलस्वरूप मेरी जीजी मोहिनी जगन्माता रत्नमती बन गईं। ऐसी जगत्पूज्य माता का भाई कहलाने मे मैं अपने को सौभाग्यशाली भी मानता हूँ किन्तु दुर्भाग्य भी है कि मैं केवल मोह के अधीन होकर अपनी सुकुमार बहन को त्याग की कठिन साधना करते हुए देखकर सहन नहीं कर पाता हूँ उन्हें देखकर मुझे सारा अतीत स्मृत हो जाता है। हम अपने परिवार में दो बहन और दो भाई थे। उन सबमें छोटा मैं और मुझसे बड़ी मोहिनी जीजी थीं। मेरे बड़े भाई महीपालदास और बड़ी बहिन राजदुलारी आज इस संसार में नहीं हैं। हम चारों भाई-बहिनों में माता-पिता का सबसे अधिक लाड़-प्यार मोहिनी को ही मिलता था, इनकी विशेषताओं के कारण। शायद महान् आत्माओं का बचपन भी आदर्श ही होता है। पिताजी के साथ सभी धार्मिक कार्यों में हाथ बँटाना उनकी आत्मरुचि थी। रात्रि में पिताजी हम सबको अपने पास बिठाकर शास्त्र स्वाध्याय करवाते। मोहिनी शास्त्र को पढ़तीं, हम सभी सुनते थे। इन्हे मैं कोई पूर्व जन्म का संस्कार ही मानता हूँ कि ऐसी कन्या-रत्न हमारे घर जन्मीं जिनके निमित्त से आज कितने जीवों का उद्धार हुआ। यदि मोहिनी मैना को जन्म न देतीं तो इस युग में ज्ञानमती माताजी कहाँ से आतीं। उनकी गौरवगाथा किसी से छिपी नहीं है। आज सारे देश को उस माता के प्रति गौरव



है जिनके द्वारा इस पृथ्वीतल पर सम्यग्ज्ञान की गंगा प्रवाहित हो रही है। मैना के जन्म लेते ही प्रकृति में परिवर्तन आ गया। उन्हें सरस्वती का ऐसा वरदान मिला कि उपलब्ध जैन वाङ्मय पर स्वयमेव अधिकार हो गया। आपने अपने जीवन में कितने स्त्री-पुरुषों को ज्ञान दान देकर अपने सदृश तथा अपने से महान् बनाया है। बुद्धि की तीक्ष्णता तो मोहिनी मे भी प्रारम्भ से ही थी वही संस्कार आपने अपनी सन्तानों में भी डाले।

मुझे स्मरण है कि मेरी माँ बतलाया करती थीं कि मोहिनी जिस स्कूल में जाया करती थीं उस स्कूल की प्रधानाध्यापिका मोहिनी के गुणों की प्रशंसा किया करती। इस प्रकार मोहिनी ने केवल परिवार वालों को ही नहीं बल्कि अपने उज्ज्वल चारित्र के द्वारा स्कूल वालों को भी मोहित कर लिया था। लेकिन जब मेरा (भगवानदास का) जन्म हुआ तब वे मुझे खिलाने दुलारने के कारण स्कूल नहीं जातीं। माता-पिता भी स्कूल जाने को कहते, अध्यापिकाएँ भी घर में आकर आग्रह करती कि मोहिनी के बिना सारा स्कूल सूना हो गया है इसे जरूर हमारे पास भेजो, हम समझायेंगे। लाखों समझाने पर भी मोहिनी स्कूल नहीं गई। उन्हें मेरे प्रति अत्यधिक स्नेह था, सारा दिन गोद में लाड़-प्यार से खिलाया करती। हजारों लड़कियों का स्कूल मोहिनी के बिना सूना हो गया था। कई बार उनके स्नेह के कारण प्रधानाध्यापिका जिन्हे कि मुसलमानी परम्परा के अनुसार आगा साहिब कहा जाता था उनकी आँखो से स्नेहाश्रु गिरने लगते थे। ऐसा लगता कि मोहिनी उन्ही की कन्या है जो उनसे छूट गई। आज भी वह जीवित हैं और जब कभी मुझे मिलती है तो स्मरण दिलाती है कि भगवानदास तुम सचमुच बड़े भाग्यशाली हो जो ऐसी जगत्पूज्य बहिन की गोद मे खेलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, तुम्हारे कारण ही उसने मेरा स्कूल छोड़ा। किन्तु आज से ११ वर्ष पूर्व जब बहिन मोहिनी की आर्यिका दीक्षा का समाचार मैंने उन्हें बताया तो उन्हें भी विश्वास नही हुआ कि मोहिनी जैसी कोमलांगी जिन्होंने १३ सन्तानों को जन्म दिया ऐसे अस्वस्थ शरीर मे भी कठिन साधना कर सकती है। जब अजमेर का वह दृश्य मैं याद करता हूँ तो मेरा हृदय पुनः मोह से विह्वल हो दुखी हो जाता है। राग और वैराग्य का वह अपूर्व संगम जन-जन का हृदय द्रवित कर रहा था। भाई होने के नाते मैंने भी बहिन को अनेक युक्तियों से समझा-बुझाकर पुनः राग के बन्धन में फँसाना चाहा लेकिन वहाँ तो भाई के लिए कोई स्थान ही नहीं था। उनके हृदय की ममता न जाने कहाँ छिप गई थी। वैराग्य के बने बादलों ने शायद उसे ढक दिया था। अधिक तो मैं बोल न सका मैं किंकर्तव्यविमूढ़ उनके हरे-भरे वृक्षरूपी परिवार की दुःखद स्थिति को देख रहा था। जिस माँ ने अपने खून-पसीने से सन्तानों को पालकर सुसंस्कारों से संस्कारित किया था, बच्चे के रंचमात्र दुख को भी जो देख नही सकती थी, वही माँ आज रोते-बिलखते बच्चों को छोड़कर वैराग्य की दुनियां मे प्रवेश करने जा रही थी। कैलाश, प्रकाश, सुभाष और रवीन्द्र चारों बेटे एक स्वर से दीक्षा के विरोध मे पूर्ण प्रयत्नशील थे। सुभाषचन्द जो माँ के बिना अपने को पूर्ण असहाय समझ रहे थे मैंने देखा जब उसका

कोई प्रयत्न कामयाब नहीं हुआ तब वह व्याकुलित होकर बेहोश हो गया। अजमेर की सारी जनता परिवार की इस स्थिति के समय हमारा साथ दे रही थी कि यह दीक्षा नहीं होनी चाहिये। लेकिन मै अब भी नही समझ पा रहा हूँ कि उस समय मोहिनी को भगवान् ने पत्थर का हृदय प्रदान किया था क्या। उनका केवल एक ही शब्द निकलता कि "मुझे अब मोह बन्धन में नहीं फँसना है।" ज्ञानमती माताजी जिनकी शायद अन्तरिम प्रेरणा थी मोहिनी की दीक्षा में, वे हम सभी को वैराग्य विषयक सम्बोधन करती किन्तु वह सम्बोधन भी मोहावेश मे दुखद प्रतीत होता था। अन्त में राग और वैराग्य के युद्ध मे वैराग्य की जीत हुई। हमारे सभी प्रयत्न असफल रहे और मोहिनी की दीक्षा हो गई। वे रत्नमती के रूप मे आज हमे त्याग मार्ग का दिग्दर्शन करा रही है। उस समय माधुरी और त्रिशला ये दोनों छोटी-छोटी बालिकाये थी। माँ के वियोग से दुःखी इन दोनो कन्याओं को हम लोग समझा-बुझाकर घर ले आये लेकिन कुछ ही दिनों बाद माधुरी भी ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण कर माँ की छत्रछाया मे पहुँची। काफी दिनों से मेरा इन लोगों से विशेष सम्पर्क नही रहा अतः मैं इनके कार्य कलापो को जान नही सका। इतना अवश्य जानता हूं कि मालती और माधुरी दोनों सुयोग्य कन्यायें ज्ञानमती माताजी के पास ज्ञानाराधना करती हैं। कौन जानता था ये छोटी-छोटो अबोध बालिकायें हम सबके लिए आदर्श उपस्थित करेंगी। इनसे पूर्व एक और बहिन मनोवती जो आज अभयमती के रूप में सारे बुन्देलखण्ड मे अपनी अमृती वाणी से धर्म प्रभावना कर रही है। कु० मालती ने सन् १९७० मे आचार्य देशभूषण महाराज के शिष्य सुबल महाराज से सारी समाज के संघर्ष को झेलते हुए आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। चारों पुत्रों में सबसे छोटे पुत्र रवीन्द्र ने भी संसार की असारता को समझकर उसी मार्ग का अनुसरण किया।

अन्त में मैं रत्नमती माताजी के चरणों मे विनयांजलि अर्पण करते हुए यह भावना भाता हूँ कि आप आरोग्य लाभ करते हुए अनमोल संयम की साधना करती रहें तथा मुझे भी ऐसा आशीर्वाद प्रदान करे कि जग के मोह बन्धनों को त्याग करके मैं भी इस मार्ग का अनुसरण करने मे सक्षम हो सकूँ।

संयम की सौम्य मूर्ति रत्नमती माता

श्री प्रेमचन्द जैन, महमूदाबाद

हमे बड़ा गर्व है कि महमूदाबाद नगर मे ही परम पूजनीया रत्नमती माताजी का जन्म सद्गृहस्थ पिता श्री मान्यवर सुखपालदास जी के घर मे हुआ था। "होनहार विरवान के होत चीकने पात" कहावत के अनुसार माँ जी बाल्यकाल से ही सरलहृदया, धर्मनिष्ठ, विवेकाचारिणी, कोमल परिणामो की रही है। आपके संस्कार उच्चादर्श प्रेरणाप्रद रहे है। इन संस्कारों की प्रत्युत्पत्ति मे महमूदाबाद नगर का भी श्रेय है और महमूदाबाद में ही ऐसी पावनात्मा ने जन्म लेकर इस नगर को गौरवान्वित किया। इन दोनों कथन मे तारतम्य सम्बन्ध है।

मेरा यह बड़ा ही सौभाग्य रहा है कि मेरे द्वारा संकलित तीस चौबीसी मण्डल विधान कराने के लिये कई बार हस्तिनापुर तथा देहली जाना हुआ। प्रत्येक बार परम पूजनीया आर्यिका रत्नमती माताजी के तथा चारित्र शिरोमणि परम विदुषी शान्तस्वभावी सतत अध्ययनशील ज्ञानदिवाकर ज्ञानमती माताजी के दर्शनों तथा प्रवचनों का लाभ प्राप्त हुआ। मुझे प्रत्येक समय ऐसा लगा कि यह मेरे जीवन की परमाह्लादित परिणति है। जीवन की सच्ची सुखानुभूति यहाँ ही उपलब्ध हुई। स्व और पर का भेद विज्ञान की परिभाषा जान सका। जिन अध्यात्म विषयों को स्वाध्याय द्वारा न समझ सका उन्हीं गहन विषयों को प्रवचनों द्वारा यहाँ सरलता से हृदयंगम कर सका। मेरे आकर्षण की केन्द्र रत्नमती माता का अहर्निश जप-तप ध्यानरतावस्था है, संयम की सौम्य मूर्ति, आत्मसाधना की प्रखर ज्योति, सरल दिव्य वाणी, तपोभूत प्रखर तेज, चरित्र की दृढ़ता, कठोर व्रतपालन, मोक्षमार्गारूढ़, पद-प्रतिष्ठा की सजगता, जागरूकता आदि अनेक विशिष्टतायें पायी मैंने माँ श्री में। यद्यपि माताजी का स्वास्थ्य अत्यन्त क्षीण है तथापि इस अवस्था में भी कर्तव्यपालन में किंचित् भी स्खलित नहीं होने पाती। सदैव ध्यान में मग्न आत्मोत्थान के लिये प्रयत्नशील रहती है। जब तक मैं महमूदाबाद में रहता हूँ बड़ा व्याकुल रहा करता हूँ और मन कचोटता रहता है माँ श्री के दर्शनों के लिये। ऐसी दिव्य ज्योति का दर्शन भला कौन नहीं चाहेगा।

इन्द्रियाणि वशे यस्य, यस्य दुष्टं न मानसम्।
आत्मा धर्मरतो यस्य सफलं तस्य जीवनम्॥

अर्थात् जिन प्राणियों की पाँचों इन्द्रियाँ वशीभूत हैं, जिनका मन निर्मल है, किसी भी प्रकार का दोष तथा दुष्टता नहीं है और आत्मा सतत धर्म में लीन है उनका ही जन्म सफल है।

इस पंचम काल में धर्म वृष्टि का कहीं संयोग है तो यहाँ ही है (श्री दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर) भव्यात्माओं की मानस भूमि में धर्मतत्त्व की सरस वृष्टि आत्मसुख फलदायक है। अन्त में मैं यही कामना करता हूँ कि रत्नमती माताजी दीर्घायु हों। उनके पावन चरणारविंद में श्रद्धा सुमन अर्पित करके यही अभिलाषा है कि मैं भी निजात्म कल्याण करूँ।



रत्नों की खान

श्री उम्मेदमल पांड्या, दिल्ली

मै आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर जी महाराज के साथ १९७६ में हस्तिनापुर जब गया था उस समय दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ था। संस्थान के पास एक भी कमरा रहने के लिए नहीं था। पूज्य माताजी व संस्थान के मंत्री श्री मोतीचन्द जी व श्री रवीन्द्र

कुमार जी व संस्थान के अन्य कर्मचारी गण सब लोग मंदिर जी में थे। आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर जी की प्रेरणा व पूज्य माताजी के शुभाशीर्वाद से हमने एक फ्लैट का निर्माण कराने के लिए अपनी ओर से उसी समय स्वीकृति दी थी जिसका निर्माण १९७८ में संस्थान ने करा दिया था।

इसी संदर्भ में मुझे हस्तिनापुर कई दिन तक रुकने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिससे पूज्य माता रत्नमती जी व ज्ञानमती माताजी तथा संघ में अन्य साधुओं की वैयावृत्ति का लाभ भी प्राप्त हुआ। वैसे मैं पू० श्री ज्ञानमती माताजी से काफी समय से बहुत अच्छी तरह परिचित था, लेकिन पूज्य रत्नमती माताजी से निकटता से इसी वक्त संपर्क हुआ और इस वृद्धावस्था में जिस प्रकार की निर्विघ्न चर्या का पालन करते हुए हमने आपको देखा हृदय बड़ा ही गद्‌गद हुआ। उसके बाद तो दिल्ली मोरीगेट चातुर्मास होने से प्रतिदिन दर्शनों का लाभ प्राप्त हुआ। हमने आपको हमेशा ज्ञान-ध्यान तथा मौन में ही निरत देखा। आपने समाज को जो कुछ भी दिया है वह आज समाज में छिपा नहीं है। इस उपकार को समाज हजारों साल भी भूल नहीं सकेगा। हम पूज्य माताजी के चरणों में अपनी विनयाञ्जलि अर्पित करते हैं।





श्रमण संस्कृति की प्रतिमूर्ति : माताजी

वैद्य शान्तिप्रसाद जैन, दिल्ली

भारत की धरा पर श्रमण संस्कृति एवं वैदिक संस्कृति के रूप मे भारतीय संस्कृति की दो अजस्र धाराएं चिरकाल से प्रवाहित रही है। देश, काल, परिस्थिति एवं अन्य कारणों वश दोनों संस्कृतियों ने एक दूसरे को समय-समय पर प्रभावित किया है। किन्तु दोनों संस्कृतियों की चिन्तनधारा के मूल मे निहित वैभिन्न्य ने दोनों को भिन्न-भिन्न मार्ग पर अग्रसर होने को बाध्य किया, जिसके परिणामस्वरूप दोनों संस्कृतियों का स्वरूप एवं परम्परा अपना पृथक् अस्तित्व बनाये हुए हैं। श्रमण संस्कृति की अपनी कतिपय मौलिक विशिष्टाएँ है जिनके कारण उसने भारतीय जन-जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया। उन्ही विशिष्टाओं में से एक है श्रमण संस्कृति की सन्त (साधु) परम्परा। इस परम्परा के अन्तर्गत साधुवेश धारण करने वालों ने आत्मोत्थान के आध्यात्मिक निःश्रेयस् तो प्राप्त किया ही, अपने कल्याणकारी सदुपदेश एवं आचरण द्वारा जन सामान्य को आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर किया।

इसी गौरवशाली परम्परा की एक कड़ी है हमारी आराध्य पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी। पूज्य माताजी का तपस्यापूर्ण जीवन सम्पूर्ण साध्वी समाज के लिए तो एक अनुकरणीय आदर्श है ही, हमारी सम्पूर्ण सांस्कृतिक परम्परा ही उससे गौरवान्वित है। आपके जीवन में जो सादगी है वह आपके अन्तःकरण की सात्त्विकता एवं सरलता का सुपरिणाम है। आपने अपने समग्र जीवन मे आचरण की शुद्धता को

विशेष महत्त्व दिया। आपके द्वारा विहित आचरण की शुद्धता ने आपके जीवन को इतना उन्नत बना दिया कि वह स्वतः ही आध्यात्मिक निःश्रेयस् के सोपान पर आरूढ़ हो गया। आचरण की शुद्धता के कारण ही आपके अन्तःकरण में ऋजु भाव का उद्भव हुआ। जिसने आपके स्वभाव की उदारता एवं सरलता को द्विगुणित किया। इसी का परिणाम है कि आपके स्वभाव में अहं भाव का अंश लेशमात्र भी नहो है। इससे धर्मपिपासु जनों को आपकी निकटता सहज ही प्राप्त हुई और सम्पूर्ण समाज आपके उदार स्वभाव से लाभान्वित हुआ।

मै उन सौभाग्यशाली व्यक्तियों में से हूँ जिन्हें पूज्य माताजी के सान्निध्य में रहने और उनकी अमृतवाणी का पान करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। आपके वचनामृत ने मेरे जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है जिससे मेरी प्रवृत्ति को बाह्य विषयों से पराङ्मुख होने की प्रेरणा प्राप्त हुई है। आपकी प्रेरणा से मैं अपने जीवन में पूर्वापेक्षा अधिक सात्त्विकता का अनुभव कर रहा हूँ। धार्मिक कार्यों में प्रवृत्ति कराने का श्रेय भी आपके सान्निध्य को है। मेरी ही भाँति अन्य असंख्य जनों को प्रेरणा देने और उन्हें सन्मार्ग पर नियोजित करने का श्रेय भी आपके कल्याणकारी वचनामृत को है। आपका साधु जीवन हमारे लिए एक अनुकरणीय आदर्श है जिससे हम सतत प्रेरणा सन्मार्ग निर्देश प्राप्त करते हैं।

हमारा सम्पूर्ण समाज आपके परोपकारी मार्ग निर्देश के कारण सदैव आपका चिरऋणी एवं आभारी रहेगा। विरागोन्मुख आपके जीवन की उपलब्धियाँ समाज की थाती है और उन्हें सँजाये रखना हमारा पुनीत कर्तव्य है। हमारे बीच आपकी विद्यमानता हमारे लिए बहुत बड़ा सम्बल है। आप चिरकाल तक हमारे बीच बनी रहें और हमारा पथ आलोकित करते हुए निरन्तर हमारा मार्ग दर्शन करती रहें— यही मेरी हार्दिक आकांक्षा है। दीर्घायुष्यमय आपके स्वस्थ जीवन की कामना करते हुए मैं शतशः आपका वन्दन करता हूँ और चरण कमलों मे नमन करता हूँ।

आपके अभिनन्दन के इस पुनीत अवसर पर श्रद्धा सुमन युक्त अपनी विनयांजलि आदरभाव पूर्वक आपके चरणों में अर्पित करता हूँ।



अमर रहो हे तपोनिधि

श्री धर्मचन्द मोदी

महामंत्री, भा० दि० जैन महासभा, राजस्थान प्रान्तीय शाखा–ब्यावर

सब देश और सब काल में ऐसी नैसर्गिक विभूतियाँ विद्यमान रहती हैं जो अपनी प्रखर दीप्ति से अज्ञान अन्धकार में भटके प्राणियों के लिए प्रकाश-स्तम्भ-स्वरूप हुआ करती है। लेकिन विश्व के इतिहास में ऐसी विभूतियाँ कम ही मिलेंगी जो स्वयं विभूति होकर विभूतियों को जन्म दें, रत्न होकर भी अनेकों रत्नों को पैदा करें।

ऐसी ही विदुषीरत्न आर्यिका पूज्य श्री १०५ रत्नमती माताजी हैं। आपके ही प्रताप का फल है कि वर्तमान में आर्यिकारत्न के रूप में परम पूज्य श्री १०५ ज्ञानमती माताजी विश्व धरातल पर नारी की महानता, शक्ति और साहस का साक्षात् परिचय प्रदान कर रही है। स्याद्वादमय जैनधर्म का महान् उद्योत कर रही हैं। आप स्वयं जहाँ न्याय, व्याकरण व सिद्धान्त आदि विषयों में पारंगत हैं, वहाँ आपने अनेकों शिष्यों को इन विषयों में शिक्षित भी किया है। आपने अनेक गम्भीर ग्रन्थों का अनुवाद तथा वर्तमान एवं भावी पीढ़ी के जीवन के सर्वाङ्गीण विकास हेतु सत् साहित्य का निर्माण कर समाज को उपकृत किया है। जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति का प्रवर्तन आपके ही अमृतमयी उपदेशों का परिणाम है जिसके माध्यम से भगवान् महावीर के संदेशों को जन-जन तक पहुँचाया जा रहा है तथा राष्ट्र में नैतिकता एवं सहिष्णुता के वातावरण का निर्माण हो रहा है जो आज की अनिवार्य आवश्यकता है।

यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई कि परम पूज्य आर्यिका रत्नमती जी, जो अपूर्व त्याग, सरलता, सौम्यता, करुणा आदि सद्‌गुणों की प्रतीक हैं, को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है। हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि ऐसे महानुभावों का गुण-कीर्त्तन, गुण स्मरणादि कल्याणकारक व पापहारक होता है। अतः मैं माताजी के अभिनन्दन ग्रन्थ के आयोजकों की हृदय से अभिशंसा करता हूँ।

आशा है आज के भौतिक युग से प्रभावित तथा आध्यात्मिकता से उपेक्षित युवको के लिये इस ग्रन्थ मे इस प्रकार की सामग्री समाहित होगी जिससे जीवन की वास्तविकता का भान हो और वर्तमान तथा भावी युग के प्राणियों को समीचीन एवं प्रशस्त मार्ग का दिग्दर्शन हो।

तथास्तु।



श्रीमती कमलाबाई धर्मपत्नी स्व० रतनचंदजी पांड्या सनावद
और आर्यिका रत्नमती माताजी के बीच हुआ एक

वार्तालाप

कमला—माताजी वंदामि !

माताजी—सद्धर्मवृद्धिरस्तु।

कमला—माताजी आपका रत्नत्रय सकुशल है !

माताजी—हाँ, जिनेन्द्रदेव की कृपा से सब कुशल है।

कमला—पूज्य माताजी ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ आशा है आप मुझे अपने अमूल्य समय में से कुछ समय अवश्य देंगी।

माताजी—अच्छी बात है पूछ लो।

कमला—माताजी ! आप अपनी पुत्री आर्यिका ज्ञानमती माताजी को गुरु मानती हैं।

माताजी— हाँ, वे दीक्षा में बड़ी होने से गुरु हैं। देखो, गुरु कई प्रकार के होते हैं। १. दीक्षा गुरु जो दीक्षा देते हैं। हमारे दीक्षा गुरु आचार्य धर्मसागरजी महाराज हैं। २. विद्या गुरु जो पढ़ाते हैं। ३. दीक्षा में बड़े होने से गुरु। ये माताजी हमारे से दीक्षा में बड़ी हैं तथा संघ में प्रधान हैं इसलिये ये हमारे गुरु के समान हैं।

कमला—उन्होंने दीक्षा कब ली थी।

माताजी—इनको दीक्षा लेकर आज ३१ वर्ष हो गये हैं। सन् १९५३ में दीक्षा ली थी।

कमला—आपने दीक्षा कब ली।

माताजी—मुझे दीक्षा लेकर १२ वर्ष हो रहे हैं। मैंने अजमेर में सन् १९७१ में दीक्षा ली थी।

कमला—आप इन्हें क्या कहती हैं।

माताजी—मैं इन्हें माताजी कहती हूँ। चूँकि दिगम्बर सम्प्रदाय में दीक्षा लेने के बाद माँ बेटी का कोई सम्बन्ध नही रहता है।

कमला—तो आप इन्हें नमस्कार भी करती होंगी।

माताजी—हाँ, मैं इन्हें पहले वंदामि करती हूँ। पुनः ये भी वंदामि कहकर प्रतिवंदना करती हैं। मैंने शास्त्रों में पढ़ा है कि बड़ों को वंदना नही करने से नीच गोत्र का आस्रव होता है। उनकी विनय वंदना करने से उच्चगोत्र का आस्रव होता है।

कमला—आप इनसे प्रायश्चित्त भी लेती होंगी!

माताजी—हाँ, प्रत्येक चतुर्दशी को पाक्षिक प्रतिक्रमण मे तथा अन्य समय कोई दोष लग जाने पर मैं इन्हीं से प्रायश्चित्त लेती हूँ। शास्त्र की ऐसी ही आज्ञा है कि जो संघ की गणिनी होती है संघ में रहने वाली सभी साध्वियाँ उन्ही से प्रायश्चित्त लेती है।

कमला—ये कभी आप पर अनुशासन करती हैं क्या ?

माताजी—नही, ये मेरे ऊपर अनुशासन नही करती हैं और न मेरे अनुशासन में रहती ही हैं। कभी मैं कोशिश भी करती हूँ तो नही सुनती है। (हँसी)

कमला—क्यों ?

माताजी—क्योंकि ये धुन की बड़ी पक्की हैं। तभी तो इन्होंने इतने काम कर डाले हैं। इनकी अस्वस्थता देखकर मैं कभी इन्हे किसी काम से रोकती हूँ तो भी इन पर कुछ असर नही होता है।........मैंने घर में इन पर बहुत कड़ाई की थी अब नहीं चलती है। (पुनः हँसी)

कमला—आप घर के इनके कुछ संस्मरण सुनाइये।

माताजी—घर में मेरी सभी सन्तानों में ये सबसे प्रथम सन्तान थी। इसलिये घर के काम धन्धे की सुविधा के लिये मैं इन्हें घर के बाहर खेलने नहीं जाने देती थी। तब ये छोटी तो थीं ही। अतः कभी दुःखी भी होतीं और कभी रोने भी

लगतीं। तब मैं इन्हें दर्शन कथा, शील कथा पुस्तकें दे देती और कहती लो पढ़ो, इन्हें पढ़कर हमको भी सुनाओ। तब ये खूब रुचि से उन पुस्तकों को पढ़ा करती थीं। इन्होंने उन कथाओं को सैकड़ों बार पढ़ लिया होगा तथा एक पद्मनन्दी पंचविंशतिका ग्रंथ था उसका भी ये स्वाध्याय करती थी। इसी तरह धर्मग्रंथ पढ़ते रहने से ही इन्हें बचपन से बहुत ही ज्ञान हो गया था। और इसी से तो इन्हें बैराग्य भी हो गया।

माताजी—जब इन्हें वैराग्य हो गया तब ये सभी हमें फटकारने लगे। और बोले—इस लड़की को धर्म की पुस्तकें पढ़ा-पढाकर वैराग्य करा दिया........(हँसी)

कमला—हम लोग भी धर्म की पुस्तकें पढ़ते हैं हमें तो वैराग्य नहीं हो गया।

माताजी—हां, सभी को थोड़े ही हो जाता है। इनके तो कुछ पूर्वजन्म के संस्कार ही थे जो कि इतनी छोटी उम्र मे वैराग्य हो गया था। इनके तो ८-९ वर्ष की उम्र मे ही सम्यक्त्व की बड़ी दृढ़ता थी। इनकी प्रेरणा से ही मैंने तीज, करवा चौथ आदि त्यौहारों में गौरी पूजना, मिथ्यात्व करना छोड़ दिया था। बच्चों को चेचक निकलने पर शीतला माता की पूजा नही किया था प्रत्युत मन्दिर में जिनेन्द्रदेव की खूब पूजा की थी।

कमला—तो ये बचपन से ही आपकी गुरु बन गई थीं। (हँसी)

माताजी—हाँ, धर्म के विषय में इनका ऊँचा ज्ञान और सम्यग्दर्शन की दृढ़ता देखकर एक विद्वान् ने तो उसी समय यह कहा था कि आपकी पुत्री मैना एक देवी का अवतार है। मुझे इनकी धर्म की बातें बहुत अच्छी लगती थीं। इनकी धार्मिक प्रेरणा से हमारे घर में शुरू से आज तक भी बहुत से धार्मिक कार्य हुए है।

कमला—आपने वैसे किन-किन साधुओं के दर्शन किये हैं।

माताजी—सबसे पहले हमने आ० देशभूषणजी महाराज के दर्शन किये हैं। बाद में आ० वीरसागरजी के संघ के महावीरकीर्तिजी, शिवसागरजी, बिमलसागरजी, धर्मसागरजी, सुमतिसागरजी आदि सभी बड़े संघ के दर्शन किये हैं। चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शांतिसागरजी के दर्शन मैंने नही किये हैं। उनके संस्मरण इन माताजी से सुना करती हूँ तो बहुत ही प्रसन्नना होती है।

कमला—इन माताजी ने आपके पुत्र-पुत्रियों को घर से निकाला होगा तो आपको बुरा भी लगता होगा।

माताजी—मोह के उदय से कुछ क्लेश अवश्य होता था लेकिन कर्म सिद्धान्त, उन-उन की होनहार सोचकर शांति भी हो जाती थी। बात यह है कि इन्होंने आ० पद्मावती, जिनमती आदि कई महिलाओं को, बालिकाओं को घर से निकाल-निकाल कर दीक्षा दिलाई है। कई एक पुरुष भी इनकी प्रेरणा से मुनि बने है। मुनि श्री अजितसागरजी, संभवसागरजी, वर्धमानसागरजी तो इन्हीं की प्रेरणा से मुनि हुए हैं।

कमला—हमारे सनावद के चातुर्मास में माताजी ने मोतीचन्द और यशवंत

को कैसे निकाला और यशवंत को कैसे मुनि बनाया, उन्हें पढ़ाया, योग्य बनाया सो तो हमें मालूम ही है। सच में माताजी ने तो बहुतों का कल्याण कर दिया है।

माताजी—इन्होंने मुनि, आर्यिकाओं को अन्य शिष्य-शिष्याओं को पढ़ाया भी खूब है।

कमला—माताजी की प्रेरणा से जो यह जम्बूद्वीप रचना बन रही है इसमें आपका क्या मत है।

माताजी—यह रचना तो बहुत अच्छी है। मैंने भी सुमेरु पर्वत की २, ३ वंदना की हैं. बहुत ही हर्ष होता है। पहले तो हमें यहाँ हस्तिनापुर रहने से बहुत ही विरोध था। मैं चाहती थी कि माताजी आस-पास के गाँवों मे भ्रमण करती रहें। कुछ दिन खतौली, मुजफ्फरनगर, शाहपुर आदि रही भी हैं। मुझे दिल्ली भी रहना नहीं अच्छा लगता था ...... ।

कमला—ऐसा क्यों। यहाँ तो तीर्थ पर धर्मध्यान भी अच्छा होता है और शांति भी बहुत है फिर आप यहाँ रहना क्यों नहीं पसन्द करती थी ?

माताजी—बात यह है कि यहाँ खुला जंगल होने से गर्मी मे लू लपट बहुत रहती है और सर्दी मे ठण्डी बहुत पड़ती है। इसलिये मैं विहार करने को कहा करती थी। किन्तु संस्थान के लोग कहते—माताजी के यहाँ रहने से हम लोग निर्माण कार्य अच्छी तरह चला लेते हैं। दिल्ली में भी इनके रहने से धर्म की बड़ी प्रभावना हुई है। देखो, ज्ञानज्योति निकली जो आज सारे भारत में घूम रही है। बड़े-बड़े शिविर सेमिनार हुए। तमाम विधान हुए ये सब अच्छी चीजे हैं। अब तो हमारा स्वास्थ्य बहुत कमजोर हो गया है इसलिये अब तो यही क्षेत्र पर शांति मिलती है। यहाँ धर्मध्यान तो सचमुच में बहुत बढ़िया होता है।

कमला—आपको तो विद्यार्थियों के बीच मे स्वाध्याय मे बड़ा आनन्द आता है।

माताजी—हाँ, प्रातःकाल के स्वाध्याय में तो माताजी भी बैठती है। बहुत ऊँची चर्चायें रहती हैं। मध्यान्ह में तो मेरे पास ही विद्यापीठ के प्राचार्य जी और सारे विद्यार्थी आ जाते है। डेढ़ दो घण्टे शास्त्र स्वाध्याय चलता है। दिन भर धर्म चर्चा से बहुत ही आनन्द आता है। इससे तो शरीर के रोग, शोक में मन नहीं जाता है। उतनी देर तो उपयोग धर्म में ही रम जाता है।

कमला—माताजी ! आपको शरीर में क्या तकलीफ रहती है।

माताजी—हमें ३-४ वर्ष पहले छह महीने मलेरिया बुखार आया था। उसके बाद से अम्लपित्त की शिकायत हो गई है। वायु भी बनती रहती है। इसी से मुख में, छाती में जलन बहुत हो जाती है।.........चलता है, देखो बाई ! यह शरीर तो रोगों का घर है। इससे जितना बने उतना काम ले लेना अच्छा है। मेरे १३ संतानें हुईं शरीर कमजोर तो होगा ही। इन सन्तानों को पाल पोषकर योग्य बनाया। अपना कर्तव्य पूरा किया। घर में रहकर भी दान, पूजा, स्वाध्याय, तीर्थयात्रा, गुरुभक्ति खूब की थी पुनः वृद्धावस्था में दीक्षा लेकर स्त्रीपर्याय में सबसे ऊँचा पद प्राप्त कर

लिया है। अब इस जीर्ण-शीर्ण शरीर से जितना संयम निभ जावे उतना ही अच्छा है। भाव यही रहता है कि अपने व्रतों में दोष न लगे। अंत तक मूलगुण निर्बाध पलते रहें।

कमला—सच्ची बात है आपने तो बहुत बडा काम किया है कि जो ५७ वर्ष की उम्र में आर्यिका दीक्षा ले ली। अच्छा माताजी! यह तो बतलाइये कि आपकी क्या-क्या इच्छायें हैं।

माताजी—अब मेरी कुछ भी इच्छायें नहीं है। मैंने अपनी सब इच्छायें पूरी कर ली है। अब एक ही इच्छा शेष है कि अंत समय समाधि अच्छी हो जाय बस। इस पवित्र तीर्थक्षेत्र पर भगवान् शांतिनाथ के चरणों में महामंत्र जपते हुए शरीर छूटे यही भावना बनी रहती है।

कमला—आपकी भावना बहुत अच्छी है। मैं भी भगवान् से यही प्रार्थना करती हूँ कि आप शतायु हों। बहुत दिनों तक हम लोगो को आपकी छत्रछाया मिलती रहे और आपकी अन्तिम भावना भी सफल होवे। अच्छा माताजी हमने आपका बहुत-सा समय ले लिया। वंदामि।

माताजी—सद्धर्मवृद्धिरस्तु।



पूज्या माताजी : एक इण्टरव्यू

श्री जवाहरलाल जैन, भीण्डर



एक बार की बात है, जब प्रशिक्षण शिविर के निमित्त से मैं हस्तिनापुर गया था। वहाँ कुछ दिन प्रवास किया। प्रवास काल मे एक दिन [दि० १३-६-८३ को] दोपहर को एक बजे से चार बजे तक पू० आ० ज्ञानमती माताजी की संघस्था वयोवृद्धा पू० आ० रत्नमती माताजी के पास बैठने का मुझे सौभाग्य मिला। हस्तिनापुर के प्रवास काल मे विविध सम्पृक्त श्रावकों के माध्यम से इतना तो मै सुन ही चुका था कि पू० रत्नमती माताजी की ही कुक्षि अष्टसहस्री की अनुवादिका एवं अन्य भी अनेकों ग्रन्थों की प्रणेत्री पू० ज्ञानमतीजी की जन्मप्रदात्री है। अतः आपका (रत्नमती माताजी का) प्रत्युपस्थान-सान्निध्य मेरी अपनी एक अभिलाषा का परिपूरक ही बना। मैं दर्शनोपरान्त कुछ समय तक माताजी के पास चुप ही बैठा रहा। फिर वार्ता के दौरान पूज्य श्री से मैने विनीतधृष्टतापूर्वक कुछ प्रश्न किये; ताकि उनका मैं अन्तर्मर्म जान पाऊँ। विगत षट् दशक वर्षों से सातत्येन वृद्धिङ्गत एवं यत्र-तत्र-सर्वत्र दृश्यमान साधुनिन्दा का अथवा विरक्तों के छिद्रान्वेषण का व्यापक प्रकरण मुझे स्वयं इस परीक्षा के लिए बलात् प्रेषित कर गया। और इसीलिए मैंने जो प्रश्न किये, उसके उत्तर उन्होंने बड़ी सरलता से बिना भौंह चढ़ाये (बिना क्रोधादि किये) निम्न दिये—

प्रश्न—माताजी! आपकी आयु कितनी है?

उत्तर—मेरी इस स्त्री पर्याय में ६९ वर्ष की आयु हो चुकी है।

प्रश्न—आपने दीक्षा क्यों ली ?

उत्तर—हमने आत्म-कल्याण के लिए दीक्षा ली।

प्रश्न—माताजी ! आपको गृहस्थावस्था में सब सुख सुविधा थी। घर-बार, कुटुम्ब परिवार था, आराम था। सभी छोड़ने पर अब आपके पास दो धोती मात्र परिग्रह एवं कमण्डलु-पिच्छिका; ये ४ चीजें ही रह गई हैं। जब कि घर तो सब तरह से भरा-पूरा था। आपको कहाँ सुख का आभास (प्राप्ति) लगा और क्यों ?

उत्तर—मधुर मुस्कान के साथ आप बोलीं कि, घर में हमारे नौ पुत्रियाँ थीं, ४ पुत्र थे। जब हम घर में थे तभी [हमारी गृहस्थावस्था में ही] बड़ी बच्ची मैना तो दीक्षा ले चुकी थी। जगत् में कुछ भी स्थिर तो है नहीं। फिर इस काया से अपना जीवन सफल क्यों नहीं बनायें। ऐसा विचार कर हमने सन् १९७१ में [अर्थात् २००९ में] दीक्षा ले ली। अब हमें उस गृहस्थी के परिग्रह से यहाँ ज्यादा आनन्द है।

प्रश्न—तो भी घर की, माताजी ! कभी याद तो आखिर···· ? (बस, इतना कह कर मैं रुक गया)।

उत्तर— हमें अब घर की याद नहीं आनी।

प्रश्न—आपको मैली धोती व साफ धोती में किस प्रकार का अनुभव होता है ? (आह्लाद या शोक)।

उत्तर—कैसी भी हो, अंग ढँकना ही तो रहा। पद्मपुराण में आया है कि आ० सीता की साड़ी मलिन थी और शरीर भी मलिन था। साधु जीवन में तो यह भूषण ही है।

प्रश्न—षड् रस रहित भोजन तथा पकवान [पक्वान्न] के खाने के काल में आपको कितना अन्तर महसूस होता है ?

उत्तर—मुझे मीठा और घी की चीजों से नफरत है। सादा भोजन ही ठीक है। श्रावक लोग लड्डू तथा और भी चीजें बनाते हैं, पर मैं लेती ही नहीं। मैं तो हल्का-सादा भोजन ही लेती हूँ। वही स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होता है।

प्रश्न—भोजन मे आप क्या ?

उत्तर—रोटी, दलिया तथा मूग की दाल का पानी लेती हूँ।

प्रश्न—आपकी निन्दा करने वालो के प्रति आपके अन्तर्दिल में क्या स्थिति पैदा होती है ?

उत्तर—पहले (गृहस्थ अवस्था मे) तो हमारी निन्दा, हमें गाली-गलोज आदि करने वालों पर हमें क्रोध हो जाता था। पर अब ऐसा भाव ही होता है कि क्रोध निन्दा आदि करने वाले करमबन्ध [कर्म बन्ध] करते रहो; हम तो बिना पैसे ही समता भाव रखने से पुण्य संचय कर लेते हैं। हमारा सबसे समता भाव है। हम क्रोध क्यों करें ? हमारे क्या लेना-देना, बाँटना रहा।

प्रश्न—क्या आप भव्य है, या अभव्य हैं ?

उत्तर—हमने सच (सच्चा) मारग [मार्ग] आत्मा में धारण किया [अन्तःकरण से धारण किया] है। तो फिर भविजीव [भव्यजीव] हैं ही। तथा मैंने सम्मेदशिखर

की वंदना कई बार की है इसलिए मैं भव्य हूँ यह मुझे विश्वास है। क्योंकि सम्मेद-शिखर की वंदना अभव्य नहीं कर सकते ऐसा शास्त्रों में आता है।

प्रश्न—इन्द्रिय सुख में आपको उपादेय बुद्धि है ? यदि नहीं, तो क्यों ?

उत्तर—इन्द्रिय सुख तो भोग-भोग कर भर गये [तृप्त हो गये] अब तो हमें आतमा का सुधार करना है [अर्थात् आत्म सुधार मे ही उपादेय बुद्धि है।] इसीलिए दीक्षा ली है। अब तो हमारा अच्छा समाधिमरण हो जाय; बस, यही एक इच्छा है।

प्रश्न—आपकी जय-जय बोलने वालों पर आपको क्या भाव होता है ?

उत्तर—चाहे कोई जय बोलो, चाहे कटुशब्द दोनों के प्रति समभाव है। राग-द्वेष तो गृहस्थी को रहे आओ। हमारे तो सबके प्रति एक जैसे विचार (भाव) हैं।

प्रश्न—माताजी ! नाना मतों के प्रचार के कारण अब गिने-चुने व्यक्ति रहे हैं, आपके मानने वाले ? फिर ?

उत्तर—पद्मप्रभु के समोसरण (समवसरण) मे १११ गणधर [प्रमुख भक्त सेवक तथा गण—सभा के नायक] थे। जब कि महावीर के समोसरण में केवल ११ ही गणधर थे। तो इससे क्या हुआ। और उल्टे महावीर को कम काल (अल्पायु) मे ही मोक्ष मिल गया। इसलिए भक्त समुदाय या अनुयायी की कमी से कल्याण देरी से होता हो तथा भक्तों की अधिकता से जल्दी कल्याण हो। ऐसी बात नहीं है। कितना ही विरोध हो, हम तो हमारी साधना आगमानुकूल कर ही रहे है।

इसी मध्य पूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी वहाँ आ गईं और स्वाध्याय का समय हो जाने से स्वाध्याय चालू हो गया। इतनी ही वार्तालाप के अन्तर्गत मैंने देखा पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी के परिणामो में सरलता, विषयों के प्रति विरक्तता, बोधिसमाधि-भावना की सघनता, भावदीक्षित जीवन मे ही रमणता, वाणी की मृदुता, ढलती आयु में भी साधकत्व की ओर अविकल पृथुता एवं साधूचित सकल चर्यानुकरणता सर्वथा अनुकरणीय है।

पू० रत्नमती माताजी के चरणों में मेरी प्रणामाजलि।



जन्मभूमि से कर्मभूमि महान् है

श्री पन्नालाल सर्राफ, टिकैतनगर

टिकैतनगर (जि० बाराबंकी) की जैन समाज सदा ही धर्मकार्यों में अग्रणी गिनी जा रही है। समय-समय पर इसमें धर्म प्रभावना कार्य रथयात्रादि सम्पन्न होते रहते हैं। किसी समय यह मन्दिर छोटे रूप में बनाया गया था जो कि उन्नति रूप में बढ़ता हुआ आज एक विशाल रूप में महान् दर्शनीय बड़े-बड़े सुन्दर मन्दिरों की श्रेणी में अपना स्थान बना लिया है। उसी में सन् १९७४ फरवरी में श्री बाहुबली स्वामी की सुन्दर प्रतिमा ८ फुट की विराजमान हुई है जिनकी बिम्ब प्रतिष्ठा बड़े ठाठबाट से सुसम्पन्न की गई है। प्रतिष्ठा में पधारे हुए कई सज्जनों ने इस प्रतिष्ठा की मुक्तकण्ठ से

प्रशंसा की, कई लोगों ने यह कहा कि यह प्रतिष्ठा एक ग्रामीण न होकर बड़े नगरों की तुलना में किसी बात मे कम नही रही है। प्रबन्ध भी बहुत ही प्रशंसनीय रहा।

श्रीमान् ब्र० शीतलप्रसादजी की प्रेरणा से "श्री पार्श्वनाथ दि० जैन पाठशाला" ध्रौव्य फण्ड से चालू की गई जिसमें जैन अध्यापकों द्वारा पढ़ाई होती रही। अब यह पाठशाला माध्यमिक विद्यालय के रूप मे सरकारी मान्यता प्राप्ति के द्वारा विकसित हुई है।

टिकैतनगर का परम सौभाग्य है कि लाला छोटेलालजी के परिवार के कई व्यक्ति उच्च श्रेणी की त्यागवृत्ति धारण करके ज्ञानार्जन कर रहे हैं तथा अपना और जैन समाज का परम कल्याण कर रहे है। इनमें मुख्य आर्यिका ज्ञानमती माताजी हैं जिनका अगाध पाण्डित्य जैनजगत् मे प्रसिद्ध है। इन्होंने अष्टसहस्री ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद करके जैन पंडितों को चकित कर दिया है। काव्य रचना में भी इनका उच्च स्थान है, प्रत्येक विषय का प्रतिपादन करने की अद्‌भुत शैली है। इनकी दूसरी बहिन अभयमती आर्यिका माताजी भी सरल स्वभावी, चारित्रवान हैं तथा तीसरी बहिन कु० मालती ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके आर्यिका ज्ञानमती माताजी के सान्निध्य में पठन-पाठन किया है और चौथी बहिन कु० माधुरी भी आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके माताजी के सान्निध्य मे विद्याध्ययन कर रही है। इनके अलावा आर्यिका ज्ञानमती माताजी ने अपनी इस जन्म की मातु श्री को धर्मोपदेश दे करके आर्यिका पद की दीक्षा दिलवाई और माताजी के सहोदर भाई रवीन्द्रकुमार शास्त्री ने भी आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया है जो कि "सम्यक्ज्ञान" पत्र के सम्पादक है। इन सभी भाई बहनों के खर्च के लिए भाई कैलाशचन्द जी प्रतिमाह रुपये भेजते है।

टिकैतनगर में सर्वप्रथम संवत् १९८३ में दो मुनि महाराज श्री १०८ शान्तिसागरजी छाणी और श्री १०८ मुनि मुनीन्द्रसागरजी पधारे थे। उस समय टिकैतनगर में चतुर्थकाल जैसा दृश्य उपस्थित हुआ था। यहाँ से मुनि महाराजों को अयोध्या तक कई लोगों ने साथ जाकर पहुँचाया था। इसके पश्चात् आ० देशभूषण मुनि महाराज का आगमन हुआ और चातर्मास सोत्साह सकुशल सम्पन्न हुआ। इनके पश्चात् श्री १०८ सुबलसागरजी पधारे उनका भी चातुर्मास यहाँ उत्तम रीति मे पूर्ण हुआ। इनके पश्चात् पू० श्री सीमन्धरसागर, सुबाहुसागर एवं सिद्धसागर तीन मुनिराज पधारे उनका चातुर्मास भी यहीं हुआ और इन्ही के समक्ष श्री बाहुबली भगवान् की प्रतिष्ठा विधि प्रतिष्ठाचार्य श्री कन्हैयालाल जी नारे द्वारा सम्पन्न हुई। इस प्रकार यहाँ की स्थानीय जैन समाज द्वारा समय-समय पर रथयात्रा, मण्डलविधान आदि प्रभावना के कार्य होते रहते हैं।

परमपूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी ने जैन समाजपर अनन्य उपकार किये हैं। मैं पूज्य माताजी के चरणों में नम्र नमोऽस्तु करता हुआ उनके दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की कामना करता हूँ।

नमो नमः

श्री जवाहरलाल सिद्धान्तशास्त्री, भीण्डरम्

हे रत्नमति !
हे धर्मायुतात्मन् !
हे अतिपूतात्मन् !
हे मुक्तिदूतात्मन् !
हे अतिमुक्तिपात्रीभूते !
हे अतिलोकिकलोकिते !
तुभ्यं नमो नमः ।।

हे रत्नवति !
हे अपचितरागद्वेषात्मन् !
हे अपचीयमानभवात्मन् !
हे गतापत्यस्नेहात्मन् !
हे पट्टपुत्रिजनकात्मन् !
हे अपदानतन्मयात्मन् !
तुभ्यं नमो नमः ।।

अनपेक्ष्यावरुद्धिं या ऽवरुदितांश्च दारकान् ।
सुतांश्चाप्नोत्तु चारित्रं रत्नमतीं नमामि ताम् ।।१।।



याद रखेगा नित संसार

श्री जवाहरलाल सिद्धान्तशास्त्री, भीण्डर

जैन जगत के जन-जन के तुम,
हृदय कमल में चमक रही ।
ऐसी, जैसे कृष्णमूर्ति हो,
मीरा के मन दमक रही ।।[1]

रत्नत्रय से अतिशोभित हो,
रत्नमती है तदवत् नाम ।
यथानाम, गुण प्रकट किये तुम,
तुम हो जैनधर्म की प्राण ।।

चउमुखी प्रतिभावती अहो,
ज्ञानमती की मात महान ।
त्यागी परिजन करि वेष्टित हो,
तदपि विरागी और सुजान ।।

जब तक सूरज चाँद रहेंगे,
रहेगी जब तक धर्म की एन ।
ज्ञानमती ओ ! अभयमती सी,
याद रहेगी तुमरी देन ।।

सुतदारा अरु लक्ष्मी तज दी,
त्यागा जगत् अत्यन्त असार ।
ज्ञानमती की जननी ! तुमको,
याद रखेगा नित संसार ।।



---

१. इदं लौकिकमुदाहरणं वर्तते ।

भक्ति कुसुमावली

श्री जवाहरलाल सिद्धान्तशास्त्री, भीण्डरम्

हे परमपूज्य !
हे आर्यिका माता !
हे रत्नमती !
हे रत्नवती !
करता हूँ आपको
पुनः पुनः नमन !
हे आर्या महती !
हे सुष्ठु धीमती !
पाने की पंचमगति
है जिसके एक मति
ऐसी हे आर्ये !
करता हूँ तुम्हें
शत शत वन्दन।
हे ज्ञानमती की प्रदात्री !
हे धर्म-चरण की त्रात्री !
हे अभयमती की धात्री !
हे मालती-माधुरी की पात्री ![1]
हे रत्नप्रदायिनी !
हे माँ
नहीं है व्यक्तिकरण को,
विशिष्ट यह
जड़
वचनावली।
आप हैं मय
अनन्त
सुगुणावली।
बस, अन्त में
अर्थित है
भक्तिकुसुमावली
और
अर्पित है
नमनार्पणावली।



वंदना

श्री महेन्द्रकुमार 'महेश' शास्त्री, ऋषभदेव

जिनकी कषाय मंद ध्यान में रहे निमग्न,
हित मित प्रिय नित वचन उच्चरें हैं।
धर्म की सुबोधकरा निजपरहितकरा,
क्लेशतापदुःखहरा शांतभावधरे हैं॥
ज्ञानध्यानकी निधान ज्ञानमतीरत्नखान,
मोक्षमार्गमग्न सत्यपंथ अनुसरे हैं।
त्यागमूर्ति-धर्ममूर्तिरत्नमती आर्यिका को,
वंदना "महेश" नित्य भावयुक्त करे हैं॥१॥



१. रक्षिता (माता) इत्यर्थः

श्रीरत्नमतीमातुः स्तुतिः

कु० माधुरी शास्त्री, हस्तिनापुर

श्री धर्मसागरगुरोः प्रणिपत्य भक्त्या। स्वात्मैकत्वनिरता विरताऽव्रतेभ्यः।
जग्राह त्वं शिवकरं व्रतमार्यिकायाः॥ सम्यक्त्वबोधनिपुणा प्रवणा सुवृत्ते॥
अन्वर्थनाम किल "रत्नवती" दधासि। स्तोत्रस्य पाठपठने श्रवणेऽनुरक्ता।
त्वामार्यिकां प्रणिपतामि सदैव मूर्ध्ना॥ त्वामार्यिकां प्रणिपतामि सदैव मूर्ध्ना॥

आवश्यकीं षट्क्रियां प्रतिपालयन्ती। मंत्रं सदा जपसि सौख्यकरं पवित्रं।
रत्नत्रयं भवहरं बहुमानयन्ती॥ रोगापहं सकलदुःखहरं प्रसिद्धम्॥
स्वाध्यायचिंतनपरा खलु सावधाना। धर्मामृतं पिबति पाययतीह भव्यान्।
त्वामार्यिकां प्रणिपतामि सदैव मूर्ध्ना॥ त्वामार्यिकां प्रणिपतामि सदैव मूर्ध्ना॥

ख्याता द्वयोरपि किलार्यिकयोः प्रसूस्त्वं।
त्वं सर्वलोकमहिता श्रमणी प्रसिद्धा॥
ते "माधुरी" गुणगणानपि संस्तुवेऽहम्।
त्वामार्यिकां प्रथित रत्नमतीं नमामि॥

श्रीरत्नमतीमातुः जीवनवृत्तम्

विद्यावाचस्पति कु० माधुरी शास्त्री, हस्तिनापुर

भरतेऽस्मिन्नार्यावर्ते, मध्येऽयोध्यापुरी व्यभात्।
तत्प्रान्ते शोभते देशो, रम्यः सीतापुराह्वयः॥ १॥

तत्र महमूदाबादे, नगरे धर्ममण्डिते।
श्रेष्ठी सुखपालनामा तत्पत्नी फूलमती मता॥ २॥

तयोः स्यात् मोहिनी पुत्री, धर्मध्यानपरायणा।
विद्याविनयसंपत्त्याऽलंकृता गुणभूषिता॥ ३॥

श्रेष्ठी धन्यकुमारोऽभूत् टिकैतनगराभिधे।
छोटेलालश्च तत्पुत्रो सत्संस्कारैः सुसंस्कृतः॥ ४॥

मोहिनी तस्य भार्याभूत्, शीलसम्यक्त्वमण्डिता।
स्वाध्यायजाप्यसंसक्ता, दानपूजादितत्परा॥ ५॥

त्रयोदशसंतानाः स्युस्तयोस्ते रत्नसदृशाः।
पिता रत्नाकरोऽतः स्यात् माता रत्नवती च वै॥ ६॥

ज्ञानमत्यार्यिकायाः यार्ज्यभयमत्याश्च या प्रसूः।
स्वयं रत्नत्रयं धृत्वा श्रमणीपदमाश्रिता ॥ ७ ॥

धर्मसागरसूरीणां शिष्या संयतिकाभवत्।
रत्नमत्यार्यिका ख्याता, त्वां वंदे मातरं मुदा ॥ ८ ॥

महाव्रतपवित्रांगा, पंचसमितिसंयुता।
पंचेन्द्रियवशीकर्त्री, षडावश्यक्रियान्विता ॥ ९ ॥

लोचादिसप्तभिस्ते स्युश्चाष्टाविंशतिसंमिताः।
मूलगुणपालने सक्ता, शक्ता कर्मनिमूलने ॥ १० ॥

शांता दान्ता क्षमाशीला, कषायारिशमीकृता।
विषया दुर्जयास्त्यक्तास्त्वया स्वात्मैकचिंतया ॥ ११ ॥

धर्मध्यानपरा नित्यं, स्वाध्यायनिरता च या।
रत्नमत्यार्यिका सेयं, रत्नत्रितयमण्डिता ॥ १२ ॥

मिथ्यात्वमोहशत्रूणां जये तत्परता सदा।
दधाना व्रतशीलादीन् त्वां वंदे मातरं मुदा ॥ १३ ॥

जंबूद्वीपरचनाया निर्माणे सहयोगिनी।
हस्तिनापुरतीर्थेऽस्मिन् स्वात्मतत्त्वमचिंतयत् ॥ १४ ॥

धर्मप्रभावनाकार्यमधुना सर्वतोमुखं।
देशे देशेऽद्भुतं स्यात् तज्ज्ञानज्योतिःप्रवर्तनात् ॥ १५ ॥

दर्शं दर्शं प्रहृष्यन्ती विद्यापीठस्य बालकान्।
सूक्तिसुधां च वर्षन्ती, भव्यानां हितकांक्षिणी ॥ १६ ॥

सत्साहित्यं समालोक्य सम्यग्ज्ञानाख्यपत्रिकां।
मुहुर्मुहुः प्रशंसन्ती ज्ञानमत्यार्यिकाश्रमम् ॥ १७ ॥

आबाल्यात् शस्त्रास्वाध्यायात्, धर्मामृतमग्रहीत्।
संप्रति सत्समाधिं चाकांक्षन्ती स्वात्मसिद्धये ॥ १८ ॥

हे रत्नमते ? जननि ! हे मातः यशस्विनि।
अंबिके ! भोः नमस्तुभ्यं, कृत्वा बद्धांजलिं मुदा ॥ १९ ॥

जगन्मान्या जगत्पूज्या, जगन्माता च विश्रुता।
तत्पदप्राप्तयेऽहं त्वां, प्रणमामि पुनः पुनः ॥ २० ॥

रत्नमत्यार्यिका माता, जीयात् वर्षशतं भुवि।
माधुरीबालिकायाश्च, पुण्यात् सर्वं मनोरथम् ॥ २१ ॥

आदर्शों को अपना लूँ

कु० मालती शास्त्री

इस जग में माँ की ममता हर किस्मत वालों को मिलती है।
माँ होकर भी ममता न मिले यह बात अजब सी लगती है॥
बस इसी कहानी का चित्रण यह ग्रन्थ रूप बन जाता है।
जहँ नहीं 'मालती' ममता का, केवल समना ही नाता है॥१॥

अपने-अपने बच्चों की माँ हर घर-घर में दिख जाती हैं।
पर घर में बच्चों को छोड़ा खुद बेघर बन हरषाती हैं॥
देखो तो! खुद के बच्चों का माँ कहने पे अधिकार नहीं।
जग की माता कहलाती हैं अपने बच्चों से प्यार नहीं॥२॥

दुनिया की हर बेटी अपनी माता को माता कहती है।
पर बेटी को माता कहकर माँ छोटी बनकर रहती है॥
ये ऐसी अद्‌भुत बातें हैं हर कोई समझ नही सकता।
मैं इनको कैसे लिख सकती ब्रह्मा भी परख नही सकता॥३॥

शब्दों को मैं कैसे रोकूँ, लिये खड़े हैं कर में माल।
"रत्नमती माँ" के चरणों में झुका रहे हैं अपना भाल॥
पुष्प 'मालती' के चुन लाई लेकिन सुन्दरता कितनी है।
नहीं जानती सौरभ कितनी (फिर भी) लिखती हूँ मेरी जननी है॥४॥

धन्य धरा उस अवध प्रान्त की जिस माटी से फूल खिला ये।
मात-पिता भी धन्य हो गये जिनको सुख सौभाग्य मिला ये॥
भारत माँ झुक गई चरण में मेरा माँ श्रृंगार आपसे।
इन गौरवशाली पृष्ठों का बढ़ता है सम्मान आपसे॥५॥

नाम 'मोहिनी' सुन्दर था और थीं भी तुम इसके अनुकूल।
लेकिन 'मैना' की दीक्षा से मन में थी भारी सी शूल॥
गृह बन्धन से कैसे मुक्ती मिले हमेशा रही सोचती।
घर में रहकर भी ऐसे थीं जैसे रहे सीप में मोती॥६॥

गृह बन्धन यद्यपि असार है फिर भी सार्थक हुआ आपसे।
'ज्ञानमती' सा रत्न मिला इस भूतल का वरदान आपसे॥
बच्चों को ऐसी शिक्षा दी रुच न सके धन वैभव में भी।
सबने कदम बढ़ाना चाहा त्याग मार्ग पर शैशव में ही॥७॥

दान-मान सम्मान बाँटने की अद्‌भुत थी तुममें क्षमता।
हर गरीब की आवश्यकता पर सदा लुटाई तुमने ममता॥
कहती थी ये फर्ज हमारा हम क्या कर सकते हैं दान।
मिल कर रहें बाँट कर खायें जीवन का यह लक्ष्य महान॥८॥

दिया हुआ कुछ कितने दिन तक कर सकता किसको आबाद।
लेकिन रह जाती हैं यादें और गरीबों की फरियाद॥
इससे ऊँचा उठता मानव मिट जाता है दुख संताप।
मुट्ठी भर दोगे पहाड़ सम मिल जाता है अपने आप॥९॥

घर में रहकर भी चतुराई और धर्म का जो आलम।
मिल पायेगा मुश्किल से ही सुन्दरता का वो कालम॥
श्रद्धा ज्ञान विवेक त्रिवेणी के संगम की मूरत थीं।
शुद्ध आचरण की शिक्षा की सबसे बड़ी जरूरत थीं॥१०॥

जीवन को आदर्श बनाने की पहली आधार शिला।
'खानदान शुद्धी' मिल जाये जो की अपने आप मिला॥
दूजी थोड़ा कष्ट साध्य है खानपान से शुद्धी हो।
जिसके घर में यह मिल जाये समझो अच्छी बुद्धी हो॥११॥

मेरा जीवन उच्च बना तो इसमें मेरा क्या श्रम है।
माँ के संस्कारों की पट्टी सही दिशा ही मरहम है॥
इससे लिपटा मेरा तन-मन इसीलिये श्रद्धा की भाजन।
जिसके बच्चे गौरवशाली माँ ही उसका होती कारन॥१२॥

चाह जहाँ है राह वहाँ पर ऐसा सुनती थी मैं अब तक।
दीक्षा के दिन देख रही मैं रोक रहे घर वाले जब सब॥
आखिर जीत हुई विराग की "धर्मसिंधु" का वो दरबार।
"रत्नमतीजी" नाम रख दिया छुटा मोहिनी का संसार॥१३॥

ममता की तुम मूरत थीं और थी शरीर से बिल्कुल नाजुक।
लिया आर्यिका का दुर्द्धर व्रत जग वाले सब करते ताज्जुब॥
शान्ति साधना की साधक बन समता की जो सीख सिखाई।
धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष की सही दिशा तुमने अपनाई॥१४॥

दुनियाँ की हर शक्ती माँ तेरे चरणों में नतमस्तक है।
ऐसी माता मिले 'मालती' मुक्ति नहीं मिलती जब तक है॥
इस भव की सुख शांती मे ही जिनका केवल ध्यान नही है।
परभव में क्या संग जायेगा सिखा रही पहचान रही हैं॥१५॥

शब्द 'मालती' की यह माला चरणों में अर्पण करती हूँ।
हमको भी यह शक्ती दो माँ बार-बार बंदन करती हूँ॥
जिस पथ पर हैं कदम आपके मैं भी उस पर कदम बढ़ा लूँ।
जीवन यह पाया तुमसे है आदर्शों को भी अपना लूँ॥१६॥



रत्नमती माताजी तुमने दिये देश को रत्न महान

श्री अनूपचन्द न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, जयपुर

[१]

ज्ञानमती माता की माता !
रत्नमती माता गुणवान
वंदनीय ! अभिनंदनीय ! तुम
नर नारी रत्नों की खान ॥

[२]

तुमने ऐसे रत्न दिये हैं
प्रतिभाशाली गुणी ललाम।
सरल सहज सहृदयी भावुक
विज्ञ विवेकी सकृद्धाम ॥

[३]

भारतीय संस्कृति का जिनसे
गौरवपूर्ण बना इतिहास।
जैन वाङ्मय सेवा व्रत ले
छोड़ गृहस्थी हुए उदास ॥

[४]

श्री सुखलाल सेठ के घर में
जन्म लिया महमूदाबाद।
छोटेलाल सेठ के घर को
किया मोहिनी बन आबाद ॥

[५]

एक ऊन चौदह रत्नों को
देकर जन्म, गृहस्थी भार।
छोड़ा तुमने समक्ष मोहिनी
सब कुछ नश्वर और असार ॥

[६]

चार पुत्र कैलाशचन्द औ
नाम प्रकाश सुभाष रवीन्द्र।
पुत्री मैना शांति श्रीमती
मनोवती त्रिशला सुख वृन्द ॥

[७]

बहिन मालती और माधुरी
ब्रह्मचारिणी हैं विख्यात।
कामिनि और कुमोदिनि दोनों
शिक्षा में पूरी निष्णात ॥

[८]

मनोवती औ मैना दोनों
बनी आर्यिका उच्च महान्।
अभयमती औ ज्ञानमती का
नाम पुज रहा ससम्मान ॥

[९]

दोनों ने अपने जीवन में
किया धर्म अध्ययन अपार।
आगम औ सिद्धान्त ग्रंथ का
पाठन पठन किया विस्तार ॥

[१०]

चिंतन यही निरन्तर रहता
कैसे हो सबका उत्थान।
बढ़े परस्पर प्रेम विश्व में
प्राणिमात्र का हो कल्याण ॥

[११]
जन्मदात्री ज्ञानमती है
जैन त्रिलोक शोध संस्थान।
ज्ञान ज्योति का चक्र चलाकर
फैलाया चहुं दिशि में ज्ञान॥

[१२]
कर अनुवाद न्याय ग्रन्थों का
सुलभ अध्ययन किया अपार।
कर नूतन साहित्य प्रकाशन
जैन धर्म का किया प्रचार॥

[१३]
बढ़ा रही है अभयमती भी
जिनवाणी माँ का भण्डार।
बहिन मालती और माधुरी
भाई ब्र० रवीन्द्र कुमार॥

[१४]
स्वर्गारोहण हुआ पिता का
माता मोहिनी हुई अधीर।
सोचा कैसे मेट सकूंगी
मैं अपनी भव-भव की पीर॥

[१५]
सब कुटुम्ब परिवार हमारा
चला गया जिस पथ की ओर।
मैं भी जाऊँ उसी मार्ग पर
कितना भी दुःख पाऊँ घोर॥

[१६]
आत्म चिंतवन करते-करते
मोहिनि घर से हुई उदास।
दीक्षा ले हो गई रत्नमति
धर्म-सिंधु मुनि चरणों पास॥

[१७]
रत्नमती माता का ये ही
एकमात्र ऐसा परिवार।
जिसमें त्यागी व्रती संयमी
साधु-साध्वी सभी प्रकार॥

[१८]
धन्य-धन्य है ऐसी माता
व्रती त्यागियों की जो खान।
रत्नमती माताजी तुमने
दिये देश को रत्न महान्॥



एक रत्नमती जन्म यहाँ लेती है

श्री निर्मल आजाद, जबलपुर

धरा पर जब ग्रीष्म तपन बढ़ती है
स्वार्थी लू मानव को झुलसाने लगती है
तब धरा पर ज्ञान, शान्ती बरसाने
एक रत्नमती जन्म यहाँ लेती है।

सारे देश को जिसने "ज्ञान" रश्मि भेंट दी
"अभय" रहो संयम करो, दीक्षा ज्योति दी
"मधुर" स्वप्न भूलो, त्याग मार्ग ध्यायो रे
वीर प्रसवनी "रत्नमती" की आरती उतारो रे

ऐसे पावन चरणों में "आजाद" हो के नमन करो
चंदना व चेलना सी, दिव्य ज्योति को प्रणामों
बसुन्धरा से मोक्ष मार्ग की, त्यागमयी विभूति को
आज, "निर्मल" मन से, मेरे बंधु जय-जय तो बोलो।



हम सदा इन्हें वंदन करते

श्री रवीन्द्रकुमार जैन
मंत्री, श्री दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर

सत् नारी का बलिदान कभी
इस युग में व्यर्थ नहीं जाता।
इनके बलिदानों के बल पर
हर देश नया गौरव पाता ॥

क्या धर्मनीति क्या राजनीति
हर जगह सुखों की समता है।
भारत माता के साये में
सबको ही मिलती ममता है॥

हर माँ का आँचल ममता के
कोमल फूलों से भरा हुआ।
हर घर का आँगन संस्कारों के
कुन्द पुष्प से सजा हुआ।

इस देश की पावन धरती को
तुम जैसी माँ ने धन्य किया।
अपने फूलों की खुशबू से
तुमने निज को सौगन्ध किया॥

स्वर्णिम सुरभि ने मोहिनी के
अविनश्वर सुख को प्रगट किया।
है आज देश का भी मस्तक
इनके चरणो में झुका हुआ॥

अभिनन्दन के सीमित शब्दों से
माँ का कीर्तन क्या कर सकते।
बस इन्हीं प्रसूनाजलियों से
हम सदा इन्हे वंदन करते॥



विनयाञ्जलि

श्री प्रवीणचन्द्र शास्त्री, एम० ए०, हस्तिनापुर

वंदन है शत वार उन्हीं का, रत्नों की जो खान हैं।
रत्नों जैसी गुण वाली हैं, स्वयं श्रेष्ठ महान् हैं ॥
युगपत् तीन रत्न भूषिका, आर्यिका विद्वान् हैं।
रत्नमती शुभ नाम जिन्हों का, देती जो कल्याण हैं ॥
वंदन........॥ १ ॥

नर रत्नों को जन्म देकर, नारी जन्म कृतार्थ किया।
मोक्ष मार्ग की अलख जगाई, अपना नाम यथार्थ किया ॥
दिगदिगंत में छाई गरिमा, जिनकी अपूरव शान है।
रत्नमती शुभ नाम जिन्हों का, देती जो कल्याण हैं ॥
वंदन........॥ २ ॥

जिनकी उज्जवल कीर्ति पताका, माँ ज्ञानमती के ज्ञान से।
अभयदान की भेरी बजती, अभयमती माँ दान से ॥
दोनों का कोई ना सानी, आर्यिकारत्न महान् हैं।
रत्नमती शुभ नाम जिन्हों का, देती जो कल्याण हैं ॥
वंदन.... ...॥ ३ ॥

इनकी पावन पद रज छू कर, जीवन सभी कृतार्थ करें।
मोक्ष मार्ग के पथिक बनकर नर जीवन को सार्थ करें ॥
जीवन की है तभी सफलता आन बान और शान है।
रत्नमती शुभ नाम जिन्हों का, देती जो कल्याण हैं ॥
वंदन........॥ ४ ॥

अभिनन्दन के परम पर्व पर अभिनन्दन हम करते हैं।
युग युग जी सतपथ दर्शायें, यही भावना भरते हैं ॥
जिनके चरणों में सीखा है, धर्म अध्ययन अरु ज्ञान है।
रत्नमती शुभ नाम जिन्हों का, देती जो कल्याण हैं ॥
वंदन........॥ ५ ॥

गीत

डॉ० शोभनाथ पाठक, भोपाल

रत्नमती माता महिमा, हम गाते नही अघाते हैं।
अभिनंदन, अभिभूत भाव से, स्नेहिल सुमन चढ़ाते हैं॥

पाँचों व्रत की वरीयता में,
निखर उठी महिमा न्यारी।
जिनके तपमय श्रेष्ठ सुमन से
गमक उठी युग, फुलवारी।
ऐसे चरणो में अभिनंदन,
का, यह पुष्प चढ़ाते हैं।
रत्नमती माता महिमा,
हम गाते नही अघाते हैं॥

प्रवचन की है पराकाष्ठा,
समवशरण साकार हुआ।
श्रमणी जी के सत्कृत्यों से,
जन जन का कल्याण हुआ।
जिनके सद्उपदेश श्रवण कर,
आकुल हृदय जुड़ाते हैं।
रत्नमती माता महिमा,
हम गाते नहीं अघाते हैं॥

वीर प्रभु के आदर्शो को,
जिसने जन तक पहुँचाया।
सती चन्दना के चरित्र को,
नित जीवन में अपनाया।
ऐसी महिमामयी महत्ता–,
पर, हम शीश झुकाते हैं।
रत्नमती माता महिमा,
हम गाते नही अघाते हैं॥

परमपूज्य माता महान हैं,
माता का उपमान नहीं।
अभिनंदन की उत्तमता में,
कोई सहज बखान नही।
सूरज को दीपक दिखलाने,
की, हम रस्म निभाते हैं।
रत्नमती माता महिमा,
हम गाते नहीं अघाते हैं॥

यह अभिनंदन ग्रन्थ समर्पित,
इसे आप स्वीकार करें।
सहज - मानवी भव्य भाव से-
जन-जन का उपकार करें।
श्रावक और श्राविकाओं के,
स्नेहिल सुमन चढ़ाते हैं।
रत्नमती माता महिमा,
हम, गाते नही अघाते हैं॥



मेरे स्वप्नों की मंजिल का नहीं किसी से नाता

श्री सुभाषचन्द जैन, टिकैतनगर

मेरे मन का मोह हृदय का गीत किसे है भाता।
मेरे स्वप्नों की मंजिल का नहीं किसी से नाता॥
मां की यादों के सागर में मैं नित विचरण करता।
हर प्यासी गागर अपने आंसू से भरता रहता॥
नहीं भूल पाता हूँ वह मधुरिम क्षण गीत सुनाता।
मेरे स्वप्नों की मंजिल का नही किसी से नाता॥
मैं अपने मुरझाये मन को कैसे हरा बनाऊँ।
सूनी बगिया में कोयल का गीत कहाँ से लाऊँ॥
मैं अपने आँगन को ही ममता से रीता पाता।
मेरे स्वप्नों की मंजिल का नहीं किसी से नाता॥
यही सोचकर कुछ मन को सन्तोष दिलाया करता।
होनी सो हो गई इसे ना टाल कोई भी सकता॥
गृह बंधन को तोड दिया बन गई जगत की माता।
मेरे स्वप्नों की मंजिल का नही किसी से नाता॥
एक नहीं सारा जग आकर झुकता तव चरणों में।
संयम की इस पदवी को है नमन किया इन्द्रों ने॥
मैं अपने श्रद्धा पुष्पों से नित नत करता माथा।
मेरे स्वप्नों की मंजिल का नही किसी से नाता॥



चरणों में मेरा शत वन्दन

पं० विजय कुमार शास्त्री, सरधना

ओ पूजनीय माताजी तव चरणों में मेरा शत वन्दन।
तुम त्यागमार्ग पर चली इसी से जग करता है अभिनन्दन॥

जग के सुख-वैभव छोड़ आपने त्याग मार्ग को अपनाया।
दुख बन्धन से मुख मोड़ आपने सच्चे सुख को अपनाया॥
हो शांति-सुधा मे मग्न निरन्तर समता-रस को पीती हो।
दुर्ध्यानों पर करके प्रहार शुभ धर्म-ध्यान नित धरती हो॥
इसलिए आपका पावन मन रहता जैसा शीतल चन्दन।
ओ पूजनीय माताजी तव चरणों में मेरा शत वन्दन॥
तुम त्यागमार्ग पर चलीं········

हे रत्नमती माता, तुम हो रत्नत्रय आभा से भासित।
तुम राग द्वेष से दूर अतः शम सम सुमनों से हो वासित॥
तुम आभा हो गुण गरिमा की ज्योत्स्ना सी हो जग की शीतल।
चारित्र मूर्ति हे माताजी तुमसे भूषित यह जगती तल॥
संयम रथ पर आरूढ़ सदा तुम करती नित निजात्म वन्दन।
ओ पूजनीय माताजी तव चरणों मे मेरा शत वन्दन॥
तुम त्यागमार्ग पर चलीं.......

ममता का वस्त्र उतार, आपने समता का बाना धारा।
परिग्रह की सारी पोट फेंक, त्यागी बन्धन दुख को कारा॥
सत्यान्वेषण रत रह करके चल रही अभय पथ पर अविरल।
कर्मों का इंधन जला रही, पी रही शान्ति समता का जल॥
हो आत्मतेज से अभिमण्डित बढ़ चलीं धर्म का ले स्यन्दन।
ओ पूजनीय माताजी तव चरणों मे मेरा शत वन्दन।
तुम त्यागमार्ग पर चली ·····

श्री ज्ञानमती माताजी सा तुमने जो धर्मालोक दिया।
श्री अभयमती माताजी से जग ने सुधर्म का पान किया॥
श्री मालति और माधुरी जी ब्राह्मी-सुन्दरि सी निरख रही।
संयम रथ पर चढ़ जाने से यश ज्योत्स्ना निर्मल बिखर रही॥
फिर क्यों न सुरभि देगा माता यह जिन शासन का जन-नंदन।
ओ पूजनीय माताजी तव चरणों में मेरा शत वन्दन॥
तुम त्यागमार्ग पर चलीं.......

माताजी तुम शत वर्ष जिओ यह धर्म ध्वजा नित फहराओ।
जिस पथ को तुमने पकड़ा है उसकी परिणति को पा जाओ॥
जग को प्रसाद मिल जाये यह संयम में श्रद्धा बढ़ जाये।
पा ज्ञान-अभय यह जग सारा हितमय सुपन्थ पर लग जाये॥
हे माता दो आशीष हमे - चमकायें आत्मा का कुन्दन।
ओ पूजनीय माताजी तव चरणों में मेरा शत वन्दन।
तुम त्यागमार्ग पर चलीं इसी से जग करता है अभिनन्दन॥



शीश हमेशा झुका रहे

श्रीमती त्रिशला शास्त्री, लखनऊ

नहीं लेखनी लिख सकती है जिनके जीवन की गुणगाथा।
इस युग में भी हो सकती है ऐसी धर्म परायण माता॥
है होता गर्व मुझे खुद पर जो ऐसी माँ से जन्म लिया।
सब पुत्र-पुत्रियों को हरदम जिनने सच्चा उपदेश दिया॥

वह याद दिवस अब भी मुझको जब घर संदेशा पहुँचा था।
माँ अब घर में ना आयेगी सुन घर का कण-कण रोया था॥
पर सोचा तभी भाइयों ने सब चलकर उन्हे मनायेंगे।
सामायिक पर जब बैठी हों हम उन्हें उठाकर लायेंगे॥

अजमेर नगर मे पहुँच सभी ने माँ के चरणों को पकड़ लिया।
इस तरह अनाथ बनाओ न कह-कहकर करुण विलाप किया॥
तब माँ बोली देखो बेटे यह तो शरीर का नाता है।
इस जग में सभी प्राणियों को यह मोहकर्म रुलवाता है॥

इसलिए मोह में मत बाँधो मुझको अब दीक्षा लेने दो।
अब बेटी के जीवन से कुछ मुझको भी शिक्षा लेने दो॥
अब तक इस मोह कर्म ने ही हमको घर में रोके रक्खा।
अब समझ गयी हूँ दुनियाँ के इन क्षणिक सुखों में क्या रक्खा॥

सबने फिर मौन सम्मति से माँ के चरणों में नमन किया।
उस पथ पर हम भी चलें कभी जिसका तुमने अनुकरण किया॥
हम सबको दो आशीर्वाद जिससे हमको यह शक्ति मिले।
जिस माँ की छाया थी अबतक उसकी ही छाया पुनः मिले॥

जो त्यागमार्ग की है देवी ऐसी माँ को शत-शत प्रणाम।
जो परमशात मुद्राधारी ऐसी माँ को शत-शत प्रणाम॥
जब तक है चन्द्र सूर्य जग मे जीवन की ज्योती जला करे।
"त्रिशला" का माँ के चरणों में यह शीश हमेशा झुका रहे॥

○

वंदन अभिनंदन है

श्री गोकुलचन्द्र "मधुर" हटा

जिनकी त्याग साधना से, पावन हो जाता मन है।
पूज्य आर्यिका रत्नमती को, वंदन अभिनन्दन है॥

पावन भारत वसुन्धरा का, है इतिहास गवाही।
जिसको मिटा न पाया कोई, ऐसी अमिट है स्याही॥
जिस नारी की शक्ती से, सुरपति भी हिल जाता है।
रत्नमती माता जी का, चारित्र ये बतलाता है॥
भौतिक सुख को ठोकर मारी, धन्य किया जीवन है।
पूज्य आर्यिका रत्नमती को, वंदन अभिनन्दन है॥

पिछी कमण्डल आभूषण, तप माथे का सिन्दूर है।
लीनी पहिन ज्ञान की चूनर, दर्प, मोह से दूर है॥
शिव भर्तार मिलन का केवल, लक्ष्य रहा बस शेष है।
सांसारिक सुख त्याग इसी से, धारण कीना भेष है॥
अडिग साधना से जिनकी, काया हो गई कंचन है।
पूज्य आर्यिका रत्नमती को, वंदन अभिनन्दन है॥

जिन्हें वासना के बंधन ने, किंचित् बाँध न पाया।
आत्म तपोबल से अपना, जीवन आदर्श बनाया॥
चंदनबाला, राजुल सा, इनमे संयम का पानी।
युग युग तक युग दुहरायेगा, इनकी विशद कहानी॥
लख संसार असार, सभी का, पहिचाना क्रंदन है।
पूज्य आर्यिका रत्नमती को, वंदन अभिनन्दन है॥

प्रान्त अवध का धन्य है जिस पर, माँ ने जनम लिया है।
जैनधर्म का ध्वज फहराकर, निज उत्थान किया है॥
इसी धरा की पुण्य धरोहर, सच्चरित्र हितकारी।
गौरवशाली, महा मनीषी, मृदुभाषी सुखकारी॥
हस्तिनागपुर की माटी ये, "मधुर" हुई चंदन है।
पूज्य आर्यिका रत्नमती को, वंदन अभिनन्दन है॥



कोटि-कोटि प्रणाम

श्री प्रेमचन्द जैन, महमूदाबाद

पादार्चना के मधुर स्वर में कोटि-कोटि प्रणाम।
क्रोध मान मद मोह न माया
निष्कषाय हो निर्मल काया
सौम्य सरलता की मूर्ति में प्रवाहित गंग अविराम।
पादार्चना के मधुर स्वर मे कोटि-कोटि प्रणाम॥
तोड़ जगत के सारे बन्धन
न भोगाभिलाषा का आकर्षण
संयम की दुर्गम यात्रा में लिया न कहीं विश्राम।
पादार्चना के मधुर स्वर में कोटि-कोटि प्रणाम॥
सैन्य ! राग की पराभूत है
वितृष्णा की विक्षत मूर्ति है
कर्मजयी बन दीप्तिपुंज में विस्तृत ज्योति ललाम।
पादार्चना के मधुर स्वर मे कोटि-कोटि प्रणाम॥
माँ मुझको भी सम्बल दो
सेवा का अवसर अविचल दो
स्व पर हित की भव्य भावना रहे सदा अभिराम।
पादार्चना के मधुर स्वर में कोटि-कोटि प्रणाम॥

आर्यिका श्री की प्रभावना

श्री सुरेश सरल

पोथी पढ़ तुम नीति सुनाते रहो जगत को
मुझे नीति की राहों पर चल लेने दो।
तुम चाहो तो देह अलंकारों से भर लो
मुझे आत्मा का श्रृंगार रचा लेने दो।
आँगन में नोटों के झाड़ उगाओ, चाहो,
मुझे आचरण की इक क्यारी गढ़ लेने दो।
इत्र फुलेल मलो तुम अपने मादक तन पर,
मुझे पसीने की बूँदों से तर होने दो।
तुम चाहो तो युग का वैभव करो संगृहीत
मुझे दिगम्बर की परिभाषा बन लेने दो।

साधना की सत्य श्रम हैं

श्री प्रदीपकुमार जैन, बहराइच

ज्योति जीवन की जलायें
भव्य स्वप्नों को सजायें
बैठ तप के स्वर्ण रथ पर
चल रहीं संघर्ष पथ पर
ये ज्वलित अन्तःकरण हैं
साधना की सत्य श्रम हैं।

भावनाओं का चिरन्तन
कर रही निर्माण चिन्तन
नहि इन्हें कुछ चाहना है
लक्ष्य अपना साधना है
शिवपथिक की युग चरण हैं
साधना की सत्य श्रम हैं।

यह धरा जिनका बिछौना
मृत्यु है इनका खिलौना
त्याग कर सर्वस्व अपना
चाहते हैं मुक्ति वरना
चेतना की भव्य क्रम हैं
साधना की सत्य श्रम हैं।



पू० माताजी के चरणों में

श्री सुरेन्द्रकुमार, हस्तिनापुर

रत्नों जैसे गुण वाली, मती है विशुद्धता में,
संयम से आर्यिका, रत्नमती नाम है।
रत्नत्रय की साधना में, कर्म विराधना में,
आत्मा में लीन होय, संयम सो काम है॥

आर्त रौद्र ध्यान तज, छोड़ दुष्ट भव मग,
शान्त के स्वभाव वाली, गुणन की धाम हैं।
ऐसी जग माता के, जगत की त्राता के,
पद पंकज को कोटिशः प्रणाम है॥



अभिनन्दन तुमको रत्नमती

श्रीधर मित्तल 'मनुज' टोंक

मानवता मूर्त स्वरूप लिये, सच्ची देवी, सच्ची माता।
वन्दन हे आर्यिका रत्नमती ! झुक जाता स्वयं तुम्हें माथा ॥

शुभ शीश मनोहर क्षमा शांति, शुभ नेत्र सरलता और विनय।
शुभ सत्य धर्म अनुपम आनन, शुचिता है आपका शुभ्र हृदय ॥

सद् वक्ष सुदर्शन संयम के, तप त्याग सबलतम युगल भुजा।
तन सुन्दर धर्म अकिंचन है, शीलाभूषण से सहज सजा ॥

समता जग का बन्धुत्वपना, शुचि धर्म अहिंसा परम धर्म।
जीवो जीने दो का जग में, है यही वास्तविक मात्र मर्म ॥

हिंसा मानव का कर्म नहीं, हिंसा देवों का धर्म नही।
बलि देना स्वार्थं कषायों की, मानव का सच्चा धर्म यही ॥

बलिदान पुत्र पुत्रियों का, दे दिया मोहनी हर्ष सहित।
हो गई स्वयं बलिदान आप, निज-पर कल्याण सुवेदी हित ॥

सच्चा बलिदान यही तो है, हिंसा बलि जिह्वा लम्पटता।
श्री ऋषभ वीर के सत पथ की, फैला दी रत्नमती स्वच्छ छटा ॥

सम्यक् रत्नत्रय अन्तर में, बाहर जिनलिंगी सद्दर्शन।
संवर, निर्जरा से कर्मों का, होता रहता है प्रक्षालन ॥

इस भव से स्त्रीलिंग छेद आप, अहमिन्द्र, देव पद भोगेंगी।
फिर धार मनुज भव अनुक्रम से, 'श्रीधर' भव पार स्वयं होगी ॥

अभिनन्दन तुमको रत्नमती, शत शत वन्दन है और नमन।
नर जीवन सार तपस्या है, कर रहे 'मनुज' सब अभिनन्दन ॥



वन्दना

श्री लालचन्द्र जैन 'अरुण', टिकैतनगर

पूज्य माँ रत्नामती के, शुभ चरण मे वन्दना है।
आत्मजा जिनकी सुमैना ज्ञान गरिमा त्यागनिधि है॥
आचार्यवर्य सुधर्मसागर, सघ की नेत्री सुविधि हैं।
भव्यजन जिनके अनेकों आज मंगल गीत गाते॥
दृष्टि करुणा की पड़ी, पथभ्रष्ट के भी काज सुधि है।
ज्ञानमति अज्ञान मेटें, करें धर्म प्रभावना हैं॥
पूज्य माँ·········॥ १ ॥

आश्चर्य मनोवती जो आज अभयामती बनी है।
सुता चौथी आपकी, चारित्र की अनुपम कनी है॥
प्राप्त थे जो भोग के साधन उन्हे ठोकर लगा दी।
जगत को देने अभय मानो चली तप की धनी हैं॥
अभयमति संकट निवारें भव्य जिनकी भावना है।
पूज्य माँ ·····॥ २ ॥

बाल ब्रह्मचारी कुमारी मालती संयमानुरागी।
सतत ज्ञानाभ्यास करती संघ मे मन मे विरागी॥
आपकी तनया दुलारी चल रही असिधार पर यह।
कर सकेगी लोक का कल्याण निश्चय राग त्यागी॥
धन्य यह मातृत्व बहती शुचि त्रिवेणी पावना है।
पूज्य ·· · ॥ ३ ॥

थे सुने अब तक पुराणों में अनेक प्रसंग ऐसे।
एक को वैराग्य घर भर बने त्यागी पूर्व जैसे॥
ले रहा इतिहास करवट, काल चौथा लौट आया।
आपने बन आर्यिका दिखला दिया है दृश्य वैसे॥
धन्य हम, यह नगर मेरा, आपकी पद अर्चना है।
पूज्य········॥ ४ ॥

आप अपनी नाव को भवदधि किनारे ले चली हैं।
मोक्ष नगरी पहुँचने चारित्र रथ पर जा चढ़ी है॥
आपकी छाया तले अब तक बिताया समय हमने।
आज वह अब दूर हमसे व्यथा यह उर मे बड़ी है॥
दो वरद हस्तावलम्बन 'अरुण' की नित प्रार्थना है।
पूज्य········॥ ५ ॥

भाव पुष्प से अभिवंदन

पं० बाबूलाल जैन शास्त्री, महमूदाबाद

धरिणी हो तुम धैर्य की, विशालता में हो गगन।
तप्त तृष्णा के लिये सुखदायिनी शीतल पवन॥
उच्चता की कोटि में अडिग हो हिम शृंग बन।
इसलिए हे! मातृ श्री नत नत नमन शत शत नमन॥

तमिस्र की विध्वंसनी, सूर्य की अजस्र किरण।
भव्य भावन भूमि की सरस सावन सजल घन॥
कल्पतरु वरदायिनी चिंतामणि हो रतन।
इसलिये हे! मातृ श्री नत नत नमन शत शत नमन॥

अटल तप की साधना हो, स्वरस में हो चिरमगन।
कलुष की संहारिनी, धर्म की नूतन सृजन॥
काम की हो सुभट जेता, मानरिपु का कर दमन।
इसलिये हे! मातृ श्री नत नत नमन शत शत नमन॥

वासना की काल हो, कषाय काली का हनन।
शौर्य का प्रतिरूप हो तुम, मुक्ति के सम्बल चरण॥
गांभीर्य हो अथाह हो, ज्ञान वारिधि हो गहन।
इसलिये हे! मातृ श्री नत नत नमन शत शत नमन॥

सम्यक्त्व की रत्नप्रभा, मिथ्यात्व तम का कर शमन।
यम नियम, संयम शिरोमणी, शांति समता के नयन॥
भोग की लिप्सा न किंचित, इन्द्रियों का वशीकरण।
इसलिये हे! मातृ श्री नत नत नमन शत शत नमन॥

व्रत समिति गुप्ति निधि, कायोत्सर्ग व प्रतिक्रमण।
साम्य सामायिक ध्यानध्याता ध्येय की सुरभित सुमन॥
पठन पाठन मनन चिन्तन निजात्म में हो चिर रमन।
इसलिये हे! मातृ श्री नत नत नमन शत शत नमन॥

रत्नत्रयी साकारता, पर विरागता की ले शरण।
आराधना की दिव्य प्रतिमा, कैसे करूँ मैं स्तवन॥
याचक हूँ शुभाशीष का, सुभाव पुष्प से अभिवंदन।
इसलिये हे! मातृ श्री नत नत नमन शत शत नमन॥



धन्य धन्य हे रत्नमती तव——चरणन कोटि प्रणाम हैं,

श्री विमल कुमार जैन सोंरया शास्त्री, टीकमगढ़

जिनके यश गौरव से गौरवान्वित यह विश्व ललाम है।
धन्य धन्य हे रत्नमती तव चरणन कोटि प्रणाम है॥

मानतुंग ने करी बन्दना तुम जैसी सतनारी की,
धन्य धरा की पूज्य मातु करना बन्दन भवतारी की।
पुत्री एक कोटि पुत्रों मे सौ सौ कोटि कदम आगे,
निज के आत्म प्रबल पौरुष से कर्म मोह भट हैं भागे।
ज्ञानमती सम बेटी से उठ गया तुम्हारा नाम है,
धन्य धन्य हे रत्नमती तव चरणन कोटि प्रणाम है।

ज्ञान विपुल तप अतुल आचरण की समता जो कर न सके,
संयम की साधक छैनी से आत्म सिद्धि को साध सके।
नभ के कोटि कोटि तारों में एक चन्द्रमा की शोभा,
अतः कोटि नारी मे तुम सी मात धरातल की आभा।
संयम की साधक माता युग युग का तुम्हें प्रणाम है,
धन्य धन्य हे रत्नमती तव चरणन कोटि प्रणाम है।

क्या आदर्श तुम्हारे जीवन का गाथाओं में गाऊँ,
पुण्य पुरुष के पुन्य पुराणों मे चरित्र लिख हर्षाऊँ।
युग का वह इतिहास आज कलिकाल समय में आया है,
माँ तुमने सद्‌पुत्र पुत्रियों को सयम पर पहुँचाया है।
जिनके यश गौरव से गौरवान्वित यह विश्व ललाम है,
धन्य धन्य हे रत्नमती तव चरणन कोटि प्रणाम है।

कुल की गौरव युग की गौरव धरती की गौरव माता,
जिनवाणी की सहोदरा तुम तो जगती तल की साता।
जब तक नभ मे दिनकर चमके लहराए भूपर सागर,
संयम साधित गौरव की नित भरी रहे जीवन गागर।
जन जन तारक जग हित कारक युग का तुम्हे प्रणाम है,
धन्य धन्य हे रत्नमती तव चरणन कोटि प्रणाम है।



माँ के मंगल आदर्शों का किंचित् दर्श कराते हैं

विद्यावाचस्पति कु० माधुरी शास्त्री, हस्तिनापुर

रत्नमती माताजी को हम नितप्रति शीश झुकाते हैं।
उनके मंगल आदर्शों का किंचित् दर्श कराते हैं॥

नारी शील कहा जग मे,
आभूषण अवनी तल में।
सर्व गुणों की छाया है,
कैसी अनुपम माया है।

यहीं वृषभ तीर्थंकर ने,
आदिब्रह्म शिवशंकर ने।
शान्ति मार्ग को बतलाया,
जग में जीना सिखलाया।

इसीलिए इस नारी ने,
तीर्थंकर से पुत्र जने।
भारत जिससे धन्य हुआ,
सर्वकला सम्पन्न हुआ।

यहीं है सीतापुर नगरी,
जहाँ महमूदाबाद पुरी।
वहीं मोहिनी जन्म लिया,
जीवन जिनका धन्य हुआ।

भक्ति सुमन का हार लिये हम माँ के चरण चढाते है।
उनके आदर्शों को पालें यही भावना भाते हैं॥१॥

मोहिनि से इक निधी मिली,
संस्कारों की विधि फली।
मैना का जब जन्म हुआ
इक अपूर्व आनन्द हुआ।

सरस्वती अवतार हुआ,
चकित आज संसार हुआ।
जिनकी ज्ञान कलाओं से,
भाव भरी प्रतिभाओं से।

मैना पिंजड़े से उड़कर,
गृह बन्धन में ना पड़कर।
आई इस भूमण्डल पर,
ज्ञानमती माता बनकर।

वर्णन हम क्या कर सकते
जग को नहिं बतला सकते।
उन अनन्य उपकारों को
सम्यग्ज्ञान विचारों को।

भक्ति सुमन का हार लिए हम माँ के चरण चढ़ाते हैं।
उनके आदर्शों को पालें यही भावना भाते हैं॥२॥

जो कुछ भी है तेरा है,
माँ का ही सब घेरा है।
माँ के संस्कारों की दुनियाँ,
जिनका साँझ सबेरा है।

मानो सुधा बिन्दु झरतीं,
स्याद्वाद वाणी खिरती।
ज्ञानमती का ज्ञान विमल,
शुद्धातमा श्रद्धान अमल।

उनमें ही अवतीर्ण हुआ,
एक चाँद विस्तीर्ण हुआ।
शीतल चन्द्र रश्मियों से,
अमृतमयी झरिणियों से।

तुमने उन्हें प्रदान किया,
निज का भी उत्थान किया।
रत्नत्रय को प्राप्त किया,
आत्म तत्त्व श्रद्धान किया।

भक्ति सुमन का हार लिए हम माँ के चरण चढ़ाते हैं।
उनके आदर्शों को पालें यही भावना भाते हैं ॥३॥

एक प्रकाश और आया,
झिलमिल ज्योति जला लाया।
उसका एक नजारा है,
जन जन का वह प्यारा है।

ज्ञानमती से ज्ञान लिया,
अनेकान्त का सार लिया।
आत्मा का उद्धार किया,
अभयमती पद प्राप्त किया।

मनोवती इक कन्या ने,
ज्ञानमती पथ कदम चुने।
उनकी भी कुछ गाथा है,
अमर विराग सुनाता है।

ज्ञान किरण प्रतिभा द्वारा,
बहा काव्य रस की धारा।
मानवता को जगा रहीं,
अंधकार को भगा रहीं।

भक्ति सुमन का हार लिए हम माँ के चरण चढ़ाते हैं।
उनके आदर्शों को पालें यही भावना भाते हैं ॥४॥

माता हो तो ऐसी हो,
जीवन परम हितैषी हो।
मोक्षमार्ग मे साधक हो,
मिथ्यातम में बाधक हो।

पर क्या कोई कर सकता,
आत्मनिधि को भर सकता।
निधी 'माधुरी' आत्मा में,
प्रगट किया परमात्मा ने।

जाने कितनी मातायें,
सन्तानों की गाथायें।
केवल ममता भरी कथा,
छिपी हृदय में मोह व्यथा।

जैनधर्म महिमाशाली,
ग्रहण करे प्रतिभाशाली।
सुखद शान्ति का दाता है,
परमातम प्रगटाता है।

भक्ति सुमन का हार लिए हम माँ के चरण चढाते हैं।
उनके आदर्शों को पालें यही भावना भाते हैं ॥५॥



वात्सल्य मूर्ति की महाविभूति—रत्नमती माँ महान है

पं० बाबूलाल 'फणीश' शास्त्री, ऊन

[१]

उत्तर प्रदेश महमूदाबाद में, अनुपम प्रतिभा चमकी।
श्रेष्ठवर्य सुखपाल पिता की, उन्नीस सौ चौदह में दमकी॥
'मोहनी' नाम से जन-जन में, सब को मोहित कर पाया।
धार्मिक सुसंस्कार मय जीवन, बाल्यपने से पाया॥
टिकैतनगर में "श्री छोटेलाल" सह, गृहस्थ धर्म सुख धाम है।
नारी रत्नों में जिनका है, अब रत्नमती महान है॥

[२]

श्रावक धर्म षट्कर्मों से नित माँ ने जीवन पाया।
सन् उन्नीस सौ चौंतीस में जब, पुलकित गृहनन्दन महकाया॥
विश्व विभूति "मैना" तनया पाकर, सद्ज्ञानमती माँ प्रगटाया।
श्री कैलाश प्रकाश सुभाष रवीन्द्र से गृह उपवन खिल आया॥
श्री कुमोदनी मालती कामिनी शांति, श्रीमती का जीवन महान है।
दिव्य अलौकि रत्नमती जी, वात्सल्यमूर्ति गुणवान है॥

[३]

श्रीमती और मधुरी त्रिशला ने उज्ज्वल जीवन पाया।
धन्य-धन्य यह टिकैतनगर भी, जिसने गौरव स्वयं बढ़ाया॥
प्रशममूर्ति श्री ज्ञानमती ने, ज्ञान दीप की ज्योति जलाई।
मनोवती से अभयमती बन, अभय ज्योति प्रगटाई॥
नगर हस्तिनापुर चमका, "जम्बूद्वीप" रच प्रधान है।
शान्ति सुधा रस जीवन में नित धरती रत्नमती महान है॥

[४]

श्री रवीन्द्र कुमार, मालती, माधुरी, ब्रह्मचर्य से रहते हैं।
जैनधर्म की ध्वजा उड़ाकर कर में लेकर चलते हैं॥
आत्मोन्नति रत हो करके, त्रिलोक शोध संस्थान में लीन हैं।
श्री मोतीचंदजी कर्मठता से, जाज्वल्यमान बन लवलीन हैं॥
समयसारमय जिनवाणी को देती, आर्यिका ज्ञानमती प्रधान है।
परम विदूषी ज्ञानमती को, शत-शत वार प्रणाम है॥

[५]

यों तो इस धरती पर सागर में, 'मोती' रत्न पाये जाते हैं।
कुछ सीपों में कुछ गजमुक्ताओं में मिल जाते हैं॥
पर नारी रत्नों में विरली ही "रत्नमती" माँ कहलाती हैं।
सीता चंदना अंजना सम बन वे जग में नाम कमाती है॥
अट्ठाईस मूल गुणों को धारण करती निशि दिन आठो याम है।
सौम्यमूर्ति श्री रत्नमती का अभिनन्दन कर हर्ष महान है॥

[६]

माँ स्व पर उपकारी बनकर जन-जन का उपकार किया है।
ज्ञानमती और अभयमती को जीवन दान दिया है॥
ये दोनों जन-जन की माता, शिव पथ को बतलाती हैं।
ज्ञान दीप की ज्योति जलाकर, मानव को राह दिखाती हैं॥
वीतराग पथ पर नित चलतीं, शिव पुर का जलयान है।
गौरवमय माँ रत्नमती की सेवायें आज महान हैं॥

[७]

तप संयममय जीवन ही मानव को पार लगाता है।
रत्नत्रय की पावन गंगा भव से पार तिराता है॥
बिन संयम के मानव व्यर्थ ही, यों ही जीवन गमाता है।
चतुरगति चौरासी में पड़ दर-दर ठोकर खाता है॥
स्याद्वाद से ही मानव का निज पर का उत्थान है।
नारी जीवन सार्थक करने रत्नमती आर्यिका महान हैं॥

[८]

जब तक नभ में चन्दा सूरज तब तक जीवन पाओ।
जब तक गंगा यमुना जल है शांति सुधा बर्षाओ॥
श्री शान्ति कुन्थु अरह प्रभू का जीवन पाठ पढ़ाओ।
अनुपम नगर हस्तिनापुर को पावन आप बनाओ॥
श्री "रत्नमती" और "ज्ञानमती" को नत "फणीश" ललाम है।
धर्म देशना देती निश दिन "ज्ञानमती" आर्यिका महान है॥



पूज्यार्यिका–'रत्नमती'–प्रशस्तिः

पूज्यार्यिकां रत्नमतीं नमामि

डॉ० दामोदर शास्त्री, देहली

१. बाराबंकी-जनपदे, टिकैतनगराह्वयः ।
सद्धार्मिकाणामावासः, ग्रामो भुवि विराजते ॥ (अनुष्टुप्)

२. श्रीमान् श्रेष्ठिवरस्तत्र, छोटेलाल सुधार्मिकः ।
सुखपालांगजां श्रेष्ठां मोहिनीं परिणीतवान् ॥ (अनुष्टुप्)

३. गृहस्थधर्मं जिनशासनोक्तं
सा 'मोहिनी' सन्ततमाचरन्ती ।
मैनेतिनाम्नीं सुभगां सुकन्याम्,
प्रसूतवत्याभिजन – प्रशस्ताम् ॥ (उपजाति)

४. शरत्पूर्णिमायां प्रजाता वरेण्या,
शरच्चन्द्रिकावत् श्रिया वर्द्धमाना ।
स्वबाल्यादियं स्वात्मकल्याणकामा,
प्रशस्तान् बिभर्ति स्म वैराग्यभावान् ॥ (भुजङ्गप्रयात)

५. गार्हस्थ्ये न रुचिस्तया प्रकटिता, संसार-वैराग्यतः,
आजन्म श्रयितुं मनोभिलषितं सद्ब्रह्मचर्यंव्रतम् ।
संकल्पे दृढतां समीक्ष्य सुकृती तस्या व्रताधारणे,
आचार्याग्रणि-देशभूषणमहाराजोऽप्यनुज्ञामदात् ॥ (शार्दूलविक्रीडित)

६. आचार्यरत्नचरणेषु च मासषट्कम्,
अस्या व्यतीतमनवद्यतयाऽऽदृतायाः ।
तुष्टस्तदा गुरुजनः, कृपया च तेषाम्,
सा क्षुल्लिका-शुभपदे विधिदीक्षिताऽभूत् ॥ (वसन्ततिलका)

७. चित्तं चलं निजकुटुम्बिजनाग्रहेण,
जातं कदापि न, मनोबलदार्ढ्यवत्याः ।
एतत्समीक्ष्य गुरुणा समलंकृतेयम्,
अन्वर्थकेन शुभ-'वीरमती'तिनाम्ना ॥ (वसन्ततिलका)

८. कालक्रमेण समवाप्य गुरोरनुज्ञाम्,
श्रीवीरसागरमुनीन्द्रगणाधिपस्य ।
पादारविन्द-युगले शरणं गतेयम्,
व्याञ्जीत्-शुभं सविनयं मनसोऽभिलाषम् ॥ (वसन्ततिलका)

हिन्दी अर्थ

१. इस पृथ्वी पर, बाराबंकी जिले (उत्तर प्रदेश) में 'टिकैतनगर' नाम का एक ग्राम है, जहाँ सज्जन और धार्मिक व्यक्ति निवास करते हैं।

२. यहाँ श्रीमान् सेठ छोटेलाल जी रहते थे जो एक अच्छे धार्मिक व्यक्ति थे। उनका विवाह सेठ सुखपाल जी की श्रेष्ठ कन्या 'मोहिनी' से हुआ था।

३. जैन शासन में गृहस्थ-धर्म का निरूपण किया गया है, उसी प्रकार वह 'मोहिनी' देवी सदा धर्माचरण में लगी रहती थी। इस मोहिनी देवी से एक भाग्यवान् उत्तम कन्या का जन्म हुआ। इस कन्या का नाम 'मैना' रखा गया और इसकी सभी कुटुम्बी जनों में प्रशंसा होती थी।

४. इस उत्तम कन्या का जन्म शरत्-पूर्णिमा को हुआ था। शारदीय चन्द्र की चाँदनी की तरह धीरे-धीरे उसकी कान्ति बढ़ती रही। बचपन से ही इसमें प्रशस्त वैराग्य भाव दिखाई पड़ने लगे, तथा आत्म-कल्याण की इच्छा जागृत होने लगी थी।

५ (बड़ी होने पर) संसार से विरक्ति प्रकट करते हुए इसने (विवाहादि) गृहस्थी के झंझटों में अपनी अरुचि प्रकट की। इसके मन में तो आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करने की अभिलाषा थी। आचार्यों में अग्रणी व श्रेष्ठ पूज्य श्री देशभूषण जी महाराज ने व्रत-धारण की इच्छुक इस 'मैना' के संकल्प की दृढ़ता की अच्छी तरह परीक्षा की, और इसके बाद आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत की आज्ञा दी।

६. यह 'मैना' आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज के चरणों में ६ मास तक रही। इस दौरान इसके जीवन-आचरण में कहीं भी दोष दिखाई नही पड़ा। इसने लोगों का आदर-भाव भी अर्जित किया। गुरुवर्य जब पूरी तरह सन्तुष्ट हो चुके, तब उन्होंने कृपा कर 'मैना' को 'क्षुल्लिका' की दीक्षा प्रदान की।

७. कुटुम्ब-परिवार के लोग बार-बार समझाते रहे, आग्रह करते रहे, किन्तु वीर बाला 'मैना' का मनोबल हमेशा दृढ़ रहा और उसका मन कभी विचलित नहीं हुआ—इसलिए आचार्य गुरुवर ने इसका 'वीरमती' (वीर्यवती) नाम रखा जो (इनके स्वभाव के कारण) सार्थक ही था।

८. समय बीतता गया। (इसके भावों को देखते हुए) आचार्यश्री ने क्षुल्लिका वीरमती जी को अपनी अनुज्ञा दे दी (कि वह आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के शरण में जाकर आर्यिका की दीक्षा लें)। तदनुसार पूज्य क्षुल्लिका वीरमती जी ने आचार्यश्री वीरसागर जी के चरणों की शरण में पहुँच कर अपने मन की इच्छा प्रकट की—

९. आचार्यवर्य ! भवदीयशुभानुकम्पाम्,
याचे, यतोऽभिलषितं मम साधितं स्यात् ।
श्रेष्ठार्यिकोचितमहाव्रत - पालनाय
मह्यं ददात्वनुमतिं भव-ताप-शान्त्यै ॥ (वसन्ततिलका)

१०. श्रुत्वा तदाचार्यवरेण तस्यै,
स्वाज्ञा प्रदत्ता विनयान्वितायै ।
तथा च शास्त्रोक्तविधेः सतोषम्,
प्रदत्तमस्यै पदमार्यिकायाः ॥ (उपजाति)

११. ततोऽद्य यावत् सकलार्यिकासु,
विज्ञान - चारित्रतपोभिरग्र्या ।
विराजते 'ज्ञानमती'तिनाम्ना,
समादरार्हा विदुषां समाजे ॥ (उपजाति)

१२. अध्यात्म-भूगोल - सुनीति-धर्म-
न्यायादिनानाविषयेष्वनेकान् ।
ग्रन्थान् विरच्य प्रथितास्ति लोके
संरक्षिका चार्ष-परम्परायाः ॥ (इन्द्रवज्रा)

१३. जम्बूद्वीपप्रतिकृतिमियं हस्तिनापुर्यदोषाम्,
शास्त्रप्रोक्तां परमसुभगां स्थापितुं दत्तचित्ता ।
ज्ञानज्योतिर्विचरणमभूत् ख्यापयत्तन्महत्त्वम्
एतत्सर्वं जनयति मुदं धार्मिकाणां समाजे ॥ (मन्दाक्रान्ता)

१४. विज्ञानं सकलानुयोगनिहितं यस्मिन् समाख्यायते,
सत्यान्वेषणकर्मणि प्रयतते दृष्ट्या च मध्यस्थया ।
हिन्द्यां मासिकपत्रमेकमनया संप्रेरितं राजते,
सम्यग्ज्ञानमितिप्रसिद्धमखिले लोके जनानां प्रियम् ॥
(शार्दूलविक्रीडित)

१५. सत्संयमज्ञानविशुद्धिरस्याः,
लोके प्रसिद्धाऽभवदार्यिकायाः ।
स्वमातृ-संस्कार-शुभप्रभावः,
तत्रास्ति मूलं, न हि संशयोऽत्र ॥ (उपजाति)

१६. वैराग्यभावाधिकमार्यिकायाः,
स्वकीयपुत्र्याः सकलं विलोक्य ।
श्रीमोहिनी-मातृवराऽप्यगृह्णात्,
शुभद्वितीयप्रतिमाव्रतानि ॥ (उपजाति)

९. हे आचार्यश्री ! आप मुझ पर अपनी शुभ अनुकम्पा करें ताकि मेरी अभिलाषा की पूर्ति हो सके। मैं संसार-ताप से शान्ति चाहती हूँ, इसलिए आर्यिकोचित (औपचारिक) महाव्रत के पालन की अनुज्ञा प्रदान करें।

१०. इस विनीत क्षुल्लिका जी की प्रार्थना सुन कर, आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज ने अपनी आज्ञा दे दी, और बड़ी प्रसन्नता से शास्त्रोक्त विधि से (दीक्षा दे कर) इन्हें 'आर्यिका' का पद प्रदान किया।

११. 'ज्ञानमती' नाम से प्रसिद्ध आर्यिका जी तब से आज तक वर्तमान सभी आर्यिकाओं में ज्ञान व संयमादि चारित्र के क्षेत्र में सदा आगे ही आगे बढ़ती रही हैं। इसके साथ-साथ विद्वानों के समाज मे भी अत्यधिक आदर प्राप्त करती रही हैं।

१२. अध्यात्म, भूगोल, नीति-सदाचार, धर्म, न्यायशास्त्र आदि अनेकों विषयों पर इन्होंने ग्रन्थों की रचना की है। आर्ष-परम्परा की संरक्षिका के रूप में संसार में ये प्रसिद्ध हो गई हैं।

१३. जैन शास्त्रों में 'जम्बूद्वीप' का स्वरूप जिस प्रकार बताया गया है, उसी प्रकार जम्बूद्वीप का निर्दोष माडल हस्तिनापुर मे बनकर तैयार हो—इसके लिए इसका ध्यान लगा रहा है। इसी कार्य की महत्ता को फैलाने हेतु 'जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति' का विचरण (प्रवर्तन) पूरे भारतवर्ष मे हुआ—इन सब कार्यों से धार्मिकों के समाज में प्रसन्नता की लहर दौड़ रही है।

१४. इनकी प्रेरणा से 'सम्यग्ज्ञान' नामक एक हिन्दी मासिक पत्र भी प्रकाशित हो रहा है, जिसमें चारों अनुयोगों में निहित ज्ञान की सामग्री रहा करती है, साथ ही तटस्थ दृष्टि से सत्य के उद्घाटन का यत्न रहा करता है। यह पत्र सारे भारतवर्ष मे लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध हो चुका है।

१५. पूज्य आर्यिका ज्ञानमतीजी के संयम व वैदूष्य की संसार मे प्रसिद्धि जो हुई है, उसके पीछे, निश्चय ही, अपनी माताजी (मोहिनी देवी, वर्तमान में पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी) के संस्कारों की छाप पड़ना (भी) एक कारण है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

१६. श्री मोहिनी देवी ने जब देखा कि मेरी पुत्री 'मैना' वैराग्य में बढ़ते-बढ़ते 'आर्यिका' पद तक पहुँच गई है, तो उसने भी (पारिवारिक सीमा के कारण) द्वितीय प्रतिमा का व्रत (ही) स्वीकार किया।

१७. मनोवती पुत्र्यपरापि तस्याः,
वैराग्यमार्गेऽभवदग्रगण्या ।
आश्चर्ययुक्तान्स्वजनानकार्षीत्,
सा ब्रह्मचर्यव्रतमाददाना ॥ (उपजाति)

१८. क्रमेण सा संयममार्गचर्याम्,
संवर्द्धयन्ती निजभावशक्त्या ।
पदेऽध्यतिष्ठच्छुभ आर्यिकायाः,
सद् - दृष्टिवर्गैरभवत्प्रणम्या ॥ (उपजाति)

१९. बुन्देलखण्ड ऋषिसेवितभूमिभागे,
ख्याताधुनाऽभयमतीति-वरेण्यनाम्ना ।
भव्यान् जनानुपदिशत्युपकारलग्ना,
स्वश्रेयसे प्रयतते च जिनेन्द्रधर्मे ॥ (वसन्ततिलका)

२०. एषोऽन्वस्थादधिकरुचिना श्रावकाचारधर्मम्,
छोटेलालः सह गुणभृता मोहिनी-धर्मपत्न्या ।
पुत्र्योर्लोकप्रथितयशसोर्भक्तिभावं वहद्भ्याम्,
ताभ्यां सम्यक् सुविधिविहितः पुत्रपुत्री-विवाहः ॥ (मन्दाक्रान्ता)

२१. रम्ये टिकैतनगरे शुभदः प्रवेशः,
जातो मुनेः सुबलसागरनामकस्य ।
मिथ्यात्वनाशपटुना मुनिना च तेन,
संस्थापितोऽत्र जिनधर्ममहत्प्रभावः ॥ (वसन्ततिलका)

२२. तस्योपदेशात् हृदि मालतीति-
नाम्न्याः सुताया अभवद् विरक्तिः ।
आजीवनं स्वीकृतवत्यदोषा,
सा ब्रह्मचर्यव्रतमार्यसेव्यम् ॥ (इन्द्रवज्रा)

२३. एषार्यिकां ज्ञानमती गुणाढ्याम्,
ज्येष्ठां स्वकीया भगिनी प्रसिद्धाम् ।
संसेवमाना सततं विनीता,
स्वाध्यायमात्रव्यसने स्थिताऽभूत् ॥ (इन्द्रवज्रा)

२४. एतत्सर्वप्रमुखमहिलादिव्यरत्नाब्धिभूतः
छोटेलालो गृहपतिवरः स्वर्गलोकं प्रयातः ।
तस्य पत्नी शुभगुणवती मोहिनी दुःखभारम्,
धीरा चित्तेऽसहत सकलं भावनाभिः शुभाभिः ॥ (मन्दाक्रान्ता)

१७. इधर, श्रीमती मोहिनी देवी की दूसरी पुत्री 'मनोवती' भी वैराग्य-मार्ग में अग्रसर होती रही। (एक दिन तो) आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण कर सभी को आश्चर्यित कर दिया।

१८. और, वह यथाशक्ति संयम-मार्ग की चर्या में क्रम से बढ़ते-बढ़ते (एक दिन) 'आर्यिका' भी बन गईं और सम्यग्दृष्टि श्रावक श्राविकाओं के लिए नमस्करणीय हो गईं।

१९. आज वह, बुन्देलखण्ड क्षेत्र में, जहाँ मुनि-ऋषियों का विचरण होता रहा है, निवास कर रही हैं और आर्यिका 'अभयमती' के रूप में ख्याति प्राप्त करती हुई भव्यजनों को धर्म का उपदेश देकर उनका उपकार कर रही हैं, और साथ ही स्वयं भी आत्म-कल्याण हेतु धर्माचरण मे संलग्न है।

२०. इधर, श्रीमान् सेठ छोटेलाल जी, अपनी गुणवती धर्मपत्नी 'मोहिनी' देवी के साथ श्रावकोचित धर्म में सलग्न रहे। अपनी दोनों पुत्रियों—जो अब प्रसिद्ध 'आर्यिका' बन चुकी थी—के प्रति श्रद्धा रखते रहें। यथासमय, इन दोनों (दम्पति) ने लोकाचार के साथ पुत्रों व पुत्रियों का विवाह भी किया।

२१. एक बार ऐसा हुआ कि टिकैतनगर में पूज्य मुनि श्री सुबलसागर जी का शुभागमन हुआ। वे मुनिवर्य मिथ्यात्व को दूर करने में अत्यन्त कुशल थे और उन्होंने (उपदेशादि से) जैनधर्म की महती प्रभावना वहाँ की।

२२. उनके उपदेश का ऐसा प्रभाव हुआ कि (मोहिनी देवी की दूसरी बेटी) 'मालती' के हृदय मे (भी) संसार के प्रति विरक्ति पैदा हो गई। उसने उक्त मुनिवर्य के चरणों में बैठकर, श्रेष्ठजनों द्वारा पालित ब्रह्मचर्य-व्रत को जन्म भर के लिए स्वीकार कर लिया।

२३. आज वह 'मालती' (संसार पक्षीय) अपनी बड़ी बहन जो आर्यिका ज्ञानमती के रूप में प्रसिद्ध हैं—की सेवा में रह रही हैं, और विनीत भाव से संघ में रहते हुए केवल स्वाध्याय सम्बन्धी व्यसन में प्रवृत्त है।

२४. उक्त आर्यिका व ब्रह्मचारिणी रूपी सभी नारी रत्नो के आकर (समुद्र) सेठ श्री छोटेलाल जी का स्वर्गवास हो गया। इनकी गुणवती धर्मपत्नी मोहिनी देवी ने शुभ भावनाओं—अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करते हुए, धैर्य पूर्वक समस्त दुःख को सहन किया।

२५. मृत्योः पूर्वं गृहपतिरिमां मोहिनीमुक्तवान् यद्
"धर्मान्नित्यं जनहितकराद् मोहतो वारिताऽसि।
धर्मध्याने भवसि सुभगे साम्प्रतं त्वं स्वतन्त्रा,"
धृत्वोक्ताज्ञां निजगृहपतेर्नित्यमेवाचरत्सा॥ (मन्दाक्रान्ता)

२६. प्रशस्तभावानभिवर्द्धयन्ती,
क्रमेण सर्वप्रतिमाव्रतानि।
अपालयत्सा गृह-संस्थिताऽपि,
रुचिर्हि कार्यं सरलीकरोति॥ (उपेन्द्रवज्रा)

२७. तत्कामिनीतिप्रथिताङ्गजाऽपि,
विवाहिताऽभूद् स्वजनप्रयासैः।
माता च तस्याः खलु मोहिनीयम्,
रोद्धुं समैच्छत् पदमार्यिकायाः॥ (उपजाति)

२८. पुरे प्रसिद्धे भुवि टोंकनामके
व्रतं शुभं सप्तममार्यसेवितम्।
सुविश्रुताचार्यवरात् पुरैव,
गृहीतवत्यादृतधर्मसागरात्॥ (वंशस्थ)

२९. धन्याऽऽर्यिका ज्ञानमती यदेताम्,
निजोपदेशैरवबोधयन्ती।
संसारपक्षीयजनन्यवाप्ये,
निःस्वार्थभावेन सहायिकाऽभूत्॥ (उपजाति)

३०. पुरेऽजमेरेतिसुविश्रुते महान्,
जिनोक्तचारित्रनिधेरधीश्वरः।
प्रसिद्धविद्वन्मणि-'धर्मसागरः',
समादृताचार्यवरः समागतः॥ (वंशस्थ)

३१. तेषां समक्षं विनयेन चैषा,
न्यवेदयत् स्वीयशुभाभिलाषम्।
वृत्तान्तमाकर्ण्य तदा प्रजाताः,
पुत्राश्च पुत्र्यो बहुदुःखिनोऽस्याः॥ (उपजाति)

३२. स्वमातुरस्वास्थ्यमिमेऽवलोक्य,
सुचिन्तिताः स्वे मनसि प्रजाताः।
न्यवारयन् स्वैर्मधुरैर्वचोभिः,
तामार्यिकात्वग्रहणोद्यतां ताम्॥ (उपजाति)

२५. अपनी मृत्यु से पूर्व श्रीमान् सेठ छोटेलाल जी ने धर्मपत्नी मोहिनी को अपने पास बुलाकर कहा था—"मैं सन्तानों के मोह में रहा, इसलिए जनकल्याणकारी धर्माचरण को करने से तुम्हें रोकता रहा। अब तुम स्वतन्त्र होकर धर्मध्यान करती रहना"। पति देव की इसी आज्ञा को शिरोधार्य कर श्रीमती मोहिनी हमेशा धर्मध्यानादि के आचरण में लगी रहीं।

२६. श्रीमती मोहिनी देवी, घर में रहते हुए भी, धीरे-धीरे अपने प्रशस्त भावों को बढ़ाती रहीं और उन्होंने (तीसरी व पाँचवी) प्रतिमा के व्रत भी ग्रहण किये। ठीक भी है, जिस तरफ आत्मा की रुचि हो, वह कार्य, (कठिन हो, तब भी) सरल हो जाता है।

२७. पारिवारिक जनों के प्रयास से उनकी सुपुत्री 'कामिनी' का विवाह भी सम्पन्न हुआ। (इसके बाद तो) श्री मोहिनी देवी के मन में आर्यिका बनने की धुन जागृत हुई।

२८. टोंक में जब परम प्रसिद्ध समादरणीय पूज्य आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज विद्यमान थे, उनसे वे पहले ही श्रेष्ठजन सेवित सातवीं प्रतिमा 'ब्रह्मचर्य' का व्रत भी ले चुकी थीं।

२९. पूज्य आर्यिका ज्ञानमती माताजी धन्य हैं जिन्होंने संसारपक्षीय अपनी माता को (समय-समय पर) सद्बोध देते हुए, उनके अभीष्ट की प्राप्ति में निःस्वार्थ सहायता करती रही।

३०. (इसी दौरान) जिनेन्द्रोपदिष्ट चारित्र रूपी निधि के स्वामी, विद्वन्मणि पूज्य समादरणीय आचार्यश्री धर्मसागर जी का अजमेर मे शुभागमन हुआ।

३१. श्रीमती मोहिनी देवी ने 'आर्यिका' बनने की शुभ इच्छा आचार्यश्री के समक्ष व्यक्त की। जब वह समाचार इनके परिवारस्थ पुत्रादिकों को ज्ञात हुआ तो वे बड़े दुःखी हुए।

३२. परिवारवालों को चिन्ता थी कि माताश्री का स्वास्थ्य खराब चलता है, और यह है कि घरबार छोड़कर आर्यिका बन रही है यह सब सोचकर वे मन में बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने मीठे वचनों से समझाया भी कि आर्यिका न बनें।

३३. असम्मतिं तत्र निवेदयन्तम्,
समागतं तत्परिवारमीक्ष्य ।
आचार्यवर्यप्रवरैस्तदानीम्,
उत्साहमान्द्यं परिदर्शितं तैः ॥ (उपजाति)

३४. त्यक्त्वा तदाऽऽहारचतुष्कमाशु,
व्यपेतमोहा खलु मोहिनी सा ।
गृहीतुमार्यश्रमणीत्वदीक्षाम्,
दृढ़प्रतिज्ञात्वमदर्शयत्स्वम् ॥ (उपजाति)

३५. आचार्यवर्योऽपि परीक्ष्य सम्यक्,
स्वाज्ञा-प्रदानेन समन्वगृह्णाद् ।
मनोबले यस्य दृढत्वमस्ति,
स्वकार्यसिद्धौ सफलः स नूनम् ॥ (उपजाति)

३६. आचार्यवर्येण शुभे मुहूर्ते,
दीक्षा प्रदत्ताऽऽगमसम्मताऽस्यै ।
दत्वार्यिकायोग्यपदं, तदानीम्
समर्पिता रत्नमतीतिसंज्ञा ॥ (उपजाति)

३७. अष्टद्विशून्यद्विमितः शुभंयुः,
पुण्योत्सवे तत्र च विक्रमाब्दः ।
मासस्तदाऽसीत् शुभमार्गशीर्षः,
कृष्णश्च पक्षः, सुतिथिस्तृतीया ॥ (इन्द्रवज्रा)

३८. पूज्यार्यिकाज्ञानमती-सुसंघे,
रत्नत्रयाराधनतत्परास्ति ।
संघस्थितानां खलु कल्पवृक्ष-
च्छायेव सा सम्प्रति सेवनीया ॥ (इन्द्रवज्रा)

३९. संसारपक्षीय-तदीयकन्या,
या माधुरीतिप्रियनाम धत्ते ।
भ्राता तदीयोऽपि रवीन्द्रनामा,
तौ ब्रह्मचर्यव्रतमाश्रयेते ॥ (इन्द्रवज्रा)

४०. अनेकरत्नैरतिदीप्तिमद्भिः,
यया प्रसूतेः समलंकृतोर्वी ।
अन्वर्थसंज्ञामनवद्यकीर्तिम्,
तामार्यिकां रत्नमतीं नमामि ॥ (उपजाति)

४१. पूज्यार्यिका-'रत्नमती'-प्रशस्तिः,
अकारि दामोदरशास्त्रिणेयम् ।
मदीयभक्तिर्जिनपादपद्मे,
सम्यक्त्व-वृद्धया सह वर्द्धिता स्यात् ॥ (उपजाति)

३३. श्रीमती मोहिनी देवी का सारा परिवार आचार्यवर के पास भी गया और उनके समक्ष सारी स्थिति स्पष्ट की। परिवार की असहमति देखते हुए उस समय आचार्यश्री के उत्साह में कमी भी आई।

३४. किन्तु, इधर श्रीमती मोहिनी देवी ने चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया। नाम की वे मोहिनी जरूर थीं, पर उनका संसार से मोह हट चुका था। आर्यिका बनने की अपनी प्रतिज्ञा मे वे दृढ़ ही बनी रहीं।

३५. आचार्यश्री को, उनकी दृढ़ता आदि को देखते हुए, अन्त में उन्हें आर्यिका बनने की आज्ञा देकर अपना अनुग्रह प्रकट करना ही पड़ा। यह सच है कि जिसके मनोबल में दृढ़ता होती है उसे अपने कार्य में सिद्धि मिलती ही है।

३६. आचार्य श्री ने शुभ मुहूर्त निश्चित कर आर्यिका की शास्त्रसम्मत दीक्षा इन्हें प्रदान की। दीक्षा देकर, इनका 'रत्नमती' नाम भी उन्होंने रखा।

३७. पुण्योत्सव के उस दिन २०२८ विक्रमीय शुभ संवत् था, मार्गशीर्ष (अगहन) का का महीना, कृष्ण पक्ष तथा तृतीया तिथि का शुभ योग था।

३८. आज वे पूज्य रत्नमती माताजी, आर्यिका ज्ञानमती जी के संघ मे विराजमान है, रत्नत्रय की आराधना मे वे तत्पर रहती हैं, तथा संघस्थ अन्य (व्रतियों आदि) जनों के लिए कल्पवृक्ष की छाया की तरह आश्रयणीय व सेवनीय हैं।

३९. इन्ही पूज्य रत्नमती माताजी के संसार पक्ष की एक अन्य कन्या जिसका प्यारा नाम 'माधुरी' है, तथा उक्त माधुरी जी के भाई जिनका नाम श्री रवीन्द्रकुमार जी है, ये दोनों आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर उक्त संघ में विराजमान हैं।

४०. पूज्य आर्यिका श्री १०५ रत्नमती माताजी, जिनके द्वारा प्रसूत (पुत्रादि) अनेक उज्ज्वल रत्नों से यह पृथ्वी अलंकृत हो रही है, अपने 'रत्नमती' नाम को सार्थक कर रही हैं। निर्दोष कीर्ति वाली इन आर्यिका श्री जी को मेरा नमन ! मेरा नमन !

४१. डा० दामोदर शास्त्री ने पूज्य श्री आर्यिका रत्नमती जी की प्रशंसा में इस पदावली की रचना की है। जिनेन्द्रदेव के चरण-कमलों मे मेरी भक्ति एवं सम्यक्त्व की वृद्धि होती रहे।



धन्य धन्य तव जीवन गाथा

श्रीमती कपूरी देवी, महमूदाबाद

मनुस्मृति, वेद साक्षी हैं,
नर ने, नारी को दास बनाया।
और स्वयं जग निर्माता बन,
अपने को ही सर्वोच्च बताया॥

अबला का सम्बोधन देकर,
सारे ही अधिकार छीन लिये।
नियम परिधि के बन्धन में,
जिये तो बनकर दीन जिये॥

नारी के कोमल भावों से,
जीवन का झूठा रस पाया।
और भ्रमित कर नारी को ही,
दे दी संज्ञा, तूं निर्बल काया॥

उस वीर प्रभु ने जन्म लिया तो,
सम अधिकार दिये नारी को।
संघ नायिका आर्यिका श्रमणी,
सींचा धर्म लता क्यारी को॥

बन्धन मुक्त हुई तब नारी,
टूट गयीं सारी श्रृङ्खलायें।
प्रतिस्पर्धा में विजयी बनकर,
उन्नत भाल बनी ललनायें॥

तब से नारी सबला बनकर,
संयम के पथ पर चल पायी।
तप की बह्नि में कुन्दन सम,
स्वर्ण समान नव आभा पाई॥

पूजक से, पूज्य बनी तब,
सारे जग ने शीश झुकाया।
और मुक्ति की अधिकारी बन,
दे दी जग को शीतल छाया॥

रत्नत्रय धर, 'रत्नमती" माता,
धन्य धन्य तव जीवन गाथा।
आज तुम्हारे पावन चरणो मे,
झुका हुआ है मेरा माथा॥

पूजा रत्नमती माताजी की

शंभु छंद

सम्यग्दर्शन और ज्ञान चरित की जहाँ एकता होती है।
कलियुग में भी वहाँ मुक्ति पंथ की सहजरूपता होती है॥
माँ रत्नमतीजी का जीवन है इसी त्रिवेणी का संगम।
मैं भी स्नान करूँ उसमें इस हेतु कर रहा आराधन॥

ॐ ह्रीं रत्नमती माताजी अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहिता भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

नरेन्द्र छन्द

मलिन आत्मा को शान्ती के शीतलजल से धोऊँ।
स्वाभाविक गुण में रम करके शांत स्वभावी होऊँ॥
माता रत्नमतीजी की मैं शांत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ॥

ॐ ह्री रत्नमती माताजी जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं।

यह असार संसार न इसमें शांति कभी मिल सकती।
भव आतप मिट जावे जिससे तप में ही वह शक्ती॥
माता रत्नमतीजी की मैं शांत छवि को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ॥

ॐ ह्री रत्नमती माताजी .... चंदनं॥

नश्वर जग का सुख वैभव नश्वर धन कंचन काया।
अविनश्वर बस एक मात्र मुक्ती सुख मुझको भाया॥
माता रत्नमतीजी की मैं शांत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ॥

ॐ ह्री रत्नमती माताजी .... अक्षतं॥

मोह अग्नि में जल कर मानव कैसा झुलस रहा है।
काम मोह की उपशान्ती में समकित बरस रहा है॥
माता रत्नमतीजी की मैं शांत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ॥

ॐ ह्री रत्नमती माताजी .... पुष्पं॥

एक नहीं दो नहीं अनन्ते भव नरकों में बितायें।
जहाँ न तिल भर अन्न मिला यह क्षुधा कहाँ से जाये॥
माता रत्नमतीजी की मैं शांत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ॥

ॐ ह्रीं रत्नमती माताजी ···· ···· ···· ···· ···· नैवेद्यं॥

दीपक की टिमकारी भी कुछ बाह्य अँधेरा हरती।
ज्ञान रश्मि अन्तर के मोहित तम को भी हर सकती॥
माता रत्नमतीजी की मैं शांत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ॥

ॐ ह्रीं रत्नमती माताजी ···· ···· ···· ···· ···· दीपं॥

जाने कितने मिष्ट मधुर फल मैंने अब तक खाये।
फिर भी तृप्ति हुई क्या जग में काल अनन्त गमाये॥
माता रत्नमतीजी की मैं शांत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ॥

ॐ ह्रीं रत्नमती माताजी ···· ···· ···· ···· ···· फलं॥

अष्ट द्रव्य की थाली लेकर इस आशा से आया।
ज्ञानामृत का पान करूँ मैं छूटे ममता माया॥
माता रत्नमतीजी की मै शांत छवी को ध्याऊँ।
मिथ्या कल्मष धो करके समकित निधि को पा जाऊँ॥

ॐ ह्रीं रत्नमती माताजी ·· ···· ···· ···· ···· अर्घ्यं॥

जयमाला

दोहा—आत्म शक्ति को प्रगट कर, लीना संयम धार।
यही एक अनमोल है, रत्न त्रिजग में सार॥

शंभु छंद—जै जै जैनी दीक्षा जग में मुक्ती पद कारण मानी है।
इसके बल पर नर-नारी ने निज की शक्ती पहचानी है॥
कुछ कारण पाकर जो प्राणी जग से विरक्त हो जाते हैं।
व्यवहार क्रियाओं में रत हो वे निश्चय में खो जाते हैं॥१॥

इस युग में मुनिपथ दर्शक इक आचार्य शांतिसागरजी हुए।
उनके चतुर्थ पट्टाधिपती आचार्य धर्मसागरजी हैं॥
बस इन्हीं गुरू के आश्रय से माँ मोहिनी का जीवन बदला।
लग गई विरागी धुन इनके दिल में जो घटना चक्र चला॥२॥

आ गई पुरानी बात याद जब मैना घर से निकली थी।
वह शर्त आज मंजूर हुई जो माँ के मुँह से निकली थी॥
मैना तुम इक दिन मुझको भी भवदधि से पार लगा देना।
दे रही साथ मैं आज तुम्हें निज सम मुझको भी बना लेना॥३॥

संवत् दो सहस्र अठाइस की मगशिर वदि तीज तिथी आई।
अजमेर महानगरी में तव दीक्षा की पुण्यतिथी आई॥
जहाँ राग और वैराग्य भाव का मिला अनोखा संगम था।
पत्थर दिल पिघल गये लेकिन माँ मोहिनि का निश्चल प्रण था॥४॥

माँ रत्नमती की अमर कथा जग को सन्देश सुनाती है।
निज का उत्थान तभी होता जब मोह की मनि भग जाती है॥
हे ज्ञानमतीजी की जननी युग युग तक तुम जयशील रहो।
हे अभयमती की तुम माता मुझको भी भवोदधि तीर करो॥५॥

जननी जग में जन रही, पर तुमसीं न अनेक।
नमन "माधुरी" है तुम्हें, मातृभक्ति जहाँ लेश॥

ॐ ह्री रत्नमती माताजी·················जयमाला अर्घ्यं॥

इत्याशीर्वादः। पुष्पांजलिः



ॐ आरती

ॐ जय जय रत्नमती, माता जय जय रत्नमती।
मनहारी सुखकारी तेरी शांत छवी॥ ॐ जय॥

मोहिनि से बन रत्नमती यह, पद सच्चा पाया। माता
कितने रत्न दिये तुम जग को, तज ममता माया॥ ॐ जय॥

पूर्व दिशा रवि से मुखरित हो जग तामस हरती। माता
ज्ञानमती सा रवि प्रकटाकर मिथ्यातम हरती॥ ॐ जय॥

रत्नत्रय में लीन सदा तुम संयम साध रही। माता
यही कामना करें "माधुरी" पाऊँ मोक्ष मही॥ ॐ जय॥





भजन

तीरथ करने चली मोहिनी शान्ति मार्ग अपनाने को।
धर्मसागराचार्य संघ में, ज्ञानमती श्री पाने को॥
एक बार जब गई मोहिनी साधु चतुर्विध संघ जहाँ।
वह अजमेर धर्म की नगरी दिखता चौथा काल वहां॥
तीर्थवंदना शुरू वहीं से हुई मुक्तिपथ पाने को।
धर्मसागराचार्य संघ में ज्ञानमती श्री पाने को॥
धन्य तिथि मगशिर बदि तृतिया वरदहस्त गुरु का पाया।
संयम की अनमोल डोर ले भवसागर से तिर पाया॥
रत्नमती बन गई मोहिनी गाथा अमर बनाने को।
धर्मसागराचार्य संघ में ज्ञानमती श्री पाने को॥
सुखशान्ती का वैभव पाकर कहें मोहिनी माता है।
जैनी दीक्षा त्याग तपस्या का विराग से नाता है॥
जग की ममता नहीं "माधुरी" हुई सफल मां पाने को।
धर्मसागराचार्य संघ में ज्ञानमती श्री पाने को॥



आरती आर्यिकात्रय की

ॐ जय जय ज्ञानमती माता जय जय ज्ञानमती।
रत्नमती शिवमती साधना संयम की करतीं॥ ॐ जय॥
शरदपूर्णिमा पूर्ण चांदनी नभ मे थी छाई। माता
हुई मोहिनी धन्य तुम्हें पा जनता हरषाई॥ ॐ जय॥
यथा नाम गुण तथा ज्ञान का आराधन करती। माता
रत्नत्रय युत महा आर्यिका विदुषी बालसती॥ ॐ जय॥
मां मोहिनी भी रत्नमती बन आत्म शान्ति पाई॥
सर्व कुटुम्ब परिवार मोह औ ममता विसराई॥ ॐ जय॥
रत्नमती की गौरव गाथा नर नारी गाते। माता
रत्नप्रदाता तुम सी माता, सुलभ नहीं पाते॥ ॐ जय॥
शिवपथ का आचरण शिवमती करें सफल जीवन। माता
श्रवणबेलगुल जन्म भूमि जहां बाहुबली दर्शन॥ ॐ जय॥
परम आर्यिकात्रय संगम की है उज्ज्वल धारा। माता
अमर त्रिवेणी रहे "माधुरी" रत्नत्रय प्यारा॥ ॐ जय॥





पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती
अभिनन्दन ग्रन्थ

- जीवन दर्शन
- जन्मभूमि परिचय
- गृहस्थाश्रम के परिवार का परिचय

द्वितीय खण्ड

आर्यिकारत्नमतीमातुः गुर्वावलिः

लोकालोकप्रकाशिकेवलज्ञानज्योतिषा सकलचराचरवस्तुसाक्षात्कारि-महाश्रमणभगवद्वर्धमानस्य सार्वभौमशासनं वर्धयति श्रीकुंदकुदान्वये नंदि-संघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे चारित्रचक्रवर्ती शांतिसागराचार्यवर्यस्तत्पट्टे श्रीवीरसागरमुनीन्द्रस्तत्पट्टाधीशो श्रीशिवसागरसूरिस्तत्पट्टस्थितः श्रीधर्म-सागराचार्योऽस्य करकमलात् "वीराब्दे अष्टानवत्युत्तरचतुर्विंशतिशततमे वर्षे मार्गशीर्षमासे कृष्णपक्षे तृतीयातिथौ अजमेरपत्तने" दीक्षिता श्रमणी आर्यिकारत्नमती माता इह भूतले चिरं जीयात् ।

अधुना—

वीराब्दे नवोत्तरपंचविंशतिशततमे वर्षे मार्गशीर्षमासेऽसितपक्षे जयातिथौ अद्यावधि मम संघे द्वादशवर्षायोगं व्यतीत्य निर्विघ्नतया संयमं परिपालयन्ती सत्यग्रेऽपि यावज्जीवं निर्बाधं चारित्रे स्थेयात् । इति वर्धताम् जिनशासनम् ।

—आर्यिका ज्ञानमती





आर्यिका रत्नमती माताजी

का

जीवन दर्शन

ब्र० मोतीचन्द जैन, शास्त्री न्यायतीर्थ

अवधप्रांत

आदि ब्रह्मा भ० श्री ऋषभदेव की जन्मभूमि अयोध्या और उसके आस-पास के क्षेत्र को भी आज अवधप्रांत के नाम से जाना जाता है। वैसे इन प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और उनके प्रथम पुत्र चक्रवर्ती भरत के समय यह अयोध्या नगरी १२ योजन लम्बी और ९ योजन चौड़ी मानी गई है। अतः १२ को ४ कोश से गुणित करने पर १२×४=४८ कोश और ९×४=३६ कोश होते हैं। इस हिसाब से लखनऊ, टिकैतनगर, त्रिलोकपुर, महमूदाबाद आदि नगर उस समय अयोध्या नगरी की पवित्र भूमि में ही थे। आज भी अयोध्या तीर्थ की पवित्रता से सम्पूर्ण अवध का वातावरण पवित्र बना हुआ है।

महमूदाबाद

इस अवधप्रांत में जिला सीतापुर के अन्तर्गत एक महमूदाबाद नाम का गाँव है। वहाँ पर विशाल जिनमन्दिर है। मन्दिर के निकट ही जैन समाज के लगभग ५० घर हैं। आज से १०० वर्ष पूर्व वहाँ श्री सुखपालदास जी सेठ रहते थे। ये अग्रवाल जातीय जैन थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम मत्तोदेवी था। सुखपाल दासजी गाँव मे धर्मात्मा के रूप में प्रसिद्ध थे। नित्य भगवान् की पूजा करते थे, स्वाध्याय करते थे। रात्रि भोजन आदि का इनका त्याग था, सात्त्विक प्रकृति के महामना श्रावक थे। इनकी पत्नी भी पतिव्रता आदि गुणों से सहित धर्मपरायणा, अत्यन्त सरल प्रकृति की थीं। इन धर्मनिष्ठ दम्पति के चार सन्तानें हुईं—१. शिवप्यारी देवी २. मोहिनी देवी ३. महीपालदास ४. भगवानदास।

पिता सुखपाल जी ने अपनी प्रत्येक सन्तान पर धार्मिक संस्कार डाले थे।



मोहिनी कन्या

ईस्वी सन् १९१४ में द्वितीय कन्या का जन्म हुआ था। पिता ने बड़े प्यार से इसका नाम 'मोहिनी' रक्खा था। यह अपने सहज गुणों से सबके मन को मुग्धमोहित अथवा प्रसन्न करती रहती थी। बचपन से माता-पिता का इस कन्या पर विशेष स्नेह था। पिताजी हमेशा मोहिनी पुत्री को साथ लेकर घूमने जाते और उसकी तरफ अधिक ध्यान देते थे। प्रतिदिन रात्रि में अपने हाथ से बादाम भिगो देते। प्रातः छीलकर मोहिनी को खिलाते और दूध देते। प्रतिदिन मन्दिर भी अपने साथ ले जाते थे। ५-६ वर्ष की वय में इस कन्या को स्कूल में पढ़ने भेजने लगे। थोड़े ही दिनों में मोहिनी ने ३-४ कक्षा तक अध्ययन कर लिया। मुसलमानी इलाका होने से पिता ने महीपाल पुत्र को पढ़ाने के लिये एक मौलवी मास्टर रक्खा था। वे उर्दू पढ़ाते थे। मोहिनी कन्या की बुद्धि बहुत ही तीक्ष्ण थी। वह छोटे भाई के पढ़ते समय ही उर्दू सीख गई। बाद में सबसे छोटा भगवानदास जब मुन्ना था। उसे गोद मे लेकर खिलाने में मोहिनी ने स्कूल जाना छोड़ दिया। तब स्कूल से अध्यापिकायें आती और कहतीं—

"पिताजी ! इस पुत्री को पढ़ने जरूर भेजें। इसकी बुद्धि बहुत ही कुशाग्र है। इसके बगैर तो हमारा स्कूल सूना हो रहा है।"

पिता भी प्रेरणा देते, किन्तु मोहिनी भाई को खिलाने का बहाना बनाकर स्कूल जाने में आनाकानी कर देती। उस जमाने में कन्याओं को अधिक पढ़ाने की परंपरा भी नहीं थी और वह इलाका मुसलमानी था अतः माँ मत्तोदेवी ने भी कन्या को स्कूल भेजने का अधिक आग्रह नहीं किया।

पिता ने संस्कार डाले

पिता सुखपाल जी प्रतिदिन मोहिनी को भक्तामर, तत्त्वार्थसूत्र आदि पढ़ाने लगे। वे रात्रि में सारे परिवार को बिठाकर मोहिनी से शास्त्र पढ़वाते और बहुत खुश होते। पुनः विस्तार से सबको शास्त्र का अर्थ समझाते रहते।

एक बार पिता ने मुद्रित ग्रन्थों के शुरूवात में एक ग्रन्थ लिया। जिसका नाम था—"पद्मनंदिपंचविंशतिका" इसे लाकर उन्होंने पुत्री को दिया और बोले—

"बेटी ! तुम इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करना।"

मोहिनी ने बड़े प्रेम से उस ग्रन्थ का स्वाध्याय किया था। उसमें पर्व के दिन ब्रह्मचर्य व्रत के महत्त्व को पढ़ते हुए उन्होंने भगवान् के मन्दिर में जाकर अपने मन में ही अष्टमी, चतुर्दशी के दिन ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया तथा आजन्म शीलव्रत भी ले लिया था यह बात किसी को विदित नहीं थी। मन्दिर में भी उस समय ये सुखपालदास जी ही शास्त्र बांचते थे और सभी लोग इन्हे पंडितजी कहा करते थे। पुत्र महीपालदास को इन्होंने व्यायाम करना सिखा दिया था, इससे ये कुश्ती के खिलाड़ी बन गये थे। उस इलाके में इन्होंने बड़े-बड़े पहलवानो से कुश्ती खेली है और कई बार प्रतियोगिता में जीते हैं।

पिता का व्यवसाय

पहले पिताजी गाँव में अपना कपड़े का व्यवसाय करते थे, कुछ दिनों बाद ये कपड़ा लेकर

पास के गाँव बीसवाँ में व्यापार को जाने लगे। उस समय साथ में पूड़ी बनवाकर ले जाते थे तथा कुछ चावल-दाल भी ले लेते थे। जिससे कभी-कभी अपने हाथ से खिचड़ी बनाकर खा लेते थे। इनका व्यवसाय में यह नियम था कि "देवपूजा" करके ही दुकान खोलना। यदि मंदिर नहीं हो तो "जाप्य" करके ही ग्राहक से बात करना।

इस नियम से ही आपको अन्तसमाधि बहुत ही अच्छी हुई है। आप एक बार बीसवां ही व्यापार करने गये थे। प्रातः ग्राहक आया। आपने कहा कि मैं जाप्य करके ही वार्तालाप करूँगा। वह बाहर बैठा रहा। आप शुद्ध वस्त्र लपेट कर जाप्य करने बैठे, बैठे ही रह गये। आपके प्राण पखेरू उड़ गये। स्वर्ग में उत्तम गति में पहुँच गये। जब बहुत देर हो गई तब लोगों ने आपको देखा, मृत पाया। तब परिवार के लोगों को बुलाकर अन्त्येष्टि की गई थी। सच है एक छोटा भी नियम इस जीव को संसार समुद्र से पार करने में कारण बन जाता है।

पिता ने १६ वर्ष की वय में बड़ी पुत्री शिवप्यारी का विवाह बेलहरा निवासी लाला मनोहर-लाल के सुपुत्र मेहरचंद के साथ कर दिया। ये बड़ी पुत्री गार्हस्थ्य जीवन मे प्रवेश कर अपने पति के अनुकूल रहकर धर्मकार्य मे सतत लगी रहती थी। इन्होने क्रम से एक पुत्री और चार पुत्रों को जन्म दिया। जिनके नाम १. हीरामणी, २. पुतानचंद, ३. वीरकुमार, ४. चुन्नूलाल और ५. रञ्जन-कुमार है। सबके व्याह के बाद आपने दो प्रतिमा के व्रत ले लिये थे। वैधव्य जीवन में आपने अपना सम्पूर्ण समय धर्मकार्यों में लगाकर अन्त मे सल्लेखनापूर्वक मरण कर सद्गति प्राप्त कर ली है।

शिवप्यारी पुत्री का विवाह करके आपने अपनी मोहिनी पुत्री का व्याह टिकैतनगर कर दिया। इनका विस्तार से वर्णन आगे करेंगे। यहाँ संक्षेप मे आपको महीपालदास और भगवानदास का भी परिचय कराये देते हैं।

सोलह वर्ष की वय मे पिता ने महीपालदास का विवाह बहराइच के सेठ बब्बूमल जैन की पुत्री मुन्नी देवी के साथ कर दिया। इनके दो पुत्र और चार पुत्रियाँ हैं। जिनके जिनेन्द्र कुमार, भीमसेन, राजकुमारी, सरोजकुमारी, इन्द्रकुमारी और प्रभावती ये नाम हैं। ये महीपालदास व्यायाम से तंदुरुस्त पहलवान होने से उस प्रांत में बड़े प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। कभी-कभी इनका स्वभाव उग्र हो जाया करता था जिसका कुछ दिग्दर्शन आ० ज्ञानमती माताजी द्वारा लिखे गये संस्मरण में मिल जाता है। सन् १९६६ मे इनका आकस्मिक हार्टफेल हो गया। तब से इनके बड़े पुत्र जिनेन्द्र कुमार ने घर के सारे दायित्व को अच्छी तरह सम्भाल लिया। साथ ही आजकल ये समाज में भी प्रतिष्ठित स्थान को प्राप्त अध्यक्ष हैं तथा कपड़े के अच्छे व्यापारी हैं।

सेठ सुखपाल जी ने अपने चतुर्थ पुत्र भगवानदास का विवाह फतेहपुर के एक धर्मात्मा सेठ की पुत्री के साथ सम्पन्न कर दिया। इनके भी दो पुत्र, तीन पुत्रियाँ हैं। जिनके जगतकुमार, रमेश-कुमार, रत्नप्रभा, शशिप्रभा और मणिप्रभा नाम हैं। ये सभी विवाहित हैं। दोनों पुत्र अच्छे व्यापारी है। इस प्रकार से सुखपाल जी का पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र सहित सम्पूर्ण परिवार धर्मनिष्ठ सुखी और सम्पन्न है।

अब मैं आपको पूज्य ज्ञानमती माताजी की जन्मभूमि के दर्शन कराने ले चलता हूँ।

[२]

टिकैतनगर

अयोध्या के निकट ही एक टिकैतनगर ग्राम है जो कि बाराबंकी जिला के अन्तर्गत है और लखनऊ शहर से ६० मील दूरी पर है। आज से १०० वर्ष पूर्व वहाँ के लाला धन्यकुमार जी अच्छे प्रसिद्ध धर्मात्मा श्रावक थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम फूलदेवी था। ये भी अग्रवाल जातीय, गोइल-गोत्रीय दिगम्बर जैन थे। इनके चार पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुई। पुत्र के नाम बाबूराम जी, छोटेलाल, बालचंद्र और फूलचंद थे। इनमें से बड़े तीनों भाइयों का परिवार वटवृक्ष आज खूब हरा-भरा दिख रहा है। सबसे छोटे पुत्र फूलचंद १९ वर्ष की वय में अविवाहित ही स्वर्गस्थ हो चुके थे।

श्री छोटेलाल जी का विवाह

वह समय ऐसा था कि पुत्रों का विक्रय न होकर कहीं-कहीं पुत्रियों का विक्रय हो जाया करता था। पिता धन्यकुमार ने महमूदाबाद के लाला सुखपाल जी की बहुत ही प्रशंसा सुन रक्खी थी और उनकी सुपुत्री मोहिनी के गुणों से भी प्रभावित थे। उन्होंने स्वयं अपने सुपुत्र छोटेलाल के लिये मोहिनी कन्या की याचना की। सुखपालदास जी ने भी उनके पुत्र में वर के योग्य सभी गुणों को देखकर स्वीकृति दे दी, और सगाई पक्की हो गई। लाला धन्यकुमार जी अपने पुत्र की बारात लेकर महमूदाबाद पहुँच गये और शुभमुहूर्त में युवक छोटेलाल जी के साथ मोहिनी देवी का परिणय संस्कार जैन विवाह विधि से कर दिया गया। माता-पिता ने अश्रु भरे नेत्रों से अपनी प्यारी पुत्री को विदाई दी। उस समय सन् १९३२ मे मोहिनी देवी की उम्र लगभग १८ वर्ष की थी।

सच्चा दहेज

विदाई के पूर्व पिता ने अपनी पुत्री को दहेज में यथायोग्य सब कुछ दिया, किन्तु उनके मन में सन्तुष्टि नही हुई, तब वे "पद्मनंदिपंचविंशतिका" ग्रन्थ को लेकर दहेज के समय पुत्री मोहिनी को देते हुए बोले—

"बिटिया मोहिनी ! तुम हमेशा इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करते रहना। इसी से तुम्हारे गृहस्थाश्रम में सुख और शांति की वृद्धि होगी और तुम्हारा यह नरभव पाना सफल हो जावेगा।"

पुत्री मोहिनी ने पिता के द्वारा दिये गये इस दहेज को सबसे अधिक मूल्यवान् समझा और पिता भी दहेज मे ऐसी जिनवाणी रूपी निधि को देकर सच्चे पिता (पालक—रक्षक) बन गये।

गृहस्थाश्रम में प्रवेश

बारात टिकैतनगर वापस आ गई। सबसे पहले वरवधू को जिन मंदिर ले जाया गया। वहाँ सातिशय भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा के दर्शन कर मोहिनी का मन प्रसन्न हुआ और माता-पिता के वियोग का दुःख भी हल्का हो गया। घर में मंगलप्रवेश कर मोहिनी ने अपने पिताजी के द्वारा दिये गये ग्रन्थ को बहुत बड़ी निधि के रूप मे सम्भाल कर रख लिया और नियम से नित्य ही देव-दर्शन के बाद विधिवत् उसका स्वाध्याय करने लगीं।

यहाँ पर इस भरे पूरे परिवार मे मोहिनी का मन लग गया। सासु और ससुर बहुत ही सरल प्रकृति के थे, धर्मात्मा थे। जेठ, जिठानी, उनके पुत्र-पुत्री, देवर तथा ननदों के मध्य घर का वातावरण बहुत ही सुखद और मधुर था। इस घर में सभी लोग प्रातः मन्दिर आकर ही मुंह में

पानी लेते थे। कोई भी रात्रि में भोजन नहीं करता था, पानी छानकर ही काम में लिया जाता था। प्रायः सभी स्त्री पुरुष शाम को मन्दिर में जाकर आरती करते और शास्त्र सभा में बैठकर शास्त्र सुनते थे। यहाँ घर के निकट ही मन्दिर होने से मन्दिर के घण्टा की, पूजा-पाठ की, आरती की आवाज घर बैठे कानों में गूँजा करती थी।

मैनादेवी का जन्म

सन् १९३४ में आसोज सुदी पूर्णिमा-शरद् पूर्णिमा की रात्रि में मोहिनी देवी ने प्रथम संतान के रूप में एक ऐसी कन्यारत्न को जन्म दिया कि जिसकी शुभ्र चाँदनी आज सारे भारतवर्ष में फैल रही है। प्रथम संतान के जन्म लेते ही बाबा धन्यकुमार और दादी फूलदेवी ने भी अपने को धन्य माना और हर्ष से फूल उठे। मंगल गीत गाये गये, दान भी बांटा गया और दादी ने बड़े गौरव से कहा—

"भले ही कन्या का जन्म हुआ है किन्तु पहला पुष्प है चिरंजीवी हो, मुझे बहुत ही खुशी है।"

इस कन्या का नाम नाना ने बड़े प्यार से मैना रखा था। तब नानी ने कहा—

"यह मैना चिड़िया है यह घर में नही रहेगी एक दिन उड़ जायेगी।"

नानी जी के यह वचन सर्वथा फलीभूत हुए हैं। यह मैना १८ वर्ष की वय में गृहपींजड़े मे न रहकर उड़ गई है जो कि आज हम सबका कल्याण करते हुए विश्व को अनुपम निधि दे रही हैं।

इस कन्या के पूर्वजन्म के कुछ ऐसे ही संस्कार थे कि यथा नाम तथा गुण के अनुसार बचपन से ही कर्म सिद्धांत पर अटल विश्वास था।

प्रारम्भ में यह बालिका बाबा, दादी, ताऊ, ताई, चाचा और चाची सभी की गोद मे खेली थी। पिता का तो इसे बहुत ही दुलार मिला था।

मोहिनी जी को भयंकर कष्ट

मैना के बाद मोहिनी ने दूसरी कन्या को जन्म दिया। उसके बाद उन्हें जाँघ में एक भयंकर फोड़ा हो गया। कुछ असाता के उदय से उसका आपरेशन असफल रहा। पुनः कुछ दिनों बाद आपरेशन हुआ। डाक्टर ने भी इस बार इन्हें भगवान् भरोसे ही छोड़ दिया था किन्तु इनके द्वारा जैन समाज को बहुत कुछ मिलना था, इसीलिए ये माता मोहिनी छह महीने से अधिक समय तक भयंकर वेदना को झेलकर भी स्वस्थ हो गईं और पुनः गृहस्थाश्रम के सभी कार्यों को सुचारु चलाने लगी। यह द्वितीय पुत्री स्वर्गस्थ हो गई। पुनः मोहिनी ने एक कन्या को जन्म दिया उसका नाम 'शांतिदेवी' रक्खा। इसके बाद एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ जिसका नाम 'कैलाशचंद' रखा गया। मैना अपने इस छोटे भाई को बहुत ही प्यार करती थी और उसे गोद में लेकर मंदिर ले जाकर भगवान् का दर्शन कराती, उसको गंधोदक लगाती और उसे णमोकार मन्त्र बोलना सिखाती रहती थी। चूंकि मैना को णमोकार मन्त्र पर बहुत ही विश्वास था।

मैना का अध्ययन

पाँच-छह वर्ष की होने पर कन्या मैना को पिता ने मन्दिर के पास ही पाठशाला में पढ़ने

बिठा दिया। मैना की बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि वे तीन चार वर्ष में ही बहुत कुछ पढ़ गई। वहाँ पाठशाला में धार्मिक पढ़ाई ही प्रमुख थी। प्रारम्भिक गणित भी पढ़ाई जाती थी। मैना ने उसे भी पढ़ लिया।

इधर माँ मोहिनी की गोद में हमेशा छोटा बच्चा रहने से वे अपनी प्रथम पुत्री मैना को छोटी वय से ही घर के हर कामों में लगाया करती थीं। इससे ये ८-९ वर्ष की वय में ही गृह कार्य, रसोई बनाने, चौका-बर्तन धोने आदि कार्यों मे कुशल हो गई। साथ ही माँ के हर कार्य में हाथ बँटाने में मैना को रुचि भी थी। इस प्रकार मैना पाठशाला में छहढाला, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पद्म, तत्त्वार्थसूत्र, भक्तामर आदि पढ़ चुकी थी तभी माँ ने मैना को पाठशाला जाने से रोक दिया और घर में ही अध्ययन करने की प्रेरणा दी।

सम्बोधन करना

मैना माँ की कमजोर अवस्था—शिरदर्द आदि मे उनकी सेवा भी करती थी, और उन्हें धार्मिक पाठ सुनाकर उसका अर्थ भी समझाने लगती थीं। तब माता मोहिनी को बहुत ही शांति मिलती थी। यह सम्बोधन की प्रक्रिया शायद माताजी को पूर्वजन्म के संस्कारों से ही मिली थी तभी तो वे आज अगणित प्राणियों को सम्बोधित कर चुकी है और सारे देश को भी सम्बोधन करने में समर्थ है।

करुणादान का प्रेम

प्रत्येक घरों के दरवाजों पर भिखारी आते हैं, भीख माँगते हैं, गिड़गिड़ाते हैं, मिल जाती है तो अच्छी दुआ देते हुए चले जाते हैं और नही मिलती है तो कोसते हुए वापस चले जाते हैं। किन्तु माता मोहिनी के दरवाजे पर कोई भी भिखारी आता था तो वे मैना से कहती—

"बेटी ! इसे रोटी चावल दाल आदि भोजन खिला दो और पानी पिला दो।"

मैना भी खुशी-खुशी भिखारी को खाना खिलाकर पानी पिला देती। वह बहुत-बहुत दुआ देता हुआ चला जाता। माँ का कहना था कि आज-कल भिखारी प्रायः भिक्षा में मिले हुए अनाज को कपड़ों को बेचकर धन इकट्ठा करके रखते जाते है और बाहर से भिखारी बने रहते हैं। इसलिए वे वस्त्र, अनाज और पैसे कदाचित् ही भिखारियों को देती थी। अधिकतर भोजन ही कराती थीं। उनके दरवाजे से कभी कोई भिखारी खाली नही गया।

ऐसे ही छोटे-मोटे अनेक उदाहरण दयावृत्ति के हैं जिससे ऐसा लगता है कि—

उस समय माँ और बेटी मैना दोनों के हृदय में छोटे-छोटे प्रसंगों पर करुणा का प्रवाह भविष्य के उनके विशाल कारुणिक हृदय को सूचित करने वाला था।

तीर्थयात्रायें और व्रत उपवास

माता मोहिनी ने पतिदेव के साथ सम्मेदशिखर जी, महावीर जी, सोनागिरजी आदि तीर्थों की यात्रायें भी की थीं। समय-समय पर रविवार, आकाश-पंचमी, मुक्तावली, सुगंध दशमी आदि कई व्रत भी किये थे। यद्यपि मोहिनी जी का शरीर स्वास्थ्य कमजोर था, व्रत करने से पित्त प्रकोप हो जाता था, चक्कर आने लगते थे, फिर भी वे साहस कर धर्मप्रेम से कुछ न कुछ व्रत

किया ही करती थीं। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि यह शरीर नश्वर है। एक न एक दिन नष्ट होने वाला है। इससे अपनी आत्मा का जितना भी हित कर लिया जाय उतना ही अच्छा है।

माँ मोहिनी की अन्य संतान

इस तरह माता मोहिनी क्रम-क्रम से मैना, शांति, कैलाशचंद, श्रीमती, मनोवती, प्रकाशचंद, सुभाषचंद और कुमुदनी इस तरह चार पुत्र और पाँच पुत्रियों की जन्मदात्री हो चुकी थी। इन छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं को सम्भालने में, उनकी बीमारी के समय सेवा शुश्रूषा करने में, रसोई बनाने में, और भी सभी घर के कार्यों में माँ मोहिनी को बड़ी पुत्री मैना का अच्छा सहयोग मिल रहा था। मैना बिना किसी से सीखे ही बच्चों के स्वेटर बुन लेती थी। अच्छे से अच्छे कपड़े सिलकर उन्हें पहनाती रहती थी। प्रत्येक कार्य में मैना की कुशलता उस गाँव में तथा आस-पास के गाँवों में भी प्रशंसा और आश्चर्य का विषय बन गई थी।

[३]

मिथ्यात्व का त्याग

मैना प्रतिदिन प्रातः उठकर वस्त्र बदलकर सामायिक करती। पुनः घर की सफाई करके बच्चों को नहला-धुलाकर आप स्नान आदि से निवृत्त हो मंदिर जाकर धुले हुए शुद्ध द्रव्य से भगवान् की पूजा करती थी। मंदिर से आकर स्वाध्याय करके रसोई के काम मे लगती। भोजन आदि से निवृत्त हो मध्यान्ह में घर के अन्य काम-काज सम्भाल कर नन्हे मुन्ने बच्चों को सम्भालती थी। सायंकाल के भोजन के उपरांत रात्रि में मंदिर में आरती करके शास्त्र सभा मे बैठ जाती। वहाँ से आकर घर में स्वयं दर्शनकथा, शीलकथा आदि पढ़कर कभी माँ को सुनाती, कभी पिता को सुनाती और कभी भाई बहनों को सुनाती रहती थी।

मैना ने घर में तीज, करूवा चौथ आदि त्योहारों मे गौरी पूजना, बायना बाँटना आदि मिथ्यात्व है ऐसा कहकर माँ से उन सबका त्याग करवा दिया था। बालकों के भयंकर चेचक निकलने पर भी शीतला माता को नही पूजने दिया था। माता मोहिनी ने भी अपनी पुत्री मैना की बातों को जैनागम से प्रामाणिक समझ कर मान्य किया था और सासु की आज्ञा को भी न गिनकर मैना की बातों को मान्यता देती रहती थी। तब मैना अपनी वृद्धा दादी को भी समझाया करती थी। मैना की युक्ति पूर्ण बातें सुनकर दादी यद्यपि ज्यादा समझ नहीं पाती थीं फिर भी सन्तोष कर लेती थीं।

माँ मोहिनी की चर्या

माता मोहिनी भी प्रतिदिन प्रातः उठकर सामायिक करती थीं। स्नानादि से निवृत्त होकर मंदिर में भगवान् की पूजन करती थी। वहाँ से आकर स्वाध्याय करके रसोई बनाने में लग जाती थी। छोटे गोद के बच्चे को दूध पिलाते समय भी माँ मोहिनी स्वाध्याय और भक्तामर आदि के

पाठ किया करती थी जिससे वह माता का दूध बच्चों के लिए अमृत बन जाता था और बच्चों में धार्मिक संस्कार पड़ते चले जाते थे। प्रतिदिन सायंकाल में मंदिर में आरती करने जाती थी और बच्चों को भी भेजा करती थी। प्रातः कोई भी बालक बिना दर्शन किये नाश्ता नहीं कर सकता था यह कड़ा नियंत्रण था। यही कारण था कि सभी बालक-बालिकायें इसी धर्म के साँचे में ढलते चले गये।

मैना को वैराग्य

अब मैना १६ वर्ष की हो चुकी थीं। घर में जब भी पिता आते। दादी जी कहने लगती— "बेटा छोटेलाल! अब बिटिया सयानी हो गई है इसके लिए कोई अच्छा बर ढूँढो और विवाह करो।"

पिता कह देते—

"अच्छा, देखो आजकल में कहीं न कहीं बात करने जायेंगे।"

माँ मोहिनी भी प्रायः कहा करती थीं—

"अब पुत्री के लिए योग्य वर देखना चाहिये।"

इधर मैना इन बातों को सुनकर मन ही मन सोचने लगती थी—

"भगवन्! क्या उपाय करूँ कि जिससे विवाह बंधन में न फँसकर 'अकलंक देव' के समान घर से निकलकर आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लूँ और खूब अच्छी संस्कृत पढ़कर धार्मिक ग्रन्थों का गहरा अध्ययन करूँ। आत्म कल्याण के पथ को अपना कर अपना मानव जीवन सफल करूँ।"

बात यह है कि मैना को दर्शनकथा, शीलकथा, जंबूस्वामी चरित, अनंतमती चरित आदि पढ़-पढ़कर तथा खास करके 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' का बार-बार स्वाध्याय करके सच्चा वैराग्य प्रस्फुटित हो चुका था। अतः एक दिन अवसर पाकर मैना ने विवाह के लिये 'ना' कर दिया। इन लोगों के अथक प्रयासों के बावजूद भी वे कथमपि गृह बंधन में पड़ने को तैयार नही हुईं। पुण्य योग से आचार्यश्री देशभूषण जी महाराज के दर्शन मिले और बाराबंकी में वह शुभ घड़ी आ गई कि जब मैना ने सभा मे अपने हाथों से अपने केशों को उखाड़ना शुरू कर दिया। जनता आश्चर्य चकित हो गई। कुछ लोग विरोध में खड़े हो गये तभी बाराबंकी के मोहिनी के मामा बाबूराम जी ने मैना का हाथ पकड़कर केशलोंच करने से रोक दिया।

फिर भी मैना हिम्मत नहीं हारी, धैर्य के साथ चतुराहार त्यागकर जिनेन्द्र देव की शरण ले ली। आखिर में माता मोहनी का हृदय पिघल गया और उन्होंने साहस करके अथवा 'निर्मोहिनी' बनकर आ० देशभूषण जी महाराज से मैना को ब्रह्मचर्यव्रत देने के लिए स्वीकृति दे दी। वह भी धन्य थी और वह दिवस भी धन्य था कि जिस घड़ी जिस दिन मैना ने त्रैलोक्यपूज्य ब्रह्मचर्यव्रत को आजन्म ग्रहण किया था। सचमुच में मैना ने उस समय एक आदर्श उपस्थित कर दिया था। आसोज सुदी १५, शरद पूर्णिमा का (सन् ५२ का) वह पावन दिवस था और वह घड़ी प्रातः सूर्योदय के समय की थी कि जिसने मैना के जीवन प्रभात को विकसित कर उनके द्वारा अगणित भव्यों को सुरभित किया है।

मैना ने गृह त्याग किया



८ नवम्बर १९५२ को बाराबंकी में कु० मैना का
निवृत्तिमार्ग पर आरूढ होने का प्रथम प्रसंग

इसके बाद पिता छोटेलाल ने बहुत ही प्रयत्न किया कि—

"बेटी मैना ! अब भी तुम टिकैतनगर चलो, भले ही घर में मत रहना, मैं अन्यत्र कमरा बनवा दूँगा। अथवा मन्दिर में ही रहना। किन्तु अभी तुम्हारी बहुत छोटी उम्र है अभी तुम हमारी नजर से परे न होवो। गाँव में ही रहो, तुम्हारे धर्मध्यान में हम लोग जरा सी भी बाधा नहीं डालेंगे।"

किन्तु मैना ने कथमपि स्वीकार नहीं किया क्योंकि उन्हें तो दीक्षा चाहिये थी। सन् १९५२ का चातुर्मास आ० देशभूषण जी ने पूर्ण किया और बाराबंकी से विहार कर दिया। महावीरजी तीर्थ पर आ गये।

इधर माता-पिता मैना के वियोग से दुःखी हो अपने गृहस्थाश्रम को उजड़ा हुआ सूना-सूना देखते थे ओर अश्रु बहाते हुए शोक किया करते थे। माता मोहिनी की गोद में उस समय एक पुत्री और थी जिसका मैना ने बड़े प्यार से मालती नाम रक्खा था और उसे २२ दिन की छोड़कर अपने जन्म स्थान के गृहपींजड़े से निकलकर संघरूपी आकाश में उड़ गई थीं।

[४]

आचार्यश्री वीरसागर जी के संघ का दर्शन

सन् १९५३ की ही बात है। आ० श्री वीरसागर जी का संघ सम्मेदशिखर से विहार करता हुआ अयोध्या जी तीर्थक्षेत्र पर आ पहुँचा। उस प्रान्त के लोग इतने बड़े संघ का दर्शन कर बहुत ही हर्षित हुए। टिकैतनगर के श्रावकों ने भी प्रयास करके आचार्यकल्प के संघ को अपने गाँव में ले जाना चाहा। भावना सफल हुई और संघ का शुभागमन टिकैतनगर मे हो गया। उस समय टिकैतनगर मे भगवान् नेमिनाथ की विशालकाय मूर्ति को नूतन वेदी में विराजमान करने के लिए वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव चल रहा था। आचार्यकल्प श्री वीरसागर जी के संघ के पदार्पण से इस महोत्सव मे चार चाँद लग गये।

माता मोहिनी के हर्ष का पारावार नहीं था। वे इतने बड़े संघ का दर्शन कर गद्गद हो रही थी। संघ में ४-५ आर्यिकाओं को देखकर वे रो पड़ी, उनका हृदय भर आया और वे सोचने लगीं—"अहो! मेरी बेटी ने तो आर्यिकाओं को देखा भी नही था पुनः उसके भाव दीक्षा लेने के, केशलोंच करने के कैसे हो गये। क्या उसने पूर्वजन्म में दीक्षा ली थी। ... ..." इत्यादि सोचते हुए वे उन आर्यिकाओं को एकटक देख रही थी और अपनी आँखों के आँसू बार-बार अपने आँचल से पोंछ रही थी। तभी आर्यिकाओं ने अनुमान लगा लिया कि "सुना था एक कन्या ने बाराबंकी में अपने आप आ० देशभूषणजी महाराज के सामने केशलोंच करना प्रारम्भ कर दिया था। तब वहाँ पर बहुत ही हंगामा मचा था, अन्ततोगत्वा वह घर नही गई थी और ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया था। शायद यह महिला उसी "मैना" कन्या की माँ होगी।"

एक आर्यिका ने सहसा पूछ लिया—"बाई! तुम क्यों रो रही हो?" मोहिनी ने कहा—"माताजी! मेरी बेटी मैना अभी बहुत ही छोटी है। उसे वैराग्य हो गया। तब सबके बहुत कुछ रोकने पर भी वह नहीं मानी। अभी वह आचार्य देशभूषणजी महाराज के संघ मे चली गई है। पता नही अब कहाँ पर है?" इतना कहकर वे पुनः रो पड़ीं। तभी संघ की वयोवृद्ध आर्यिका सुमतिमती माताजी ने उन्हें अपने पास बिठाया और सान्त्वना देते हुए कहा—"तुम रोती क्यों हो? वह कन्या अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहती है तो अच्छा ही है, बुरा क्या है? अरे बाई! आज कल के जमाने में यदि किसी की लड़की कहीं भाग जाती है तो भी माता-पिता रोकर रह जाते है और उनका कुल कलंकित हो जाता है। वे मुंह दिखाने में भी संकोच करते हैं। फिर तुम्हारी लड़की ने तो बहुत ही अच्छा मार्ग चुना है। उसने तो तुम्हारे कुल को उज्ज्वल कर दिया है और तुम्हारा मस्तक ऊँचा कर दिया है।"

तब मोहिनीजी ने कहा—"माताजी, आ० देशभूषणजी महाराज के साथ में एक भी आर्यिका नहीं है। जब मैना ने बाराबंकी में आठ गज की साड़ी पहनी तब उसे पहनना भी नहीं आया। उसने गुड़िया जैसे अपने सारे शरीर को लपेट लिया था। और उसे चलना भी नहीं आ रहा था। तब आरा की एक महिला ने उसे साड़ी पहनाई थी। उसने आर्यिकाओं को देखा भी नहीं है। अतः उसे कुछ भी नहीं मालूम है। वह कहीं भी तुम्हें मिल जाये तो उसे अपने साथ में ले लेना।"

मोहिनी के ऐसे भोले वाक्यों को सुनकर सभी आर्यिकायें कुछ हँसीं और अच्छा, जब वह मिलेंगी तब देखेंगे, ऐसा कहकर सान्त्वना दी। इसके बाद मोहिनीजी संघ की प्रमुख आर्यिका वीरमती माताजी के पास पहुँची। उनसे परिचय और वार्तालाप होने के बाद माँ ने उन्हें भी अपना दुःख कह सुनाया और बार-बार प्रार्थना की कि "हे माताजी ! मेरी बिटिया जहाँ कहीं आपको मिल जाये तो आप उसे अपने संघ में ले लेना।"

इधर वेदी प्रतिष्ठा के प्रमुख समय पर कुछ घटना घटी। वह इस प्रकार है कि वहाँ पर पहले से एक प्रतिष्ठाचार्य आये हुए थे। वह भगवान् को वेदी मे विराजमान करते समय वहाँ पर खड़े थे। समाज के प्रमुख श्रावकों ने आ० कल्प श्री वीरसागरजी से प्रार्थना की कि "महाराज ! आप संघ सहित मंदिरजी में पधारें। हम लोग आपके करकमलों से भगवान् को वेदी मे विराजमान कराना चाहते हैं।" आ० क० महाराज जी वहाँ पर अपने विशाल संघ सहित आ गये। संघ के कुशल प्रतिष्ठाचार्य ब्र० सूरजमल जी भी वहाँ पर आ गये।

वहाँ के प्रतिष्ठाचार्य ने वेदी में "श्रीकार" आदि नही बनाया था। वे अपने को कट्टर तेरापंथी कह रहे थे। आचार्य कल्प ने ब्र० सूरजमल से कहा "तुम वेदी मे "श्रीकार" लिखकर विधिवत् यन्त्र स्थापित कर प्रतिमा विराजमान कराओ।" वहाँ के प्रतिष्ठाचार्य उलझ गये, बोले—"भगवान् जहाँ विराजमान होंगे वहाँ केशर से "श्री" कतई नहीं लिखी जा सकती।" आचार्य कल्प ने ब्र० सूरजमल को कहा यहाँ विधिवत् क्रिया होगी तो मै रुकूँगा अन्यथा चला जाऊँगा।" ऐसा सुनते ही टिकैतनगर के प्रमुख श्रावकों ने शीघ्र ही प्रतिष्ठाचार्य से निवेदन किया कि—आप अपना हठ छोड़ दें। इस समय हमारे परम पुण्योदय से महान् संघाधिनायक आ० क० वीरसागर जी महाराज विराजमान हैं। उनके आदेशानुसार ही सब विधि होगी।"

इतना कहने के बाद उन लोगों ने आ० कल्प से निवेदन किया—"महाराज जी ! आप आगम विधि के अनुसार क्रिया करवाइए।" महाराज के आदेश से ब्र० सूरजमलजी ने शुद्ध केशर से "श्रीकार" लिखकर आचार्य कल्प के हाथों से वहाँ "अचलयन्त्र" स्थापित करवाया। पुनः मन्त्रोच्चारण करते हुई आचार्य कल्प के करकमलों का स्पर्श कराकर भगवान् नेमिनाथ की प्रतिमा को उस नूतन वेदी में विराजमान कराया। भगवान् को विराजमान करते समय मंदिरजी में विविध बाजे, नगाड़ों की ध्वनि के साथ बहुत ही जोरों से भक्तों ने जय जय घोष किया—"भगवान् नेमिनाथ की जय हो, आचार्य कल्प श्री वीरसागरजी महाराज की जय हो।" इस जयकार के नारे से सारा गाँव मुखरित हो उठा। लोगों के मन में उस समय जो आनन्द आया वैसा आनन्द शायद पुनः नही आयेगा।

इस उत्सव मे पिता छोटेलालजी बहुत ही रुचि से भाग ले रहे थे और माता मोहिनी तो मानों संघ के सभी साधुओं को अपना परिवार ही समझ रही थीं। संघ के सभी साधुओं से माता-

पिता को विशेष वात्सल्य मिला था। मोहिनी देवी आर्यिकाओं के पास में आकर उनके पास बैठ कर कुछ चर्चायें किया करती थीं। और कभी कभी उन आर्यिकाओं से उनका पूर्व परिचय पूछ लिया करती थीं। जब उन्हें पता चला कि इन आर्यिकाओं में कोई भी कुमारिका नहीं है। आर्यिका वीरमतीजी, आ० सुमतिमतीजी, आ० पार्श्वमतीजी, आ० सिद्धमतीजी और आ० शांतिमतीजी ये पाँच आर्यिकायें प्रायः वृद्धा थीं। उन सबका परिचय ज्ञात कर माता मोहिनीजी ने घर में आकर पिता को बतलाया तो वे कहने लगे कि—

"तुम्हारे भाई महीपालदास ने यह शब्द कहे थे कि कुँवारी लड़कियों की दीक्षा नहीं होती है तो क्या सच बात है ? देखो भला, इन आर्यिकाओं मे एक भी कुँवारी नहीं है। और सभी बड़ी उम्र की हैं। अरे ! मेरी बेटी तो अभी मात्र अठारह साल की है।" तब माँ ने कहा ऐसा नही सोचना चाहिए। मैना बिटिया कहा करती थी कि भगवान् आदिनाथ की पुत्री ब्राह्मी सुन्दरी ने दीक्षा ली थी। अनन्तमती ने तथा चन्दना ने भी दीक्षा ली थी। ये सब कुमारिकायें ही थीं फिर आचार्य देशभूषण जी महाराज ने भी तो यही बतलाया था कि कुमारी कन्यायें दीक्षा ले सकती हैं। कोई बाधा नही है।" इस बात पर पिताजी बोले—देखो, सभी लोग आज भी यही कर रहे हैं कि इस इलाके में सैकड़ों वर्ष का कोई रेकार्ड नहीं है कि किसी ने इस तरह इतनी छोटी उम्र मे दीक्षा ली हो। जो भी हो अब तो वह दीक्षा लेगी ही, किसी की मानेगी नहीं क्या करना ?" इत्यादि प्रकार से घर में चर्चा चला करती थी। जब संघ का गाँव से विहार होने लगा तब भी मोहिनीजी बार-बार आर्यिकाओं से प्रार्थना कर रही थी—"माताजी ! मेरी पुत्री जहाँ कही तुम्हें मिले तुम उसे अवश्य ही अपने साथ में ले लेना, वह अकेली है।" इत्यादि।

संघ टिकैतनगर से निकलकर लखनऊ, कानपुर आदि होते हुए श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र पर पहुँचा। वहीं पर आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज विराजमान थे। दोनों संघों का मिलन हुआ। क्षु० वीरमतीजी ने अपने जीवन में पहली बार आर्यिकाओं को देखा था अतः वे बहुत ही प्रसन्न हुईं और क्रम से सभी के दर्शन कर रत्नत्रय की कुशल क्षेम पूछी। आर्यिकाओं ने भी बहुत ही वात्सल्य से क्षुल्लिका वीरमती को पास में बिठाया। रत्नत्रय कुशलता की पृच्छा के बाद वे टिकैतनगर की बातें सुनाने लगी, बोली—"तुम्हारी माँ रो-रोकर पागल हो रही है, कहती थी—"मेरी बेटी अकेली है तुम साथ ले लेना।"

इत्यादि। क्षु० वीरमतीजी सुनकर मंद मुस्करा दी और कुछ नहीं बोली। तभी एक आर्यिका ने कहा—"हाँ, अपने दीक्षा गुरु को भला इतनी जल्दी कौन छोड़ देगा।"

अनन्तर क्षु० वीरमती ने संघ की प्रमुख आर्यिका वीरमती माताजी के पास बैठकर बहुत सी चर्चायें कीं। जब वे आ० देशभूषणजी के पास दर्शनार्थ आईं। महाराज जी ने पूछा—"बताओ वीरमती ! इतने बड़े संघ के दर्शन कर तुम्हे कैसा लगा ?" माताजी ने कहा—"महाराज जी ! बहुत अच्छा लगा।" तब पुनः महाराज जी ने कहा—"तुम अब इसी संघ मे रह जाओ। वृद्धा आर्यिकायें हैं। तुम्हें उनके साथ विहार करने में सुविधा रहेगी।" तब माताजी का मन कुछ उद्विग्न हो उठा। एकदम अपरिचित संघ में कैसे रहना ? आदि। उनके मुख की उदासीनता को देखकर और उनके मनोभाव को समझकर क्षु० ब्रह्ममतीजी ने कहा—"महाराज जी ! अभी बहुत छोटी है इसे घबराहट होती है। अभी ये मात्र एक माह की ही दीक्षित है। भला एक माह की बालिका

अपने माँ बाप को (गुरुको) छोड़कर कैसे रह सकती है ? आचार्य महाराज हँस दिए, बोले—ठीक है हमारे साथ पैदल विहार में खूब चलना पड़ेगा ये कैसे चलेगी ?……"।

कुछ दिनों बाद आचार्य देशभूषण जी के संघ का विहार वापस लखनऊ की ओर हो गया।

[९]

पुत्री के साध्वी रूप में दर्शन

माँ मोहनी देवी अपनी बड़ी बहन लहरपुर वाली के पुत्र कल्याणचन्द के साथ सोनागिरि आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी पहुँचती हैं। मन्दिर में प्रवेश कर सातिशय मूर्ति भगवान् महावीर की प्रतिमा के दर्शन कर बाहर निकलती हैं तो देखती हैं मंदिर जी के नीचे एक तरफ कमरे में कुछ यात्री दर्शन के लिए प्रवेश कर रहे हैं, कुछ बाहर निकल रहे हैं। अन्दर कमरे मे प्रवेश कर देखा पुत्री मैना क्षुल्लिका के वेष में एक सफेद साड़ी में वहाँ विराजमान हैं और उनके हाथ मे एक सुन्दर सी मयूर पंख की पिच्छिका है। पास मे ही दूसरे पाटे पर एक प्रौढ़वयस्का दूसरी क्षुल्लिका बैठी हुई हैं। छोटी क्षुल्लिका तो अपने सामने शास्त्र रखे उसी के स्वाध्याय में मग्न हैं और बड़ी क्षुल्लिका जी आये गये यात्रियों से कुछ वार्तालाप भी कर रही हैं।

मोहिनी जी के हृदय में मोह का प्रवाह उमड़ा, बरबस ही नेत्रों से आंसू छलक पड़े। उन्होंने गवासन में बैठकर माताजी को "इच्छामि" कहकर नमस्कार किया और सिसक-सिसक कर रो पड़ी। क्षुल्लिका वीरमती ने माथा ऊँचा किया, जन्मदात्री जननी को देखा और सहसा बोल पड़ी —"अरे ! रोना क्यों ?" और पुनः गंभीर मुद्रा मे माथा नीचा कर लिया। उसी क्षण क्षुल्लिका ब्रह्ममती जी को यह समझते देर न लगी कि ये महिला इनकी माता हैं। उन्होंने बड़े ही प्रेम से उनको सान्त्वना दी। कहने लगी—"बाई ! आप रोती क्यों हैं ? आपकी बालिका ने इतनी छोटी सी वय मे दीक्षा लेकर जगत् को आश्चर्यचकित कर दिया है। अहो ! तुम्हारी कूँख धन्य है जिससे तुमने इस कन्यारत्न को पैदा किया है। आज के युग में कौनसी ऐसी माता होगी जो ऐसी साहसी, वीरांगना कन्या की माता कहलाने का सौभाग्य प्राप्त कर सके।" …………इत्यादि वचनों से उनका शोक हल्का किया। पुनः कुशल क्षेम के बाद मोहिनी जी ने पूछा "इनकी दीक्षा कब हुई ?' क्षुल्लिका ब्रह्ममती जी ने बताया—'फाल्गुन आष्टान्हिका पर्व के अनन्तर ही सोलहकारण पर्व के प्रथम दिन अर्थात् चैत्र कृष्णा प्रतिपदा के दिन प्रातः इसी प्रांगण में इनकी क्षुल्लिका दीक्षा आचार्यश्री देशभूषण जी महाराज के कर कमलों से संपन्न हुई है। अब इनका दीक्षित नाम 'वीरमतीजी' है। आचार्य महाराज ने सभा में स्पष्ट शब्दों में यह कहा था कि घर से निकलते समय इतने भयंकर संघर्षों को जिस वीरता से इसने सहन किया है, आज तक ऐसी वीरता मैंने किसी मे नही देखी, इसीलिये मैं इसका 'वीरमती' यह सार्थक नाम रख रहा हूँ। तभी सभी मे क्षुल्लिका वीरमती की जय हो, ऐसा तीन बार जयघोष हुआ था।"

मोहिनी जी ने पुनः पूछा कि "भला दीक्षा के समय घर वालों को सूचना क्यों नहीं दी गई !" क्षुल्लिका ब्रह्ममती जी ने कहा कि "चलो आचार्य महाराज जी के दर्शन करो और यह प्रश्न आप उन्ही से पूछ लो।" तभी ब्रह्ममती तत्क्षण ही उठ खड़ी हुईं और वीरमती का हाथ पकड़कर उठा लिया, बोली—"चलो चलें आचार्य महाराज जी के दर्शन कर आवें।" मोहिनी जी

अपने नेत्रों के अश्रुओं को पोंछते हुए उन दोनों साध्वियों के साथ चल रही थीं। कुछ ही दूर जीने से ऊपर चढ़कर पहुँचीं। ऊपर कमरे मे आचार्य श्री आसन पर विराजमान थे। उनके पास जयपुर शहर के कतिपय विशिष्ट श्रेष्ठीगण बैठे हुए थे। दोनों क्षुल्लिकाओं ने अतीव विनय से आचार्य श्री के सामने एक तरफ गवासन से बैठकर उन्हे 'नमोऽस्तु' कहकर नमस्कार किया और वे यहाँ भी अपने अश्रुओ को न रोक सकी। रोते हुए बोली—

"महाराज जी ! इनकी दीक्षा के समय·········हमें सूचना, कि बीच मे ही आचार्य महाराज हँसते हुए बोले—

"बाई सूचना क्या देते ? और कैसे देते ? तुम्हारे से तो हमने स्वीकृति ले ही ली थी। और तुम्हारे पतिदेव तो इसे किसी भी तरह दीक्षा नहीं लेने देते। वे बहुत ही मोही जीव हैं। इसलिए मैंने सूचना नहीं भिजवाई। देखो, हमने मार्ग मे भी इसके त्याग भाव की, दृढ़ता की, कठोर परीक्षा ले ली थी। मुझे दीक्षा के लिए सबसे बढ़िया उत्तम पात्र प्रतीत हुआ फिर भला मै अब इसकी प्रार्थना को इसकी भावना को कहाँ तक ठुकराता ? अतः जो हुआ है सो अच्छा ही हुआ है अब आप संतोष रक्खो।"

माताजी के रोते हुए चेहरे को, वीरमती क्षुल्लिका जी के वैराग्यमयी चेहरे को एकटक देखते हुए और महाराज जी की बातों को सुनते हुए जयपुर के श्रेष्ठीगण अवाक् रह गये। पुनः आचार्य श्री से निवेदन करने लगे—

"महाराज जी ! इतनी छोटी सी उम्र में यह बालिका खांडे की धार ऐसी जैनी दीक्षा को कैसे निभायेगी !"

महाराज ने कहा—"भाई ! इसके वैराग्य और वीरत्व को तुम लोग सुनो, आश्चर्य करोगे।

बाराबंकी मे यह चतुराहार का त्याग कर भगवान् के मंदिर मे बैठ गई और दृढ़ निश्चय कर लिया कि जब मै ब्रह्मचर्यव्रत ले लूँगी तभी अन्नजल ग्रहण करूँगी। १२ घण्टे तक इसने भगवान् की शरण ली। पुनः अपनी माँ को समझा कर शांत कर मेरे पास ले आई। माता ने भी यही कहा—महाराज जी ! यह बहुत ही दृढ है तभी मैने इसे आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत दे दिया। लगभग पाँच महीने तक इसने दीक्षित साध्वी के समान ही चर्या पाली है। मात्र एक साड़ी में ही माघ पौष की ठण्डी निकाली है। यह बालिका बहुत ही होनहार है इसके द्वारा जैनधर्म की बहुत ही प्रभावना होगी।"

इतना सुनकर श्रावक लोग बहुत ही प्रसन्न हुए और क्षुल्लिका वीरमती को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हुए नमस्कार किया। पुनः माता मोहिनी से बोले—

"माताजी ! अब तुम्हें भी शांति रखनी चाहिये। अब तो इसके उज्ज्वल भविष्य की ही कामना करनी चाहिये।"

इसके बाद मोहिनी देवी कुछ देर तक आचार्य श्री के समीप ही बैठी रहीं। कुछ और धार्मिक चर्चायें हुईं,[सुनती रहीं। पुनः नीचे कमरे में अपनी सुपुत्री अथवा क्षुल्लिकाजी के पास आ गई। वे महावीरजी क्षेत्र पर कई दिन ठहरीं तो उन्हीं क्षुल्लिकाओं के निकट ही रहती थी रात्रि में भी वहीं सोती थीं। मात्र भोजन बनाने खाने के लिए अन्य कमरे मे जाती थी। उन्होंने बारीकी से देखा—

क्षुल्लिका वीरमती अब ब्रह्ममती क्षुल्लिका को ही अपनी माँ के रूप में देखती हैं। प्रातः

काल से रात्रि में सोने तक उनकी सारी चर्या उनके साथ ही चलती है। साथ ही बाहर जाती हैं, साथ ही मन्दिर के दर्शन करने जाती हैं और साथ ही आचार्य श्री के दर्शन करने जाती हैं। इनका आहार बहुत ही थोड़ा है, आहार में नमक है या नहीं, दूध में शक्कर है या नहीं इन्हें कुछ परवाह नहीं है। जब तक वे रहीं आहार देने जाती थीं। जैसे-तैसे अपने अश्रुओं को रोककर आहार मे एक दो ग्रास देकर अपना जीवन धन्य समझ लेती थीं और भावना भाती थीं—

"भगवन् ! ऐसा दिन मेरे जीवन में भी कभी न कभी अवश्य आवे, मैं भी सब कुटुम्ब परिवार का मोह छोड़कर दीक्षा लेकर पीछी कमण्डलु और एक साडी मात्र परिग्रह धारण कर अपनी आत्मा की साधना करूँगी।"

क्षुल्लिका वीरमती उस समय आचार्य श्री की आज्ञा से भगवती आराधना का स्वाध्याय कर रही थीं। वसुनंदिश्रावकाचार तथा परमात्मप्रकाश का भी स्वाध्याय कर रही थीं। माता मोहिनी मध्यान्ह में उनके पास बैठ जाती तो क्षु० वीरमती उन्हें उन ग्रन्थों के महत्त्व पूर्ण अंशों को सुनाने लगती वे ध्यान मे सुनती और प्रश्नोत्तर भी चलता। यह सब देखकर क्षु० ब्रह्ममती माता जी बहुत ही प्रसन्न होतीं। माता मोहिनी ने एक दिन एकान्त देखकर क्षुल्लिका वीरमती जी से कहा—

"माताजी ! इस समय घर का वातावरण बहुत ही कारुणिक है। रवीन्द्र कुमार आज छह महीने हो गये 'जीजी-जीजी' कहकर रोया करता है, बहुत ही दुबला हो गया है। सभी बच्चे अपनी मैना जीजी को पुकारा करते है। और तुम्हारे पिता तो पागल जैसे हो गये है। जब शाम को दुकान से घर आते है तब बाहर के अहाते से ही—

"अरे बिटिया मैना ! तुम कहाँ चली गई।"

ऐसा कहते हुए और रोते हुए घर में घुसते हैं तो चाबी का गुच्छा एक तरफ डालकर बैठ जाते हैं। उन्मनस्क चित्त सोचते ही रहते हैं। बड़ी मुश्किल से कुछ खाना खाते हैं। क्या करूँ ? कैसे करूँ ? मेरा मन भी अब घर मे नहीं लगता है। मन बहलाने के लिये ही, पता कितनो मुश्किल से जीवन मे पहली बार तुम्हारे पिता के अतिरिक्त मैं अकेली इन कल्याणचंद के साथ यात्रा करने आ गई हूँ कि शायद वहाँ री बिटिया मैना कहीं मिल जायेगी। भाग्य से आपका दर्शन हो गया है।........"

इतना कहते-कहते वे रोने लगीं। तब क्षुल्लिका वीरमती ने उन्हे सान्त्वना दी और समझाया—

'देखो ! अनन्त संसार मे भ्रमण करते हुए हमें और आपको तथा सभी को अनन्त काल निकल गया है। भला इसमें कौन किसको माता है। यह सब झूठा संसार है,........इसमे मात्र एक धर्म ही सार है।"

इत्यादि रूप मे समझाने पर जब माता मोहिनी का मन कुछ हल्का हो गया तब वे पुनः बोलीं—

"माताजी ! किसी क्षण तो मेरा भाव हो जाता है कि मैं भी दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करूँ। किन्तु यह छोटी सी बालिका (९ महीने की) मालती अभी मेरी गोद मे है। घर में छोटे-छोटे बच्चे मेरे लिए बिलख रहे होंगे।........क्या करूँ ? गृहस्थाश्रम की इतनी बड़ी जिम्मेवारी इस समय मेरे ऊपर है कि कुछ सोच नहीं सकती हूँ ....।"

इस प्रकार से माता मोहिनी अपनी पुत्री •मैना के साध्वी रूप में प्रथम बार दर्शन किये और जैसा कुछ देखा सुना था वहाँ से घर आकर अपने पतिदेव को सुनाया, बच्चों को सुनाया। दीक्षा के समाचार सुनकर पिता आहत हुए, सहसा भूमि पर हाथ टेककर बेठ गये। और दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए बोले—'ओह ! मेरी प्यारी बिटिया मैना अब मेरे घर कभी नहीं आयेगी।' जोर-जोर से रोने लगे। मोहिनी जी ने सान्त्वना दी, समझाया और कहा—

"रो-रो कर अपनी आँख क्यों खराब करते हो ? जब चाहे तब बिटिया मैना के दर्शन करने चलना, अब तो वे जगत्पूज्य हो गई हैं, माताजी बन गई हैं।' इसके बाद भी बहुत दिनों तक घर में मैना बिटिया की क्षुल्लिका वीरमती माता जी, आचार्य देशभूषण महाराज जी की और त्याग धर्म की चर्चा चलती रही। सभी भाई-बहन जीजी के अर्थात् क्षुल्लिका वीरमती जी के दर्शन के लिए आग्रह करते रहे। और समम बीतता गया। दो माह-वैशाख, ज्येष्ठ ही व्यतीत हुए थे कि संघ महावीर जी से विहार कर पुनः लखनऊ होकर दरियाबाद टिकैतनगर से ६ मील दूरी पर आ गया।

[६]

क्षु० वीरमती के प्रथम चातुर्मास का पुण्यलाभ

एकदिन मन्दिर में आकर पिताजी बोले—

"आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज अपने संघ सहित दरियाबाद आये हुए हैं। यहाँ से संतूमल आदि कुछ श्रावक महाराज जी के पास नारियल चढ़ाकर चातुर्मास के लिये प्रार्थना करने गये थे। किन्तु लोगों का ऐसा कहना है कि मैना के बाराबंकी मे केशलोंच करते समय जो उपद्रव हुआ था और उनके पिता छोटेलाल जी ने भी बहुत ही विरोध किया था सो जब तक वे महाराज जी के पास प्रार्थना करने नहीं आयेंगे तब तक महाराज जी यहाँ चातुर्मास करने की स्वीकृति नहीं देंगे।"

माँ ने कहा—"हाँ, आज मंदिर जी मे कुछ ऐसी ही चर्चा मैंने भी सुनी है। मैं तो मंदिर जी में किसी से बाते करती नहीं हूँ अतः कुछ पूछा नही है। तो ठीक है आप दरियाबाद चले जाओ, अपनी बिटिया के दर्शन भी कर लेवो और महाराज जी के समक्ष नारियल चढ़ाकर प्रार्थना भी कर लेना।"

पिताजी ने कहा—"हाँ, मेरी भी यही इच्छा है अब मैं भोजन करके तत्काल ही जाना चाहता हूँ।"

पिताजी दरियाबाद पहुँचे। कई एक श्रावक टिकैतनगर से और भी उनके साथ थे। वे सब पहुँचकर सबसे पहले क्षुल्लिका श्री वीरमती जी के स्थान पर पहुँचे। वहाँ दोनों क्षुल्लिकायें एक तख्त पर बैठी हुई थी। पिता ने अपनी पुत्री को देखा, उनके हृदय मे मोह का वेग उमड़ा। वे अपने को नहीं रोक सके और सहसा रो पड़े। वहीं पर बैठे हुए स्थानीय कुछ वृद्ध पुरुषों ने उन्हे समझाया सान्त्वना दी और कहा—

"छोटेलाल जी ! आप धन्य हैं आपकी पुत्री मैना जगत् में पूज्य जगन्माता बन गई है। अब आपको प्रसन्न होना चाहिए, रोने की भला क्या बात है ?

जैसे-तैसे उन्होंने अपने आंसू रोके, क्षुल्किाओं को नमस्कार किया। पुनः पास में बैठ गये और बोले—

"माताजी ! अब यह अपना चातुर्मास आप टिकैतनगर ही कीजिये।"

माताजी ने कोई उत्तर नहीं दिया। तो वे पुनः पुनः आग्रह करने लगे तब माताजी ने कहा—

"यह विषय आचार्य महाराज का है, मेरा नही है वे जहाँ चातुर्मास करेंगे मैं वही रहूँगी। अतः आप आचार्य महाराज से निवेदन कीजिये।"

इतना सुनकर वे सब लोग आचार्य श्री के पास पहुँच गये। नमोऽस्तु करके बैठ गये। तभी महाराज जी बोल उठे—

"कहो छोटेलाल जी ! अपनी पुत्री मैना के दर्शन कर लिये।"

वे बोले—

"हाँ, महाराज जी ! अब वे पुत्री कहाँ रहीं ! अब तो वे माताजी बन गई हैं।

फिर हँसते हुए बोले—

"महाराज जी ! अब यह चातुर्मास आपको टिकैतनगर ही करना है।"

महाराज जी हँस दिये और बोले—

"हाँ, तुम्हें तो अपनी माताजी के चातुर्मास कराने की लग रही है।"

सब लोग हँसने लगे—

"महाराज जी ! हमारे लिये पहले तो आप ही हैं अनन्तर वो हैं। गतवर्ष भी हम टिकैतनगर के लोग आपके चातुर्मास कराने मे लाखों प्रयत्न किये किन्तु भाग्य ने साथ नहीं दिया। अब की बार तो हम लोग आपकी स्वीकृति लेकर ही जावेंगे।"

बहुत कुछ चर्चा वार्ता के अनन्तर महाराज जी ने आखिर मे टिकैतनगर चातुर्मास की स्वीकृति दे ही दी। यद्यपि दरियाबाद और लखनऊ के श्रावकों का भी विशेष आग्रह था फिर भी टिकैतनगर वालों का पुण्य काम कर गया और चातुर्मास स्वीकृति का समाचार मिलते ही टिकैतनगर में हर्ष की लहर दौड़ गई।

सन् १९५३ में आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज ने वर्षायोग स्थापना टिकैतनगर मे की। संघ में क्षु० ब्रह्ममती माताजी और क्षु० वीरमती माताजी थीं। प्रतिदिन आचार्य महाराज का प्रवचन होता था और सायंकाल में श्रावक-श्राविकायें अधिक सख्या मे एकत्रित होकर गाजे बाजे के साथ आचार्य श्री की आरती करते थे। रात्रि में भजनों का कार्यक्रम रहता था। ऐसे मधुर वातावरण में चातुर्मास संपन्न हो रहा था। प्रतिदिन माँ मोहिनी जिनेन्द्र देव की पूजा करके गुरु का दर्शन करती तथा प्रतिदिन वे घर में चौका लगातीं थीं। तीन साधु थे और गाँव मे चौके १७-१८ थे, अतः १०-१२ दिन में ही घर में आचार्य श्री के आहार का लाभ मिल पाता था ! फिर भी माँ समझती थीं कि हमने पड़गाहन किया तो हमें आहार दान का पुण्य मिल ही गया है। क्षु० ब्रह्ममती जी के आहार तो बहुत बार हुए थे किन्तु क्षु० वीरमती के आहार का लाभ कम ही मिलता था। एकदिन माताजी का पड़गाहन हो गया वे घर में आईं किन्तु आगन में कुछ गीला था अतः वे उल्टे पैर वापस जाने लगीं, उस समय पिताजी हड़बड़ा कर जल्दी से सूखती हुई अपनी धोती लेकर आँगन पोंछने लगे किन्तु माताजी वापस लौट गईं। उस दिन पिता ने ठीक से भोजन नही किया उन्हें बहुत ही दु ख रहा।

पिता प्रतिदिन क्षु० वीरमती जी के निकट बैठ जाते थे और घण्टों बैठे रहते थे। माताजी अपना शिर नीचा किये स्वाध्याय करती रहती थीं कुछ भी नहीं बोलती थीं। वे घर आकर बहुत ही उदास हो जाया करते थे और माँ मोहिनी से कहते—

"क्या करूँ घण्टों बैठा रहता हूँ माताजी एक शब्द भी नहीं बोलती हैं, मुझे बहुत ही दुःख होता है।" तब माँ कहतीं—

"तुम दुःख मत करो उनका बिल्कुल ही नहीं बोलने का स्वभाव बन गया है। और शायद लोग कहेंगे कि ये अपने माता-पिता से बातचीत किया करती हैं इसी संकोच में नहीं बोलती होंगी।"

फिर भी पिताजी कहते—

"असल में घर में वो सबसे ज्यादा मेरे से ही बोलती थीं सदा मुझे धर्म की बातें सुनाया करती थीं। स्वाध्याय के लिये आग्रह किया करती थी अब तो कुछ भी नहीं कहती हैं।"

इस प्रकार से समय व्यतीत हो रहा था। क्षु० वीरमती जी आचार्य श्री के पास १०-१५ दिन गोम्मटसार जीवकाण्ड का अध्ययन करती रहीं। गाँव के वयोवृद्ध सुप्रतिष्ठ व्यक्ति श्री पन्नालाल जी अधिकतर महाराज जी के पास ही बैठे रहते थे। उन्होंने क्षु० माताजी का क्षयोपशम देखा, आश्चर्य करने लगे। ये माता जी एक दिन २०-२० गाथायें याद करके सुना देती हैं। बहुत ही प्रसन्न हुए। ७०-८० गाथा होने के बाद महाराज जी ने कहा—

"वीरमती! तुम्हारी बुद्धि अच्छी है उच्चारण स्पष्ट और शुद्ध है अतः तुम्हे गुरु की आवश्यकता नही है तुम तो स्वयं ही गाथायें रट लो और उनका अर्थ याद कर लो।"

तबसे माता जी ने स्वयं याद करना प्रारम्भ कर दिया था।

माँ की ममता

क्षु० वीरमती जी स्वाध्याय बहुत किया करती थीं दिन में किसी समय भी पुस्तक को हाथ से नही छोड़ती थीं इससे इनकी आँखों में बहुत ही तकलीफ रहने लगी। एक वैद्य ने कहा—रात में सोते समय इनकी आँखों पर बकरी के दूध में भिगोकर रूई का फोया रख दिया करो। तब ब्रह्ममती माताजी ने शाम को माता मोहिनी से कहा कि तुम क्षु० वीरमती माताजी की आँखों पर बकरी के दूध का फोया रख जाया करो। उन्होंने सोचा, बकरी के दूध की अपेक्षा माँ का दूध का फोया अत्यधिक गुण करेगा इसलिए वे रोज रात्रि में नव बजे आकर बैठ जातीं। जब ये क्षु० वीरमती जी सो जातीं तब वे अपने दूध का फाहा बनाकर उनकी आँखों पर रख कर चली जातीं। उस समय मालती मात्र एक साल की ही उनकी गोद में थी।

प्रभावना

टिकैतनगर चातुर्मास में अनेक धार्मिक आयोजन हुए। एक बार आचार्य महाराज ने सिद्धचक्र मण्डल विधान का आयोजन बहुत ही सुन्दर ढंग से करवाया। ध्वजा के आकार जैसा मण्डल बनवाया। श्रावकों ने बड़े ही उत्साह से मिलकर रंग-बिरंगे चावल रंगकर सुन्दर पचरङ्गी ध्वजा के समान मण्डल तैयार कर दिया। विधान का कार्यक्रम बहुत ही सफल रहा। अन्त मे हवन में कई एक नई साड़ियाँ हवन कुण्डों में नीचे रख दी गईं। ऊपर मात्र पत्ते बिछा दिये गये। महाराज जी ने अग्नि स्तम्भन आदि विशेष मन्त्रों से हवन कुण्डों को मंत्रित कर दिया और हवन विधि करवा दी। पूर्णाहुति के अनन्तर शाम को अग्नि शांत हो जाने पर सभी साड़ियाँ निकाली गईं बिना बाधा के वे साड़ियाँ चमचमाती हुई निकल आईं। इससे उस प्रांत में आचार्य श्री के मन्त्र ज्ञान की बहुत ही प्रशंसा हुई। इस प्रभावना पूर्ण कार्य में माता मोहिनी ने भी रुचि से भाग लिया था।

चातुर्मास समाप्ति के बाद दक्षिण कोल्हापुर जिले से क्षु० विशालमती माताजी एक महिला

के साथ आचार्यश्री के दर्शनार्थ पधारीं। उन्होंने संघ में एक छोटी सी क्षुल्लिका को देखा तो उन्हें उन पर बहुत ही वात्सल्य उमड़ पड़ा। वे क्षु० वीरमती को अपनी गोद में सुला लेती थीं उन्हें बहुत ही प्यार करती थी। उनका असीम प्रेम देखकर माता मोहिनी और पिता छोटेलाल के हर्ष का पार नहीं रहा। क्षु० विशालमती माताजी दीक्षा से पूर्व एक कन्या पाठशाला की संचालिका और कुशल अध्यापिका रह चुकी थीं। आचार्य महाराज का उन पर असीम वात्सल्य था। क्षु० विशालमती टिकैतनगर निवासियों की देवभक्ति, गुरुभक्ति देखकर बोलीं—

"इतने वर्ष के दीक्षित जीवन में मैंने आज तक इतना भक्तिमान, गाँव नही देखा है।"

वे माता मोहिनी को भी बहुत ही वात्सल्य भाव से बुलाती थी। उनसे कु० मैना के बारे में कुछ न कुछ प्रारम्भिक बाते पूछा करती थीं और वे पिता छोटेलाल को कहा करती थी कि—

"आप सच्चे रत्नाकर हैं जो कि ऐसा उत्तम रत्न उत्पन्न कर समाज को सौंप दिया है।"

इस सब श्लाघनीय शब्दों से माता-मोहिनी और पिता छोटेलाल जी मन मे क्षु० वीरमती के उज्ज्वल भविष्य को सोचा करते थे और उस पूर्व के स्वप्न को याद कर हर्ष विभोर हो जाते थे कि जब गृहत्याग से लगभग छह माह पूर्व मैना ने स्वप्न देखा था कि 'मैं श्वेत वस्त्र पहन कर और पूजन की सामग्री हाथ में लेकर घर से मंदिर जा रही हूँ तथा आकाश मे पूर्ण चन्द्रमा दिख रहा है वह हमारे साथ चल रहा है। उसकी चाँदनी भी हमारे ऊपर तथा कुछ आस-पास ही दिख रही है। स्वप्न देखकर जागने के बाद मैना ने वह स्वप्न अपने माता-पिता को सुनाया था।

वैयावृत्ति भावना

संघ में क्षु० ब्रह्ममती माताजी थीं। चातुर्मास में उन्हें एकांतर से ज्वर (मलेरिया बुखार) आता था। उन्होंने बताया मुझे दो-तीन वर्षो से चौमासे मे यह बुखार आने लगता है। बुखार मे वे बहुत ही बेचैन हो जाती थीं। कभी-कभी बुखार की गर्मी से बडबड़ाने लगती थीं। उनकी ऐसी अस्वस्थता में क्षु० वीरमती उनके अनुकूल उनकी खूब ही वैयावृत्ति किया करती थी। आचार्य श्री भी यही उपदेश देते थे कि—

"देखो, वीरमती! वैयावृत्ति से बढ़कर और कोई दूसरा धर्म नहीं है। इस वैयावृत्ति से तीर्थंकर प्रकृति को बंध कराने वाला ऐसा पुण्य भी संचित हो जाता है।" इस प्रकार गुरु के उपदेश से तथा स्वयं के धर्म संस्कारों से ओतप्रोत क्षु० वीरमती सतत ही स्वाध्याय वैयावृत्ति आदि धर्माराधना मे लगी रहती थीं। माता मोहिनी भी उनके अनुकूल आहार व्यवस्था, औषधिव्यवस्था और वैयावृत्ति मे भी भाग लेती रहती थी।

मौनाध्ययनवृत्तित्व

आचार्यश्री ने एक बार कहा था कि—

"वीरमती! जब तक तुम अध्ययन में तत्पर हो तब तक अधिकतम मौन रखो क्योंकि 'मौनाध्ययनवृत्तित्व' यह एक बहुत बड़ा गुण है। इसी से तुम इच्छानुसार ग्रन्थों का अध्ययन कर सकोगी।"

तब से वीरमती जी ने गुरु की इस बात को गाँठ में ही मानों बाँध लिया था। चूंकि उन्हे बचपन से ही यह गुण (कम बोलना) प्रिय था। यही कारण था कि वे सभी से बहुत कम बोलती थीं।

शिष्या विद्याबाई

महावीरजी से ही क्षु० वीरमती माताजी के साथ में एक विद्याबाई नाम से महिला रहती थी। वह सदैव माताजी की आज्ञा में चलती थी और अध्ययन करती रहती थी। उसकी भी सरल भावना गुरु भक्ति और वैयावृत्ति का प्रेम अच्छा था।

इस प्रकार से धर्मप्रभावना के द्वारा अमृत की वर्षा करते हुए ही मानों चातुर्मास के बाद आचार्यश्री ने संघ सहित टिकैतनगर से विहार कर दिया। उस समय माता मोहिनी को बहुत ही दुःख हुआ किन्तु क्या कर सकती थीं। अब वह अपना मन प्रतिदिन देवपूजा, स्वाध्याय और जिन मंदिर में ही अधिक लगाती रहती थीं। घर की जिम्मेवारी होने से ही वे घर में आती थीं, अन्यथा शायद वे घर में भी न आतीं। उनके इस प्रकार ज्यादा समय मंदिर जी रहने से कभी-कभी पिताजी छोटेलाल जो चिढ़ जाते थे और मोहिनी जी के ऊपर नाराज भी होने लगते थे क्योंकि इतने बड़े परिवार की व्यवस्था छोटी-छोटी बालिकाओं के ऊपर तो नही चल सकती थी। अतः इच्छा न होते हुए भी माता मोहिनी को अपने गृहस्थाश्रम को विधिवत् सम्भालना पड़ता था।

[७]

अन्य पुत्र-पुत्रियों का विवाह

मैना की दीक्षा के बाद ही छोटेलाल जो ने बहुत ही जल्दी करके सोलह वर्ष की वय में ही शांतिदेवी का विवाह 'मोहोना' के सेठ गुलाबचंद के सुपुत्र राजकुमार के साथ सम्पन्न कर दिया था। उनके घर में ही चैत्यालय था वहाँ पर शांति ने अपने धर्म को सम्यग्दर्शन को अच्छी तरह से पाला था।

चातुर्मास के अनन्तर कुछ दिन बाद छोटेलाल जी ने भाई कैलाशचंद का विवाह वहीं के निवासी लाला शांतिप्रसाद जी की सुपुत्री चंदा के साथ सम्पन्न कर दिया। अब कैलाशचंद भी अपनी सोलह वर्ष की वय में ही गृहस्थाश्रम मे प्रवेश कर कुशल व्यापारी बन गये थे।

मैना के दीक्षा ले लेने से इधर इस घर के वातावरण में सतत धर्म की चर्चा ही रहा करती थी। वैसे परम्परागत सभी भाई-बहन नित्य ही मंदिर जाते थे, नियमित स्वाध्याय करते थे और धार्मिक पाठशाला में धर्म का अध्ययन करते रहते थे।

कैलाशचन्द को रोकना

एक दिन कैलाशचंद को अपनी जीजी मैना की अर्थात् क्षु० वीरमती माताजी की विशेष याद आई और उनके मन में उनके पास जाने का वहीं रहने का भाव जाग्रत हुआ। यह बात उन्होंने घर में किसी से नही बताई और सहसा बिना कहे घर से निकल पड़े। चतुराई से टिकैत-नगर से रवाना होकर दरियाबाद स्टेशन पर आये। कही का टिकट लिया और रेल में बैठ गये। सोचा कहीं दक्षिण में पहुँचकर माताजी का पता लगा लूँगा। इधर कैलाशचन्द के घर में न आने से घर में हलचल मची। चंदारानी भी घबराई।

"यह क्या हुआ। कही मेरे पतिदेव भी माताजी के संघ में पहुँचकर दीक्षा न ले लेवें ?"

बस उसी समय चारों तरफ से खोजबीन चालू हो गई। तभी कैलाशचंद के ससुर श्री शांति-प्रसाद जी जल्दी से दरियाबाद स्टेशन पहुँच गये और जो गाड़ी मिली उसी में बैठ गये। वह गाड़ी आगे जब किसी भी स्टेशन पर रुकती तब उसी रेल के एक-एक डब्बे में कैलाशचन्द को ढूंढने

लगते। आखिर भाई कैलाशचंद उन्हें मिल गये और उन्होंने जैसे-तैसे समझा-बुझाकर आग्रह, सत्याग्रह कर भाई कैलाशचंद को वापस ले आने का पूरा प्रयास किया जिसमें वे सफल हो गये और कैलाशचंद को घर आना ही पड़ा। तब कही पिता के जी में जी आया।

आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी के दर्शन

सन् १९५७ की बात है। आचार्य श्री महावीरकीर्ति जी महाराज ने सुना—आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज अपने विशाल संघ सहित जयपुर में विराजमान हैं अब सल्लेखना तक वे जयपुर ही रहेंगे। जयपुर की खानिया के खुले स्थान पर वे अपनी सल्लेखना करना चाहते हैं। उन्हें अपने निमित्त ज्ञान से यह स्पष्ट हो गया है कि इस चातुर्मास में (सन् १९५७ में) उनकी सल्लेखना निश्चित है। आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से महावीरकीर्ति जी महाराज ने प्रारम्भ में क्षुल्लक दीक्षा ली थी। इसलिए वे इन्हें अपना गुरु मानते थे। उनके हृदय में अन्त में गुरु की वैयावृत्ति करने की उनके सल्लेखना के समय उपस्थित रहने की उत्कट भावना जाग्रत हो उठी। अतः पूज्य श्री ने अपने संघ को लेकर तीर्थराज सम्मेदशिखर से विहार कर दिया। वे अयोध्याजी क्षेत्र पर आये। तब टिकैतनगर के श्रावकों ने अत्यधिक आग्रह कर उनका विहार टिकैतनगर की तरफ करवा लिया। मोहिनी जी ने अयोध्या आकर आचार्य संघ का दर्शन किया और उनके निकट शुद्धजल का नियम लेकर आहार देने लगी। पुनः टिकैतनगर आने तक वे संघ के साथ रही। चौका बनाकर आहार देते हुए अपने गाँव तक संघ को लाईं। निमर्गतः वे साधुओं को अपना परिवार ही समझती थीं।

संघ गाँव में ठहरा हुआ था, माता मोहिनी जी ने भी चौका लगाया हुआ था। एक-दो दिन तक आचार्य महाराज का आहार न होने से उन्हें बड़ी बेचैनी-सी हुई। यद्यपि प्रतिदिन अन्य कई एक मुनि आर्यिका आदि के आहार का लाभ मिल रहा था। तभी उन्हें पता चला कि आचार्य महाराज प्रायः जोड़े का नियम लेकर आहार को निकलते हैं। फिर क्या था मोहिनी जी ने अपने पति से अनुरोध किया कि—

"आप भी शुद्ध वस्त्र पहनकर पड़गाहन के लिए खड़े हो जावें।"

यद्यपि पिताजी जब भी कानपुर आदि जाते थे घर से पूड़ियाँ ले जाते थे। वे ही खाते थे। कभी भी बाजार का या होटल का नहीं खाते थे अथवा कभी-कभी तो वे दाल-चावल ले जाते थे जिससे खिचड़ी बनाकर खा लेते थे। फिर भी शुद्धजल का नियम एक हौआ सा प्रतीत होता था अतः पहले तो वे कुछ हिचकिचाये किन्तु आचार्यश्री को उधर आते देख वे भी स्नान कर शुद्धवस्त्र पहनकर कलश और नारियल लेकर जोड़े से खड़े हो गये। भाग्य से आचार्य श्री का नियम वहीं पर मिल गया और पिता ने भी शुद्धजल का नियम कर बड़े ही भाव से जोड़े से नवधाभक्ति करके आचार्यश्री को आहारदान दिया। उस समय उनको इतना हर्ष हुआ कि कहने में भी नहीं आ सकता था। आहार के बाद जब ये लोग गुरुदेव की आरती करने लगे तब माता मोहिनी की आँखों में आँसू आ गये। आचार्यश्री को मालूम था कि इनकी पुत्री मैना ने आचार्य देशभूषण जी के पास में क्षुल्लिका दीक्षा ले ली है। उसी की याद आ जाने से यह माता विह्वल हो रही है। तब उन्होंने उस समय माता-पिता को बहुत कुछ समझाया और कहा—

"देखो, तुम्हारी कन्या ने दीक्षा लेकर अपने कुल का उद्धार कर दिया है।"

उस समय ब्र० चांदसल जी गुरुजी ने भी धर्मवात्सल्य से उनकी प्रशंसा की और उनके पुण्य की बहुत कुछ सराहना की।

इस तरह जब तक संघ गाँव में रहा माता मोहिनी आहारदान देती रही और उपदेश का, आर्यिकाओं की वैयावृत्ति का लाभ लेती रहीं।

पुत्री श्रीमती का निकलने का प्रयास

जब संघ वहाँ से विहार कर दरियाबाद पहुँचा तब टिकैतनगर के कुछ श्रावक श्राविका और बालक बालिकायें भी संघ के साथ पैदल चल रहे थे। उनमें एक बालिका भी नंगे पैर बेभान चली आ रही थी। ब्र० चाँदमलजी गुरुजी को यह मालूम हो गया था कि यह कन्या पिता छोटेलालजी तृतीय पुत्री है और क्षु० वीरमती की बहन हैं इसका नाम श्रीमती है। यह शादी नहीं करना चाहती है। संघ में रहना चाहती है। इसलिये घर वालों की दृष्टि बचाकर यह पैदल चली आ रही है। इसी बीच जब घर में श्रीमती के जाने की बात विदित हुई तब हो-हल्ला शुरु हो गया। यह सुनते ही पिता छोटेलालजी के बड़े भाई बब्बूमल वहाँ से इक्के पर बैठकर जल्दी से दरियाबाद आ गये। उस कन्या को समझाने लगे किन्तु जब वह कथमपि जाने को तैयार नही हुई तब मसला महाराज जी के पास आ गया। ब्र० चांदमल जी ने ताऊ को बहुत कुछ समझाने का प्रयास किया किन्तु सब निष्फल गया। वह कन्या श्रीमती बहुत ही रो रही थी। कुछ आर्यिकाओं ने भी ताऊ जी को समझाना चाहा, परन्तु भला वे कब मानने वाले थे अतः उस समय कन्या को सीधे सादे लौटते न देख आगे बढ़े। उसको गोद मे उठा लिया और इक्के ने बिठाकर जबरदस्ती घर ले आये। तब कही घर मे शांति हुई और पिताजी का मन ठण्डा हुआ। बहन श्रीमती अपने भाग्य को कोसकर रह गई और अपनी पराधीन स्त्रीपर्याय की निन्दा करती रही। कुछ दिनों तक उनका मन बहुत ही विक्षिप्त रहा अन्त में पूजा और स्वाध्याय मे तथा गृहकार्य और भाई बहनों की सँभाल में उन बातों को भूल गई। इनका विवाह बहराइच के सेठ सुखानन्द के पुत्र प्रेमचन्द के साथ हुआ है।

इधर जब आचार्य संघ जयपुर पहुँचा तब वहाँ देखा कि क्षुल्लिका वीरमती यही पर आचार्य श्री वीरसागर जी के संघ मे आर्यिका ज्ञानमती जी बन चुकी है। तब गुरुजी चाँदमलजी ने माता जी से यह श्रीमती कन्या की घटना सुनाई। माताजी को भी एक क्षण के लिए दुःख हुआ—वे कहने लगी—

"अहो ! मोही प्राणी अपने मोह से आप तो संसार सागर में डूब ही रहे है। साथ ही निकलने वालों को भी जबरदस्ती पकड़-पकड़ कर डुबो रहे है। यह कैसी विचित्र बात है। ओह ! मोह की यह कैसी विडम्बना है ?

पुनः मन ही मन सोचती है—

सचमुच मे मैंने पूर्वजन्म में कितना पुण्य किया होगा जो कि मेरा पुरुषार्थ सफल हो गया और मैं इस गृहकूप से बाहर निकल आई हूँ। आज मेरा जीवन धन्य है। मैंने क्षुल्लिका दीक्षा के बाद यह स्त्रीपर्याय में सर्वोत्कृष्ट आर्यिका दीक्षा भी प्राप्त कर ली है। आश्चर्य है कि यह संयम निधि सब को सुलभ नहीं है। विरले ही पुण्यवानों को मिलती है।"

कुछ दिनों तक संघ की आर्यिकायें, क्षुल्लिकायें और ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणीगण आर्यिका ज्ञानमती माताजी को देखते ही 'श्रीमती के पैदल आ जाने की और उनके ताऊ जी द्वारा उठाकर

ले जाने की चर्चा सुना दिया करते थे। माताजी भी गम्भीरता से यही उत्तर दे देती थीं कि भाई! शांति ने भी घर से निकलना बहुत चाहा था किन्तु नहीं निकल सकी, कैलाशचंद को भी रास्ते से वापस ले जाया गया है और श्रीमती को भी ताऊजी ले गये हैं। ब्र० श्रीलालजी कहा करते कि यह कोई पूर्वजन्म के संस्कार ही हैं कि जो उन भाई बहनों के भाव भी घर से निकलकर साधु संघों में रहने के हो रहे हैं।

[८]

आर्यिका दीक्षा के समाचार

सन् १९५५ में क्षु० विशालमती जी के साथ (जिला सोलापुर) क्षु० वीरमती जी ने म्सवड़ में चातुर्मास किया था। वहाँ से कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र लगभग ८० मील दूर होगा। क्षु० विशालमती ने वर्षायोग स्थापना के समय यह घोषित कर दिया था कि आचार्य शांतिसागर जी महाराज की सल्लेखना के समय हम दोनों चातुर्मास के अन्दर भी कुंथलगिरि जावेंगी। एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में क्षु० विशालमती जी ने स्वप्न देखा कि सूर्य अस्ताचल को जा रहा है और उसी रात्रि में क्षु० वीरमती जी ने स्वप्न में देखा कि मानस्तम्भ के ऊपर का शिखर गिर गया है। प्रातः सामायिक आदि से निवृत्त हो दोनों माताजी परस्पर में अपना-अपना स्वप्न सुनाने लगीं। दोनों ने यह सोचा कि आज किन्हीं गुरु का अशुभ समाचार अवश्य आवेगा। मध्याह्न में ही उन्हे समाचार मिला कि चारित्रचक्रवर्ती आचार्यदेव श्री शान्तिसागर जी महाराज जी ने यम सल्लेखना ले ली है। अब माताजी ने समाज को उपदेश में सल्लेखनारत गुरु के दर्शन का महत्त्व बतलाया और कतिपय श्रावक श्राविकाओ के साथ कुन्थलगिरि पहुँच गईं। वहाँ पर गुरुदेव का दर्शन कर मन संतुष्ट हुआ।

इसके पूर्व क्षु० वीरमती जी ने बारामती में आचार्य श्री से आर्यिका दीक्षा की याचना की थी तब आचार्य श्री ने कहा था—कि वीरसागर जी के संघ में अनेक वयोवृद्ध आर्यिकायें हैं तुम्हारी उम्र अभी बहुत छोटी है अतः तुम वही जाकर आर्यिका दीक्षा ले लेना। मैंने अब दीक्षा नहीं देने का नियम कर लिया है। यहाँ पर पूज्यश्री ने एक दिन अपना आचार्यपट्ट वीरसागर जी को परोक्ष में ही प्रदान कर दिया और उनके लिए संघपति गेंदनमल से पत्र लिखाकर ब्र० सूरजमल के हाथ भेज दिया। क्षु० वीरमती जी, क्षु० विशालमती के साथ और भी अन्य क्षुल्लिकाओं के पास वहा पर लगभग एक माह रही और आचार्य श्री की सल्लेखना के बाद म्सवड आकर वर्षायोग पूर्ण कर वहाँ की कु० प्रभावती को दशवीं प्रतिमा देकर और सौभाग्यवती सोनुबाई को छठी प्रतिमा देकर दोनों को साथ लेकर क्षु० विशालमती जी की आज्ञा से सन् १९५५ में ही जयपुर में आचार्य श्री वीरसागर जी के संघ मे आ गईं थी। क्षु० वीरमती जी ने आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज जी से सन् १९५६ में माधोराजपुरा ग्राम में वैशाख कृष्ण दूज के पवित्र दिवस आर्यिका दीक्षा ली थी और उस समय आचार्यजी ने इनका नाम आर्यिका ज्ञानमती रक्खा था जो कि उस समय ज्ञानगुणों की वृद्धि से अन्वर्थ ही था। उसी समय कु० प्रभावती की क्षुल्लिका दीक्षा हुई थी जिनका नाम क्षु० जिनमती रक्खा गया था। अनन्तर सन् १९५६ में जयपुर में खजांची की नशिया में सौ० सोनुबाई को आचार्य श्री ने क्षुल्लिका दीक्षा देकर उनका नाम

'पद्मावती' रखा था। खानिया में सोलापुर प्रान्त की ब्र० माणक बाई ने क्षुल्लिका दीक्षा ली थी। इनका नाम चन्द्रमती था। ये तीनों ही क्षुल्लिकायें आ० ज्ञानमती माताजी के पास में रहती थीं।

सन् १९५७ में खानिया में स्थित चतुर्विध संघ और आ० महावीरकीर्ति महाराज के संघ के समक्ष आसोज वदी अमावस को आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज की ध्यानमुद्रा में महामन्त्र को जपते हुए उत्तम समाधि हो गई। उसके बाद आ० महावीरकीर्ति महाराज ने आ० वीरसागर जी के प्रथम शिष्य श्री शिवसागर जी को आ० वीरसागर जी महाराज का आचार्य-पट्ट प्रदान कर दिया। बाद में आ० श्री महावीरकीर्ति महाराज नागौर की तरफ विहार कर गये। और आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज अपने चतुर्विध संघ को लेकर गिरनार जी निर्वाण क्षेत्र यात्रा के लिए विहार कर गये। संघ यात्रा के लिए दिसम्बर १९५७ में निकला था, लगभग १९५८ मार्च में फाल्गुन की आष्टान्हिका में सिद्ध क्षेत्र पर पहुँच गया। सबने निर्वाण क्षेत्र की वंदनायें की। वहाँ पर क्षु० चन्द्रमती और क्षु० पद्मावती जी की आर्यिका दीक्षायें हुईं।

यहाँ पर आर्यिका ज्ञानमती माताजी संघस्थ क्षुल्लिका जिनमतीजी और ब्र० राजमल जी को राजवार्तिक, गोम्मटसार कर्मकाण्ड आदि का अध्ययन कराती थीं। उस अध्ययन में स्वाध्याय के प्रेम से आर्यिका सुमतिमती माताजी, आर्यिका चन्द्रमती जी और आर्यिका पद्मा-वती जी भी बैठती थीं। ब्र० श्रीलाल जी भी प्रायः बैठते थे और पं० पन्नालाल जी सोनी भी कभी-कभी बैठ जाया करते थे।

आ० चन्द्रमती माताजी ज्ञानमती माताजी के ज्ञान से बहुत ही प्रभावित थी, उनकी चर्या और सरलता आदि गुणों से भी बहुत ही प्रसन्न रहती थी। वे माताजी से कभी कभी कहा करती कि—

"जब आपके माता-पिता जीवित हैं तो भला वे लोग आपके दर्शन करने क्यों नहीं आते।" यह सुनकर माताजी कुछ उत्तर नहीं देती थीं। उनके अतीव आग्रह पर उन्होंने एक बार कहा कि—

"उन्हें पता ही नहीं होगा कि मैं कहाँ हूँ।"

चन्द्रमती जी को बहुत ही आश्चर्य हुआ तब उन्होंने एक बार ज्ञानमती से घर का पता पूछ लिया और चुपचाप एक पत्र लिख दिया।

पत्र टिकैतनगर पहुँच गया। पिताजी पत्र पढ़कर घर आये और सजल नेत्रों से पत्र पढ़कर सुनाने लगे—

श्रीमान् सेठ छोटेलाल जी—

सद्धर्मवृद्धिरस्तु! यहाँ ब्यावर में आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज का विशाल चतुर्विध संघ के साथ चातुर्मास हो रहा है। इसी संघ में आपकी पुत्री जो कि आर्यिका ज्ञानमती माताजी हैं विद्यमान हैं। मेरा नाम आर्यिका चन्द्रमती है। मैं संघ में उन्ही के साथ अनेक दुर्लभ ग्रन्थों का स्वाध्याय करती रहती हूँ। मैं यह पत्र धर्म प्रेम से आपको लिख रही हूँ। आप यहाँ आकर अपनी पुत्री का दर्शन करें। उनके ज्ञान और चारित्र के विकास को देखकर आप अपने में बहुत ही प्रसन्नता का अनुभव करेंगे। अतः आपको अवश्य आना चाहिये। मेरा आप सभी के लिये

बहुत बहुत शुभाशीर्वाद है। आपने ऐसी कन्यारत्न को जन्म देकर अपना जीवन सफल कर लिया है..........। इत्यादि।

माँ को और सारे परिवार को आज विदित हुआ कि हमारी पुत्री मैना क्षु० वीरमती से आर्यिका ज्ञानमती हो चुकी है और वे इस समय आचार्य श्री वीरसागर जी के विशाल संघ मे हैं। यह तो समय था कि जब साधु संघों के समाचार ज्यादा अखबारों में नहीं छपते थे और कदाचित् जैनमित्र आदि में छप भी गये तो उन्हे सभी लोग नही पढ़ते थे। तथा इन माता-पिता को यह विश्वास भी था कि हमारी पुत्री उचित स्थान पर उचित मार्ग पर ही है अतः वे चिन्ता भी नहीं करते होंगे। यही कारण है कि उन्हें इतने वर्षों तक इनके समाचार नही मालूम थे। पुत्री के बढ़ते हुए चारित्र को और बढ़ते हुए ज्ञान को सुनकर माँ का हृदय पुलकित हो उठा। स्मृति पटल पर सारी पुरानी बातें ताजी हो आईं। साथ ही मोहिनी जी के मोह का उद्रेक भी नहीं रुक सका, उनके नेत्रों से आँसू बहने लगे। उनका ऐसा भाव हुआ कि—

"मैं अभी शीघ्र ही जाकर दर्शन कर लेऊँ।"

पिताजी को ब्यावर चलने के लिए बहुत कुछ आग्रह किया गया किन्तु वे कथमपि तैयार नहीं हुए। उनके मन में कुछ और विकल्प उठ खड़ा हुआ। इसीलिए वे बोले—

"पहले कैलाश को भेज रहा हूँ वह जाकर दर्शन करके सारी स्थिति देखकर आवे पुनः हम तुम्हें लेकर चलेंगे।"

यद्यपि उनके मन में भी मोह का उदय हो आया था। वे भी दर्शन करना चाहते थे किन्तु........!

मनोवती के मनोभाव

श्रीमती कन्या से छोटी कन्या का नाम मनोवती था। मैना ने दर्शनकथा पढ़कर बड़े प्यार से इन बहन का नाम "मनोवती" रक्खा था। यह मनोवती वर्षों से कहती थी कि—

"मुझे मैना जीजी के दर्शन करा दो, मैं उन्ही के पास रहूँगी।" इस धुन में वह इतनी पागल हो रही थी कि गांव में चाहे कोई मुनि आवे या ब्रह्मचारी आवे अथवा पंडित ही आ जावे वह उनके पास जाकर समय देखकर पूछने लगती—

"क्या तुम्हें हाथ देखना मालूम है! बताओ मैं अपनी जीजी के पास कब पहुँच सकूँगी! मेरे भाग्य मे दीक्षा है या नही ....।" इत्यादि। जब माँ को इस बात का पता चलता तो वे उसे फटकारती। उन्हें किसी को हाथ दिखाना कतई पसन्द न था। इस तरह यह मनोवती जब तब रोने लगती थी और आग्रह करती थी कि मुझे माताजी के पास भेज दो।

पत्र द्वारा आर्यिका ज्ञानमती माताजी का समाचार सुनते ही मनोवती दौड़ी दौड़ी आई और पत्र छीनने लगी। उसने सोचा "शायद अब मेरा पुण्य का उदय आ गया है। अब मुझे माँ के साथ ब्यावर जाने को अवश्य मिल जावेगा।" किन्तु अभी उनके अन्तराय कर्म का उदय बलवान् था। शायद पिता ने इसी वजह से ब्यावर जाने का प्रोग्राम नही बनाया कि—

"मैं जाऊँगा तो मोहिनी जी मानेंगी नहीं, वे अवश्य जायेंगीं पुनः यह मनोवती पुत्री जबरदस्ती ही चलना चाहेगी। और यह वहां उनके पास जाकर मुश्किल से ही वापस

आयेगी। अथवा यह वहीं रह जायेगी, दीक्षा ले लेगी तो मैं इसके वियोग का दु:ख कैसे सहन करूँगा ?"

माता मोहिनी का हृदय तड़फड़ाता रहा और मनोवती भी मां के न जाने का सुनकर बहुत रोई किन्तु क्या कर सकती थी। दोनों मां बेटी अपने अपने मन में अपनी स्त्री पर्याय की निंदा करती रहीं। कभी-कभी माता मोहिनी मनोवती को सान्त्वना देती रहती थी। और कहती रहती थी—

"बेटी मनोवती ! तुम इतना मत रोओ, धैर्य रक्खो मैं तुम्हें किसी न किसी दिन माताजी के दर्शन अवश्य करा दूँगी।"

पिता की आज्ञानुसार कैलाशचन्द अपने छोटे भाई सुभाषचन्द को साथ लेकर ब्यावर के लिये रवाना हो गये।

कैलाश-सुभाष को आ० शिवसागर संघ का दर्शन

सरस्वती भवन में छत पर आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी तत्त्वार्थराजवार्तिक का स्वाध्याय करा रही थी। पास में आ० सुमतिमती माताजी, आ० सिद्धमती जी, आ० चन्द्रमती जी, आ० पद्मावती जी और क्षु० जिनमती जी बैठी हुई तन्मयता से अर्थ समझ रही थी। एक तरफ ब्र० राजमल जी भी राजवार्तिक की पंक्तियों का अर्थ देख रहे थे। उसी समय वहाँ पर दो यात्री पहुँचे, नमस्कार किया और वहीं बैठ गये। उनकी आंखों से अश्रु बह रहे थे। पहले शायद किसी ने ध्यान नही दिया किन्तु जब कुछ सिसकने जैसी आवाज आई तब किसी ने सहसा पूछ लिया—

"तुम लोग क्यों रो रहे हो ? कौन हो ?"

तभी माताजी ने सहसा ऊपर माथा उठाया और पूछा—

"आप कहाँ से आये हैं ?"

बड़े भाई ने कुछ आँसू रोककर जैसे तैसे जवाब दिया—'टिकैतनगर से।'

पुनः माताजी ने पूछा—"किन के पुत्र हो ? तुम्हारा क्या नाम है ?"

उन्होंने कहा—

"लाला छोटेलाल जी के। मेरा नाम कैलाशचन्द है।"

इतना कहकर दोनों भाई और भी फफक-फफक कर रोने लगे। तभी अन्दर से आकर पं० पन्नालाल जी ने सहसा उनका हाथ पकड़ लिया और उनके आंसू पोछते हुए बोले—

"अरे ! आप रो क्यों रहे हो ?"

पंडित जी को समझते हुए देर न लगी कि ये दोनों ज्ञानमती माताजी के गृहस्थाश्रम के भाई हैं। पुनः उस समय आ० चन्द्रमती जी ने भी उन दोनों को सान्त्वना दी और बोली—

"तुम्हारी बहन इतनी श्रेष्ठ आर्यिका हैं तुम्हें इन्हें देखकर खुशी होनी चाहिए। बेटे ! रोते क्यों हो ?"

सभी के समझाने पर दोनों शान्त हुए और माताजी के चेहरे को एकटक देखते रहे। वे दोनों इस बात से और भी अधिक दुःखी हुए कि—

"जिस मेरी बहन ने मुझे गोद में लेकर खिलाया था, प्यार दुलार किया था, आज वे हमें पहचान भी नहीं रही हैं।"

पंडित पन्नालाल जी भी मन ही मन सोच रहे थे—

"अहो ! वैराग्य की महिमा तो देखो ! आज माताजी अपने भाइयों को पहचान भी नहीं पाईं। ये आप स्वयं मे ही इतनी लीन हैं, ज्ञानाभ्यास में ही सतत लगी रहती हैं।"

पंडितजी दोनों भाइयों को अपने साथ अपने घर लिवा ले गये। रास्ते मे इन दोनों ने यही अफसोस व्यक्त किया कि—

"दुख की बात है कि माताजी हम लोगों को सर्वथा भूल गईं।" पंडित जी ने कहा—

"भाई ! दुःख मत मानो। इनकी ज्ञानाराधना बहुत ही ऊँची है। मैं देखकर स्वयं परेशान हूँ। ये दिन भर तो अध्ययन कराती रहती हैं। पुनः रात्रि में ११–१२ बजे तक सरस्वती भवन के हस्तलिखित शास्त्रों को निकाल-निकाल कर देखती रहती है। मैं प्रातःकाल आकर देखता हूँ तो प्रायः ५०–६० ग्रन्थों को खुला हुआ पाता हूँ। मैं स्वयं अपने हाथ से उन्हे बाँधकर रखता हूँ। अगले दिन शाम को माताजी पुनः मेरे से दो तीन अलमारियाँ खुलवा लेती है। पुनः रात्रि में ग्रन्थों का अवलोकन करती रहती हैं।"

कैलाश ने पूछा—

"पंडितजी ! ऐसा क्यों, माताजी ग्रन्थ खुले क्यों रख देती हैं ?"

पंडितजी ने कहा—

"भाई ! एक दिन माताजी ने ग्रन्थ बांध दिये। वे सभी ग्रन्थ अधिक कसकर नही बँधे थे किन्तु ये व्यवस्थित बँधे हुए।" मैंने कहा—

"माताजी ! ग्रन्थों को शत्रुवत् बांधना चाहिए। आप मेरे जितना कसकर नही बाँध सकेंगी और आपको समय भी लगेगा। अतः इतनी सेवा तो मुझे ही कर लेने दीजिए। उस दिन से प्रतिदिन मैं स्वयं आकर ग्रंथों को बाँध-बाँध कर जहाँ की तहाँ आलमारी में रख देता हूँ।"

पंडितजी ने और भी बहुत सी बाते माताजी के विषय मे बताईं और बहुत प्रशंसा करते रहे। बोले—

"माताजी का तो मेरे ऊपर विशेष अनुग्रह है। मेरी पुत्री पद्मा आदि सब उन्ही के पास पढ़ती हैं।"

माताजी से कैलाशचन्द की चर्चा

पंडित पन्नालाल जी ने दोनों को स्नान कराकर भोजन कराया। अनंतर दोनों भाई नशियाजी में आ गए। एक-एक करके सभी मुनियों के दर्शन किए। सभी आर्यिकाओ के दर्शन किए। अनन्तर मध्याह्न में एक बजे माताजी के पास आकर बैठ गए। माताजी ने घर के और गाँव के धर्मकार्यों के बारे में जो भी पूछा उन्होंने बता दिया। किन्तु माताजी ने घर के किसी भाई बहन की शादी के बारे में कुछ भी नही पूछा और न कुछ अन्य ही घर की बातें पूछी। समय पाकर कैलाश ने कहा—

"माताजी ! बहन मनोवती आपके दर्शनों के लिए तरस रही है। वह शादी नही कराना चाहती वह आपके पास ही रहना चाहती है।"

इतना सुनते ही माताजी एकदम चौंक पड़ीं। अब उनका भाव कुछ ठीक से कैलाशजी से वार्तालाप करने का हुआ। उन्होंने जिज्ञासा भरे शब्दों में पूछा—

"ऐसा क्यों ?"

कैलाशजी ने कहा—

"पता नहीं, आज लगभग दो वर्ष हो गये हैं। वह आपके लिए बहुत ही रोती रहती है। रो-रो कर वह अपनी आँखें लाल कर लेती है। वह कहती है मुझे माताजी के पास भेज दो, मैं भी दीक्षा लेऊँगी।"

माताजी ने कहा—

"तब भला तुम उसे क्यों नहीं लाए ?"

कैलाशजी ने कहा—

"माताजी ! आपको मालूम है पिताजी का कितना कड़ा नियन्त्रण है।" इसी बीच कैलाश ने अपने आते समय रास्ते से वापस पकड़ कर ले जाने की तथा श्रीमती को दरियाबाद से ले जाने की सारी बातें सुना दीं। तब माताजी ने कैलाश को समझाना शुरू किया, बोलीं—

"देखो, इस अनादि संसार में भ्रमण करते हुए इस जीव ने कौन-कौन से दुःख नहीं उठाये हैं। भला जब यह जीव इस संसार से निकलना चाहता है तब पुनः उसे इस दुःखरूपी सागर में वापस क्यों डालना ? कैलाश ! तुम मेरी बात मानो और जैसे बने वैसे उन मनोवती को संघ में पहुँचा दो। तुम्हारा उस पर बहुत बड़ा उपकार होगा.........।" और भी बहुत कुछ समझाया किन्तु कैलाशचन्दजी क्या कर सकते थे। उन्होंने अन्त में यही कहा कि "मैं क्या कर सकता हूँ। मेरे वश की बात नहीं है। पिताजी इसी कारण से स्वयं आपके दर्शन करने नहीं आये हैं और न माँ को ही आने दिया है।"

इसके बाद २, ३ दिन तक कैलाश, सुभाष वहाँ रहे। माताजी के स्वाध्याय और अध्ययन को देखते रहे। सरस्वती भवन में ऊपर माताजी के पास संघ की प्रमुख आर्यिका वीरमती माताजी सोती थीं। माताजी के पास आ० चन्द्रमती, आ० पद्मावती, क्षु० जिनमती और क्षु० राजमती ऐसी चार साध्वियाँ रहती थीं। इनके पास कोई भी ब्रह्मचारिणी नहीं थीं। उन आर्यिकाओं से भी बातचीत की, उनका परिचय लिया। सारे संघ के साधुओं की चर्या देखी। आचार्य महाराज का उपदेश सुना। पश्चात् वहाँ से चलकर वापस घर आ गये। माँ ने आते ही कैलाशचन्द के मुख से अपनी सुपुत्री मैना अर्थात् आर्यिका ज्ञानमती माताजी के सारे समाचार सुने। मन में बहुत प्रसन्नता हुई। उनके पास दो आर्यिकायें और दो क्षुल्लिकायें हैं, ऐसा जानकर हृदय गद्‌गद हो गया। उनके ज्ञान की प्रशंसा पण्डित पन्नालालजी सोनी और ब्र० श्रीलालजी शास्त्री ने जैसी की थी वैसी सुनाई तो पिता का हृदय भी फूल गया। मनोवती के भी हर्ष का ठिकाना न रहा किन्तु उसे दुख इस बात का बहुत ही हो रहा था कि मुझे ऐसी ज्ञानमती माताजी के दर्शन कब होंगे ?"

[९]

प्रथम बार आ० शिवसागर संघ का दर्शन

पिता छोटेलाल जी और माता मोहिनी सन् १९५९ में अजमेर में आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज के संघ के दर्शन करने चले। अथवा यों कहिए सन् १९५३ के टिकैतनगर चातुर्मास के

पश्चात् आज वे सात वर्ष बाद सन् १९५९ में आर्यिका ज्ञानमती माताजी के प्रथम बार दर्शन करने आये थे। छोटे धड़े की नशिया में प्रातः आचार्य श्री का उपदेश होता था। सभी साधु साध्वियाँ उपस्थित रहते थे। उपदेश के अनन्तर आर्यिका ज्ञानमती माताजी अन्य आर्यिकाओं के साथ नशिया से बाहर निकलकर बाबाजी की नशिया जा रही थीं। उन्हें देखते ही रास्ते में मोहिनीजी सहसा उनसे चिपट गईं और रोने लगीं। साथ में चलने वाली आर्यिकायें भी आश्चर्यचकित हो गईं और साथ में चलते हुए सेठ लोग आश्चर्य से देखने लगे। माताजी भी सहसा कुछ नहीं समझ सकीं। आखिर ये कौन हैं ? और क्यों रो रही हैं ? "अरे ! यह क्या !"

ऐसा कहते हुए साथ में चलती हुई आ० सिद्धमतीजी माताजी ने ज्ञानमती माताजी से उन्हें छुड़ाया। माताजी ने सिर उठाकर देखा तो सामने खड़े पिता छोटेलालजी भी रो रहे हैं। यद्यपि वे बहुत ही दुबले हो गये थे फिर भी इस अवसर पर माताजी ने उन्हें भी पहचान लिया था। साथ में चलते हुए श्रावकों ने उनका हाथ पकड़ा और बोले—

"सेठजी ! आप कौन हैं ! कहाँ से आये हैं।........"

इसी मध्य आ० चन्द्रमतीजी को समझते देर न लगी, कि ये आ० ज्ञानमतीजी के माता-पिता हैं। अतः वे शीघ्र ही बोलीं—"ये इन माताजी के माता-पिता हैं। टिकैतनगर से आये हैं। इन्हें साथ ले चलो, नशियाजी में एक कमरे की व्यवस्था करके इन्हे ठहराओ।"

श्रावकों ने बड़े ही प्रेम से पिताजी का हाथ पकड़ा और साथ में बाबाजी की नशिया में ले आये। माताजी तो चर्या का समय होने से शुद्धि करके चर्या के लिए निकल गईं। इन लोगों को व्यवस्थित ठहरा दिया गया। आहार के बाद इन सभी ने आचार्य श्री के दर्शन किए। पश्चात् अन्य मुनियों का दर्शन कर माताजी के पास आगये। दर्शन करके रत्नत्रय कुशल पूछी। माताजी ने भी इन लोगों के धर्म कुशल को पूछा। पुनः तत्क्षण ही बोलीं—

"क्या मनोवती को नहीं लाये ?"

माँ ने दबे स्वर में कहा—

"नहीं।"

माताजी को बहुत ही आश्चर्य हुआ कि देखो ये लोग कितने निष्ठुर हैं कि २-३ वर्षों से मेरे लिए रोती हुई उस बालिका को आखिर घर ही छोड़ आये हैं। माताजी को यह समझते देर न लगी कि शायद वह वापस न जाती इसी कारण उसे नहीं लाये हैं अस्तु........। साथ में शांति आई थी जो कि मोहोना ब्याही थी। छोटा पुत्र प्रकाश आया था जो कि इस समय लगभग १५ वर्ष का था और माँ की गोद में छोटी बिटिया माधुरी थी।

इन लोगों ने यहाँ पर रहकर चौका किया और प्रतिदिन आहार दान का, गुरु के उपदेश सुनने का लाभ लेने लगे।

स्वाध्याय प्रेम

माता मोहिनीजी आ० ज्ञानमती माताजी की प्रत्येक चर्या को बड़े प्रेम से देखा करती थीं। माताजी बाबाजी की नशिया में मन्दिर जी में प्रातः ७ से ८-३० तक पंचाध्यायी ग्रन्थ का स्वाध्याय चलाती थीं। उसमें आ० सुमतिमती माताजी, आ० सिद्धमती जी, आ० चन्द्रमती जी, आ० पद्मावती जी, क्षु० जिनमती और ब्र० राजमल जी बैठते थे। और ब्र० श्रीलाल जी भी बैठ जाते थे।

माताजी संस्कृत के श्लोकों को पढ़कर उसका अर्थ करके समझाती थी। उसके बाद पात्रकेशरी स्तोत्र का भी अर्थ बताती थीं। उस समय मोहिनी जी जिनेन्द्रदेव की पूजा करके वहाँ स्वाध्याय में पहुँच कर सभी आर्यिकाओं को अर्घ चढ़ाकर ५-१० मिनट बैठ जाती थी। पुनः चौके में चली जाती थीं। इसी तरह मध्याह्न में आ० ज्ञानमती माताजी के पास में वहाँ की कन्या पाठशाला की प्राध्यापिका विदुषी विद्यावती बाई सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ का अध्ययन कर रही थी। उस समय मोहिनी जी को अधिक अवसर स्वाध्याय के लाभ का मिल जाता है। मध्य-मध्य मे अध्यापिका विद्यावती[1] जी आ० ज्ञानमती जी के ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा किया करती थी। जिसे सुनकर माता मोहिनी जी का हृदय गद्‌गद हो जाता था।

४-५ बजे के लगभग शहर की कुछ महिलायें और बालिकायें भी माताजी के पास अर्थ सहित तत्त्वार्थसूत्र आदि का अध्ययन करने आ जाया करती थी। अनन्तर साधु संघ के सामूहिक स्वाध्याय में माताजी पहुँच जाती थीं। स्वाध्याय के बाद सायंकालीन प्रतिक्रमण के बाद ही सेठ जी की नशिया से सभी आर्यिकायें अपने स्थान पर आ जाया करती थी। इस प्रकार से माताजी की अत्यधिक व्यस्तचर्या देखकर माता मोहिनी बहुत ही प्रसन्न होती थी।

मंत्रित जल का प्रभाव

एक दिन बहन शांति को पेट में बहुत ही दर्द होने लगा और उसे अतिसार चालू हो गये। यह देख मोहिनी जी घबराईं और झट से आकर माताजी को कहा। साथ में यह भी बताया कि—

"यह ४-५ महीने की गर्भवती है। इसकी सासु इस समय यहाँ भेज नहीं रही थीं किन्तु यह दर्शन के लोभ से आग्रहवश आ गई है।"

माताजी ने उसी समय एक कटोरी मे शुद्ध जल मँगाकर कुछ मन्त्र पढ़ दिया और शांति को पिला दिया। उस मंत्रितजल से उसे बहुत कुछ आराम मिला। इसी बीच यह बात संघ की वयोवृद्धा आर्यिका सुमतिमती माताजी को मालूम हुई तो स्वय मंदिर से वहाँ बाहर कमरे मे आईं शांति को सान्त्वना दिया। इसी समय सर सेठ भागचन्दजी सोनी साहब वहाँ दर्शनार्थ आये हुए थे। वे प्रायः आर्यिकाओं के कुशल समाचार लेने इधर आते ही रहते थे। आ० सुमतिमती माताजी ने उनसे कहा—

"सेठजी ! आप इसे किसी कुशल डाक्टरनी को दिखा दें।"

सेठानी रत्नप्रभा जी साथ में थीं उन्होंने शीघ्र ही अपनी गाड़ी मे बिठाकर शांति को ले जा कर डाक्टरनी के पास दिखाया। डाक्टरनी ने कहा—

"इसके पेट मे बालक बिल्कुल ठीक है। चिन्ता की कोई बात नही है।" शांति हँसती हुई माताजी के पास आ गई और बोली—

"माताजी ! आपके मंत्रितजल ने मुझे बिल्कुल स्वस्थ कर दिया है। अब मुझे कोई तकलीफ नही है।"

संघ की सबसे प्रमुख आर्यिका वीरमती माताजी यही माताजी के कमरे में ही रहती थीं। वे रात्रि में २, २-३० बजे से उठकर पाठ करना शुरू कर देती थीं। कभी-कभी माता मोहिनी

१. ये पं० लालबहादुर शास्त्री, इन्दौर वालों की बहन हैं।

इधर माताजी के पास सो जाती थीं तो पिछली रात्रि में बड़ी माताजी के पाठ सुनकर बहुत हो खुश हो जाती थीं।

संग्रहणी प्रकोप

माताजी को इन दिनों पेट की गड़बड़ चल रही थी। आहार लेने के बाद उन्हें जल्दी ही दीर्घशंका के लिए जाना पड़ता था। दिन मे भी प्रायः कई बार जाती थीं। माता मोहिनी को मालूम हुआ कि इन्हें डाक्टर वैद्यों ने संग्रहणी रोग की शुरूवात बता दी है। और ये औषधि नहीं लेती हैं। तब मोहिनी जी को बहुत ही चिन्ता हुई। उन्होंने माताजी को समझाना शुरू किया और बोली—

"देखो, माताजी! यह शरीर ही रत्नत्रय का साधन है इसलिए एक बार आहार में शुद्ध काष्ठादि औषधि लेने में क्या दोष है। आखिर श्रावकों के लिए औषधिदान भी तो बतलाया गया है। इसलिए आपको शरीर से ममत्व न होते हुए भी संयम की रक्षा के लिए औषधि लेना चाहिए।"

इसके बाद आ० श्री शिवसागरजी महाराज, मुनि श्री श्रुतसागरजी आदि के विशेष समझाने से ही माताजी ने आहार में शुद्ध औषधि लेना शुरू किया था।

आ० चन्द्रमती से माँ मोहिनीजी को विदित हुआ कि अभी सन् १९५८ में गिरनार क्षेत्र की यात्रा के रास्ते में इन्हें आहार में अंतराय बहुत आती थीं जिससे पेट में पानी नहीं पहुँच पाता था और गर्मी के दिन, उस पर भी रास्ते का १४–१५ मील का प्रतिदिन पद विहार करना। इन्हीं सब कारणों से इनकी पेट की आँतें एकदम कमजोर हो गई हैं जिससे कि आहार का पाचन नहीं हो रहा है। और इस संग्रहणी नाम के रोग ने अपना अधिकार जमा लिया है।

इतनी सब कुछ अस्वस्थता में बेहद कमजोरी होते हुए भी माताजी अपने मनोबल से पठन-पाठन में ही तल्लीन रहती थी और माता मोहिनीजी को यही समझाया करती थीं—

"जिनवचनमौषधमिदं"- जिनेन्द्र भगवान् के वचन ही सबसे उत्तम औषधि है। इनके पठन-पाठन से ही सच्ची स्वस्थता आती है।

शिष्यायें

माताजी के पास वहीं अजमेर में केशरगंज के एक श्रावक जीवनलालजी की पुत्री अंगूरीबाई[1] सागारधर्मामृत आदि पढ़ने आती रहती थीं। उनके पति को डाकुओं ने मार दिया था अतः वे विरक्त चित्त हुई माताजी के पास ही रहना चाहती थी। वहीं शहर की एक महिला हुलासी बाई[2] भी माताजी के पास अध्ययन करती तथा माताजी की वैयावृत्ति भी किया करती थी।

प्रकाश का पुरुषार्थ

माता मोहिनी का द्वितीय पुत्र प्रकाशचन्द वहाँ साथ में आया था। जीजी मैना ने उसे कितना प्यार दिया था यह कुछ-कुछ उसे याद था, इस समय उसकी उम्र १५ वर्ष के करीब थी। वह भी

१. ये आज आर्यिका आदिमती के नाम से आ० धर्मसागरजी महाराज के संघ में हैं।

२. ये भी आर्यिका संभवमती के नाम से आचार्य संघ में रहती हैं।

वहाँ माताजी के पास कभी-कभी द्रव्यसंग्रह आदि की कुछ गाथायें पढ़ लेता और बहुत ही शुद्ध अर्थ सहित याद करके सुना देता। माताजी ने सोचा—"इसकी बुद्धि बहुत ही तीक्ष्ण है क्यों न इसे संघ में कुछ वर्ष रोक लिया जाय और धार्मिक अध्ययन करा दिया जाये।"

माताजी ने उस बालक से पूछा, उसे तो मानों मन की मुराद मिल गई। वह प्रकाश भी अपनी माँ से आग्रह करने लगा कि—

"मुझे माताजी के पास छोड़ जाओ। मैं एक वर्ष मे कुछ धर्म का अध्ययन कर लूँ।"

माँ मोहिनी ने हसकर टाल दिया और सोचा इतना मोही बालक भला माँ-बाप के बगैर कैसे रह सकता है? इसे कुछ दिन पूर्व अयोध्या के गुरुकुल मे भी भेजा था, वहाँ से १०–१५ दिन में ही भाग आया था।

अब इन लोगों के जाने का समय आ चुका था। सामान सब बँध चुका था। गाड़ी का समय हो रहा था। पिताजी प्रकाशचन्द को आवाज दे रहे है परन्तु उसका कही पता ही नहीं है। उस दिन का जाना स्थगित हो गया। पिताजी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते परेशान हो गये। देखा, तो वह नशिया के बाहर एक तरफ बगीचे में एक वृक्ष पर छिपा बैठा है। उसे उतारा गया, समझाया गया। अंततोगत्वा जब वह नही माना तब ब्र० श्रीलालजी ने माता-पिता को समझाया—

"देखो, इस बालक को ४–६ महीने यहाँ संघ मे रहने दो। हमारे पास रहेगा। हम तुम्हें विश्वास दिलाते है। इसे ब्रह्मचर्य व्रत आदि नही देंगे। बालक की हठ पूरी कर लेने दो। बाद मे घर भेज देंगे। भाई! छोटेलालजी! यदि इस समय इसे तुम जबरदस्ती बाँध कर ले जाओगे। पुनः ये रास्ते से या घर से बिना कहे सुने भाग कर आ गया तो तुम क्या करोगे? इसलिए शांति रक्खो, चिंता मत करो। इसे मै कुछ धर्म पढ़ा दूँगा, बाद में घर से किसी को भेज देना इसे ले जायेगा……।"

इत्यादि समझाने बुझाने के बाद पिता ने बात मान तो ली किन्तु उनका मन बहुत ही अशांत हुआ।

मोहिनी का मोह

माता मोहिनी ने बालक की व्यवस्था के लिए चुपचाप अपने कान के ऐरन (बाले) उतारे और संघ के ब्र० राजमलजी को बुलाकर धीरे से कहा—

"ब्रह्मचारी जी! तुम इन्हें अपने पास रख लो, देखो, किसी को पता न चले! तुम इन्हे बेचकर रुपये ले लेना। उनसे इस बालक के नाश्ता, भोजन आदि की व्यवस्था करा देना।"

इतना कहकर माता ने वह सोने का गहना ब्रह्मचारी जी को दे दिया और एकान्त मे आ० ज्ञानमती माताजी से यह बात बताकर आप वहाँ से सकुशल रवाना हो गईं।

पिताजी प्रकाशचन्द को संघ में पढ़ने के लिए छोड़कर घर आ गये। घर मे आते ही सारे बच्चे चिपट गये और आर्यिका ज्ञानमती माताजी के समाचार पूछने लगे किन्तु जब कैलाशचन्द आदि ने प्रकाश को नहीं देखा तब सब रोने लगे—

"पिताजी! प्रकाश कहाँ है?"

पिताजी ने कहा—

"बेटे! आ० ज्ञानमती माताजी के पास ऐसी कुछ चुम्बकीय शक्ति है कि क्या बताऊँ? मैं

मनोवती को तो रोती छोड़ गया था वहाँ नहीं ले गया था कि कहीं वह वहीं न रह जाये किन्तु माताजी ने तो प्रकाश को ही रोक लिया……… ।"

प्रकाश का वापस घर आना

अजमेर चातुर्मास के बाद संघ का विहार लाडनू की तरफ हो गया। रास्ते मे मेड़तारोड, नागौर, डेह होते हुए संघ लाडनू आ गया। वहाँ पर चन्द्रसागर स्मारक भवन बनाया गया था। उसमें भगवान् महावीर स्वामी की पद्मासन प्रतिमा जी को विराजमान किया था तथा आ० शांति-सागरजी, आ० वीरसागरजी और आ० कल्प चन्द्रसागरजी की प्रतिमायें विराजमान की गई थी। इस स्मारक भवन में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव कराने के लिए वहाँ के भक्त श्रावक आ० श्री शिवसागरजी महाराज को संघ सहित वहाँ पर लाये थे।

वहीं पर आ० सुमतिमती माताजी का स्वास्थ्य अस्वस्थ होने से उनकी सल्लेखना चल रही थी। एक दिन रात्रि में पिछले भाग में लगभग ३–३० बजे करीब महामंत्र सुनते हुए एवं दैगम्बरी दीक्षा विधिवत् लेकर पूज्य माताजी ने शरीर का त्याग कर दिया था। उसी दिन प्रातः कैलाशचन्द वहाँ आ गये। माताजी की अन्त्येष्टि में भाग लिया। पुनः आर्यिका ज्ञानमतीजी से बोले—

"पिताजी बहुत ही अस्वस्थ हैं। अतः प्रकाश को भेजना बहुत जरूरी है। मैं लेने के लिए ही आया हूँ।"

यद्यपि माताजी को मालूम था कि पिता की अस्वस्थता तो बहाना मात्र है। ये लोग प्रकाश को संघ में न रहने देकर एक दो वर्ष में गृहस्थाश्रम के बन्धन मे बाँध देंगे। माताजी ने बहुत कुछ समझाया बुझाया परन्तु कैलाशचन्दजी नही माने, आखिरकार प्रकाशचन्द को रोते हुए भी जबरन अपने साथ लिवा ले आये।

जब प्रकाशचन्द घर आ गये, पिता के साथ ही भाई बहनों की भी खुशी का पार नही रहा। सबने उन्हें घेर लिया और संघ के संस्मरण सुनने के लिए उत्सुकता से बैठ गये।

प्रकाशचन्द ने सुनाना शुरू कर दिया—

"संघ में रहकर मैंने पंचामृत अभिषेक पाठ, छहढाला, द्रव्य संग्रह, कातन्त्र व्याकरण के कुछ पृष्ठ ऐसी कई चीजें पढ़ी हैं। माताजी ने तो मुझे बहुत ही थोड़ा पढ़ाया है किन्तु शिक्षायें अनमोल दी हैं। उद्दंडपने की सारी आदतें छुड़ा दी हैं। मैंने अंगूरी जीजो से भी पढ़ा है। और ब्र० राज-मलजी से तथा बाबाजी श्रीलालजी से भी कुछ पढ़ा है।"

विशेष संस्मरण

एक बार मैंने पूज्य आ० ज्ञानमती माताजी की पूजन बनाई। मैं उसे माताजी के सामने पढ़कर अष्टद्रव्य से उनका पूजन करना चाहता था। तभी माताजी ने मुझे फटकार दिया और रोक दिया। उस समय मुझे बहुत रोना आया। बाबाजी श्रीलालजी मुझे समझाकर चुप कर रहे थे। इसी बीच माताजी उधर आ गईं और बोलीं—

"बाबाजी ! आप इसे शास्त्री बना दें, मैं चाहती हूँ यह संस्कृत का अच्छा विद्वान् बन जाये, इसीलिए इसे आपके पास रखा है।"

बाबाजी बोले—

"इसकी बुद्धि तो बहुत ही अच्छी है। यदि यह मन लगाकर व्याकरण पढ़े तो अवश्य ही पंडित बन सकता है।........वास्तव में कुछ गुण तो लोगों को विरासत में ही मिल जाया करते हैं।"

इसी मध्य पं० खूबचन्द्रजी शास्त्री बोले—

"हाँ, देखो ना, भगवान् ऋषभदेव के समवसरण में भी तो उनका परिवार ही इकट्ठा हो गया था। भगवान् के तृतीय पुत्र वृषभसेन ही भगवान् के प्रथम गणधर थे, बड़े पुत्र सम्राट् भरत ही तो मुख्य श्रोता थे और उन्हीं की पुत्री ब्राह्मी ही तो मुख्य गणिनी थीं।........यह योग्यता उनके परिवार में ही आई और अन्य किसी को नहीं मिल पाई।........मालूम पड़ता है कि भगवान् को भी बहुत ही बड़ा पक्षपात था........।"

इतना कहकर वो हँस पड़े। तभी श्रीलाल बाबाजी बोले—

"हाँ यही बात तो भगवान् महावीर स्वामी के समवसरण में भी थी। वे बालब्रह्मचारी थे तो उनके मौसा राजा श्रेणिक ही उनकी सभा के मुख्य श्रोता थे, और उनकी छोटी मौसी चन्दनाजी ही आर्यिकाओं की प्रधान गणिनी थीं........।"

पुनः बाबाजी गम्भीर होकर बोले—

"भाई। यह पक्षपात नहीं, यह तो योग्यता की ही बात है।" सुनकर माता-पिता बहुत ही प्रसन्न हुए और सभी भाई बहनों को भी प्रसन्नता हुई।

पुनः पिता बोले—

"माताजी के दर्शन करके वहाँ एक महीना रहकर अच्छा तो खूब लगा किन्तु जो वे किसी को भी संघ में रखने के लिए पीछे पड़ जाती हैं सो यह उनकी आदत अच्छी नहीं लगी।"

तब प्रकाश बोले—

"यह तो उनका कुछ स्वभाव ही है। उन्होंने म्सवड़ चातुर्मास में आ० पद्मावती और जिनमती को कैसे निकाला है। कितने संघर्षों के आने पर भी कितने पुरुषार्थ से उन्होंने उन दोनों की दीक्षा दिलाई है। संघ में मुझे पद्मावती आर्यिका ने स्वयं यह बात बताई है। वे सौ० सोनुबाई के यहाँ हर दूसरे तीसरे दिन आहार को जाती थी। तब उनके पति को कहती ही रहती कि "तुम्हारी धर्मपत्नी को हम ले जायेंगे।"

उनके पुत्र पुत्रवधू आदि भी जब जब दर्शन करने आते माताजी हर किसी को भी कहती रहतीं—

"तुम्हारी माँ को हम ले जायेंगे।"

पहले तो ये लोग खुशी से कह देते—

"बहुत अच्छा है। आप ले जाइए, वे जगत्पूज्य माताजी बन जायेंगीं।"

किन्तु जब साथ ले आई तो उनके पति लालचन्द ने दो तीन जगह आकर सोनुबाई को ले जाना चाहा, हल्ला गुल्ला भी मचाया किन्तु माताजी भी दृढ़ रहीं और हँसती रही तथा सोनुबाई भी पक्की रहीं। आज वे ही आ० पद्मावती जी हैं। कु० प्रभावती को निकालने पर तो उसकी नानी ने बहुत ही यद्वा तद्वा बका था किन्तु माताजी ने बुरा भी नहीं माना था और घबराई भी

नहीं थीं। तभी वह प्रभावती आज संघ में क्षु० जिनमती हैं। अभी ब्यावर चातुर्मास में भी माताजी ने कई एक कन्याओं को घर से निकलने को प्रेरणा दी थी। यद्यपि वे नही निकल सकीं यह बात अलग है—

इतना सुनकर पिताजी हँस पड़े। और बोले—

"सबको मूंडने में इन्हे मजा आता है"

[१०]

कैलाशचन्द ने पुनः दर्शन किये

घर में प्रायः जब भी आर्यिका ज्ञानमती माताजी की चर्चा चलती तभी पिता के मन में भी मोह जाग्रत होता और दर्शन करने की उत्कण्ठा होती। किन्तु वे इसी डर से कुछ नहीं कहते कि अब की बार भी जो जायेगा, माताजी उसे ही रोक लेंगी। उधर मनोवती तो घर मे जब भी अपने विवाह के लिए चर्चा सुनती रोने लगती और कहती—

"मुझे माताजी के पास भेज दो, मैं दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करूँगी।"

माता मोहिनी का हृदय पिघल जाता किन्तु मोह का उदय तथा पतिदेव का बन्धन उन्हें भी मजबूर किए हुए था।

सन् १९६१ में सीकर में आ० शिवसागरजी के संघ का चातुर्मास हो रहा था। वही संघ मे आ० ज्ञानमती माताजी भी थी।

एक दिन माता मोहिनी ने अपने पति से माताजी के दर्शनार्थ चलने के लिए बहुत ही आग्रह किया किन्तु सफलता न मिलने पर लाचार हो अपने बडे पुत्र कैलाशचन्द से बोली—

"बेटे कैलाश ! तुम बहू चन्दा को लेकर सीकर चले जावो और आ० ज्ञानमती माताजी के दर्शन कर आओ। दो वर्ष का समाचार भी ले आओ, उनका स्वास्थ्य कैसा चल रहा है मेरी जानने की तीव्र ही उत्कण्ठा हो रही है।"

इतना सुनते ही कैलाशचन्दजी को प्रसन्नता हुई। उन्होने पिता से आज्ञा ली और अपनी पत्नी चन्दा को साथ लेकर सीकर आ गये। यहाँ आकर इन दोनों ने आचार्य संघ के दर्शन किए और आ० ज्ञानमती माताजी से भी शुभाशीर्वाद प्राप्त किया। चन्दा की गोद में नन्हा सा बालक था। कैलाश ने कहा—

"माताजी ! इस नन्हें मुन्ने का नाम रख दो।"

माताजी ने उसका नाम जम्बू कुमार रख दिया।

कैलाशचन्द कई दिनों तक वहाँ रहे। संघ में गुरुओं के उपदेश सुने, आहार देखा और माताजी की दैनिक चर्या का सूक्ष्मता से अवलोकन किया। यद्यपि माताजी का स्वास्थ्य कमजोर चल रहा था फिर भी वे सतत ज्ञानाभ्यास मे लगी रहती थी। उस समय माताजी प्रातः संघस्थ कई एक आर्यिकाओ को लब्धिसार ग्रन्थ का स्वाध्याय करा रही थी। उसकी सूक्ष्म चर्चा बहुत ही गहन थी। तथा मध्याह्न मे अपनी प्रिय शिष्या क्षु० जिनमतीजी को प्रमेयकमलमार्तण्ड पढ़ा रही थी जो कि न्याय का उच्चतर ग्रन्थ है।

मध्याह्न में कभी कभी माताजी का सभा मे उपदेश भी होता रहता था। तथा ४ बजे करीब माताजी के पास कई एक महिलायें अध्ययन करती रहती थी।

कैलाशचन्द को सीकर की समाज का बहुत ही स्नेह मिला। प्रायः प्रतिदिन कोई न कोई श्रावक उन्हें अपने घर जिमाने के लिये बुलाने आ जाया करते थे। जब ये टिकैतनगर जाने के लिये तैयार हुए तभी एक महिला जो कि इन्हे बहुत ही आदर से देखती थी और चन्दा को मानों वह अपनी ही बहू समझती थी। वे एक साड़ी ले आईं साथ ही नन्हे मुन्ने के लिए भी एक जोड़ी वस्त्र थे। चन्दा घबराई और बोली—

"अम्माजी ! मैं यहाँ माताजी के दर्शन करने आई हूँ यदि ये कपडे भेंट में ले जाऊँगी तो सासु जी मेरे से बहुत ही नाराज होंगी इसलिए मैं क्षमा चाहती हूँ, मैं कतई यह भेंट नहीं लूँगी।"

उस महिला के बहुत कुछ आग्रह के बावजूद भी चन्दा ने वस्त्र नही लिये और बार-बार यही उत्तर दिया—

"अम्माजी ! आपका आशीर्वाद ही हमें बहुत कुछ है। आपकी उत्तम भावना से मैं प्रसन्न हूं ....।"

जाते समय कैलाश ने यह बात माताजी से बता दी और सभी गुरुओं का तथा पूज्य माताजी का शुभाशीर्वाद लेकर घर आ गये। आते ही मनोवती ने बड़े भाई और भावज को घेर लिया तथा रोने लगी—

"भाई साहब ! आप मुझे भी माताजी के पास क्यों नही ले गये ?"

कैलाश ने मनोवती को समझाने की चेष्टा की किन्तु मनोवती को संतोष नही हुआ।

सभी ने संघ के कुशल समाचार पूछे और माताजी के उच्चतम ग्रन्थों के स्वाध्याय की चर्चा सुनकर गद्‌गद हो गये।

दीक्षा महोत्सव देखने का अवसर

आ० ज्ञानमती माताजी के हर्ष का पार नहीं था। आज उनकी शिष्याये दीक्षा ले रही हैं। ब्र० राजमल जी भी मुनि दीक्षा लेने वाले हैं। माताजी ने इन ब्र० जी को मुनि दीक्षा लेने के लिये भी बहुत ही प्रेरणा दी थी। इस समय जो महिलायें आर्यिका दीक्षा लेंगी उनको मंगल स्नान कराया जा रहा है। चार महिलायें चार कोनों पर खड़ी होकर कपड़े का छोर पकड़ कर कपड़े से मर्यादा किये हुए है। एक छोर पर खड़ी एक महिला एक हाथ से पर्दे को पकड़े हुए हैं किन्तु उसकी दृष्टि बार-बार अपने नन्हें मुन्ने की तरफ जा रही है इस कारण पर्दा कुछ नीचा हो गया। तभी माताजी ने उस अपरिचित महिला को फटकारा—

"तुम्हें विवेक नहीं है ! पर्दा ठीक से पकड़ो। इधर उधर क्या देख रही हो।"

इसके बाद माताजी ने जब पुनः उसकी ओर देखा तो वह महिला रो रही थी—माताजी ने कहा—

"अरे ! तुम्हें इतना भी नहीं सहन हुआ, जरा सी बात में रोने लगी ?"

तभी उस महिला ने कहा—

"नहीं माताजी ! मैं आपके गुस्सा करने से नहीं रो रही हूँ किन्तु आज पहली बार मैंने आपके दर्शन किये हैं, इसलिये रोना आ गया।"

तब माताजी ने उस महिला को शिर से पैर तक एक बार देखा और कुछ भी न पहचान पाने से पुनः पूछा—

"तुम कौन हो ! कहाँ से आई हो।"

उसने कहा—

"मैं श्रीमती हूँ, बहराइच से आई हूँ। मैं टिकैतनगर के लाला छोटेलाल जी की पुत्री हूँ।"

तब माताजी ने बहुत आश्चर्य व्यक्त किया और कहा—

"तुझे मैंने जब छोड़ा था तब तू दस-ग्यारह वर्ष की होगी। अब तो तू बड़ी हो गई। तेरी शादी भी हो गयी। भला मैं कैसे पहचान पाती ?"

इतना सुनते ही श्रीमती को और भी रोना आ गया। वह सिसक-सिसक कर रोने लगी। पास में खड़ी महिलाओं ने उन्हे सान्त्वना दी, शांत किया पुनः उसका परिचय मिलने के बाद समाज के लोगों ने उन्हें वही दंग की नशिया मे एक कमरे मे ठहरा दिया। साथ में उनके पति प्रेमचन्द्र जी आये हुए थे और श्रीमती जीजी की गोद मे छोटा मुन्ना था जिसका नाम प्रदीपकुमार था। श्रीमती जी ने उस दीक्षा समारोह को बड़े ही प्रेम से देखा और अपने भाग्य को सराहा कि मैं अच्छे मौके पर आ गयी जो कि इतना बड़ा महोत्सव देखने को मिल गया।

बहन श्रीमती वहाँ सीकर नगर मे कई दिनों तक रही। मुनियों के उपदेश सुने और जोड़े से शुद्ध जल का नियम करके सभी मुनि आर्यिकाओं को आहार दिया। बाद मे सभी गुरुओं का शुभाशीर्वाद और माताजी की बहुमूल्य शिक्षाओं को लेकर वे अपने घर आ गईं। घर मे अपने सास-ससुर को वहाँ की बातें सुनाईं। अनन्तर जब पीहर आई तब सभी भाई बहन उन्हें घेर कर बैठ गये। माता-मोहिनी और पिता छोटेलाल जी भी वही बैठे हुए थे। माँ ने पूछा—

"श्रीमती ! तुमने सीकर में मुनि-आर्यिकाओं की दीक्षाये देखी हैं। सुनाओ दीक्षा कैसे ली जाती है ? आचार्य महाराज भी दीक्षा देते समय क्या कहते हैं ?"

श्रीमती ने कहा—

"वहाँ पर पहले माताजी ने सभी दीक्षा लेने वाली महिलाओं को सौभाग्यवती महिलाओं से हल्दी मिश्रित आटे का उबटन लगवाया फिर गर्म जल से स्नान करवाया, अनन्तर नई साड़ियाँ पहनाईं। यह सब कार्य सभा मण्डप मे ही पर्दे के अन्दर किया गया। उसी पर्दे का एक छोर मुझे पकड़ने को मिल गया था और प्रदीप मुन्ने को देखने में मेरा हाथ जरा नीचा हो गया कि माताजी ने फटकार लगाई थी पुनः मैंने देखा सभी महिलायें मंगलगीत-भजन गाते हुए उन दीक्षार्थिनी महिलाओं को पण्डाल मे बने मंच पर ले गयी। और वहाँ माताजी के पास ही ये सब बैठ गयी। उधर ब्र० राजमल जी को मंगल स्नान कराकर एक धोती दुपट्टा नया पहना कर लोग मंच पर ले आये थे। मंच पर इन दीक्षा लेने वालो ने पहले श्री जिनेन्द्रदेव का पंचामृत अभिषेक किया। अनन्तर हाथ में श्रीफल लेकर आचार्यश्री से दीक्षा के लिए प्रार्थना की।

उस समय ब्रह्मचारी राजमल जी ने बहुत ही विस्तार से उपदेश दिया जिसमें उन्होंने माताजी के विशेष गुण गाये। ब्र० अंगूरी का गला बैठ गया था अतः वे मात्र दो शब्द ही बोल

सकीं। तदनन्तर सबके द्वारा प्रार्थना हो जाने के बाद महाराज जी की आज्ञा से सभी दीक्षार्थी चावल से बने हुए स्वस्तिक पर जिस पर नया कपड़ा बिछा हुआ था उस पर क्रम-क्रम से बैठ गये। महाराज जी ने मन्त्र पढ़ते हुए दीक्षा के संस्कार शुरू कर दिये। उस समय मंच पर पूज्य आ० ज्ञानमती माताजी भी थी। वे क्षुल्लिका जिनमती, ब्र० अंगूरीबाई आदि के केशलोंच संस्कार आदि करा रही थीं।

आचार्यश्री ने सबको दीक्षा देकर पिच्छी, कमण्डलु दिये, शास्त्र दिये। पुनः उनके नाम सभा में घोषित कर दिये। मुनि का नाम अजितसागर रक्खा गया। क्षु० जिनमती और संभवमती के आर्यिका दीक्षा में भी वे ही नाम रहे। ब्र० अंगूरी का आर्यिका में आदिमती नाम रक्खा गया और ब्र० रतनीबाई की क्षुल्लिका दीक्षा हुई उनका नाम श्रेयांसमती रक्खा गया। माताजी ने ब्र० अंगूरी को घर से निकालने में जितना पुरुषार्थ किया था वह भी अकथनीय है।

इस प्रकार दीक्षा को देखकर हमें जो आनन्द हुआ है वह वचनों से नही कहा जा सकता है। तब मोहिनी जी ने कहा—

"ऐसे ही बिटिया मैना की भी क्षुल्लिका दीक्षा हुई होगी और ऐसे ही आचार्यश्री वीर-सागर जी ने उन्हें आर्यिका दीक्षा दी होगी। हमारे भाग्य मे देखना नही लिखा था। इसलिये हम-लोग उनकी दोनों भी दीक्षाओं को नहीं देख पाये।"

तब पिता ने कहा—

"किसी ने कोई सूचना ही नहीं दी तो भला जाते भी कैसे ?"

माँ बोली—

"समाचार मिलने पर भी न आप दीक्षा लेने के लिए स्वीकृति देते और न दीक्षा होने ही देते..........।"

सबके नेत्रों में आँसू आ गये।..........पुनः कुछ क्षण खामोशी के बाद श्रीमती ने बताया—

"वहाँ पर आहार के समय का दृश्य देखते ही बनता था। जी करता था कि वहाँ से घर न आयें किन्तु क्या करें आना ही पड़ा। सब साधु एक के पीछे एक ऐसे क्रम से निकलते थे। बाद में सभी आर्यिकायें एक के पीछे एक क्रम से निकलती थीं। यह दृश्य चतुर्थकाल के समान बड़ा अच्छा लगता था।"

पुनः मोहिनी माँ ने पूछा—

"बिटिया श्रीमती ! इन दीक्षा लेने वालों में माताजी की शिष्यायें कौन-कौन थीं।

श्रीमती ने कहा—

"मुझे एक दिन ब्र० श्रीलालजी ने बताया था कि ब्र० राजमल जी ने माता जी के पास राजवार्तिक आदि का अध्ययन भी किया है और माताजी ने इन्हें दीक्षा के लिये बहुत ही प्रेरणा दी थी। इसलिये वे अजितसागर महाराज जी मुनि होकर भी माताजी को अपनी माँ के रूप में देखते हैं। क्षुल्लिका जिनमती जी तो उनकी शिष्या थी ही। इन्हें तो माताजी ने बड़े पुरुषार्थ से घर से निकाला था। क्षु० संभवमती जी को भी माताजी ने ही क्षुल्लिका दीक्षा दिलाई थी। ब्र० अंगूरी बाई की तो दीक्षा के समय माताजी की खुशी का ठिकाना नहीं था।"

इन समाचारों को श्रीमती के मुख से सुनकर छोटी बहन मनोवती बोली—

"हे भगवन् ! मुझे ऐसी माताजी के दर्शनों का सौभाग्य कब मिलेगा ? मैंने पूर्वजन्म में पता नहीं कौन-सा पाप किया था कि जो ४–५ वर्ष हो गये मैं उनके दर्शनों के लिए तरस रही हूँ..........।"

इस प्रसंग में माता मोहिनी के भाव भी माताजी के दर्शनों के लिए हो उठे किन्तु पिता ने कहा—

"अगले चातुर्मास में चलेंगे।"

तभी सब लोग माताजी के दर्शनों की उत्कण्ठा लिए हुए अपने-अपने काम में लग गये।

[११]

मनोवती के मनोरथ फले

मनोवती बहुत ही अस्वस्थ चल रही थी। लखनऊ के डाक्टर का इलाज चल रहा था किन्तु कोई खास फायदा नहीं दिख रहा था। माँ मोहिनी लखनऊ में चौक के मन्दिर मे दर्शन करने जाती थी। एक दिन देखा, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा की कुंकुम पत्रिका मन्दिर जी मे लगी हुई है। बारीकी से पढने लगी। विदित हुआ, इस समय आ० शिवसागर जी का संघ लाडनू राजस्थान में है। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का अवसर है वहाँ पर आर्यिका ज्ञानमती जी भी है। मन में सोचने लगीं—

"यह मनोवती पाँच वर्ष से माताजी के लिए तड़फ रही है। इसका शरीर स्वास्थ्य इस मानसिक चिन्ता से ही खराब हो रहा है। इसको जब तक माताजी के दर्शन नही मिलेंगे तब तक इसे कोई भी दवाई नहीं लगेगी।.... ...यह मौका अच्छा है। पति से पूछने पर, पता नही वे कितने मोही जीव हैं, इसे संघ में ले जाने की अनुमति नही देंगे। मेरी समझ से तो अब मुझे इस मनोवती को माताजी के दर्शन करा देना चाहिए।"

माँ मोहिनी के पास उस समय रवीन्द्र कुमार नाम का सबसे छोटा पुत्र वही पर था। सोचा—

"इसे ही साथ लेकर मैं क्यों न लाडनू चली जाऊं।"

यद्यपि माँ मोहिनी ने आज तक कभी अकेले इस तरह रेल की सफर नहीं की थी फिर भी साहस बटोर कर भगवान् का नाम लेकर उन्होंने किसी विश्वस्त व्यक्ति से लाडनू आने-जाने का मार्ग पूछ लिया। और लखनऊ से मनोवती पुत्री तथा रवीन्द्र पुत्र को साथ लेकर लाडनू आ गईं।

माताजी के दर्शन किये, मन शांत हुआ पुनः दूसरे क्षण ही घबराहट में माताजी से बोलीं—

"मैं तुम्हारे पिता से न बताकर लखनऊ से ही सीधे इधर आ गई हूँ। अगर वे लोग लखनऊ आये, मै न मिली तो क्या होगा। सब लोग चिन्ता करेंगे।"

माताजी ने सारी स्थिति समझ ली। शीघ्र ही ब्र० श्रीलालजी को बुलाया और सारी बात बता दी तथा घर का पता बता कर कहा कि—

"इनके घर तार दे दो कि ये लोग सकुशल यहाँ प्रतिष्ठा देखने आ गई हैं। चिन्ता न करें।"

ब्र० श्रीलालजी ने उनके घर तार दे दिया। अब इन्होंने यहाँ रहकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा देखी और प्रतिदिन आहार दान का लाभ लेने लगीं।

मनोवती की खुशी का क्या ठिकाना ! मानों उसे सब कुछ मिल गया है। वह माताजी के दर्शन कर अपने को धन्य मानने लगी। माताजी के पास बैठकर उसने अपने ४–५ वर्ष के मनोभाव सुनाये और कहने लगी—

"माताजी ! अब मैं घर नहीं जाऊँगी। अब तो आप मुझे यहीं पर दीक्षा दिला दो।"

माताजी ने समझाया, सान्त्वना दी और कहा—

"बेटी मनोवती ! अब तुम संघ में आ गई हो, खूब धार्मिक अध्ययन करो, व्याकरण पढ़ो, दीक्षा भी मिल जायेगी। धीरे-धीरे सब काम हो जावेगा।"

उस समय संघ में वयोवृद्धा और दीक्षा में भी सबसे पुरानी आर्यिका धर्ममती माताजी थीं। उनका ज्ञानमती माताजी के प्रति विशेष वात्सल्य था। उन्होंने इस कन्या मनोवती के ज्ञान की और वैराग्य की बहुत ही सराहना की तथा बारबार माँ मोहिनी से कहने लगीं—

"माँजी ! तुम्हारी कूँख धन्य है कि जो तुमने ऐसी-ऐसी कन्यारत्न को जन्म दिया है। देखो, ज्ञानमती माताजी के ज्ञान से सभी साधुवर्ग प्रभावित हैं। ये इतनी कमजोर होकर भी रात-दिन संघ मे आर्यिकाओं को पढ़ाती ही रहती हैं। यह कन्या मनोवती भी देखो, कितने अच्छे भावों को लिए हुए है। सिवाय दीक्षा लेने के और कोई बात ही नहीं करती है। इसे भी तत्त्वार्थसूत्र आदि का अर्थ मालूम है, अच्छा ज्ञान है और क्षयोपशम भी बहुत अच्छा है। खूब पढ़ जायेगी। अब इसे हम लोग संघ में ही रखेंगे, घर नहीं भेजेंगे।"

इन बातों को सुनकर मनोवती खुश हो जाती थी। एक दिन माताजी के साथ आ० शिवसागर महाराज के पास पहुँच कर उसने नारियल चढ़ाकर दीक्षा के लिए प्रार्थना की। महाराज जी ने कहा—

"अभी तुम आई हो, संघ में रहो, कुछ दिनों में दीक्षा भी मिल जायेगी।"

किन्तु माँ मोहिनी घबराने लगीं, उन्होंने कहा—

"यदि यह वापस घर नहीं चलेगी तो मुझे घर में रहना भी मुश्किल हो जायेगा। इसके पिता बहुत उपद्रव करेंगे।"

तब सभी माताजी ने मनोवती को समझा-बुझाकर शान्त कर दिया।

व्रती जीवन का प्रारम्भ

एक दिन ज्ञानमती माताजी ने केशलोंच किया। मोहिनी देवी ने अपनी पुत्री के केशलोंच पहली बार देखे थे। उनके हृदय में वैराग्य का स्रोत उमड़ आया। केशलोंच के बाद वे श्रीफल लेकर आचार्यश्री के पास गईं और दो प्रतिमा के व्रत लेने के लिए प्रार्थना करने लगीं। ज्ञानमती माताजी ने कहा—

"आपको उस प्रांत में शुद्ध घी नहीं मिलेगा। पुनः रूखी रोटी कैसे खावोगी, तुम्हारा स्वास्थ्य तो बहुत कमजोर रहता है ?"

उन्होंने कहा—

"कोई बात नहीं, जैसा होगा सब निभ जायेगा।"

आचार्यश्री उस समय उन्हें पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत देकर दो प्रतिमाओं के व्रत दे दिये। सारी विधि बतला दी। वैसे ये स्वयं घर में प्रायः शुद्ध भोजन करती थीं, हाथ का पिसा हुआ आटा, शुद्ध घी और कुंये का जल मात्र इतने की ही कमी थी। दोनों टाइम सामायिक भी करती थीं और प्रातः नित्य ही शुद्ध वस्त्र पहनकर शुद्ध धुले अष्टद्रव्य से भगवान् का पूजन करती थीं। स्वयं स्वाध्याय करती थीं और महिलाओं की सभा में भी शास्त्र बाँचकर सुनाती थीं।

अब इनका जीवन व्रतिक बन चुका था। ये मन में तो यही सोच रही थीं कि—

"भगवन्! कब ऐसा दिन आयेगा कि जिस दिन मैं केशलोंच करके घर कुटुम्ब, पति, पुत्र-पुत्रियों का मोह छोड़ करके दीक्षा लेकर संघ में रहूँगी............।"

इसी प्रसंग में मनोवती ने भी ब्रह्मचर्यव्रत के लिए आग्रह किया किन्तु माँ ने कहा—अभी तुम्हें मैं व्रत नहीं दिला सकती। माँ की आज्ञा न होने से आचार्य महाराज ने भी टाल दिया।

माता मोहिनी जी ने देखा कि यहाँ आदिमती माताजी के कमर में वायु का प्रकोप हो जाने से वे उठने बैठने में बहुत ही परेशान हैं। आ० ज्ञानमती माताजी स्वयं अपने हाथ से उनकी वैयावृत्ति करती रहती हैं। संघ की अन्य आर्यिका जिनमती जी, क्षु० श्रेयांसमती जी भी उनकी वैयावृत्ति में लगी रहती हैं। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर भी माताजी ने इनकी अस्वस्थता के कारण हर प्रसंगों में भाग नहीं लिया था। वे वैयावृत्ति को ही बहुत बड़ा धर्म समझती थी। ऐसे प्रसंग पर माँ मोहिनी भी समयोचित वैयावृत्ति में पीछे नहीं रही थीं।

इन ज्ञानमती माताजी के पास में कोई ब्रह्मचारिणी न होने से सारी वैयावृत्ति आदि माताजी को ही करना पड़ती थीं। तभी एक दिन आर्यिका सिद्धमती माताजी ने मोहिनीजी से कहा—

"ये आपकी पुत्री जब वीरमती क्षुल्लिका थी, संघ में आईं। आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज ने भी इनसे कहा था कि—

"तुम कुछ दिन सोनुबाई और कु० प्रभावती को ब्रह्मचारिणी अवस्था में ही रक्खो। ये दोनों कुछ दिनों तक संघ की और तुम्हारी सेवा करें, आहार देवें और गुरुओं की विनय करें। पश्चात् इन्हें दीक्षा दिलाना।"

किन्तु ये नहीं मानीं और झट अपने साथ ही कु० प्रभावती को क्षुल्लिका दीक्षा दिला दी। कुछ दिन बाद ही ब्र० सोनुबाई को भी आ० पद्मावती बना दिया। अभी एक वर्ष पूर्व ही यह ब्र० अंगूरी संघ में आई थी, झट से इसे भी माताजी बना दिया और ब्र० रतनीबाई को भी क्षुल्लिका दीक्षा दिला दी। तुम्हीं सोचो, भला इन्हें इतनी जल्दी क्या रहती है। हम सभी यहाँ जितनी भी आर्यिकायें हैं, सबने संघ में कई-कई वर्षों रहकर सेवा की है। आर्यिकाओं की वैयावृत्ति की है और चौका बनाकर खूब आहार दिया है। बाद में खूब अभ्यास हो जाने के बाद ही दीक्षा ली है।............देखो न, अंगूरी को कुछ अभ्यास नहीं था अतः दीक्षा लेते ही बीमार रहने लगी............।"

यह सब सुनकर माँ मोहिनी ने आकर एकांत में आर्यिका ज्ञानमती माताजी से सारी बातें सुना दीं और अपनी तरफ से भी कुछ कहना शुरू किया। तब माताजी बोलीं—

"बात यह है कि जिसने घर छोड़ा है मुझे लगता है दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करे। अपनी वैयावृत्ति और व्यवस्था के लिए भला मैं उसे क्यों ब्रह्मचारिणी वेष में ही रहने दूं। मैं अपने भाग्य पर भरोसा रखती हूँ। मेरा भाग्य होगा तो ये आर्यिका बनकर भी मेरी सेवा करेंगी तथा गृहस्थ लोग भी करेंगे और भाग्य नहीं होगा तो ये ब्रह्मचारिणी रहकर भी नहीं करेंगी ....।"

ऐसा उत्तर सुनकर और माताजी की निःस्पृहता देखकर माँ मोहिनी चुप हो गईं—

यात्रा के प्रस्थान की चर्चा

एक दिन मोहिनी जी ने सुना। आ० ज्ञानमती जी अपनी शिष्या जिनमती के साथ कुछ परामर्श कर रही हैं। जिनमती ने आज तक सम्मेदशिखर जी की यात्रा नही की थी अतः वह पूज्य माताजी से शिखर जी यात्रा हेतु चलने के लिए प्रार्थना कर रही थीं। माताजी कह रही थी–

"हाँ, कई बार ब्र० सुगनचन्द जी ने भी कहा है कि मैं आपको सम्मेदशिखर की यात्रा कराना चाहता हूँ और सेठ हीरालाल जी निवाई वालों ने भी कई बार कहा है कि "माताजी! आपको शिखर जी यात्रा की व्यवस्था जैसी चाहो वैसी मैं करने को तैयार हूँ।"

किन्तु गर्मी आ रही है। चातुर्मास के बाद ही यात्रा के लिए प्रस्थान किया जा सकेगा। इसी मध्य शिखर जी की वंदना होने तक पूज्य माताजी के चावल का त्याग चल रहा था। वे मात्र एक अन्न गेहूं ही आहार में लेती थीं। माताजी का इतना कमजोर शरीर और इतना अधिक त्याग देखकर माँ मोहिनी बहुत ही आश्चर्य किया करती थीं।

मोहिनी जी को यहाँ संघ के सान्निध्य में रहते हुए लगभग एक महीना व्यतीत हो रहा था। अब वे घर जाने के लिए सोच रही थी कि एक दिन सहसा घर से तार आया कि ताऊजी का स्वर्गवास हो गया है। तभी मोहिनी जी ने ब्र० सुगनचन्द के साथ घर जाने की तैयारी की।

मनोवती का संघ में रहना

अब मनोवती ने जिद पकड़ ली—

"चाहे जो हो जाय अब मैं घर नहीं जा सकती। कितनी मुश्किल से मुझे माताजी मिली हैं अब मैं इन्हे नही छोड़ने की। मैं यही रहूँगी।"

तब ब्र० श्रीलालजी ने माता मोहिनीजी को जैसे-तैसे समझाकर उनसे स्वीकृति दिलाकर कु० मनोवती को एक वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत आ० शिवसागरजी से दिला दिया। और एक वर्ष तक उसे संघ मे रहने की स्वीकृति दिला दी तथा मोहिनीजी को सान्त्वना देकर घर भेज दिया।

मोहिनीजी के पास लगभग २ वर्ष की छोटी सी कन्या थी। उसका नाम माताजी ने 'त्रिशला' रक्खा था। मोहिनीजी अपनी इस कन्या को और रवीन्द्र कुमार को साथ लेकर ब्रह्मचारीजी के साथ अपने घर वापस आ गईं। सारे पुत्र पुत्रियाँ माँ को देखते ही उनसे चिपट गये और कहने लगे—

"माँ! तुम हमें छोड़कर माताजी के पास क्यों चली गई थीं? बताओ हम माताजी के दर्शन कैसे करेंगे।"

इधर जब पिता ने मनोवती को नहीं देखा तो उनका पारा गरम हो गया और वे गुस्से में बोले—

"अरे मेरी बिटिया मनोवती कहाँ है ? क्या तुम उसे ज्ञानमती के पास छोड़ आईं ?"

मोहिनीजी ने शांति से जवाब दिया—

वह पाँच वर्ष से रोते-रोते बीमार हो गई थी आखिर मैं कब तक अपना कलेजा पत्थर का रखती। अब मैं क्या करूँ ?·······संघ की सभी आर्यिकाओं ने मुझे खूब समझाया और उसे एक वर्ष तक के लिए संघ मे रख लिया है। जब चाहे आप संघ में चले जाना। सब साधु साध्वियों के और ज्ञानमती माताजी के दर्शन भी कर आना तथा जैसे प्रकाश को वापस बुला लिया था वैसे ही उसे भी ले आना······· ।"

वातावरण शांत हो गया। पुनः समय पाकर सबने संघ के सारे समाचार सुने। माँ ने दो प्रतिमा के व्रत ले लिए हैं ऐसा मालूम होते ही घर में सबको दुःख हुआ। पिता ने सोचा—

"अब ये भी एक न एक दिन दीक्षा ले लेंगी ऐसा ही दिखता है। अतः इन्हे भी संघ में नहीं भेजना चाहिए।"

पुत्र कैलाशचन्द, पुत्रवधू चन्दा आदि भी सोचने लगे—

"क्या माँ भी कभी हम लोगों को छोड़कर दीक्षा ले लेंगी, आखिर बात क्या है !"

सभी लोग तरह-तरह की आशंका करने लगे तब माँ ने समझाया—

"देखो चिन्ता करने की कोई बात नही है अभी तो मैंने मात्र दो प्रतिमा के ही व्रत लिए हैं। छठी प्रतिमा तक लेकर भी गृहस्थाश्रम में रहा जाता है, कोई बाधा नहीं आती है।"

सोध चतुराई

अब माँ कुएँ का ही जल पीती थीं। घी नही खाती थी, हाथ का पिसा आटा यदि कदाचित् न मिल सके तो खिचड़ी बनाकर ही खा लेती थी। इनकी सोध चतुराई मे पिता छोटेलालजी कभी-कभी चिढ़ जाते थे और हल्ला मचाना शुरू कर देते थे। कभी-कभी तो उनका चौका छू देते। तब ये पुनः दूसरा चौका बनाकर भोजन करती थी। ये माँ मोहिनी अपने त्याग मे बहुत ही दृढ़ थीं। और आजकल की अपेक्षा बहुत ही बढ़चढ़कर सोध किया करती थी। इनको क्रिया कोष मे बहुत ही प्रेम था, स्वाध्याय भी अच्छा था। सभी बातों का ज्ञान था। सभी लड़के और लड़कियाँ इनकी आज्ञा के अनुरूप ही शुद्ध दूध, जल आदि के लाने में लगे रहते थे।

उधर में इन लोगों मे कुएँ से जल भरने की प्रथा नही थी। प्रायः कहार नौकर नौकरानी ही पानी भरते थे। उस समय इनके लिए इनके पुत्र या पुत्रियाँ पानी भरने जाते थे तब पिताजी को बहुत ही खेद होता था। ऐसा देखकर पिता ने घर मे "हैण्डपम्प" लगवा दिया, उसमे किरमिच का वासर डलवा दिया और बोले—

"तुम अब इसका पानी अपने भोजन के काम में ले लो। यह धरती से आया हुआ पानी बिल्कुल शुद्ध है।"

माँ मोहिनी ने संघ में पत्र लिखा—

"क्या मै हैण्डपम्प का पानी पी सकती हूँ ?"

माताजी ने उत्तर दिया—

"नहीं"

तब पिता छोटेलालजी के अत्यधिक आग्रह से भी मोहिनीजी ने उस हैण्डपम्प का जल नहीं

पिया। आजकल तो बहुत से सप्तम प्रतिमाधारी भी हैण्डपम्प का जल पीते हैं। उस समय माता मोहिनी ने अपने द्वितीय प्रतिमा के व्रतों को भी बहुत ही विशेषता से पाला था।

[१२]

प्रकाशचंद की तीर्थयात्रा

एक दिन घर में मनोवती का पत्र मिलता है। पहले पिताजी पढ़ते हैं पुनः सबको सुनाते हैं। उसमें विस्तार से लिखा हुआ था कि—

पूज्य आ० ज्ञानमती माताजी का संघ सम्मेदशिखरजी की यात्रा के लिए विहार कर चुका है। संघ में आ० पद्मावतीजी, आ० जिनमतीजी, आ० आदिमतीजी, क्षु० श्रेयांसमतीजी ऐसी चार साध्वियाँ हैं। ब्र० सुगनचन्दजी संघ की व्यवस्था में प्रमुख हैं। उनकी एक बहन ब्रह्मचारिणी जी साथ में हैं। एक महिला मूलीबाई और ब्र० भंवरीबाई भी साथ में हैं। जयपुर से एक श्रावक सरदारमलजी साथ में हैं। एक चौका ब्र० सुगनचंदजी का है और एक मेरा है। हम लोग कल यहाँ मथुरा में पहुँचे हैं। संघ यहाँ से आगरा, फिरोजाबाद, मैनपुरी, कन्नौज, कानपुर, लखनऊ होते हुए अयोध्या पहुँचेगा। टिकैतनगर यद्यपि कुछ बाजू में हैं फिर भी मेरी इच्छा है कि संघ का पदार्पण टिकैतनगर अवश्य हो। संघ में मुझे कुछ असुविधायें हो जाती है, चूंकि सरदारमलजी माताजी के साथ चलते हैं अतः मैं चाहती हूँ कि यात्रा में भाई प्रकाशचन्द को आप भेज दें तो मुझे बहुत ही सुविधा रहेगी। माताजी ने सभी ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियों को नियम दे दिया है कि शिखरजी पहुँचने तक रास्ते मे कोई किसी श्रावक से पैसा या कोई वस्तु नहीं लेना। कोई कुछ देना चाहे तो कह देना कि आप संघ में दो चार दिन रहकर स्वयं कुछ कर सकते हैं हम लोग कुछ नही लेंगे। मात्र बैलगाड़ी की व्यवस्था इस गाँव से अगले गाँव तक गाँव वालों से ही कराने की छूट कर दी है। इसलिए मेरी सारी व्यवस्था संभालने के लिए प्रकाश का आना आवश्यक है।"

साथ ही प्रकाशचंद को भेजने के लिए एक तार भी आ गया।

पत्र सुनने के बाद माँ ने सोचा—

"ये प्रकाश को क्या भेजेंगे, मैं कुछ न कुछ प्रयत्न कर भेजने का प्रयास करूँ।"

किन्तु हुआ इससे विपरीत, पिताजी बहुत ही प्रसन्न थे और बोले—

"देखो, कुछ नाश्ता वाश्ता बना दो। प्रकाश जल्दी चला जाये। बिटिया मनोवती को रास्ते में बहुत कष्ट होता होगा।"

माँ का हृदय गद्‌गद हो गया। पिता ने उसी समय प्रकाश को बुलाकर सारी बात समझा दी और बोले—

"जाओ, कुछ दिन मनोवती के साथ व्यवस्था में भाग लेवो। बाद में व्यवस्था अच्छी हो जाने के बाद जल्दी से चले आना।"

साथ में रुपयों की व्यवस्था भी कर दी और बोले—

"बेटा! अपने खेत का चावल एक बोरी लेते जाना।"

प्रकाश मथुरा आ गये। संघ यहाँ से विहार कर लखनऊ पहुँचा। टिकैतनगर के श्रावकों ने

इस आर्यिका संघ को टिकैतनगर चलने का आग्रह किया। माताजी ने स्वीकार कर टिकैतनगर पदार्पण किया। माँ और पिताजी बहुत ही प्रसन्न हुए। आर्यिका अवस्था में आज माताजी अपनी जन्मभूमि में दस वर्ष बाद पहुँची हैं। संघ वहाँ ५–६ दिन रहा। अच्छी प्रभावना हुई। जैनेतरों ने भी माताजी के दर्शन कर अपने को और अपने गाँव को धन्य माना। यहाँ पर मनोवती और प्रकाश अपने घर ही ठहरे थे, वहीं चौका चल रहा था। अब पिताजी का मोह पुनः जाग्रत हुआ उन्होंने कु० मनोवती और प्रकाश दोनों को भी आगे नहीं जाने के लिए कहा और रोकना चाहा।

माताजी ने कहा—

"बीच मे अधूरी यात्रा में इन्हें क्या पुण्य मिलेगा। पूरी यात्रा तो करा देने दो।"

एक दिन पिता ने दोनों को बिठाकर रास्ते के अनुभव पूछना शुरू किया, तब प्रकाश ने बतलाया।

"रास्ते में प्रतिदिन माताजी दोनों टाइम में १२ से १५ मील तक चलती हैं। मैं भगवान् की पेटी और कमण्डलु लेकर साथ ही पैदल चलता हूँ। बाबाजी (ब्र० सुगनचंदजी) मध्याह्न ३-४ बजे बैलगाड़ी पर सारा सामान लाद कर चल देते हैं। रात्रि में प्रायः १०-११ बजे वहाँ पर आ पाते हैं कि जहाँ माताजी ठहरती हैं। वहाँ आकर घास का बोरा खोलकर घास देते है।

इतना सुनते ही पिताजी बोले—

"इतनी भयंकर पौष, माघ को ठण्डी में सभी आर्यिकायें एक साड़ी में १०-११ बजे तक कैसे बैठी रहती है?"

प्रकाश ने कहा—

"जहाँ माताजी ठहर जाती हैं, वहीं स्कूल या ग्राम पंचायत का स्थान या डाक बंगला आदि कोई स्थान ढूंढ कर, उन लोगों से बातचीत कर मैं सभी माताजी को वहाँ ठहरा देता हूँ। पुनः कुंआ देखकर पानी लाकर गर्म कर कमण्डलु में भरकर मैं गाँव में चावल की घास ढूढने के लिए चला जाता हूँ। कभी तो घास मिल जाती है, तो एक गट्ठा लाकर सबको बैठने के लिए थोड़ी-थोड़ी देता हूँ, कभी नही मिले तो ज्वार की कडब या गन्ने के फूस ही ले आता हूँ। उसी पर माताजी बैठकर सामायिक, जाप्य, स्वाध्याय आदि कर लेती है।"

माँ ने पूछा—

"गन्ने की फूस तो धार वाली रहती है इससे तो शरीर में चिर जाने का भय रहता होगा।"

"हाँ, माताजी उस पर बिना हिले डुले बैठ जाती हैं, कभी-कभी तो बाबाजी की गाड़ी देर से आने पर इसी पर आहिस्ते से लेट भी जाती हैं। हिलने डुलने या करवट बदलने से तो यह फूस शरीर में घाव बना दे·······।"

माँ ने कहा—

"ओह! रास्ते में माताओं को कितने कष्ट हैं।·······"

प्रकाश ने कहा—

"कोई भी माताजी इसको कष्ट नही गिनती हैं। बल्कि बड़ी माताजी तो कहा करती हैं कि—

"हे भगवन्! ऐसी भयंकर ठण्डी में भी खुले में बैठकर रात्रि बिताने की क्षमता मुझे कब प्राप्त होगी?·······" पुनः आगे सुनो क्या होता है—

तब सभी लोग उत्सुकता से सुनने लगते हैं—

"बाबाजी रात्रि में २-३ घण्टे सोकर जल्दी से उठ जाते हैं और तीन बजे ही हल्ला शुरू कर देते हैं। पुनः सभी माताजी घास छोड़कर जरासी चूरा चारा मे बैठकर प्रतिक्रमण पाठ सामायिक आदि शुरू कर देती है। बाबाजी सारी घास बोरो मे भरकर बैलगाड़ी मे सब बिस्तर बोरी लादकर उसी में बैठकर बैलगाड़ी ४ बजे करीब रवाना कर देते हैं।........"

बीच में पिता ने पूछा—

"क्यों इतनी जल्दी क्यों। आजकल तो सात, साढे सात बजे दिन उगता है। छह बजे तक घास में माताओं को क्यों नहीं बैठने देते........ ?"

प्रकाश ने कहा—

"यदि बाबाजी इतनी जल्दी न करें तो माताजी का आहार मध्याह्न एक बजे होवे।"

"क्यों ?"

"क्योंकि माताजी सुबह उठकर दिन उगते ही चल देती हैं। लगभग ९-१० मील तक चलती हैं। बाबाजी की बैलगाड़ी यदि चार बजे रवाना होती है तो ७-८ बजे तक आहार के स्थान पर पहुँच पाती है। ये लोग पहले आहार के योग्य स्थान ढूँढते हैं। पुनः वहाँ सामान उतारकर, कपड़े सुखाकर, स्नान आदि से निवृत्त होकर चौका बनाते हैं। माताजी ९-३०, १० बजे तक वहाँ आ जाती हैं। लगभग ११ बजे माताजी का आहार होता है। पुनः माताजी सामायिक करके १ बजे रवाना हो जाती हैं।

इसी बीच माँ ने पूछा—

"माताजी को संग्रहणी की तकलीफ थी सो रास्ते में स्वास्थ्य कैसा रहता है ?"

प्रकाश ने कहा—

"माताजी ने बताया था कि—

मथुरा आने तक तो रास्ते में बहुत ही दस्त लगते रहे किन्तु वहाँ आकर मैंने कुछ जाप्य करना प्रारम्भ कर दिया। रास्ते भर मन्त्र जपती रहती हूँ, उसी मन्त्र के प्रभाव से ही अब प्रायः माता जी को रास्ते में कोई खास तकलीफ नहीं होती है। सभी माताजी तो हमें हर समय बहुत ही प्रसन्न दिखती है। बल्कि रास्ते में माताजी आपस से कर्म प्रकृतियों की इतनी ऊँची-ऊँची चर्चायें करती है कि साथ मे चलने वाले गाँव-गाँव के नये-नये श्रावक भी आश्चर्य चकित हो जाते हैं। रास्ते में जो भी जैन के गाँव आते हैं माताजी प्रायः एक दिन वहाँ ठहरती हैं और श्रावकों को बहुत ही अच्छा उपदेश सुनाती हैं। उपदेश सुनकर बड़े-बड़े लोग माताजी से बहुत ही प्रभावित होते हैं और दो चार दिन रुकने का आग्रह करते हैं। कहीं-कहीं के श्रावक श्राविकाएँ तो पैर पकड़ कर बैठ जाती हैं। लेकिन..........माताजी तो इतनी कठोर हैं कि उन सबकी प्रार्थना को ठुकरा कर आगे विहार कर देती हैं।"

इत्यादि प्रकार से प्रकाश ने अनेक संस्मरण सुनाये जिन्हें सुनकर घर वालों को बहुत प्रसन्नता हुई। साथ ही रास्ते के कष्टों को सुनकर सिहर उठे और बार-बार कहने लगे—

"अहो ! दीक्षा लेकर पैदल चलना, रास्ते के कष्टों को झेलना बहुत ही कठिन है।"

मनोवती ने बताया—

"प्रातः प्रतिदिन जब हमारी बैलगाड़ी ७-८ बजे गंतव्य स्थान पर पहुँचती है, तब कपड़े सुखाते हैं इससे प्रायः हम लोग इतनी भयंकर सर्दी में भी गीले कपड़े पहनकर ही रसोई बनाते हैं।"

मनोवती की संघ सेवा, कुशलता और योग्यता को देखकर पिताजी बहुत ही प्रसन्न थे, उन्होंने पूछा—

"बिटिया ! तुम्हें खाना कितने बजे मिलता है ?"

"खाना प्रतिदिन १२-१ बजे खाती हूँ।"

तभी प्रकाश ने कहा—

"चौके की रसोई का खाना यद्यपि ठण्डा और रूखा सूखा रहता है तो भी भूखे पेट मीठा लगता है। घर में तो मैं ऐसी रोटियाँ हाथ से भी नहीं छुऊँगा किन्तु रास्ते में बड़े प्रेम से खा लेता हूँ।"

"और शाम को क्या खाते हो।"

"शाम को माताजी के साथ चलता हूँ इसलिये प्यास लगने पर कमण्डलु का पानी पी लेता हूँ।"

तब पिता ने कहा—

"बेटा ! तुम घर में ५-७ बार खाते हो और रास्ते में एक बार। अतः अब संघ में नहीं जाना, नहीं तो बहुत कमजोर हो जाओगे।"

प्रकाश ने हँसकर कहा—

"वाह ! मैं तो अभी साथ में ही जाऊँगा और पूरी यात्रा कराऊँगा।"

उस समय टिकैतनगर में माताजी के स्थान पर एक लड़की आती थी जो अपने गोद में किसी छोटी सी बालिका को लिए रहती थी। वह वहाँ खड़ी ही रहती और बड़ी माताजी (ज्ञानमती जी) को एकटक निहारा करती थी। एक बार माताजी ने पूछ लिया—

"तुम किसकी लड़की हो !"

वह रोने लगी और बोली—

"मैं छोटेलालजी की लड़की हूँ ?"

माताजी उसे आश्चर्य से देखने लगीं। पुनः पूछा—

"तुम्हारा नाम क्या है।"

"मेरा नाम कुमुदनी है ?"

तभी माताजी ने कहा—

"तुम रोती क्यों हो, जब मैंने तुम्हें छोड़ा था तब तुम मात्र १/२ वर्ष की थी। भला अब मैं तुम्हें कैसे पहचान पाती ?"

इसके बाद माताजी ने कुमुदनी को कुछ शिक्षायें दी और सान्त्वना देकर घर भेज दिया। उसी समय कुमुदनी घर तो आ गई। माँ से बोली—

"मुझे भी माताजी के साथ शिखरजी भेज दो।"

माँ ने कहा—

"इधर तेरे पिता तो मनोवती और प्रकाश को ही रोक रहे हैं। भला तुझे कैसे भेज देंगे ?........"

बेचारी कुमुदनी रोकर रह गई।

संघ का विहार टिकैतनगर से हो गया। क्रम-क्रम से फैजाबाद, जौनपुर आदि होते हुए आरा पहुँच गया।

इधर कुमुदनी ने माताजी के पास जाने के लिए दूध का त्याग कर दिया। सबने घर में बहुत समझाया, गुस्सा किया, किन्तु उन्होंने कितने ही दिनों तक दूध नहीं लिया था।

पिता का प्रयास

पिता ने कैलाश से कहा—

"कैलाश ! तुम आरा तार दे दो कि तुम्हारे पिताजी बहुत ही बीमार हैं, प्रकाश तुम जल्दी आ जाओ।"

पिता की आज्ञा के अनुसार कैलाश ने तार दे दिया।

आरा में तार मिलते ही प्रकाशजी ने माताजी को बताया। उस समय वहाँ आ० विमलसागरजी महाराज संघ सहित आये हुए थे उनके पास पहुँच कर घबराये हुए बोले—

"महाराजजी ! मेरे पिताजी अस्वस्थ हैं ऐसा तार आया है।........" महाराजजी ने बीच में उत्तर दिया।

"प्रकाश ! तुम चिन्ता मत करो, तुम्हारे पिता स्वस्थ हैं। दुकान पर बैठे कपड़े फाड़ रहे हैं और ग्राहक उन्हें घेरे हुए हैं।"

प्रकाश कुछ शांत तो हुए किन्तु पूर्ण विश्वास नहीं कर पाये। तभी अन्य लोगों के द्वारा महाराज के मुख से निकले अनेक शब्दों की सत्यता को सुनकर विश्वस्त हो गये और मध्य की सभी यात्रा करते हुए सकुशल संघ सम्मेदशिखर पहुँच गया।

सन् १९६३ ज्येष्ठवदी सप्तमी को सभी माताजी ने एक साथ सम्मेदशिखर पर्वत पर चढ़कर बीस टोंकों की वंदना की। उस समय माताजी को जो आनन्द आया वह अकथनीय था। कु० मनोवती की पुनः पुनः प्रार्थना से पूज्य माताजी ने उन्हें भगवान् पार्श्वनाथ की टोंक पर सप्तम प्रतिमा के व्रत दे दिया। अब मनोवती ने अपने जीवन को धन्य माना और दीक्षा की प्रतीक्षा करने लगी। वहाँ के मैनेजर ने प्रकाशचंद को तार भी दिया और पत्र भी दिया जिसमें प्रकाश को बहुत जल्दी आ जाने के लिए लिखा हुआ था। अब प्रकाशचन्द का मन उद्विग्न हो उठा तभी माताजी ने उन्हें शुभाशीर्वाद देकर भेज दिया। जयपुर के सरदारमलजी भी अपने घर चले गये। शेष सभी ब्रह्मचारिणियाँ वहीं पर रहीं। माताजी लगभग १ माह तक शिखर जी रहीं। पश्चात् उनके संघ का चातुर्मास कलकत्ता हो गया।

प्रकाशचन्द ने घर में आकर रास्ते के अनेक अनुभव सुनाये तथा यह भी बताया कि माताजी आरा, बनारस आदि के रास्ते में वहाँ के ब्राह्मण विद्वानों से तथा संघस्थ आर्यिका जिनमतीजी से संस्कृत मे घण्टों चर्चा किया करती है। रास्ते में चलते-चलते पंचसंग्रह, लब्धिसार के आधार से कर्म प्रकृतियों के बंध, उदय, सत्त्व आदि के बारे में खूब चर्चायें करती रहती हैं। बनारस में पं० कैलाशचंद सिद्धांतशास्त्री माताजी को स्याद्वाद विद्यालय दिखा रहे थे तब भी माताजी सिद्धांतशास्त्री जी के साथ संस्कृत में ही वार्तालाप कर रही थीं। माताजी की इतनी अधिक विद्वत्ता से सभी लोग बहुत ही प्रभावित होते हैं। सुनकर माता-पिता भी बहुत ही प्रसन्न हुए।

[१३]

यन्त्र लाभ

सन् ६३ में माताजी के संघ का चातुर्मास कलकत्ते हुआ था। पिता से आज्ञा लेकर कैलाशचंद अकेले ही दशलक्षण पर्व में माताजी के सान्निध्य में पहुँच गये। ११-१२ दिन रहे, माताजी के उपदेश का लाभ लिया पुनः जब घर जाने लगे तब उदास मन से माताजी के पास बैठ गये और बोले—

"माताजी! इस समय हमारे घर की व्यापारिक स्थिति कमजोर चल रही है। पिताजी का स्वास्थ्य अब दिन पर दिन कमजोर होता जा रहा है। अतः वे दूकान पर काम बहुत कम देख पाते हैं। परिवार बड़ा है……!"

माताजी ने ऐसा सुनकर शिक्षास्पद बातें कहीं और बोली—

"कैलाश! सबसे पहले तुम पंच अणुव्रत ले लो। पंच अणुव्रत में जो परिग्रहपरिमाणव्रत आता है इसको लेने वाला व्यक्ति नियम से धन में बढ़ता ही चला जाता है। साथ ही नित्य देवपूजा का नियम कर लो……।"

भाई कैलाशचन्द ने माताजी की आज्ञा शिरोधार्य करके विधिवत् पंच अणुव्रत ग्रहण कर लिए तथा देवपूजा का नियम भी ले लिया। पुनः माताजी से कोई यन्त्र के लिए प्रार्थना की तभी माताजी ने संघ के चैत्यालय में एक यन्त्र विराजमान था उसे ही कैलाशचंद को दे दिया और बोलीं—

"देखो, इस यन्त्र को ले जाकर तुम अपने घर में तीसरी मंजिल पर बनी हुई एक छोटी सी कोठरी है उसी में विराजमान कर देना। प्रतिदिन इसका अभिषेक होना चाहिए, अर्घ चढ़ाना चाहिए और शाम को आरती करनी चाहिए।"

कैलाशचंद जी ने वह यन्त्र बड़े आदर से लिया, मस्तक पर चढ़ाया। पुनः वहाँ से चलकर घर आ गये। घर आकर माता-पिता, पत्नी और भाई बहनों को कलकत्ते के समाचार सुनाये। माताजी के उपदेश में जो कुछ विशेष बातें सुनते रहे थे वह सब सुनाया। तथा कलकत्ते के श्रावकों की गुरुभक्ति और अपने प्रति किये वात्सल्य भाव को भी बताया। तथा अनेक बातें बताईं। वे बोले—

"वहाँ दशलक्षण पर्व में पं० वर्धमान शास्त्री के द्वारा दशलक्षण विधान कराया गया। बेलगछिया मे बहुत बड़ा पंडाल बनाया गया। उसमे क्षमावाणी का प्रोग्राम बड़े रूप मे रखा गया। श्वेताम्बर समाज में प्रसिद्ध 'दूगड़ जी' और दि० जैन समाज के प्रमुख श्रीमान् साहू शांतिप्रसाद जी भी आये थे।" पुनः पिता से बोले—

"आप यहाँ मोह में पागल रहते हो। सदा चिन्ता और दुःख माना करते हो, जरा वहाँ जाकर तो देखो……।"

"माताजी के उपदेश के लिए वहाँ की समाज ऐसी लालायित रहती है कि देखते ही बनता है। वहाँ के भक्त माताजी को एक विद्वत्ता की खान और अद्भुत निधि के रूप मे देखते हैं। भक्तगणों में प्रसिद्ध चाँदमल जी बड़जात्या, अमरचन्द जी पहाड़िया, किशनलाल जी काला, सीताराम पाटनी, पारसमल जी बलूदा वाले, नागरमलजी अग्रवाल जैन, सुगनचन्द जी लुहाडिया, कल्याण-

चन्द पाटनी, शांतिलाल जी बड़जात्या आदि तन-मन-धन से सपत्नीक, सपरिवार माताजी की भक्ति कर रहे हैं। वहाँ बेलगछिया में प्रतिदिन ११-१२ चौके लगते हैं। बेलगछिया में रहने वाले ब्र० प्यारेलाल जो भगत और ब्रह्मचारिणी चमेलाबाई प्रमुख हैं। उनकी भक्ति भी अटूट है। ब्र० भगत ने तो मेरे सामने माताजी के चारित्र की, ज्ञान की और अनुशासन की बहुत ही प्रशंसा की है। ब्र० चमेलाबाई के चौके में माताजी का पडगाहन होते ही ब्रह्मचारिणी जी भावविभोर हो जाती हैं यहाँ तक कि उनकी आँखों से आनन्द के अश्रु झरने लगते है। यह मैंने स्वयं आँखों देखा है।"

कैलाश ने यह भी बताया कि मैंने भी शुद्ध जल का नियम लेकर माताजी को आहार देना शुरू कर दिया है।

अनन्तर अपने अणुव्रत और देवपूजा के नियम को बताकर वह माताजी द्वारा दिया गया यन्त्र माँ को दे दिया तथा माताजी द्वारा कथित उपासना विधि भी बता दी। उस समय माँ को यन्त्र पाकर ऐसा लगा कि मानो अपने को कोई निधि ही मिल गई है अथवा यह यन्त्र पारसमणि ही है। उन्होंने बड़ी भक्ति से माताजी के कहे अनुसार यन्त्र को तिमंजिले कमरे में एक सिंहासन पर विराजमान कर दिया और स्वयं देवपूजा करके आकर विधिवत् उसका न्हवन करने लगीं, अर्घ्य चढ़ाने लगी और शाम को ऊपर सामूहिक (सब मिलकर) आरती करने लगीं।

उस घर में वह यन्त्र ऐसा फला कि आज तक भी घर में व्यापार की हानि नहीं हुई है। दिन पर दिन मोहिनी जी के पुत्रों ने अपने व्यापार बढ़ायें हैं और धन कमाते हुए धर्म भी कमाया है। आज भी मोहिनी जी के तीनों पुत्र जो कि गृहस्थाश्रम में हैं, प्रतिदिन देवपूजा करते हैं। शक्ति के अनुसार दान भी देते हैं, स्वाध्याय भी करते हैं, हर एक साधुसंघों की सेवा में तत्पर रहते हैं और धन-जन से सम्पन्न सुखी है। मैं समझता हूँ कि यह सब उस माताजी के हाथ से दिये गये यन्त्र का और माँ मोहिनी के द्वारा की गई विधिवत् उपासना का ही फल है। आज भी माताजी अपने हाथ से जिसे यन्त्र दे देती हैं और यदि वह उनके पास अणुव्रत और देवपूजा का नियम ले लेता है तो वह निश्चित ही धन की वृद्धि समृद्धि को प्राप्त कर परिवार, पुत्र, मित्र, यश आदि को भी प्राप्त कर लेता है। ऐसे अनेक उदाहरण मेरे सामने मौजूद हैं।

आचार्य विमलसागर जी के संघ का दर्शन

सन् १९६३ में ही इधर टिकैतनगर से १५ मील दूर बाराबंकी में आ० विमलसागर जी महाराज का संघ सहित चातुर्मास हो रहा था। भला माँ मोहिनी अवसर को क्यों चुकातीं। वे कुछ दिन के लिए बाराबंकी आईं। आचार्यश्री के संघ में मुनि आर्यिकाओं का दर्शन किया, प्रसन्न हुईं। आहार दान का लाभ लेने लगीं। आ० विमलसागर जी महाराज भी इनके प्रति आ० ज्ञानमती माताजी की माँ के नाते बहुत ही वात्सल्य भाव रखते थे। एक बार महाराज ने आग्रह कर इन्हें तृतीय प्रतिमा के व्रत दे दिये जिसे इन्होंने बड़े प्रेम से पाला है। माँ मोहिनी को सदा ही प्रत्येक आचार्यों, मुनियों और आर्यिकाओं का आशीर्वाद तथा असीम वात्सल्य मिलता रहा है।

नन्दीश्वरद्वीप का प्रतिष्ठा महोत्सव

सन् १९६४ में फरवरी माह में सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर नूतन बनाये गये नंदीश्वर द्वीप के बावन चैत्यालयों की जिनबिम्ब प्रतिष्ठा का महोत्सव मनाया जा रहा था। उस समय माताजी के संघ को कलकत्ते के श्रावक शिखर जी ले आये थे। माताजी वहीं पर विराजमान थीं।

माता-पिता ने सोचा—

तीर्थयात्रा, प्रतिष्ठा महोत्सव और संघ के दर्शन का लाभ एक साथ तीनों मिल जावेंगे अतः ये लोग सम्मेदशिखर जी पर आ गये। यहाँ पर माताजी के दर्शन किये। माँ ने देखा, यहाँ तो हर समय कलकत्ते के श्रावक-श्राविकायें माताजी को घेरे रहते हैं और कोई न कोई तत्त्वचर्चा या प्रश्नोत्तर यहाँ चला करता है। प्रतिष्ठा के अवसर पर पंडाल में माताजी का उपदेश भी होता था। पिता ने इतनी बड़ी सभा में इतना प्रभावित उपदेश सुना तो उनका हृदय फूल गया, बहुत ही प्रसन्न हुए।

स्वयं दीक्षा का निषेध

वहाँ तप कल्याणक के अवसर पर एक व्यक्ति ने अकस्मात् वस्त्र उतार कर फेंक दिया और नग्न हो गये। उसी समय किसी व्यक्ति ने कहीं से एक पिच्छी, एक कमण्डलु लाकर उन्हें दे दिया। कुछ श्रावक उनकी जय-जय बोलने लगे। उस समय वहाँ पर एक मुनि धर्मकीर्ति जी बैठे हुए थे और माताजी अपने संघसहित बैठी थी। महाराज जी ने इस दीक्षा को अमान्य व आगम विरुद्ध बतलाया तथा माताजी ने भी यही कहा कि—

"यदि इन्हें मुनि बनना है तो विधिवत् धर्मकीर्ति मुनि से दीक्षा लेवें अन्यथा इन्हें समाज मुनि न माने।"

वहाँ पण्डित सुमेरुचन्द जी दिवाकर मौजूद थे। उन्होंने तप कल्याणक के बाद सारी स्थिति समझकर पुनः महाराज जी से और माताजी से परामर्श कर उन नग्न हुए व्यक्ति का एकान्त में ले जाकर समझाया तब वे बेचारे अपने को अपात्र देख उसी दिन रात्रि में ही कपड़े पहनकर अपने घर चले गये।

तब कहीं वहाँ समाज में शांति हुई। ऐसे और भी अनेक महत्त्वशाली प्रसंग वहाँ देखने को मिले थे। इन सभी प्रसंगों में माताजी के पास कलकत्ते के प्रबुद्ध श्रावक और ब्र० चाँदमल जी गुरुजी तथा ब्र० प्यारेलाल जी भगत आकर परामर्श करते रहते थे। यह सब माताजी के अगाध आगम ज्ञान, निर्भीकता तथा दृढ़ता का ही प्रभाव था। "भला कौन से माता-पिता ऐसे होंगे जो अपनी पुत्री को इतने ऊँचे चारित्र पद पर, इतने ऊँचे ज्ञानपद पर और इतने ऊँचे गौरव पद पर प्रतिष्ठित देखकर अतिशय आनन्दित नहीं होंगे।"

अतएव माताजी की प्रभावना से प्रभावित होकर माता-पिता ने प्रतिष्ठा के बाद भी वहाँ कुछ दिन रहने का निर्णय ले लिया। कु० मनोवती उस प्रतिष्ठा के अवसर पर दीक्षा चाहती थी लेकिन शायद अभी उनकी काललब्धि नहीं आई थी यही कारण था कि अभी उन्हें दीक्षा नहीं मिल सकी।

माँ मोहिनी ने एक दिन माताजी के साथ पूरे तीर्थराज के पर्वत की पैदल वंदना की, उस समय उन्हें बहुत ही आनन्द आया और उन्होंने अपने जीवन में उस वंदना को बहुत ही महत्त्वपूर्ण समझा था। यह उनको अपनी पुत्री के आर्यिका जीवन के प्रति एक अप्रतिम श्रद्धा का प्रतीक था।

माँ प्रतिदिन चौका करती थीं। कोई न कोई माताजी उनके चौके मे आ जाती थीं किन्तु बड़ी माताजी का आना तो प्रतिदिन वहाँ सम्भव नहीं था, तब पिताजी उन्हें आहार देने के लिए आस-पास के चौके में पहुँच जाते थे और आहार देकर खुश हो जाते थे। एक दिन वे चौके में बैठे किसी

वस्तु को देने के लिए आग्रह कर रहे थे और माताजी ने हाथ बन्द कर लिया था तब वे बोले—

"माताजी ! एक ग्रास ले लो एक ग्रास.......बस मैं चला जाऊँगा। नही माताजी, एक ग्रास लेना ही पड़ेगा.......।"

उनका इतना आग्रह देखकर चौके के लोग जिन्हें मालूम था "कि ये माताजी के पिता हैं" खिलखिला कर हँस पड़े।

पापभीरुता

एक बार माँ के चौके में कोई महिला कुछ सन्तरे दे गई और बोली—"इन्हें आहार में लगा देना।"

माँ ने दो तीन छीलकर रख लिए क्योंकि पहले और भी सन्तरे, सेव आदि बिनार कर रख चुकी थी। आहार के बाद वह सन्तरा बच गया। तब माँ पिता को देने लगीं। वे बोले—

"यह आहारदान में एक महिला दे गई थी अतः यह निर्माल्य सदृश है। मैं इसे कतई नहीं खाने का....।" तब माँ बच्चों को देने लगी, पिता ने रोक दिया। बोले—

"बच्चों को भी नहीं खिलाना और तुम भी नहीं खाना....।"

तब माँ मोहिनी इस समस्या को लेकर माताजी के पास आईं और सारी बातें सुना दीं तथा पूछने लगी—

"माताजी ! यदि कोई महिला चौके में जबरदस्ती फल दे जावे और वह सब आहार में नहीं उठे तो उसे क्या करना चाहिए ?"

माताजी ने हँसकर कहा—

"उसे प्रसाद समझकर खाना चाहिए !"

यह उत्तर पिता के गले नही उतरा तब माताजी ने कहा—

"अच्छा, इसे अन्य लोगों को प्रसाद रूप में बाँट दो !"

तब वे खुश हुए और बोले—

"ठीक है, अब कल से तुम किसी के फल नही लेना....।"

देखो, किसी ने आहार के लिए फल दिया और यदि वह अपने खाने में आ गया तो महा-पाप लगेगा....।"

माताजी ने कहा—

"यदि कोई साधु को न देकर स्वयं खा लेता है तब तो उसे पाप लगता है और यदि शेष बच जाने पर प्रसाद रूप से उसे खाता है तो पाप नही लगेगा....। फिर भी यदि तुम्हें नही पसन्द है तो छोड़ दो, मत खावो, हाथ की हाथ अन्य किसी को प्रसाद कहकर बाँट दो।"

यह थी पिता छोटेलाल जी की निःस्पृहता और पापभीरुता। यही कारण है कि आज उनकी सन्तानों पर भी वैसे ही संस्कार पड़े हुए है।

मोह से विक्षिप्तता

एक दिन कु० मनोवती के विशेष आग्रह से माताजी ने उसके केशों का लोंच करना शुरू कर दिया। वह चाहती थी कि मुझे दीक्षा लेना है तो केशलोंच का एक दो बार अभ्यास कर लूँ। इसी भाव से वह केशलोंच करा रही थीं। माताजी ने सोचा—

"ये लोग यहाँ ठहरे हुए हैं तो बुला लूँ। केशलोंच देख लें""।"

ऐसा सोचकर माताजी ने उन्हें सूचना भिजवा दी। पिताजी वहाँ कमरे में आये देखा कु० मनोवती के केशों का लोंच, वे एकदम घबरा गये और हल्ला मचाते हुए जल्दी से अपने कमरे में भागे। वहाँ पहुँचकर माँ को बोले—

"अरे! देखो, देखो, माताजी हमारी बिटिया मनोवती के शिर के केश नोचें डालती हैं। चलो, चलो जल्दी से रोको।' और ऐसा कहते हुए वे रो पड़े। मां दौड़ी हुई वहाँ आईं और बोलीं—

"माताजी! आपने यह क्या किया? देखो, इसके पिताजी तो पागल जैसे हो रहे हैं और रो रहे हैं। उनके सामने आप इसका लोंच न करके बाद में भी कर सकती थी।"

उनकी ऐसी बातें सुनकर सभी माताजी हँसने लगीं। ओर बोलीं—

"भला केशलोंच देखने में घबराने की क्या बात हे। मैं भी सदा अपने केशलोंच करती हूँ।........"

पुनः पिताजी वही आ गये और बोले—

"अरे अरे छोड़ दो माताजी!! मेरी बिटिया मनोवती को छोड़ दो, इसके बाल न नोचो, देखो तो इसका सिर लाल-लाल हो गया है।"" ""।"

परन्तु उनकी बातों पर लक्ष्य न देकर माताजी हँसती रही, कु० मनोवती के केशों का लोंच करती रहीं। मनोवती भी हँस रही थीं और मौन से ही संकेत से पिता को सान्त्वना दे रही थी कि—

"पिताजी! मुझे कष्ट नही हो रहा है। मैं तो हँस रही हूँ फिर आप क्यों दुःखी हो रहे हो और क्यों अश्रु गिरा रहे हो?"

माताजी ने भी उन्हें सान्त्वना दी। लोंच पूरा होने के बाद मनोवती ने कहा—

"मैंने तो स्वयं ही आग्रह किया था। मैं एक वर्ष से माताजी से प्रार्थना कर रही थी। बड़े भाग्य से ही आज तीर्थराज पर ऐसा अवसर मिला है। अब मुझे विश्वास हो गया है कि मैं भी एक दिन आर्यिका बन जाऊँगी।"

पिताजी उसे अपने कमरे में ले गये, खूब समझाया और बोले—

"बिटिया! तुम अब इनके साथ मत रहो। थोड़े दिन घर चलो। बाद मे फिर जब कहोगी तब कैलाश के साथ भेज देंगे"" ""।"

लेकिन इधर माता जी के संघ का श्रवणबेल्गुल यात्रा के लिये प्रोग्राम बन चुका था। अतः वो पिता के साथ घर जाने को राजी नहीं हुई और पिता को समझाते हुए बोली—

"माताजी ने अभी कलकत्ते चातुर्मास में मुनि श्रुतसागर जी की लगभग १८ वर्षीया पुत्री सुशीला को घर से निकालने के लिये लाखों प्रयत्न किये हैं। महीनों प्रतिदिन सुशीला को और उनकी माँ को समझातीं रहती थी। जब सुशीला दृढ हो गई तब उसकी माँ को समझा बुझाकर माताजी ने पुत्री को ५ वर्ष का ब्रह्मचर्यव्रत दे दिया है। अभी उनके भाइयों ने उन्हें आने नहीं दिया है फिर भी वह एक दिन संघ मे तो आयेंगी ही। सुशीला के भाई भी माताजी के परम भक्त थे अब कुछ माताजी से नाराज भी रहते हैं किन्तु माताजी के हृदय में इतनी परोपकार भावना है कि जिसका वर्णन नही किया जा सकता।" इत्यादि समझाने के बाद आखिर पिता को लाचार होना पड़ा।

कुमुदनी के लिए प्रयास

एक दिन माताजी को पता चला कि कुमुदनी मेरे दर्शन के लिए घर में बहुत ही आग्रह कर रही है। किन्तु वह यहाँ आकर यदि संघ में रह जाय तो ? इसीलिये पिता उसे नही लाये हैं। तब माताजी ने पिता छोटेलाल जी को बहुत समझाया। वे हँसते रहे और बोले—

"माताजी ! अब मैं तुम्हारे पास अपनी किसी पुत्री को भी दर्शन करने नहीं भेजूँगा, देखो, अभी तुमने कैसे मनोवती की खोपड़ी लाल कर दी है। तुम बड़ी निष्ठुर हो........।"

माताजी क्या कर सकती थीं सोचा—उसके भाग्य में जो लिखा होगा सो ही होगा कोई क्या कर सकता है। (इनका विवाह कानपुर में हुआ है।)

एक दिन कलकत्ते के सुगनचन्द लुहाड़या ने वहीं पर माताजी के पास एक १८ वर्षीय युवक ब्र० सुरेशचन्द्र को लाकर सौंप दिया था। और ब्र० महावीरप्रसाद जी भी साथ में ही थे। एक ब्र० वृन्दावन जी बुन्देलखण्डीय थे। ब्र० भंवरीबाई, ब्र० कु० मनोवती थी, संघ में एक दो महिलायें और भी थीं।

ब्रह्मचारी चांदमल गुरुजी ने चैत्रमास में यात्रा का मुहूर्त निकाला और उसी के अनुरूप उन्होंने पूज्य माताजी के संघ का विहार श्रवणबेलगोल यात्रा हेतु पुरलिया की तरफ करा दिया। विहार की मंगलवेला में माता मोहिनी भी थी। पिताजी भी उपस्थित थे। विहार के बाद लोग अपने घर वापस आ गये।

[१४]

मनोवती की मनोभावना सफल हुई

सन् १९६४ में हैदराबाद से किसी श्रावक का लिखा हुआ एक पत्र आया।

"आर्यिका ज्ञानमती माताजी अत्यधिक बीमार है।" माता-पिता बहुत दुःखी हुए। कैलाश चन्द को भेजा, "जाओ समाचार लेकर आवो कैसी तबीयत है।" कैलाशचन्द्र आये-देखा, माताजी पाटे पर लेटी हुई हैं और बोलने अथवा करवट बदलने की भी उनकी हिम्मत नही है। संघ की आ० पद्मावती, जिनमती आदि आर्यिकायें परिचर्या में रत हैं। आर्यिकाओं से सारी स्थिति विदित हुई। पुनः दो चार दिन बाद कुछ सुधार होने पर एक दिन मध्याह्न में कु० मनोवती, भाई कैलाश चन्द के पास बैठी-बैठी रोने लगी, बोली—

"भाई साहब ! मुझे दीक्षा दिला दो। अभी ८ दिन पूर्व भी माताजी के बारे मे सभी डाक्टर वैद्यों ने जवाब दे दिया था। बोले थे अब ये बचेंगी नहीं... यदि माताजी को कुछ हो गया तो मैं क्या करूँगी ?"

कैलाशचन्द जी ने बहुत कुछ सान्त्वना दिया किन्तु उसे शान्ति नहीं मिली पुनः वह आकर माताजी के पास रोने लगी और बोली—

'मेरे भाग्य में दीक्षा है या नहीं ? मैं कितने वर्षों से तड़फ रही हूं।" इतना कहकर उसने दीक्षा न मिलने तक छहों रस त्याग कर दिये। दो दिनों तक वह नीरस भोजन करती रही। तब कैलाशचन्द जी माताजी के पास बैठे और बोले—

"माताजी ! इसे कैसे समझाना ?........"

माताजी धीरे-धीरे बोलीं—

"कैलाश ! मैंने देखा है संघ मे जिसके भाव दीक्षा के नहीं होते हैं उसे कैसी-कैसी प्रेरणा देकर दीक्षा दी जाती है। किन्तु ······पता नहीं इसके किस कर्म का उदय है।········जो भी हो, यह बेचारी दीक्षा के लिये रो-रो कर आँखें सुजा लेती है। अब मुझे भी इसके ऊपर करुणा आ रही है।········जब मेरे दीक्षा का भाव थे तब मैंने भी तो पुरुषाथ करके छह महीने के अन्दर ही दीक्षा प्राप्त कर ली थी। किन्तु इसे आज ६–७ वर्ष हो गये हैं। न इसके ज्ञान में कमी है न वैराग्य में, मात्र इसका शरीर अवश्य कमजोर है फिर भी यह चारित्र में बहुत ही दृढ़ है यह मैंने अनुभव कर लिया है। अतः मेरी इच्छा है कि तुम अब इसके सच्चे भ्राता बनो ······।"

इतना सुनकर कैलाश जी का भी हृदय पिघल गया। वे लोले—

"आप जो भी आज्ञा दें मैं करने को तैयार हूँ।····मैं इसका रस परित्याग पूर्ण कराकर ही घर जाऊँगा।"

माताजी ने कहा—

"तुम आज ही टीकमगढ़ चले जावो और इसकी दीक्षा हेतु आ० शिवसागर जी से आज्ञा ले आवो। यह मेरे से ही दीक्षा लेना चाहती है।"

कैलाशजी ने माताजी की आज्ञा शिरोधार्य की। वहाँ से रवाना होकर टीकमगढ़ पहुँचे। आचार्य को नमोऽस्तु करके यहाँ की सारी स्थिति सुना दी।

आचार्यश्री ने भी स्पष्ट कहा—

"मेरी आज्ञा है आ० ज्ञानमती माताजी उसे क्षुल्लिका दीक्षा दे दें।"

आज्ञा लेकर कैलाशचन्द वापस हैदराबाद आ गये। कु० मनोवती की खुशी का भला अब क्या ठिकाना।



हैदराबाद में ब्र० मनोवती की क्षुल्लिका दीक्षा से पूर्व बिंदोरी के समय

माताजी ने श्रावण शुक्ला सप्तमी को भगवान् पार्श्वनाथ का मोक्ष कल्याणक होने से उसी दिन दीक्षा देने के लिए सूचना कर दी। फिर क्या था हैदराबाद के श्रावकों के लिए यहाँ दीक्षा देखने का पहला अवसर था। भक्तों ने बड़े उत्साह से प्रोग्राम बनाया तीन दिन ही शेष थे। श्रावकों ने हाथी पर बिंदोरी निकाली थी। कु० मनोवती को रात्रि के १-२ बजे तक सारे शहर में घुमाया। इतनी मालायें पहनाई गईं कि गिनना कठिन था। चन्दन के हार, नोटों की मालायें और पुष्प-मालाओं से मनोवती को सम्मानित करते गये।

जाप्य का प्रभाव

श्रावण शुक्ला सप्तमी के प्रातः से ही मूसलाधार बारिस चालू हो गई। ऐसा लगा—

"खुले मैदान में दीक्षा का मंच बना है। दीक्षा वहाँ कैसे होगी। जनता कैसे देखेगी ?···"

कैलाश ने माताजी के सामने समस्या रक्खी। माताजी ने एक छोटा सा मन्त्र कैलाशचन्द को दिया और बोलीं—

"एक घण्टा जाप्य कर लो और निश्चित हो जाओ, दीक्षा प्रभावना के साथ होगी।"

ऐसा ही हुआ, दीक्षा के समय दिगम्बर जैन, श्वेताम्बर जैन और जैनेतर समाज की भीड़ बहुत ही अधिक थी।



हैदराबाद में पू० आर्यिका ज्ञानमती जी कु० मनोवती का
क्षुल्लिका दीक्षा के समय केशलोंच कर रही हैं।

इधर दीक्षा के एक घंटे पहले ही बादल साफ हो गये और आश्चर्य तो इस बात का रहा कि आर्यिका ज्ञानमती माताजी को बैठने की भी शक्ति नहीं थी सो पता नहीं उनमें स्फूर्ति कहाँ से आ गई कि उन्होंने विधिवत् दीक्षा की क्रियायें एक घण्टे तक स्वयं अपने हाथ से की और नवदीक्षिता क्षुल्लिका जी का नाम "अभयमती" घोषित किया, अनन्तर ५ मिनट तक जनता को आशीर्वाद भी

दिया। दीक्षा विधि सम्पन्न होने के एक घण्टे पश्चात् पुनः मूसलाधार वर्षा चालू हो गई। तब सभी लोगों ने एक स्वर से यही कहा—

"माताजी में बहुत ही चमत्कार है, धर्म की महिमा अपरम्पार है····।" अगले दिन भाई कैलाशजी ने सजल नेत्रों से क्षुल्लिका अभयमती माताजी को आहार दिया, उन्हें दूध, घी आदि रस देकर मन सन्तुष्ट किया। अब उन्हे यह समाचार माता-पिता को सुनाने की आकुलता थी अतः बड़ी माताजी की आज्ञा लेकर उधर से भगवान् बाहुबलि की (श्रवणबेलगोल की) वंदना करके वापस घर आ गये।

इधर आ० ज्ञानमती माताजी को भी स्वास्थ्य लाभ होता गया। उधर कैलाशजी के मुख से माताजी की स्वस्थता सुनी, पुनः मनोवती की दीक्षा के समाचार सुनकर मां मोहिनी रो पड़ी। वे बोलीं—

"मैंने कौन से पापकर्म संचित किये थे कि जो अपनी दोनों पुत्रियों की दीक्षा देखने का अवसर नहीं मिल सका।········"

पिताजी को भी बहुत खेद हुआ किन्तु उस समय जाने-आने की इतनी परम्परा नही थी कि जो झट ही रेल में सफर करके आकर दर्शन कर जाते·····। अस्तु

पिता ने पूछा—

"माताजी की ऐसी सीरियस स्थिति क्यों हुई थी। क्या बीमारी थी?"

कैलाशजी ने बताया—

"माताजी को संग्रहणी की तकलीफ सन् १९५७ से है। अभी वैशाख, ज्येष्ठ की भयंकर गर्मी में माताजी ने १५-१५, १८-१८ मील पद विहार किया। रास्ते में आहार मे अंतराय भी होता रहता था। शरीर को बिल्कुल नही सँभाला। फलस्वरूप हैदराबाद प्रवेश करने के ३-४ दिन पूर्व से ही उन्हें खून के दस्त शुरू हो गये थे फिर भी वे चलती रही। नतीजा यह निकला, पेट का पानी खतम हो गया और आँतों ने एकदम जवाब दे दिया। यहाँ तक कि छटांक भर जल या अनार का रस भी नहीं पच सकता था आहार में जरा सा रस और जल लेते ही उल्टियाँ चालू हो जातीं और खून के दस्त होते रहते। जैनेश्वरी दीक्षा की चर्या इतनी कठोर है कि २४ घण्टे में एक बार जो भी पेट में जा सके ठीक, इन्हीं सब कारणों से उनके जीवित रहने की आशा नही रह गई थी। किन्तु कुछ पुण्य हम लोगों का शेष था, यही समझो कि जिससे वहाँ के भक्तों के और संघस्थ आर्यिकाओं के पुरुषार्थ से कलकत्ते से वैद्यराज केशवदेव जी आये आठ दिन वहाँ रहे उन्होंने जल में तक औषधि-काढ़ा मिश्रित किया।

तथा स्वयं माताजी की प्रेरणा से वहाँ ब्र० सुरेशचन्द ने श्रावण सुदी एकम से पूर्णिमा तक सोलह दिन के पक्ष में विधिवत् शांति विधान का अनुष्ठान किया है। इसी के फलस्वरूप माताजी अब स्वास्थ्य लाभ कर रही हैं।"

हैदराबाद में श्रीमान् जयचंद लुहाड्या, मांगीलाल जी पाटनी, सुआलाल जी (डोरनाकल) जीऊबाई धर्मपत्नी नानकचंद, नन्दलाल जी, चम्पालाल जी, अखयचन्द जी आदि धर्मभक्तों के द्वारा की गई संघ की तन-मन-धन से जो भक्ति है वह भी बहुत ही विशेष है।

कैलाशजी की सारी बातें सुनकर पिताजी सोच रहे थे—

"अहो, जैनी दीक्षा कितनी कठोर है और कु० मनोवती ने भी अपने मनोभाव सफल कर लिए हैं। देखो, मैंने उसे कितना रोका !··· कितना दुःख दिया ! यह सब मेरी पिता के नाते एक ममता ही तो थी किन्तु जिसके भाग्य में जो होता है सो होकर ही रहता है।"

इधर माताजी ने ब्र० सुरेश को भी आचार्य शिवसागर जी के संघ में भेजकर क्षुल्लक दीक्षा दिला दी। आज ये सुरेश मुनि सम्भवसागर जी के नाम से प्रसिद्ध हैं। मुनि होने के बाद भी इन्होंने माताजी के पास बहुत दिनों अध्ययन किया है और उनकी शिक्षाओं को वे अमूल्य रत्न समझते हैं। माताजी ने अपने इन ब्रह्मचारी शिष्य को मुनिपद पर पहुँचाकर उन्हें श्रद्धा से सदा 'नमोऽस्तु' किया है। गुरुजन अपने आश्रित भक्तों को यदि अपने बराबर पूज्य बना देते हैं तो वे महान् गिने जाते हैं, किन्तु माताजी की महानता और उदारता उन गुरुओं से भी बढ़कर है कि जो अपने आश्रित भक्तों-बालकों को अपने से भी अधिक महान् और पूज्य बना देती हैं और उनकी भक्ति में, उन्हें आगे बढ़ाने मे कोई कमी नही रखती हैं। ऐसे उदाहरण एक नहीं कई हमारे सामने रहे हैं।

[१९]

महामस्तकाभिषेक

सन् ६७ में श्रवणबेलगोला में भगवान् बाहुबली की विशालकाय प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक समारोह मनाया जा रहा था। सर्वत्र प्रान्त से यात्रियों की भीड़ दक्षिण में उमड़ती चली जा रही थी। टिकैतनगर से पिता छोटेलाल जी ने भी मोहिनी जी के विशेष आग्रह से अपने पुत्र सुभाषचन्द और पुत्रवधू सुषमा को साथ लेकर लखनऊ से जाने वाली एक बस द्वारा यात्रा का प्रोग्राम बना लिया। उस अवसर में इन लोगों ने अनेक यात्रायें कीं। खासकर श्रवणबेलगोल में भगवान् बाहुबली का महामस्तकाभिषेक देखा। वहाँ पर अत्यधिक जनता की भीड़ के कारण इनकी बस गाँव के बाहर सुदूर स्थान पर ठहरी थी। वहाँ से आकर मोहिनी जी मन्दिर में भगवान् का दर्शन करती। श्रवणबेलगोल मे सुभाष को साथ लेकर पैदल दो-तीन मील पर जाकर कहीं कुआँ ढूँढ पातीं। सुभाष पानी भरकर देते और ये भुना हुआ आटा पानी में घोलकर पी लेती, पानी पी लेतीं, वापस चली आतीं। कभी निकट कुआँ यदि किसी जगह मिल गया तो खिचड़ी बनाकर खा लिया। इनके साथ गाँव की छोटीसाहू की माँ भी गईं थीं उन्हें भी ये शुद्ध भोजन कराती थीं। इस प्रकार व्रती जीवन होने से इन्हें यात्रा के मार्ग में बहुत ही कष्ट उठाने पड़े, साथ ही पिताजी ने भी अस्वस्थता के कारण बहुत ही कष्ट का अनुभव किया। जो भी हो महान् यात्रा का पुण्य लाभ तो मिला ही मिला।

निराशा

अब ये लोग चाहते थे कि कहीं हमें इधर दक्षिण में ही विचरण करती हुई आ० ज्ञानमती माताजी के संघ का दर्शन मिल जाये। बहुत कोशिशें कीं, हर क्षेत्र पर ढूँढते फिरे परन्तु ये लोग दर्शन नहीं पा सके। शेष में दर्शनों की आशा में निराशा लेकर ही ये लोग वापस घर आ गये। अब माँ और पिता के दुःख का पार नहीं रहा। ये सोचने लगे—

"ओह ! सारी यात्रा में माताजी के संघ के, हमारी दोनों पुत्रियों के दर्शन हमें नहीं हो पाये। आखिर उनका संघ है कहाँ ?" तभी कुछ यात्रियों ने बताया कि—

"उस अवसर पर माताजी बडवानी (बावनगजा) तीर्थक्षेत्र पर ठहरी हुई थी। शायद महा-भिषेक के बाद वे जल्दी ही वहाँ से विहार कर गई और रास्ते में थी। मुझे भी श्रवणबेलगोल में आ० सुपार्श्वमती जी ने बताया कि "मोतीचंद ! आपके गाँव सनावद में महान् विदुषी ज्ञानमती माताजी ससंघ पहुँच रही हैं। आपको जल्दी ही अपने घर पहुँच जाना चाहिए।" मै यथा समय घर आया। माताजी का संघ सनावद में चैत्र सुदी १५ को आया। पुण्ययोग से संघ के चातुर्मास का लाभ हम सनावद निवासियों को प्राप्त हुआ। माताजी अपने साथ मे श्रवणबेलगोल के श्रेष्ठी धरणेन्द्रया की पुत्री शीला को अपने साथ ले आई थीं। इनके लिए भी माताजी को बहुत पुरुषार्थ करना पड़ा था। उस समय यह ब्र० शीला थी। आज ये आर्यिका शिवमती बनकर माताजी के पास ही हैं।

पहला और अन्तिम पत्र

पिता छोटेलाल जी को कुछ दिन बाद पता चला कि माताजी अपने संघ सहित इस समय सनावद (म० प्र०) में वर्षा योग स्थापना कर चुकी हैं। उन्होंने अपने हाथ से एक लम्बा चौड़ा ३-४ पेज का पत्र लिखा और माताजी के नाम पर सनावद डाल दिया। पत्र तीन दिन बाद माताजी को मिला, माताजी ने उसे पढ़ा। उसमें पिता ने अपनी यात्रा के कुछ कष्टों को लिखा था और सर्वत्र आश लगाने पर भी आपके तथा क्षु० अभयमती के दर्शन नही हो सके इस गहरी वेदना को भी कई एक पंक्तियों में व्यक्त किया था। इसके अतिरिक्त माँ के हृदय की व्यथा को भी लिख दिया था कि वे तुम दोनों के दर्शनों के लिए कितनी छटपटाती रहती हैं। इसके बाद अपने स्वास्थ्य के बारे लिखा था कि अब मैं शायद ही आपके दर्शन कर पाऊँगा। अब मेरा स्वास्थ्य रेल, मोटर से सफर के लायक नहीं रहा। इत्यादि।

पत्र पढ़कर माताजी ने गम्भीरता धारण कर ली। संघ की अन्य आर्यिकाओं ने भी पत्र पढ़ा तथा क्षु० अभयमती जी ने भी पत्र पढ़ा। किन्तु बड़ी माताजी की पूर्ण उपेक्षा देखकर कोई कुछ भी प्रतिक्रिया नही कर सका। काश ! उस समय माताजी क्या अपने किसी भक्त से पिता के प्रति दो शब्द सान्त्वना के नही लिखा सकती थी ? क्या दो शब्द आशीर्वाद के नही लिखा सकती थी ?…. मुझे यह घटना ज्ञात कर आश्चर्य के साथ दुःख भी हुआ।

पिता छोटेलाल ने घर मे पत्र के प्रत्युत्तर की बहुत दिनो तक प्रतीक्षा की किन्तु जब एक महीना व्यतीत हो गया और कोई जवाब नही आया, तब उनके मन पर बहुत ही ठेस पहुँची।… समय बीतता गया, बात पुरानी होती गई।

क्षु० अभयमती के दर्शन

उन्होंने सन् १९६८ में जैनमित्र में पढ़ा। आ० शिवसागर के संघ का चातुर्मास प्रतापगढ़ में हो रहा है। वहीं पर आर्यिका ज्ञानमती माताजी संघ सहित आ चुकी हैं। पिता ने मोहिनी जी के आग्रह से प्रतापगढ़ का प्रोग्राम बनाया। साथ में कैलाशचन्द, पुत्रवधू चन्द्रा, रवीन्द्र कुमार और एक पुत्री कामिनी को लाये थे। यहाँ इनके आते ही संघ मे स्थित मैंने इनका स्वागत किया। समाज को उनका परिचय देकर सेठ मोतीलाल जी जौहरी की कोठी के सामने एक कमरे मे इन्हें

ठहराया गया। यहाँ आकर इन लोगों ने पूज्य आ० ज्ञानमती जी और क्षुल्लिका अभयमती जी के दर्शन किये, अपार आनन्द का अनुभव किया। क्योंकि ५ वर्ष बाद माँ-पिता ने माताजी का दर्शन किया था। पिताजी इस समय कुछ स्वस्थ थे अतः प्रतिदिन शुद्ध वस्त्र पहनकर आहार दान देते थे।

यहाँ पर संघस्थ मुनि सुबुद्धिसागर जी के पुत्र, पुत्रवधू आदि से इनका परिचय हुआ। कलकत्ते से चाँदमल जी बड़जात्या आये हुए थे उनसे भी परिचय हुआ। माताजी सन् ६३ से ६७ तक पाँच वर्ष यात्रा करने में रही थी। उनके पृथक् चातुर्मास में उनके साथ अनेक शिष्य-शिष्यायें मिली थीं। जो सब इस समय यहीं पर थे।

शिष्य-शिष्याओं का परिचय

कलकत्ते चातुर्मास में कु० सुशीला को ५ वर्ष का ब्रह्मचर्यव्रत दे दिया था। वह और उसकी माँ बसन्तीबाई दोनों इन्हीं के सांनिध्य में थी। ब्र० कु० शीला, कु० मनोरमा और कु० कला भी थीं। ब्र० गेंदीबाई थी तथा मैं (मोतीचंद) और यशवंत कुमार भी वही संघ में थे। हम सभी पूज्य माताजी के पास ही अध्ययन कर रहे थे। एक बार मोहिनी ने माताजी से पूछा—आपने इन सबको कैसे निकाला।

माताजी ने क्रम-क्रम से सबका इतिहास सुना दिया। सुशीला कला की हँसमुख वृत्ति और चंचल प्रवृत्ति, शीला की गम्भीरता, यशवंत की कार्यकुशलता और मेरी पुत्र भावना से माता-पिता बहुत ही प्रसन्न होते थे और इन सबको निकालने में माताजी को कितने संघर्ष झेलने पड़े हैं। ऐसा सुनकर पिताजी बहुत ही आश्चर्य करने लगे।

मैं और यशवंत तो टिकैतनगर परिवार से इतने प्रसन्न थे कि ऐसा लगता था मानों हमें कोई निधि ही मिल गई है। हम दोनों माता-पिता की तथा उनके चौके की हर एक व्यवस्था में लगे रहते थे। यहाँ पिताजी ने देखा कि ज्ञानमती माताजी सतत पढ़ने-पढ़ाने मे ही लगी रहती थीं। माताजी का जिस दिन सभा में उपदेश हो जाता था उस दिन वहाँ की समाज माताजी के ज्ञान की बहुत ही प्रशंसा करने लगती थी। वहाँ एक बार सरसेठ भागचन्द जी सोनी अजमेर, सेठ राजकुमार सिंह इन्दौर आदि महानुभाव आये हुए थे।

उस दिन आ० शिवसागर जी महाराज ने पहले माताजी का ही उपदेश करा दिया। उस उपदेश से समाज तो प्रभावित हुई ही। माँ मोहिनी और पिता छोटेलाल जी भी बहुत ही प्रसन्न हुए।

एक दिन आर्यिका चन्द्रमती जी ने इन्हे ज्ञानमती जी के सभी शिष्य-शिष्याओं के बारे में अच्छा परिचय कराया। यहाँ पर माँ ने यह भी देखा आर्यिका विशुद्धमती जी भी माताजी से बहुत ही प्रभावित हैं।

आ० शिवसागरजी की उदारता

एक दिन क्षु० अभयमती की किसी माताजी के साथ कुछ कहा सुनी हो गई। बात उसी क्षण महाराज जी के पास आ गई। आ० महाराज ने दोनों साध्वियों को ७-७ दिन के लिए रसों का परित्याग करा दिया। इस घटना के दो दिन बाद माँ मोहिनी सहसा आचार्य महाराज के पास आकर बैठ गई और काफी देर तक बैठी ही रहीं किन्तु कुछ भी बोली नही।

दूसरे दिन आचार्य महाराज ने आहार को निकलते समय क्षु० अभयमती को अपने साथ आने का संकेत कर दिया। वह आचार्यश्री के पीछे-पीछे चली गईं। महाराजजी सीधे माँ मोहिनी के सामने जाकर खड़े हो गये। अभयमती वहीं खड़ी हो गईं। माँ-पिता ने बड़ी भक्ति से आचार्य श्री की प्रदक्षिणा देकर उन्हें चौके में ले जाकर नवधाभक्ति की। क्षु० अभयमती को भी पड़गाहन कर चौके में बिठाया। आचार्यश्री की थाली परोस जाने के बाद उन्होंने दूसरी थाली परोसने को भी संकेत दिया। माँ को उनके रस परित्याग की बात मालूम थी अतः वे नीरस परोसने लगीं। तभी महाराज ने संकेत कर उस थाली में दूध, घी आदि रस रखा दिया। पुनः महाराज जी का आहार शुरू हो गया। बाद मे महाराज ने अभयमती को भी दूध, घी, नमक, लेने का संकेत दिया। गुरुदेव की आज्ञानुसार अभयमतीजी ने रस ले लिये। माता-पिता आचार्यदेव की इस उदारता को देखकर बहुत ही आश्चर्यान्वित हुए। मध्याह्न में आकर माँ मोहिनी ने सारी बातें आर्यिका ज्ञानमती माताजी को सुना दीं और बोली—

"देखो, आचार्यश्री ने गलती पर अनुशासन भी किया और मै कल मध्याह्न में देर तक उसके पास बैठी रही थी। शायद इससे मेरे हृदय में इसके त्याग का दुख जानकर ही आज स्वयं मेरे चौके में आप भी आये और अभयमती को भी लाकर उन्हें रस दिला दिया। सच में गुरु का हृदय कितना करुणार्द्र होता है।"

रवीन्द्र कुमार को व्रत

माताजी ने वही एक दिन रवीन्द्र कुमार को समझाया था कि—

"तुम अब एक वर्ष संघ मे रहकर धार्मिक अध्ययन कर लो।"

रवीन्द्र जी ने कहा—

"मैं अभी बी. ए. तक पढ़ूंगा।"

तब माताजी ने रवीन्द्र को कुछ उपदेश देकर समझाकर दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया और यह भी नियम दे दिया कि—

"जब तुम नया व्यापार शुरू करो या विवाह करो उसके पूर्व संघ में आकर मेरे से आशीर्वाद लेकर जाना।"

माताजी ने यह बात माँ को बता दी।

कामिनी के लिए माताजी का प्रयास

माँ मोहिनी की कामिनी पुत्री लगभग १३ वर्ष की थी। यह समय-समय पर माताजी के पास आकर बैठ जाती। और कुछ-न-कुछ धर्म का अध्ययन करती रहती। माताजी ने देखा, इसकी बुद्धि बहुत ही कुशाग्र है। यह लडकी गणित में भी कुशल है। तभी माताजी ने उसे संघ में कुछ दिन रहकर धर्म अध्ययन करने की प्रेरणा दी, वह भी तैयार हो गई। अब क्या! माताजी ने जैसे तैसे समझा बुझाकर माँ को राजी कर लिया कि वो कामिनी को ४–६ महीने के लिए यहाँ छोड़ जावें। चूँकि संघ मे साड़ी पहनना पड़ेगा। अतः कामिनी ने माँ से आग्रह कर पेटीकोट ब्लाउज भी बनवा लिया और माँ से एक साड़ी भी ले लीं।

पिताजी प्रायः प्रतिदिन आकर १०–१५ मिनट आ० ज्ञानमती जी के पास बैठते थे। वे

कभी-कभी घर और दूकानों की कुछ समस्यायें भी रख देते थे और समाधान अथवा परामर्श की प्रतीक्षा करते रहते थे। माताजी ऐसे प्रसंगों पर बिल्कुल मौन रहती थीं। तब वे अपने कमरे में आकर मोहिनी जी से कहते—

"देखो, मैंने अमुक-अमुक विषयों पर माताजी से परामर्श चाहा किन्तु वे कुछ भी नहीं बोलती हैं।" माँ कहतीं—

"वे घर सम्बन्धी चर्चाओं में परामर्श नहीं देंगी। चूँकि उनके अनुमतित्याग है।"

पिताजी चुप हो जाया करते थे। एक दिन पूज्य ज्ञानमतीजी ने पिता से कहा—

"इस कामिनी की बुद्धि बहुत ही अच्छी है, तुम इसे मेरे पास २-४ महीने के लिए छोड़ जावो। कुछ थोड़ा धार्मिक अध्ययन कराकर भेज दूँगी।"

इतना सुनकर पिताजी खूब हँसे और बोले—

"आपने मनोवती को माताजी बना दिया। उसे कितने कष्ट सहन करने पड़ते हैं सो मैं देख रहा हूँ। अब तुम्हारे पास किसी को भी नहीं छोड़ूँगा।"

माताजी का भी कुछ ऐसा स्वभाव ही था कि उनके पास जब भी पिता आकर बैठते। वे कामिनी के बारे में ही उन्हें समझाने लगती और अति आग्रह करतीं कि—

"इसे छोड़कर ही जाओ········ ··।"

पिताजी कभी हँसते रहते, कभी चिढ़ जाते और कभी उठकर चले जाते। अपने स्थान पर जाकर माँ से कहते—

"देखो ना माताजी कितनी स्वार्थी है। मैं चाहे जितनी बातें ही पूछता रहता हूँ एक का भी जवाब नहीं देती हैं। किन्तु अब कामिनी बिटिया को रखने के लिए मैं जैसे ही उनके पास पहुँचता हूँ वे मुझे समझाना शुरू कर देती हैं।··········"

इतना कहकर वे खूब हँसते और कामिनी से कहते—

"कामिनी बिटिया! तुम माताजी की बातों मे नहीं आना, हाँ, देखो ना, तुम्हारी बहन मनोवती को इन्होंने कैसी माताजी बना दिया है।"

तब कामिनी भी खूब हँसती और कहती—

"मैं तो यदि रहूँगी तो दीक्षा थोड़े ही ले लूँगी। मैं तो मात्र कुछ दिन पढ़कर घर आ जाऊँगी।"

एक दिन माताजी ने कु० कला और मनोरमा का परिचय कराकर पिता से कहा—

"बाँसवाड़ा के सेठ पन्नालाल की ये दोनों कन्यायें हैं। एक बार वहाँ उपदेश में मैंने कहा कि यदि भक्तगण एक-एक गाँव से एक-एक कन्या भी हमें देने लग जावें और वे मेरे पास पढ़कर गृहस्थाश्रम में भी रहें तो आज गाँव-गाँव में सती मनोरमा और मैना सुन्दरी के आदर्श दिख सकते हैं। इसी बात पर पन्नालाल ने अपनी दो कन्यायें हमारे पास छोड़ी है। ऐसे ही आप भी इस कन्या को हमारे पास मात्र पढ़ने के लिए छोड़ दो वापस घर ले जाना ·······।" किन्तु पिताजी हँसते ही रहे। उन पर इन शिक्षाओं का कुछ भी असर नहीं हुआ।

जब टिकैतनगर जाने के लिए इन लोगों ने तारीख निश्चित कर ली, सब सामान बँध गया। तब कामिनी ने एक छोटी-सी पेटी में अपना सब सामान रख लिया और इधर-उधर हो गई। पिताजी ने हल्ला-गुल्ला मचाकर उसे ढूँढ लिया और गोद में उठाकर जाकर तांगे में बैठ गये। जब सब लोग वहाँ से रवाना होकर स्टेशन पर आ गये तब उनके जी में जी आया।

पुनः रास्ते में मोहिनीजी से बोले—

"अब तुम्हें कभी भी संघ में नहीं लाऊँगा और न कभी बच्चों को ही।"

माता मोहिनी जी, रवीन्द्रकुमार आदि माताजी के वियोग से हुए दुःख को हृदय में समेटे हुए तथा संघ के साधुओं की चर्या और गुणों की चर्चा करते हुए अपने घर आ गये।

[१६]

महावीर जी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा

सन् १९६९ मे फाल्गुन मास में कैलाश जी ने दुकान से घर आकर संघ से आया हुआ एक पत्र सुनाया। जिसे मैंने (मोतीचन्द ने) लिखा था उसमें यह समाचार था कि—

"संघ यहाँ महावीर जी क्षेत्र पर विराजमान है, फाल्गुन सुदी में शांतिवीरनगर में भगवान् शान्तिनाथ की विशालकाय प्रतिमा का पंचकल्याणक महोत्सव होने जा रहा है। इस अवसर पर अनेक दीक्षाओं के मध्य क्षु० अभयमती जी की आर्यिका दीक्षा अवश्य होगी। अतः आप माँ और पिताजी को अन्तिम बार उनकी इस दीक्षा के माता पिता बनने का लाभ न चुकावें। अवश्य आ जावें।"

उस समय यद्यपि पिताजी को पीलिया के रोग से काफी कमजोरी चल रही थी वे प्रवास में जाने के लिए समर्थ नही थे। फिर भी माँ ने आग्रह किया कि—

"यह अन्तिम पुण्य अवसर नहीं चुकाना है। भगवान् महावीर स्वामी की कृपा से आपको स्वास्थ्य लाभ होगा। हिम्मत करो, भगवान्, तीर्थ और गुरुओं की शरण मे जो होगा सो ठीक ही होगा............।"

कैलाशचन्द जी ने भी साहस किया। रुग्णावस्था मे भी पिता को साथ लेकर माँ की मनोकामना पूर्ण करने के लिए महावीर जी आ गये। वहाँ आकर देखते है—बड़ा ही गमगीन वातावरण है। अकस्मात् फाल्गुन कृष्णा अमावस्या को मध्याह्न में आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज की समाधि हो गई है। सभी साधु साध्वियों के चेहरे उदास दिख रहे है। और यहाँ अब आचार्य पट्ट मुनि श्री धर्मसागर जी महाहाज को दिया जाय या मुनि श्री श्रुतसागर जी महाराज को...........?

साधुओं की सभा मे यह जटिल समस्या चल रही है। खैर! उन्हें इन बातों से क्या लेना-देना था। वे वहाँ कटला में ही धर्मशाला मे ठहर गये।

माँ ने सभी साधुओं के दर्शन किये किन्तु पिताजी कही नही जा सके वे अपने कमरे से ही दरवाजे से पलंग पर बैठे-बैठे दूर से साधुओं का दर्शन कर लेते थे। वे पीलिया रोग से उस समय काफी परेशान थे। कई बार उन्होंने पूज्य ज्ञानमती माताजी के दर्शन के लिए कैलाशजी से भावना व्यक्त की। कैलाश ने माताजी से प्रार्थना भी की किन्तु माताजी कुछ धार्मिक आयोजनों से व्यस्त भी रहा करती थी। वे नही आती थीं।

माँ मोहिनी की मनोभावना पूर्ण हुई

इधर फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को भगवान् के तप कल्याणक दिवस मुनिश्री धर्मसागर जी को चतुर्विध संघ के समक्ष आचार्य पद प्रदान किया गया और नवीन आचार्य के करकमलों से

उसी दिन ग्यारह दीक्षायें हुईं। कैलाशचन्द जी इतनी भीड़ में भी पिता को सभा में ले आये। उन्होंने दीक्षायें देखीं और क्षु० अभयमती की आर्यिका दीक्षा में माता-पिता के पद को स्वीकार कर उनके हाथ से पीताक्षत, सुपारी, नारियल आदि भेंट में प्राप्त किये। इस लाभ से वे बहुत ही प्रसन्न हुए। इस दीक्षा के अवसर पर आ० ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सनावद के यशवंत कुमार ने सीधे मुनि दीक्षा ली थी। ब्र० अशरफी बाई और ब्र० विद्याबाई ने भी आर्यिका दीक्षा ली थी। क्षु० अभयमती का नाम अभयमती ही रहा। यशवंतकुमार का नाम मुनि वर्धमानसागर रक्खा गया, ब्र० अशरफीबाई का नाम आ० गुणमती प्रसिद्ध हुआ और विद्याबाई का नाम आ० विद्यामती रक्खा गया। इन दीक्षाओं को सम्पन्न कराने में आ० ज्ञानमती माताजी ने बड़े ही उत्साह से भाग लिया था।

मैंने (मोतीचन्द जी ने) भी अपने चचेरे भाई यशवंत को दीक्षा दिलाने में बहुत ही प्रेम और उत्साह से कार्य किया था। इसके बाद प्रतिष्ठा के दो कल्याणक भी सानन्द सम्पन्न हुए। प्रतिष्ठा के बाद भीड़ कम हो गई। तब मां मोहिनी ने वहाँ कुछ दिन और रहकर धर्मलाभ लेने का निर्णय किया।

मालती के ऊपर माताजी द्वारा संस्कार

प्रतिदिन शाम को प्रतिक्रमण के बाद माताजी अपने स्थान पर बैठती थी। संघ की बालिकाएँ कु० सुशीला, कु० शीला, कु० कला, कु० विमला आदि माताजी को घेर लेती थीं। वे दिन भर जो कुछ पढ़ती थीं, माताजी उसी से संदर्भित प्रश्न पूछना शुरू कर देती थीं। लड़कियाँ उत्तर भी देती थीं। कु० सुशीला हास्य-विनोद भी करती रहती थीं। वहाँ पर मालती भी आकर बैठ जाती और चुपचाप सब देखती सुनती रहती। एक दिन माताजी ने पूछा—

"मालती! तुम्हें ऐसा जीवन प्रिय है क्या?"

मालती पहले चुप रही फिर भी बोली—

"मुझे यहाँ छोड़ेंगे ही नहीं।"

माताजी ने पूछा—"तुमने अपने भविष्य के लिए क्या सोचा है?"

मालती ने कहा—

"कुछ भी नही।"

माताजी ने कहा—

"अच्छा, आज रात्रि में सोच लो, कल हमें बताना।"

दूसरे दिन मालती ने कहा—

"माताजी! मुझे ब्रह्मचर्य व्रत दे दो।"

एक दो दिन माताजी ने उसकी दृढ़ता देखी अनन्तर व्रत देने का आश्वासन दे दिया। यह बात किसी को विदित नही हुई।

पिता को ज्ञानमतीजी के अन्तिम दर्शन

पिताजी पीलिया से परेशान थे। बार-बार कैलाशजी से माताजी को बुलाने के लिए कहते और कैलाशजी आकर माताजी से प्रार्थना किया करते किन्तु पता नहीं क्यों? माताजी टाल दिया करती थीं। एक दिन माताजी कैलाशजी के साथ उनके कमरे में गईं। पिताजी देखते ही रो पड़े और बोले—

"माताजी ! अब हमें इस जीवन में आपके दर्शन नहीं होंगे।"

माताजी वहाँ दो मिनट के लिए खड़ी हुईं, आशीर्वाद दिया और बोलीं—

"घबराते क्यों हो ?........"

बाद में माताजी जल्दी ही वापस चली आईं। पता नही उन्हें वहाँ बैठकर पिता को कुछ शब्दों में शिक्षा देने में, क्यों संकोच रहा........?"

पिताजी चाहते थे कि आ० ज्ञानमतीजी मेरे पास कुछ देर बैठकर कुछ कहें, बोलें, सुनावें ....किन्तु उनकी इच्छा पूरी नही हो पाई........। दो चार दिनों मे ही घर वापस जाने का प्रोग्राम बन गया।

मालती को व्रत

इन लोगों का सामान बस में चढ़ाया जा रहा था। इसी मध्य माताजी ने मालती को ऊपर ले जाकर एक वृद्ध मुनिराज से दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत दिला दिया। और नीचे आकर बस में बैठने जा रही माँ मोहिनी से बता दिया। वे घबराईं और बोलीं—

"आपने यह क्या किया ? घर मे मेरे ऊपर क्या बीतेगी। ऐसे ही तुम्हारे पिता अस्वस्थ हैं वे सुनते ही और भी परेशान होंगे ?"

अस्तु ज्यादा बोलने का समय ही नही था। ये लोग सकुशल अपने घर आ गये।



ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करने के बाद कु० मालती टिकैतनगर समाज के बीच में
सन् १९६९

पिताजी को सदमा

मालती ने घर में बताया कि—

"मैंने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया।" तब पिताजी को बहुत धक्का लगा। उन्होंने बहुत कुछ समझाया बुझाया। और विवाह के लिए सोचने लगे। तभी देवयोग से वहाँ टिकैतनगर में आ० श्री सुबलसागरजी महाराज के संघ का चातुर्मास हो गया। महाराजजी ने भी मालती के ब्रह्मचर्य व्रत को सराहा, प्रोत्साहन दिया, तब मालती ने महाराज की आज्ञानुसार एक दिन सभा में श्रीफल लेकर महाराजजी से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। इससे टिकैतनगर में आचार्यश्री ने और श्रावकों ने भी मालती की तथा इस परिवार की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। किन्तु पिता के मन पर मालती के व्रत का इतना सदमा हुआ कि वे पुनः बिस्तर से नहीं उठ सके।

प्रकाशचन्द को माताजी का दर्शन

इसी सन् १९६९ में आ० धर्मसागरजी के संघ का चातुर्मास जयपुर में हो रहा था। प्रकाशचन्द अपनी पत्नी ज्ञाना देवी को, बच्चों को, बहन माधुरी और भतीजी मंजू को साथ लेकर संघ के दर्शनार्थ आ गये। सन् ६३ मे माताजी को सम्मेदशिखर पहुँचाने के बाद प्रकाशचन्द छह वर्ष बाद संघ के दर्शनार्थ आए थे। यहाँ वे लोग कुछ दिन ठहरे थे।



जयपुर मे दर्शनार्थ आए हुए प्रकाशचन्दजी सपरिवार
साथ में कु० माधुरी और मंजू हैं

यहाँ पर मैंने माताजी द्वारा रचित "उषावंदना" पुस्तिका दस हजार प्रति छपाने का निर्णय किया और प्रकाशचन्द के परिवार से ही व्यवस्था करा ली। तथा एक ज्योतिर्लोक भी छपा रहे थे जिसको भी पिताजी के नाम से कर दिया। प्रकाशजी ने कहा—मैं घर जाकर रुपये भेज दूँगा।

माधुरी का संस्कार

यहाँ पर माताजी के पास कु० सुशीला, शीला, कला आदि गोम्मटसार जीवकाण्ड पढ़ रही थीं और कातंत्र व्याकरण भी पढ़ती थीं। माताजी ने कु० माधुरी की बुद्धि कुशाग्र देखकर उसे वही गोम्मटसार और व्याकरण पढ़ाना शुरू कर दिया साथ ही यह भी समझाना शुरू कर दिया कि—

"तुम कुछ दिन यहाँ रहकर कुमारी कला के साथ धार्मिक अध्ययन कर लो फिर घर चली जाना।"

एक बार माधुरी, मंजू के मन में भी यह बात जँच गई। पुनः वे प्रकाशचन्द के जाते समय संघ में नहीं रह सकी और साथ ही घर चली गईं। घर पहुँचते ही पिता ने माधुरी को छाती से चिपका लिया और बोले—

"बिटिया ! तुम माताजी के पास नहीं रहीं अच्छा किया·······।"

प्रकाशचन्द ने संघ की बातें माता-पिता को सुनायी कि—

"वहाँ संघ में माताजी मध्याह्न १ बजे से ४ बजे तक मुनि श्री दयासागरजी, श्री अभिनंदनसागरजी, श्री संयमसागरजी, श्री बोधिसागरजी, श्री निर्मलसागरजी, श्री महेन्द्रसागरजी, श्री संभवसागरजी और श्री वर्धमानसागरजी को गोम्मटसार जीवकांड, कल्याण मन्दिर आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय कराती हैं। इसमें आर्यिकायें भी बैठती हैं, तथा मोतीचन्दजी भी बैठते हैं। पुनः आहार के बाद अपने स्थान पर कुछ आर्यिकाओं को प्राकृत व्याकरण पढ़ाती हैं। प्रतिदिन प्रात: ७ बजे से ९-३० बजे तक मुनिश्री अभिनन्दनसागरजी, श्री वर्धमानसागरजी आदि को तथा आ० आदिमतीजी और अभयमतीजी को और मोतीचन्द को तत्त्वार्थ राजवार्तिक और अष्टसहस्री पढ़ाती हैं। इनकी सारी दिनचर्या बहुत ही व्यस्त रहती है। सुनकर सब लोग बहुत ही प्रसन्न हुए।

जब माधुरी ने माताजी के पास पढ़ी हुई गोम्मटसार की ३४ गाथायें आ० सुबलसागरजी को कंठाग्र सुनाईं तो वे हर्ष विभोर हो गये और बोले—

"इन माता मोहिनी की कूँख से जन्म लिए सभी सन्तानों को बुद्धि का क्षयोपशम विरासत में ही मिला है। प्रत्येक पुत्र-पुत्रियों की बुद्धि बहुत ही तीक्ष्ण है·······।" इस प्रकार आ० सुबलसागरजी महाराज माधुरी से प्रतिदिन गोम्मटसार की वे ३४ गाथायें कंठाग्र सुना करते थे और गद्‌गद हो जाया करते थे।

पिता की समाधि

इसी १९६९ की २५ दिसम्बर को पिताजी ने आ० ज्ञानमती माताजी के दर्शनों की भावना को लिए हुए तथा महामंत्र का श्रवण करते हुए इस नश्वर शरीर को छोड़कर समाधिमरण पूर्वक अपना परलोक सुधार लिया और स्वर्ग सिधार गये। इनकी समाधि के कुछ ही दिन पूर्व आ० सुमतिसागरजी महाराज ससंघ टिकैतनगर आये थे। उन्होंने घर आकर पिता को संबोधित किया। पिता ने बड़े प्रेम से संघ के दर्शन किये और माँ ने, घर मे सभी ने उनके आहार का लाभ लिया था।

पिताजी के स्वर्गवास के बाद संघ से मैं माताजी की आज्ञा लेकर आया। समय पाकर मैंने माँ से कहा—

"माताजी ने ऐसा कहा है कि अब आप संघ में चलें और अपनी आत्मा का कल्याण करें। अब घर में रहकर क्या करना .... ।"

माँ ने यह बात कैलाशचन्द आदि पुत्रों के सामने रखी। तब सभी पुत्र रो पड़े और बोले—

"अभी-अभी पिता का साया सिर से उठा ही है भला हम लोग अभी ही आपके बगैर कैसे रह सकेंगे........?"



वैधव्य दुःख को प्राप्त माँ मोहिनी अपने परिवार के साथ।
[मध्य में चारों पुत्र बैठे है]

माँ ने भी सोचा—अभी चारों तरफ से मेहमानों का आना चालू है अतः तत्काल ही जाना नहीं बन सकेगा। तब उन्होंने कु० मालती के आग्रह को देखकर उसे संघ में भेजने का निर्णय किया और अपनी जिठानी को भी साथ करके मेरे साथ इन दोनों को भेज दिया। मैं वहाँ से रवाना होकर आचार्य संघ में आ गया। इस समय संघ निवाई के पास एक छोटे से गाँव में ठहरा हुआ था। मालती ने माताजी का सान्निध्य पाकर अपार हर्ष का अनुभव किया।

आचार्यकल्प सन्मतिसागरजी के दर्शन

पिताजी के स्वर्गवास को १४-१५ दिन ही हुए थे कि टिकैतनगर में आ० कल्प श्री सन्मति-सागरजी महाराज अपने संघ सहित आ गये। माँ मोहिनीजी ने बहुत ही धैर्य रखा था और अपने पुत्र, पुत्रवधू तथा पुत्रियों को भी समझाती रहती थी, घर मे रोने-धोने का वातावरण नहीं था। अतः माँ ने चौका किया और महाराजजी को आहार दिया। जब संघ वहाँ से विहार करने लगा तब मोहिनीजी चौका लेकर उनके संघ की व्यवस्था बनाकर अपनी बड़ी बहन को साथ लेकर

कानपुर तक उन्हें पहुँचाने गईं। इन आ० क० सन्मतिसागरजी महाराज ने एक बार सभा में माँ मोहिनीजी की प्रशंसा करते हुए कहा कि—

"किसकी माँ ने ऐसी अजवाइन खाई है जो कि आ० ज्ञानमती माताजी जैसी कन्या को जन्म दे सके·······।"

एक बार महाराजजी ने मोहिनीजी से यह भी बताया कि—

"मैं जब क्षुल्लक था एक बार संघ से अलग बगरू (जयपुर के पास) चला गया था। जब माताजी वहाँ आईं वे मुझे सम्बोधित कर आचार्यश्री वीरसागरजी के पास वापस अपने साथ ले आईं। तब आचार्यश्री उनसे बहुत ही प्रसन्न हुए थे·······। मैंने माताजी के पास प्रतिक्रमण का अर्थ देववंदना विधि, आलाप पद्धति आदि ग्रन्थ भी पढ़े हैं।" इत्यादि।

[१७]

सन् १९७० में आचार्य संघ का चातुर्मास टोंक (राजस्थान) में हुआ था। उस समय माँ, कैलाशजी, सुभाषजी, दोनों पुत्रवधू (चन्द्रा, सुषमा) तथा छोटी पुत्री त्रिशला को लेकर संघ के दर्शनार्थ आईं। यहाँ लगभग एक महीना रहने का प्रोग्राम था। प्रतिदिन चौके मे दो चार साधुओं का आहार हो जाता था। यहाँ पर भी माताजी प्रतिदिन प्रातः २–३ घंटे और मध्याह्न में ३ घण्टे तक बराबर मुनि आर्यिकाओं और ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणियों को अध्ययन कराती रहती थीं। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन रात्रि में १०–११ बजे तक अष्टसहस्री ग्रन्थ का अनुवाद लिखा करती थीं। माँ मोहिनी माताजी के प्रातः ४ बजे से लेकर रात्रि के ११ बजे तक के परिश्रम को देखकर दंग रह जाती थीं। और स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए उन्हें मना भी किया करती थी। लेकिन माताजी हँसकर टाल देती थी।

इसी मध्य सोलापुर से पं० वर्धमान शास्त्री आये हुए थे। वे पडगाहन के लिए माँ के चौके में ही खड़े होते थे। उन्हें भी माँ मोहिनी के प्रति बहुत ही आदर भाव था। वे समय-समय पर सोलापुर मे माताजी के चातुर्मास के समय के संस्मरण सुना-सुनाकर माताजी की प्रशंसा किया करते थे और माँ से कहा करते—

"माताजी! आपने ज्ञानमती माताजी जैसी कन्यारत्न को जन्म देकर जैन समाज को बहुत बड़ी निधि प्रदान की है। आपने अपने जीवन को तो धन्य कर ही लिया है। अपने सारे पुत्र पुत्रियों को भी धन्य बना दिया है। हमें बताओ तो सही भला आपने अपने पुत्र पुत्रियों को क्या घूँटी पिलाई थी? ······· इस परिवार के सदस्यों ने पूर्व जन्म मे एक साथ कोई महान् पुण्य किया होगा जो कि एक जगह एकत्रित हुए हैं और सभी धर्म मार्ग मे लगे हुए हैं।"

सन् ६९ में मालती के आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेने के बाद भाई सुभाष ने भी विरक्त मन से एक वर्ष के लिए ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था।

वे अब यहाँ आचार्यश्री के पास कुछ और अधिक दिनों के लिए ब्रह्मचर्य व्रत लेना चाहते थे। माताजी ने सुभाष और सुषमा से कहा—

"दोनों ही जोड़े से दीक्षा ले लो।"

तभी सुषमा घबरा गई। उसकी उम्र मात्र २० वर्ष की होगी। उसकी गोद में एक कन्या

सुगन्धबाला ही मात्र एक वर्ष की थी। सुषमा को पुत्र की इच्छा थी.........। अतः सुभाषजी आगे नहीं बढ़ सके।

एक मास उपवास के बाद पारणा का लाभ

यहाँ माताजी के पास में रहने वाली आ० पद्मावती माताजी ने भाद्रपद में एक मास का उपवास किया था। मध्य में केवल तीन बार जल लिया था। ये माताजी आ० ज्ञानमती द्वारा पढ़ाते समय दिन के ४–५ घण्टे तक बराबर उन्हीं के पास बैठी रहती। कोई भी उन्हे किंचित् विश्राम के लिए कहता तो वे कहतीं—

"मुझे अम्मा की अमृतमयी वाणी से जो तृप्ति होती है जो आराम मिलता है वह लेटने से नहीं मिलेगा।"

जब ३१ उपवास के बाद बत्तीसवें दिन ये आहार को निकलीं तब माँ मोहिनीजी के पुण्योदय से इनका पड़गाहन उन्हीं के यहाँ हो गया। एक मास उपवास के बाद उनकी पारणा कराकर इन लोगों को बड़ा ही आनन्द आया। इस अवसर पर पद्मावती माताजी की पुत्री बाल-ब्रह्मचारिणी कु० स्नेहलता भी आई हुई थी।

सप्तम प्रतिमा के व्रत

एक दिन मोहिनीजी ने आचार्यश्री के समक्ष श्रीफल लेकर सप्तम प्रतिमा के व्रत हेतु याचना की। आचार्यश्री ने बड़े प्रेम से उन्हें सप्तम प्रतिमा के व्रत दे दिये। वैसे माँ मोहिनी ने पिता के स्वर्गवास के बाद ही अपने केश काट दिये थे और तब से सफेद साड़ी ही पहनती थी। अब तो ये ब्रह्मचारिणी हो गईं। यद्यपि माताजी ने मोहिनी से आग्रह किया था कि—

"अब आप घर का मोह छोड़कर संघ में ही रहो।"

किन्तु उन्होंने कहा—"अभी मैं घर जाकर कामिनी की शादी करूँगी। अगली बार आकर रहने का प्रोग्राम बना सकती हूँ।"

त्रिशला का अध्ययन

माँ मोहिनी की सबसे छोटी पुत्री का नाम त्रिशला है। यह उस समय लगभग १०–११ वर्ष की थी। माताजी ने इसे और भाई कैलाशचंदजी के पुत्र जम्बूकुमार को द्रव्य-संग्रह की कुछ गाथायें पढ़ा दीं। दोनों ने याद करके सुना दी। माताजी खुश हुई और माँ से कहा—

"आप कु० त्रिशला को कुछ दिनों के लिए यहीं संघ में छोड़ दो। यह कुछ धार्मिक अध्ययन कर लेगी। देखो, पुराने जमाने में मैना सुन्दरी आदि ने आर्यिकाओं के पास ही अध्ययन किया था तो वे आज भी समाज में आदर्श महिलायें मानी जाती हैं।"

इत्यादि शिक्षा से मोहिनीजी तो प्रभावित थीं ही। कु० मालती ने भी अपना मन बहलाने के लिए छोटी बहन को बहुत कुछ समझाया। माताजी के शब्दों में तो गजब का ही आकर्षण था। त्रिशला भी कुछ दिनों यहाँ रह कर धर्म पढ़ने के लिए दृढ़ हो गई। अन्ततोगत्वा भाई कैलाशचन्द जी को लाचार होना पड़ा। अब त्रिशला भी अपने पुरुषार्थ में सफल हो गई। ये लोग एक माह के बाद घर चले गये।

त्रिशला ने माताजी से आग्रह किया—

"मैं आपसे ही पढ़ूंगी।"

माताजी ने कहा—

"मैं तो मुनियों को, मालती को कर्मकाण्ड पढ़ा रही हूँ। तुझे कर्मकाण्ड ही पढ़ना पड़ेगा।"

उसे मंजूर था। माताजी ने उसे कुछ गाथायें पढ़ा दीं उसने अर्थ सहित याद करके सुना दी। माताजी को आश्चर्य हुआ फिर उन्होंने उसे कर्मकाण्ड, अष्टसहस्री के सारांश आदि ऊँचे विषय ही पढ़ाये। और उसका शोलापुर "शास्त्री प्रथम खण्ड" का फार्म भरा दिया। जब संघ लावा, मालपुरा आदि में विहार कर रहा था। प्रतिक्रमण के बाद शाम को सभी मुनि, आर्यिकायें, ब्रह्मचारीगण आदि आचार्यश्री धर्मसागरजी के पास एकत्रित हो जाते थे। आचार्यश्री त्रिशला से कर्म प्रकृतियों के बंध उदय, बंध व्युच्छित्ति आदि के प्रश्न कर लेते थे। वह गाथा बोलकर अर्थ करके अच्छा उत्तर दे देती थी। उस समय आचार्य महाराज भी खूब कौतुक करते थे और सभी साधु तथा उपस्थित श्रावकों को भी बड़ा आनन्द आता था।

उन दिनों माताजी के पास कर्मकाण्ड, सर्वार्थसिद्धि, अष्टसहस्री, ग्रन्थ आदि का अध्ययन मुनियों में श्री अभिनन्दनसागरजी, सम्भवसागरजी, वर्धमानसागरजी आदि कर रहे थे। तथा संघस्थ कु० विमला, कु० सुशीला, शीला, कला, मालती आदि भी ये ही विषय पढ़ रही थी। और मैं भी उन दिनों राजवार्तिक, अष्टसहस्री आदि ग्रंथों का अध्ययन कर रहा था।

त्रिशला का घर जाना

संघ टोंक से विहार कर टोडाराय सिंह गाँव में पहुँच गया। घर से प्रकाशचन्दजी वहाँ आये और बोले—

"कामिनी का विवाह होने वाला है। अतः माँ ने कहा है कि त्रिशला और मालती को लिवा लाओ।"

यद्यपि माताजी भेजना नहीं चाहती थीं फिर भी "मैं वापस त्रिशला को निश्चित भेज जाऊँगा" ऐसा वचन देकर प्रकाशजी दोनों बहनों को साथ लेकर घर के लिये रवाना हो गये।

आचार्यश्री का जयन्ती समारोह

यहाँ टोडाराय सिंह में आ० श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से श्रावकों ने पौषशुक्ला पूर्णिमा को आचार्यश्री का जयन्ती समारोह मनाना निश्चित किया। रथयात्रा का प्रोग्राम बनाया गया। उसी दिन (पूर्णिमा को) पूज्य माताजी ने अष्टसहस्री ग्रन्थराज का अनुवाद पूर्ण किया था। सनावद से रतनचन्दजी पांड्या धर्मपत्नी कमलाबाई सहित आये हुये थे। उन्होंने बड़े ही भक्ति भाव से माताजी द्वारा अनुवादित कापियों को ऊँचे आसन पर विराजमान कर उनकी पूजा की और आचार्यश्री के जयन्ती समारोह की रथयात्रा के साथ में ही एक पालकी में अष्टसहस्री ग्रंथ और अनुवादित कापियों को विराजमान कर उनका भव्य जुलूस निकाला गया था

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा

सन् १९७१ में टोंक में माघ महीने में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन होने से श्रावक गण पुनः आचार्य संघ को वापस अपने गाँव ले आये। यहाँ प्रतिष्ठा के अवसर पर टिकैतनगर से

भाई कैलाशचन्दजी और रवीन्द्र कुमारजी आये थे। साथ में टिकैतनगर के प्रद्युम्नकुमार भी आये थे। यहाँ प्रतिष्ठा में माताजी की प्रेरणा से एक संगमरमर का ३ फुट ऊँचा सुमेरु पर्वत जिसमें १६ प्रतिमायें बनी हुई थी वह भी प्रतिष्ठित हुआ था। भाई कैलाशचन्दजी उसे टिकैतनगर ले जाने को बोले। तभी प्रद्युम्नजो ने उसका न्योछावर देकर अपने नाम से टिकैतनगर ले जाने का निश्चय कर लिया।

रवीन्द्र कुमार संघ में

माताजी ने रवीन्द्र कुमार को प्रेरणा दी कि—

"तुम २-३ माह संघ में रहकर मोतीचन्द के साथ शास्त्री कोर्स की तैयारी करके परीक्षा दे लो।" माताजी ने इन्हें समझाने मे कोई कसर नहीं रक्खी। अन्त में उनका प्रयत्न सफल हुआ और रवीन्द्र कुमार ने संघ में ही रहकर कर्मकाण्ड, राजवार्तिक, अष्टसहस्री आदि का अध्ययन मनन, चालू कर दिया। फरवरी माह चल रहा था, बम्बई की परीक्षायें अप्रैल मे होती है। मात्र दो ढाई माह मे शास्त्री के तीनों खण्ड के कर्मकाण्ड राजवार्तिक, अष्टसहस्री आदि का अध्ययन कर रवीन्द्र कुमार ने तीनो खण्डों की परीक्षायें एक साथ उत्तीर्ण कर लीं। जिन्हें मैंने तीन वर्ष में किया था। मुझे माताजी के परिवार के सदस्यों (भाई-बहनों) की इतनी तीक्ष्ण बुद्धि पर आश्चर्य भी होता था और साथ ही महान् हर्ष भी।

इसके बाद मालपुरा मे रवीन्द्र कुमार की इच्छा से माताजी ने हम लोगों को समयसार ग्रन्थ का स्वाध्याय कराना प्रारम्भ कर दिया। जिसमें हम लोगों ने माताजी के मुख से निश्चय व्यवहार की परस्पर सापेक्षता को अच्छी तरह से समझा था। इस समय संघ मे रवीन्द्र कुमार, कु० मालती और कु० त्रिशला तीनों ही थे। इनका अध्ययन और इनके समक्ष तत्त्वचर्चायें खूब ही चला करती थी।

[१८]

माँ मोहिनी का घर से अन्तिम प्रस्थान

सन् १९७१ में संघ का चातुर्मास अजमेर शहर में हो रहा था। माता मोहिनी अपने बड़े पुत्र कैलाशजी, उनकी पत्नी चन्दा को साथ लेकर संघ के दर्शनार्थ आईं। उस समय उनके साथ पुत्री कु० माधुरी और कैलाशचन्दजी की पुत्री मंजू भी आई थी। यहाँ पर संघ मे आ० पद्मावती जी ने गतवर्ष के समान इस बार भी भाद्रपद मे एक माह का उपवास किया था। माताजी के अत्यधिक आग्रह करने पर भी इस बार पद्मावतीजी ने २१ दिनों तक जल भी नही ग्रहण किया। २२ वें दिन उन्होंने चर्या के लिए उठकर मात्र थोड़ा सा गर्म जल लिया। यह अन्तिम जल उन्हें देने का सौभाग्य माता मोहिनीजो को मिला था। इस दिन उन पद्मावतीजी के गृहस्थाश्रम के पतिदेव ने भी जल दिया था। इस प्रकार माँ मोहिनी अपने परिवार सहित प्रतिदिन कई एक साधुओं का पड़गाहन कर उन्हे आहार देती थीं और अपना जीवन धन्य समझती थीं।

माधुरी को ब्रह्मचर्य व्रत

इधर माताजी अपने स्वभाव से लाचार थीं। इसीलिए ही उन्होंने माधुरी को समझाना

शुरू कर दिया था। जब माधुरी समझ गई और दृढ़ हो गई तब माताजी ने उसे चुपचाप मंदिरजी में एकान्त में बुलाकर कहा—

"जाओ किसी को पता न चले, चुपचाप श्रीफल लेकर आ जाओ।"

माधुरी आ गई और माताजी ने उसे भगवान् के समक्ष ही आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया। माधुरी ने प्रसन्न हो झट से माताजी के चरण छुये और अपने स्थान पर चली गई। उस दिन भाद्र-पद शुक्ला दशमी (सुगंधदशमी) थी।

समाधि देखना

आसोज वदी प्रतिपदा को सायंकाल में आ० पद्मावती माताजी की प्रकृति बिगड़ी। संघ के सभी साधुगण आ गये। आचार्यश्री भी आ गये। पद्मावतीजी ने बड़ी शांति से आचार्यश्री के, सभी साधुओं के दर्शन किये और सबसे क्षमा याचना की। उसी समय देखते-देखते उन्होंने साधुओं के मुख से महामंत्र सुनते हुए इस नश्वर देह को छोड़कर स्वर्गपद प्राप्त कर लिया। माता मोहिनी ने भी उनकी समाधि देखी और बोलीं—

"कि ये पद्मावती माताजी ज्ञानमती माताजी के साथ छाया के समान रहती थीं।"

माताजी ने भी इनकी समाधि बड़ी तन्मयता से कराई थी। उन्होंने ३२ वें उपवास के दिन प्राण छोड़े थे।

इसके दूसरे दिन ही मासोपवासी आ० शांतिमतीजी की भी सल्लेखना हो गई। इन दोनों माताजी की सल्लेखना मोहिनीजी ने बड़ी तन्मयता से देखी। पश्चात् वे कैलाशजी के साथ केशरिया जी यात्रा करने चली गईं। उधर मुनिश्री श्रुतसागरजी के संघ का दर्शन किया। मोहिनीजी पुनः वापस अजमेर आ गईं। और कैलाशजी को समझाकर घर भेजते समय यही सान्त्वना दी कि—

"तुम एक महीने बाद आकर मुझे ले जाना, अभी मैं कुछ दिन आ० अभयमतीजी के पास रहना चाहती हूँ।"

इस बार अभयमतीजी ने अजमेर के पास ही किशनगढ़ में आ० ज्ञानसागरजी के संघ सान्निध्य में चातुर्मास किया था। वे उनके पास अध्ययन कर रही थी।

माँ मोहिनी किशनगढ़ जाकर अभयमतीजी के पास एक माह करीब रही। पुनः वापस अजमेर आ गईं।

[१९]

आर्यिका रत्नमती

दीपावली के बाद एक दिन मोहिनीजी माताजी के पास आकर सहसा बोलीं—

"माताजी! अब मेरी इच्छा घर जाने की नहीं है। कैलाश, प्रकाश, सुभाष तीनों लड़के योग्य हैं, कुशल व्यापारी हैं। माधुरी, त्रिशला अभी छोटी हैं। कुछ दिनों बाद इनकी शादी ये भाई कर देंगे। अब मेरा मन पूर्ण विरक्त हो चुका है। मैं दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करना चाहती हूँ।"

माताजी तो कई बार प्रेरणा देती ही रहती थीं अतः वे इतना सुनते ही बहुत प्रसन्न हुईं और बोलीं—

"आपने बहुत अच्छा सोचा है। जब लों न रोग जरा गहे तब लों झटिति निज हित करो।" इस पंक्ति के अनुसार अभी आपका शरीर भी साथ दे रहा है। अतः अब आपको किसी की भी परवाह न कर आत्म साधना में ही लग जाना चाहिए। ...... अच्छा, एक बात मैं आज आपको और बता दूँ। मैंने सुगंध दशमी के दिन माधुरी को ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया है अतः उसकी तो शादी का सवाल ही नहीं उठता है।"

इतना सुनते ही मोहिनीजी को आश्चर्य हुआ और बोलीं—

"अभी माधुरी की उम्र १३, वर्ष की होगी। वे ब्रह्मचर्य व्रत क्या समझे ......! अभी से व्रत क्यों दे दिया, हाँ, कुछ दिन संघ में रखकर धर्म पढ़ा देतीं ये ही अच्छा था ......। खैर ! अब मैं किसी के मोक्षमार्ग मे बाधक क्यों बनूँ ! जिसका जो भाग्य होगा सो होगा। मुझे तो अब आर्यिका दीक्षा लेनी है।"

माताजी ने उसी समय रवीन्द्र कुमार को बुलाया और माँ के भाव बता दिये। रवीन्द्र का मन एकदम विक्षिप्त हो उठा। वे बोले—

"आपका शरीर अब दीक्षा के लायक नहीं है। आपको बहुत ही कमजोरी है। जरा सा बच्चे हल्ला मचा दें उतने से तो आपके सिर में दर्द हो जाता है। दीक्षा लेकर एक बार खाना, पैदल चलना, केशलोंच करना ...... यह सब आपके वश की बात नही है।"

किन्तु मोहिनीजी ने कहा—

"मैंने सब सोचकर ही निर्णय किया है ......। अतः अब तो मुझे दीक्षा लेनी ही है।

माताजी ने रवीन्द्र की विक्षिप्तता देखी तो उसी समय उन्होने मुझे बुला लिया। रवीन्द्र कुछ कारणवश जरा इधर-उधर हुए कि माताजी ने मेरे से सारी स्थिति समझा दी। और बाजार से श्रीफल लाने को कहा। मैं तो खुशी से उछल पड़ा और जल्दी से जाकर श्रीफल लाकर माँ मोहिनी के हाथ में दे दिया। मोहिनीजी उसी समय माताजी के साथ सेठ साहब की नशिया में पहुँचीं और आचार्यश्री के समक्ष श्रीफल हाथ में लिए हुए बोलीं—

"महाराज जी ! मैं आपके कर कमलों से आर्यिका दीक्षा लेना चाहती हूँ।"

ऐसा कहकर आचार्यश्री के समक्ष श्रीफल चढ़ा दिया। महाराज प्रसन्न मुद्रा में आ० ज्ञानमती माताजी की ओर देखने लगे। सभी पास में उपस्थित संघ के साधु वर्ग प्रसन्न हो मोहिनीजी की सराहना करने लगे और कहने लगे—

'आपने बहुत अच्छा सोचा है। गृहस्थाश्रम में रहकर सब कुछ कर्तव्य आपने कर लिया है अब आपके लिए यही मार्ग उत्तम है।"

आचार्य महाराज बोले—

"बाई ! तुम्हारा शरीर बहुत कमजोर है। सोच लो .... यह जैनी दीक्षा खाँडे की धार है।"

मोहिनीजी ने कहा—

"महाराज जी ! संसार में जितने कष्ट सहन करने पड़ते हैं उनके आगे दीक्षा में क्या कष्ट है। अब तो मैंने निश्चित ही कर लिया है।"

माताजी ने वहाँ से अतिविश्वस्त एक श्रावक जीवनलाल को टिकैतनगर भेज दिया कि

आकर घर वालों को समाचार पहुँचा दो। घर से तीनो पुत्र, पुत्र वधुयें, ब्याही हुई चारों पुत्रियाँ, चारों जमाई और माधुरी, त्रिशला और मोहिनीजी के भाई भगवानदासजी ये सभी लोग अजमेर आ गये।

सभी लोग मोहिनीजी को चिपट गये और रोने लग गये। सभी ने इनकी दीक्षा रोकने के लिए बहुत ही प्रयत्न किये। आचार्यश्री से मना किया और मोह मे आकर उपद्रव भी करने लगे। आश्चर्य इस बात का हुआ। रवीन्द्रजी भी उसी में शामिल हो गये चूँकि अभी उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत नही लिया था न सदा संघ मे रहने का ही उनका निर्णय हुआ था। इन सब प्रसंगो मे मोहिनीजी पूर्ण निर्मोहिनी बन गई और अपने निर्णय से टस से मस न हुई। अततोगत्वा उनकी दीक्षा का कार्यक्रम बहुत ही उल्लासपूर्ण वातावरण में चला। साथ में कु० विमला, तथा ब्र० फूलाबाई की भी दीक्षा हुई थी। मगसिर वदी तीज का (दि० ५-११-१९७१ का) यह उत्तम अवसर अजमेर समाज मे ऐतिहासिक अवसर था।

दीक्षा के पूर्व माता मोहिनी ने व्रतिकों को प्रीतिभोज कराया। उसमे कुछ खास लोगों को भी आमन्त्रित किया। सरसेठ भागचन्द सोनी को भी बुलाया था। सेठ साहब से पाटे पर बैठने के लिए निवेदन किया किन्तु सेठ साहब सबकी पंक्ति मे ही बैठ गये और बोले—

"हम सभी धर्म बन्धु समान हैं सबके साथ ही बैठेंगे।"

उनकी इस सरलता और निरभिमानता को देखकर सभी को बहुत हर्ष हुआ। ये सेठ साहब प्रतिदिन मध्याह्न में माताजी के पास समयसार के स्वाध्याय मे बैठते थे। साथ मे सेठानीजी और उनकी पुत्रवधू भी बैठती थीं। दीक्षा के प्रसंग मे भी सेठ जी हर कार्य में सहयोगी बने हुए थे।

प्रथम केशलोंच

दीक्षा के दिन मोहिनीजी के सिर के बाल बहुत ही छोटे-छोटे थे, लगभग एक महीना ही हुआ था जब उन्होंने केश काटे थे। अतः इतने छोटे केशों का लोंच करना, कराना बहुत ही कठिन था। माताजी चुटकी से इनके केश निकाल रही थी। सिर लाल-लाल हो रहा था। उनके पुत्र पुत्रियाँ ही क्या देखने वाले सभी लोग ऐसा लोंच देख-देखकर अश्रु गिरा रहे थे। और मोहिनीजी के साहस तथा वैराग्य की प्रशंसा कर रहे थे।

दीक्षा के अवसर पर अनेक साधुओं ने यह निर्णय किया कि माता मोहिनी ने अनेक रत्नों को पैदा किया है। सचमुच मे ये साक्षात् रत्नो की खान हैं। अतः इनका नाम रत्नमती सार्थक है। इसी के अनुसार आचार्यश्री ने इनकी आर्यिका दीक्षा मे इनका नाम **रत्नमती** घोषित किया। फूलाबाई का दीक्षित नाम निर्मलमती रखा गया और कुमारी विमला का शुभमती नामकरण किया गया।

अपनी जन्मदात्री माता की आर्यिका दीक्षा के अवसर पर आर्यिका अभयमतीजी भी किशनगढ़ से अजमेर आ गई थी। आ० ज्ञानमतीजी को तो ऐसे ही दीक्षा दिलाने मे बहुत ही खुशी होती थी पुनः इस समय खुशी का क्या कहना! इस समय तो उनकी जन्मदात्री माँ एव घर से निकलने मे भी सहयोग देने वाली सच्ची माँ दीक्षा ले रही थी। इस प्रकार से बहुत ही विशेष प्रभावना पूर्वक ये तीनों दीक्षाये आचार्यश्री धर्मसागरजी महाराज के करकमलो से सम्पन्न हुई हैं।

अजमेर में एक राज० मोइनिया स्लामिया उ० मा० विद्यालय, स्टेशन रोड के भव्य प्रांगण में यह दीक्षा कार्यक्रम रक्खा गया था जहाँ पर अगणित जैन जैनेतर लोगों ने भाग लिया था।

रवीन्द्रकुमार का घर वापस जाना

माँ की दीक्षा के बाद भाई कैलाशचन्दजी आदि ने सोचा—

"अब यहाँ संघ में रवीन्द्रकुमार जी को छोड़ना कथमपि उचित नही है। नही तो ये भी ब्रह्मचर्य व्रत ले लेंगे। इन्हें तो घर ले जाकर नई दूकान की योजना बनवानी चाहिये। जिसमें इनका दिमाग व्यस्त हो जाय और माँ के वियोग को भी भूल जाँय......।"

तभी तीनों भाइयों ने रवीन्द्र को समझा बुझाकर घर चलने के लिए तैयार कर लिया और माताजी के पास आज्ञा लेने आये। यद्यपि माताजी की इच्छा नहीं थी और न रवीन्द्र ही मन से जाना चाहते थे किन्तु भाइयों के आग्रह ने उन्हें लाचार कर दिया। तब माताजी को आज्ञा देनी पड़ी। इधर माधुरी, त्रिशला को भी ये लोग ले जाना चाहते थे कि वे दोनों रोने लगी बोलीं—

"कुछ दिन हमें माँ के पास रहने दो। फिर जब आवोगे तब हम चलेंगे।" इन सभी लोगों ने दो तीन दिन रहकर अपनी माँ—आर्यिका रत्नमतीजी को और सभी साधुओं को आहारदान दिया। एक दिन आर्यिका ज्ञानमतीजी इनके चौके में आ गईं उन्ही के साथ आर्यिका अभयमतीजी और आर्यिका रत्नमतीजी को भी पड़गाहन कर लिया। एक साथ तीनों माताजी को सभी भाइयों ने, बहुओं ने, सभी बेटियों ने और सभी जमाइयों ने आहार देकर अपने जीवन को धन्य माना था। अनन्तर ये लोग अपनी माँ के वियोग की आंतरिक वेदना को अन्तर में लिए हुए और आ० ज्ञानमती माताजी के त्याग भाव की, हर किसी को मोक्षमार्ग में लगाने के भाव की चर्चा करते हुए रवीन्द्र को साथ लेकर अपने घर आ गए।

घर में भाइयों की प्रेरणा से इन्होंने कुछ दिनों बाद नवीन दूकान खोलने का विचार बनाया। पुरानी दूकान के ऊपर ही एक सुन्दर दूकान बनवाना शुरू कर दी।

[२०]

माताजी ब्यावर में

इधर आचार्यश्री धर्मसागरजी ने संघ सहित अजमेर से कालू की तरफ विहार कर दिया। मार्ग मे पीसांगन मे ज्ञानमती माताजी कतिपय आर्यिकाओं के साथ ठहर गईं। आचार्य देशभूषणजी महाराज का संघ इधर अजमेर आकर दिल्ली जाने वाला था, माताजी आर्यिका दीक्षा के बाद लगभग १७ वर्षों मे अपने आद्यगुरु का दर्शन ही नहीं कर पाई थी। इसीलिए वे आचार्यश्री की आज्ञा लेकर अपने गुरुदेव के दर्शनार्थ रुक गईं। मुनि सम्भवसागरजी और वर्धमानसागरजी जो कि माताजी के पास रहकर उनके मार्ग दर्शन से ही मुनि बने थे ये दोनों भी आ० देशभूषणजी के दर्शनार्थ आचार्यश्री की आज्ञा लेकर यही पीसागन में रुक गये। आचार्य धर्मसागरजी शेष संघ सहित कालू पहुँच गये। और माताजी को ब्यावर के भक्तों ने आग्रह कर ब्यावर विहार करा लिया।

माताजी ब्यावर मे सेठ साहब चम्पालाल रामस्वरूपजी की नशिया मे ऐ० पन्नालाल सरस्वती भवन में ठहर गईं। दोनों महाराजजी मंदिर के नीचे कमरे मे ठहर गये।

रत्नमती माताजी की चर्या

अजमेर से विहार कर रत्नमती माताजी यहाँ ब्यावर तक पैदल आई थीं। इनका स्वास्थ्य ठीक था। उसके अतिरिक्त मनोबल विशेष था। दीक्षा लेते ही दोनों टाइम संघ के साथ प्राकृत प्रतिक्रमण पढ़ती थीं। अन्य आर्यिकाओं को प्रायः दीक्षा के बाद संस्कृत भक्तियाँ और प्राकृत का पाठ अनेक बार पढ़ाना पड़ता है तब कहीं वे पढ़ पाती हैं किन्तु ये स्वयं शुद्ध पढने लगी। इन्हे किसी से पढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ी। ये ही संस्कार इनकी सारी सन्तानों मे रहे हैं।

गृहस्थावस्था मे ये नित्य ही त्रिकाल सामायिक मे "काल अनन्त भ्रम्यो जग में सहिये दुख भारी !" यह हिन्दी भाषा की सामायिक करती थी। माताजी ने कहा—

"अब आप आचारसार आदि ग्रन्थों में मान्य देववंदना विधि की सामायिक करिये। ये ही प्रामाणिक है।"

रत्नमती माताजी ने उसी दिन से वही सामायिक करना शुरू कर दिया। इसमे श्री गौतम स्वामी रचित संस्कृत चैत्यभक्ति और श्री कुंदकुंद देव रचित प्राकृत पंचगुरु भक्ति का पाठ है। इस प्रकार दोनों टाइम प्रतिक्रमण और तीनों काल सामायिक विधिवत् करते रहने से इन्हे एक महीने के अन्दर ही ये पाठ कंठाग्र हो गये।

रत्नमती माताजी एक बार ज्ञानमती माताजी से बोलीं—

"आपको तो संस्कृत व्याकरण मालूम है। आप सामायिक की भक्तियों का अर्थ समझ लेती हैं किन्तु मुझे तो अर्थ का बोध नही हो पाता है अतः आप इसका हिन्दी पद्यानुवाद कर दें तो बहुत ही अच्छा हो।"

माताजी ने इसके पूर्व ही टोंक मे इस देववंदना विधि का हिन्दी पद्यानुवाद किया हुआ था सो उन्होंने इनको दिखाया। ये बहुत ही प्रसन्न हुईं और इसे शीघ्र ही मुद्रित कराने की प्रेरणा दी। फलस्वरूप वह पुस्तक "सामायिक" नाम से प्रकाशित हो गई। रत्नमती माताजी उस पुस्तक से हिन्दी "सामायिक" पढ़कर चैत्यभक्ति आदि का अर्थ समझकर गद्‌गद हो जाती थी।

ब्यावर में प्रातः प्रतिदिन माताजी का उपदेश होता था। और मध्याह्न मे छहढाला की कक्षा चलती थी और अनन्तर उपदेश होता था। ब्यावर के सभी पुरुष अधिक संख्या में भाग लेते थे। साथ ही सेठ हीरालाल जी स्वयं ही उपदेश और कक्षाओ मे उपस्थित रहते थे। रत्नमती माताजी भी दोनों समय उपदेश में बैठती थी। आ० ज्ञानमती माताजी तो दिन भर प्रायः राजवार्तिक, अष्टसहस्री आदि ग्रन्थों के अध्यापन में व्यस्त रहती थीं। उस समय जैनेन्द्र प्रक्रिया का अध्ययन भी करा रही थी। जिसे मुनि वर्धमानसागर, आ० आदिमतीजी, मोतीचन्द, कु० मालती, कु० माधुरी, त्रिशला, कला आदि पढ़ते थे। इन सबका अध्ययन देखकर रत्नमती माताजी बहुत ही प्रसन्न होती थीं। यहाँ संघ नशिया मे ठहरा हुआ था और चौके शहर में होते थे। सेठ हीरालालजी रानीवाला, पं० पन्नालालजी सोनी, रांवका, सोहनलालजी अग्रवाल आदि भक्तों की भक्ति से आ० रत्नमतीजी भी प्रतिदिन आहार को इतनी दूर जाया करती थी। उनकी चर्या पूर्णतया व्यवस्थित रहती थी।

जम्बूद्वीप रचना मॉडल

अजमेर मे कई बार माताजी ने सेठ साहब भागचन्दजी सोनी से जम्बूद्वीप रचना के बारे

में परामर्श किया था। सेठ साहब की विशेष प्रेरणा थी कि एक कमरे में इस जम्बूद्वीप का मॉडल बनवाना चाहिये। ब्यावर के प्रमुख भक्तगण जिसमे सेठ हीरालाल रानीवाला, धर्मचन्द मोदी आदि ने भी माताजी से आग्रह करके पंचायती नशिया के मन्दिर जी के एक कमरे में यह मॉडल बनवाना चाहा। माताजी की आज्ञा से मैंने कारीगरों को हर एक चीजों का माप बताया और बैठकर बहुत ही श्रम के साथ सीमेण्ट से जम्बूद्वीप का भव्य मॉडल तैयार करवाना शुरू कर दिया। इस कार्य में आ० रत्नमती माताजी को बहुत ही प्रसन्नता हुई।

अष्टसहस्री प्रकाशन

सेठ हीरालालजी रानीवाला की विशेष प्रेरणा और आर्थिक सहयोग से मैंने अष्टसहस्री प्रकाशन का कार्य भी अजमेर में शुरू कर दिया। इसे दिल्ली आने पर दिल्ली में मँगाकर यहीं प्रेस में प्रथम खण्ड छपवाया है।

आचार्य संघ का दर्शन नहीं हुआ

इधर आ० देशभूषणजी महाराज अजमेर नही आये। वहाँ उनके दर्शन का लाभ माताजी को नहीं मिल सका।

प्रत्युत् कुछ ही दिनों में एक दूसरा आकस्मिक समाचार मिला कि—

"आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज का महसाना में समाधिमरणपूर्वक स्वर्गवास हो गया है।"

इस घटना से माताजी को कुछ विक्षिप्तता हुई चूँकि इनसे ही माताजी ने अष्टसहस्री के कुछ अंश और राजवार्तिक का अध्ययन किया था। आचार्यश्री का माताजी को अप्रतिम वात्सल्य मिला था। माताजी ने गुरुवर्य की श्रद्धांजलि सभा कराई। उनके मन मे कई दिन शरीर की नश्वरता का चिंतन चलता रहा। धीरे-धीरे ग्रीष्म ऋतु आ गई।

सोलापुर-बम्बई की परीक्षा देने वाली संघस्थ छात्रायें कु० माधुरी, त्रिशला, कला आदि अपने शास्त्रीय विषयों की तैयारी कर रही थी।

इधर माताजी को रवीन्द्र के लिए चिंता हो रही थी कि—

"यदि रवीन्द्र अधिक दिन घर रहेंगे तो गृहस्थाश्रम में फँस जायेंगे।"

इसीलिए माताजी ने मालती से कई एक पत्र लिखाये थे कि रवीन्द्र कुमार अब संघ में आ जाये। माताजी याद कर रही हैं।"

रवीन्द्र का पत्र

तभी घर से रवीन्द्र कुमार जी का एक पत्र आया कि—

"मैंने दूकान के ऊपर एक नया कमरा बनवाकर उसमें उपहार साड़ी केन्द्र नाम से एक नई दूकान खोलने का निर्णय किया है। तदनुरूप दि० १२ अप्रेल १९७२ को उसके उद्घाटन का मुहूर्त है। इस अवसर पर यदि भाई मोतीचन्दजी यहाँ आ जाँये तो भले ही मैं उनके संघ में आ सकता हूँ। अन्यथा मेरा आना कठिन है……।"

मुझे उस समय ज्वर आ रहा था। मैं चादर ओढ़कर सोया हुआ था। कुछ ही देर बाद में

माताजी मंदिर आई वहीं बरामदे में मेरा कमरा था। माताजी ने वह पत्र मुझे दे दिया। पढ़ते ही मेरा बुखार भाग गया मैं उठकर बैठ गया और पसीना पोंछने लगा। मैंने कहा—

"माताजी ! मैं टिकैतनगर जाऊँगा।"

माताजी बोली—

"अभी तो तुम्हे चार डिग्री बुखार था। तुम कैसे जा सकोगे।

मैंने कहा—

"नहीं, अब देख लो मुझे बुखार नहीं है। मेरे मन में इतनी प्रसन्नता हुई कि जैसे मानों अपने घर ही जाना है।"

मैं अगले दिन रवाना हुआ, टिकैतनगर पहुँचा। मुहूर्त पर नई दूकान का उद्घाटन हुआ। बाद में मैंने रवीन्द्र कुमार को साथ ले चलने का प्रोग्राम बनाया। इसी प्रसंग में भाई कैलाशचंद और प्रकाशचंद आदि ऐसे चिपट गये बोले—

"रवीन्द्र को हम लोग किसी हालत में भी नहीं भेजेंगे।"

कुल मिलाकर बड़े ही श्रम से रवीन्द्र का प्रोग्राम ब्यावर के लिए बन पाया। मै खुश हुआ साथ मे रवीन्द्र को लेकर ब्यावर आ गया। माताजी को भी हार्दिक प्रसन्नता हुई। यहाँ रवीन्द्र कुमार जी कई एक दिन रहे। प्रतिदिन माताजी को यही प्रेरणा चलती रही कि—

"अब तुम आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेकर ही घर जाना अन्यथा एक दिन विवाह के बन्धन में बँध जावोगे। देखो, यह मनुष्य पर्याय आत्म हित के लिए मिली है। इसे नश्वर भोगों में लगाकर व्यर्थ मत करो। जिस शरीर से आत्म निधि प्रगट की जा सकती है उससे इस चंचल लक्ष्मी के कमाने का कार्य क्या मायने रखता था।........।"

इत्यादि प्रकार से बहुत सी शिक्षास्पद बातें कहा करती थी। आखिरकार माताजी की शिक्षाओं का रवीन्द्र कुमार के ऊपर भी प्रभाव पड़ ही गया। रवीन्द्र ने ब्रह्मचर्य व्रत लेने की इच्छा जाहिर की। तत्क्षण ही माताजी ने मेरे से कहा—

"तुम शीघ्र ही इन्हें साथ लेकर नागौर चले जाओ। वहाँ आचार्यश्री धर्मसागर जी से इन्हें व्रत दिलाकर ले आवो।"

हम दोनों नागौर पहुँच गये। रवीन्द्र ने श्रीफल चढ़ाकर आचार्य श्री से आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण कर लिया। संघ के सभी साधुओं को भी बहुत ही प्रसन्नता हुई। नागौर की जैन समाज ने भी रवीन्द्र कुमार का अच्छा सम्मान किया। हम दोनों खुशी-खुशी ब्यावर आ गये। यहाँ पर भी मैंने समाज को सारी बातें बताई। मैने इनके परिचय का छोटा सा फोल्डर तैयार किया, छपवा लिया और समाज ने सभा का आयोजन कर इन्हे फूलमालों से सम्मानित किया। रत्नमती माताजी ने भी शुभाशीर्वाद दिया कि—

"तुम अपने जीवन मे धर्मरूपी धन का खूब संग्रह करो तथा त्याग में आगे बढ़ते हुए एक दिन अपने लक्ष्य को प्राप्त करो।"

माताजी ने भी यही आशीर्वाद दिया कि—

"इस नश्वर शरीर से ही अविनश्वर सुख प्राप्त किया जा सकता है। अब तुमने वनिता बेडी को तो काट दिया है इसलिए घर कारागृह में मत फँसना। अभी तुम्हारी विद्या अध्ययन की उम्र है अतः इसका मूल्यांकन कर घर-दूकान का मोह छोडकर जल्दी ही संघ में आ जावो।"

रवीन्द्र ने माताजी के शुभाशीर्वाद को, शिक्षाओं को ग्रहण किया। कुछ दिन वहाँ और ठहरे। इसी मध्य सोलापुर की परीक्षायें शुरू हो गईं। संघस्थ बालिकाओं ने प्रश्न पत्र किये। अनन्तर रवीन्द्र कुमार सभी माताजी का और दोनों महाराजों का आशीर्वाद लेकर वापस घर आ गये।

नई दुकान, नया उत्साह

चूँकि इन्होंने स्वयं नई दूकान खोली थी, नया उत्साह था। नये जीवन के साथ नई कमाई का, स्वयं की कमाई का पैसा साथ में होना उन्हें आवश्यक महसूस हो रहा था।

माताजी भी अब निश्चिंत थी सोचती थीं—

"अब यह कितने दिन घर रहेंगे। कितने दिन दूकान करेंगे। जब ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया है तो मोक्ष मार्ग मे तो लग ही गये हैं। एक-न-एक दिन संघ में रहकर आत्म साधना को ही अपना लक्ष्य बनायेंगे।"

दिल्ली विहार

इसी मध्य फलटन के माणिकचंद गांधी आये हुए थे उन्होंने वहाँ जम्बूद्वीप मॉडल बनते हुए देखा बहुत प्रसन्न हुए और बार-बार माताजी से प्रार्थना करने लगे—

"इस निर्वाणोत्सव प्रसंग में यह रचना अभूतपूर्व रहेगी। अखिल भारतीय स्तर पर इसका प्रचार होना चाहिए। आप दिल्ली पधारें तो अच्छा रहेगा।"

सरसेठ भागचंद की भी यही प्रेरणा थी। सेठ हीरालालजी, रानीवाला से परामर्श करने में उन्होंने भी इसी बात को पुष्ट किया। दिल्ली के परसादीलाल जी पाटनी का भी विशेष आग्रह रहा। साथ ही महासभा के अध्यक्ष और परमगुरु भक्त चाँदमलजी (गोहाटी) का विशेष आग्रह था कि—

"माताजी ! आप दिल्ली पधारें। निर्वाण महामहोत्सव को सफल करने की बहुत बड़ी जिम्मेदारी आप जैसे साधु-साध्वियों पर है। यह कार्य भी आपकी पवित्र प्रेरणा से दिल्ली जैसी महानगरी में ही होना चाहिए। दिल्ली भारत की राजधानी होने के साथ ही जैन समाज का भी एक केन्द्र स्थान है।"

घर से प्रकाशचंदजी आये थे। उन्होने भी माताजी को दिल्ली विहार के लिए प्रेरणा दी। तब माताजी ने रत्नमतीजी से परामर्श कर उनकी अनुमति ली। दोनों मुनि और संघ की आर्यिकाओं से बातचीत करके मुझे नागौर आचार्यश्री की आज्ञा लेने भेज दिया। आचार्यश्री की आज्ञा प्राप्तकर माताजी ने ब्यावर से विहार कर दिया। नसीराबाद मे आ० कल्प श्रुतसागरजी महाराज के संघ के दर्शन किये। दो-तीन दिन रहकर यहाँ से अजमेर आकर यहाँ से संघ का विहार दिल्ली की तरफ हो गया। और आषाढ़ सुदी ११ को दिल्ली पहाड़ी धीरज पर संघ आ गया। साथ में मुनि संभवसागरजी और वर्धमानसागरजी भी थे और तीन आर्यिकायें थी। यहाँ कूचासेठ मे आ० देशभूषणजी महाराज का दर्शन कर माताजी को असीम आनन्द हुआ।

[२१]

दिल्ली चातुर्मास

यहाँ के प्रसिद्ध मुनि भक्त जयनारायण जी, महावीर प्रसाद जी, वशेश्वरदास जी, डॉ०

कैलाशचन्द राजाटायज, कर्मचन्द जी आदि तथा महिलाओं में प्रमुख परसन्दीबाई, बोखतबाई, शरबतीबाई आदि सभी ने संघ का चातुर्मास पहाड़ी धीरज पर ही हो ऐसी प्रार्थना की। तदनुसार आषाढ़ शुक्ला १४ को वर्षायोग स्थापना हो गई। यह सन् १९७२ का चातुर्मास बहुत ही महत्त्व-पूर्ण रहा है।

इधर मालती, माधुरी और त्रिशला को उनके भाई, सुभाषचन्द जी आकर घर लिवा ले गये। संघ में दो मुनि चार आर्यिकायें थी। ब्रह्मचारिणी छुहाराबाई, कु० सुशीला, शीला और कला थीं और मैं (मोतीचन्द) था। प्रतिदिन प्रातः माताजी का और महाराज जी का प्रवचन होता था। यहाँ पर ७-८ चौके लगते थे। सभी व्यवस्था बहुत सुन्दर थी। यहीं पर एक क्षुल्लिका ज्ञानमती रहती थीं। वे भी संघ की वैयावृत्ति में बहुत ही रूचि लेती थी।

अस्वस्थता, गुरु का आशीर्वाद

सावन में गर्मी अधिक पड़ जाने से और रास्ते का अधिक पदविहार का श्रम होने से पूज्य ज्ञानमती माताजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया। संग्रहणी का प्रकोप बढ़ गया। तब माताजी का डिप्टी-गंज तक चौकों में जाना कठिन हो गया। आहार बिल्कुल कम हो गया। इससे समाज को कुछ दिनों उपदेश का लाभ कम मिल पाया। इसी प्रसंग पर एक दिन आचार्यश्री देशभूषण जी महाराज स्वयं माताजी को आशीर्वाद देने के लिए वहाँ आ गये और उपदेश में बोले—

"ये ज्ञानमती आर्यिका मेरी ही शिष्या हैं, इन्होंने घर छोड़ते समय जो पुरुषार्थ किया है वह आज पुरुषों के लिए भी असम्भव है। इनका स्वास्थ्य अस्वस्थ सुनकर मै इन्हे शुभाशीर्वाद देने आया हूँ। अभी इन्होंने जो अष्टसहस्री ग्रन्थ का अनुवाद किया है वह एक अभूतपूर्व कार्य किया है। ये जल्दी ही स्वास्थ्य लाभ करें, इनसे समाज को बहुत कुछ मिलने वाला है। इतनी सुयोग्य अपनी शिष्या को देखकर मेरा हृदय गद्‌गद हो जाता है।"

इत्यादि प्रकार से आचार्यश्री के वचनामृत को सुनकर जनता भाव विभोर हो गई। माताजी के प्रति श्रद्धा का स्रोत उमड़ पड़ा। महाराज जी ने रत्नमती माताजी को बहुत-बहुत आशीर्वाद देते हुए कहा कि—

"आपने अपने जीवन में इस सर्वोत्कृष्ट आर्यिका पद को ग्रहण कर एक महान् आदर्श उप-स्थित किया है। इस वय में भरे-पूरे परिवार बहू-बेटों के सुख को, घर को छोड़कर कौन दीक्षा लेता है। ……विरले ही पुण्यशाली होते हैं। आपका धर्मप्रेम तो मुझे उसी समय दिख गया था कि जब मैना के घर से निकलते समय समाज के और अपने पति के इतने भयंकर विरोध के बाव-जूद भी आपने सबकी नरज बचाकर आकर मेरे से इनको दीक्षा देने के लिए स्वीकृति दे दी थी। आपको मेरा यही आशीर्वाद है कि आपकी संयम साधना निर्विघ्न होती रहे और अन्त में समाधि का लाभ हो।"

इस प्रकार गुरु का आशीर्वाद प्राप्त कर रत्नमती माताजी का हृदय गद्‌गद हो गया। उन्होंने बार-बार गुरुदेव को नमस्कार कर उनके चरण स्पर्श किये और अपने को धन्य माना।

जम्बूद्वीप योजना

यहाँ पर जम्बूद्वीप योजना की चर्चा फैल चुकी थी। डॉ० कैलाशचंद, लाला श्यामलाल जी ठेकेदार, महावीरप्रसाद जी (पमामा वाले) कर्मचंद जी आदि पुरुष और महिलाओं में परसन्दी आदि

सभी सक्रिय रुचि ले रहे थे। मैं प्रायः प्रतिदिन इसके लिए जगह की खोज में इधर-उधर लोगों से मिलता रहता था और यत्र-तत्र जगह भी देखता रहता था।

डॉ० कैलाशचंद ने एक कुशल इन्जीनियर के० सी० जैन, सुप० इंजीनियर पी० डब्लू० डी० के परामर्श से मॉडल तैयार करवा रहे थे। धीरे-धीरे माताजी को भी स्वास्थ्य लाभ हो रहा था। तब तक महापर्व पर्यूषण आ गया।

पर्यूषण पर्व

माताजी ने प्रतिदिन डेढ़-दो घण्टे तत्त्वार्थसूत्र पर अपना प्रवचन किया। जयनारायण जी तथा और भी अनेक भक्तों ने स्पष्ट शब्दों में कहा—

'इतनी उम्र में हम लोगों ने ४०-४५ विद्वानों द्वारा तत्त्वार्थसूत्र का प्रवचन सुना है किन्तु जितना रहस्य सरल शब्दों में माताजी ने सुनाया है और जितना इस नीरस को सरस तथा रोचक बना दिया है वैसा आज तक हम लोगों ने किसी से भी नहीं सुना है।"

माताजी की विद्वत्ता से वहाँ इतनी भीड़ हुई कि पता नहीं कितने लोग धर्मशाला के बाहर यत्र-तत्र दूकानों पर बैठकर सुनते थे और कितने ही जगह के अभाव में दु:खी हो वापस चले जाते थे। डॉ० कैलाशचंद ने उन सभी उपदेश के कैसेट तैयार कर लिए थे।

आर्यिका दीक्षा

पूज्य मानाजी की प्रेरणा से पहाड़ी धीरज की एक महिला मैनाबाई और शाहदरा की एक महिला मनभरी को यहीं पहाड़ी धीरज पर आचार्यश्री देशभूषण जी महाराज के करकमलों से आर्यिका और क्षुल्लिका दीक्षा दिलाई थी। ये दोनों माताजी के अनुशासन में ही रहती थीं।

रत्नमती माताजी का उत्साह

आ० रत्नमती माताजी वृद्धा होकर भी डिप्टीगंज तक चौकों में आहार के लिए जाती रहती थीं और चार-छह दिनो बाद शहर में यहाँ से दो मील दूर आचार्यश्री के दर्शन करने जाया करती थी।

इधर निर्वाणोत्सव के प्रसंग में जो भी कार्यक्रम आयोजित किये जाते उनमें भी भाग लेती रहती थी और माताजी का उपदेश सुनकर तो बहुत ही हर्षित होती थी।

मध्याह्न मे मुनि सम्भवसागर जी, आर्यिका आदिमती जी, श्रेष्ठमती जी आदि के साथ बैठकर चौबीस ठाणा, सिद्धान्त प्रवेशिका आदि की चर्चायें किया करती थीं। इन्हें चर्चा मे बड़ा आनन्द आता था तथा करोलबाग, माडलबस्ती आदि के मन्दिरों के दर्शन करने भी बहुत बार जाती रहती थीं।

संस्थान की स्थापना

माताजी की प्रेरणा और कार्यकर्ताओं के सक्रिय सहयोग से यहीं पर दिगम्बर जैन इन्स्टीट्यूट आफ कास्मोग्राफिक रिसर्च त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना हुई। साथ ही श्री वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला की भी स्थापना हुई। जिसका प्रथम पुष्प अष्टसहस्री ग्रन्थ यहीं छप रहा था। संस्थान की स्थापना के समय माताजी की प्रेरणा से मैंने स्वयं पहले २५०००) की रकम लिखी थी पुनः ला० श्यामलाल जी आदि सक्रिय होकर लिखाते गये थे।

प्रभावना

इस चातुर्मास के मध्य अनेक विधान सम्पन्न हुए। पुनः आष्टाह्निक पर्व में बहुत ही प्रभावना के साथ सिद्धचक्र मण्डल विधान सम्पन्न हुआ। इन विधि विधानों को भी माताजी की आज्ञा से मैं रुचि से कराता था।

चातुर्मास के मध्य ही माताजी को सब्जी मण्डी कैलाशनगर वैदवाड़ा आदि के भक्तगण भी एक-दो बार अपने मन्दिरों मे ले गये थे और वहाँ उपदेश, केशलोंच आदि कराये थे। जिससे माताजी के गुणों की सुरभि दिल्ली में सर्वत्र फैल रही थी। रत्नमती माताजी की शात तथा गम्भीर मुद्रा से भी भक्तगण बहुत प्रभावित होते थे।

गुरुदर्शन

माताजी स्वस्थ होते ही प्रायः दो-चार दिन सभी साध्वियों को साथ लेकर कूचा सेठ में आचार्यश्री के दर्शन करने जाती रहती थी। समय-समय पर इस जम्बूद्वीप रचना हेतु आचार्यश्री से मार्गदर्शन लिया करती थी। इस सन्दर्भ में आचार्यश्री ने कई बार कहा कि—

"यह दिल्ली है, ज्ञानमतीजी तुम्हें अनुभव नही है। मै यहाँ ७-८ चातुर्मास कर चुका हूँ। यहाँ किसी पुण्य कार्य को सम्पन्न कराना बहुत ही दुर्लभ है। स्थानाभाव खास कारण बन जाता है। मै यहाँ निर्वाणोत्सव के अवसर पर एक विशालकाय मूर्ति की स्थापना अथवा विशालकाय कीर्तिस्तम्भ बनवाना चाहता हूँ। मीटिंगें होती हैं किंतु कार्य हो नही पा रहा है।"

शेष में सचमुच ही आचार्य महाराज यहाँ किसी विशेष निर्माण योजना को सजीव नही करा सके।

प्रत्येक अवसरों पर आ० रत्नमती माताजी भी सदा साथ मे दो मील पैदल चली आती और वापस चली जाती थी। कभी थकावट महसूस नही करती थी। चातुर्मास के बाद घर से रवीन्द्र कुमार, मालती और त्रिशला यहाँ संघ मे आ गये थे और अपने अध्ययन आदि मे सलग्न हो गये थे।

कैलाशनगर में प्रभावना

कैलाशनगर के भक्तों के आग्रह से चातुर्मास के बाद संघ वहाँ पहुँचा। प्रतिदिन माताजी का उपदेश होता था और दोनों महाराजजी भी उपदेश किया करते थे। संघ की चर्या, अध्ययन, अध्यापन और उपदेश के निमित्त से बहुत ही प्रभावना हुई।

अनन्तर माताजी दरियागंज, कूचासेठ, आर० के० पुरम, ग्रीन पार्क, भोगल आदि अनेकों स्थानों पर विहार करती रही। सर्वत्र प्रभावना हुई और माताजी के उपदेश के लिए भक्त लोग लालायित रहे। दिल्ली में सर्वत्र माताजी का विहार कराने में डॉ० कैलाशचंद बहुत आगे रहे हैं।

द्वितीय चातुर्मास दिल्ली में

सन् १९७३ में दोनों मुनिराज और माताजी के संघ का चातुर्मास दिल्ली के अन्तर्गत एक नजफगढ़ स्थान मे हुआ। यहाँ एक जिनमन्दिर है। और श्रावक भक्तिमान है। यहाँ के भक्तों में त्रिलोक शोध संस्थान के कार्यकताओं से मिलकर जम्बूद्वीप रचना का निर्माण यहाँ कराना चाहा।

माताजी ने वहाँ पर इस रचना को शुरू करा दिया। चातुर्मास में उपदेश विधान, स्वाध्याय और तत्त्व चर्चा से अच्छी प्रभावना रही। यहाँ के ला० उल्फतराय (सेल्स टेक्स आफीसर रिटायर्ड) ओमप्रकाश निरञ्जनलाल, मुरारीलाल, सागरचंद, दरबारीलाल, शीतलप्रसाद आदि श्रावकों ने संघ की बहुत ही भक्ति की थी।

यहाँ पर रत्नमती माताजी मध्याह्न मे सम्भवसागर जी आदि के पास बैठकर खूब धर्म चर्चा चौबीसठाणा चर्चा किया करती थी।

मुनिश्री विद्यानन्द जी के दर्शन

निर्वाण महामहोत्सव की सफलता दि० जैन साधुओं के अधिक रूप में दिल्ली आने से ही हो सकती थी। श्वेताम्बर में तीनों सम्प्रदाय के साधुवर्ग प्रायः दिल्ली आ रहे थे और सक्रिय भी थे। दिगम्बर सम्प्रदाय के मात्र आ० देशभूषणजी महाराज अपने संघ सहित विराजमान थे। मुनि श्री विद्यानन्दजी भी दिल्ली आ चुके थे। माताजी ने भी उनका दर्शन करना चाहा अतः संघ नजफगढ़ से विहार कर दिल्ली शहर में आ गया। माताजी ने मुनिश्री के दर्शन किये। कई बार उनके पास में इस निर्वाणोत्सव को प्रभावना से मनाने की रूपरेखाओं पर विचार विमर्श चलता रहा। माताजी की जम्बूद्वीप रचना की स्कीम भी महाराज ने सुनी। उन्होंने त्रिलोक शोध संस्थान नाम सुना तब (त्रिलोक) शब्द से प्रभावित होकर एक तीन लोक का ही प्रतीक निर्धारित किया जिसे जैन में चारों सम्प्रदायों ने एक स्वर से मान्य कर लिया वह 'तीन लोक प्रतीक' आज भी सर्वत्र जंन समाज में प्रचलित है।

गांधीनगर में प्रभावना

गांधीनगर के श्रावकों के अतीव आग्रह से माताजी ने उधर विहार कर दिया। वहाँ भी भक्तों की भक्ति देखते ही बनती थी। आहार के समय १०-१२ चौके रहते थे। मुनि, आर्यिकायें, जब वृत्तपरिसंख्यान लेकर उस दूरदूर तक चर्या के लिए घूमते थे तो बड़ा आनन्द आता था और बहुत से जैन जैनेतरों की भीड़ एकत्रित हो जाती थी। यहाँ भी माताजी के उपदेश का बहुत ही प्रभाव रहा है। यहाँ पर श्री पंडित प्रकाशचंद जी हितैषी भी माताजी के स्वाध्याय में आकर बैठ जाते थे और ऊँची-ऊँची कर्म प्रकृतियों को, समयसार की चर्चा किया करते थे। पं० लालबहादुरजी शास्त्री माताजी के अति निकट में रहते थे। उनके घर में भी चौका लगता था। उनकी पत्नी भी धर्मकार्यों में सतत आगे रहती हैं।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा

दिल्ली में शक्तिनगर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का विशाल आयोजन था। आ० श्री देशभूषण जी महाराज संघ सहित वहाँ विराजे थे। वहाँ के सेठ सुन्दरलाल जी (बीड़ी वाले) आदि कई महानुभावों ने माताजी से भी वहाँ पधारने का आग्रह किया। माताजी भी वहाँ पहुँच गईं। वहाँ पर पंडाल बहुत दूर था फिर भी प्रत्येक कल्याणकों में आ० रत्नमती माताजी पहुँच जाती थीं। प्रतिष्ठा के बाद पुनः माताजी गाँधीनगर आ गई थीं। इसी अवसर पर टिकैतनगर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा होने वाली थी अतः भाई कैलाशचद जी आदि के विशेष आग्रह से मैं और संघ की बाइयां सुशीला, शीला, कला आदि टिकैतनगर पहुँच गये थे। वहाँ बहुत ही प्रभावना पूर्वक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी।

आचार्यश्री दिल्ली की ओर

इस निर्वाणोत्सव में दिगम्बर जैनाचार्यों में आचार्य धर्मसागरजी महाराज का भी नाम गौरव से अंकित था। अतः अनेक भक्तों के आग्रह से आ० महाराज संघ सहित दिल्ली को आ रहे थे। संघ अलवर मे ठहरा था। तब माताजी ने गांधीनगर के श्रावकों को और खासकर पं० लालबहादुर जी शास्त्री को विशेष रूप से प्रेरित करके संघ के पास दिल्ली आने की प्रार्थना करने के लिए भेजा था। आचार्य संघ को दिल्ली लाने मे पं० लालबहादुर जी बहुत ही रुचि ले रहे थे।

[२२]

हस्तिनापुर दर्शन

सन् १९७४ में फाल्गुन मास में माताजी ने हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र की यात्रा के लिए विहार कर दिया। साथ मे दोनों मुनिराजों ने भी विहार कर दिया। उस समय आ० रत्नमती माताजी पद-विहार करते हुए यहाँ सकुशल आ गईं। तीर्थ क्षेत्र के दर्शन करके सभी का मन पुलकित हुआ। यहाँ के शांत वातावरण से सभी साधु प्रसन्न थे। रत्नमती माताजी ने भी चारों नशिया तक कई वंदनायें की। आष्टाह्निक पर्व मे संघ यहीं ठहरा। इधर मेरठ और मवाना के भक्तों ने संघ की पूरी वैयावृत्ति की और आहारदान का लाभ लेते रहे। यहाँ मुनि श्री सम्भवसागर जी ने आष्टाह्निक पर्व में आठ उपवास किये थे। यहाँ क्षेत्र पर रायसाहब लाला उल्फत राय जी दिल्ली जो कि क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष थे और सुकुमारचन्द्र जी मेरठ जो कि क्षेत्र के महामंत्री थे, ये कार्यकर्तागण उपस्थित थे।

नजफगढ़ में स्थान और समाज के कतिपय लोगों का वातावरण बढिया न होने से माताजी जम्बूद्वीप रचना के लिए शांतिप्रद स्थान चाहती थी। सो यह स्थान माताजी को बहुत ही जँच गया। क्षेत्र के कार्यकर्ताओं ने भी बड़े ही उत्साह से आगे होकर माताजी से प्रार्थना की कि—

"आप यह जम्बूद्वीप रचना यहीं हस्तिनापुर में कराइये। हम लोग सब तरह से आपकी आज्ञा का पालन करेंगे।"

यहाँ पर आष्टाह्निक पर्व मे अन्त मे प्रतिपदा के दिन मेला भी भरता था। जिसमें पाडुक शिला पर भगवान् के न्हवन के समय बाबू सुकुमारचंद की प्रेरणा से मैंने जम्बूद्वीप का चित्र जो कि कपड़े पर बना हुआ है सो लोगों को दिखाया। समाज के सभी प्रतिष्ठित लोग गद्गद हो उठे और एक स्वर से बोले—

"यह रचना यहीं बननी चाहिए।"

इधर मेरठ और मवाना के श्रावकों की भक्ति को देखकर माताजी का मन बहुत ही प्रसन्न हुआ।

आचार्यश्री के दर्शन के लिए उतावली

इधर माताजी को यह समाचार मिला कि—

"आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज ससंघ दिल्ली पहुँच रहे है।"

माताजी ने हस्तिनापुर से मेरठ होते हुए शीघ्र ही विहार कर दिया। उस समय संघ दोनों

टाइम चलने लगा। तब रत्नमती माताजी को किसी-किसी दिन मध्याह्न की चलाई में कष्ट का अनुभव होने लगा। यद्यपि दोनों टाइम की १०-११ मील की चलाई उनकी शक्ति के बाहर थी फिर भी बड़ी माताजी ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया चूँकि उन्हें यही धुन लग गई कि—

"आचार्यश्री के प्रवेश के अवसर पर हम लोग पहुँच जाँय।"

इसी बात को लक्ष्य मे रखकर रास्ते में पूज्य रत्नमती माताजी भी गुरु भक्ति में अपने शारीरिक कष्टों को न गिनते हुए उठते-बैठते चलती रही। एक दिन मोदीनगर के रास्ते में मैं स्वयं उनके साथ था। मोदीनगर मन्दिर के दो मील पहले ही वे काफी थक चुकी थीं। वहीं बैठ गईं किन्तु माताजी ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—

"उठो, चलो अब मन्दिर आने वाला ही होगा, वहीं विश्राम कर लेना।"

जैसे-तैसे वे मन्दिर तक पहुँच गईं। इसी तरह उन्होंने एक बार भी यह नहीं कहा कि—

"चलाई कम कर दो, दो दिन बाद पहुँच लेंगे, इतनी जल्दी क्या है।....."

प्रत्युत् चलती ही रहीं।

तब मैंने सोचा—

"इनके हृदय में भी गुरुभक्ति उमड़ रही है इसीलिए ये अपने कष्टों को कष्ट न गिनकर समय पर पहुँचना चाहती हैं।"

अन्त में माताजी संघ सहित आचार्यश्री के प्रवेश के समय पहुँच गईं। दो वर्ष बाद गुरुदेव का दर्शन करके और संघ के सभी साधुओं से मिलने पर इन साधु साध्वियो को ऐसा लगा कि—

"मानों हम लोग अपने माता-पिता और भाई बहनों से ही मिल गये हैं।"

आ० रत्नमती माताजी तो इतनी प्रसन्न थी कि मानों उन्हें कोई निधि ही मिल गई है। चूँकि उन्हें दीक्षा देकर गुरु के सांनिध्य मे कुछ ही दिनो तक रहने का लाभ मिल पाया था। संघ यहाँ दिल्ली में लालमन्दिर में ठहरा हुआ था। सभी माताजी कूचासेठ के त्यागी भवन में ठहरी हुई थीं।

रत्नमती माताजी की दैनिक चर्या

प्रतिदिन आ० रत्नमती माताजी, ज्ञानमती माताजी के साथ प्रातःकाल मन्दिर गुरुओं के दर्शन करने जाती थीं। आहार के समय यहाँ बहुत दूर-दूर तक यानी शहर से इधर वेदवाड़ा इधर दरियागंज तक चौके चल रहे थे। वहाँ तक भी रत्नमती माताजी आहार के लिए जाया करती थीं। यद्यपि आ० ज्ञानमती माताजी आहार के लिए इतने दूर जाने मे समर्थ नहीं थीं, चूँकि उनको संग्रहणी की बीमारी है।

पुनः हस्तिनापुर विहार

त्यागी भवन में दि० जैन त्रिलोक संस्थान की मीटिंग हुई और यह निर्णय हुआ कि यदि पूज्य माताजी को हस्तिनापुर क्षेत्र पर जम्बूद्वीप रचना इष्ट है तो वही पर जगह क्रय कर शुभारम्भ कराया जाय। कार्यकर्ताओं ने पूज्य माताजी से पुनः हस्तिनापुर के लिए विहार करने की प्रार्थना की। माताजी साथ में यशोमती आर्यिका को लेकर वैशाख सुदी पूर्णिमा को वहाँ से विहार कर १२-१३ दिन में हस्तिनापुर आ गईं।

आ० रत्नमती जी का दिल्ली में भ्रमण

इधर आचार्य संघ में ही आर्यिका रत्नमती माताजी संघस्थ अन्य आर्यिकाओं के साथ दिल्ली ही रहीं। कूचासेठ से आचार्यश्री धर्मसागर जी के संघ का पहाड़ी धीरज, शाहदरा आदि कई स्थानों पर विहार होता रहा। साथ में रत्नमती माताजी भी भ्रमण करती रहीं। संघस्थ आर्यिकाओं के साथ दिल्ली के अनेक मन्दिरों के दर्शन भी किये और संघ में रहते हुए आचार्यश्री के उपदेश श्रवण का लाभ प्राप्त करती रहीं। इन्हें बड़े संघ मे रहने में बड़ा आनन्द आ रहा था। दिन भर साधु साध्वियों की धर्ममय व्यस्त चर्या को देखने के लिए और इतने बड़े विशाल संघ का दर्शन करने के लिए दिल्ली के क्या, आस-पास के तथा दूर-दूर देशों के भी यात्रीगण आते रहते थे।

सुमेरुपर्वत का शिलान्यास

यहाँ हस्तिनापुर आकर मैंने माताजी के मार्गदर्शन में यहाँ पर जम्बूद्वीप रचना योग्य स्थान क्रय करने के लिए प्रयत्न कर रहा था। क्षेत्र के तथा मवाना के धर्मप्रेमी भक्तगण हमें पूरा सहयोग दे रहे थे। पुण्य योग से मन्दिर से उत्तर दिशा मे एक फर्लाङ्ग से निकट ही नशिया के रास्ते में एक खेत संस्थान के नाम खरीद लिया गया और माताजी की आज्ञा से तथा आचार्यद्वय के शुभाशीर्वाद से आषाढ़ शुक्ला तीन को (सन् ७४ में) सुमेरुपर्वत की शिलान्यास विधि मेरठ के धर्मात्मा सेठ जयकुमार मूलचंद सर्राफ ने सम्पन्न की। धर्म प्रभावना पूर्वक विधि सम्पन्न होने के अनन्तर उसी दिन माताजी ने दिल्ली की ओर विहार कर दिया। यद्यपि गर्मी भयंकर पड़ रही थी फिर भी माताजी ने आचार्यसंघ के चातुर्मास करने हेतु अतीव शीघ्रता कर दी। मार्ग मे दोनों टाइम विहार करके आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी को दिल्ली कूचासेठ पहुँच गयी।

चातुर्मास स्थापना

आचार्यश्री देशभूषण जी महाराज ने अपने संघ सहित कूचासेठ कम्मोजी की धर्मशाला मे चातुर्मास स्थापना की। तथा इसी आषाढ़शुक्ला चतुर्दशी की रात्रि के १० बजे आचार्यश्री धर्मसागर जी ने अपने चतुर्विध संघ सहित, लालमन्दिर में चातुर्मास स्थापना की थी। उस अवसर पर साहू शांतिप्रसाद जी आदि प्रमुख श्रीमान्, विद्वान् और हजारों भक्तगण उपस्थित थे। यहाँ संघ की चर्या बहुत ही सुन्दर थी। प्रातःकाल जब साधु-साध्वी मन्दिर से एक साथ आहार के लिए निकलते थे तब वह दृश्य देखते ही बनता था। लालमन्दिर के आहर चौक से लेकर कूचासेठ, चाँदनी चौक, वैदवाडा और दरियागंज की सड़कों में श्रावकों के दरवाजों पर खड़े हुए स्त्री-पुरुषों की उच्चस्वर से पड़गाहन की ध्वनि बहुत ही अच्छी लगती थी।

"हे स्वामिन् ! नमोऽस्तु ३, अत्र तिष्ठ २,……"

उसी प्रकार सायंकाल मे सभी साधु-साध्वी आचार्यश्री को घेरकर बैठ जाते थे और दैवसिक प्रतिक्रमण पाठ पढ़ते थे। उस समय का दृश्य देखने के लिए भी बहुत से स्त्री-पुरुष आ जाते थे।

सम्यग्ज्ञान पत्रिका

पूज्य माताजी ने चारों अनुयोगों से समन्वित सम्यग्ज्ञान पत्रिका तैयार की जो कि जैन समाज की अपने आप मे एक विशेष ही स्वाध्याय पत्रिका है। उस समय इस पत्रिका का विमोचन लालमंदिर में आचार्यश्री धर्मसागर जी के कर-कमलों से सम्पन्न हुआ। आज दशवर्ष हो रहे हैं यह पत्रिका लाखों भव्यों को सम्यग्ज्ञान रूपी अमृत को बाँट रही है।

कुछ दिनों बाद संघ दरियागंज बाल आश्रम में आ गया। वहाँ का खुला स्थान आचार्यश्री को बहुत जँचा अतएव आचार्यश्री ने चातुर्मास वहीं व्यतीत करना निश्चित कर लिया।

रत्नमती जी का संघ प्रेम

उस अवसर में दूसरे दिन माताजी रत्नमती माताजी आदि को साथ लेकर दरियागंज का दर्शन करके वापस कूचासेठ (त्यागी भवन) में आ जाती थीं। रत्नमती माताजी ज्ञानमती माताजी से स्वीकृति लेकर वहीं दरियागंज में ही ठहर गईं और संघ के साधु साध्वियों के साथ अपना धर्म-ध्यान करने लगीं।

मुनिश्री विद्यानन्द जी दरियागंज में

मुनिश्री विद्यानन्द जी महाराज भी दरियागंज में आ गये थे। अब यहाँ प्रायः प्रतिदिन निर्वाण महोत्सव के बारे में ही विचार-विमर्श चलता रहता था। मुनिश्री की प्रेरणा से और श्रावकों के आग्रह से पूज्य माताजी भी यहीं दरियागंज आ गईं। अब यहाँ धर्म प्रभावना का वातावरण बहुत ही सुन्दर दीख रहा था। दिन-पर-दिन भक्तों की भीड़ बढ़ती चली जा रही थी।

निर्वाणोत्सव की गतिविधियों में स्थानकवासी, तेरहपंथी और मन्दिरमार्गी ऐसे तीनों सम्प्रदाय के श्वेताम्बर साधु-साध्वियाँ भी समय-समय पर यहाँ आकर आचार्यश्री और मुनिश्री से वार्तालाप किया करते थे।

२५ सौवाँ निर्वाण महोत्सव

यह भगवान् महावीर स्वामी का पच्चीस सौवाँ निर्वाण महोत्सव अखिल भारतीय स्तर पर मनाया जाता था। वह पुण्य तिथि आ गई। रामलीला मैदान में पूर्व निर्मित मंच के अन्दर मंच के अतिरिक्त दो और विशाल मंच बनाये गये थे। जिनमें एक पर आर्यिकायें एवं एक पर आचार्यगण मुनिश्री विराजमान हुए।

भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने पधार कर गुरुओं को नमस्कार किये। मुनियों एव आचार्यों के आशीवर्चन के उपरात प्रधानमन्त्री का भाषण हुआ। अनन्तर इन्दिराजी के करकमलों से धर्मचक्र का प्रवर्तन भी कराया गया। ऐसा स्वर्णिम महोत्सव जिनने भी देखा वह पुण्यशाली था और जिन्हे देखने को नही मिला वे इस पुण्य से वंचित रह गये। उस समय वह धर्म मंच ऐसा लग रहा था मानो धर्म ही मूर्तिमान होकर यहाँ आ गया है।

दीक्षा समारोह

इस निर्वाण महोत्सव के बाद मगसिर वदी दशमी भगवान् महावीर स्वामी के तपकल्याणक दिवस आचार्य धर्मसागर जी के संघ में कई दीक्षार्थियों की दीक्षायें हुईं। उनमें ऐ० कीर्तिसागर मुनि बने, क्षु० गुणसागर, भद्रसागर मुनि बने। क्षु० मनोवती आर्यिका हुईं। ब्र० भागाबाई, कु० सुशीला और शीला की भी आर्यिका दीक्षायें हुईं, इनके नाम क्रम से आ० विपुलमती, श्रुतमती और शिवमती रक्खे गये। श्रुतमती, शिवमती आ० ज्ञानमती माताजी की शिष्यायें थीं। तथा एक ब्रह्मचारी ब्रजभान ने क्षुल्लक दीक्षा ली। उस समय ऐसी ७ दीक्षायें हुई थी।

आर्यिकारत्न पदवी

इसी अवसर पर आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज ने अपने प्रभावशाली शिष्य विद्या-

नन्द मुनिराज को उपाध्याय पद से विभूषित कर दिया। तथा अपनी प्रभावशालिनी शिष्या ज्ञानमती माताजी को नूतन पिच्छिका और शास्त्र देकर आर्यिकारत्न और प्रभाकर की पदवी से अलंकृत किया। पुनः माताजी को बहुत आशीर्वाद देकर आचार्यश्री ने उसी दिन दक्षिण की ओर विहार कर दिया।

इसके अनन्तर कुछ दिन और दिल्ली रहकर आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज ने अपने विशालसंघ सहित हस्तिनापुर क्षेत्र की ओर विहार कर दिया। उस समय पूज्य आ० ज्ञानमती माताजी ने भी साथ ही विहार किया था।

इस प्रकार यह सन् १९७४ का दिल्ली का चातुर्मास स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेग।। इस समय यहाँ पर २३ मुनि थे। आर्यिका, क्षुल्लक, ऐलक मिलकर चौंसठ साधु थे। दिल्ली मे इतने अधिक साधु समूह के एक साथ एकत्रित होने का इस शताब्दी में यह विशेष अवसर था।

जम्बूद्वीप स्थल पर मंदिर का निर्माण

आचार्य संघ शीतकाल में मेरठ के भक्तगणों के आग्रह से कुछ दिन के लिए यहीं ठहर गया। पूज्य ज्ञानमती माताजी आचार्यश्री की आज्ञा लेकर हस्तिनापुर आ गईं। इन्हीं के साथ आ० रत्नमती माताजी और आ० शिवमती जी भी आ गयी। यहाँ पर माघ सुदी में पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा होनी थी। जम्बूद्वीप स्थल पर मन्दिर मे भव्यजनों के दर्शनार्थ अथवा जम्बूद्वीप रचना कार्य की निर्विघ्न सिद्धि के लिए भगवान् महावीर स्वामी की ७ हाथ ऊँची जिनप्रतिमा यहाँ पर आ चुकी थी। माताजी की प्रेरणा और आचार्यश्री के आशीर्वाद से फरवरी १९७५ में लाला शामलाल जी ठेकेदार (दिल्ली) ने मन्दिर का शिलान्यास किया। प्रतिष्ठा का समय निकट आ गया। मुझे मिस्त्री मजदूर नहीं मिल पा रहे थे।

उस समय माताजी का शुभाशीर्वाद लेकर मैं माघ मास की रात्रियों मे भयंकर ठण्डी में रजाई ओढ़कर आकर यहाँ खुले खेतों में बैठ जाता था और रात्रि मे मिस्त्री मजदूरों से काम कराता था। मात्र १०-१२ दिनों में ही यह वीरप्रभु का छोटा सा मंदिर (गर्भागार) बनकर तैयार हो गया।

माताजी से परामर्श करके बाबू सुकुमारचंद जी ने सोलापुर के पं० वर्द्धमान शास्त्री को प्रतिष्ठाचार्य नियुक्त किया। प्रतिष्ठा की तैयारियाँ जोरों से हो रही थी।

उधर आचार्यश्री का संघ मेरठ से सरधना पहुँच चुका था।

यन्त्र स्थापना

यहाँ बाहुबली मन्दिर में जब विशालकाय प्रतिमा को खड़ी कर रहे थे उस समय बाबू सुकुमारचंद की प्रार्थना से माताजी ने अपने कर-कमलों से उस वेदी में मूर्ति के स्थिर होते समय अचल यन्त्र की स्थापना की थी। ऐसे ही जल मन्दिर के महावीर स्वामी की मूर्ति के नीचे भी माताजी ने ही यन्त्र स्थापित किया था।

वसन्तपंचमी के शुभ अवसर पर अब यहाँ उपाध्याय मुनि विद्यानन्द जी आ चुके थे और बाबू सुकुमारचंद आदि के विशेष अनुरोध से आचार्य संघ भी आ गया था।

यहाँ जम्बूद्वीप स्थल पर जब वीरप्रभु की मूर्ति खड़ी हो रही थी। उस दिन ११ बजे से लेकर आचार्यश्री अपने संघ सहित पाटे पर बैठे थे और मुनि श्री विद्यानन्द जी भी महान् धर्मप्रेम से यहीं पर बैठे रहे थे। इस प्रतिमा जी के स्थिर होते क्षण ही उसके नीचे स्वयं आचार्यश्री ने अपने करकमलों से अचलयन्त्र को स्थापित किया था।

यन्त्र माहात्म्य

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के लिए विशाल पंडाल बनाया जा रहा था और वह आँधी, तूफान से तीन बार उखड़ चुका था। सुकुमारचंद जी, माताजी से बोले—"प्रतिष्ठा कैसे होगी।"

माताजी ने कहा—

"आप एक घण्टे बाद आवें, मैं एक यन्त्र भूर्जपत्र पर बना हुआ दूँगी, उसे ले जाकर पंडाल में भगवान् के सिंहासन के नीचे रख देवें प्रतिष्ठा होने तक कोई भी उसको नहीं खोलेगा। प्रतिष्ठा निर्विघ्न सम्पन्न होगी आप चिन्ता न करें।"

एक घण्टे बाद सुकुमारचंद ने आकर माताजी से वह यन्त्र लेकर भगवान् के सिंहासन के नीचे रखा दिया। उस यन्त्र का ऐसा अद्‌भुत चमत्कार हुआ कि उस क्षण से लेकर प्रतिष्ठा होने तक आँधी और वर्षा का नाम भी नहीं आया। प्रतिष्ठा के अनन्तर वह यन्त्र माताजी के एक भक्त अपने साथ ले गये थे।

सूरिमन्त्र आचार्यश्री द्वारा

इन तीनों विशाल प्रतिमाओं की प्राणप्रतिष्ठा के मन्त्र आचार्यश्री ने उन पर लिखे हैं तथा सूरिमन्त्र भी आचार्यश्री ने दिया है। यही कारण है कि इन प्रतिमाओं में सातिशयता आ गई है। इस जम्बूद्वीप स्थल पर स्थापित वीरप्रभु की प्रतिमा का तो प्रारम्भ से ही अद्‌भुत चमत्कार देखने को मिला है। जैसे कि सुमेरु पर्वत के बनने में जितनी बार लेंटर पड़े है प्रायः बादल घिरे रहे हैं किन्तु लेटर पड़ने के कुछ घण्टे बाद ही वर्षा हुई है, पड़ते समय नहीं। जिससे वह वर्षा उस निर्माण में अमृतवर्षा का काम करती रही है और भी अनेक चमत्कार होते रहे हैं।

पंचमेरुव्रत

आर्यिकाश्री रत्नमती माताजी गृहस्थाश्रम में तो मुक्तावली आदि व्रत किये थे। अब पुनः दीक्षित जीवन में भी उनके हृदय में व्रत उपवास की भावना चल रही थी। अतः शरीर के अतीव अशक्त होते हुए भी माताजी ने आचार्यश्री से पंचमेरु के ८० उपवास करने का व्रत ग्रहण कर लिया था। जिसे वे रुचि से किया करती हैं।

गणधर वलय विधान

मुनिश्री ऋषभसागर जी की प्रेरणा से पहाड़ी धीरज दिल्ली के गिरधारीलाल के सुपुत्र श्री विपिनचंद ने जम्बूद्वीप स्थल पर गणधर विधान मण्डल का आयोजन किया जिसमे उन्हे पूरे संघ का सांनिध्य प्राप्त हुआ था। इस छोटे से मन्दिर के सामने सुन्दर पंडाल बनाया गया था और बहुत ही प्रभावना पूर्ण वातावरण में यह विधान सम्पन्न हुआ था।

संघ भक्ति

इस समय यहाँ हस्तिनापुर में गुरुकुल में संघ ठहरा हुआ था और संघ के दर्शनों के लिए बंगाल, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मेरठ, मवाना, सरधना और दिल्ली आदि से भक्तगण आ रहे थे। आहारदान देने वाले भक्तगण यही ठहरे हुए गुरुओं को आहार देना, उनकी वैयावृत्ति करना, उपदेश सुनना आदि लाभ ले रहे थे।

समाधिमरण

एक दिन आ० ज्ञानमती माताजी से परामर्श करते हुए मुनिश्री वृषभसागर जी ने कहा—

"माताजी ! मेरी सल्लेखना का समय आ चुका है मेरी इच्छा है कि आपके मार्ग दर्शन में मेरा समाधिमरण हो। यहाँ क्षेत्र पर तथा आचार्य संघ के सांनिध्य में मेरा अन्त सुन्दर बन जायेगा। परन्तु चिन्ता है—यहाँ २-४ महीने तक इतने बड़े संघ की व्यवस्था कौन करेगा ! और आने वाले दर्शनार्थियों को कौन सम्भालेगा।........"

माताजी ने कहा—

"महाराज जी ! आचार्यश्री के पुण्य से संघ की व्यवस्था हो जायेगी। आप चिन्ता न करें। आप अपनी अन्तिम इच्छा को पूर्ण करें। मैं आपकी सल्लेखना यही पर कराऊँगी।"

माताजी का मनोबल प्रारम्भ से ही बहुत मजबूत है। वे आत्म विश्वास के साथ बड़ा-से-बड़ा भी कार्य हाथ मे ले लेती हैं। पुनः दृढ़ता से महामन्त्र की जाप्य के बल पर उसे पूर्ण करके ही छोड़ती हैं। यह बात आप सब पाठकों को उनके कार्य कलापो से ही दिख रही है। इसमे कहने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

अपनी स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार माताजी ने मुझे भी बुलाकर सारी बातें सुना दी। अपनी शिष्याओं से भी परामर्श किया। पुनः आचार्यश्री के पास पहुँच गई और भक्तिपूर्वक निवेदन किया। मुनिश्री वृषभसागरजी ने भी आचार्यश्री के समक्ष अपने उद्गार व्यक्त किये और पुनः पुनः प्रार्थना की कि—

"आप यहीं पर संघ सहित विराज कर हमारी सल्लेखना बढ़िया करा दीजिए।"

आचार्यश्री ने हँसकर स्वीकृति दे दी और मुनिश्री ने विधिवत् सल्लेखना ग्रहण कर ली। उस समय यहाँ पर सभी तरफ से भक्तों का तांता लगा हुआ था।

आर्यिका रत्नमती माताजी ने अपने जीवन मे पहली बार ही विधिवत् आदि मे अन्त तक यह सल्लेखना देखी है। उन्होंने दीक्षा लेकर भगवती आराधना का स्वाध्याय दो तीन बार कर लिया था। अतः अब उन्हें मुनि वृषभसागरजी की सारी चर्या देखते समय ग्रन्थ का स्वाध्याय साकार दिख रहा है। वे प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक संघ की प्रत्येक क्रिया मे रुचि से भाग लेती है और प्रसन्न होती हैं, कभी-कभी कहती हैं—

"मैंने अपने जीवन में यह संयम पाया है। इसकी सफलता अन्तिम सल्लेखना मरण से ही है। इतने विशाल चतुर्विध संघ के सान्निध्य मे तीर्थक्षेत्र पर सल्लेखना का योग आना बड़ा ही दुर्लभ है। महाराज जी ! आप धन्य हैं जो कि आपको यह सब पुण्य योग मिल रहा है।

धर्म श्रवण

आर्यिका ज्ञानमती माताजी मध्याह्न में दो घण्टे मुनिश्री को शास्त्र स्वाध्याय सुनाती थी। उसके मध्य उनका धर्मोपदेश बहुत ही मर्मस्पर्शी होता था। रत्नमती माताजी सुनते-सुनते विभोर हो जाती थी। संघ के मुनिगण भी समय-समय पर तथा अधिकतर रात्रि में धर्मोपदेश सुनाते रहते थे। अन्य आर्यिकायें भी सतत धर्मचर्चा सुनाती रहती थी। इस धर्ममय वातावरण मे मुनिश्री वृषभसागरजी ने नश्वर शरीर को छोड़कर स्वर्ग पद प्राप्त कर लिया। इस प्रकार यहाँ उनकी समाधि बहुत ही उत्तम हुई है। उनकी अन्त्येष्टि के बाद श्रद्धांजलि सभा हुई थी।

आचार्यश्री का आशीर्वाद और विहार

त्रिलोक शोध संस्थान के कार्यकर्ताओं ने माताजी से कुछ दिनों यहीं हस्तिनापुर रहकर इस रचना के कार्य में मार्गदर्शन के लिये प्रार्थना की तब माताजी ने महाराजजी के सामने यह समस्या रक्खी कि—

"अब हमें क्या आज्ञा है !"

आचार्यश्री ने कहा—

"मुनि अथवा आर्यिकायें तीर्थक्षेत्र पर अधिक दिनों तक रह सकते हैं, कोई बाधा नहीं है। तुम्हें इस पुनीत धर्म प्रभावना के कार्य में मार्गदर्शन देना चाहिये। तुम्हारे बिना यह इतना बड़ा कार्य होना सम्भव नहीं है। अतः तुम्हें रहना आवश्यक है।"

पुनः माताजी ने पूछा—

"महाराज जी ! इस सुमेरु पर्वत का शिलान्यास होकर निर्माण कार्य प्रारम्भ नहीं हुआ था। निर्वाण महोत्सव और प्रतिष्ठा आदि के निमित्त से इस निर्माण कार्य में व्यवधान रहा है। अब इस कार्य को कब शुरू कराया जाय।"

आचार्यश्री ने कहा—

"अभी आने वाला अक्षय तृतीया दिवस सर्वोत्तमदिवस है। उसी दिन से कार्य शुरू करा दीजिये।"

अनन्तर बड़े मंदिर के पीछे हॉल में आचार्यश्री ने सभा के मध्य माताजी को चातुर्मास यहीं करने की आज्ञा देकर इस रचना के लिये तथा माताजी के लिये भी बार-बार आशीर्वाद देकर आचार्यश्री ने अपने संघ सहित यहाँ से विहार कर दिया।

चातुर्मास स्थापना

आस-पास के कई एक गाँवों में धर्म प्रभावना करता हुआ आचार्य महाराज का संघ तो सहारनपुर पहुँच गया। वहीं पर आचार्यश्री के संघ का वर्षायोग हुआ। वहाँ से, संघ से विहार कर मुनि श्री सुपार्श्वसागरजी महाराज अनेक मुनि-आर्यिकाओं के साथ मुजफ्फरनगर आ गये। यहीं पर वर्षायोग स्थापित कर लिया। पूज्य माताजी ने आर्यिका रत्नमतीजी और शिवमतीजी सहित यही हस्तिनापुर क्षेत्र पर वर्षायोग ग्रहण कर लिया।

क्षेत्र पर स्वाध्याय विधान प्रभावना

जब से माताजी यहाँ पर आई थीं। यहाँ के मुमुक्षु आश्रम के अधिष्ठाता पं० हुकुमचन्दजी (सलावा वाले) की प्रार्थना से माताजी प्रातःकाल का स्वाध्याय बड़े हॉल में ही चलाती थीं। उसमें प्रवचनसार पढ़ती थीं और संस्कृत की दोनों टीकाओं का सुन्दर विवेचन करती थीं। मध्याह्न में भी धवला प्रथम पुस्तक, गोम्मटसार आदि कई ग्रन्थों का स्वाध्याय प्रायः सामूहिक सभा मे ही चलता था। जिससे यहाँ के व्रती जनों को, ब्रह्मचारिणी सुशीलाबाई को, बाबू महेशचन्दजी को, सभी को बहुत ही आनन्द आ रहा था।

भाद्रपद के दशलक्षण पर्व में बाबू सुकुमारजी ने माताजी के सान्निध्य में बड़ा ऋषिमण्डल

विधान किया। वे प्रातः ६ बजे से ही पूजन में लग जाते थे। पुनः टिकैतनगर से भाई सुभाषचन्दजी आये। उन्होंने भी इस विधान में रुचि से भाग लिया। सुकुमारचन्दजी उनसे विशेष प्रभावित रहे।

"यदि मैं मन भर भो घो पी जाऊं तो इतना आनन्द नहीं आयेगा कि जितना आनन्द दिन भर माताजी की अमृत वाणी से आता है।"

आर्यिका रत्नमती माताजी भी दिन भर की धर्मामृत वर्षा से बहुत ही संतुष्ट रहती थी। वे सोचा करती थीं—

"मुझे इस वृद्धावस्था में जिनवचनामृत को सुनने का अच्छा अवसर मिला है। मैंने पूर्वजन्म में बहुत ही पुण्य संचित किया होगा कि जिससे यह प्रतिक्षण ज्ञानाराधना चारित्राराधना हो रही है। क्योंकि थोड़े पुण्य से इस युग में यह सामग्री भला कैसे मिल सकती है?"

इस प्रकार यहाँ क्षेत्र पर खूब ही प्रभावना हो रही थी। इसी मध्य मुनिश्री सुपार्श्वसागरजी का माताजी के पास समाचार आया कि—

"मैं इस चातुर्मास में सल्लेखना ले रहा हूँ। आप संघ की अधिक दिनों की दीक्षित अनुभवी आर्यिका हैं। आपने कई एक समाधि कराई भी हैं। अतः मैं आपसे बहुत कुछ परामर्श करना चाहता हूँ और सल्लेखना में आपका सहयोग चाहता हूँ।"

इस समाचार को प्राप्त कर माताजी ने रत्नमती माताजी से परामर्श कर यह निर्णय किया कि—

"हमें संघ सहित मुजफ्फरनगर चलना चाहिये। शास्त्र में आज्ञा है कि सल्लेखना कराने के लिये अथवा उनके दर्शन के लिये साधु-साध्वी चातुर्मास में भी ९६ मील तक जा सकते है पुनः यह मुजफ्फरनगर तो यहाँ से ३२ मील ही दूर है।"

ऐसा निर्णय कर माताजी आसोज में ही विहार कर मुजफ्फरनगर पहुँच गईं। वहाँ वयोवृद्ध, तपस्वी सुपार्श्वसागर महाराज जी के दर्शन कर मन प्रसन्न हुआ। महाराज जी भी बहुत ही प्रमुदित हुये और समय-समय माताजी से विशेष परामर्श करते रहे।

रत्नमती माताजी का संघ प्रेम

रत्नमती माताजी को तो संघ में रहना बहुत ही अच्छा लगता था। वे सभी मुनि-आर्यिकाओं के मध्य बैठकर अपने कमजोर शरीर से भी बहुत सा काम ले लेती थीं। उनका मनोबल बढ़ जाता था और प्रत्येक चर्या मे उत्साह द्विगुणित हो जाया करता था। वहाँ प्रेमपुरी तक दूर-दूर चौकों में आहार को चली जाती थीं और गृहस्थ के घर में ठण्डा अथवा गर्म, रूखा अथवा चिकना जैसा भी हो, प्रकृति के अनुकूल हुआ तो ठीक अन्यथा जो भी मिले आहार लेकर आ जाती थीं फिर भी स्वस्थ थीं। क्योंकि उस समय उनका स्वास्थ्य अच्छा था और फिर दूसरी बात यह है कि—

मन की प्रसन्नता भी स्वस्थता के लिए बहुत बड़ा साधन है।

चारित्रशुद्धि विधान

सुपार्श्वसागरजी ने चारित्रशुद्धि व्रत पूर्ण कर लिए थे। उसके उपलक्ष्य में चारित्रशुद्धि विधान का आयोजन किया गया। त्रिशला, माधुरी ने मांडने पर एक बहुत बड़ा सुन्दर कमल

बनाया उसमें १२३४ फूल बना दिये। यह मण्डल माताजी के मार्ग दर्शन में बना था और उन्हीं के मार्गदर्शन मे विधिवत् कराया गया था। इस कमलाकार मण्डल को देखने के लिए वहाँ आस-पास के श्रावकों का तांता लग गया था। सारा विधि विधान मैंने करवाया था।

रत्नमती माताजी मुजफ्फरनगर में

मुनिश्री ने अन्नादि का त्याग कर दिया था। सल्लेखना विधिवत् चल रही थी। अतः अभी देरी होने से माताजी आ० शिवमती को साथ लेकर दीपावली के पूर्व हस्तिनापुर वापस आ गईं। किन्तु रत्नमती माताजी को पूरी सल्लेखना देखने की इच्छा होने से माताजी से स्वीकृति लेकर वे वही संघ में रुक गईं। चूंकि रत्नमती माताजी को संघ से बहुत ही वात्सल्य था, अतः वे अभी कुछ दिन और संघ में रहना चाहती थीं। दीपावली के बाद आचार्य संघ भी वहीं पर आ गया था। महाराज सुपार्श्वसागरजी की सल्लेखना चल रही थी। वे क्रम-क्रम से वस्तुओं का त्याग कर रहे थे। इसी मध्य एक दिन अकस्मात् संघस्थ वयोवृद्ध मुनि बोधिसागरजी को कुछ घबराहट हुई। साधुओं ने णमोकार सुनाना शुरू किया और उनकी समाधि हो गई। अनन्तर फाल्गुन वदी अमावस्या को मुनि श्री सुपार्श्वसागरजी ने चतुर्विध संघ के सान्निध्य में अपने इस भौतिक शरीर को छोड़ दिया और स्वर्ग में वैक्रियिक शरीर प्राप्त कर लिया।

आचार्यश्री द्वारा दीक्षायें

वहाँ आचार्यश्री के करकमलों से दक्षिण प्रान्त सदलगा के मल्लप्पा श्रावक को मुनि दीक्षा हुई। उनकी पत्नी और दो पुत्रियों की आर्यिका दीक्षा हुई। कु० सुधा जो कि १९ वर्षीया थी उसकी आर्यिका दीक्षा हुई। और लाडनू के मुनिभक्त श्रावक शिवचरणजी की क्षु० दीक्षा हुई थी। इनके नाम क्रम से मुनि मल्लिसागर, समयमती, प्रवचनमती, नियममती, सुरत्नमती और क्षुल्लक का नाम सिद्धसागर रखा गया था।

इन दीक्षाओं को देखकर आर्यिका रत्नमतीजी सोचने लगीं—

"ऐसी ही एक दिन मेरी पुत्री मैना ने दीक्षा ली थी। उस समय तो छोटी उम्र में कुमारिकाओं के दीक्षा की पद्धति न होने से कितना बड़ा विरोध हुआ था। सचमुच में छोटी उम्र में और कुमारिका में दीक्षा का मार्ग मेरी मैना ने ही खुला कर दिया है।

इसके बाद आचार्यश्री से आज्ञा लेकर रत्नमती माताजी हस्तिनापुर माताजी के पास आ गई थी, क्योंकि अब संघ में रहकर सतत विहार करना उनके वश का नही था। दिन पर दिन उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था।

आर्यिका संघ का विहार

एक दिन माताजी ने आ० रत्नमती से विचार-विमर्श करके मुजफ्फरनगर के भक्तों के आग्रह से हस्तिनापुर से विहार कर दिया। संघ बडसूमा, मीरापुर होते हुए खतौली नगर में पहुँचा। वहाँ के श्रावकों ने संघ का अच्छा स्वागत किया और महावीर जयन्ती निकट होने से आग्रह पूर्वक संघ को रोक लिया। वहाँ महावीर जयन्ती के त्रिदिवसीय कार्यक्रम में माताजी का उपदेश होने से धर्म प्रभावना अच्छी हुई। यहाँ पर समाज में प्रमुख धनप्रकाशजी, शीतलप्रसादजी

आढ़ती, महेशचन्दजी, नरेन्द्रकुमारजी सर्राफ, इन्द्रसेनजो, महेन्द्रकुमारजो आदि भक्तगण संघ की भक्ति में आगे रहे। फलस्वरूप यहाँ ग्रीष्मावकाश में १५ दिन के लिए शिक्षण शिविर लगाया गया। इस प्रान्त में माताजी के मार्ग दर्शन में यह सन् १९७६ का शिविर बहुत ही सफल रहा। इसमें समाज के अमरचन्द सर्राफ आदि श्रावकों ने, मैंने तथा रवीन्द्रकुमार ने भी अच्छा श्रम किया था। प्रमाण पत्र बाँटते समय जब वयोवृद्ध लाला शीतलप्रसादजी आढ़ती जो कि विद्यार्थी बने थे वे शिविर संयोजक अमरचन्द से प्रमाण पत्र लेने लगे तब सभा में सभी लोगों ने तालियों की गड़-गड़ाहट से उनका स्वागत किया था। इस शिविर में केकड़ी राजस्थान और गुजरात आदि से महानुभाव पधारे थे। वृद्ध बालक, युवक, महिलायें और बालिकायें सभी ने शिविर में तत्त्वार्थसूत्र, छहढाला, बालविकास आदि पढ़कर परीक्षायें उत्तीर्ण की थीं।

इसके बाद माताजी ने खतौली से विहार कर आस-पास के शाहपुर आदि गाँवों में उपदेश देकर जनता को धर्मामृत का पान कराया था। शाहपुर के जिनेन्द्रकुमार और सेठीमल आदि भक्तों ने संघ की बहुत सेवा की थी।

चातुर्मास

पुनः खतौली के प्रमुख भक्त गणों की विशेष प्रार्थना से माताजी ने संघ सहित अपना चातुर्मास यहीं पर स्थापित किया था।

इस चातुर्मास को दैनिक चर्या बहुत ही उत्तम रही है और विशेष उपलब्धि हुई इन्द्रध्वज विधान की।

प्रतिदिन प्रातः माताजी ६ बजे से ७ बजे तक संघस्थ विद्यार्थियों को कातन्त्र व्याकरण पढ़ाती थीं। ७ से ८ तक समयसार का स्वाध्याय कराती थी। ८ से ९ तक समाज को धर्मोपदेश सुनाती थी। साढ़े ९ पर चर्या को निकलती थीं। इसके बाद मौन लेकर इन्द्रध्वज विधान लिखती थी। पुनः शाम को ६ बजे मौन छोड़ती थी। तब समाज के स्त्री-पुरुष धर्मशाला मे आ जाते थे और माताजी से कुछ चर्चा करके बहुत ही आनन्द का अनुभव करते थे।

यदि दिन मे बाहर से कोई यात्री दर्शनार्थ आते थे तब माताजी उन्हें ५-७ मिनट कुछ वार्तालाप का समय दे देती थीं। जिससे वे लोग अपना आना सार्थक समझ लेते थे। इधर बड़ौत शहर में आचार्य धर्मसागरजी महाराज का ससंघ चातुर्मास था और मेरठ में संघस्थ मुनि दया-सागर आदि····मुनि, आर्यिकाओं का संघ ठहरा हुआ था।

यहाँ बाहर से आने वालों में माणिकचन्द्र भिसीकर कुभोज (बाहुबली), सीताराम पाटनी कलकत्ता आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय रहे हैं। इस प्रकार यहाँ इन्द्रध्वज विधान की रचना का कार्य चातुर्मास प्रारम्भ में शुरू करके माताजी ने उसे दीपावली के मंगल दिवस में पूर्ण कर दिया था। उस दिन उस महाविधान के लिखित कागजों को चौकी पर विराजमान मान कर भक्तों ने उसकी पूजा की थी। आज यह विधान कितना प्रसिद्ध हुआ है यह जैन समाज को विदित ही है।

चातुर्मास के मध्य दशलक्षण पर्व में श्रावकों ने रामलीला मैदान में बड़ा पण्डाल बनवाया। प्रतिदिन माताजी ने प्रातः ८ से ९ तक धर्म पर प्रवचन किया। जिसमें जैन समाज के अतिरिक्त जैनेतर समाज ने भी भाग लिया और मध्याह्न में तत्त्वार्थसूत्र का प्रवचन हुआ।

यहाँ पर आर्यिका रत्नमती माताजी से महिलाएँ बहुत ही प्रभावित रहती थीं। उनकी मधुर और मितवाणी सुनने के लिये लालायित हो उनके पास आ जाती थीं और उनकी सेवा वैयावृत्ति करके पुण्य संचय किया करती थीं। रत्नमती माताजी की चर्या बहुत ही सुव्यवस्थित थी। स्वाध्याय, उपदेश, प्रतिक्रमण आदि कार्यों में रुचि से भाग लेती थीं और मध्याह्न में प्रायः मन्दिर में बैठकर जाप्य, स्तोत्र पाठ किया करती थी। माताजी स्वयं दो घण्टे पाठ करके कई घण्टों तक अनगारधर्मामृत आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय किया करती थीं। पढ़ते समय जहाँ कहीं शंका होती तब माताजी से समाधान करा लेती थीं। यहाँ की बालिकाओं ने आ० शिवमतीजी से तथा मालती और माधुरी शास्त्री से बालविकास, द्रव्यसंग्रह, पद्यावली, तत्त्वार्थसूत्र आदि का अध्ययन किया तथा अनेक बालिकाओं को माधुरी ने पूजा विधि सिखाकर प्रत्येक रविवार को पूजन कराना शुरू कर दिया था।

रोहिणी व्रत आदि

यहाँ पर बहुत सी महिलायें सन्तोषी माता आदि मिथ्यात्व के व्रत कर रही थीं। रत्नमती माताजी ने उन्हें सम्बोधित कर मिथ्यात्व का त्याग कराया और उन्हें रोहिणी व्रत, णमोकार मन्त्र-व्रत, जिनगुणसम्पत्ति आदि व्रत लेने की प्रेरणा देकर माताजी से ये आगम सम्मत व्रत दिलवाया करती थी। इस प्रकार रत्नमती माताजी महिलाओं का मिथ्यात्व छुड़ाया करती थी तथा बालकों को मद्य, मांस, मधु का त्याग कराकर देवदर्शन की प्रेरणा दिया करती थी। इनकी प्रेरणा से यहाँ पर ५० से भी अधिक महिलाओं और बालिकाओं ने रोहिणी आदि व्रत ग्रहण किये थे।

यहाँ का चातुर्मास पूर्ण कर माताजी ने अपने संघ सहित वहाँ से विहार कर दिया। उस समय स्त्री-पुरुष और बालक-बालिकाओं के नेत्र अश्रु से पूरित हो रहे थे। भाव न होते हुए भी भक्तों ने संघ का विहार करवाया था। माताजी यहाँ हस्तिनापुर आ गईं।

सुमेरुपर्वत निर्माण कार्य प्रगति पर

मुजफ्फरनगर, दिल्ली आदि के इंजीनियर आर्चिटेक्ट इस सुमेरु पर्वत के निर्माण कार्य को करा रहे थे। इसमें नीचे टनों लोहा डाला गया था। नीचे तलघर भी बनाया गया है। अब यह पर्वत १६ फुट लगभग ऊपर बन गया—नन्दनवन तक ऊपर दिखने लगा था। आगे इसके निर्माण में इंजीनियर लोग ऊहापोह में पड़े हुए थे कि एक श्रावक ने माताजी से कहा—

"माताजी ! आर० सी० सी० के बहुत बड़े विशेषज्ञ अपने भारत में डा० ओ० पी० जैन रुड़की विश्वविद्यालय में हेड आफ सिविल डिपार्टमेण्ट में हैं। माताजी ने मुझे उनके पास भेजा। मैं नक्शा लेकर गया था। उन्होंने मुझे समय दिया। बातचीत की। पुनः खतौली आकर माताजी के दर्शन कर बहुत कुछ परामर्श किया। इसके बाद उन्होंने हस्तिनापुर आकर बनते हुए सुमेरु पर्वत को भी देखा। उन्होंने अपने ढंग से नक्शा बनवाया और बहुत ही रुचि ली। जिससे इस सुमेरु का कार्य बहुत ही प्रगति से चलने लगा।

हस्तिनापुर में इन्द्रध्वज विधान

माताजी ने जो विधान बनाया था उसकी टाइप कापी कराई गई और यहाँ हस्तिनापुर में सन् १९७७ में फाल्गुन अष्टाह्निका में दिल्ली के विपिनचन्द जैन, उग्रसेन जैन ने इन्द्र-इन्द्राणी बन

कर यह विधान करना प्रारम्भ कर दिया। उस अवसर पर जिनकी प्रेरणा से यह विधान रचा गया था वे मदनलालजी चाँदवाड, रामगंज मण्डी भी सपत्नीक आ गये। विधान में इतना आनन्द आया कि जो अकथनीय है। विधान के समापन पर श्री भगवान् महावीर स्वामी का १००८ कलशों से महाभिषेक किया गया था। यहाँ हस्तिनापुर के इतिहास मे सर्वप्रथम इन्द्रध्वज विधान का आयोजन अपने आप में बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा।

अनन्तर पुस्तक छपने के बाद तो जगह-जगह इस विधान की धूम मच गई है। दिल्ली में माताजी के सान्निध्य में यह विधान १६ बार हो चुका है। और यहाँ भी ७-८ बार हो चुका है। जो भी इस विधान को करते हैं, पढ़ते हैं, वे यही लिखते हैं कि ऐसा सुन्दर विधान आज तक हमने न देखा था, न सुना था और न इससे बढ़िया विधान और कोई देखने को मिलेगा ही। माताजी ने इसमे ४० से अधिक छन्दों का प्रयोग किया है। इसकी भाषा बहुत ही सरल और बहुत ही मधुर है। इसमें तिलोयपण्णत्ति आदि आगम का सार भरा हुआ है। कोई कैसा ही क्यों न हो, विधान पढ़ते समय उसको आनन्द आता ही आता है और इस विधान का फल भी तात्कालिक देखा जा रहा है। जिन्होंने भी विधिवत् इस इन्द्रध्वज विधान को किया है उन्हें इच्छित फल की प्राप्ति अवश्य हुई है।

हस्तिनापुर में चातुर्मास

सन् १९७७ में संस्थान के कार्यकर्ताओं की प्रार्थना से माताजी ने अपने संघ का चातुर्मास यहीं पर स्थापित कर दिया। माताजी प्रातः सामूहिक स्वाध्याय मे मूलाचार चलाती थी। उसका हिन्दी अनुवाद करना भी प्रारम्भ कर दिया था। इस समय माताजी सतत अपने लेखन कार्य मे लगी रहती थीं। संघस्थ बालिकायें पूजन, आहारदान आदि से निवृत्त होकर माताजी के पास मध्याह्न मे घण्टे, दो घण्टे पञ्चसंग्रह आदि ग्रन्थों को पढ़ती थी। आ० रत्नमती माताजी इन सब स्वाध्यायों में बैठती थीं। पुनः स्वयं भी स्वाध्याय में और चौबीस ठाणा की चर्चा मे लगी रहती थीं। इस प्रकार चातुर्मास धर्मध्यान पूर्वक चल रहा था। यहाँ चातुर्मास के प्रारम्भ मे ही श्री सेठ हीरालाल जी, रानीवाला जयपुर पधारे और कई दिनों तक रहकर संघ को आहारदान देते हुए माताजी से स्वाध्याय का लाभ लेते रहे। कलकत्ते से श्री चाँदमल जी बडजात्या सपत्नीक आये थे। कई दिनों रहकर आहारदान देते हुए पूजन और स्वाध्याय का लाभ ले रहे थे। समय-समय पर इस जम्बूद्वीप रचना के बारे में माताजी से चर्चा भी किया करते थे। पुनः आपने स्वयं कहा—

"मैं इस सुमेरु पर्वत में कुछ करना चाहता हूँ।"

तब मैंने कहा—

"इसके १६ चैत्यालय के दातार हो चुके हैं आप चूलिका को ले लीजिए।"

तब उन्होंने उसके लिए १५०००) की स्वीकृति कर दी थी।

माताजी को ज्वर से अस्वस्थता

इस चातुर्मास में माताजी को एकान्तर से ज्वर आने लगा था जिससे माताजी बहुत ही कमजोर हो गई थीं। फिर भी माताजी अपने आवश्यक क्रियाओं में लगी रहती थीं और लेखन कार्य भी नहीं छोड़ती थीं।

आ० विमलसागर जी संघ का चातुर्मास टिकैतनगर में

ईसवी सन् १९७७ में टिकैतनगर में आ० श्री विमलसागर जी महाराज ने संघ सहित चातुर्मास किया था। उस समय वहाँ पर चतुर्थकाल जैसा दृश्य दिख रहा था। प्रत्येक घर में श्रावक-श्राविकायें पड़गाहन करने खड़े हो जाते थे। इसके पहले सभी स्त्री-पुरुष मन्दिर जी में भगवान् का अभिषेक पूजन बड़े उत्साह से करते थे। आचार्यश्री ने कहा—

यहाँ जैसा धार्मिक दृश्य प्रायः मुश्किल से ही अन्यत्र मिलेगा।"

आचार्यश्री की प्रेरणा से भाई कैलाशचंद ने अपने घर में चैत्यालय स्थापित किया था। भाई प्रकाशचंद ने तथा सुभाषचन्द ने भी घर मे चैत्यालय बना लिया था। ये तीनों भाई नित्य ही भगवान् की पूजा करते हैं। समय-समय पर मुनि संघों में जाकर आहारदान देते हैं। प्रतिवर्ष सम्मेदशिखर की वंदना करते है और अपनी गाढ़ी कमाई का कुछ अंश धर्म में अवश्य लगाते रहते हैं। इन पुण्य कार्यों से ये लोग गृहस्थाश्रम में सफल संचालन करते हुए यहाँ सुखी हैं, यशस्वी हैं और आगे के लिए भी पुण्यानुबंधी पुण्य का संचय कर रहे हैं।

सुमेरु की जिनप्रतिमायें

सुमेरु पर्वत का निर्माणकाल चल रहा था। इसमें भद्रसाल, नंदन, सौमनस और पांडुक ये चार वन हैं। प्रत्येक में चार-चार चैत्यालय होने से इस पर्वत में सोलह चैत्यालय हैं। इनमें जो जिनबिम्ब विराजमान करते थे, माताजी की आज्ञा से शुभमुहूर्त में जयपुर जाकर मैंने और रवीन्द्र कुमार ने मिलकर इन प्रतिमाओं के लिए आर्डर दिया। वह कार्य भी प्रगति से चल रहा था।

प्रशिक्षण शिविर की रूपरेखा

सन् १९७८, १४ मई से १८ मई तक में भिण्डर (राज०) में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर मैं और रवीन्द्र कुमार जी गये हुए थे। वहाँ आ० धर्मसागर जी का विशाल संघ विद्यमान था। वहीं पर सिद्धांत संरक्षिणी सभा की मीटिंग में एक शिविर आयोजन की चर्चा चल रही थी। श्रावकों ने मेरे से निवेदन किया—

"पूज्य माताजी के निर्देशन में हमलोग एक प्रशिक्षण शिविर करना चाहते हैं।"

मैंने कहा—

"आपलोग चलकर माताजी से प्रार्थना करें, स्वीकृति अवश्य मिलेगी।"

शिविर संयोजक श्री त्रिलोकचंद जी कोठारी और सभा के महामन्त्री श्री गणेशीलाल जी, रानीवाला (कोटा) ये दोनों महानुभाव यहाँ माताजी के सान्निध्य में आये और प्रार्थना की—

"माताजी! हम लोग सिद्धांत संरक्षिणी सभा के माध्यम से आपके मार्ग दर्शन में यहाँ आपके सान्निध्य में ही विद्वानों का एक प्रशिक्षण शिविर करना चाहते हैं।"

माताजी ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। तब माताजी के मार्गदर्शन में यही बैठकर इन दोनों ने शिविर की रूपरेखा बनाई। दशहरा की छुट्टियों में करने का निर्णय लिया और पुनः माताजी से बोले—

"माताजी! आप कोई एक ऐसी पुस्तक तैयार कर दीजिये जो कि आगत सभी विद्वानों के लिए मार्गदर्शक होवे।"

माताजी ने उनकी यह प्रार्थना भी स्वीकार कर ली। तब ये लोग माताजी का शुभाशीर्वाद लेकर कोटा चले गये।

हस्तिनापुर चातुर्मास

संस्थान के कार्यकर्ताओं ने पुनः आग्रह किया कि—

"माताजी ! इस सुमेरु पर्वत का निर्माण पूर्ण होने तक हम लोग और इंजीनियर लोग भी आपका मार्गदर्शन चाहते हैं। अतएव यह सन् ७८ का चातुर्मास भी आप यहीं सम्पन्न करें।"

यहाँ माताजी का लेखन कार्य, स्वाध्याय और धर्मध्यान भी शहरों की अपेक्षा विशेष ही था, इसलिए माताजी ने सहर्ष स्वीकृति दे दी।

प्रवचन निर्देशिका

माताजी पुस्तक लिख रही थीं। ज्वर आना शुरू हो गया। जब ज्वर उतर जाता, माताजी उठकर लिखने बैठ जातीं और जिस दिन ज्वर नहीं आता, उस दिन प्रायः दिन भर ही लिखती रहती थीं। अपने पास में ६०-७० ग्रन्थ निकला कर रख लिए थे। उनके पन्ने पलट कर श्लोक ढूंढती और लिखती रहतीं। इनका इतना श्रम रत्नमती माताजी देखती तो उनसे नहीं रहा जाता वे कहती—

"एकांतर बुखार आ रहा है। आहार छूटता जा रहा है। इतनी कमजोरी बढ़ रही है और उस पर इतने ग्रन्थों को देखना और इतनी मेहनत करना किसके लिए। थोड़ा शांति रक्खो, ज्वर चला जाने के बाद लिखना।"

किन्तु माताजी ने देखा—

"श्रावण का महीना समाप्त हो रहा है पुस्तक पूरी करके रवीन्द्र को देना है। वे १५-२० दिनों से कम मे कैसे मुद्रण करायेंगे। चूँकि आसोज मे पुस्तक चाहिए।

इसलिए माताजी रत्नमती जी की बातो को सुनी, अनसुनी कर देतीं और स्वय लिखने मे लगी रहती थी। उन्होंने पर्यूषण पर्व से पूर्व यह पुस्तक तैयार कर रवीन्द्र कुमार को दे दी। पर्व के मध्य भी मेरठ जाने-आने का श्रम करके रवीन्द्र कुमार ने समय पर यह प्रवचन निर्देशिका पुस्तक छपाकर तैयार कर दी थी।

प्रशिक्षण शिविर

आर्ष परम्परा के अनुयायी दि० जैन समाज में यह पहला प्रशिक्षण शिविर था जो कि पूज्य माताजी के दिशा निर्देश में हो रहा था।

इस शिविर के कुलपति प्रोफेसर मोतीलाल जी कोठारी फल्टन वाले थे। प्रशिक्षण देने के लिए पं० हेमचंद जी आदि पधारे थे। मध्य मे पं० मक्खनलाल जी शास्त्री मोरेना में पधारे थे। इस शिविर में बहुत ही सुन्दर व्यवस्था थी। शताधिक विद्वानों ने, ५० से अधिक श्रेष्ठी जनों ने तथा अनेक प्रबुद्ध महिलाओं ने प्रशिक्षण ग्रहण किया था। यह शिविर यहाँ हस्तिनापुर मे श्वेतांबर के बाल आश्रम में किया गया था।

विद्यापीठ के प्राचार्य

इस शिविर में प्रशिक्षण हेतु पधारे श्री गणेशीलाल जी साहित्याचार्य आगरा वालों से उसी

मध्य में माताजी ने एक दिन संस्कृत में वार्तालाप किया। माताजी प्रसन्न हुईं और मेरे से बोलीं—

"मोतीचंद ! इन गणेशीलाल विद्वान् से तुम बातचीत कर लो। देखो इसी वर्ष हमें विद्यापीठ को चालू कर देना है अतः इन्हें प्राचार्य पद पर नियुक्त करना ठीक रहेगा।"

माताजी की आज्ञानुसार मैंने इन विद्वान् से बातचीत करके तथा गणेशीलाल जी रानीवाला से परामर्श करके निर्णय कर दिया कि—

"आप यहाँ हस्तिनापुर आइये, हम अगले वर्ष से ही यहाँ आचार्य वीरसागर संस्कृत विद्यापीठ की स्थापना करेंगे। आपको उसका प्राचार्यपद सम्भालना होगा।"

ये विद्वान् श्री गणेशीलाल जी तबसे लेकर आज तक यहाँ रहकर इस विद्यापीठ को सुचारु रूप से चला रहे हैं।

जम्बूद्वीप की प्रगति और प्रतिष्ठा हेतु विचार

इस शिविर में निर्मलकुमार जी सेठी, मदनलाल जी चाँदवाड़, त्रिलोकचंद जी कोठारी, गणेशीलाल जी रानीवाला आदि ने माताजी से जम्बूद्वीप की प्रगति पर बहुत विचार-विमर्श किया। इस मध्य पं० बाबूलाल जी ने कहा कि—

"हमे इसी वर्ष सन् १९७९ में ही सुमेरु की प्रतिष्ठा करानी है। बस हमें माताजी का शुभाशीर्वाद चाहिए।"

माताजी ने कुछ सोचकर आत्मविश्वास के साथ निर्णय दिया कि—

"सुमेरु पर्वत के जिनबिम्ब की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा आगे आने वाले सन् १९७९ में ही होगी।"

इसके बाद दिल्ली के कार्यकर्तागण और निर्मलकुमार जी सेठी आदि प्रमुख लोगों ने माताजी से निवेदन किया कि—

"माताजी ! अब यहाँ पर सुमेरु पर्वत पूरा बन चुका है। इसमें कुछ ही पत्थर लगना शेष रहा है। अब आप कुछ दिनों के लिए दिल्ली की ओर विहार करें।"

माताजी ने कहा—

"चातुर्मास समाप्ति के बाद विचार करूँगी।"

यह शिविर सानन्द सम्पन्न हुआ। कुछ दिनों बाद चातुर्मास पूर्ण कर पूज्य ज्ञानमती माताजी ने रत्नमती जी से विचार-विमर्श करके दिल्ली की ओर विहार कर दिया।

[२५]

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा निर्णय

माताजी संघ सहित दिल्ली पहुँच गईं। राजेन्द्र प्रसाद (कम्मोजी) आदि महानुभावों ने शहर में ही संघ को ठहराया। संस्थान की मीटिंग यहीं पर हुई जिसमें यह निर्णय लिया गया कि—

सुमेरु पर्वत के १६ जिन चैत्यालयों के जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा आने वाले ७९ के अप्रैल, मई तक हो जानी चाहिए और प्रतिष्ठा समिति का गठन कर दिया गया।

संघ कुछ दिन धर्म प्रभावना के वातावरण में कूचासेठ में ही रहा, अनन्तर भक्तों के आग्रह

से दरियागंज बाल आश्रम में आ गया। यहाँ पर माताजी के सान्निध्य में प्रतिष्ठा सम्बन्धी कई एक मीटिंगें हुईं और प्रतिष्ठा में बहुत कुछ विशेषता लाने के लिए जोरदार तैयारियाँ शुरू हो गईं। प्रतिदिन उपदेश और धर्म चर्चा से श्रावकों ने माताजी से बहुत कुछ लाभ लिया।

तीनलोक मण्डल विधान

फाल्गुन मास में कैलाशनगर के श्रावकों ने माताजी के सान्निध्य में तीनलोक मण्डल विधान करना चाहा सो प्रार्थना कर माताजी को कैलाशनगर ले गये। वहाँ बहुत ही प्रभावना पूर्वक विधान हुआ। पुनः माताजी वापस दरियागंज को आ गईं।

वैशाख सुदी तीज—अक्षय तृतीया से प्रतिष्ठा होना निश्चित होते ही कुंकुम पत्रिका छप गई। तब संस्थान के कार्यकर्ताओं ने चैत्र सु० १ को पूज्य माताजी का विहार हस्तिनापुर की ओर करा दिया।

वसतिका में निवास

माताजी के हस्तिनापुर पहुँचने के पहले ही जिनेन्द्र प्रसाद ठेकेदार आदि ने निर्णय करके यहाँ भगवान् महावीर के मन्दिर के पास ही दो वसतिकायें बनवाकर उन पर छप्पर डलवा दिये। हस्तिनापुर पहुँचते ही स्वागत पूर्वक माताजी को जम्बूद्वीप स्थल पर वसतिका (झोंपड़ी) मे ठहराया गया। किन्तु प्रतिष्ठा के अवसर पर श्री उम्मेदमल जी पाण्डया के आग्रह से माताजी को आफिस के पास फ्लेट में ठहराया गया।

अभूतपूर्व प्रतिष्ठा समारोह

इस प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठाचार्य संहितासूरि ब्र० सूरजमल जी थे। उनके पुरुषार्थ कुशल निर्देशन में शुभ मुहूर्त में झण्डारोहण पूर्वक प्रतिष्ठा का कार्य शुरू हो गया। इस प्रतिष्ठा मे दो सबसे बड़ी विशेषतायें थीं। आफिस से लेकर सुमेरु तक लगभग २५० फुट लम्बी ८० फुट ऊँची लोहे के पाइप का पैड बनी थी। भगवान् के जन्म कल्याणक के समय शुद्ध वस्त्र पहन कर हाथ मे अभिषेक के कलश लेकर उस पर चढ़ते हुए इन्द्र-इन्द्राणी गण बहुत ही सुन्दर दिख रहे थे। इस ८४ फुट ऊँचे सुमेरु के पांडुक वन मे बनी हुई अर्धचन्द्राकार पांडुक शिला पर भगवान् का जन्माभिषेक किया गया था। उसी समय हवाई जहाज से पुष्पवर्षा का दृश्य भी बहुत चित्ताकर्षक बन गया था। दूसरी विशेषता थी अन्तिम दिन गजरथ महोत्सव की। इस प्रान्त मे पहली बार यह गजरथ का महान् आयोजन किया गया था।

इस सुमेरु पर्वत के जिनबिम्बों की इतनी प्रभावना पूर्ण पंचकल्याणक प्रतिष्ठा को देखकर रत्नमती माताजी को अपार आनन्द हुआ और उन्होंने कहा कि—

"मेरा जीवन धन्य हो गया, मैंने ऐसी प्रतिष्ठा अपने जीवन में कभी भी नहीं देखी थी यह सब ज्ञानमती माताजी के विशेष पुरुषार्थ का ही फल है।"

आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज के आशीर्वाद से और आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी के मंगल सान्निध्य तथा तपस्या के प्रभाव से यह महान् प्रतिष्ठा पूर्णतया निर्विघ्न सम्पन्न हुई। इस अवसर पर आचार्य संघस्थ पूज्य मुनि श्री श्रेयांससागर जी अपने संघ सहित यहाँ विराजे। इससे प्रतिष्ठा में चतुर्विध संघ का सान्निध्य बहुत ही मंगलकारी हुआ।

प्रतिष्ठा के अवसर पर ही मोरीगेट दिल्ली की समाज ने माताजी से दिल्ली चातुर्मास के लिए विशेष आग्रह किया। यद्यपि इस समय गर्मी के अवसर पर पूज्य रत्नमती माताजी का स्वास्थ्य इधर-उधर विहार के अनुकूल नहीं था फिर भी उनकी इच्छा न होते हुए भी समाज के आग्रह और माताजी की इच्छा से उन्होंने संघ के साथ दिल्ली की ओर विहार कर दिया।

दिल्ली चातुर्मास

भगवान् की कृपा से संघ सकुशल आषाढ सु० ५ को मोरीगेट (दिल्ली) पहुँच गया और वहाँ के समाज ने संघ का भव्य स्वागत किया। विशेष प्रभावना के साथ आषाढ़ सु० १४ की रात्रि में माताजी ने संघ सहित वहाँ मन्दिर में चातुर्मास स्थापित कर लिया। यहाँ समाज के स्त्री-पुरुषों ने बहुत ही भक्ति भाव से संघ की सेवा की।

दिल्ली में प्रथम बार इन्द्रध्वज विधान

मोरीगेट की समाज ने भाद्रपद मे पर्यूषण पर्व के अवसर पर पूज्य माताजी के सान्निध्य में इन्द्रध्वज मण्डल विधान का आयोजन किया। इस विधान में मण्डल पर मन्दिरों की स्थापना करके ध्वजायें चढ़ाई जाती है। इस विधान को देखने के लिए दिल्ली से हर स्थान से बहुत से श्रावक-श्राविकायें आये थे। इसका प्रभाव दिल्ली में बहुत ही फैला और हर किसी के मन में इन्द्रध्वज विधान कराने की उत्कण्ठा जाग्रत हो गई। यहाँ के चातुर्मास में तथा प्रत्येक धार्मिक कार्यों मे महिलाओं मे श्रीमती शांतिबाई, किरणबाई आदि आगे रहती थी। पुरुषो मे भी रमेशचंद जैन पी. एस. मोटर्स प्रत्येक रविवार को सपरिवार मन्दिर आकर पूजन करते हैं। वे भी माताजी के चातुर्मास में विशेषतया सहयोगी रहे है। इनके सिवाय श्री उम्मेदमल जी पांडया, श्रीपाल जी मोटरवाले, श्रीचन्द्रजी चावल वाले, बाबूराम जी, शांतिस्वरूप जी आदि पुरुषों ने बहुत रुचि से विधान में भाग लिया था। युवकों में नरेन्द्र कुमार, जे. एम. जैना, कमलकुमार आदि ने बहुत ही धर्म लाभ लिया था।

यहाँ भाद्रपद में महिलायें रत्नमती माताजी के सान्निध्य में मध्याह्न २-३ घण्टे शास्त्र सभा करती थी। जिसमें उन्हे माताजी का विशेष मार्गदर्शन तथा आशीर्वाद मिल जाता था।

शिक्षण प्रशिक्षण शिविर

इस चातुर्मास में भी अक्टूबर में प्रशिक्षण शिविर का विशेष कार्यक्रम रक्खा गया। रमेश-चंद जैन (पी. एस.) के आग्रह से यह शिविर दरियागंज आश्रम में किया गया चूँकि वहाँ जगह पर्याप्त थी। इस शिविर के कुलपति प्रो० पं० मोतीलाल जी कोठारी थे। इस शिविर में आगत विद्वानों ने, श्रीमानों ने तथा दरियागंज के प्रबुद्ध श्रावक-श्राविकाओं ने और भी दिल्ली के हर स्थान के श्रावकों ने बहुत ही अच्छा लाभ लिया था। इन दिल्लीवासियों के लिए यह एक पहला शिविर था। अतः यह बहुत ही उत्साहपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ था। इसमें पं० बाबूलाल जी जमादार का संचालन विद्वानों को बहुत ही अच्छा लगा था।

रत्नमती माताजी इन विद्वानों के सम्मेलन को देखकर गद्गद हो गईं और समाज के उत्साह की बहुत ही सराहना की तथा उन्हें बहुत-बहुत आशीर्वाद प्रदान किया।

पुनः इन्द्रध्वज विधान

पुनः डिप्टीगंज की महिला रतनमाला ने बड़े ही उत्साह से अपने यहाँ धर्मशाला में पूज्य माताजी के संघ को ले जाकर विशालरूप में इन्द्रध्वज विधान कराया। इस विधान में पं० गुलाबचंद जी पुष्प (टीकमगढ़) आये थे। इसमें लगभग १०० स्त्री, पुरुषों ने पूजन में भाग लिया था। यह विधान भी इतिहास में अमर रहेगा।

सर्वत्र धर्म प्रभावना करते हुए संघ वापस मोरीगेट आ गया। यहाँ पर दीपावली के दिन माताजी ने चातुर्मास समापन किया। इसी मध्य श्री रमेशचन्द जैन (पी. एस.) ने सपरिवार पंचपरमेष्ठी मण्डल विधान का आयोजन किया। जिसमें उन्होंने तीन दिन तक बड़े ही आनन्द के साथ धर्माराधना की।

पुनरपि इन्द्रध्वज विधान

चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर वहाँ पर राजेन्द्रप्रसाद जी पहुँचे और उन्होंने प्रार्थना की कि—

"माताजी ! मैं आपके सान्निध्य में दरियागंज बाल आश्रम के मन्दिर में इन्द्रध्वज विधान कराना चाहता हूँ आप स्वीकृति दीजिये।"

उनके भक्तिभाव को देखकर माताजी संघसहित पुनः दरियागंज आ गईं। यहाँ का विधान भी बहुत ही सुन्दर ढंग से हुआ। इस विधान में राजेन्द्रप्रसादजी गोटे वालों ने गोले को छीलकर उस पर केशर चढ़ाकर उसमे गोटे की तिलगी लगाकर चढ़ाये तथा मन्दिरों की स्थापना कर ध्वजा तो चढ़ा ही रहे थे। इससे यह विधान मण्डल देखते ही बनता था। इसका टेलीविजन पर भी दृश्य दिखाया गया था।

ध्यान साधना शिविर

ग्रीन पार्क के श्रावक माताजी के पास श्रीफल चढ़ाकर प्रार्थना करने लगे—

"माताजी ! आप संघ सहित ग्रीनपार्क पधारकर हम सभी को धर्म लाभ का अवसर देवें।"

रत्नमती माताजी की इच्छा से माताजी ने ग्रीनपार्क विहार कर दिया। यहाँ पर ध्यान साधना शिविर का आयोजन हुआ। इसमें माताजी ने "ह्रीं" बीजाक्षर का ध्यान करना सिखाया। इस "ह्रीं" में पाँच वर्ण है और उनमे चौबीस तीर्थंकर विराजमान है। इस तरह यह ध्यान शिविर १५ दिनों तक चलता रहा। प्रकाशचन्दजी जौहरी, डा० कैलाशचन्द, पन्नालालजी गंगवाल आदि। पुरुषों ने तो आगे होकर माताजी के उपदेश मे और शिविर में लाभ लिया ही, यहीं पर श्री निर्मल कुमारजी सेठी जो कि अपने पिता श्री हरकचन्दजी का इलाज करा रहे थे उन्होंने भी प्रतिदिन आकर संघ की भक्ति की और हर एक धर्म कार्यों मे भाग लिया।

इस ध्यान शिविर मे रत्नमती माताजी को बहुत ही आनन्द आया। यहाँ पर साहू अशोक कुमार जैन भी कई बार माताजी के दर्शनार्थ आये तथा उनकी धर्मपत्नी इन्दु जैन भी एक दो बार आई उन्होंने माताजी से ध्यान के बारे मे बहुत सी चर्चायें की।

यहाँ पर प्रतिदिन प्रातः द्रव्यसंग्रह की कक्षा चलती थी। पुनः माताजी का प्रवचन होता था। मध्याह्न मे भी सामायिक विधि का अध्ययन कराया गया था।

विधानका चमत्कार

यहाँ पर अनेक मण्डल विधान सम्पन्न हुए। उसमें श्री निर्मलकुमाजी ने महामन्त्र का अखण्ड पाठ और पंच परमेष्ठी विधान किया। इस अवसर पर उनके पिताजी हास्पिटल से अकस्मात् वहाँ आ गये। इन्होंने छह महीने से मन्दिर के दर्शन नहीं किये थे। यहाँ आकर घण्टे भर बैठे, अर्घ्य चढाये, पुनः माताजी का आशीर्वाद लिया। इसे निर्मलकुमारजी ने माताजी के विधान का चमत्कार ही समझा था।

जम्बूद्वीप का शिलान्यास

माघ सु० पूर्णिमा १९८० को साहू श्रेयांसप्रसादजी और साहू अशोककुमार जैन के करकमलों से हस्तिनापुर में बनाने वाले भरत क्षेत्र आदि का शिलान्यास विशाल समारोह पूर्वक सम्पन्न कराया गया था। उस समय साहूजी ने इस रचना में सहयोग हेतु एक लाख की राशि घोषित की थी। यह सब माताजी के आशीर्वाद से ही हो रहा था।

यहाँ पर नन्दलालजी, मेहरचन्द, प्रकाशचन्द जौहरी आदि के घरों में संघ का आहार होता रहता था। इस प्रकार यहाँ की समाज ने दान, पूजन, उपदेश आदि का बहुत ही लाभ लिया था।

इन्द्रध्वज विधान नई दिल्ली में

यहाँ ग्रीन पार्क में लगभग ढाई महीने तक संघ रहा। इसके बाद लाला श्यामलालजी ठेकेदार आदि के विशेष आग्रह से माताजी नई दिल्ली राजा बाजार मन्दिर में आ गईं। यहाँ पर फाल्गुन की आष्टाह्निका मे इन्द्रध्वज विधान कराया गया। जिसमें ए० के० जैन (एक्सपोर्ट इंडियन) और भीकूराम जैन के घर की महिलाओं ने विशेष लाभ किया था।

यहाँ से पहाड़गंज के श्रावकों ने अपने स्थान पर संघ का विहार कराया, वहाँ पर भी माताजी के उपदेश, शिविर और विधान के कार्यक्रम सम्पन्न हुए। यहाँ पर पूज्य रत्नमती माताजी की प्रेरणा से अनेक महिलाओं ने, बालिकाओं ने माताजी से णमोकार व्रत, जिनगुणसम्पत्तिव्रत आदि ग्रहण किये थे। बहुतों ने अणुव्रत आदि के नियम लिए थे।

यहाँ पर बम्बई से सौ० उषा बहन, और कु० रजनी माताजी के पास धर्म ध्यान के लिए आई थी जो वर्षा तक संघ में रहकर धार्मिक पढ़ाई की और संघ की भक्ति, वैयावृत्ति का लाभ लिया।

संघ कूचासेठ में

पुनः राजेन्द्रकुमारजी, पन्नालालजी, मेहताब सिंहजी आदि के आग्रह से संघ कूचासेठ मे कम्मोजी को धर्मशाला मे आ गया। वहाँ पर महावीर जयंती पर त्रिदिवसीय कार्यक्रम मे माताजी के उपदेश से विशेष प्रभावना हुई थी।

शिक्षण शिविर

यहाँ ग्रीष्मावकाश में माताजी की प्रेरणा से शिक्षण शिविर लगाया गया। जिसके कुलपति पं० हेमचन्द जी (अजमेर) रहे। इसमें बाहर से आगत अनेक विद्वानों ने तथा संघस्थ विद्वानों ने

यहाँ के बालक, बालिकाओं को, प्रौढ़ पुरुष और महिलाओं को अध्ययन कराया। पं० बाबूलालजी ने अपने उपदेश से सभा में सारी समाज को प्रभावित कर दिया। इससे प्रसन्न हो वेदवाड़ा की समाज ने पर्यूषण पर्व में पण्डितजी से अपने यहाँ आने की स्वीकृति ले ली थी।

रत्नमती माताजी अस्वस्थ

यहाँ पर गर्मी के भीषण प्रकोप से रत्नमती माताजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया। इन्हें पीलिया हो गई और पित्त का प्रकोप अधिक हो गया। माताजी का इलाज भी बहुत ही सीमित था। हर किसी वैद्य की औषधि लेती भी नही थीं और जो कुछ दी भी जाती थी वह गुण नही कर रही थी। धीरे-धीरे एक बार पीलिया ठीक हो गई पुनः कुछ दिन बाद हो गई। थोड़े बहुत उपचार से रोग कुछ शांत हुआ। पुनः पीलिया का प्रकोप बढ़ गया। तीसरी बार पीलिया के प्रकोप से माताजी बहुत ही कमजोर हो गई थी। डाक्टर, वैद्यों ने कहा कि—

"अब इनके स्वस्थ होने की कोई आशा नही है।"

फिर भी रत्नमती माताजी का मनोबल बहुत ही दृढ़ था। वे अपनी आवश्यक क्रियाओ मे सावधान थी। बराबर प्रतिक्रमण और सामायिक पाठ को सुनती थी। तथा लेटे-लेटे ही महामन्त्र का जाप्य किया करती थीं।

सम्यक्त्व की दृढ़ता

कई एक श्रावकों ने कहा कि—

"पीलिया रोग बिना झाड़े नहीं जाता था। अतः वे लोग झाड़ा देने वाले को बुला लाये। रत्नमती माताजी ने कथमपि उससे झाड़ा नहीं कराया और माताजी से बोलीं—

"मैं मिथ्यादृष्टियों के मन्त्र का झाड़ा नहीं कराऊँगी। आप अपने मन्त्र को पढ़कर भले ही झाड़ देवें।"

तब माताजी ने उनके पास बैठकर अपने विशेष मन्त्र को पढ़कर पिच्छिका फिरा दी। दो दिन बाद रत्नमती माताजी को स्वास्थ्य लाभ होने लगा। सचमुच मे असाता कर्म के उदय को नष्ट करने में महामन्त्र और उससे सम्बन्धित मन्त्र ही समर्थ है। जब ये संसार रोग को नष्ट कर सकते हैं तो ये पीलिया आदि छोटे-छोटे रोगों को नष्ट नही कर सकते क्या?

गुणकारी ठण्डाई

दिल्ली कूचासेठ में ही एक अतरसेन जैन वैद्यजी रहते हैं। ये बहुत ही वृद्ध हैं, अच्छे अनुभवी हैं। श्रावकों ने उन्हे बुलाया उन्होंने माताजी को बहुत ही कमजोर देखा साथ ही पीलिया का प्रकोप बढ़ा हुआ था। उनकी बताई हुई एक साधारण सी ठण्डाई भी माताजी के लिए रसायन बन गई तब से सन् १९८० से लेकर आज सन् १९८३ तक यह ठण्डाई गर्मी सर्दी और वर्षा इन ऋतुओं में माताजी को दी जाती है। पौष, माघ की ठण्डी मे संघस्थ सभी कहते हैं कि—

"इतनी ठण्डी में भी रत्नमती माताजी को ठण्डाई चाहिये।"

और गर्मी में भी इस ठण्डाई को किंचित् गर्म कर ही दिया जाता है तब भी सब लोग हँसते हैं कि—

"रत्नमती माताजी गर्म ठण्डाई लेती हैं।"

चूँकि ठण्डाई शब्द और गरम शब्द का परस्पर में विरोध है। परन्तु इनके लिये यह ठण्डाई किंचित् गर्म करके ही सदा काल दी जाती है। यह ठण्डाई कासनी के बीज सौफ आदि ४-५ वस्तुओं से ही बनी है। इसमें और कोई विशेष चीजें नहीं हैं किन्तु है यह रसायन से भी अधिक गुणकारी औषधि।

इस प्रकार माताजी के मन्त्र और इस ठण्डाई से रत्नमती माताजी स्वस्थ हो गईं। पीलिया रोग खत्म हो गया। तब वैद्य, डाक्टरों ने बहुत ही आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा—

"साधुओं के पास जो साधना है वही सबसे बड़ा इलाज है। हम लोग भला उनका क्या इलाज कर सकते हैं।"

महाशांति विधान

इस वर्ष दो ज्येष्ठ हुए थे। द्वितीय ज्येष्ठ का शुक्ल पक्ष १६ दिन का था। विजेन्द्रकुमार जी ने माताजी के पावन सान्निध्य में विधिवत् १६ दिन का शांति विधान किया। इतनी गर्मी में उनके परिवार के नवयुवकों, बालकों ने भी तथा समाज के वृद्ध मेहताब सिंह जौहरी आदि महानुभावों ने विधान का अनुष्ठान किया था। दिन में भी संयम और रात्रि में सर्वथा चतुराहार (जल का भी) त्याग यह नियम शहर के नवयुवकों के लिये गर्मी के दिनों मे १६ दिन तक बहुत ही सराहनीय था। इनका विधान इनकी इच्छा के अनुसार बहुत ही सफल रहा है।

पुनः चातुर्मास दिल्ली में

पुनरपि दिल्ली समाज के विशेष आग्रह से माताजी ने सन् १९८१ में यहीं पर चातुर्मास स्थापित कर लिया था। इस चातुर्मास में भी यहां पर धर्म प्रभावना के अनेक सफल आयोजन हुए थे।

मेरु मन्दिर में इन्द्रध्वज विधान

यहां मेरु मंदिर के श्रावकों ने पूज्य माताजी के सान्निध्य में इन्द्रध्वज विधान का आयोजन किया। विधानाचार्य पं० लाडलीप्रसादजी, सवाईमाधोपुर वाले थे। यह विधान आषाढ़ की आष्टान्हिका पर्व में हुआ था।

यहां मस्जिद खजूर मोहल्ला में एक मेरु मंदिर नाम से प्रसिद्ध मंदिर है। इसमें नंदीश्वर के बावन चैत्यालयों की बड़ी सुन्दर रचना है। इन प्रत्येक चैत्यालयो में धातु की चार-चार जिन प्रतिमायें विराजमान हैं। मध्य में पाँच-पाँच मेरु बने हुए है। "दिल्ली में नंदीश्वर रचना बनी हुई है" यह बात यहीं के बहुत कम जैनों को मालूम है। माताजी ने कई बार इन लोगों को कहा कि इसका प्रचार करना चाहिये।

इन्द्रध्वज विधान

यहां पर पूज्य माताजी के सान्निध्य में पन्नालालजी सेठी डीमापुर वालों ने बहुत ही प्रभावना के साथ इन्द्रध्वज मण्डल विधान कराया। जिसमें अनेक दिल्ली के स्त्री पुरुषों ने भी भाग लिया।

चातुर्मास के पुण्य अवसर पर यहां माताजी के सान्निध्य में छोटे-बड़े सभी २५ से भी अधिक विधान सम्पन्न हुए थे।

पर्यूषण पर्व

पर्यूषण पर्व में यहाँ पं० सुमेरुचन्द दिवाकर आये हुए थे। प्रतिदिन पूज्य माताजी का प्रातः धर्मशाला में दशधर्म पर विशेष प्रवचन हुआ तथा मध्याह्न में बड़े मंदिर जी मे विद्वानों द्वारा तत्त्वार्थसूत्र पर प्रवचन हुए और माताजी का प्रवचन भी हुआ। इस पर्व से जैन समाज को माताजी के सान्निध्य से विशेष लाभ रहा है।

समयसार शिविर

माताजी की विशेष भावना के अनुसार यहाँ अक्टूबर मे दश दिन के लिये प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। इसमे ८० से भी अधिक विद्वानों ने लाभ लिया था। डा० पन्नालालजी साहित्याचार्य को कुलपति निर्धारित किया गया। इस शिविर मे पं० कैलाशचन्दजी शास्त्री, प्रो० लक्ष्मीचन्द जैन आदि भी आये और उनके भी सारगर्भित भाषण हुए थे। यह शिविर भी अपने आप में बहुत ही सफल रहा।

इस शिविर में शरद पूर्णिमा के दिन माताजी के जन्मदिवस के उपलक्ष्य में पन्नालालजी सेठी ने प्रीतिभोज का आयोजन किया जिसमें ५ हजार से अधिक स्त्री पुरुष आये थे। तथा प्रकाश-चन्द सेठी गृहमंत्री ने माताजी के जन्म दिवस पर 'दिगम्बर मुनि' पुस्तक का विमोचन कर दीप प्रज्ज्वलित कर शिविर का उद्‌घाटन किया था।

सहस्राब्दी महोत्सव

इस वर्ष भगवान् बाहुबली की प्रतिमा को प्रतिष्ठित हुए एक हजार वर्ष पूर्ण हो रहे थे। श्रवणबेलगोल के भट्टारक चारुकीर्ति एलाचार्य विद्यानन्दजी महाराज आदि के सत्प्रयत्न से बहुत बड़े रूप में महामस्तकाभिषेक महोत्सव होने वाला था। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर धर्म का प्रचार प्रसार हो रहा था।

इस अवसर पर त्रिलोक शोध संस्थान के लोगों ने भी माताजी से अनुरोध किया कि—

"आप भगवान् बाहुबली सम्बन्धी साहित्य लिखें।" कामदेव बाहुबली, बाहुबली नाटक आदि कई पुस्तकें तैयार कर दी। माताजी द्वारा रचित पद्यमय भगवान् बाहुबली का ९० मिनट का एक संगीतमय कैसेट तैयार कराया गया। और इस महोत्सव के उपलक्ष्य मे संस्थान ने एक लाख की संख्या में साहित्य प्रकाशित किया था। उसमें चित्रकथा के रूप में एक भरत बाहुबली पुस्तक भी माताजी द्वारा तैयार की गई थी। जिसे श्री रमेशचन्द जैन पी० एस० की प्रेरणा स इन्द्रजाल कॉमिक्स टाइम्स आफ इण्डिया वालों ने डेढ़ लाख करीब प्रकाशित कराई थी। जो कि हिन्दी इंग्लिश दोनों में छपी है।

मंगल कलश प्रवर्तन

इस महोत्सव में इन्दौर के देवकुमार सिंह काशलीवाल कैलाशचन्द चौधरी आदि ने मंगल कलश प्रवर्तन योजना बनाई। पूज्य माताजी की उपस्थिति मे विशाल पण्डाल मे श्री इंदिरा गाँधी ने इस मंगल कलश का प्रवर्तन किया। इससे पूर्व मिश्रीलालजी गंगवाल, कैलाशचन्द चौधरी आदि ने पूज्य माताजी से प्रार्थना करके उनके करकमलों से एक यन्त्र लेकर इस कलश में स्थापित कर

दिया था। जिसका प्रभाव अभूतपूर्व रहा है यह बात आज भी इन्दौर के कार्यकर्ता लोग कहते रहते हैं। इस अवसर पर माताजी का ५ मिनट का प्रवचन भी बहुत ही प्रभावशाली हुआ था।

इस प्रसंग पर आ० रत्नमती माताजी ने भी बड़े ही उत्साह से इस सभा में पधार कर मंगल कलश प्रवर्तन में अपना शुभाशीर्वाद प्रदान किया था।

संघ महिलाश्रम में

चातुर्मास समाप्ति के बाद श्री मखमलीजी, कांताजी आदि के विशेष अनुरोध से संघ का पदार्पण महिलाश्रम (दरियागंज) में हुआ था। यहाँ पर भी महिलाओं ने तथा आश्रम की बालिकाओं ने माताजी के प्रवचन का बहुत ही लाभ लिया था। यहाँ के धार्मिक और सुन्दर वातावरण से से रत्नमती माताजी बहुत ही प्रभावित रही थीं।

महामस्तकाभिषेक के अवसर पर दिल्ली विराजने से हजारों यात्रियों ने माताजी के दर्शनों का और उपदेश का लाभ लिया।

गजरथ महोत्सव दिल्ली में

दिल्ली के एक दाना बेचने वाले प्रेमचन्द नाम के श्रावक ने उदारमना होकर अपने कष्ट की कमाई से एक नया रथ बनवाया। माताजी ने पुनः पुनः प्रार्थना कर लालमंदिर में इन्द्रध्वज विधान का पाठ कराया। पुनः फाल्गुन सुदी ११ के उत्तम मुहूर्त में उस नये रथ में श्री जी विराजमान किये गये। पुनः उसमें हाथी लगाकर गजरथ महोत्सव यात्रा निकाली गई। यह अवसर दिल्ली के इतिहास में पहला ही था।

इसके बाद महामस्तकाभिषेक से आये भक्तों ने बी० डी० ओ० पर लिये गये भगवान् बाहुबली के अभिषेक का सारा दृश्य बी० डी० ओ० द्वारा माताजी को दिखाया जिसे देख कर ज्ञानमती माताजी, रत्नमती माताजी और शिवमती माताजी तीनों ही माताजी गद्गद हो गईं।

[२६]

संघ का मंगल पदार्पण हस्तिनापुर में

माताजी के मन में कितने ही दिनों से यह भावना चल रही थी कि—

"इस जम्बूद्वीप का सुन्दर मॉडल बनवाकर एक रथ पर स्थापित कर उसे सारे भारतवर्ष में घुमाया जावे और भगवान् महावीर के उपदेशों का जन-जन में विशेष प्रचार किया जावे।"

दिल्ली से विहार करते समय माताजी ने अपनी यह भावना जयकुमारजी एम० ए० भागलपुर, निर्मलकुमारजी सेठी आदि के सामने कही थी।

ज्ञानज्योति प्रवर्तन की रूपरेखा पर ऊहापोह

यहाँ हस्तिनापुर मे माताजी का चैत्र सुदी ५ के दिन प्रात. मंगलप्रवेश हुआ। और मध्याह्न में श्रीमान् अमरचन्द जी पहाड्या कलकत्ते वाले सपत्नीक आये। साथ मे उम्मेदमलजी पांड्या भी थे। इस विषय में माताजी ने सारी बातें बताईं। अमरचन्द बहुत ही प्रभावित हुए और बोले—

"माताजी ! कलकत्ते पहुँचकर में अन्य लोगों से बातचीत करके कुछ कह सकूँगा। लेकिन यह आयोजन की रूपरेखा तो बहुत ही बढ़िया है।"

पुनः कतिपय श्रीमन्तों ने माताजी से निवेदन किया कि—

"माताजी ! इस प्रवर्तन कार्य में बहुत ही श्रम होगा, सहज कार्य नहीं है। आपको तो यह जम्बूद्वीप रचना पूरी करानी है। हम श्रीमान् लोग आपस में एक एक लाख की राशि का दान लिखा देंगे। ऐसे १५–२० लोगों के नाम की लिस्ट बनाये लेते हैं। जिससे एक डेपुटेशन लेकर आपस में मिलकर इस कार्य को पूर्ण करा लेंगे। अतः इस जम्बूद्वीप के भारत भ्रमण की योजना को हाथ में लेने के लिये सोचना कठिन है।"

माताजी ने कहा—

"मुझे मात्र जम्बूद्वीप पूर्ण कराने की ही भावना हो ऐसा नहीं है प्रत्युत् मैं चाहती हूँ कि सारे भारतवर्ष में जम्बूद्वीप क्या है। इसकी जानकारी हो और साथ ही जैनधर्म का खूब प्रचार हो। जैन क्या जैनेतर लोग भी जम्बूद्वीप और जैनधर्म से अच्छी तरह परिचित हो जायँ इस महती प्रभावना के लिये ही मेरा यह अभिप्राय है।"

मैंने माताजी के सान्निध्य में लगभग १६ वर्षों में यह अनुभव किया है कि माताजी जो भी सोच लेती हैं वह अवश्य करती हैं। उनका आत्मविश्वास, मनोबल बहुत ही ऊँचा है। और कार्य को प्रारम्भ करने के बाद उसमें कितनी ही विघ्न बाधायें क्यों न आ जावें, कितने ही विरोधी खड़े हो जावें किन्तु माताजी उनको कुछ भी नहीं गिनती है।

यहाँ भी यही बात रही। रूपरेखा बनते-बनते चातुर्मास स्थापना के प्रसंग पर आषाढ़ सु० १५ को इसके लिए मीटिंग रखी गई। इसी अवसर पर इस आषाढ़ की आष्टाह्निका में श्री निर्मलकुमार जी सेठी लखनऊ और पन्नालाल जी सेठी डीमापुर वालों ने इन्द्रध्वज मण्डल विधान का विशाल रूप से आयोजन किया था। इस विधान में जो आनन्द आया सो अकथनीय है। इस विधान मे पं० बाबूलाल जी, पं० कुञ्जीलाल जी भी पधारे हुए थे।

चातुर्मास स्थापना और इन्द्रध्वज विधान

इस पर्व में आषाढ़ सुदी १४ को पूर्व रात्रि में माताजी ने संघ सहित यहाँ चातुर्मास स्थापना की। १६ जुलाई को मीटिंग में अनेक श्रीमान् और विद्वानों ने माताजी के सान्निध्य मे बैठकर निर्णय किया कि—

"यह प्रवर्तन कार्य अवश्य किया जाय और इस भव्य मॉडल का नाम 'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति' रक्खा जाय। इसके लिये सुन्दर मॉडल बनाने का आर्डर किया जाय और अक्टूबर में एक जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति सेमिनार नाम से विद्वद्गोष्ठी की जाय। तदनुरूप सारी रूपरेखा बना ली गई। और इस कार्य की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गईं। ज्योतिप्रवर्तन के लिये एक कमेटी का गठन किया गया जिसमें पं० बाबूलाल जी को ज्योति के संचालन का भार सौंपा गया।

इस चातुर्मास में अनेक विधि विधान होते रहे। भाद्रपद में श्री प्रेमचंद जी महमूदाबाद वाले लगभग २५ स्त्री पुरुष आये और दिल्ली से आनन्द प्रकाश (सोरम वाले) आये। इन लोगों

ने यहाँ पर्यूषण पर्व में तीस चौबीसी विधान किया और दशधर्म तथा तत्त्वार्थसूत्र का प्रवचन सुना।

जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति सेमिनार

इस सेमिनार के उद्‌घाटन के बाद पं० बाबूलाल जी जमादार का अभिनन्दन ग्रन्थ विमोचन कर उसे माताजी को समर्पित किया गया था। पुनः माताजी ने पंडित जी को वह अभिनन्दन ग्रन्थ देकर बहुत-बहुत आशीर्वाद दिया था।

अक्टूबर के इस सेमिनार मे डॉ० पन्नालाल जी साहित्याचार्य आदि अनेक विद्वान् पधारे और यूनिवर्सिटी, कालेज आदि से अनेक प्रोफेसर विद्वान् तथा अनेक श्रीमान् आदि एकत्रित हुए। युवा परिषद् की अनेक शाखाओं के युवकगण आये। इस सेमिनार में अनेक निबंध पढ़े गये और हर सम्प्रदाय में मान्य 'जम्बूद्वीप' पर पर्याप्त ऊहापोह हुआ। इसके मध्य इस जम्बूद्वीप प्रवर्तन की मीटिंग में सभी विद्वानों, श्रीमानों और युवकों ने अपने अपने विचार व्यक्त किये। जिसमें सभी ने इस योजना की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी और अधिक से अधिक प्रभावना की अपेक्षा की थी। इसी मध्य डॉ० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल ने कहा कि—

पौराणिक और आधुनिक विद्वान्, श्रीमान् तथा युवावर्ग इन सबको एक मंच पर लाने का श्रेय आज पूज्य माताजी को है। यहाँ का आज का यह त्रिवेणी संगम इतिहास में अमर रहेगा।

इस सभा का संचालन पं० बाबूलाल जी जमादार कर रहे थे। पुनः सभा में उल्लास और उमंग का क्या कहना। उनके उत्साह से सभी का उत्साह बढ़ रहा था और प्रत्येक के मुख से माताजी के सर्वतोमुखी कार्य की प्रशंसा सुनी जा रही थी।

इस प्रकार सभी ने ज्योति में अपने-अपने अनुरूप सहयोग देने को कहा। कुल मिलाकर यह सेमिनार बहुत ही सफल रहा। इस मध्य श्री त्रिलोकचंद कोठारी ने अपने भाषण में बार-बार माताजी से दिल्ली विहार करने के लिये प्रार्थना की किन्तु माताजी ने मात्र हँस दिया। उस समय दिल्ली विहार के बारे मे भी विचार नही किया।

आ० रत्नमती अभिनन्दन ग्रन्थ रूपरेखा

इन सभी धर्म प्रभावना के प्रसंग मे कतिपय विद्वानों ने मिलकर विचार किया कि—

"जिन आर्यिका ज्ञानमती माताजी से समाज को इतना बड़ा लाभ मिल रहा है उनकी जन्मदात्री माता यही पर स्वयं आर्यिका के ही रूप में विद्यमान है। १३ सन्तानों को जन्म देकर पाल, पोषकर आज इस वृद्धावस्था में वे इस कठोर संयम साधना मे रत हैं। हमलोगों को तो इनका परिचय भी मालूम नहीं है। जब कि इनके उपकारों से समाज कभी भी उऋण नहीं हो सकता है। अतः बड़े उत्साह के साथ इनका अभिनन्दन होना चाहिये।"

उन विद्वानों ने पंडित बाबूलाल को आगे किया। पंडित जी ने पूज्य ज्ञानमती माताजी से स्वीकृति लेकर सभा में ही यह घोषित कर दिया कि—

"आर्यिका रत्नमती माताजी का अभिनन्दन करना है। अतः एक अभिनन्दन ग्रन्थ तैयार करना है।"

साथ ही एक सम्पादक मण्डल भी निश्चित कर दिया गया। जिसमें—

१. डॉ० पन्नालाल जी साहित्याचार्य, सागर
२. पं० कुंजीलाल जी, गिरीडीह
३. डॉ० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल, जयपुर
४. पं० बाबूलाल जी जमादार, बड़ौत
५. ब्र० पं० सुमतिबाई शहा, सोलापुर
६. ब्र० पं० विद्युल्लता शहा, सोलापुर
७. कु० माधुरी शास्त्री, संघस्थ
८. अनुपम जैन

इधर जम्बूद्वीप का मॉडल तैयार कराया जा रहा था। संस्थान के कार्यकर्तागण यह सोच रहे थे कि—

"इस ज्ञानज्योति प्रवर्तन को हम दिल्ली से ही प्रारम्भ करें तथा भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिराजी के हाथों इसका उद्‌घाटन हो तो राष्ट्रीय सहयोग विशेष रहने से धर्म प्रभावना बहुत होगी।"

इसके लिए इन लोगों ने पुनः माताजी से दिल्ली विहार करने के लिए प्रार्थना की और बोले—

"माताजी! यह जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति प्रवर्तन दिल्ली से ही हो चूंकि वह भारत की राजधानी है। उस अवसर पर हम लोग आपका सान्निध्य अवश्य चाहते हैं। इसलिए आप संघ सहित दिल्ली विहार कीजिये।"

माताजी ने आ० रत्नमती माताजी से विचार-विमर्श किया किन्तु उनका स्वास्थ्य अब बहुत कमजोर हो चुका था अतः उन्होंने कहा कि—

जब रत्नमती माताजी ने यह सुना तो उन्होंने कहा कि—

"मेरा अभिनन्दन ग्रन्थ बिलकुल नहीं निकालना चाहिए। जो भी अभिनन्दन करना हो आप लोग आ० ज्ञानमती माताजी का ही करें।"

किन्तु पण्डित बाबूलाल जी ने कहा कि—

"ये साधु-साध्वियाँ तो मना करते ही रहते हैं, हम लोगों को तो अपना कार्य करना है।"

रत्नमती माताजी ने कहा—

"अब मेरा शरीर इधर-उधर विहार के लायक नहीं रहा है और मेरी दिल्ली जाने की इच्छा नहीं है। क्योंकि शहर का हल्लागुल्ला अब हमारे दिमाग को सहन नहीं होता। इसलिए मैं यहीं रहूँगी आप दिल्ली जाकर ज्योति प्रवर्तन कराकर आ जाना।"

माताजी ने विचार किया कि—

'इनका स्वास्थ्य अब अकेले छोड़ने लायक भी नहीं है। अभी-अभी दो महीने पूर्व भी अकस्मात् चक्कर आने से गिर गईं तो हम लोगों ने णमोकार सुनाना शुरू कर दिया था। क्या पता किस समय शरीर छूट जाय अतः इन्हें यहाँ अकेली कैसे छोड़ कर जाना……।"

इसी ऊहापोह में महीना निकल गया पुनः माताजी ने कहा—

"धर्मप्रभावना की दृष्टि से श्रावक लोग हमारा सान्निध्य चाहते हैं वे मेरी अनुपस्थिति में

ज्योति प्रवर्तन कराने को कथमपि तैयार नहीं हैं। आपको अकेले छोडना कुछ समझ में नहीं आता क्योंकि मैंने महावीर जी के रास्ते में स्वयं अनुभव किया था। संघस्थ सुबुद्धिसागर जी के पैर में फोड़ा हो जाने से वे सवाईमाधोपुरा रुकने को तैयार हो गये किन्तु आचार्य शिवसागर जी महाराज ने उन्हें डोली पर बैठने का आदेश दिया और साथ ही लिया चूँकि अस्वस्थ साधु को अकेले छोड़ना संघ के प्रमुख साधु का कर्तव्य नहीं है। अतः आपको एक बार कष्ट झेलकर भी दिल्ली चलना चाहिए।"

इस प्रकार की समस्या को देखकर रत्नमती माताजी ने सोचा कि—

"यदि मैं इस समय दिल्ली नहीं जाती हूँ तो ये भी नहीं जा रही हैं इतने महान् धर्म प्रभावना के कार्य में व्यवधान पड़ रहा है। अतः यद्यपि मुझे विहार में कष्ट है फिर भी जैसे हो वैसे सहन करना चाहिए। मैं इनके द्वारा होने वाली धर्म की इतनी बड़ी प्रभावना में बाधक क्यों बनूं।"

यही सोचकर रत्नमती माताजी ने विहार करना स्वीकार कर लिया तब फाल्गुन वदी चतुर्थी को यहाँ से दिल्ली के लिए माताजी ने संघ सहित मंगल विहार कर दिया।

पुनः इन्द्रध्वज विधान दिल्ली में

मोरीगेट की समाज का विशेष आग्रह था कि प्रारम्भ में संघ यहीं ठहरे। कुछ रत्नमती माताजी की कृपा भी उनपर विशेष थी। इसमें यह भी कारण था कि यहाँ पर मन्दिर में बाहर का शोरगुल सुनाई नही देता है। जिससे रत्नमती माताजी को शांति रहती थी। इसीलिए माताजी ने भी मोरीगेट के भक्तों की प्रार्थना स्वीकार कर ली। ये लोग मोरीगेट पर आये और शांतिबाई ने कहा—

"माताजी। आपके मंगल पदार्पण के साथ ही आष्टाह्निक पर्व आ रहा है। कोई न कोई विधान कराना है।"

माताजी ने इन्द्रध्वज विधान की राय दी चूँकि माताजी को इस पर बहुत ही प्रेम है। भक्त मण्डली ने भी माताजी की राय को अच्छी समझकर विधान की तैयारी प्रारम्भ कर दी।

माताजी मोरीगेट पर आ गईं और इन्द्रध्वज विधान शुरु हो गया। विद्यापीठ के विद्यार्थी कमलेश विशारद ने यह विधान कराया।

ज्ञानज्योति प्रवर्तन की तैयारियाँ

यहाँ पर संस्थान की मीटिंगें होती रहीं और इधर माडल को पूर्ण कराने की, उसके लिए नई ट्रक खरीदने की, मार्ग निर्धारित करने की तथा प्रधानमन्त्री को लाने की गति विधि चलती रही। इधर माताजी के सान्निध्य में मवाना, मेरठ, दिल्ली आदि के भक्तगण कोई न कोई विधान कराते ही रहे।

जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति प्रवर्तन समारोह

माताजी की तपस्या के प्रभाव से हम लोग इतने बड़े कार्य को प्रारम्भ करने में सफल हुये। ज्येष्ठ सुदी तेरस दि० ४ जून १९८२ को लालकिला मैदान दिल्ली के सामने विशाल पांडाल बनाया गया। जे० के० जैन संसद सदस्य के सक्रिय सहयोग से प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी पधारीं। मंच पर पधारने के पहले ही माताजी की कुटिया में प्रवेश कर उन्होंने माताजी को नमस्कार किया

और पास में बैठ गईं, पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार वहाँ कोई नहीं रहा। जैन समाज में आर्यिकाओं में रत्न ऐसी साध्वी के पास बैठकर भारत की प्रधानमन्त्री इंदिरा गांधी ने एक अपूर्व आनन्द का अनुभव किया।

"राजनैतिक और धर्म के नाम पर सांप्रदायिक संघर्षों की शांति कैसे हो?"

इंदिराजी ने अपनी समस्या रखी उस पर पूज्य माताजी ने कहा कि—

"सही उपाय महापुरुषो के उपदेश अहिंसा और नैतिकता ही है।"

इत्यादि प्रकार से माताजी ने धर्म का महत्त्व बतलाते हुए चर्चायें की। यद्यपि ५ मिनट का समय निर्धारित था फिर भी इन्दिराजी १५ मिनट तक माताजी से बातचीत करती रही।

अनन्तर माताजी और इन्दिराजी दोनों के मञ्च पर आते ही जनता ने जयघोष और बैंड बाजों के साथ स्वागत किया। जे० के० जैन के कुशल संचालन मे सारे कार्यक्रम सम्पन्न हुए। और इन्दिराजी ने विधिवत् इस जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति के वाहन पर स्वस्तिक बनाकर आरती करके श्री फल चढाया और अपने कर कमलों से प्रवर्तन किया। आर्यिका ज्ञानमती माताजी के शुभाशीर्वाद से इस ज्योति का प्रवर्तन प्रारम्भ हो गया जो अभी महाराष्ट्र में हो रहा है।

इसके अनन्तर यहाँ पर तीस चौबीसी का विधान कराया गया।

कूचासेठ में चातुर्मास

पुनः राजेन्द्र प्रसाद जी आदि शहर वालों के विशेष आग्रह से माताजी संघ सहित अतिथि भवन (कम्मोजी की धर्मशाला) में आ गईं। यही पर चातुर्मास स्थापित कर लिया। यहाँ पर माता जी के सान्निध्य में विधान तो होते ही रहते थे। बड़े मन्दिर में उपदेश भी होते रहे।

पर्यूषण पर्व

दशलक्षण पर्व में डॉ० पन्नालालजी सागर आये थे। उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र पर प्रवचन किया और माताजी के मुख से दशधर्म का प्रवचन सुनने को मिला। इससे पूर्व चारित्र च० आचार्य शांतिसागर जी की पुण्य तिथि के अवसर पर वेदवाडा में माताजी का उपदेश हुआ। इस तरह विशेष अवसरों पर दिल्ली में जनता को माताजी के उपदेश का लाभ मिलता ही रहा है।

इन्द्रध्वज विधान पहाड़गंज

संस्थान के कार्यकर्ता श्री हेमचंद जी ने माताजी को पहाड़गंज चलने के लिए प्रार्थना की। वहाँ पर इन्द्रध्वज विधान का बड़े रूप में आयोजन किया। अच्छी सफलता रही, यहाँ की समाज ने माताजी से अनेक व्रत आदि भी ग्रहण किये। यह विधान भी विद्यापीठ के शास्त्री प्रवीणचंद ने बड़े अच्छे ढंग से कराया था।

रत्नमती माताजी अस्वस्थ

यहाँ रत्नमती माताजी को ज्वर आने लगा। उस प्रसंग में इतनी कमजोर हो गईं कि एक दिन आहार में उनका हाथ छूट गया और चक्कर आ गया। माताजी को णमोकार मन्त्र सुनाती रहीं। उस समय उनकी स्थिति ऐसी हो गई थी कि समाधि हो जाएगी। किन्तु महामन्त्र के प्रभाव से धीरे-धीरे उन्हें स्वास्थ्य लाभ हुआ।

इन्द्रध्वज विधान शाहदरा में

इधर नवीन शाहदरा के रमेशचंद जैन ने आकर माताजी से बहुत ही आग्रह किया तब माताजी संघ सहित वहाँ भी पहुँच गईं। वहाँ पर भी इन्द्रध्वज विधान के होने से बहुत धर्मप्रभावना हुई। विधान के अन्त में उन्होंने रथयात्रा निकाली। पूरे विधान की इन लोगों ने फिल्म तैयार कराई।

इसी मध्य महमूदाबाद से प्रेमचंद जी लगभग २०-२५ लोग के साथ आये। उन्होंने भी माताजी सान्निध्य में तीस चौबीसी विधान किया।

मन्दिर का शिलान्यास

भोगल के श्रावकों ने माताजी से विशेष प्रार्थना करके स्वीकृति ले ली। माताजी के सान्निध्य में श्री प्रकाशचंद सेठी गृहमन्त्री के कर कमलों में मन्दिर का शिलान्यास करवाया था। यह कार्य भी समाज में अच्छी धर्म प्रभावना सहित सम्पन्न हुआ।

जम्बूद्वीप सेमिनार

जे० के० जैन के सफल प्रयास से इस सन् ८२ के जम्बूद्वीप सेमिनार का उद्घाटन फिक्की आडोटोरियम में विशाल जन मेदिनी के बीच संसद सदस्य श्री राजीव गांधी ने किया। इस सेमिनार मे पौराणिक विद्वानों और आधुनिक प्रोफेसर विद्वानों ने बहुत ही रुचि से भाग लिया। जैन तथा जैनेतर विद्वान् भी आये। इसके बाद मेरू मन्दिर के भक्तगण आष्टान्हिका पर्व में सिद्धचक्र विधान मे माताजी का सान्निध्य चाहते ही रहे किन्तु संस्थान के पदाधिकारियों की प्रार्थना से माताजी ने हस्तिनापुर की ओर विहार कर दिया। और कार्तिक शुक्ला १३ दि० २९ नवम्बर को माताजी ने इस जम्बूद्वीप स्थल पर मंगल प्रवेश किया।

हस्तिनापुर में इन्द्रध्वज विधान

यहाँ दिसम्बर मे सरधना के देवेन्द्र कुमार, मोहनलाल आदि भक्तों ने माताजी के सान्निध्य में जम्बूद्वीप स्थल पर इन्द्रध्वज विधान किया। अनन्तर फरवरी में मेरठ के पवनकुमार जैन ने इन्द्रध्वज विधान किया था। पुनः मार्च में फाल्गुन आष्टान्हिका पर्व में यही रहने वाले अनन्तवीर जैन ने यहाँ इन्द्रध्वज विधान करके विशेषरीत्या धर्मप्रभावना की।

डायनिंग हाल का उद्घाटन

६ मार्च १९८३ को जे० के० जैन संसद सदस्य के करकमलों से यहाँ जम्बूद्वीप स्थल पर यात्रियों के भोजन की सुविधा के लिए हरिश्चन्द्र जैन शकरपुर दिल्ली के द्वारा नव निर्मित विशाल डायनिंग हाल का उद्घाटन समारोह मनाया गया।

रत्नत्रय निलय उद्घाटन

अक्षय तृतीया के पावन अवसर पर भगवान् आदिनाथ की रथयात्रा निकाली गई। अनन्तर श्री उग्रसेन जैन सुपुत्र हेमचन्द जैन ने सपरिवार आकर साधुओं के ठहरने के लिए स्वयं द्वारा बनवाये गये इस रत्नत्रय निलय का उद्घाटन किया। जिसमें माताजी के संघ का प्रथम मंगल प्रवेश कराया गया। यह समारोह भी प्रभावना पूर्वक सम्पन्न हुआ।

सिद्धचक्र विधान

श्री कैलाशचन्द जी सरधना ने सपरिवार आकर सिद्धचक्र मण्डल विधान किया और माताजी का धर्मोपदेश सुनकर प्रसन्न हुए।

प्रशिक्षण शिविर

ग्रीष्मावकाश में यहाँ पर ५ जून तक प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। जिसमें कुलपति का भार डॉ० पन्नालाल जी ने ग्रहण किया। अन्य अनेक विद्वान् प्रशिक्षण देने वाले थे। तथा लगभग ४० विद्वानों ने तत्त्वार्थसूत्र, दशधर्म, प्रवचन निर्देशिका और जैन भारती इन ग्रन्थों का प्रशिक्षण ग्रहण किया। इस प्रशिक्षण में कतिपय अध्यापिकाओं और प्रबुद्ध महिलाओं ने भी भाग लिया था। यह प्रशिक्षण शिविर भी वर्तमान समय में बहुत ही उपयोगी रहा।

अनन्तर संस्थान के पदाधिकारियों की प्रार्थना से माताजी ने सन् ८३ का चातुर्मास यहीं करने का निश्चय किया।

सिद्धचक्र विधान और चातुर्मास स्थापना

महमूदाबाद से श्रेयांसकुमार जी, धर्मकुमार जी सपरिवार लगभग १५-२० लोग आये और मेरठ के चन्द्रप्रकाश, गुलाबचन्द जी आदि अनेक भक्त आये। यहाँ जम्बूद्वीप स्थल पर दोनो पार्टियों ने सिद्धचक्र मण्डल विधान किया। प्रतिदिन प्रातः और मध्याह्न माताजी का धर्मोपदेश हुआ।

आषाढ़ सुदी चौदस की पूर्व रात्रि में माताजी ने संघ सहित चातुर्मास स्थापना क्रिया सम्पन्न की।

यहाँ पर जब से माताजी पधारी हैं बराबर राजस्थान, बिहार, बंगाल, आसाम, गुजरात, महाराष्ट्र और यू० पी० के यात्रियों का तांता लगा रहता है।

प्रायः हर सप्ताह में एक दो मण्डल विधान होते रहते हैं।

[२८]

सफल गार्हस्थ्य जीवन

रत्नमती माताजी ने बचपन में अपने पिता से धार्मिक पढाई की थी। उसमें से तत्त्वार्थसूत्र, भक्तामर, समाधिमरण आदि अनेकों पाठ आज भी कंठाग्र याद हैं। बचपन में ही 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रंथ का स्वाध्याय करके आजन्म शीलव्रत ग्रहण कर लिया था और पर्वों में ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया था। वही ग्रंथ आपको दहेज में मिला था। जिसका पुनः-पुनः स्वाध्याय करते हुए अपनी संतान में धार्मिक संस्कार डाले थे।

जिस प्रकार रानी मदालसा ने अपने पुत्रों को पालना में शिक्षा दी थी कि—"शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसारमाया परिवर्जितोऽसि।" हे पुत्र ! तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरंजन है और संसार की माया से रहित है। ऐसा सुन-सुनकर उसके सभी पुत्र युवा होकर विरक्त हो घर से चले जाते थे। उसी प्रकार इन रत्नमती माताजी ने भी अपने गार्हस्थ्य जीवन मे सभी धार्मिक संस्कार डाले थे। फलस्वरूप उनकी प्रथमपुत्री मैना आज आर्यिका ज्ञानमती माताजी हैं एक अन्य पुत्री

मनोवती आर्यिका अभयमती हैं। चतुर्थ पुत्र रवीन्द्र कुमार आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत ले चुके हैं। मालती और माधुरी भी आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेकर साधु सेवा तथा आत्मकल्याण में रत हैं और जो पुत्र-पुत्रियाँ विवाहित हैं सभी शुद्ध जल का नियम लेकर साधुओं को आहार देते रहते हैं। भगवान् की नित्य पूजा करते हैं, तीर्थ यात्रायें करते हैं, स्वाध्याय करते हैं और सदा साधु संघों की वैयावृत्ति में आनन्द मानते हैं।

इन्होंने गार्हस्थ्य जीवन में भगवान् नेमिनाथ जी की प्रतिमा का तथा सुमेरु पर्वत का (ढाई फुट ऊँचा है इसमें सोलह चैत्यालय में १६ जिनबिम्ब हैं) प्रतिदिन इच्छानुसार खूब पंचामृत अभिषेक किया है तथा खूब ही पूजा की है।

अनंतर सन् १९७१ में आचार्य धर्मसागर जी महाराज से अजमेर में आर्यिका दीक्षा लेकर आत्मसाधना में रत हैं।

आर्यिका दीक्षा के चातुर्मास

रत्नमती माताजी ने आर्यिका के १२ चातुर्मास पूर्ण किये हैं।

१. दिल्ली, पहाड़ी धीरज	सन् १९७२
२. दिल्ली, नजफगढ़	१९७३
३. दिल्ली, दरियागंज	१९७४
४. हस्तिनापुर	१९७५
५. खतोली	१९७६
६. हस्तिनापुर	१९७७
७. हस्तिनापुर	१९७८
८. दिल्ली, मोरीगेट	१९७९
९. दिल्ली, कूचासेठ	१९८०
१०. हस्तिनापुर	१९८१
११. दिल्ली, कूचासेठ	१९८२
१२. हस्तिनापुर	१९८३

स्वाध्याय

इन्होंने दीक्षा के पूर्व तो अनेक ग्रन्थों के स्वाध्याय किये ही थे। अभी आर्यिका दीक्षा के बाद प्रथमानुयोग में महापुराण, उत्तरपुराण, पद्मपुराण, पांडवपुराण, हरिवंशपुराण, श्रेणिकचरित आदि अनेक चरित ग्रंथ भी पढ़े हैं। चरणानुयोग में भगवती आराधना, आचारसार, चारित्रसार मूलाचार, अनगारधर्मामृत, मूलाचार प्रदीप, सागारधर्मामृत, वसुनंदिश्रावकाचार आदि अनेक ग्रंथों का स्वाध्याय किया है। करणानुयोग में तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीप पण्णत्ति, गोम्मटसार, पंचसंग्रह ग्रंथों का स्वाध्याय किया है तथा द्रव्यानुयोग में सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, द्रव्यसंग्रह, समाधिशतक, परमात्मप्रकाश, प्रवचनसार, नियमसार, समयसार, आत्मानुशासन आदि ग्रन्थों का अच्छी तरह स्वाध्याय किया है।

धर्मोपदेश

ये समय-समय पर आगत यात्रियों को, महिलाओं को, बालिकाओं को धर्म का उपदेश देकर उन्हें सम्बोधन कर देवदर्शन, पूजन के लिए प्रेरणा देती रहती हैं। कितने लोगों को रात्रि भोजन का त्याग करा देती हैं, कितने को स्वाध्याय का नियम देती रहती हैं।

कभी-कभी यहाँ क्षेत्र पर आगत जैनेतर लोगों को धर्मोपदेश देकर उनसे मद्य मांस मधु का त्याग करा देती हैं और उन्हें माताजी द्वारा लिखित जीवनदान आदि पुस्तकों को पढ़ने की प्रेरणा देती रहती हैं।

जम्बूद्वीप रचना में सहयोग

रत्नमती माताजी का स्वास्थ्य पित्त प्रकोप की बहुलता से युक्त है। अतः इन्हे यहाँ जम्बूद्वीप स्थल पर चारों तरफ खुला स्थान होने से गर्मी के दिन में गर्मी की लू लपट की अधिक बाधा होती है, सर्दी मे यहाँ रात्रि में खुले में पानी रख देने से वह बर्फ बन जाता है ऐसे सर्दी के दिनों में इन्हें भी ठण्ड की बाधा बहुत ही असह्य महसूस होती है। कमरों को बन्द करके भले ही चावल या कोदों की घास ले लेवें किन्तु उसमें भी एक साड़ी मात्र मे हाथ पैर ठण्डे पड़ जाते हैं। तथा वर्षा ऋतु में गर्मी और डाँस, मच्छर के उपद्रव बहुत ही परेशान करते हैं। इस तरह रत्नमती माताजी यहाँ पर इन सर्दी, गर्मी, डाँस, मच्छर से परेशान हो कई बार कहती हैं कि यहाँ से अन्यत्र विहार कर छोटे-छोटे गाँवों में चलो किन्तु संस्थान के कार्यकर्तागण यही चाहते है कि इस जम्बूद्वीप रचना के पूर्ण होने तक माताजी यहीं पर रहें जिससे हमलोग उनसे प्रेरणा प्राप्त कर इस निर्माण कार्य को जल्दी पूर्ण कराने में समर्थ हो जावें यही कारण है कि रत्नमती माताजी उनकी प्रार्थना को ध्यान में रखकर यहाँ के कष्टों को सहनकर यहाँ रह रही हैं। यह इनका इस जम्बूद्वीप रचना में बहुत बड़ा सहयोग है।

आहार और पथ्य

इनका आहार बहुत ही थोड़ा है। मूँग की दाल के पानी मे रोटी भिगो दी जाती है। उसे ही ये लेती हैं। उसमे लौकी का उबाला हुआ साग मिला दिया जाता है। थोड़ी सी दलिया दूध में मिलाकर दी जाती है और थोड़ा सा दूध तथा अनार का रस और कभी-कभी जरा सा पका केला बस ये ही इनके आहार है। इनके इतने अधिक पथ्य को देखकर कभी-कभी वैद्य भी हैरान हो जाते हैं। वे भी कहते है कि माताजी ! आप आहार में श्रावक जो भी देवे सो यदि आपका त्याग न हो तो ले लिया करो। मौसम मे आने वाले फल आम, मौसमी आदि फल खिचड़ी चावल भी आप लिया करो किन्तु ये किसी की भी नहीं सुनती है। घर में भी ये अपनी संतानों को भी ऐसे ही बहुत कड़ा पथ्य कराती रहती थी। यही कारण है कि इनके पुत्र पुत्रियों में खाने में जिह्वा लोलुपता नही दिखती है। आर्यिका ज्ञानमती माताजी का प्रायः सब त्याग ही है। वे मात्र गेहूँ और चावल ये दो ही अन्न लेती है और रसों में मात्र दूध ही लेती है। फलो में सेव, केला, अनार के सिवा सब त्याग है। इन वस्तुओं में भी प्रतिदिन सभी नही लेती हैं।

रत्नमती माताजी की साध्वी चर्या

माताजी प्रातः ३-४ बजे उठकर अपने आप स्वयं महामंत्र का जाप्य करके अपर रात्रिक

स्वाध्याय में तत्त्वार्थसूत्र का पाठकर बाद में मंदिर जाकर देवदर्शन करके आकर सहस्रनाम, भक्तामर, त्रिलोक वंदना, निर्वाणकाण्ड आदि स्तोत्रों का पाठ करती है। अनन्तर ७ से ८ या ८ से ९ बजे तक सामूहिक स्वाध्याय चलता है जिसमें बैठकर स्वाध्याय सुनती हैं। अनन्तर आहार के बाद विश्राम लेती हैं। पुनः मध्याह्न की सामायिक करके जाप्य करती हैं। यदि बैठने की शक्ति नही रहती है तो लेटे-लेटे जाप्य किया करती हैं। पुनः २ बजे से ४ बजे तक विद्यापीठ के विद्यार्थीगण और प्राचार्य श्री यहाँ आकर माताजी के सान्निध्य में स्वाध्याय शुरू कर देते हैं उसे सुनती हैं। अनन्तर कुछ देर शरीर की सेवा करानी पड़ती है। बाद में दैवसिक प्रतिक्रमण करती हैं। पुनः सायंकाल में भगवान के दर्शन करके सामायिक करती हैं। रात्रि में सर्दी के दिनों मे तो पूर्व रात्रिक स्वाध्याय के स्थान पर ही ये छहढाला का पाठ सुनती हैं। इन्हे छहढाला सुनने का बहुत प्रेम है जिस दिन कारणवश ये छहढाला न सुन सकें उस दिन इन्हे ऐसा लगता है कि मानों आज कुछ सुना ही नही है।

इस प्रकार जो साधु साध्वी के २८ कायोत्सर्ग बतलाये गये हैं उन्हें ये विधिवत् करती रहती हैं। इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

तीन बार देववंदना (सामायिक) के २ – २ मिलकर ६, + दोनों टाइम के प्रतिक्रमण के ४ – ४ मिलकर ८ + पूर्वाह्न, अपराह्न, पूर्वरात्रिक और अपर रात्रिक इन चारों स्वाध्याय के प्रत्येक के ३–३ ऐसे १२ + तथा रात्रियोग प्रतिष्ठापन और निष्ठापन में योग भक्ति सम्बन्धी १ – १ ऐसे २ + ये सब मिलकर २८ कायोत्सर्गों को रत्नमती माताजी बड़ी सावधानी से करती रहती हैं।

यदि कदाचित् ये पित्त प्रकोप आदि से विशेष अस्वस्थ रहती है तो संघस्थ आर्यिकाओं द्वारा इन क्रियाओं को सुनकर विधिवत् क्रिया मे लगी रहती हैं।

इन्हें ऋषिमण्डल स्तोत्र और मन्त्र का भी बहुत प्रेम है। ये स्वयं स्तोत्र का पाठ करके इस मंत्र की एक माला जप लेती हैं।

जिनमंदिर दर्शन की भक्ति

इनकी अस्वस्थता के कारण प्रायः संघ में चैत्यालय रहता है। फिर भी मंदिर जाकर भगवान का दर्शन करके ही इन्हें संतोष होता है। आजकल पैर मे सूजन आ जाने से चलने तथा सीढ़ी चढ़ने मे कष्ट होता है फिर भी चाहती है कि एक बार मंदिर का दर्शन अवश्य हो जावे। यहाँ हस्तिनापुर मे तो प्रातः और सायंकाल दोनों समय ही इन्हें दर्शन का योग मिल जाता है।

निरभिमानता

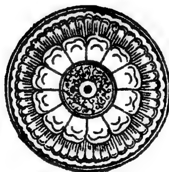
आर्यिका रत्नमती माताजी ने जब-जब अभिनंदन ग्रन्थ की चर्चा सुनी है तब-तब रोका है तथा यही कहा है कि—

"मेरा अभिनंदन ग्रन्थ नहीं निकालना। जो कुछ भी करना है, माताजी का करो।"

ये कभी भी ज्ञानमती माताजी का नाम न लेकर हमेशा "माताजी" ही कहती है। उनको बड़ी मानकर सदा उन्हें सम्मान देती हैं। उन्हें दीक्षा में बड़ी होने से प्रथम नमस्कार करती है और उनके पास ही प्रतिक्रमण, प्रायश्चित आदि भी करती हैं।

भावना

अब इस ७० वर्ष की उम्र में इनकी यही इच्छा रहती है कि मेरा संयम निरतिचार पलता रहे और साधु साध्वियों के सान्निध्य में ही मेरी समाधि अच्छी तरह से होवे। यह हस्तिनापुर तीर्थ है। यहीं पुण्य भूमि में मेरा अन्तिम समय पूरा हो। ये सतत यही इच्छा व्यक्त किया करती हैं। मेरी जिनेन्द्रदेव से यही प्रार्थना है कि यह आपकी भावना सफल होवे। इससे पहले आप सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर हम लोगों को अपना वरदहस्त प्रदान करती रहें, इसी भावना के साथ मैं आपको शतशः नमन करता हूँ।



महमूदाबाद : एक परिचय

पं० बाबूलाल शास्त्री, महमूदाबाद

जिनके दिव्यालोक रवि से, ज्ञान की फूटी किरण,
प्रखरित हुई सारी दिशायें, छट गये मिथ्यात्व घन।
दृष्टि गत हुई पथ वीथिकाएँ, मुक्ति की पथगामिनी बन,
सम्यक्त्व रत्नागार निधि, रत्नमती तुमको नमन॥

यह जानकर कि प्रातःस्मरणीय पूजनीया १०५ आर्यिका रत्नमती माताजी के अभिनन्दन हेतु अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, अपार हर्ष हुआ। जिन्होंने सम्पूर्ण परिवार को आत्म-कल्याण की संचेतना दी, जिनके सान्निध्य में आकर स्वयं में आत्म जागृति हो जाती है, वे कितनी महान् हैं। यह अभिनन्दन तो इनकी महानता की दृष्टि से छोटा ही लगता है। वास्तविक में तो अगर ऐसी दृढ़ सम्यक्त्वी मातायें समाज में हजार भी हो जायें जिनकी कोख से विदुषी रत्न-ज्ञानमती माता जैसी आभा प्रसरित हो तो इसमें सन्देह नहीं कि जगती के व्योम पर जैनधर्म पुनः एक बार चमक उठे और सम्पूर्ण विश्व जैनधर्मी बन जाये।

ऐसी पुण्यशालिनी माताजी को जन्म देने का सौभाग्य महमूदाबाद नगर को मिला जिसकी थोड़ी सी जानकारी दे रहा हूँ।

महमूदाबाद कब आबाद हुआ उसका कोई सही उल्लेख नहीं मिलता लेकिन इतना निश्चित हो चुका है कि श्रावस्ती के जैन नरेश सुहेलदेव जो भार राजपूत थे, इन्हीं के वंशज यहाँ राज्य करते थे। सन् १००० ई० के लगभग सुहेलदेव के वंशजों का राज्य पूर्ण अवध में ही नहीं अपितु उत्तर में नेपाल तक, दक्षिण में कौशाम्बी तक, पश्चिम में गढ़वाल और पूर्व में वैशाली (मुजफ्फरपुर) तक विस्तृत था। बिहार, छोटा नागपुर, बुन्देलखण्ड, सागर, ग्वालियर, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर, गोंडा, बहराइच, बाराबंकी, मिर्जापुर तथा विन्ध्याचल के मध्य कान्तीपुरी तक इनके सुदृढ़ गढ़ थे।

जैन नरेश सुहेलदेव परम जिन भक्त थे। इनके सम्भवनाथ और पार्श्वनाथ जिन आराध्यदेव थे। कोई नव कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व सम्भवनाथ जिनालय में जाकर निर्विघ्न समाप्ति हेतु प्रार्थना अवश्य करते थे। कहा यह भी जाता है कि ये पाटन अथवा पट्टनी देवी के भी भक्त थे। यह उनकी कुल देवता थीं। जैनों में इन देवी की मान्यता प्रचलित है। गोंडा जिले के तुलसीपुर नामक स्थान से कुछ ही दूर देवी पाटन स्थान है जहाँ देवी का पुराना मन्दिर और एक टीला सुबीर नाम का है। औरंगजेब ने यहाँ की मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। सुहेलदेव राय की कुल देवता होने के कारण पाटन देवी का प्रभाव जनता में अधिक हो गया था। देवी पाटन और सुबीर टीले का नाम-

करण निश्चय ही जैनत्व का परिचायक है। इसी प्रकार महमूदाबाद में भी इनकी अधिष्ठात्री कुल-देवता पाटन देवी का विशाल सुन्दर मन्दिर है जहाँ प्रति वर्ष चैत्र मास में बहुत बड़ा मेला लगता है। कालान्तर में कई बार संकट के समय रक्षा करने से इनका नाम संकटा देवी पड़ गया। अस्तु, इन्हें संकटा देवी के नाम से पुकारा जाता है। वर्तमान में इस नाम से दो ही मन्दिर हैं एक यहाँ और दूसरा लखीमपुर में। संकटा देवी का नाम हिन्दू शास्त्र में कहीं भी नहीं मिलता इससे सिद्ध होता है कि केवल भार राजपूत नरेशों की कुलदेवी होने से ही प्रसिद्धि है।

सुहेलदेव जैन नरेश थे। इसे श्री बेनेट (Benett), डा० बिन्सियेंट स्मिथ, डा० जोशी प्रभृति कई देशी विदेशी इतिहासज्ञों ने भी स्वीकार किया है। जब गाहड़वाल नरेश जयचन्द ने चौहान राजा पृथ्वीराज पर विद्वेष के कारण आक्रमण करने को मोहम्मद गोरी को बुलाया तो उनका सेनापति तथा भानजा सैयद सालार मसउद एक मजबूत फौज लेकर अवध के द्वार पर पहुँचा (मसउद की सेना बहराइच में १७ वीं शाबान को ४२३ हिजरी (सन् १०३३) मे पहुँची। कौसल (कैण्डियाला) के निकट उसने हिन्दू राजाओं को परास्त किया। रज्जबुल मुरज्जक १८ वी तारीख को ४२४ हिजरी में (सन् १०३४ ई०) जैन नरेश वीर सुहेलदेव राय से कुटिला नदी के किनारे घोर घमासान युद्ध हुआ। जिसमें सुहेलदेव के हाथों सैयद सालार मसउद मारा गया तथा अन्य बहुत से मुस्लिम योद्धा खेत रहे, सैयद सालार की मजार बहराइच में बनी हुई है। जिसे आज हिन्दू और मुसलमान सभी मानते हैं। किन्तु खेद की बात है कि हिन्दुओं तथा हिन्दू संस्कृति की रक्षा करने वाले वीर सुहेलदेव राय का स्मारक आज तक भी नही बन सका। एक लम्बे समय तक जैन राजाओं का आधिपत्य अवध पर रहा। मुगल शासन के समय अवध के जागीरदारों की शिकायत पर अकबर ने ठाकुर पहाड़ सिंह को उसके अनुज के साथ अच्छी खासी फौज देकर दिल्ली से इस क्षेत्र पर अधिकार करने के लिए भेजा, घमासान युद्ध हुआ। परन्तु विजयश्री पहाड़ सिंह को ही मिली। यह हार देशी राजाओं के आपसी विद्वेष के कारण हुई। दिल्ली शासन में मुस्लिम धर्म स्वीकार करने के पश्चात् यहाँ का अधिकार पहाड़ सिंह को दे दिया, पहाड़ सिंह की कब्र बेलहरा और भटवा मऊ के मध्य में बनी है जो महमूदाबाद से कुछ ही दूरी पर है। इनके वंशजों में मियाँ मुशाहब अली से ही वर्तमान जमींदारी का पता चलता है। मियाँ मुशाहब अली के पुत्र ठाकुर नवाब अली, नवाब अली के पुत्र राजा अमीर हसन, राजा अमीर हसन के पुत्र महाराजा सर वली मोहम्मद खाँ उसके बाद राजा मुहम्मद अमीर अहमद खाँ हुए।

ठाकुर नवाब अली बड़े ही देश भक्त थे। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम १८५७ के महान् सेनानी नवाब वाजिद अली शाह की रानी बेगम हजरत महल अंग्रेजों से लोहा लेती हुई ठाकुर नवाब अली के संरक्षण से महमूदाबाद में आकर तीन-चार दिन तक रुकीं। बाद में अंग्रेजों से बचा कर राजा साहब ने उन्हें सुरक्षित बौढ़ी पहुँचाया। बौढ़ी से नेपाल राज्य भेज दी गईं। इसी बीच उनको गिरफ्तार करने के लिए अंग्रेजी फौज ने महमूदाबाद पर चढ़ाई कर दी। रेलवे स्टेशन के निकट अपना पड़ाव डाला। इसी स्थान पर पुराना बना हुआ कुँआ है, जिसके जल से सारी फौज की जल पूर्ति हुई और तभी से इस कुएं का नाम "जल थम्भन कुंआ" पड़ गया, जब राजा ठाकुर नवाब अली ने देखा कि अंग्रेजी फौज हम दोनों को ढूंढ़ रही है तो उन्होंने हीरा चाट कर आत्म-

हत्या कर ली। उनकी कब्र आज भी निकट छतौनी में बनी हुई है। इन्हीं के वंशज राजा मोहम्मद अमीर खाँ मुस्लिम लीग के सदर जिन्ना अली के प्रभाव में आकर आल इंडिया मुस्लिम लीग के कोषाध्यक्ष तो बन गये परन्तु भारत के बँटवारे से इन्हें बड़ा आघात लगा और आजादी के पूर्व ही देश छोड़ कर चले गये। पाकिस्तान से ईराक और इंग्लैण्ड जाकर रहने लगे और वहीं पर इनका देहावसान हो गया।

रियासत महमूदाबाद में जैन समाज आदि समय से रह रहा है। राजा मुसाहिब अली के समय यहाँ आबादी नहीं के बराबर थी, मगर राजा साहब के मन में इसे सुन्दर नगर बनाने की भावना अवश्य थी। अच्छे शहर में व्यापारी वर्ग का होना आवश्यक है यह सोचकर राजा साहब ने सर्वप्रथम वैश्य वंशी लम्बरदार और जैनधर्मी ब्रह्मचारी भगवान् सागर के पितामह (श्री कन्हैयालाल जी के पिताजी) को आमन्त्रित कर बसाया। फिर शनैः शनैः व्यापारी वर्ग यहाँ आने लगे, श्री श्यामसुन्दरलाल जी, हजारीलाल जी बिसवाँ, माताजी (रत्नमती आर्यिका) के पिताजी सुखपाल दास जी, मंगलीप्रसाद, सुमेरीलाल जी प्रभृति अनेक श्रावक रियासत की प्रेरणा पाकर यहाँ आकर रहने लगे। रियासत महमूदाबाद का एक बड़ा कठोर नियम था कि यहाँ मन्दिर बनाना वर्जित था। कच्ची इमारतों के अलावा पक्की इमारतें नहीं बन सकती थीं। पक्की ईंटें लगाना अपराध समझा जाता था, परन्तु तत्कालीन प्रभावशाली श्रावकों ने अपने अथक प्रयत्न से सर्वप्रथम जैन मन्दिर का निर्माण कराया। यह जैन मन्दिर केवल महमूदाबाद का ही नहीं अपितु सीतापुर जनपद का सर्वप्रथम मन्दिर है। उस समय मन्दिर था तो कच्चा ही, लेकिन काफी विस्तृत घेरे में बनाया गया था। मन्दिर की परिधि ७५ × ६५ फुट है। इसके बाद कबीर-पंथी संगत बनी। जैन मन्दिर की आधार शिला लगभग २०० वर्ष पूर्व रखी गयी थी। मन्दिर की इमारत कच्ची होने से दर्शनार्थियों को बड़ी परेशानी होती थी और यह बात जैन समाज को बराबर खटक रही थी। कालान्तर में रियासत के नियमों में ढिलाई आ गई और समाज में भी जागृति और शक्ति आई। रियासत से प्रभावी व्यक्तियों का सम्पर्क बढ़ा। राजा साहब वर्तमान से निजी व्यवहार अधिक घनिष्ठ हुआ तब जैन समाज ने पक्की वेदियाँ बनवाने का निर्णय लिया। संवत् १८७९ में स्व० धनपालदास जी के पिता स्व० भगवानदास जी ने संगमरमर की वेदी बनवा कर वेदी प्रतिष्ठा करवाई, अजितनाथ भगवान् की मूल नायक श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा की प्रतिस्थापना कराई। इसमें अन्य प्रतिमायें २० हैं। एक श्वेत वर्ण पाषाण की सहस्रफणा प्रतिमा बड़ी मनोज्ञ है। लालित्य और भव्यता दर्शनीय है। इसके पश्चात् मूल आदि वेदी जो मध्य में बनी है, स्व० विनोदीलाल जी ने बनवाई। उसमें मूल नायक श्वेत वर्ण की पद्मासन मानवाकार शांतिनाथ भगवान् की मूर्ति विराजमान है। अन्य प्रतिमायें २५ हैं। एक प्रतिमा लाल वर्ण पाषाण की सप्तफणा है जिसे बिसवाँ से एक अजैन व्यक्ति के यहाँ से लाकर प्रस्थापित किया था, सातिशय है। इनकी आराधना करने से मनोकामना पूर्ण होती है तथा संकट आने पर शुद्ध मन से ध्यान करने से अवश्य ही संकट दूर होते हैं। स्वर्गीय लाला शिखरचन्द जी जैन को कई बार अनुभव में आया, वे इनके बड़े ही भक्त थे। उन्होंने स्वयं इनकी पूजन की रचना की और नित्य प्रति अवश्य पूजा करते थे। मध्य वेदी के उत्खनन के अवसर पर एक अद्भुत बात यह हुई कि करीब १० फुट की गहराई पर एक घट अखण्ड श्रीफल सहित मिला जिसे देखकर ऐसा लगता था मानो आज ही किसी कुशल कुम्भकार ने मिट्टी का एक-एक कण कलात्मक रूप से जोड़कर अपने ही

हाथों से गढ़ा हो। सर्वप्रथम छोर की वेदी का निर्माण स्वर्गीय लाला मंगलीप्रसाद जी रईस ने कराया संवत् १८९० में। इसमें भी श्वेतवर्ण पाषाण की पद्मासन पुरुषाकार चन्द्रप्रभु भगवान् की प्रतिमा है। इनकी पुत्रबहू ने इसे प्रतिष्ठापित कराई। जिसकी वीतरागिता की झलक देखते ही बनती है। बड़ी ही भव्याकृति से अलंकृत है। वर्तमान में इस वेदी में सबसे अधिक प्रतिमायें हैं, छोटी-बड़ी मिलाकर इसमें ५० मूर्तियाँ हैं।

चौथी वेदी बाबू यतीश्वर कुमार जी ने अपने स्व० पूज्य पिता मिट्ठूलाल जी की स्मृति में बनवाई। वेदी बड़ी ही कलात्मक है। इसमें भी श्वेत वर्ण की ६ फुट 'बाहुबली' भगवान् की प्रतिमा स्थापित है, प्रतिमा साक्षात् आदियुग की छटा का दिग्दर्शन करा रही है। बाहुबली के द्वारा एक वर्षीय घोर तपश्चरण का जितनी उत्कृष्ट कला से प्रदर्शन किया है, अकथनीय है। पदासन पीठिका से लेकर वक्षस्थल तक सर्पबाँबी और लतावेष्ठित पल्लव बनाये गये हैं। जो मानो सजीव हैं। बाहुबली अपार बलशाली थे, उनकी भीष्म भुजायें बतला रही हैं। जिस कलाकार ने अपनी छेनी और हथौड़ी के माध्यम से इसे गढ़ा है उसके सचमुच हाथ चूमने योग्य है। ऐसी ललित प्रतिमा सर्वत्र देखने को नहीं मिलती। और एक अद्वितीय सारे उत्तर भारत में केवल एकमात्र सुन्दर बहुरंगी विदेशी काँच का बना हुआ ४० × ३० फुट के व्यास का पंचमेरु और नन्दीश्वर द्वीप की रचना का दर्शनीय मन्दिर स्व० स्वनामधन्य धनपालदास जी ने जैन समाज को दिया जिसकी रोचकता देखते ही बनती है। भित्तिचित्रों पर अंकित आकृतियाँ मानो स्वयं बोल रही हैं। इनकी अभिव्यंजना असीम है। आदिपुरुष, आदिअवतार भगवान् आदिनाथ से लेकर भगवान् महावीर पर्यन्त जीवनवृत्त पर आधारित दृश्यावलियाँ आपका बरबश मन मोह लेंगी। एक बार आकर दर्शन अवश्य करें तो बार-बार आने का जी चाहेगा। इसके साथ यहाँ एक भव्य वेदी धरणेन्द्र पद्मावती की सातिशय प्रतिमा सहित और एक भव्य वेदी जिनरक्षक क्षेत्रपाल जी की है जो समय-समय पर जिन-प्रभावना दिखाते रहते हैं। कई बार इनके सामने 'धूपदान' ने भी नृत्य किया है। एक बार शास्त्र प्रवचन हो रहा था। प्रसंग बड़ा ही मनमोहक जिनेन्द्र जन्मावतरण का था कि क्षेत्रपाल जी की वेदी के समक्ष धूपदान बड़े जोरों से हिलने लगा और घंटों हिलता हुआ जैन अजैन सभी ने देखा। कई व्यक्तियों को इनके वाहन कृष्ण वर्ण विशाल झबरे श्वान ने साक्षात् दर्शन दिये। लाला धनपाल जी के सदृश उनके सुपुत्र श्रेयांसकुमार जी, धर्मकुमार जी भी बड़ी धार्मिक प्रवृत्ति के हैं।

जैन, वैष्णव, मुस्लिम समाज में बड़ी एकता है। यहाँ की हिन्दू समाज भी बड़ी जागरूक है, हिन्दू समाज ने संकटा देवी[1] के मन्दिर का पुनरुत्थान कराके बड़ा विशाल मन्दिर बनवा दिया, सत्संग भवन, धर्मशाला और भारतवर्ष का एकमात्र भगवान् शंकर का ६ फुट रौद्र रूपेण मंदिर भी है। ६ फुट हनुमानजी की प्रतिमा के साथ हनुमान मंदिर भी अति भव्य और दर्शनीय है। शिया संप्रदाय की कर्बला और दरगाहें भी दर्शनीय हैं। जिसका रख-रखाव भी उत्तम है। निकटतम रामपुर मथुरा में महाकवि तुलसीदास का मंदिर भी है, कहते है कवि तुलसीदासजी ने नैमिषारण्य तीर्थयात्रा के प्रवास में यहाँ विश्राम किया था और रामायण का कुछ भाग लिखा भी

---

१. ये संकटा देवी कोई जिन शासन देवी हैं अनन्तर इनका नाम संकटहरण करने से संकटा पड़ गया है, ऐसा प्रतीत होता है।

था। जिसकी प्रति, रामपुर मथुरा के राजा सा० के यहाँ सुरक्षित है। इस मंदिर का जीर्णोद्धार हो चुका है तथा स्थान का पुनरीकरण भी प्रारम्भ है।

महमूदाबाद में टाउन एरिया है तथा सीतापुर जनपद की तहसील भी है, जनसंख्या ४० हजार के लगभग है। शिक्षा क्षेत्र में डिग्री कालेज, कालविन इण्टर कालेज, राजकीय बालिका इण्टर कालेज, पॉलीटेक्निक, सरस्वती शिशु मन्दिर, जूनियर हाई स्कूल तथा स्व० लाला शिखरचन्दजी जैन द्वारा संस्थापित श्री दिगम्बर जैन माण्टेसरी शिक्षा केन्द्र, जूनियर हाई स्कूल, अच्छी शिक्षा संस्थाओं में से हैं और लगभग एक दर्जन सरकारी और गैरसरकारी प्रारम्भिक शिक्षा संस्थायें भी हैं। पुरुष और महिला अस्पताल, जच्चा बच्चा केन्द्र, स्वास्थ्य सेवासदन, स्वास्थ्य सम्बन्धी अच्छी संस्थायें हैं। व्यवसाय में यह नगर जिला सीतापुर में अपना विशेष स्थान रखता है; इसमें जैनियों का बड़ा हाथ है। जैन लोगों की गृह संख्या ५० है और जनसंख्या ४२५ है। जैन समाज का प्रभुत्व रियासत के आदि काल से रहा है। समाज की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है और सभी क्षेत्र में अपना वर्चस्व बनाये हुए हैं।

बड़े उद्योग में चीनी मिल का निर्माण हो चुका है, सूत कताई मिल का निर्माण चल रहा है, संचार विभाग भारत का उपकेन्द्र भी बन चुका है, हर ओर सड़कों का जाल बिछा हुआ है और नई सड़कें बन रही है। सौभाग्य से इस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व इन्दिरा कांग्रेस उत्तर प्रदेशीय सरकार के वरिष्ठ मंत्री डॉ० अम्मार रिज़वी कर रहे हैं जिनके प्रयत्न से क्षेत्र विकसित हो रहा है, आप सार्वजनिक निर्माण मन्त्री और संसदीय कार्य मंत्री हैं।

जैन समाज की व्यापार के साथ कई अन्य क्षेत्रों में भी प्रगति रही है, समाज ने कई विद्वान्, त्यागी, कवि तथा जनसेवक भी दिये। यह किसी भी क्षेत्र मे रहे बड़े निर्भीक होकर रहे। एक घटना है जब मंदिर की वेदियां बन चुकी थीं, तो स्थानीय लाला मंगलीप्रसाद, जिनका प्रभाव रियासत में अच्छा खासा था, बड़े रईस तबियत और पहलवान थे। इन्ही के समकालीन स्व० महीपालदास भी बड़े नामी पहलवान हो गये हैं। किसी भी अखाड़े में अच्छे से अच्छे पहलवान भी इन्हें पराजित नहीं कर सके। दोनों व्यक्ति बड़े साहसी और उदार थे। महीपालदासजी माताजी[1] के भ्राता थे। इन दोनों ने सर्वप्रथम श्री जिनेन्द्र रथयात्रा निकालने का विचार किया, मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र होने से समाज को बड़ा संकोच था परन्तु इन्होंने राजा साहब महमूदाबाद से स्वीकृति लेकर अपने ही बल-बूते पर रथयात्रा निकाली।

रथयात्रा बड़ी धूमधाम से निकल रही थी और जैसे ही बाजार की मस्जिद के समीप रथ पहुँचा कि "अल्लाहू अकबर" नारे तदबीर के नारों के साथ एक अच्छी खासी भीड़ इकट्ठी हो गई। मुस्लिम भाई कह रहे थे कि मर जायेंगे या मार डालेंगे पर नंगी मूर्ति मस्जिद के सामने से नहीं निकलने देंगे। बड़ी विषम परिस्थिति आ खड़ी हुई, ताकत से काम लेने से खून खराबा हो सकता था। रथ वहीं रोक दिया गया, इसके पहले कि लाला मंगलीप्रसादजी और महीपालदासजी महाराजा साहब के पास पहुँचे, राजा साहब को लोगों ने सूचना दे दी और स्थिति से अवगत कराने के साथ राजा साहब को भड़का दिया, राजा साहब ने भी अपनी स्वीकृति पर ध्यान न

१. ये आर्यिका रत्नमती माताजी के।

देकर बड़े कड़े शब्दों में रथ को लौटाकर वापस ले जाने को कहा क्योंकि मुस्लिम भाई क्रोध में थे। वह ऐसा समय था कि अच्छे से अच्छे विवेकशील व्यक्ति भी अपना विवेक खो बैठते। रथ को वापस लौटाना समाज का घोर अपमान और जीवन-मरण का प्रश्न था। दोनों ने ठण्डे दिल से परामर्श किया और कई अपने मुस्लिम मित्रों को समझा बुझाकर अपने पक्ष में इस आधार पर किया कि अगर नग्न मूर्ति की परछाईं आपकी मस्जिद पर न पड़े तब तो रथ निकल जाने में आपको कोई विरोध नहीं होगा ? आपकी मस्जिद को हम नापाक नहीं होने देंगे।

कुछ मुस्लिम नेताओं को भी समझा-बुझाकर राजी कर लिया गया जिस कारण आम मुस्लिम जनता भी राजी हो गयी। लाला मंगलीप्रसाद ने झटपट अपनी दूकान से धुले लट्ठों (कपड़ों) के थान निकाले और बड़े-बड़े लम्बे बाँस बनवा कर रियासत के ही दरजीखाने के दर्जियों से उन बाँसों पर इतनी ऊँचाई पर कपड़ा सिलवा दिया कि मस्जिद दिखाई न पड़े। इस कार्य के लिए अच्छा मेहनताना देकर सारे दर्जियों को लगा दिया गया और शीघ्र ही ऊँचे परदे बनकर तैयार हो गये और महमूदाबाद नरेश को सारे वातावरण से अवगत कराकर शीघ्र ही रथयात्रा सकुशल निकाली गई।

इस समय तो वर्ष में दो बार बड़ी धूम-धाम से शानदार रथयात्रा निकलती है ऐसे थे यहाँ के साहसी श्रावक।

माताजी के पूज्य पिताजी बड़े ही शान्त और सरल प्रकृति के व्यक्ति थे। धन के लिए बेहतासा दौड़ उन्हे कभी नहीं भाई। समता सन्तोष उनके विशिष्ट गुण थे। सदा जिनदेव का पूजन बड़े ध्यान और लगन से करते थे, समाज के अग्रणी व्यक्ति थे। इन्ही के सुसंस्कृत संस्कारों की देन है जो आज तक उनके परिवार में धर्म के प्रति बड़ी आस्था है। स्वनामधन्य पू० सुखपाल दासजी के गृह में जन्म लेने से ही माताजी पर कितना व्यापक, निज-पर-भेद, विज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। स्वर्गीय ब्रह्मचारी भगवानसागरजी भी यहाँ के एक सम्माननीय धार्मिक विद्वान् कवि थे। अपने जीवन काल में इन्होंने समाज को अच्छे-अच्छे ग्रन्थ तथा साहित्य दिया। आपके प्रेस से निकलने वाले साहित्य को लोग रुचि से पढ़ते थे। पूजन भक्ति रस के भजन संग्रह, कथायें और चतुर्योग के ग्रन्थों का प्रकाशन निरन्तर होता रहता था। तत्त्वार्थसूत्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार, द्रव्य संग्रह, श्रीपाल मैना सुन्दरी कथा आदि की काव्य रचना आपने स्वयं की है। आपकी भगवान् शतक पूजन संग्रह, पूजन की अद्वितीय रचना है। नित्य नैमित्तिक पूजन के अतिरिक्त भारतवर्ष के समस्त सिद्ध क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र, लोकमान्य स्थल, तीर्थ क्षेत्र सभी का समावेश सुन्दर ललित अदोष काव्य के अन्तर्गत सुमधुर स्वरों में भाव पूर्ण समवेत रचना है। ऐसा लगता है कि मानों हर तीर्थ क्षेत्र पर स्वयं जाकर तथा वहाँ का विशेष महत्व का अवलोकन कर लेखनी चलाई हो। मेरी समझ में यह सही है क्योंकि क्षेत्र को स्वयं देखे बिना वहाँ की सही स्थिति का ज्ञान नहीं हो सकता। इससे यह सिद्ध है कि अपने जीवन काल में आपने सभी क्षेत्रों की वंदना अवश्य की है। इसके अतिरिक्त हिन्दू धर्म सम्बन्धित किताबें, सामाजिक तथा व्यावसायिक साहित्य, गुप्त रहस्य, नीति शास्त्र, नैतिक दोहे सैकड़ों प्रकार की पुस्तकें आपने प्रकाशित की हैं। समवशरण पाठ विधान सचित्र बड़ा सुन्दर रोचक विधान है। आपने अपनी सम्पूर्ण अचल सम्पत्ति स्थानीय जैन मन्दिर में दान दे दी थी। आपके मरणोपरान्त ठीक व्यवस्था न होने से तथा असावधानी के कारण आपकी पुस्तकों का संग्रह दीमकों की भेंट चढ़ गया या रद्दी के भाव बाजारों में बिक गया।

महमूदाबाद का एक खण्ड पैंतेपुर है। यहाँ हस्तलिखित शास्त्र तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों का अच्छा खासा संग्रह है। एक समय यहाँ पर जैन भाइयों की अच्छी बस्ती थी, अब केवल तीन घर ही शेष रह गये हैं। मन्दिर भी काफी जीर्ण हो गया है। जैन महासभा का और जैन त्रिलोक शोध संस्थान का ध्यान इस ओर लाने की आवश्यकता है। यहाँ के ग्रन्थों को अवलोकन कर पुन: प्रकाशन कराने की आवश्यकता है। सम्भव है कई दुर्लभ कृतियाँ उपलब्ध हो सके। एक समय यहाँ दौलत, औसेरी नाम के दो जैन कवि हो गये हैं इनकी रचनाओं को प्रकाश में लाने की आवश्यकता है। कुछ आपकी रचनायें महमूदाबाद में भी हैं। श्री सिद्ध क्षेत्र सम्मेदशिखरजी का विधान भक्ति-भाव पूर्ण अद्वितीय रचना है, बड़े ही ललित भिन्न-भिन्न छंदों मे रचना की गई है। जिसे वाद्य यन्त्रों द्वारा गाया भी जा सकता है। छंद व्याकरणीय पद्धति पूर्ण है कही भी व्यतिरेक नहीं हुआ है। प्रति वर्ष दशलक्षणीय पर्व में यहाँ यह विधान होता है, आपकी अन्य पूजायें जैसे ऋषि मंडल पूजन नित्यप्रति कई लोग अवश्य करते हैं। आकस्मिक विघ्न बाधाओं से छुटकारा पाने के लिए यह पूजन अमोघ शस्त्र है, समवशरण विधान भी आपका बनाया हुआ है, कई सुन्दर-सुन्दर तथा अन्तस्थल को छूने वाले भजन भी आपके द्वारा बनाये गये हैं। अगर आपके विषय में खोज की जावे तो समाज को कई ग्रन्थों तथा दुर्लभ रचनाओं का सही पता लग सकेगा तथा जैन कवियों में आपकी रचनाओं का कितना महत्त्व है दिशा मिलेगी। एक बात यहाँ के पूर्वजों से ज्ञात हुई कि दौलत अवसेरी दो अभिन्न मित्र थे, दोनों को काव्य रचना का व्यसन था, इसलिए नियमानुसार प्रतिदिन कुछ समय एक साथ बैठकर काव्य रचना करते थे। दोनों अपनी रचना एक ही नाम से सम्बोधन देकर करते थे जैसे ''दौलत अवसेरी मित्र दोय।''

कहते हैं सम्मेदशिखर की रचना स्वप्न में साक्षात् वंदना और दर्शन करने के बाद की गयी। जिस समय रचना की गई थी उस समय सम्मेदशिखर की यात्रा अति दुर्लभ थी, रेल तथा बस का प्रचलन नही था, पैदल ही यात्रा की जा सकती थी। साधन की कमी के कारण आप दोनों यात्रा न कर सकने के कारण दु:खी थे, निरन्तर अभिलाषा थी ही, स्वप्न में सम्मेदशिखर का दर्शन किया, वंदना हुई और फिर साकार रचना। यह थी आपकी विलक्षणता।

मैं परम पूजनीया माताजी के भ्राता महीपालदासजी (जिन्होंने समाज को निर्भीक होकर जीने की दिशा दी) को सम्मान देता हूँ इनके विषय में भी समाज की ओर से कोई कार्य होना चाहिए। आपकी गायन में बड़ी अभिरुचि थी। समाज के प्रति आपकी सेवायें कभी नही भुलाई जा सकतीं। अन्त में मैं प्रात:स्मरणीया १०५ रत्नमती माताजी को त्रिकाल त्रिबार सविनय नमोऽस्तु करता हूँ।



श्रीमान् लाला छोटेलाल जी

ब्र० मोतीचन्द शास्त्री, हस्तिनापुर

अयोध्या के निकट जिला बाराबंकी के अन्तर्गत टिकैतनगर नाम का एक सुन्दर ग्राम है। यह लखनऊ शहर से २५ कोश दूर है। वहाँ पर बहुत ही सुन्दर जिनमन्दिर है जिसके सामने के मुख्य द्वार के ऊपर दो सिंहराज ऐसे बने हुए हैं कि जो मानों मन्दिर के साथ-साथ सारे गाँव की रक्षा ही कर रहे हैं। इस मन्दिर का शिखर भी बहुत ही ऊँचा है जो कि गाँव के बाहर से ही दिखने लगता है। इसके चारों तरफ जैन श्रावकों के ५०-६० घर हैं। आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व वहाँ पर स्वनामधन्य लाला धन्यकुमारजी रहते थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम फूलदेवी था। इनकी जाति अग्रवाल थी और गोत्र गोयल था। ये प्रारम्भ से ही जैनधर्मी थे। ये दम्पति मंदिर के निकट ही रहते थे अतः इनमें धार्मिक संस्कार बहुत ही अच्छे थे। इन्होंने चार पुत्र और तीन पुत्रियों को जन्म दिया था। पुत्रों के नाम क्रम से १. बब्बूमल, २. छोटेलाल, ३. बालचन्द्र, ४. फूलचन्द्र थे। पुत्रियों के नाम कुनकादेवी, रानीदेवी और प्यारीदेवी था। आज इनका परिवार वृक्ष बहुत ही हरा-भरा दिख रहा है।

पिता धन्यकुमारजी ने अपने पुत्र-पुत्रियों को धार्मिक पाठशाला में ही पढ़ाया था। ये सभी लोग प्रतिदिन प्रातः मंदिर जाकर दर्शन करते थे अनन्तर ही नाश्ता लेते थे।

बब्बूमलजी—इनके बड़े पुत्र बब्बूमलजी का विवाह महमूदाबाद के लाला शिखरचन्द की बहन छुहारादेवी के साथ हुआ था। इनके एक पुत्र और पाँच पुत्रियाँ हुईं। पुत्री बिट्टोदेवी, २. पुत्र लल्लूमल (इन्द्रकुमार) ३. जैनमती, ४. विद्यामती, ५. चन्द्रमणी और ६ इन्द्रमणी।

ये बड़े भाई बब्बूमलजी कपड़े का व्यापार करते थे। इन्होंने प्रारम्भ में गाँव के बाहर जाकर भी व्यापार किया है। सन् १९६२ में इनका स्वर्गवास हो गया था। इनकी पत्नी छुहारादेवी ने आर्यिका ज्ञानमती के पास सन् १९७० से १९८० तक रहकर धर्म साधना की है। पाँच प्रतिमा के व्रत लेकर दान पूजन से बहुत ही पुण्य का संचय किया है।

बालचन्द्र—तृतीय पुत्र बालचन्द्रजी भी बहुत सरल प्रकृति के व्यक्ति थे। इनके तीन पुत्र और छह पुत्रियाँ हुईं। उनके नाम १. मोगादेवी, २. केतादेवी, ३. देवकुमारी, ४. शीलादेवी, ५. यशोमती, ७. अनन्तमती, ७. चन्द्रकुमार, ८. वीरेन्द्र कुमार, ९. सनत्कुमार। ये सभी पुत्र-पुत्रियाँ भी विवाहित हैं। तथा पुत्र पौत्रों से सम्पन्न हैं। चतुर्थ भाई फूलचन्दजी १९ वर्ष की अविवाहित अवस्था में ही स्वर्गस्थ हो गये थे।

बहनों में कुनकाजी सबसे बड़ी थीं। ये टिकैतनगर ही विवाही थीं। इनके पति का बहुत ही छोटी अवस्था में स्वर्गवास हो गया था। किन्तु पुण्योदय से उस समय ये गर्भवती थीं। नव महीना पूर्ण होने पर इन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम शिखरचन्द्र रखा गया। ये शिखरचंद बहुत ही होनहार और धर्मात्मा रहे हैं। कुनकाजी वहाँ टिकैतनगर में बाजार वाली जीजी के नाम से ही प्रसिद्ध थीं।

दूसरी बहन रानीदेवी मोहोना में बाबूराम को ब्याही गईं। इनके भी दो पुत्र और तीन पुत्रियाँ हैं। जिनके नाम सन्तलाल, विजयकुमार, रतनादेवी, मुन्नीदेवी और प्रवीणादेवी हैं। सन्तलाल युवावस्था में स्वर्गस्थ हो गये थे। विजयकुमार अपने परिवार समेत लखनऊ रहते हैं।

तीसरी बहन प्यारादेवी तिलोकपुर में ब्याही गईं। इनके पति का नाम अनन्तप्रसाद था। इनके भी दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं।

अब मैं आपको आर्यिका ज्ञानमती माताजी के गृहस्थावस्था के पिता श्री छोटेलालजी का परिचय कराता हूँ।

इन्होंने बचपन में स्कूल में ३–४ कक्षा तक ही अध्ययन किया था कि व्यापार की रुचि अधिक होने से कपड़े का व्यापार करने लगे। इन्हें जैनधर्म और अच्छे संस्कार विरासत में ही मिले थे। ये बचपन से ही प्रतिदिन मंदिर जाते, पानी छानकर पीते और रात्रि में भोजन नहीं करते थे। पिता धन्यकुमार ने परम्परा के अनुसार इन्हें आठ वर्ष की उम्र में ही आठ मूल गुण दिलाकर जनेऊ पहना दिया था। इन्होंने व्यापारिक मुड़िया भाषा अच्छी सीख ली थी। १४, १५ वर्ष की उम्र में ही घोड़ा चलाना सीख गये। और दो चार साथी साथ में मिलकर घोड़े पर कपड़ा लादकर टिकैतनगर के बाहर गाँवों मे व्यापार करने लगे। कुछ ही दिनों में ये कुशल व्यापारी बन गये और अपने भुजबल के श्रम से अच्छा धन कमाया।

युवा होने पर इनका विवाह महमूदाबाद के लाला सुखपालदासजी की पुत्री मोहिनीदेवी के साथ सम्पन्न हुआ। मोहिनीदेवी ने अपने पिता से धार्मिक अध्ययन किया था। गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर ये दम्पति धर्मध्यान पूर्वक अपना काल यापन करने लगे। इनके चार पुत्र और नव पुत्रियाँ ऐसे १३ सन्तान हुई हैं—१. मैना, २. शांति, ३. कैलाशचन्द, ४. श्रीमती, ५. मनोवती, ६. प्रकाशचन्द, ७. सुभाषचन्द, ८ कुमुदनी, ९. रवीन्द्रकुमार, १०. मालती, ११. कामिनी, १२. माधुरी और १३. त्रिशला। सबसे बड़ी पुत्री मैना थी जो कि आज आर्यिका ज्ञानमती माता हैं। इनकी एक पुत्री मनोवती ने भी आर्यिका दीक्षा ले ली है। पृथक्-पृथक् इन सबका परिचय दिया गया है।

कैसी ही व्यापारिक व्यस्तता क्यों न हो, भले ही दिन में १२, १ बज जाय किन्तु घर में आकर मंदिर जाकर दर्शन करके ही भोजन करते थे। घर में ही स्वाध्याय किया करते थे। अपनी बड़ी पुत्री मैना को प्रेरणा से ही इन्हें स्वाध्याय की रुचि हुई थी। बाद मे कभी-कभी तो शास्त्र पढ़ते-पढ़ते गद्गद हो जाते और जिस प्रकार से उन्हें बहुत आनन्द आता वह घर मे भी पत्नी और बच्चों को सुनाने लगते थे।

वे अक्सर कहा करते थे—भाई! तुम चाहे धर्म कम करो, व्रत उपवास मत करो, किन्तु झूठ मत बोलो, दूसरों का गला मत काटो अर्थात् बेईमानी करके दूसरों का पैसा मत हड़पो, किसी को कडुवे वचन मत बोलो, ये ही सबसे बड़ा धर्म है। यह धर्म ही मनुष्य की मनुष्यता को कायम रखता है। अन्यथा मनुष्य मनुष्य न रहकर पशु अथवा हैवान बन जाता है।

उन्हें यह दृढ विश्वास था कि तीर्थ यात्रा करने से, दान देने से, मन्दिर में धन लगाने से, धार्मिक उत्सवों में बोलियाँ आदि लेने से व्यापार बढ़ता है। इसीलिए वे सदा इन कार्यो में भाग लिया करते थे। उधर धर्मनाथ की जन्मभूमि नगरी का नाम धर्मपुरी प्रसिद्ध है। एक बार उसकी वेदी प्रतिष्ठा के अवसर पर छोटेलाल जी ने वेदी का पर्दा खोलने की बोली ले ली। जब भगवान्

विराजमान कराने का समय आया तब कु० मैना से पर्दा खुलवाया गया। मैना में धार्मिक संस्कार कुछ विशेष ही थे अतः उन्होंने ज्यों ही महामन्त्र का स्मरण कर पर्दा खोला कि अकस्मात् वहाँ पर एक दिव्य प्रकाश चमक उठा। वहाँ पर खड़े हुए सभी की आँखों में चकाचौंध सा हुआ और सबने उच्चस्वर में जय-जयकार के नारे लगाना शुरू कर दिया।

लाला छोटेलाल जी को मन्दिर को धार्मिक मीटिंगों मे भी बहुत ही प्रेम था। वे प्रायः सभी मीटिंगों में जाते और वहाँ से आकर समाज की सारी गतिविधियाँ घर मे आकर सुनाते रहते थे। तथा दूकान की भी खास बातें घर आकर मैना पुत्री को सुनाया करते थे। जब से घर मे मैना ९-१० वर्ष की हुई थी तभी से ये छोटेलाल जी अपनी पुत्री मैना को अपने पुत्र के समान समझते थे। यहाँ तक कि उन्होंने घर की और दूकान की तिजोरी की चाबियाँ, रुपये पैसे आदि सब मैना को संभला रक्खे थे।

इन्होंने जब अपना नया घर बनवाना शुरू किया तो खड़े रहकर बनवाया। पिता धन्य-कुमार इनके श्रम से बहुत ही प्रसन्न रहते थे अतः वे वृद्धावस्था में अपने इन्हीं पुत्र छोटेलाल की बैठक में रहते थे। ये भी अपने पिता की सेवा अपने हाथ से किया करते थे। सन् १९३९ मे पिता स्वर्गस्थ हुए हैं।

श्री छोटेलाल जी ने अपनी माँ के वचनों का सदा ही सम्मान किया था। कभी भी उन्हें अपमानजनक शब्द स्वयं तो कहना बहुत दूर अन्य किसी को कहने भी नहीं दिया था, उनके मन को भी दुःख हो ऐसा कार्य कभी नही करते थे। माँ की इच्छा के अनुसार अपनी बहनों को बुलाते रहते थे और उन्हें यथायोग्य मान-सम्मान, वस्तुये दिया करते थे। य घर के प्रत्येक कार्यों मे तथा व्यापार के भी हर एक कार्यों में अपने बड़े भाई बब्बूमल और छोटे भाई बालचंद से सलाह करके ही कार्य करते थे। इन्होंने यह आदर्श अपने घर में भाइयों के जीवित रहने तक बराबर जीवित रक्खा था। आज के युग मे प्रत्येक भाई के लिए यह उदाहरण अनुकरणीय है। इनमें एक गुण तो बहुत ही विशेष था वह यह कि यदि कोई भी यह कह देता कि लाला छोटेलाल जी! आपके पाँच पुत्रियाँ हैं ये एक-एक लाख की हुण्डा है। तो वे उसी समय चिढ़ जाते और नाराज होकर कहते—भाई! मेरी पुत्रियों की तुम गिनती क्यों करते हो। ये सब अपना-अपना भाग्य लेकर आई हैं इत्यादि। यहाँ तक कि अन्त में उनके नव पुत्रियाँ होने पर भी उन्होंने मन में किंचित् सोचना तो दूर रहा किसी के मुख से भी कन्याओं के बारे में एक शब्द भी नहीं सुना है। बल्कि जो लोग कन्या के जन्म से दुःखी होते या चिन्ता व्यक्त करते तो उन्हे भी समझाया ही है। वे कहते—भाई! कन्या भी एक रत्न है, अपनी संतान है उसे भार क्यों समझते हो। उसके जन्म के समय दुःखी क्यों होते हो। जन्म लेते ही सब अपना-अपना भाग्य साथ लाई हैं वे किसी के भाग्य का रत्ती भर भी नही ले जायेंगी।

यह उदाहरण भी आज के माता-पिता के लिए अनुकरणीय ही नहीं सर्वथा ग्रहण करने योग्य है। इससे कन्या का मन तो जीवन भर प्रसन्न रहता ही है साथ ही भाई-बहनों का भी आपस में जीवन भर सच्चा प्रेम बना रहता है।

यही कारण है कि आज भी उस हरे-भरे परिवार में बहुत सी कन्यायें हैं। सबको अपने माता-पिता का प्रेम उतना ही मिल रहा है कि जितना उनके भाइयों को मिलता है। इतना ही नहीं कभी कभी तो पिता छोटेलाल जी ने पुत्र से भी अधिक पुत्रियो को प्यार दिया था। पुत्रों को गलती

होने पर फटकार भी देते थे किन्तु पुत्रियों को स्वप्न में भी नहीं फटकारा था। प्रत्युत अपना पुत्र भी यदि कदाचित् पुत्री को कुछ कह दिया तो उसे फटकार कर बहुत कुछ सुना दिया था।

मैना को जब वैराग्य हो गया और अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी उन्होंने दीक्षा ले ली तब पिता छोटेलाल जी को बहुत ही दुःख हुआ था। उसके बाद में वे साधुओं के संघ में जाते-आते रहते थे किन्तु कुछ जन्मांतर के संस्कार ही समझना चाहिए कि इनके सभी पुत्र पुत्रियों ने जीवन में त्याग के लिए कदम उठाया है। उनमें जिनका पुरुषार्थ फल गया वे निकल गये और जो नहीं भी निकल सके वे घर मे दान, पूजा, स्वाध्याय आदि में निरत हैं। इन पुत्र-पुत्रियों के संघ में रहने के प्रसंग पर ये बहुत ही दुःखी हो जाते थे। लाखों प्रयत्नों से उन्हें रोकना चाहते थे। इन्हे अपनी प्रत्येक संतान पर बहुत ही मोह था। इन सबका दिग्दर्शन आर्यिका रत्नमती जी के जीवन दर्शन में दिखाया गया है।

सन् १९६९ में इन्हें पीलिया हो गया था जिससे काफी अस्वस्थ रहने लगे थे। समय-समय पर आ० ज्ञानमती माताजी ने घर के सभी लोगों को यही शिक्षा दी थी कि पिता के अन्त समय उनके पास कोई रोना नहीं। उनकी सल्लेखना अच्छी तरह से करा देना। इस प्रकार माताजी की प्रेरणा से सभी पुत्र-वधुयें और पुत्रियाँ भी उनके पास धार्मिक पाठ भक्तामर स्तोत्र, समाधिमरण आदि सुनाया करते थे। माता मोहिनी जी ने पतिसेवा करते हुए उनकी बीमारी में अन्त समय जानकर बहुत ही सावधानी से उन्हें संबोधा था। उनकी अस्वस्थता मे गांव मे आचार्य सुमतिसागर जी महाराज संघ सहित आ गये थे। मोहिनी जी ने आचार्यश्री से प्रार्थना की थी कि "महाराज जी ! आप इन्हें सम्बोधन कीजिये। तब महाराज जी ने भी वहां बैठकर उन्हें सम्बोधा था कि लालाजी ! तुमने आर्यिका ज्ञानमती जैसी पुत्री को जन्म देकर अपना जीवन धन्य कर लिया है, सभी यात्रायें कर ली है और सभी साधुओं के दर्शन करके उनका उपदेश भी सुना है, उन्हें आहार भी दिया है। अब अपने कुटुंब से मोह छोड़कर शरीर से भी मोह छोड़कर अपना अगला भव सुधार लो।" इत्यादि प्रकार से महाराज जी ने बहुत कुछ किया था। उनके सामने ऊपर में ज्ञानमती माता जी की पुरानी पिच्छी टंगी हुई थी उसे देखकर वे हाथ जोड़कर नमस्कार करते थे। उनका अन्त समय निकट जान औषधि अन्न आदि का त्याग करा कर उन्हे धर्मरूपी अमृत ही पिलाया जा रहा था। उन्होंने मोहिनी जी से अपने सभी पुत्र पुत्रवधू आदि परिवार जनों से क्षमा याचना करके स्वयं क्षमा भाव धारण कर लिया था।

मरण के एक घण्टे पहले उन्होंने कहा—मुझे मेरी ज्ञानमती माताजी के दर्शन करा दो। जब उन्होंने यह इच्छा कई बार व्यक्त की तब मोहिनी जी ने और कैलाशचंद जी ने कहा कि इस समय माताजी यहाँ से बहुत दूर जयपुर मे विराजमान हैं। उन्होंने आपके लिये आशीर्वाद भिजवाया है। पुनरपि जब उन्होंने कहा—मुझे मेरी ज्ञानमती माताजी के दर्शन करा दो। तब घर के लोगों ने उनके सामने एक महिला को जो कि ब्रह्मचारिणी थी, श्वेत साड़ी पहनी थी उसे लाकर खड़ी कर दी और कहा कि ये आपकी ज्ञानमती माताजी आ गई हैं। दर्शन कर लो। तब उन्होंने आँख खोल कर देखा और शिर हिलाकर धीरे से कहा "ये हमारी माताजी नहीं हैं।' इतना कहकर पिताजी ने आँख बन्द कर ली पुनः वापस नहीं खोली। सभी लोग उनके पास मौजूद थे और णमो-कार मन्त्र बोल रहे थे। इस प्रकार आर्यिका ज्ञानमती की स्मृति हृदय में लेकर सभी परिवार के

मुख से णमोकार मन्त्र सुनते हुए पिता छोटेलालजी ने २५ दिसम्बर १९६९ के दिवस इस नश्वर शरीर को छोड़ दिया और स्वर्गधाम को सिधार गये। इधर उनकी धर्मपरायणा धर्मपत्नी मोहिनी जी, सुपुत्र कैलाशचन्द आदि, पुत्रियाँ मालती, माधुरी आदि सभी इनके प्राण निकल जाने के बाद भी एक घण्टे तक णमोकार मन्त्र बोलते रहे। कोई भी वहाँ पर रोया नहीं। अनन्तर जब शरीर ठण्डा हो गया तब रोना धोना चालू हुआ। सभी ने पूज्य आ० ज्ञानमती माताजी की आज्ञा को ध्यान में रखकर पिता के जीवित क्षणों तक धैर्य धारण कर णमोकार मन्त्र सुनाया। उनकी सच्ची सेवा की तथा अच्छी सल्लेखना कराकर एक आदर्श उपस्थित किया है।

श्रीमान् पिता छोटेलाल जी अपने इस जीवन मे संघ दर्शन, आहारदान, तीर्थयात्रा और गुरुओं के उपदेश तथा आशीर्वाद ग्रहण आदि से जो पुण्य संचित किया था इसी के फलस्वरूप उनकी अच्छी आयु बँध गई होगी। यही कारण है कि अन्त समय घर के अंदर इतने बड़े परिवार के बीच में रहते हुए भी उनको इतनी अच्छी समाधि का लाभ मिला है। ऐसी समाधि का योग हर किसी गृहस्थ को मिलना दुर्लभ ही है।



श्रीमती शांतिदेवी (सम्यक्त्व की परीक्षा)

श्री देवेन्द्रकुमार जैन, भोपाल

सन् १९३७ में पिताजी छोटेलाल जी और माता मोहिनी की फुलवारी में एक और पुष्प खिला। जिसकी सुगन्धि मैना के सामीप्य से द्विगुणित हो गई थी। कन्या का नाम शांति रखा गया। शांत स्वभाव वाली बालिका शांति हमेशा बड़ी बहन मैना के साथ रहती और उसके कहे हुए मार्ग पर चलती। उनकी हर क्रिया को बड़े गौर से देखती और अपने भविष्य में उनसे शिक्षा लेने का संकल्प करती रहती।

सन् १९५३ में जब आ० देशभूषण महाराज का संघ टिकैतनगर आया उस समय बड़ी बहन मैना क्षुल्लिका वीरमती के रूप मे आ०श्री के संघ में थी। शांति के विवाह की चर्चायें चल रही थीं। शांति एक दिन मंदिर के दर्शन करके आ०श्री के दर्शन करने गई वहाँ क्षुल्लिका वीरमती ने आ०श्री के समक्ष निवेदन किया—"महाराज! इस लड़की को मिथ्यात्व का त्याग करवाइये।"

उनके कहे अनुसार आ०श्री ने शांति के सिर पर पीछी रखी और बोले—"तेरी बहन जब दीक्षा ले सकती है तो तू इतना छोटा सा नियम भी नही ले सकती।" शांति ने स्वीकृति मे सिर हिलाया और बोली—

"महाराज! आपके आशीर्वाद से मैं बड़े से बड़े नियम का पालन करने में भी अपना सौभाग्य समझूंगी। फिर इस नियम मे कौन सी बड़ी बात है। इसका पालन करना तो मैंने जीजी के जीवन से ही सीख लिया था।"

सन् १९५४ में लखनऊ शहर से १० किमी० दूर मोहोना नामक ग्राम के श्रेष्ठी श्री गुलाब-चंद जी की धर्मपत्नी श्रीमती सुभद्रा के सुपुत्र श्री राजकुमार जी के साथ आपका विवाह हो गया। सौभाग्य से जिस घर मे आप बहू बनकर आई उस घर मे एक सुन्दर चैत्यालय था। उसमे भगवान् नेमिनाथ की अतिशय चमत्कारी प्रतिमा विराजमान थी। जो आज भी उस गाँव के मंदिर मे सुरक्षित रूप से विराजमान है। किन्तु दुर्भाग्य कि इस घर में पुरानी पीढ़ियों से मिथ्यात्व के पालन की परम्परा चली आ रही थी। घर की बड़ी वृद्धा महिलायें नरसिंह देवता की प्रतिदिन पूजा करतीं।

नई बहू होने के नाते प्रारम्भ में ही कुआं पूजन जैसी क्रियायें करने के लिए कहा गया। मन में लज्जा थी किन्तु की हुई प्रतिज्ञा भी विस्मृत नही हुई थी। शांति के समक्ष धर्मसंकट था। उसने दृढ़ता पूर्वक धीरे से अपनी सास से कहा—अम्मा जी! मैं इन क्रियाओं को नहीं करूँगी। मुझे महाराज ने इनका त्याग करवा दिया है। नई बहू की ये बातें किसी को अच्छी तो नही लगीं लेकिन बात को बढाना उचित न समझकर शादी के शेष रीति रिवाज संक्षेप में समाप्त कर दिये गये। लेकिन शांति ने भगवान् नेमिनाथ के चैत्यालय में जाकर भविष्य मे रक्षा करने की प्रार्थना की। अपनी प्रतिज्ञा में दृढ़ रहने के कारण सबके द्वारा बाध्य करने पर भी नरसिंह देवता की पूजा नहीं की। घर आकर जब शांति ने सारी रामकहानी माँ को सुनायी तो उसे बहुत कष्ट हुआ लेकिन साहस बँधाते हुए सब कुछ ठीक हो जायेगा ऐसा कहा।

विदाई की निश्चित तिथि के अनुसार राजकुमार जी आकर शांति को बिदा कराकर ले गये। विदाई से पूर्व माँ ने अपने दामाद का तिलक करते हुए नम्रतापूर्वक कहा—"बेटा ! शांति के मिथ्यात्व का त्याग है इसलिए वे इसका ध्यान रखें। वे कुछ बोले नहीं और घर आ गये।

घर आकर वे ही दैनिक क्रियायें। घर की सभी वृद्धा महिलायें इन्हें समझाती कि इस घर के लिए नरसिंह भगवान् इष्ट देवता हैं। तुम्हें भी इनका पूजन करना चाहिए। लेकिन ये मौन रहती। घर के काम काज से अवसर पाकर भगवान् के पास श्रद्धापूर्वक माला फेरना यही आपकी दैनिक चर्या थी।

एक दिन की घटना—

शांति ने अपने कमरे में अलमारी से चीनी निकालने के लिए अलमारी का दरवाजा खोला और जोर से चिल्लाती हुई बाहर आई—दौड़ो-दौड़ो साँप।

सबने आकर देखा, वहाँ तो कुछ भी नहीं था लेकिन इन्हें काले फण का साँप अभी भी नजर आ रहा था। थोड़ी देर में सब लोग अपने-अपने स्थान पर चले गये। शांति अलमारी खोलकर चीनी के बर्तन को उठाकर रसोई घर की ओर जाने लगी। चीनी काँच के एक ढक्कनदान बर्तन में थी। ज्यों ही कमरे से बाहर कदम बढ़ाया ही था कि आप बेहोश होकर गिर पड़ी। चीनी का बर्तन फूट गया, काँच के कई टुकड़े इधर-उधर बिखर गये। शांति की चीख का स्वर सुनकर सब दौड़े कि क्या हुआ। बड़ा ही अजीब दृश्य था। कई चीखें एक साथ निकल पड़ी। सबकी आवाजें सुनकर पास में ही दूकान से पुरुष वर्ग भी आ गये।

सब देख रहे हैं, शांति बेहोश पड़ी है। काँच चुभने से दाहिने हाथ की कलाई के पास की पूरी हड्डी कट गई है, खून का तालाब भरा जा रहा है। साधन विहीन गाँव, वहाँ तो कुछ इलाज भी सम्भव नहीं था। चिन्ता यह थी कि जान कैसे बचाई जाये।

जैसे-तैसे कुछ लोग तांगे में लेकर पास के गाँव इटोंजा ले गये वहाँ डाक्टर के इलाज से होश आया। फिर २-४ दिनों में आप्रेशन होकर टाँके लगाये गये। धीरे-धीरे घाव ठीक हो गया। कार्य करने में आज भी दाहिना हाथ काफी कमजोर रहता है, बड़े घाव का निशान आज तक है।

शांति के पति अधिकतर व्यापारिक कार्यों से गाँव से बाहर ही रहते थे। धीरे-धीरे उनकी संगति कुछ बिगड़ गई। कई असामाजिक तत्वों ने राजकुमार के जीवन से खेलना चाहा। संस्कारों के वशीभूत किन्तु सीधे सरल राजकुमार उनके छल-कपट को नहीं पहचानते थे और ऐसे लोगों को अपना जिगरी दोस्त समझते थे।

एक रात ११ बजे तक शांति मन्दिर मे बैठी माला फेर रही थी। राजकुमार गाँव में रहते हुए भी अभी घर नही आये थे। कोई अज्ञात भय शांति के मन मे बार-बार हलचल पैदा कर रहा था। फिर भी चित्त को एकाग्र करके वे भगवान् का ध्यान करती रही। अकस्मात् उन्हें स्वप्न सा हुआ मानो भगवान् साक्षात् बोलकर कह रहे है—आज राजकुमार की जान का खतरा है। घर आने के बाद तुम उन्हें आज रात बाहर मत जाने देना। एकाएक ध्यान टूटा। हे भगवन् ! मैं अकेली इन मुसीबतों को कैसे सहन करूँगी, यहाँ तो मेरा कोई भी रक्षक नहीं है। इतने में दरवाजे की आहट हुई, राजकुमार ने घर मे प्रवेश किया तब शांति की मानों जान आई। दो तीन घण्टे के बाद ही कुछ व्यक्तियों ने राजकुमार को आवाज देना शुरू किया और जोर-जोर से हँसने लगे। जल्दी आओ का स्वर घर में गूँज रहा था।

राजकुमार थके कदमों से उठकर जाने को तैयार हुए। शांति ने उन्हें रोका मैं नहीं जाने दूँगी। आप सुबह बात कर लेना। लेकिन वे जबरदस्ती अपने को छुड़ाकर जाने की चेष्टा करने लगी। शांति ने अपने सास ससुर को बुलाकर रोकने को कहा। होनहार की बात वे सबकी बात मानकर नही गये और न दरवाजा ही खोला गया। रात भर उन लोगो ने बहुत उपद्रव किये। सुबह होते ही पुलिस के डर से भाग गये। एक अनहोनी दुर्घटना से बचत हुई। सबके दिल शांत हुए।

इस प्रकार आपके जीवन मे कई ऐसे परीक्षा के अवसर आये लेकिन आपने उन्हें शांतिपूर्वक भ० नेमिनाथ की कृपा प्रसाद से दूर किया और सफलता हासिल की।

कुछ वर्षो के बाद आचार्यरत्न श्री विमलसागर जी महाराज अपने संघ सहित विहार करते हुए मोहोना गाँव में भी आये। आपने उनसे अपनी आत्मकथा सुनाई। आ०श्री ने कहा कि तुम यह घर छोड़ दो, तुम्हें यहाँ हमेशा दुःख उठाने पडेंगे। आ०श्री के कहे अनुसार आपने मोहोना गाँव छोड़कर लखनऊ में अपना घर बसाने का निश्चय कर लिया।

धीरे-धीरे प्रयास करके आप अपने पति तथा बच्चों सहित लखनऊ डालीगंज में आकर रहने लगीं। आज भी आप लखनऊ में ही धर्मध्यान पूर्वक अपना गृहस्थधर्म पालन कर रही हैं। गाँव मे इन उपसर्गों के बीच आपने दो सन्तानों (एक पुत्र एक पुत्री) को जन्म दिया। अब आपके परिवार मे चार लड़के और तीन लड़कियाँ हैं। दो की शादी हो चुकी है तथा और सभी अध्ययन कर रहे हैं। लखनऊ में आने के बाद कभी पूर्वघटित घटनाओं का सामना नही करना पड़ा। पति भी सुयोग्य व्यापारी तथा लखनऊ के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में है। आपकी सास अभी जीवित है। आपकी दृढ़ता से पहले से ही प्रभावित है।



श्री कैलाशचंदजी जैन





आप छोटेलाल जी की तीसरी सन्तान हैं। बचपन से ही आपको अपनी बड़ी बहिन मैना का सामीप्य प्राप्त रहा और उनकी धार्मिक क्रियाओं का आपके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ता रहा। दोनों भाई-बहनों में काफी धर्मचर्चायें चला करती थीं। कैलाश जब स्कूल से पढ़कर आते तो उनकी मैना जीजी तरह-तरह के प्रश्न पूछती। आप बड़ी चतुरता पूर्वक उनका उत्तर देते और इस तरह उनका पढ़ा हुआ पाठ याद हो जाता। बुद्धि का चातुर्य तो आपको भी विरासत में ही मिला था। १०-१२ वर्ष की लघु वय में ही आप पिताजी के कंधे का भार स्वयं वहन करने के लिए व्यापार में रुचि लेने लगे। जब पिताजी कुछ अस्वस्थ रहने लगे तब उनकी सेवा करना अपना कर्तव्य समझा। और अन्त समय तक उनकी सेवा करके सल्लेखना पूर्वक समाधि कराई। बड़े होने के नाते पिता का उत्तरदायित्व आपको निभाना पड़ा। आज आप व्यापारिक उन्नति के साथ सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र में भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अपनी जन्मभूमि टिकैतनगर तथा लखनऊ मे आपका सर्राफे का बड़ा अच्छा व्यापार है एवं प्रतिदिन दान पूजन आदि अपने कर्तव्यो का पूर्णतया पालन करते है।

कहते हैं कि होनहार धार्मिक विचारों वाले पुरुष को यदि उसकी प्रकृति के अनुकूल सहचारिणी (धर्मपत्नी) मिल जाती है तो सोने में सुगन्धि की तरह उसका जीवन सुवासित हो जाता है। कैलाशचंद जब १६ वर्ष के थे तभी उनकी योग्यता की चर्चायें सारे गाँव मे व्याप्त हो गईं। उसी ग्राम में ला० शांतिलाल जी जैन सर्राफ अपनी बड़ी कन्या चंदा रानी के विवाह सम्बन्ध हेतु कैलाशचंद के माता पिता के पास प्रस्ताव लाये। विधि का संयोग मिला, भरा पूरा परिवार होते हुए घर में अब बहू की ही कमी थी। रूपवती, गुणवती बालिका चन्दा और कैलाश प्रणय बन्धन मे बँध गये। माता-पिता बहू को पाकर एवं छोटे भाई बहन भाभी को पाकर प्रसन्न थे। बहू भी मानो इस घर की धार्मिक क्रियाओं से परिचित ही थी, सबकी इच्छानुकूल आचरण, सास, ससुर की सेवा में वह प्रसन्न रहती थी।

आपने दो पुत्र और २ पुत्रियों को जन्म दिया। उनमें से कु० मंजू आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेकर आप लोगों के पास ही रहती है।

कैलाशचंद जी की कार्यो के प्रति रुचि और क्षमता देखकर सन् १९६९ में आ०रत्न श्री देशभूषण महाराज के सुशिष्य मुनि श्री सुबलसागर महाराज ससंघ टिकैतनगर पधारे। समाज के विशेष आग्रह पर महाराज ने वहीं चातुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान की। टिकैतनगर समाज द्वारा भी आपका धार्मिक कार्यो मे रुचि देखकर चातुर्मास कमेटी का "प्रधानमन्त्री" बनाया गया। इस चातुर्मास की विशेष उपलब्धि आपकी छोटी बहिन कु० मालती द्वारा आश्विन शुक्ला दशमी (विजया दशमी) को सारी समाज तथा परिवार के संघर्ष को सहन कर आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया। सन् १९७४ में भगवान् बाहुबली जिनबिम्ब पंचकल्याणक महोत्सव को सफल बनाने के लिए टिकैतनगर की जैन समाज ने आपके कंधों पर सारा भार छोड़कर "महामन्त्री" पद प्रदान किया। प्रतिष्ठा महोत्सव में देश के वरिष्ठ श्रीमान् विद्वान् आदि टिकैतनगर पधारे और आ० ज्ञानमती माताजी की गौरवमयी जन्मभूमि, रत्नमती माताजी की कलापूर्ण कर्मभूमि के प्रति नत-

मस्तक हुए और सबने आपके मधुर व्यवहार, समुचित व्यवस्था, उनके बुद्धि कौशल की भूरि-भूरि प्रशंसा की। तभी से सबकी निगाहें कैलाश पर टिक गईं कि यह व्यक्ति संघर्ष का सामना शांतिपूर्ण ढंग से कर सकता है। दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान के भी आप विशिष्ट सदस्य हैं। प्रारम्भ से लेकर आज तक इस संस्था को जो तन मन धन से आपका सहयोग प्राप्त हुआ वह अविस्मरणीय है। अखिल भारतवर्षीय दि० जैन महासभा की उत्तर प्रदेश शाखा के आप महामन्त्री है। तथा अखिल भारतवर्षीय दि० जैन युवा परिषद् के आप अध्यक्ष हैं। वर्तमान में टिकैतनगर जैन समाज ने भी आपके न चाहते हुए भी आपको अपने यहाँ के अध्यक्ष के पद से सुशोभित किया। लखनऊ रहते हुए भी आप समय-समय पर टिकैतनगर जैन समाज के आयोजनों में पूर्ण योगदान देकर अपने पद का सदुपयोग कर रहे है। एक वर्ष पूर्व आपके छोटे भाई प्रकाशचंद जी ने मातृभक्ति के प्रतीक मे एक 'रत्नमती बाल विद्या मंदिर' की स्थापना की है उसके भी आप मान्य 'संरक्षक' है। नन्ही-नन्ही शिशु कलियों को विकसित करता हुआ वह विद्या मन्दिर उत्तरोत्तर उन्नति पथ पर अग्रसर है। अनेकों व्यापारिक तथा गार्हस्थिक झंझटों को सुलझाते हुए भी २ वर्ष पूर्व भगवान् बाहुबलि सहस्राब्दी के शुभावसर पर लखनऊ से आ रहे यात्रा संघ के साथ आप भी सपरिवार यात्रार्थ गये। उस यात्रा से आपको एक विशेष उपलब्धि हुई।

भगवान् बाहुबलि के जीवन पक्ष पर विचार करते हुए सोचा कि ये ऋषभदेव के पुत्र हैं। भगवान् ऋषभदेव ने अयोध्या मे जन्म लिया। इसके साथ बहुत से तीर्थंकरों ने भी वही जन्म लिया। उस तीर्थक्षेत्र का हम लोगों का सामीप्य भी प्राप्त है किन्तु उसकी प्रगति वर्तमान मे विशेष तौर पर नहीं है। अवध प्रांत की एक जैन डाइरेक्ट्री की कमी खली। कुछ ही दिनों में योजना को मूर्त रूप मिला। कार्य प्रारम्भ हुआ। लखनऊ निवासी कई कर्मठ कार्यकर्ताओं ने आपके साथ पूर्ण सहयोग प्रदान किया। 'अवध डायरेक्ट्री' के नाम से प्रकाशित करवाकर गतवर्ष जोरदार आयोजन सहित "रवीन्द्रालय आर्किटोरियम" लखनऊ मे उसका विमोचन हुआ। यह एक चिरस्मरणीय कार्य हुआ। फिलहाल आप लखनऊ सर्राफा एसोशिएशन के भी अध्यक्ष हैं।

आपके विभिन्न क्षेत्र मे बढ़ते हुए कदमो को देख कर सहज ही माता की विशेषता ज्ञात हो जाती है। माँ मोहिनी जो आज जगन्माता रत्नमती है उनकी उज्ज्वल कुक्षि से आपने जन्म लिया है अतः गौरवशाली हैं। आप इसी प्रकार से अपने जीवन का अधिकाश भाग प्राणिहितार्थ लगाते रहे यही उज्ज्वल भविष्य के लिए कामना है।



श्रीमती जैन



(भक्तामरस्तोत्र का आपके जीवन में प्रत्यक्ष चमत्कार)



सन्तान क्रम की परम्परा में आप माँ मोहिनी की चतुर्थ कन्यारत्न हैं। सन् १९४१ में आपका जन्म हुआ। बड़ी बहन मैना जीजी का आपको काफी समय तक साहचर्य प्राप्त रहा। इसलिए आपने भोग निवृत्ति मार्ग अपनाने का प्रयास तो अवश्य किया लेकिन उसमे सफलता नहीं मिल सकी।

आपका विवाह सन् १९५८ में जिला बहराइच के पास पखरपुर निवासी लाला श्री सुखानन्द जी और श्रीमती मैनाबाई के सुपुत्र श्री प्रेमचन्द जी के साथ हुआ। आपने अपने गुणों तथा गृह-कार्यों की कुशलता से सास-ससुर का मन जीत लिया। गांव के आस-पास के इलाकों में भी आपकी प्रशंसा होती। माँ के संस्कार और बड़ी बहन की छाया जो आपके ऊपर पूर्णरूपेण पड़ चुकी थी। घर के सभी सदस्य आपसे प्रभावित थे। काफी धनाढ्य परिवार होते हुए भी तीर्थयात्रा करने की इस घर मे परम्परा नहीं थी। आपने धीरे-धीरे सबको प्रोत्साहित किया और थोड़े दिनों मे यह परम्परा भी प्रारम्भ हो गई। इन यात्राओं के माध्यम से कई बार आप अपने परिवार सहित ज्ञानमती माताजी के संघ में दर्शनार्थ भी आईं जिसका आपके पति के ऊपर और बच्चो पर भी प्रभाव पड़ता रहा। सीधे-सादे सरल प्रकृति के श्री प्रेमचन्द जी झूठ और छलकपट से तो काफी दूर रहते हैं। संघ में कई बार आवागमन से आपने अशुद्ध बाजारू खानपान का त्याग कर पूज्य माताजी को तथा समस्त साधुओं को आहार दान भी दिया। श्रीमती तो पूर्व से धर्मात्मा थी ही, पति के सहयोग ने उन्हें और भी बल प्रदान किया। पति-पत्नी का सादा सरल जीवन अब अन्य दम्पतियो के लिए एक मार्गदर्शक बन गया। आपके घर में गृह चैत्यालय होने से प्रतिदिन पूजा प्रक्षाल की परम्परा भी पड़ी हुई है। आपके परिवार में २ पुत्र एवं ४ पुत्रियाँ हैं।

अभी पिछले सन् १९८२ के अक्टूबर महीने की घटना है। रवीन्द्रकुमार और कु० माधुरी टिकैतनगर गये हुए थे। २-४ दिन घर पर रहकर जब आने लगे प्रातः ९ बजे का समय बस पर सब लोग उन्हे छोड़ने आ रहे थे। तभी समाचार मिला कि बहराइच मे श्रीमती की हालत अधिक सीरियस है। उनके पेट मे फोड़ा है, चन्द घन्टों की मेहमान हैं। सबके सब पत्थर की मूर्ति से खड़े सोचते रहे यह क्या हो गया। दरियाबाद से बहन कामिनी और जयप्रकाश जी भी हम लोगों से मिलने आये थे। रवीन्द्र ने कहा–सोचने मे देरी मत करो, सब लोग चलो। पता नही क्या घटना घटी हो। रवीन्द्र, माधुरी, कामिनी, जयप्रकाश, सुभाषचंद जल्दी बहराइच चल दिये। सब लोग शाम को ५ बजे टैक्सी द्वारा बहराइच पहुँचे। वहाँ पता लगा अस्पताल मे हैं। चिन्तित मुद्रा में सभी अस्पताल पहुँचे। बहिन श्रीमती दरवाजे पर सबको देखकर खुशी से उछल पड़ी। अपने बच्चों को सम्बोधित करती हुई बोलीं देखो! मैंने कहा नही था कि कल रवीन्द्र आयगे, माधुरी आयेंगी। सब आ गये। सब लोग पास गये, बैठे। श्रीमती भावविभोर खुशी के अश्रु बहाये जा रही थी। सबने उन्हें धीरज बँधाया।

"भैया! आज मैं तुम्हें इन बच्चों के भाग्य से ही दिख रही हूँ। मेरे बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। चि० प्रदीप कुमार ने बीच मे ही कहा—अम्मा! डाक्टर ने तुम्हे बोलने को मना किया

है तुम मत बोलो। सभी ने उन्हें बोलने से रोका और कहा—तुम चिन्ता मत करो जब तुम ठीक हो जाओगी तभी हम लोग जायेंगे। प्रदीपकुमार ने धीरे-धीरे सारी घटना सुनानी शुरू की।

कई दिनो से अम्मा के पेट में दर्द रहता था। पेट दर्द की दवाइयाँ भी दी गईं लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। कई डाक्टरों को दिखाया गया, होनहार की बात किसी की कुछ समझ में न आया। दर्द असहनीय हो गया। इनके दिमाग मे कुछ गर्मी सी फैलने लगी। दो चार दिनों बाद बहुत बड़े फोड़े का सा आकार बाहर दीखने लगा, पिताजी फिर अस्पताल लेकर आये। इससे पूर्व प्रतिदिन ये एक कटोरी जल में भक्तामर स्तोत्र पढ़कर पानी करती थी। भक्तामर के ऊपर उनकी श्रद्धा प्रारम्भ से ही बहुत अधिक है। अस्पताल मे डा० ने एक्सरे लिया और बताया अब तो केस काफी बढ़ चुका है। हम इसे हाथ में नही ले सकते। ये तो केवल ३-४ घण्टे की मेहमान हैं। पिताजी का धैर्य टूटा जा रहा था। हम तो बिल्कुल असहाय होने की स्थिति मे थे। इतने मे अम्मा ने बड़ी शांति से कहा—तुम लोग मुझे घर ले चलो। मरना ही है तो धर्म सुनते-सुनते मरूँगी। अस्पताल की दुर्दशा-पूर्ण मृत्यु से क्या लाभ। हमारी इच्छा न होते हुए भी हम टैक्सी मे उन्हें लेकर घर के लिए रवाना हुए। रास्ते में पिताजी ने एक जगह टैक्सी रोकी। उतर कर किसी से पूछा—भैया! यहाँ कोई मंत्र तंत्र के जानकार ज्योतिषी पंडित नही है। व्यक्ति ने हाँ में सिर हिलाया और उँगली के इशारे से पं० जी का घर बता दिया। मुसीबत के समय व्यक्ति को मिथ्यात्व सम्यक्त्व का ज्ञान नही रहता। इधर अम्मा अपने भक्तामर स्तोत्र के पाठ मे तल्लीन, पिताजी पं० जी के पास गये सब हाल बताया। पं० जी ने कहा—मै एक कटोरी जल मंत्र फूंककर दूंगा। उसको पिला दो। सब ठीक हो जायेगा। अपने तथा परिवार के भविष्य को अंधकार से बचाने के लिए पिताजी वह जल लेकर आये। अम्मा को देने लगे तो इन्होंने पूछा कि पं० जी कौन है, पता चला मुसलमान हैं। माँ ने पानी पीने से साफ इन्कार कर दिया। हम सब घर आ गये।

माँ के जीवन के मोह मे पिताजी ने पुनः सोचा कि मैं झूठ बोल दूँ कि किसी जैन पंडित से मै जल लेकर आया हूँ। फिर उन्होंने विचार बदल दिया कि कभी मेरी अश्रद्धा से कोई कटु फल न प्राप्त हो जाये। घर मे अम्मा लेटी हैं देखने वाले आ रहे है। हम सभी भाई बहन तो रो-रो कर पागल हुए जा रहे थे। आप सच मानें इनकी दृढ़ता पर मुझे अब ताज्जुब होता है कि हम सबको समझाते हुए इनकी आँखों मे एक आँसू नहीं था। आज तो ये रो रही है। मामा! अम्मा ने पिता जी से कहा—देखो! तुम दूसरी शादी जरूर कर लेना नहीं तो मेरे बच्चों को कौन सँभालेगा। पिताजी वहाँ अधिक देर तक बैठ न सके। वहाँ से उठ गये। बच्चों की तरह फूट फूटकर रोने लगे। हमलोगों को पास बिठाकर सबको प्यार से चूमते हुए कहा—बच्चो! प्रेम से रहना, रोना मत। हमारा तुम्हारे साथ इतने ही दिन का सम्बन्ध था। हम रोते-रोते माँ से लिपट गये, उनके मुँह पर हाथ रखा—अम्मा ऐसा मत कहो—मत कहो! पुनः हमें इन्होंने धैर्य बँधाया और कहा कि हो सकता है मैं ठीक हो जाऊँ तो मैं सबको लेकर ज्ञानमती और रत्नमती जी के दर्शन करने चलूंगी। बाद में बोली—अच्छा। सब बकवास बन्द करो। मुझे समाधिमरण सुनाओ। एक सज्जन ने पुस्तक उनके हाथों में दे दी और बोले तुम ठीक तो हो स्वयं पढ़ो। शायद इसलिए कि बच्चों को दुख न हो।

वह दिन निकल गया हम लोगों ने काफी जिद की कि आप कुछ खा लें लेकिन इन्होंने कहा कि कल सुबह तक मेरा चतुराहार का त्याग है। यह घटना सुनते-सुनते सबकी आँखें सजल हो गई

थीं। प्रदीप आगे कहने लगा—मौसी ! दूसरे दिन सबेरे मैंने इनके कहे अनुसार भक्तामर स्तोत्र पढ़कर पानी दिया। थोड़ी देर बाद बहुत जिद करने पर इन्होंने साबूदाना नमकीन पकाकर देने को कहा। सुमन ने तत्काल साबूदाना बनाकर चम्मच से खिलाया। उस दिन कई दिनों में इन्हे थोड़ी सी नींद लगी। हम सब हैरानी के साथ माँ के जागने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इतने में अम्मा ने आँखें खोलीं। दर्द में कराहते हुए बोली—मुझे दीर्घ शंका की बाधा है। वहाँ से वापस आकर इन्होंने पिताजी से कहा—डॉ० को बुलाकर दिखाओ शायद मेरा फोड़ा फूटकर बह गया। मुझे कुछ तसल्ली है।

सबके चेहरे पर जैसे चमक आ गई। हम दौड़ते भागते डॉ० साहब को बुलाकर लाये। उन्होंने सारी स्थिति देखकर कहा—हे ईश्वर ! ये अभी जीवित है किस ऋषि मंत्र ने इन्हें जीवन दान दिया। अब इनका संकट समाप्त हो चुका है। जान लेवा फोड़ा इन्हे छोड़कर चला गया। आगे कोई खतरा नहीं है। थोड़ी सी दवाइयां और इन्हे देनी होंगी ताकि भविष्य मे पुनः कोई खराबी न उत्पन्न हो सके। डॉ० के कहे अनुसार इन्हे यहाँ अस्पताल लाया गया है १-२ दिन मे छुट्टी मिलने पर हम लोग घर चले जायेंगे।

वे पुनः स्वास्थ्य लाभ करके अपने परिवार सहित ज्ञानमती माताजी के संघ मे दर्शनार्थ अक्टूबर मे आयोजित सेमिनार तथा माताजी की जन्मजयन्ती के शुभ अवसर पर आईं।

पूज्य माताजी को भी इनको सारी घटना रवीन्द्र और माधुरी ने बताई ही थी। माताजी ने श्रीमती को शाबाशी देते हुए अनेकों शुभाशीर्वाद दिये। उनके पति श्री प्रेमचंद तथा प्रदीपकुमार को भी सम्बोधन प्रदान करते हुए कहा—ये ही परीक्षा के अवसर होते हैं। ऐसे समय बड़े धैर्य से काम लेना चाहिए।

आप आगामी भविष्य में स्वस्थ रहें, प्रतिज्ञा में दृढ़ रहें तथा परिवार आपका हमेशा सह-योगी बना रहे यही वीर प्रभु से प्रार्थना है।



श्री प्रकाशचंदजी जैन





श्री प्रकाशचंदजी जो माँ मोहिनी के होनहार रत्नों मे से छठे रत्न हैं। आपका जन्म चैत्र सुदी नवमी सं० २००१ दि० २२-३-१९४५ को हुआ। लम्बे समय का अन्तराल पुत्र जन्म की प्रसन्नता को द्विगुणित कर देता है। दो कन्याओं के पश्चात् जन्म लेने वाले बालक के भाग्य को सबने सराहा। अपनी बड़ी जीजी मैना के द्वारा उसे प्रकाशचंद यह संज्ञा प्राप्त हुई।

प्रकाश भी बचपन से ही अपने नाम की सार्थकता के लिए प्रयास करने लगे। बड़ी बहन मैना ने जब गृह त्याग किया था तब इनकी उम्र लगभग ६–७ वर्ष की थी। समझदार तो थे ही परिवार वालों का, माता पिता का अपनी सन्तानों के प्रति स्नेह भी आपसे छिपा नहीं था। जब कभी प्रकाश को जरा भी किसी के प्रति गुस्सा आता तो सीधे एक ही धमकी देते—"मैं ज्ञानमती माताजी के पास चला जाऊँगा।" इनके तेज मिजाज से घर में सभी डरते थे कि कहीं यह भी चला गया तो क्या होगा। आखिर एक दिन मौका हाथ लग ही गया।

सन् १९५९ की बात है, माता-पिता के साथ आ०श्री शिवसागर महाराज के संघ सहित चातुर्मास के समय अजमेर (राज०) में प्रकाश को भी ज्ञानमती माताजी तथा संघ के दर्शन का लाभ प्राप्त हुआ। एक महीने तक सबने चौका लगाकर आहारदान दिया। साधुओं के प्रवचन सुने और वैयावृत्ति की। प्रकाशचंद ने भी ज्ञानमती माताजी के अन्य शिष्यों के साथ थोड़ा बहुत धार्मिक अध्ययन भी किया। बस फिर क्या था इनके दिमाग में भी रंग चढ़ गया, बोले—मैं थोड़े दिन यहीं रहूँगा। माँ बाप की डाँट-फटकार के समक्ष कुछ बोले तो नहीं लेकिन उनके वहाँ से प्रस्थान के समय बाबाजी की नशिया में ही मंदिर के पीछे इमली के पेड़ पर चढ़ गये। नटखट तो पहले ही थे। सबकी ढूँढ़ा-ढूँढ़ी का तमाशा देखकर ऊपर बैठे-बैठे ही मजा ले रहे थे और इमली तोड़-तोड़कर खा रहे थे। जब सबका जाना स्थगित हो गया तो ऊपर से उतरे और पुनः यही कहा कि मैं थोड़े दिन धार्मिक अध्ययन करके वापस घर आ जाऊँगा। आचार्य महाराज व संघस्थ विद्वान् ब्रह्मचारी वर्गों के अत्यधिक समझाने पर माता-पिता ने इन्हे संघ में छोड़ दिया किन्तु साथ ही वचन ले लिया कि ज्ञानमती माताजी इस पर अपना जादू नहीं चलायेंगी।

सन् १९६२ में ज्ञानमती माताजी आर्यिका संघ सहित सम्मेदशिखर यात्रा के लिए विहार कर रही थीं कि एक बार पुनः प्रकाश के हाथ स्वर्ण अवसर लग गया। संघ में मनोवती जो ब्रह्मचारिणी थीं तथा आपकी बड़ी बहन भी। उनका टेलीग्राम आया कि प्रकाश को हमारे साथ यात्रा में अवश्य भेज दो। प्रकाश ने भी जिद की और शिखर जी यात्रा के अनन्तर ही वापस आने का वायदा भी किया और घर से रवाना होकर मथुरा जी आ गये जहाँ आर्यिका संघ ठहरा हुआ था। यहीं से आपकी यात्रा प्रारम्भ हुई या यों कहिये कि आपने आर्यिका संघ का कुशलता पूर्वक संचालन करना प्रारम्भ किया। इस यात्रा में ब्र० सुगनचंदजी के साथ प्रकाशचन्द माताजी की यात्रा में अपूर्व सहयोग दे रहे थे। ब्र० जी चौके की व्यवस्था में लगे रहते और प्रकाश माताजी के साथ पद विहार करते। साथ में साइकिल, भगवान् की पेटी, कमण्डलु तथा अपना भोजन लेकर चलते थे। जहाँ कहीं सूर्यास्त होने को होता बैठकर भोजन करते और माताजी के कमण्डल का ही

जल पी लेते। कहाँ घर का शाही जीवन और कहाँ संघस्थ जीवन। लेकिन धुन के पक्के प्रकाश ने मार्ग में आगत अनेकों कष्टों तथा प्राकृतिक आनन्द को प्राप्त करते हुए सम्मेदशिखर तक पूर्ण यात्रा आर्यिका संघ के साथ की।

कुछ दिन वहाँ के दर्शन, पर्वत वंदना आदि का लाभ मिला ही था कि घर से पुनः तार आ जाने से आपको वापस घर जाना पड़ा। इन दिनों के अन्तर्गत ही आपने १६–१७ वर्ष की छोटी सी उम्र मे ही पू० ज्ञानमती माताजी की पूजन बनाई।

इसके अलावा तरह-तरह के भाव तरंगों में सुन्दर भजनों की रचना भी किया करते थे।

लाला श्री जयकुमारजी की सुपुत्री आयुष्मती ज्ञाना जैन के साथ सन् १९६६ में प्रकाशचंद का विवाह हो गया। ससुराल आते ही बहू को प्रकाश के स्वभाव से परिचित करवा दिया गया था। आज लगभग १८ वर्ष शादी को हो चुके है घर मे किसी प्रकार की कलह अशांति नही है। बल्कि प्रकाशचंदजी अब पूर्ण रूपेण परिवर्तित हो गये और घर मे हमेशा सुख-शांति मनोरंजन का वातावरण दिखता है। ज्ञाना की यह प्राकृतिक शालीनता है कि प्रकाश की नाराजगी के समय मौन रहना और हमेशा हँसकर उनका गुस्सा शांत करना। प्रकाशजी हरे-भरे विशाल परिवार के जनक है। आपके ४ पुत्र तथा ३ कन्याये है।

गृहस्थावस्था मे कुछ विशेष या सामान्य जीवन हर व्यक्ति यापन करता है किन्तु खुद माता-पिता बन जाने के बाद जिम्मेदारियो को सम्भालते हुए अपने माँ बाप का नाम रोशन करने की भावना शायद हर सन्तान मे नही होती है। आपके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि "अपने ऊपर माँ के द्वारा किये गये उपकारों को मैं किस प्रकार जीवन भर याद रख सकूँ तथा जन-जन की सन्तानों में उस माँ के संस्कारों की अमिट छाप डाल सकूँ।" इन भावनाओं को तथा आधुनिक युग की माँग को दृष्टि में रखते हुए गाँव के बच्चे शहरी बच्चों की अपेक्षा कही अशिक्षित न रह जायें इन भावी चिन्ताओं से भी साधन विहीन गाँव में एक 'रत्नमती बाल विद्या मंदिर' की स्थापना की जिसमें आधुनिकता पूर्ण धार्मिक नैतिक शिक्षण बच्चो को प्राप्त कराया जाता है। उसकी दिनों दिन उन्नति के लिए आप सदैव प्रयत्नशील रहते है। लगभग ३–४ वर्षो से प्रकाशचंद जी गैस की बीमारी से दुःखी रहते थे। अभी लगभग ६ महीने पूर्व आप माताजी के दर्शनार्थ हस्तिनापुर आये और विद्यालय की उन्नति बतलाते हुए बोले—माताजी अब मै पूर्ण स्वस्थ हो गया हूँ। मुझे कोई बीमारी नही है। हर वक्त अपनी बाल फुलवारी को पुष्पित देख-देख कर मै फूला नही समाता हूँ। और उनकी उन्नति को मै अपने जीवन की उन्नति मानता हूँ।



श्री सुभाषचंदजी जैन



प्रकाशचंद जी के जन्म के दो वर्ष बाद सन् १९४२ मे माता मोहिनी ने एक और पुत्ररत्न को जन्म दिया जिसका नाम रखा गया 'सुभाषचद ।' पूर्वकृत पुण्य के अनुसार सुभाष को स्वाभाविक रूप से सुन्दर रूप तथा सद्गुण प्राप्त हुए। प्रारम्भ से ही सीधे-सादे सरल स्वभावी बालक को कोई कुछ भी कह लेता वह मौन पूर्वक सुन लेना । कभी किसी को उल्टकर अशब्द नहीं कहता। धार्मिकता और तीक्ष्ण बुद्धि तो विरासत की ं न थी ही । इन्हें बचपन से ही संगीत में विशेष रुचि थी। कई बार अपने सहपाठियों के साथ अच्छे-अच्छे सांस्कृतिक प्रोग्रामों मे भी भाग लिया और पुरस्कार जीते।

जब बड़ी बहन मैना ने गृहत्याग का बीड़ा उठाया था उस समय सुभाष की उम्र ४-५ वर्ष की थी। एक बार अपने बडे ाई कैलाशचंद के साथ सन् १९५५ में मैना जीजी के घर छोड़ने के बाद प्रथम दर्शन और मुलाकात करने सुभाषचंद गये हुए थे। ब्यावर में आ० वीरसागर महाराज के संघ में ज्ञानमती माताजी भी थीं । उस समय आपकी उम्र १३ वर्ष की थी।

ब्यावर पहुँचकर सेठ चम्पाला हीराला जी की नसिया मे जहाँ संघ ठहरा हुआ था आप लोग भी वही गये। सरस्वती भवन की छत पर ज्ञानमती माताजी राजवार्तिक ग्रन्थ का स्वाध्याय करा रही थी चार-पाँच माताजी और ब्रह्मचारी गण बैठे हुए थे।

ये लोग भी सबको नमोस्तु करके वही बैठ गये। ज्ञानमती माताजी ने इन्हें सिर उठाकर देखा भी नही, इससे दोनों भाइयों के दिल में अत्यधिक वेदना हुई। जिस जीजी ने उन्हे लाड़ प्यार से गोद में खिलाया और पुचकारा था वह आज वैराग्य के परदे मे उन्हे पहचान भी नही पा रही थीं। सुभाष और कैलाश दोनों अपने बढते हुए मोह वेग को रोक न पाये और बैठे-बैठे रोते रहे। कुछ देर बाद उनके मूक स्वर सिसकियों मे बदल गये। अब सभी साधु अचम्भे से इनकी ओर देख रहे थे। ज्ञानमती माताजी ने भी देखा लेकिन कुछ बोली नहीं। शास्त्र के बीच में ही पं० श्री पन्नालाल जो सोनी ने दोनों रोते हुए बालकों के आँसू पोंछकर धीरज बँधाते हुए परिचय पूछा—कैलाशचन्द ने सारा समाचार बताया। इनकी बात सुनकर पं० जो को बहुत दुःख और आश्चर्य भी हुआ कि ज्ञानमती जी इतनी निर्मोही और वैरागी प्रकृति की है कि अपने भाइयों को पहचान नहीं सकी। अचानक ही उनके मुँह से निकल पड़ा—"धन्य है ज्ञानमती जी का त्याग और वैराग्य।" पुनः सुभाष और कैलाश के ठहरने की उचित व्यवस्था की। दो-तीन दिन इसी प्रकार ये लोग ब्यावर में रहे। माताजी की व्यस्त चर्या, अध्ययनशीलता देख-देखकर दोनों भाई आश्चर्यान्वित हो रहे थे।

सन् १९६७ में बाराबंकी जिले के पास गनेशपुर ग्राम के विशिष्ट महानुभाव लाला कृष्णचन्द जी की बड़ी बेटी सुषमा के साथ सुभाष का परिणय संस्कार हो गया। सुभाष और सुषमा की जोड़ी तथा दोनों के सामंजस्य की चर्चायें परिवार मे होती रहती। बहू सुषमा तो साक्षात् लक्ष्मी ही घर में आ गई। कठपुतली की भाँति सारा दिन गृहकार्यों में व्यस्त रहती और सास-ससुर पति की सेवा को अपना परम कर्त्तव्य समझती। छोटी कन्या के समान यह घर की सबसे छोटी बहू भी सबकी अधिक लाडली रही। सुभाष और सुषमा दोनों ही माता-पिता की सेवा मे हार्दिक प्रेम

रखते। यही कारण था कि सन् १९७२ में माँ की दीक्षा के समय सुभाष की विक्षिप्त अवस्था देखकर सभी कांप उठे थे। उस समय का दृश्य ऐसा लगता था जैसे एक माँ अपने नादान बालक के जीवन के साथ खेल खेल रही है। सुभाष बार-बार यही कहते—माँ अभी मैंने और सुषमा ने आपकी सेवा ही क्या की है कुछ दिन तो हमे आप अवसर दें। किन्तु होनहार को कौन टाल सकता है, माँ की दीक्षा हो गई और सुभाष भी अन्य सभी भाई-बहनों की भाँति हार्दिक पीड़ा को लेकर घर चले गये। आज भी वे माँ को याद करके कई बार बड़े उदास और दुखी हो जाते हैं। इन्हें अपनी छोटी बहन ब्र० कु० मालती और माधुरी के प्रति बहुत ही स्नेह है। कई बार इनको साथ लेकर सम्मेद-शिखर आदि तीर्थयात्राओं को भी जाते रहते है यह इनकी अपनी विशेष रूप से स्वरुचि है।

सन् १९८० मे टिकैननगर में श्री प्रद्युम्नकुमार जी सर्राफ के अत्यधिक आग्रह से संघस्थ कु० माधुरी शास्त्री ने इन्द्रध्वज महामण्डल विधान करवाया उसमे भी सुभाषचन्द जी ने अधिक सक्रिय रूप से सहयोग दिया। आपकी मधुर स्वर लहरी जनता को भाव विभोर कर देती है। इसके अनन्तर वहाँ दो बार और इन्द्रध्वज विधान हुए उसमें भी सारी समाज ने आपके पूरे सहयोग की अपेक्षा की। आपके बिना सारे पुजारी सारे मंदिर को सूना सा समझने लगते हैं यह भी पूर्व पुण्य की ही देन है। भाई सुभाषचन्द जी संगीत धुन के जानकार कोई कवि नहीं ही हैं। मधुर स्वर, जोशीली आवाज से सारी जनता को मंत्रमुग्ध कर देते हैं। आपने अपनी रुचि के अनुसार अपनी आवाज में कई भजनों के टेप और सती चन्दनबाला की जीवनी, सती अंजना की जीवनी और पू० ज्ञानमती माताजी की संक्षिप्त जीवनी के टेप तैयार किये जो आज ज्ञानज्योति में बड़े प्रचलित हो रहे है। जगह-जगह से इन टेपों को मँगवाने के आर्डर आते हैं, सैकड़ों की संख्या में ये टेप त्रि० शो० संस्थान के माध्यम से भेजे भी जाते है।

अपने बड़े भाई प्रकाशचन्द जी के द्वारा संस्थापित 'रत्नमती बाल विद्या मन्दिर' की प्रगति में आप भी निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं तथा नन्हें शिशुओं के गौरवपूर्ण भविष्य निर्माण हेतु हमेशा आप अपनी अच्छी सलाहें और सहयोग प्रदान करते रहते हैं। यह आप की लगन और निष्ठा का ही प्रतीक है।

श्री सुभाषचन्द भी अपने हरे-भरे परिवार का नेतृत्व कर रहे हैं। आप ४ पुत्रियों तथा २ पुत्रों के जनक है।

आप भी अब अपने विगत संस्कारों को विस्मृत कर भविष्य में भी अपने परिवार को धार्मिकता से ओतप्रोत करते हुए निरन्तर उन्नति पथ पर बढ़ते चलें यही मंगल कामना व आकांक्षा है।



श्रीमती कुमुदिनी देवी





श्रीमती कुमुदिनी देवी माता मोहिनी की आठवीं कन्यारत्न हैं।

सन् १९४८ में मोहिनी ने दो पुत्रों के बाद एक कन्या को जन्म दिया। रूप तथा गुणों के अनुसार बड़ी बहन मैना ने उसका कुमुदिनी यह नाम रखा। प्रारम्भ से ही इस कन्या को भी अपनी जीजी मैना की गोद में खेलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अतः सुसंस्कारों की घूँटी मिलनी भी आवश्यक थी।

कुमुदिनी सोलह वर्ष पूर्ण करने ही वाली थीं कि बड़ी बहन मैना जो अब ज्ञानमती माताजी बन गई थी अपने आर्यिका संघ सहित सम्मेदशिखर यात्रा को विहार करती हुई सन् १९६२ में टिकैतनगर पधारी। आपने भी उनके प्रवचन सुने, उनके संघ की चर्या आदि देखी। उनके टिकैतनगर से विहार करते समय संघ में जाने का बहुत अधिक प्रयास भी किया किन्तु पिताजी तथा परिवार वालो के विरोध ने आगे बढ़ने का साहस नही प्रदान किया। तब आपने दूध का त्याग कर दिया। काफी दिनों तक यह त्याग चलता रहा।

लम्बे अरसे तक आपको कोई साधु संघ के दर्शनों का सौभाग्य नही प्राप्त हुआ। सन् १९६४ मे अनादि परम्परानुसार आपको भी प्रणय बन्धन में बाँध दिया गया। कानपुर निवासी सेठ रिखबचंद तथा श्रीमती रेखा जैन के सुपुत्र श्री प्रकाशचंद जी के साथ आपका विवाह सम्बन्ध हो गया। अब आपका नया जीवन प्रारम्भ हुआ। आपका सौभाग्य रहा कि धार्मिक घराने की लड़की होने के नाते बहू बनने पर कभी किसी ने मिथ्यात्वादि क्रियायें करने को बाध्य नही किया। जब कि इस घर मे वैष्णव परम्परा की कई परम्परायें होती थी। धीरे-धीरे घर में धार्मिक वातारण पनपने लगा। बिना कहे ही पति, सास, देवर सभी मन्दिर जाने लगे। बहू को रात्रि मे भोजन न करते देखकर सास ने भी रात्रि भोजन छोड़ दिया।

प्रारम्भ मे कुमुदिनी के माता पिता ने अपने साथ बेटी और दामाद को यात्रा करवाने की इच्छा प्रगट की और उन्हे ज्ञानमती माताजी के दर्शन करवाने ले गये। प्रकाशचंद जी साधुओं से डरते कि कही कुछ त्याग करने के लिए ये मुझे मजबूर न कर दें किन्तु निकट भव्य को शायद अनिच्छा पूर्वक भी धर्म कुछ प्रिय लगता है। धीरे-धीरे प्रेरणा से आप स्वयं कुमुदिनी को साथ लेकर माताजी के दर्शन करने आने लगे। और साधुसंगति का प्रभाव पड़ा, रात्रि भोजन त्याग कर दिया और सात्त्विकता पूर्ण जीवन बना लिया।

पूर्वोपार्जित कर्म हर जीव को किसी न किसी रूप मे फल अवश्य देते हैं। वैसे भी संसार में पूर्ण सुखी होना तो किसी के लिए भी कठिन है। प्रकाशचंद जी भी दमा के मरीज है। कभी-कभी काफी सीरियस कन्डीशन भी होती है किन्तु आपकी इच्छा हमेशा ज्ञानमती माताजी व रत्नमती माताजी के दर्शनो की रहती है तथा इनके दर्शनों से वे अपने को स्वस्थ महसूस करने लगते है। वर्ष में प्रायः एक बार तो आप सपरिवार दर्शनार्थ अवश्य आते हैं। कुमुदिनी पति की अस्वस्थता से कुछ दुःखी तो रहती है किन्तु पति की सेवा को अपने जीवन का मूल अंग मानकर कभी उनके प्रति अरुचि न रखकर प्रसन्नता की झलक ही प्रस्तुत करती रहती हैं।

आपके दो पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ हैं। आपका भरा पूरा परिवार पति तथा बच्चे निरन्तर धार्मिक क्षेत्र में उन्नति करते हुए स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करें। 

श्रीमती कामिनी देवी



कन्या कामिनी को भी इस धार्मिक परिवार में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप माँ मोहिनी की ११वीं सन्तान हैं। मालती के बाद आपका जन्म सन् १९५६ मे हुआ। ज्ञानमती माता जी के बताये अनुसार आपका कामिनी यह नाम रखा गया।

प्रारम्भ से ही चंचल प्रकृति की स्वस्थ और सुन्दर कन्या से सारा गली मोहल्ला परिचित था। स्वस्थता के कारण प्रायः सभी इन्हें मोटी-मोटी कहकर चिढ़ाते रहते थे।

कामिनी ने जब से होश सँभाला तो हर कन्या की भाँति इन्हें गृहस्थी का भार नहीं सँभालना पड़ा। क्योंकि घर में बहुओं के आ जाने से बेटियों का दायित्व सुचारु रूप मे पालन हो रहा था। कामिनी मौज मस्ती से पढ़ाई करती और तरह-तरह की क्रीडाओं मे सहेलियों के साथ आनन्द लेतीं यही इनकी बचपन की दैनिक क्रिया थी। बड़ी बहन मालती के ब्रह्मचर्य व्रत लेने से पूर्व सन् १९६८ में कामिनी माता पिता के साथ एक बार ज्ञानमती माताजी के पास गईं। उस समय प्रतापगढ़ (राज०) में आ० शिवसागर महाराज के संघ का चातुर्मास था। प्रतिवर्ष की भाँति लगभग एक महीने तक सबने चौका लगाकर आहारदान का लाभ उठाया। इस मध्य ज्ञानमती माताजी ने कामिनी की विद्याबुद्धि अच्छी देखकर कुछ अध्ययन भी करवाया। कामिनी उस समय लगभग १४ वर्ष की थी। माताजी ने कुछ घूटी उसे भी पिलाई जिसके फलस्वरूप वह वहीं रहने के लिए जिद करने लगी। मां ने काफी समझाया बुझाया भी किन्तु वह न मानी। यद्यपि माँ तो कामिनी को माताजी के पास छोड़ने को तैयार हो गई थी लेकिन पिताजी नहीं माने और जबरदस्ती कामिनी को भी माता पिता के साथ घर जाना पड़ा। कुछ दिनों बाद मालती के आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करने के समय भी आपका हृदय भी वैराग्य की ओर झुक गया किन्तु सफलता न मिल सकी।

सन् १९७१ मगशिर का महीना कामिनी का शुभ विवाह टिकैतनगर से ६ किमी० दूर दरियाबाद नाम के ग्राम मे लाला सुखानन्द जी तथा श्रीमती गुलकन्दा देवी के सुपुत्र श्री जयप्रकाश जी के साथ हो गया। सुन्दर सुशील बहू को पाकर ससुराल वाले बहुत प्रसन्न थे। मन्दिर के अत्यन्त निकट कोठी होने के बावजूद भी घर में धार्मिकता की बहुत कमी थी। केवल मन्दिर जाकर भगवान् के सम्मुख चावल चढ़ाकर दर्शन करने की तो पौराणिक परम्परा थी ही इसके अलावा स्वाध्याय करना, तीर्थयात्रा करना आदि कार्यों में किसी की रुचि नहीं थी। प्रारम्भ मे ४-६ माह तक कामिनी ने मौन पूर्वक यहाँ की सारी परम्पराओं की ओर ध्यान दिया। सास, ससुर, ननद सभी इनके मधुर व्यवहार से बड़े प्रसन्न रहते और सभी के समक्ष अपनी बहू की प्रशंसा किया करते।

शादी के बाद जब प्रथम बार साधुदर्शन के निमित्त जयप्रकाश जी बाहर निकले तो माँ की असामयिक दीक्षा ने उनके हृदय पर गहरी छाप छोड़ी।

माँ के निमित्त से वर्ष मे एक बार कामिनी को भी साथ लेकर वे आने लगे। धीरे-धीरे संस्कार ऐसे पड़ते चले गये कि जीवन ही परिवर्तित हो गया। भगवान् के पूजन अभिषेक में भी रुचि हो गई, बाजार की अशुद्ध वस्तुयें खाने का त्याग कर दिया और आहार देने लगे।

कामिनी देवी सदा सौभाग्य को प्राप्त करें तथा धर्म की अमिट छाप अपने बच्चों के जीवन में भी डालती रहें यही शुभ भावना है।



श्रीमती त्रिशला जैन



कहते हैं सर्वप्रथम जन्म लेने वाली सन्तान तथा आखिरी सन्तान अपने माता पिता और परिवार वालों के लिए अधिक लाडली होती है ।

त्रिशला रानी जो माँ मोहिनी की अन्तिम सबसे छोटी तेरहवी कन्यारत्न है। इन्होंने भी अपने २२ वर्ष के छोटे से जीवन में कई विशेषता पूर्ण कार्य किये। १६ अप्रैल सन् १९६० वैशाख के महीने मे इस कन्या ने जन्म लिया। पू० ज्ञानमती माताजी द्वारा प्रस्तावित त्रिशला इस शुभ संज्ञा से सम्बोधित किया गया। पिताजी प्यार से इसे मितला बिटिया कहकर पुकारा करते थे।

सन् १९७२ मे माँ की दीक्षा के अनन्तर कुछ दिनों तक त्रिशला भी माँ की छत्रछाया में रही। १०-११ वर्ष की छोटी सी उम्र हँसती खेलती बालिका विशाल संघ के लिए एक कौतुक का विषय बनी हुई थी। पू० ज्ञानमती माताजी जैसा कि अपने समस्त शिष्यों को धार्मिक शिक्षण दिया करती थी, एक दिन त्रिशला को द्रव्यसंग्रह के दो श्लोक पढ़ाये। उसने १० मिनट बाद ही पुनः श्लोकों को कंठस्थ करके सुना दिया। इतनी तीक्ष्ण बुद्धि देखकर माताजी को बहुत खुशी हुई और उसके प्रति विशेष स्नेह भी उमड़ा।

धीरे-धीरे कुछ ही दिनों मे सभी विद्यार्थियों के साथ त्रिशला का भी शास्त्री परीक्षा का फार्म भरवा दिया गया। अब वह गोम्मटसार कर्मकाण्ड, राजवार्तिक और अष्टसहस्री की विद्यार्थी थी। भले ही उस समय वह न्याय का दुरूह विषय उसकी समझ मे अच्छी तरह से नहीं आता था किन्तु माताजी द्वारा लिखित कुछ साराश लेखो को रट लिया। कर्मकाण्ड की कर्मप्रकृतियों की गाथायें अच्छी तरह से कंठस्थ होने के कारण समस्त साधुवर्ग और आ० धर्मसागर महाराज भी छोटी सी बालिका के साथ प्रश्नोत्तर एवं चर्चा करने में बहुत रुचि लेते और खुश होकर उसका उत्साह बढ़ाते। इस प्रकार संघ परम्परा मे यह पहला रेकार्ड कायम हुआ कि १२ वर्ष की लड़की ने प्रथम श्रेणी मे शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। यह सब ज्ञानमती माताजी की ही देन थी।

त्रिशला इसी प्रकार कभी-कभी माँ के निमित्त से संघ मे आकर धार्मिक पढ़ाई किया करती थी। विरासत मे प्राप्त हुई विद्याबुद्धि ने छोटी-सी उम्र मे ही त्रिशला की प्रतिभा शक्ति को जागृत किया। गत सन् १९७९ में जब हस्तिनापुर में सुदर्शन मेरु का पंचकल्याणक महोत्सव था उस समय त्रिशला के द्वारा रचित नई धुनों के भजनों की जोर-शोर से गूँज थी। बच्चे-बच्चे के मुह से अनायास भजन की धुन सुनाई देती थी, "ज्ञानमती माताजी से पूछे जग सारा, जम्बूद्वीप नाम का ये कौन द्वीप प्यारा।"

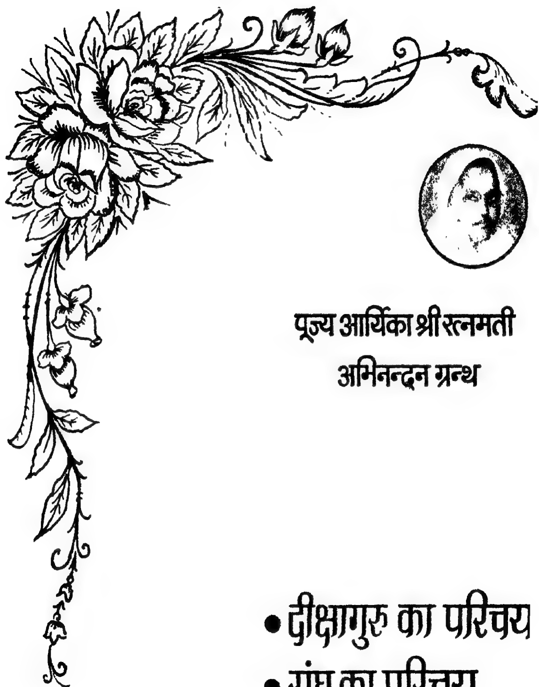
इसी प्रकार से कई सुन्दर भजन, कवितायें आदि भी बनाईं जो कई जगह प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अलावा इनके जीवन का एक महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ जो कि नारी जाति के लिए भी अनुकरणीय है। लगभग २० वर्ष की उम्र में आ०श्री समन्तभद्र द्वारा रचित रत्नकरण्ड-श्रावकाचार के समस्त संस्कृत श्लोको का हिन्दी पद्यानुवाद किया। सुन्दर सरल भाषा मे यह प्रथम आपका प्रयास अत्यन्त सराहनीय है।

सन् १९८०, १९ नवम्बर मगशिर सुदी ११ को त्रिशला पराई हो गई। लखनऊ चौक के विशिष्ट आढ़त के व्यापारी लाला श्री अनन्तप्रकाश जी और माता श्रीमती शैल कुमारी के द्वितीय

सुपुत्र श्री चन्द्रप्रकाशजी के साथ परिणयन संस्कार हुआ। माता-पिता के अभाव में भाइयों ने यह पहली शादी की जिससे वे आनन्दित भी थे किन्तु दिल से अत्यन्त दुखी भी। सबके दिल टूट रहे थे कि इतनी बहनों के होते हुए भी आज हमारा घर बहनों से सूना हो गया। त्रिशला जिस घर की बहू बन कर आई वह एक विशिष्ट धार्मिक परिवार से सम्बद्ध है। लाला सीमंधर दासजी जो आ०श्री देशभूषण महाराज के अनन्य भक्तों में से हैं तथा ज्ञानमती माताजी की क्षु० दीक्षा मे उनके सहयोगी रहे है। उनकी बेटी और जमाई त्रिशला के सास ससुर है। लखनऊ की जैनधर्म प्रवर्द्धनी सभा तथा अन्य कई सभाओं के पदाधिकारी श्री अनन्तप्रकाशजी अब दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान के कार्यकलापों मे भी काफी रुचि रखते हैं।

लाला अनन्तप्रकाशजी की सन्तानों पर भी शहरी वातावरण का प्रभाव पड़ा। उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ तो वैसे भी विदेशी संस्कृति का प्रभाव क्षेत्र माना जाता है। माँ की सरलता और पिताजी की औद्योगिक व्यस्तता जिससे बच्चों में धार्मिक संस्कार नहीं पड़ पाये। आधुनिकता की चकाचौंध उन्हें प्रभावित करने लगी। अपने घर से धार्मिक संस्कृति को लुप्तप्राय: देखकर अनन्तप्रकाशजी ने धार्मिक घराने की लड़कियों को बहू बनाने का विचार किया। तदनुसार प्रथम बड़े पुत्र रविप्रकाश की शादी सीतापुर निवासी सेठ श्री निर्मलकुमारजी रईस की सुपुत्री इन्दादेवी के साथ हुई। त्रिशला जो इस घर की दूसरी बहू बनकर आई, घर में व्याप्त कई प्रकार के कुसंस्कारों को धीरे-धीरे दूर करने का प्रयास किया। त्रिशला को पूर्व मे ही बता दिया था कि उसके पति वर्ष में केवल एक दिन मंदिर जाते हैं धर्म कर्म कुछ नही करना पसन्द करते है अत: उसने प्रारम्भ में ही अपने नियमों के निर्बाध पालन का सबसे वचन ले लिया। शादी के अनन्तर कुछ दिनों तक अपने माता पिता के कहे अनुसार चन्द्रप्रकाशजी त्रिशला को अपने साथ मंदिर लेकर जाने लगे। धीरे-धीरे उनकी स्वयं मंदिर जाने की आदत बन गई। अब वह लगभग तीन वर्षों से प्राय: प्रतिदिन मंदिर जाते है। त्रिशला जिस प्रकार पहले माँ और बहनों की ममता तथा गुरु स्नेह के कारण ज्ञानमती माताजी के पास भाइयों के साथ जाया करती थी उसी प्रकार उसने ससुराल मे भी संघदर्शन का प्रस्ताव रखा। ससुर की आज्ञा मिली। अपने पति के साथ वह मां और गुरु के दर्शन करने गई। नवदम्पति को शुभाशीर्वाद प्राप्त हुए तथा प्रथम आगमन मे ही माताजी ने चन्द्रप्रकाशजी को एक छोटा सा मंत्र बताया और प्रतिदिन उसकी एक माला फेरने को कहा। आज लखनऊ में यह आमतौर पर चर्चा है कि अनन्तप्रकाशजी की दूसरी बहू ने घर का तथा उनके बेटे का जीवन ही बदल दिया। एक बार त्रिशला के सबसे बड़े भाई कैलाशचंदजी एक दुकान से कुछ सीलिंग फेन खरीदने गये। बात-बात मे उसने कहा कि लाला जी इन दिनों टिकैतनगर की कई लड़कियाँ लखनऊ में बहू बनकर आईं और सबने शहरी वातावरण से प्रभावित होकर मंदिर जाना भी छोड़ दिया लेकिन सुना है अनन्तप्रकाशजी के घर मे एक बहू टिकैतनगर की आई उसने सबको धार्मिक बना दिया।

त्रिशला को सन् १९८१, २९ सितम्बर को एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। त्रिशला का वह नन्दन त्रिशलानन्दन के नाम से ही पुकारा जाता है। घर में सभी सदस्य त्रिशला के मधुर व्यवहार से प्रसन्न हैं। आपके सास ससुर भी पू० माताजी के दर्शनार्थ आते रहते हैं।



पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती
अभिनन्दन ग्रन्थ

- दीक्षागुरु का परिचय
- संघ का परिचय
- चित्रावली

तृतीय खण्ड



आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज

विद्यावाचस्पति कु० माधुरी शास्त्री

•

भारत की इस वसुन्धरा पर प्राचीनकाल से ही ऋषियों, मुनियो ने जन्म लिया है जिनकी त्याग तपस्या के बल पर आज भी देश का मस्तक गौरव से ऊँचा उठा हुआ है।

इस युग की तीर्थंकर परम्परा मे सर्वप्रथम भगवान् आदिनाथ ने जन्म लेकर कर्मभूमि का शुभारम्भ किया और आत्मसाधना रूप दैगम्बरी दीक्षा लेकर अनादि-कालीन मोक्ष परम्परा का दिग्दर्शन कराया। उनके पश्चात् भगवान् महावीर तक २४ तीर्थंकर हुए तथा अन्तिम केवली जम्बूस्वामी ने भी इसी पंचम काल के आरम्भ मे मोक्ष प्राप्त किया। इसके बाद किसी ने मोक्ष प्राप्त नही किया। क्योंकि पंचम काल मे जन्म लेने वाले मनुष्यों के लिए साक्षात् मोक्ष का द्वार नहीं खुला है लेकिन क्रम परम्परा से प्राप्त कराने वाला मोक्ष का मार्ग आज भी सुलभ है वह है रत्नत्रय की प्राप्ति।

कलिकाल मे महान् ज्ञान के धारी, भगवान् सीमंधर स्वामी की वाणी को साक्षात् हृदयंगम करने वाले आचार्य कुन्दकुन्द हुए जिनकी शिष्य परम्परा में आचार्य उमास्वामी आदि बहुत से परम्परागत आचार्य हुए है। उसी परम्परा में १९ वी शताब्दी की महान् विभूति चारित्रचक्रवर्ती आचार्य सम्राट् शांतिसागर महाराज ने दक्षिण प्रान्त मे जन्म लिया जिनके निमित्त से सम्पूर्ण भारतवर्ष मे जैन साधुओ का निर्बाध रूप से विहार हो रहा है और आज सैकड़ों की सख्या मे दिगम्बर जैन साधु दृष्टिगत हो रहे है। वर्तमान में उस साधु परम्परा के गणनायक आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज का नाम उच्च कोटि में लिया जाता है।



जन्म और शैशव

विक्रम सं० १९७० पौष शुक्ला पूर्णिमा भगवान् धर्मनाथ का केवलज्ञान कल्याणक का पवित्र दिवस राजस्थान प्रान्त के बून्दी जिलान्तर्गत गम्भीरा ग्राम में श्रेष्ठी श्री बख्तावरमलजी की धर्मपत्नी श्रीमती उमरावबाई की कूख से एक पुत्ररत्न ने जन्म लिया जिसका नाम रखा गया चिरञ्जीलाल। इनकी जाति खण्डेलवाल और गोत्र छाबड़ था। चिरञ्जीलाल अपने माता-पिता के इकलौते बेटे थे। बचपन में ही आपके माता-पिता का असामयिक निधन हो गया अतः आपका जीवन अल्प-समय में ही माँ-पिता के लाड़-प्यार भरे संरक्षण से वंचित रह गया था। किन्तु आपके ताऊ श्री कँवरीलालजी की पुत्री दाखाबाई जो आपकी बड़ी बहन थी उनका प्यार व संरक्षण मिला। दाखाबाई बामणवास मे रहती थी आप भी वही जाकर उनके पास रहने लगे। बहिन भी पति वियोग से दुखी थी अतः आपका सान्निध्य उनके भी दु:ख का पूरक बना और भाई-बहन का निर्मल स्नेह बहिन के जीवन पर्यंत बना रहा।

लौकिक एवं धार्मिक शिक्षण

पुरातन परम्परा में लौकिक शिक्षण को अधिक महत्त्व नही दिया जाता था। इष्टवियोगज दुःखों के निमित्त से भी चिरञ्जीलाल का प्रारम्भिक अध्ययन अति अल्प ही रहा। बचपन मे धार्मिक अनभिज्ञतावश आप मिथ्यादृष्टि देवी-देवताओं के मंदिर जाते रहे और उनकी भक्ति करते रहे। एक दिन आप जैन मंदिर में गए वहाँ पर एक पंडितजी शास्त्र प्रवचन मे मिथ्यात्व और सम्यक्त्व का प्रतिपादन कर रहे थे। वह बात आपके मस्तिष्क मे बैठ गई और मिथ्यात्व का त्याग कर दिया। बहिन दाखाबाई अच्छी धर्मपरायण महिला थीं, उनके सम्पर्क एवं अनुशासन में रहकर चिरञ्जीलाल जिनेन्द्र भगवान् के कट्टर भक्त बन गए और प्रतिदिन मंदिर जाने लगे। सत्य है कि आत्महित की ओर प्रेरित करने वाले बन्धु सच्चे बन्धु होते हैं।

व्यापार

जीवन निर्वाह और शरीर का पोषण करने के लिए व्यापार भी करना पड़ता है इसी उद्देश्य से आपने १४-१५ वर्ष की अवस्था में छोटी-सी दूकान खोली। संतोषवृत्ति तो थी ही अतः जब दूकान पर आजीविका योग्य लाभ हो जाता उसी समय दूकान बन्द कर देते तथा अपना शेष समय शास्त्र स्वाध्याय में लगाते।

रत्नत्रय मार्ग की ओर बढ़ते कदम

धार्मिक वृत्ति होते हुए भी जैन साधुओं का कभी निकटतम सान्निध्य प्राप्त नही होने से धर्मकार्यों की ओर विशेष झुकाव नही हो पाया था। इसी मध्य नैनवाँ नगर मे प० पू० आचार्यकल्प १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज का चातुर्मास हो गया। उन सिंहवृत्ति के धारक, आगम पोषक गुरु का समागम प्राप्त कर आपके जीवन में नया मोड़ आया और शुद्ध भोजन का नियम लेकर आहार देने लगे साथ-साथ पूजनादि षट् क्रियाओं को भी दृढ़तापूर्वक पालन करने लगे। तथा आजीवन ब्रह्मचारी रहने का संकल्प मन मे कर लिया।

कुछ ही दिनों बाद इन्दौर नगर मे पू० आचार्य कल्प श्री वीरसागर महाराज का सत्समागम भी आपको प्राप्त हुआ। वहाँ पर पू० श्री की प्रेरणा से दो प्रतिमा के व्रतों को धारण कर लिया।

जब आ० कल्प चन्द्रसागर महाराज का चातुर्मास बड़नगर मे था उस मध्य आप बहन दाखाबाई के साथ गुरु के दर्शन के लिए गये और वहीं पर आपने सप्तम प्रतिमा रूप ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया। अब आपके हृदय मे दीक्षा की प्रबल भावना जाग्रत होने लगी। गुरु के सान्निध्य में एकदेश संयम का पालन तो हो ही रहा अवसर पाकर इन्होंने गुरुदेव के समक्ष दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की और वि० सं० २००१ चैत्र शुक्ला सप्तमी की मंगल वेला में बालूज नगर के जन-समूह के मध्य क्षुल्लक दीक्षा प्राप्त की। दीक्षित नाम क्षु० भद्रसागरजी रखा गया। गुरु वियोग का दुःख भी आपको अल्प समय में ही प्राप्त हो गया। वि० सं० २००१ फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा के दिन आ० कल्प चन्द्रसागर महाराज का सल्लेखना पूर्वक स्वर्गवास हो गया। इसके अनंतर क्षु० भद्रसागरजी आ० क० श्री वीरसागरजी के सान्निध्य मे आ गये और क्षुल्लक अवस्था में ६ चातुर्मास गुरु के समीप ही किये। इसके बाद वि० स० २००७ में फुलेरा नगर मे पंचकल्याणक के अवसर पर तपकल्याणक के दिन ऐलक दीक्षा ग्रहण की। किन्तु अब १ लँगोटी भी आपको भार प्रतीत होती थी अतः ६ माह पश्चात् फुलेरा मे ही कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी सं० २००८ के दिन आपको पूर्ण महाव्रत रूप दैगंबरी दीक्षा प्राप्त हो गई।

अब आप मुनि धर्मसागरजी के नाम से प्रसिद्ध हो गये। आपने गुरु के सान्निध्य मे रहकर सम्मेदशिखर आदि कई तीर्थ क्षेत्रों की वंदनाएँ की। वि० सं० २०१२ मे आचार्य श्री शांतिसागर महाराज ने अपनी सल्लेखना के समय कुथलगिरि से अपना आचार्यपट्ट वीरसागर मुनिराज को प्रदान किया था तदनुसार जयपुर खानियां मे वर्षायोग के समय विशेष समारोह पूर्वक चतुर्विध संघ ने सं० २०१२ मे ही आ० क० वीरसागर महाराज को अपना आचार्य स्वीकार किया। आ० श्री वीरसागर महाराज ने कुशलता पूर्वक आचार्यपट्ट को निभाया और वि० सं० २०१४ मे जयपुर चातुर्मास मे अश्विन कृ० अमावस्या को आ० श्री की सल्लेखना पूर्वक समाधि हो गई। वीरसागर महाराज की समाधि के अनंतर समस्त संघ ने उनके प्रधान शिष्य मुनि श्री शिवसागरजी को आचार्यपट्ट प्रदान किया।

संघ से पृथक् विहार

अब आचार्य शिवसागर महाराज के संघ का विहार गिरनार की तरफ हुआ। गिरनारजी की वंदना करके वापस लौटते समय ब्यावर (राज०) मे संघ का चातुर्मास हुआ। मुनि धर्मसागरजी ने एक और मुनिराज पद्मसागर को साथ लेकर संघ से पृथक् विहार करके आनंदपुर कालू मे वर्षायोग स्थापित किया। इसके अनंतर अजमेर और बूँदी मे चातुर्मास के पश्चात् बुन्देलखण्ड की यात्रा का विचार बनाया। अब आपके साथ दो मुनिराज थे। बुन्देलखण्ड मे इस संघ के विहार से अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई। ३ वर्षों की इस यात्रा के पश्चात् आपने मालवा प्रान्तीय तीर्थक्षेत्रों की वंदना की तथा राजस्थान के विभिन्न प्रान्तों मे भ्रमण करके धर्म प्रभावना के साथ शिष्य परम्परा मे भी वृद्धि की। अब आपके साथ ४ मुनिराज एवं १ ऐलकजी थे।

गुरु का संयोग-वियोग और आचार्यपट्ट

वि० सं० २०२४ तक आपने अपने लघु संघ सहित विभिन्न प्रान्तों में भ्रमण किया। अनन्तर २०२५ में बिजौलिया नगर में चातुर्मास सम्पन्न करके आपने श्री महावीरजी शान्तिवीर नगर में

होने वाले पंचकल्याणक महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए विहार कर दिया। यहाँ पर आ० शिवसागर महाराज का संघ भी विराजमान था। कहते हैं उस समय उभय संघ सम्मिलन का दृश्य अभूतपूर्व था। १० वर्षों से बिछुड़े हुए गुरु भाइयों का यह द्वितीय मिलन था। आ० शिवसागर महाराज को अचानक ज्वर चढ़ जाने से फाल्गुन कृष्ण अमावस को आकस्मिक उनका स्वर्गवास हो गया। समस्त संघ मे शोकाकुल सा वातावरण हो गया।

चूंकि पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भी सम्पन्न होनी थी और ११ व्यक्तियों की दीक्षाओं का निर्णय भी पूर्व से ही था अतः आठ दिनों तक समस्त संघ के ऊहापोह के अनन्तर अष्टमी को मुनि धर्मसागरजी को आचार्यपट्ट प्रदान किया गया। उसी दिन आपके करकमलों से ६ मुनि, २ आर्यिका, २ क्षुल्लक और १ ऐलक ऐसी ११ दीक्षाएँ हुईं। ये वे ही दीक्षार्थी थे जिन्होंने आ० शिवसागरजी के समक्ष दीक्षा की प्रार्थना की थी। तब से लेकर आज तक आप अपने विशाल संघ का संचालन करते हुए पूरे भारतवर्ष मे जैनधर्म की ध्वजा फहरा रहे हैं। समय-समय पर आपके करकमलों से बहुत सी दीक्षाएँ भी सम्पन्न हुई हैं। पू० ज्ञानमती माताजी कई बार प्रवचन मे कहा करतो हैं कि आचार्य धर्मसागर महाराज के करकमलों से जिस बहुमात्रा में दीक्षाएँ सम्पन्न हुई है उतनी अन्य पिछले किसी आचार्य के आचार्यत्व में नहीं हुई। बीसवीं सदी का यह प्रथम रेकार्ड है।

२५०० वें निर्वाण महोत्सव पर प्रभावना

ईसवी सन् १९७४ जब तीर्थंकर भ० महावीर का २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राजधानी दिल्ली में मनाने की योजना चल रही थी, उस समय आचार्य धर्मसागर महाराज का संघ अलवर (राज०) मे था। पू० आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी दिल्ली मे अपने संघ सहित थीं। आचार्यरत्न श्री देशभूषण महाराज एवं उपाध्याय मुनि विद्यानंदजी महाराज भी देहली में विराजमान थे। पू० माताजी के हृदय मे यह प्रबल इच्छा थी कि ऐसे समय आ० धर्मसागरजी का संघ दिल्ली अवश्य आना चाहिए। माताजी ने समाज के गणमान्य व्यक्तियों के समक्ष विचार रखे किन्तु सबने इस विशाल संघ को और उस परम्परा की क्रियात्मक शुद्धि के पालन हेतु अपनी असमर्थता व्यक्त की। किन्तु माताजी कहां मानने वाली थी उन्होंने डॉ० लालबहादुर शास्त्री, लाला श्यामलालजी ठेकेदार, डॉ० कैलाशचंद, कम्मोजी, पन्नालालजी तेजप्रेस, आदि कई लोगों को आदेश देकर आचार्य संघ के पास निवेदन करने को भेजा। दिल्ली गाँधीनगर की जैन समाज ने भी माताजी के आदेशानुसार पूर्ण सहयोग प्रदान कर आचार्यश्री के पास जाकर श्रीफल चढ़ाकर देहली पदार्पण के लिए आग्रह किया।

सब के अथक प्रयासों से आचार्य संघ का दिल्ली लाल मंदिर मे चातुर्मास स्थापन हुआ और निर्वाण महोत्सव की प्रत्येक गतिविधि मे आपका अन्तिम निर्णय लिया जाता था। दिगम्बर सम्प्रदाय के परम्परागत पट्टाचार्य होने से आपका विशेष अतिथि के रूप में राष्ट्रीय समिति में भी नाम रखा गया था। आपने यहाँ पर भी निर्भयता पूर्वक अपनी परम्परा का पालन किया। दिल्ली में आपके ससंघ मंगल विहार से काफी धर्म प्रभावना हुई। ८ दीक्षाएँ भी दरियागंज के विशाल प्रांगण में सम्पन्न हुईं। सन् १९७४ मे ही पू० आर्यिका ज्ञानमती माताजी द्वारा अनूदित अष्टसहस्री ग्रन्थराज त्रि० शो० सं० ने प्रकाशित कराया जो कि वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प था।

वह विशाल जनसमूह के मध्य महापौर द्वारा विमोचन होकर पू० माताजी द्वारा दोनों गुरुओं (आचार्य धर्मसागर, आचार्य देशभूषण) के करकमलों में समर्पित किया गया था। तथा सम्यग्ज्ञान हिन्दी मासिक का विमोचन भी आपके करकमलों से सम्पन्न हुआ था। जिसमें आपका पूर्ण शुभाशीर्वाद माताजी को व संस्था को प्राप्त हुआ था।

दिल्ली महानगर में विविध कार्यक्रमों को सम्पन्न करके आपने गाजियाबाद, बड़ौत, मेरठ, सरधना, सहारनपुर आदि उत्तर प्रदेश के नगरों में भ्रमण किया और हस्तिनापुर की पवित्र भूमि पर आपका ससंघ मंगल पदार्पण हुआ। भगवान् शांति, कुंथु, अरह के चार-चार कल्याणक, महाभारत का युद्ध, सात सौ मुनियों पर उपसर्ग, दानतीर्थ का प्रवर्तक होने से इस तीर्थ को ऐतिहासिकता भी प्राप्त है। यहाँ पू० आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान मे जम्बूद्वीप रचना के निर्माण हेतु भूमि का क्रय किया और सर्वप्रथम वहाँ पर १००८ भगवान् महावीर स्वामी की सवा नौ फुट ऊँची प्रतिमा को विराजमान करने हेतु एक छोटे से कमरे का निर्माण कराया गया। उसी समय प्राचीन तीर्थक्षेत्र पर नवनिर्मित बाहुबली मंदिर और जलमंदिर की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का मुहूर्त निकला। पू० माताजी के निर्देशानुसार तीर्थक्षेत्र कमेटी के महामंत्री बाबू सुकुमारचन्दजी ने सोलापुर निवासी पं० वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री को आमंत्रित किया। प्रतिष्ठा मुहूर्त के अनुसार समस्त विधि विधान सम्पन्न हुए। पू० आचार्यश्री ससंघ व मुनि विद्यानंदजी वहीं पर विराजमान थे। जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान् महावीर की प्रतिमा जब खड़ी की गई उस समय आ०श्री ने अपने हाथो उसके नीचे अचल यंत्र स्थापित किया। और तीना जगह की प्रतिमाओं पर आपने ही अपने करकमलो से सूरिमंत्र प्रदान किए। उसी का आज परिणाम है कि भगवान् महावीर की प्रतिमा का अतिशय चमत्कार हुआ कि संस्था दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि कर रही है।

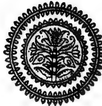
पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सानंद सम्पन्न होने के पश्चात् संघस्थ वयोवृद्ध मुनि श्री वृषभसागरजी महाराज की सल्लेखना के निमित्त से संघ यहाँ ३-४ महीने ठहरा और शास्त्रोक्त विधि के अनुसार उनकी महामंत्र स्मरण पूर्वक हस्तिनापुर मे समाधि हुई। उस समय हस्तिनापुर का दृश्य चतुर्थकाल का सा आनंद प्रदान कर रहा था। मुझे भी समस्त साधुओं के असीम वात्सल्य और आहारदान का सौभाग्य प्राप्त हुआ। १०-१२ साधुओं का भी एक साथ मेरे चौके मे पड़गाहन हुआ जो मेरे जीवन के लिए चिरस्मरणीय रहेगा।

त्रिलोक शोध संस्थान को आशीर्वाद

आचार्यश्री जब अपने संघ सहित हस्तिनापुर से विहार करने लगे उस समय ज्ञानमती माताजी ने उनके समक्ष यहाँ रहने के बारे में ऊहापोह किया। तब आचार्यश्री ने बड़े प्रसन्नतापूर्ण आशीर्वादात्मक शब्दों मे माताजी को समझाया कि—"आपको जम्बूद्वीप रचना पूर्ण होने तक यहीं रहना चाहिए। साधु को तीर्थक्षेत्र पर अधिक दिनों तक रहने मे कोई बाधा नहीं है।" आपके आशीर्वाद का ही फल है कि पू० माताजी की मंगल प्रेरणा व निर्देशन मे त्रि० शो० सं० चहुँमुखी प्रगति कर रहा है। भले ही आचार्यश्री हस्तिनापुर से सुदूर राजस्थान प्रान्त मे भ्रमण कर रहे हैं किन्तु पू० माताजी के प्रति उनका पूरा वात्सल्य और आशीर्वाद प्राप्त होता रहता है। संस्थान की विभिन्न गतिविधियों में भी आपका आदेश व आशीर्वाद हमेशा प्राप्त होता है।

४ जून १९८२ को दिल्ली के ऐतिहासिक लालकिले के मैदान से प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी द्वारा प्रवर्तित जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति भी आपके मंगल आशीर्वाद से देश के विभिन्न प्रान्तों में भ्रमण कर रही है। राजस्थान प्रान्त में भ्रमण के समय २७ अक्टूबर १९८२ को लोहारिया ग्राम में आपके ससंघ सान्निध्य में ज्ञानज्योति का भव्य आयोजन किया गया जिसमें विशिष्ट श्रीमान् विद्वान् भी पधारे थे। वहाँ पर बोलियों के बाद आपने ज्योति को मंगल शुभाशीर्वाद प्रदान किया और बाद में अपने विशाल संघ सहित उसकी शोभा यात्रा के साथ भ्रमण कर धर्मवात्सल्य और प्रभावना का परिचय दिया। इस जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति के भारत भ्रमण के पश्चात् हस्तिनापुर में होने वाली विशाल पैमाने की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर भी पू० माताजी के इच्छानुसार आपके विशाल सघ का सान्निध्य प्राप्त करने के सतत प्रयास जारी हैं। आशा ही नही पूर्ण विश्वास है कि माताजी का यह मनोरथ भी संस्थान के विशिष्ट कार्यकर्ताओं के माध्यम से अवश्य सफल होगा और पुनः एक बार उत्तरप्रान्त मे चतुर्थ काल वर्तन करेगा। वर्तमान में धर्म की बागडोर को सँभालने वाली दिगम्बर जैन साधु परम्परा ही है जिससे सर्वोत्कृष्ट आचार्य परमेष्ठी हम सभी को हस्तावलंबन देकर संसार से पार करने वाले हैं। इन्ही आचार्य परमेष्ठी मे आप आ० शांतिसागर महाराज की परम्परा के तृतीय पट्टाधीश आचार्य है। जिनके मार्गदर्शन मे अद्यप्रभृति प्राचीन परम्परा निर्विघ्न रूप से चली आ रही है। भविष्य मे भी चिरकाल तक आपके द्वारा दिग्भ्रमित समाज मार्गदर्शन लेती रहेगी। आ० पूज्यपाद स्वामी के वचनानुसार "वपुषा एव मोक्षमार्गं निरूपयन्तं मूर्तमिव" को साक्षात् दृष्टिगत कर रहे है।

ऐसे महान् आचार्यपरमेष्ठी के चरणों मे शतशः नमोऽस्तु।





परमविदुषी आर्यिकारत्न

ज्ञानमती माताजी

श्री देवेन्द्रकुमार जैन, भोपाल

● ●

इस महान् विभूति के परिचय स्वरूप लेखनी को साहस प्रदान करना मेरी वाचालता का ही सूचक होगा। जिस प्रकार से कोई बालक अपने नन्हे-नन्हें हाथों को फैलाकर समुद्र की विशालता को बतलाये तो वह मात्र जन-मनोरंजन का पात्र होता है उसी प्रकार मेरा यह प्रयास भी शायद हास्यास्पद ही होगा।

जैसा कि आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने अपने स्वयंभू स्तोत्र में कहा है—

गुणस्तोकं सदुल्लंघ्य तद्बहुत्वकथास्तुतिः।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम्॥

थोड़े से गुणों को बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करना स्तुति है किन्तु जहाँ गुणों की अधिकता हो और शब्दाक्षर सीमित हों तो भला व्यक्तित्व का परिचय कैसे दिया जा सकता है। चन्दा मामा की शीतलता अपने आश्रित रहने वालों को ही नहीं प्रत्युत् अपनी तीव्र गति से गमन करके इतनी ऊँचाई पर निवास करने के बावजूद भी सारे विश्व को शीतलता प्रदान करती है। पूर्णमासी का चन्द्र विशेष रूप से सबको आह्लादित करता है। उसी प्रकार से ज्ञानमती माताजी के ज्ञानरूपी चन्द्र की चाँदनी शरदपूर्णिमा की वह विकसित चाँदनी है जिससे अमृत कण भी झरते हैं जिनके द्वारा विश्व का जन-मानस अमरता को प्राप्त कर सकता है।

माँ मोहिनी की प्रथम सन्तान या दैवी वरदान कन्यारत्न हुई। वि० सं० १९९१ (सन् १९३४) आसोज की पूर्णिमा जिस दिन चन्द्रमा अपनी सोलह कलाओं को पूर्ण कर असली रूप में दृष्टिगत हो रहा था, इस दिन को लोग "शरदपूर्णिमा" के नाम से जानते हैं और ऐसी किंवदन्ती भी चली आ रही है कि उस दिन आकाश से अमृत झरता है। कई स्थानों पर लोग शरद-पूर्णिमा की रात्रि में खुले आकाश मे खाने की वस्तुयें



रखते हैं और प्रातः इस कल्पना से सबको बाँटकर उसे खाते हैं कि उसमें अमृत मिश्रित हो गया है। इसी चाँदनी रात्रि में माँ की गोद में एक दूसरा चाँद आया जिसका नाम रखा गया "मैना"।

मैना ने जो विशेषता पूर्ण कार्य अपने बचपन मे ही कर डाले जो हर संतान के लिए तो सोचने के विषय भी नही हो सकते। आठ-नौ वर्ष की नन्हीं सी अवस्था मे ही इन्होंने अपने घर में पुरातन परम्परा से चले आने वाले मिथ्यात्वों और कुरीतियों को दूर किया। अपने स्वाध्याय के बल पर गृहस्थ अवस्था में भी अच्छे-अच्छे पण्डितों को निरुत्तर कर देती थीं। माता-पिता व परिकर समूह मैना को देवी के अवतार रूप मे मानते थे और पुत्रवत् इनको लाड़-प्यार देते। फिर भी जन्म-जन्मान्तर के संस्कार ही कहना होगा जो धन-जन से सम्पन्न मोह को तिलाजलि देकर मैना ने पत्थर दिल बनकर त्याग की कठिन साधना में अपना जीवन अर्पण कर दिया।

भारत देश में जैन समाज की यह प्रथम हस्तियों मे से है जिन्होंने विश्व मे ब्राह्मी, सुन्दरी और चन्दना के आदर्श को उपस्थित किया। कुमारी कन्या का इस ओर कदम बढाना उस समय के लिए एक आश्चर्य और संघर्ष का विषय था किन्तु चिर विरागी जीवन को रागी बनाना भी एक असम्भव विषय था। महावीर की परम्परा सदैव जयशील रही है तो उनके प्रति सहृदयता और बन्धुत्व का पाठ पढ़ाने वाले वच्चे वैरागी की भी जीत अवश्य ही होती है और हुआ भी यही। समाज तथा परिवार के संघर्षों के बावजूद भी मैना ने अपने स्वार्थ की सिद्धि कर ही ली।

सन् १९५२ मे का पुनः वही शरद पूर्णिमा का पवित्र दिवस जब मैना अपने १९ वर्ष को पूर्ण कर १७व वर्ष में प्रवेश करने जा रही थी। बाराबंकी (उ० प्र०) मे आ० श्री देशभूषण महाराज के चरण सान्निध्य में सप्तम प्रतिमा रूप आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया अतः शरद पूर्णिमा विशेष रूप से उनके वास्तविक जन्म दिन को सूचित करना है। यही से आपका नवजीवन प्रारम्भ हुआ।

सन् १९५३ में श्री महावीर जी में आ० श्री देशभूषण महाराज के कर कमलों से ही आपने क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की और "वीरमती" नाम को प्राप्त किया। क्षुल्लिकावस्था मे ही आपने जयपुर (राज०) में पं० दामोदर जी शास्त्री से मात्र २ महीने मे कातन्त्र रूपमाला व्याकरण का अध्ययन किया। उसी के मनन और चिन्तन के बल पर आपने जो अपूर्व साहित्य का सृजन किया है वह अविस्मरणीय रहेगा। दो तीन वर्षों तक क्षु० वीरमती आ० श्री के साथ ही रही इस बीच इन्हे क्षु० विशालमती अम्मा का विशेष वात्सल्य और स्नेह प्राप्त हुआ।

सन् १९५४ मे इन्हे सर्वप्रथम आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज के दर्शन का सौभाग्य नीरा मे मिला था। महाराज ने प्रथम आशीर्वाद के साथ ही इनका परिचय पूछा। क्षु० विशालमतीजी ने इनके वृद्धिगत वैराग्य को बताते हुए कहा कि ये उत्तर की अम्मा है। दक्षिण प्रान्त मे आर्यिका क्षुल्लिकाओं को अम्मा के नाम से ही सम्बोधित किया जाता है। पुनः आपने सन् ५५ का चातुर्मास क्षु० विशालमती के साथ म्हसवड में किया था।

चातुर्मास मे ही जब आपको यह ज्ञात हुआ कि इस युग की ऋषि परम्परा को जीवन्त रखने वाले आचार्य सम्राट् चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र पर समाधिस्थ हैं तब उनके दर्शनो को तीव्र लालसा हृदय में प्रगट हुई। क्षु० विशालमती जी के साथ आप कुंथलगिरि आ गईं।

आ० श्री शांतिसागर महाराज सल्लेखनारत थे। लाखों की संख्या में नर नारी उनके दर्शनों के लिए आ रहे थे और सभी इस महान् विभूति के दर्शन कर अपने को धन्य समझते। महाराज मौन पूर्वक सबको आशीर्वाद प्रदान करते और नियमित समयानुसार अपनी क्रियाओं को करते। क्षु० वीरमती भी आचार्यश्री के दर्शनों के लिए पहुँची।

क्षु० वीरमती ने कुछ समय पाकर आ० श्री से निवेदन किया कि मै आपके करकमलों से आर्यिका दीक्षा लेना चाहती हूँ। आ० श्री यूँ भी इनके बुद्धि कौशल और वैराग्य से बड़े प्रसन्न थे उन्होने बड़े वात्सल्य पूर्ण शब्दो मे कहा—अम्मा! मै अब सल्लेखना व्रत ग्रहण कर चुका हूँ अतः अपने शिष्य मुनि वीरसागर को मैने आचार्यपट्ट प्रदान किया है अतः तुम उन्ही से दीक्षा लेकर संघ में रहना। आप आ० श्री की समाधि पर्यन्त आ० श्री के पास ही रही। आ० श्री का भी इस लघु-वयस्क नवदीक्षिता के प्रति अकृत्रिम स्नेह सा उमडता। अतः कई बार आपको आ० श्री की अन्तिम शिक्षाओं को ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अनन्तर सन् १९५५ दिसम्बर मे ही आप आ० श्री वीरसागर महाराज के संघ में आ गईं। यहाँ पर भी आपकी छोटी सी उम्र और विलक्षण ज्ञान तथा वैराग्य से सभी प्रभावित थे। अतः कुछ ही दिनो में सन् १९५६ माधोराजपुरा (राज०) में आपको आ० श्री के द्वारा आर्यिका दीक्षा प्राप्त हो गई। अब आप क्षु० वीरमती से आर्यिका ज्ञानमती बन गई। पूर्ण इच्छित लक्ष्य तो आपका अब सिद्ध हुआ और यहाँ से ही आपकी प्रतिभा में पूर्ण निखार आना प्रारम्भ हुआ।

शिष्य संग्रह का प्रथम कार्य

न जाने किन जन्मों के संस्कारों की देन आपके जीवन में रही जिसके फलस्वरूप आप अपने कल्याण के साथ-साथ योग्य शिष्यों को भी अपने ज्ञान रस का आस्वादन कराने लगी।

जब आप क्षुल्लिका अवस्था मे ही विशालमती अम्मा के साथ दक्षिण भारत की यात्रा कर रही थी, महाराष्ट्र प्रांत के म्हसवड ग्राम मे आप पधारीं। वहाँ ज्ञात हुआ कि एक कुंवारी कन्या प्रभावती है जो शादी नही करना चाहती, प्रभावती भी आपके दर्शन करने आई और आपने उसके अभिप्राय को समझकर पूर्ण सम्भव प्रयत्नों के द्वारा उस बालिका को अपना आश्रय दिया। प्रभा-वती में तो मानों एक और एक ग्यारह का बल आ गया और वह अपने कुटुम्बियों की आज्ञा लेकर आपके पास रहने लगी। सर्वप्रथम आपने उन्हे क्षु० विशालमती जी को आज्ञा से सन् १९५५ में ही १०वी प्रतिमा के व्रत दिये। और प्रारम्भिक बेसिक शिक्षा से लेकर न्याय, व्याकरण, सिद्धान्त सब कुछ उन्हे अध्ययन कराया। या यूँ कहें तो कोई अतिशयोक्ति नही कि उस प्रभावती रूपी पत्थर पर घिस-घिस कर आपका ज्ञान कुन्दन सा दमका यह आपकी स्वयं शिक्षा का प्रति फल था। कालान्तर में वही प्रभावती सन् १९५६ में क्षुल्लिका बनी पुनः सन् १९६१ में आ० जिनमती बनी जो आज आ० धर्मसागर महाराज के संघ मे ज्ञानाराधान कर रही हैं। यह आपकी सर्वप्रथम शिष्या हैं। आपकी प्रेरणा व शुभाशीर्वाद से इन्होंने न्याय के महान् ग्रन्थ प्रमेयकमलमार्तण्ड का हिन्दी अनुवाद किया जो सन् १९८१ में प्रकाशित हो चुका है। जिनमती संस्कृत की अच्छी विदुषी आर्यिका है। लगभग १८-१९ वर्षों तक आपके पास रहकर ही इन्होंने धर्म अध्ययन किया तथा आ० जिन-मती जी हमेशा अपने प्रवचनों में यही कहा करती थी कि ये मेरी गर्भाधान क्रिया विहीन माँ हैं। मैं

इनका उपकार जन्मजन्मांतर में भी नहीं भूल सकती। किन्तु संयोग और वियोग जैसा कि संसार का स्वभाव है, सन् १९७२ मे आप अपनी शिष्या आ० शुभमती के निमित्त से आ० ज्ञानमती माताजी की आज्ञा से आ० धर्मसागर महाराज के सघ मे चली गईं। भले ही आ० जिनमती आज अपने गुरु पू० ज्ञानमती माताजी से दूर है किन्तु उनकी गुरुभक्ति और मातृभक्ति हम सबके लिए अनुकरणीय है।

सन् १९५८ में आपका चातुर्मास अजमेर में हुआ। वहाँ पर एक लघुवयस्का बालिका अगूंरीबाई जो वैधव्य दुख से दुखी थी उसे भी आपका आश्रय एक पतवार के समान मिला। आपने अंगूरी बाई के माता-पिता व सास ससुर को समझा बुझाकर अथक परिश्रम के द्वारा उसका भी उद्धार किया। अंगूरीबाई भी आपके संघ मे क्रमशः धर्मसाधना करते हुए आ० आदिमती बनी। ये भी सन् १९७५ में आ० श्रुतमतीजी के निमित्त से आ० कल्प श्रुतसागर महाराज के संघ मे रही और वर्तमान मे वह आ० धर्मसागर जी के संघ मे हैं। आ० आदिमती ने भी लगभग १७-१८ वर्षों तक पू० ज्ञानमती माताजी के पास रहकर असीम ज्ञान प्राप्त किया। माताजी की प्रेरणा से ही आ० आदिमती जी ने करणानुयोग के महान् ग्रन्थ गोम्मटसार कर्मकाण्ड का विस्तृत रूप में हिन्दी अनुवाद किया जो सन् १९८२ में प्रकाशित हो चुका है तथा जनसाधारण के समझने के लिए एक सुगम ग्रन्थ बन गया है। आप आ० श्री के संघ मे रहती हुई निरन्तर पूज्य माताजी की भक्ति में तत्पर रहती है तथा प्रतिवर्ष चातुर्मास में नूतन पिच्छिका बनाकर भी भेजती है। वही म्हसवड में एक सौभाग्यवती महिला श्रीमती सोनूबाई के वैराग्य परिणामों को देखकर उन्हे भी त्याग मार्ग में अग्रसर किया और वे कुछ दिनों मे सन् १९५७ में आ० शिवसागर जी महाराज से दीक्षा लेकर आ० पद्मावती के रूप में आपके साथ रहने लगी। ये छाया की भाँति चौबीस घण्टे आपके साथ अपने जीवन भर रहीं। ज्ञान की अल्पता होते हुए भी इनके सदृश गुरु भक्ति का नमूना मिलना इस युग के लिए दुर्लभ विषय है। तपस्या की प्रतिमूर्ति मानो चतुर्थकाल का शरीर वज्रवृषभनाराचसंहनन ही इन्हें प्राप्त हुआ था। हमेशा लगभग एक दो उपवास के बाद आहार को उठनी और अष्टाह्निका, दशलक्षण आदि के ८-८, १०-१० उपवास करके भी सतत माताजी की वैयावृत्ति आदि में सक्रिय भाग लेती। मैंने स्वयं सन् १९६९ मे जयपुर चातुर्मास में देखा है कि ज्ञानमती माताजी दिन में ५-६ घंटे लगातार मुनियों को व संघस्थ शिष्यों को अध्ययन करवाती। आ० पद्मावती के चाहे ८-१० उपवास क्यों न हों लगातार माताजी के साथ ही बैठी रहती। जाने इस पंचमकाल में भी प्रकृति ने इन्हें कौन सी शक्ति प्रदान की थी। सन् १९७० टोंक (राज०) में जबकि आ० संघ के अधिनायक धर्मसागर महाराज थे, चातुर्मास के समय भादों के सोलहकारण पर्व में आ० पद्मावती ने ३१ उपवास किये। सबके अत्यधिक आग्रह पर उन्होंने मात्र ३ बार केवल जल ग्रहण किया। इसी प्रकार से सन् १९७१ के अजमेर चातुर्मास में भी सबके रोकने पर भी उन्होंने सोलहकारण पर्व में एक महीने का उपवास ले लिया। इस बार उन्होने २१ दिन तक निराहार रहकर २२ वें दिन जल ग्रहण किया। यह उनका अन्तिम जल ग्रहण था। इस समय उनके गृहस्थावस्था के पति भी आये हुए थे उन्होंने भी उन्हें जल दिया। २८ दिन के उपवास के बाद उनका स्वास्थ्य गिरने लगा था। सबने कहा कि जल ले लो लेकिन वे नियम में दृढ़ रहीं। ३१ वें दिन आ० पद्मावती को बोलने में काफी अशक्तता देखकर ज्ञानमती माताजी व समस्त साधु वर्गों की स्थिति गम्भीर नजर आने लगी। रात्रि के लगभग ७-८ बजे आ० श्री व समस्त साधु उनके पास आये। उन्होंने सावधानी पूर्वक

सबको नमोस्तु किया और देखते ही देखते १५-२० मिनट में महामंत्र सुनते हुए ध्यानस्थ मुद्रा में विराजमान आ० पद्मावती माताजी स्वर्ग सिधार गईं। मैं उस समय अजमेर मे ही थी वह दृश्य देखा भी था। आज उन्हें ११ वर्ष हो चुके हैं समाधिमरण को प्राप्त हुए किन्तु उनके गुणों की सौरभ आज भी स्मृति में ताजगी प्रदान कर देती है। भगवान् ऐसी तपस्विनी आत्मा को शीघ्र ही मुक्ति प्रदान करें यही परोक्ष भावना है।

सन् १९६२ में आपके संघ का विहार फतेहपुर (सेखावाटी) की ओर हुआ। यहाँ पर एक विधवा बाई रतनीबाई थी। वैष्णव परम्परा में इनका विवाह हुआ था किन्तु पति के स्वर्गस्थ होने के बाद जैनधर्म का ही पालन करती थीं। आपने इन्हे आ० शिवसागर से २ प्रतिमा के व्रत दिलवाये और तभी से आपके पास रहने लगीं।

सीकर (राज०) मे ब्र० राजमल (जो आज अजितसागर है) और अंगूरीबाई की दीक्षा के समय इन्होंने भी क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। उस समय इनका नाम श्रेयांसमती रखा गया। सन् १९६८ में सलूम्बर में इनकी आर्यिका दीक्षा हुई तब श्रेष्ठमती यह संज्ञा प्रदान की गई। आपने भी ८-१० वर्षों तक पूज्य ज्ञानमती माताजी के पास रहकर धर्मध्यान और वैयावृत्ति की। अब ये भी आ० आदिमती के साथ ही आ० धर्मसागर महाराज के संघ मे धर्माराधना कर रही हैं।

सन् १९५९ मे आप लाडनूं (राज०) में थी। आ० शिवसागर जी का विशाल संघ था तब आपकी छोटी बहिन कु० मनोवती भी अपनी माँ के साथ आपके दर्शनों के लिए आई यहीं पर उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि मैं ज्ञानमती माताजी के समान ही आजीवन ब्रह्मचर्य और दीक्षा धारण करूँगी। सच्चा वैराग्य सफल हुआ और धीरे-धीरे पदोन्नति करती हुई आ० अभयमती बन गईं। यही से ज्ञानमती माताजी ने अपने गृहस्थावस्था के बहन भाइयो को घर से निकालकर त्याग मार्ग पर लगाना प्रारम्भ किया।

सन् १९६३ मे आपने आर्यिका संघ सहित कलकत्ता महानगरी में चातुर्मास किया। इस चातुर्मास में कलकत्ता जैन समाज में नई जागृति आई। आज भी वहाँ के लोग आ० ज्ञानमती माताजी के कलकत्ता चातुर्मास को गौरवपूर्ण स्मृतियों में संजोये हुए हैं। वहाँ पर ओसवाल जाति की एक लड़की कु० सुशीला (जो आ० कल्प श्रुतसागर महाराज की गृहस्थावस्था की सुपुत्री थी) पू० माताजी के पास दर्शनार्थ आया करती थी। माताजी की प्रेरणा से इसके ब्रह्मचर्य व्रत के भाव बन गये और माताजी ने इन्हें २ वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया। उनके पिताजी दि० जैन परम्परा में आ० वीरसागर महाराज के संघ में क्षु० चिदानन्द जी बन चुके थे। वर्तमान मे वे आ० कल्प श्री श्रुतसागर जी के नाम से प्रसिद्ध हैं और सिद्धान्त ग्रन्थों के अच्छे ज्ञाता हैं। पिताजी के घर में न होने से भाई अपनी बहन सुशीला को माताजी के संघ मे नही भेजना चाहते थे लेकिन उनकी माँ की इच्छा थी कि पुत्री की भावना सफल हो और मै भी धर्मक्षेत्र मे आगे आ सकूं। अतः उनकी मनोभावना के अनुसार ज्ञानमती माताजी ने अथक प्रयास किया और तीन वर्ष बाद संघ में आ गई। पूज्य माताजी ने उन्हें धार्मिक अध्ययन कराया और त्याग मार्ग पर अग्रसर किया। कु० सुशीला खुशमिजाज हमेशा हँसने और हँसाने वाली लड़की थी। माताजी के साथ १२ वर्षों तक रहकर सन् १९७४ में दिल्ली राजधानी में भ० महावीर निर्वाणोत्सव के शुभ अवसर पर आ० धर्मसागर महाराज के विशाल संघ सान्निध्य में आर्यिका दीक्षा धारण कर आ० श्रुतमती बन गईं। ये वर्तमान में पूर्व पिताजी आ० कल्प श्रुतसागर जी महाराज की छत्रछाया में आ० आदिमती जी के

शिष्यत्व में आ० धर्मसागर महाराज के संघ में धर्माराधन कर रही हैं। इनके हृदय में भी आ० ज्ञानमती माताजी के प्रति अतीव गुरुभक्ति और श्रद्धा है।

सन् १९६५ में आर्यिका संघ का चातुर्मास कर्नाटक के श्रवणबेलगोला भ० बाहुबली के चरण सान्निध्य में हुआ। वहाँ पर १ वर्ष तक आपने भ० बाहुबली का खूब ध्यान किया उसी ध्यान के प्रभाव से आपके मस्तिष्क में जम्बूद्वीप रचना की उपलब्धि हुई। जब आप वहाँ से सोलापुर के लिए विहार करने लगीं तब वहाँ के प्रतिष्ठित सज्जन श्री जी० वी० धरणेन्द्रैया तथा उनकी श्रीमती ललितम्मा ने अपनी पुत्री कु० शीला को घर से निकाला जो आज आ० शिवमती हैं।

सन् १९६६ में आपका चातुर्मास सनावद (म० प्र०) में हुआ। वहाँ ज्ञात हुआ कि अमोलकचंद सर्राफ के सुपुत्र मोतीचंद कई वर्षों से आजीवन ब्रह्मचर्य ग्रहण कर चुके हैं। माताजी तो सदा ऐसे लोगों की खोज में रहती ही थीं एक मौका और हाथ लग गया। उन्होंने मोतीचंद को समझा-बुझाकर घर से निकाल कर संघस्थ बना लिया। तब से लेकर आज तक ब्र० मोतीचंद जी आपके संघ में ही धार्मिक अध्ययन तथा जम्बूद्वीप निर्माण कार्य में अपना तन-मन-धन से पूर्ण सहयोग कर रहे हैं। त्याग में भी इनकी विशेष रुचि है। लगभग २३ वर्षों से नमक और मीठा इन दो रसों का भी इन्होंने त्याग कर रखा है। इनके हृदय में पूज्य माताजी के प्रति गुरुभक्ति तथा मातृभक्ति की प्रबल भावना है।

इसी चातुर्मास में ब्र० मोतीचंद जी के चचेरे भाई यशवंतकुमार ने भी माताजी से कुछ शिक्षायें ग्रहण की और संघ बिहार में वे भी साथ हो लिए। ये कालेज के विद्यार्थी थे फिर भी कुछ पूर्व भव के संस्कारो के कारण माताजी के प्रति इनका ममत्व बढ़ गया। घर मे माँ नही थी अतः ज्ञानमती माताजी से ही इन्होंने मातृ स्नेह को प्राप्त किया ये सदा माताजी को अम्मा कहते थे और आज भी अम्मा शब्द से ही सम्बोधित करते हैं। धीरे-धीरे त्याग मार्ग में इनकी रुचि बढ़ने लगी और ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया तथा सन् १९६९ फाल्गुन महीने में महावीर जी अतिशय क्षेत्र पर हो रहे पंचकल्याणक महोत्सव के शुभ अवसर पर ब्र० यशवंत कुमार ने अकस्मात् पू० माताजी की प्रेरणा से मुनि दीक्षा का नारियल चढ़ा दिया। आ० धर्मसागर महाराज के करकमलों से कई दीक्षाओं के साथ ही यशवंत की भी मुनि दीक्षा हो गई और वर्धमानसागर महाराज बन गये। यह माताजी की उदारता का जीता जागता नमूना था कि अपने ही शिष्य को निज से महान् बनाने में उनका विशेष योगदान रहा। उस समय इनकी दीक्षा का भी एक रोमांचक दृश्य था और युवा पीढ़ी के लिए अनुकरणीय विषय था। मुनि वर्धमान सागर जी माताजी को आज भी माँ के रूप में ही स्वीकार करते हैं। दीक्षा के बाद मुनि श्री संभवसागर के साथ आपने भी ज्ञानमती माताजी के संघ में ही सन् १९७५ तक रहकर धार्मिक स्वाध्याय अध्ययन का लाभ प्राप्त किया। अनन्तर पू० माताजी की प्रेरणा से आ० धर्मसागर महाराज का आश्रय लिया। वर्तमान में भी आ० धर्मसागर महाराज के संघ में ही प्रमुख रूप से स्वाध्याय अध्ययन आदि में रत रहते हैं।

सन् १९६८ में बांसवाडा (राज०) में आपका पदार्पण हुआ। वहाँ पर आपने उपदेश में कहा कि प्रत्येक गाँव से यदि आप लोग १-१ लड़की भी प्रदान करें तो धर्म की पता नहीं कितनी उन्नति होगी। उसी समय वहाँ पर उपस्थित महानुभाव श्री पन्नालाल जैन ने अपनी दो पुत्रियों कला और कनक को आपके समक्ष लाकर कहा कि ये लड़कियाँ आपको समर्पित हैं। सब आश्चर्य से उनको निहारने लगे कि कैसे पत्थर दिल का बाप है जो अपनी कन्याओं को त्याग की बलि वेदी पर चढ़ा

रहा है। खैर ! माताजी ने उस समय ५-५ वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत उन दोनों को दिया और कालान्तर में कनक का विवाह हो गया और कुछ दिन बाद उसकी बड़ी बहन मनोरमा संघ में आ गई। कु० कला और मनोरमा आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर वर्तमान में मुनि अजितसागर महाराज के संघ में धर्माध्ययन कर रही हैं। कु० कला ने सन् १९७५ तक माताजी के संघ में ही रहकर शास्त्री आदि परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। अनंतर माँ की अस्वस्थता के कारण कुछ दिन इन्हें घर भी रहना पड़ा। अब अजितसागर जी के पास रह रही हैं।

सन् १९६९ में आपने कु० मालती को ५ वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत महावीर जी में दिलाया। वे भी आपके पास सन् १९७० से आज तक धर्माध्ययन कर रही हैं।

सन् १९६९ में जयपुर चातुर्मास में कु० शांतिबाई मुजफ्फरनगर से माताजी की शरण में आईं। माताजी ने आ० धर्मसागर महाराज से इन्हें आर्यिका दीक्षा दिलवाई जो कि जयमती के नाम से प्रसिद्ध हैं।

कु० माधुरी को भी आपने सन् १९७१ में अजमेर चातुर्मास में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान किया तब से ये भी आपके सान्निध्य में अपना धर्माध्ययन कर रही हैं।

कु० मंजू को आपने सन् १९७१ में अजमेर में ही ५ वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान किया। अनंतर वह आजन्म ब्रह्मचर्य धारण कर काफी दिनों तक आपके पास रहकर शास्त्री प्रथम खण्ड परीक्षा उत्तीर्ण कर वर्तमान में अपने माता-पिता के पास ही रह रही हैं।

सन् १९७३ में दिल्ली पहाड़ी धीरज में आपने दो विधवा महिलाओं को भी गृहत्याग कराकर आ० रत्न देशभूषण महाराज से दीक्षा प्रदान कराई। जो आ० यशोमती तथा आ० संयममती के नाम से अपनी-अपनी आत्मा का कल्याण कर रही हैं।

इस प्रकार से आपने अपने दीक्षित जीवन काल में कितने ही लोगों का उद्धार किया है। बहुत से नाम मुझे स्मृति में नहीं है। यूँ तो हर आने वाला व्यक्ति भी आपके पास से कुछ न कुछ नियम लेकर अवश्य जाता है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि आपको जन्मदात्री माँ भी आपके शिष्यत्व को स्वीकार करके आपको प्रथम नमस्कार करती हुई आपके संघ में धर्माराधन कर रही हैं। यह जैनधर्म की विलक्षणता ही कहनी पड़ेगी।

कई बार पू० माताजी अपने प्रवचन में कहा करती हैं कि मुझे शिष्यों के निर्माण में वैसा ही परिश्रम करना पड़ा जैसे बहुत से घनों की चोट खाकर सोना तरह-तरह के आभूषण बनाता है। कई माँ-बापों की गालियाँ मुझे सौगात में मिली हैं। धन्य है आपका धैर्य और आत्मबल।

जीवन की बहुँमुखी प्रगति

निज का अध्ययन तथा शिष्यों को अध्यापन कराना तो आपके जीवन का प्रमुख अंग था ही इसके साथ ही आपकी प्रेरणा व शुभाशीर्वाद से हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य आपकी प्रतिभा में चार चाँद लगाता है। आपके सान्निध्य में होने वाले शिविर सेमिनारों से देश विदेश के विद्वानों में जम्बूद्वीप के शोध की जिज्ञासा प्रबल हुई है। यह जैनधर्म की प्रभावना का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है।

हस्तिनापुर दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान के वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला ने आपके द्वारा रचित लगभग ६०–७० ग्रन्थों का प्रकाशन करवाया।

सन् १९६९ में जयपुर चातुर्मास में आप ब्र० मोतीचंद आदि संघस्थ शिष्य शिष्याओं तथा मुनि आर्यिकाओं को अष्टसहस्री का अध्ययन करा रही थीं। मोतीचंदजी ने न्यायतीर्थ परीक्षा का फार्म भरा। मूल संस्कृत मे पढ़कर परीक्षा देने में उन्होंने अपनी असमर्थता व्यक्त की। तब आपने शिष्यों के हितार्थ उसका अनुवाद करना प्रारम्भ किया। जिस अष्टसहस्री ग्रंथ के रचयिता आ० विद्यानंदि स्वामी ने स्वयं कष्टसहस्री शब्द से सम्बोधित किया है। बड़े-बड़े विद्वान् भी जिसका हिन्दी अनुवाद करने में अपने को असमर्थ मानते थे। आपने अपनी लगनशीलता के द्वारा बड़े ही सुन्दर रूप में एक वर्ष तीन महीने में उसे पूर्ण किया और सन् १९७० में टोडाराय सिंह (राज०) में पौष सुदी पूर्णिमा के दिन आ० धर्मसागर महाराज के जन्मदिवस पर विशाल रथयात्रा के साथ पालकी में आपको हस्तलिखित कापी (अनूदित अष्टसहस्री) को विराजमान कर विशाल जलूस निकाला गया और उस ग्रन्थराज की आरती और पूजा की गई।

साहित्य निर्माण में भी सबसे आगे

भ० महावीर से लेकर आज तक ढाई हजार वर्ष के इतिहास में किसी आर्यिका के द्वारा रचित साहित्य दृष्टिगत नहीं हुआ। पू० माताजी ने समाज की विभिन्न रुचियों को देखते हुए क्लिष्ट से क्लिष्ट और सरल से सरल साहित्य का निर्माण किया है। जहाँ अष्टसहस्री जैसे महान् ग्रन्थ का अनुवाद कर विद्वद्वर्ग को लाभान्वित किया वहीं नवजात शिशुओं की प्रतिभा भी उनसे अछूती नहीं रही। इसके प्रतिफल में उन्होंने सरल भाषा और गागर में सागर की तरह बालविकास के चार भाग तैयार किये जो अनेकों संस्थाओं तथा परीक्षा बोर्डों के माध्यम से बालकों को दिशा निर्देश दे रहे हैं। आधुनिकता की ओर झुकी हुई युवापीढ़ी को रुचि के अनुसार औपन्यासिक शैली मे प्राचीन प्रथमानुयोग के कथा साहित्य का निर्माण वर्तमान के लिए अत्यन्त सराहनीय है ही साथ ही पू० माताजी के द्वारा रचित इन्द्रध्वज मण्डल विधान पूजन भाक्तिकों को अपूर्व आनन्द की प्राप्ति कराता है।

आपने अपने मौलिक तथा अनूदित रूप में १०८ छोटे, बड़े ८ ग्रन्थों की रचना की है। यह नारी जाति के लिए प्रथम रेकार्ड है कि इस बहुमात्रा में किसी आर्यिका द्वारा महान् साहित्य सृजन हुआ है। शनैः शनैः आपके अप्रकाशित ग्रन्थ भी प्रकाशित होकर हमारे सबके लिए मार्गदर्शक बनेंगे ऐसी त्रि० शोध संस्थान से आशा है।

आपकी सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका तो घर बैठे लोगों को साक्षात् जिनवाणी सुना रही है। यह अपने आप में एक अनूठी पत्रिका है।

इसी हस्तिनापुर की पवित्र धरा पर जम्बूद्वीप स्थल पर आपकी गुरुभक्ति का प्रतीक "आ० वीरसागर संस्कृत विद्यापीठ" भी सन् १९८० में स्थापित हुआ। होनहार विद्यार्थी प्राचीन आचार्य परम्परा का ज्ञान प्राप्त कर समाज के समक्ष कुशल वक्ता और विधानाचार्य के रूप में आ रहे हैं यह एक प्रसन्नता का विषय है।

पू० माताजी अस्वस्थ रहते हुए भी निरन्तर लेखन कार्य में व्यस्त रहती हैं यह उनकी तपस्या का ही प्रभाव है। अत्यन्त अल्प आहार नमक, मीठा, घी, तेल सब कुछ त्याग करके मात्र चावल और गेहूँ दो धान्यों का नीरस आहार। भगवान् जाने कैसे आपको मानसिक शक्ति प्रदान करता है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र की धनी पू० आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी वास्तव में इस युग

के लिए एक धरोहर के रूप में हैं। जिनसे सर्वदा ज्ञान की गंगा प्रवाहित हो रही है। हम सबका भी यह कर्तव्य है कि उस ज्ञान गंगा में स्नान कर अपने को पवित्र बनावें।

सन् १९८२ मे ४ जून का पवित्र दिवस इतिहास पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। जिस दिन पू० माताजी के शुभाशीर्वाद से भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के कर कमलों से जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति रथ का राजधानी दिल्ली से प्रवर्तन प्रारम्भ हुआ। यह ज्ञानज्योति आज देश के विभिन्न प्रान्तों में भ्रमण करती हुई भ० महावीर के अहिंसा और अपरिग्रह सिद्धान्त जन-जन को सुना रही है और जन-जन में ज्ञान की ज्योति जला रही है।

माताजी आरोग्य लाभ करती हुई चिरकाल तक संसार के मिथ्यात्व अन्धकार को दूर कर सम्यग्ज्ञान प्रकाश से जनमानस को आलोकित करती रहें। इन्हीं मंगलकामनाओं के साथ आपके चरणों मे शत-शत वंदन।





आर्यिका श्री अभयमती माताजी

माता मोहिनी के द्वारा प्रदत्त १३ रत्नों मे से आप पाँचवीं कन्यारत्न हैं। सन् १९४३ मे आपका जन्म हुआ। पिता श्री छोटेलाल जी को प्रारम्भ से ही कन्याओं के प्रति अत्यन्त स्नेह था। उनके हृदय में हमेशा यह भाव रहता था कि पुत्र तो कदाचित् आगे चलकर माँ बाप से नाता तोड़ सकता है किन्तु कन्या के हृदय में पराये घर जाकर भी माँ बाप के प्रति जो स्नेह होता है वह सच्चा होता है। अपनी इस पुत्री का नाम भी उन्होंने बड़े प्यार से 'मनोवती' रखा।

मनोवती ज्यों-ज्यों बड़ी होती गई माँ के धार्मिक संस्कारों को ग्रहण करने लगी। गाँव का प्राकृतिक वातावरण, घर का स्नेहिल वातावरण, पाठशाला का धार्मिक वातावरण सब कुछ उसके हृदय मे प्रवेश कर गया। ४-५ क्लास तक लौकिक अध्ययन के बाद वहाँ उस समय कोई साधन नही था। अतः १०-११ वर्ष की उम्र के बाद लड़की के लिए घर ही विद्यालय के रूप में होता था। घर के कामकाज से जब फुर्सत मिलती तो माँ कहती कि शील कथा, दर्शन कथा पढ़ो। उनको पढ़ते-पढ़ते ही मानों आपने अपने मनोवती नाम को सार्थक करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था कि "अपनी प्रतिज्ञा पर हमेशा दृढ़ रहना।"

जब १९५२ में आपकी बड़ी बहन मैना ने अनेकों संघर्षों को सहन करके त्याग मार्ग पर कदम रखा उस समय आपने उनके इस साहस को देखा भी था। आपका जीवन प्रारम्भ से ही अत्यन्त सादगीपूर्ण रहा। बच्चों की स्वाभाविक चंचलता से दूर हमेशा गम्भीर मुद्रा, शांत स्वभावी, धार्मिक अध्ययन ही आपके जीवन का मूल अंग बन चुका था। हमेशा मन मे यही भावना रहती कि किसी तरह ज्ञानमती माताजी के पदचिह्नों पर मैं भी चलूँ।



समय बीता जा रहा था। आपकी भावनाओं को साकार रूप मिलने की काललब्धि आई। सन् १९६२ में आप अपनी माँ और भाई के साथ लाडनू (राज०) में आ० शिवसागरजी महाराज के संघ का दर्शन करने आईं। आ० ज्ञानमती माताजी भी उसी संघ मे थीं। फिर क्या था आपने दृढ़तापूर्वक आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेने का कदम उठाया। मां ने बहुत समझाया लेकिन सब बेकार ऐसे स्वर्ण अवसर को पाकर आप कब चूकने वाली थी। ब्रह्मचर्य व्रत लेकर ज्ञानमती माताजी के पास ही अध्ययन करने लगीं।

सन् १९६२ में ही आर्यिका ज्ञानमती माताजी आ० श्री शिवसागरजी महाराज से आज्ञा लेकर माताजी के संघ सहित सम्मेदशिखर यात्रा के लिए निकल पड़ी। साथ में आर्यिका जिनमती जी, आदिमतीजी, श्रेष्ठमतीजी, पद्मावती ये ४ आर्यिकायें थी जो पूज्य माताजी की ही शिष्यायें हैं। साधु के विहार में कुशल संघ संचालक की भी आवश्यकता होती है बिना श्रावकों के उनकी गाड़ी सुचारु रूप से नहीं चल सकती। इसीलिए साधु और श्रावक ये दोनों धर्मरूपी गाड़ी के दो पहिये कहे गये हैं। सम्मेदशिखर की यात्रा के समय ब्र० श्री सुगनचन्दजी, आपके छोटे भाई श्री प्रकाशचन्दजी तथा आपने कुशलता पूर्वक संघ संचालन किया। जगह-जगह के प्राकृतिक वातावरण में आत्मसाधना करते हुए संघ ६ महीने में सम्मेदशिखर पहुँच गया। २० तीर्थंकरों तथा करोड़ों मुनियों की निर्वाणभूमि सम्मेदशिखर का तो कण-कण पवित्र है ही। सभी साधु वहाँ के दर्शनों का व विशाल पर्वत की वंदना का पुण्य अर्जित करने लगे। आ० श्री वीरसागरजी महाराज कहा करते थे कि सम्मेदशिखर से बढ़कर अन्य कोई तीर्थ नही है, गोम्मटेश्वर भगवान् बाहुबलि से सुन्दर अन्य कोई मूर्ति नहीं है और आ० शांतिसागर से बढ़कर इस युग में अन्य कोई साधु नहीं हुआ। आपने भी इस तीर्थ पर रहकर बहुत सी वंदनायें की।

सन् १९६३ में माताजी का चातुर्मास कलकत्ता हुआ। आपके हृदय में दीक्षा लेने की इच्छा तो प्रारम्भ से ही थी लेकिन अभी तक कोई योग नही मिल रहा था। पूज्य माताजी की आज्ञानुसार आप कलकत्ता से गिरनार यात्रा को गईं। वहाँ से आने के बाद कुछ ही दिनों में संघ कलकत्ता से विहार करके हैदराबाद आया। यहाँ पर आपकी दीक्षा की अति उत्कट भावना देखते हुए पूज्य ज्ञानमती माताजी ने क्षुल्लिका दीक्षा प्रदान की। उस समय आपकी दीक्षा का दृश्य भी एक अद्भुत एवं अद्वितीय था जो हैदराबाद के इतिहास मे स्मरणीय रहेगा। अब आप मनोवती से अभयमती बन गईं। संघ के साथ आपको भी पदयात्रा करनी पड़ी क्योंकि आचार्य शांतिसागरजी महाराज की संघ परम्परा में क्षुल्लक क्षुल्लिका भी वाहन का प्रयोग नहीं कर सकते हैं। संघ विहार करके भगवान् बाहुबली के चरण सान्निध्य श्रवणबेलगोल में पहुँच गया। प्रथम पदयात्रा ने आपको विशेष शारीरिक कष्ट प्रदान किया और वहाँ आप गम्भीर रूप से बीमार रहीं। पूज्य ज्ञानमती माताजी ने संघ सहित एक वर्ष तक वहाँ विराज कर बाहुबलि के चरणों में खूब ध्यान किया। यह वही भूमि है जहाँ उनके मस्तिष्क में जम्बूद्वीप रचना को साकार करने की भावना जागृत हुई थी। अपनी यात्रा पूर्ण करके माताजी कुछ दिनों बाद ही आचार्य संघ में आ गईं। आप भी उन्हीं के साथ ही रहकर अध्ययन तथा रत्नत्रय साधना करती रहीं।

सन् १९५९ फाल्गुन का महीना संघ विहार करता हुआ 'श्री महावीरजी' आ गया। वहाँ विशाल जिनबिम्ब पंचकल्याणक होने वाला था। आ० श्री शिवसागर महाराज उस समय संघ के

अधिनायक थे। पंचकल्याणक का अवसर निकट आ रहा था कि आचार्यश्री बीमार पड़ गये। उन्हें बुखार आ गया और देखते ही देखते फाल्गुन वदी अमावस्या को वे बड़ी शांति पूर्वक स्वर्गस्थ हो गये। इस आकस्मिक निधन से संघ में खलबली मच गई, सारे साधु निराश हो गये। किन्तु फा० सु० ८ को मुनि धर्मसागरजी को आचार्यपट्ट प्रदान किया गया और उन्होंने सारा भार सम्भाला। पंचकल्याणक सम्पन्न कराया, दीक्षार्थियों को दीक्षायें प्रदान कीं। आप भी अब क्षुल्लिका से आर्यिका 'अभयमती' बन गईं। आचार्यश्री की छत्रछाया एवं ज्ञानमती माताजी के सान्निध्य में आपको अध्ययन अध्यापन का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। अपने आत्मबल और संयमसाधना के प्रभाव से आपका चारित्र दिनोंदिन बढ़ता ही रहा। दीक्षा लेने से पूर्व आपने अधिकांश यात्रायें कर ली थी।

संघ का विहार होता रहा। जिस मारवाड की भूमि पर पहले आप ब्रह्मचारिणी अवस्था में रही थी अब उसे आर्यिका अवस्था में पद यात्रा के द्वारा तय कर रही थी। जयपुर और टोंक (राज०) में चातुर्मास करता हुआ संघ किशनगढ़ आ गया। वहाँ पर आ० ज्ञानसागर महाराज का संघ था। महाराज न्याय तथा व्याकरण के अच्छे विद्वान् थे। आप आचार्य धर्मसागर महाराज और पूज्य ज्ञानमती माताजी की आज्ञा लेकर अध्ययन करने हेतु किशनगढ़ रुक गईं और उनके संघ मे रहकर अध्ययन करने लगीं। आचार्यश्री का संघ अजमेर पहुँच गया।

सन् १९७२ से आपकी बुन्देलखण्ड यात्रा प्रारम्भ हुई। बुन्देलखण्ड के बीहड़ जंगलों और वहाँ के डाकुओं की प्रसिद्धि सारे देश मे ही है। इनके साथ-साथ वहाँ के कलात्मक प्राचीन तीर्थ भी देशवासियों एवं विदेशियों दोनों के लिये दर्शनीय स्थल बने हुए है। आपकी यात्रा के मध्य अनेकों ऐसे भयानक अवसर आये कि साधारण व्यक्ति तो दूर से ही डर कर भाग जाये किन्तु आपका धैर्य और आत्मबल सब कुछ सहन करता गया। यात्रा की लगन जो आपके हृदय में थी। स्त्री पर्याय, बीहड़ जंगलों में विहार, भयानक पशुओं का सामना साधारण कार्य नही है। किन्तु लक्ष्य की प्राप्ति करने का इच्छुक पथिक अवश्य ही एक न एक दिन दुरूह मार्गों को तय करके भी अपने लक्ष्य को प्राप्त कर ही लेता है। आपने भी अनेकों कष्टों एवं उपसर्गों को सहन करके सन् १९८१ में सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पर आकर अपनी यात्रा सम्पन्न की। मार्ग मे झाँसी, ललितपुर, सागर, ग्वालियर, छतरपुर, जबलपुर आदि अनेकों स्थानों पर आपने महिला स्वाध्यायशालाओं की स्थापना कराई। अपने चातुर्मासों में प्रवचन के प्रभाव से समाज मे विशेष जागृति पैदा की। बड़े-बड़े विधान सिद्धचक्र, इन्द्रध्वज आदि आपके सान्निध्य मे होते रहते हैं जिनसे भारी जनसंख्या में लोग लाभ उठाते हैं। आपने अपने २० वर्ष के दीक्षित जीवन में कई आचार्य रचित ग्रन्थों के पद्यानुवाद किये जिनमे से "अमृत कलश (समयसार कलश पद्यावली), पुरुषार्थसिद्धयुपाय पद्यावली" प्रकाशित भी हो चुकी है। आचार्यों की वाणी को सरल एवं सरस ढंग से जनमानस तक पहुँचाने का यह प्रयास आपका सराहनीय है। इसी प्रकार छोटे-छोटे टैक्ट्र रूप में १०-१५ पुस्तकें आपकी और भी मौलिक रचनायें है जिनके द्वारा जनसाधारण लाभ उठा रहे हैं। आप जब प्राकृत की गाथाओं, संस्कृत श्लोको एवं हिन्दी पद्यो का सस्वर पाठ करती है तो उपस्थित श्रोतागण मंत्र-मुग्ध हो जाते हैं। आपका स्वास्थ्य कमजोर होते हुए भी हमेशा स्वाध्याय और लेखन में ही रत आपको देखा जाता है। इस समय राजस्थान प्रान्तों मे धर्मप्रभावना पूर्वक विहार कर रही हैं। आपसे समाज को बहुत आशायें हैं।



आर्यिका शिवमती माताजी

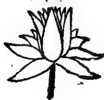
भारत में कर्नाटक के प्रसिद्ध जैन तीर्थ श्री श्रवण-बेलगोल की पावन भूमि पर ५७ फुट उत्तुंग बाहुबलि स्वामी के चरणों के ठीक १ फर्लांग दूर एक धर्मप्राण-मुनिभक्त आगमसेवी श्रावक श्री जी० वी० धरणेन्द्रैया व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती ललितम्मा ने नौ संतानों को जन्म दिया जिसमें तृतीय कन्या कु० शीला जो आर्यिका के महान् पद पर आसीन हैं।

छोटा बालक वृक्ष की नवीन शाखा के समान होता है उसे प्रारम्भिक अवस्था में जिधर मोड़ो उधर मुड़ जाती है तथा एक बार उसकी दिशा बन जाने के बाद उसे यदि मोड़ा जाता है तो या तो वह टूट जाती है या फिर अपनी इच्छा के अनुकूल मुड़ नहीं पाती। ठीक यही बात श्री धरणेन्द्रैया व माता ललितम्मा ने दृष्टिगत रखकर अपने बच्चों के हृदय मे बचपन से ही धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण किया। वैसे तो आपके सभी पुत्र व पुत्रियाँ धर्मानुरागी हैं परन्तु—

"होनहार विरवान के होत चीकने पात"

इस उक्ति के अनुसार आपकी पुत्री कु० शीला बचपन से ही धार्मिक कार्यों मे रुचि रखती थी। माता-पिता ने जो धार्मिक शिक्षण दिया, भगवान् बाहुबली की चरण रज का नित्य जो स्पर्श मिला व दिगम्बर साधुओं का जो समागम बालिका को मिला उसने उसके चारित्रिक व धार्मिक विकास में स्वयं ऊपर ले जाने वाली नसैनी (सीढ़ी) का काम किया।

आज से १५ वर्ष पूर्व सन् १९६५ में जब पू० आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी को अपने आर्यिका संघ सहित बाहुबलि के चरण सान्निध्य में दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कहते है कि जब किस्मत की लाटरी खुलने वाली होती है तो लाटरी के टिकट बेचने वाला मुफ्त में ही टिकट दे जाता है। ठीक यही बात



कु० शीला के साथ हुई। एक तो इन्हें धर्म के प्रति राग था और पू० माताजी का हस्तावलम्बन मिल गया—फिर तो कहना ही क्या था सोने में सुगंधि आ गई।

पू० ज्ञानमती माताजी ने श्रवणबेलगोल में चातुर्मास किया तथा भगवान् बाहुबलि की भक्ति में इतनी तन्मय हो गईं कि १ वर्ष प्रवास के पश्चात् इस पवित्र भूमि से अपने पग को सोलापुर की ओर मोड़ सकी। माताजी ने कुछ समय अध्ययन करा कर योग्य बनाने हेतु कु० शीला के माता-पिता को शीला को साथ में ले जाने के लिए येन केन प्रकारेण राजी कर लिया।

वैसे हमलोग अनुभव करते हैं कि एक सुनार को जन्ती से तार को खींचने में कितना परिश्रम करना पड़ता है वैसे ही लोग बताते हैं कि ज्ञानमती माताजी को शीला को उनके माता-पिता से छुड़ाने में बड़ी निर्ममता का सामना करना पड़ा है।

अन्ततोगत्वा माताजी के चरणों में कुछ समय के लिए शीला समर्पित हुई और श्रवणबेलगोल से विहार कर सोलापुर कुछ समय पश्चात् आ गईं। धर्म साधना के लिए त्याग मार्ग जरूरी होता है इस बात को ध्यान में रखते हुए माताजी ने कु० शीला की इच्छा देखकर सोलापुर में ही आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज से दो वर्ष के लिये ब्रह्मचर्यव्रत दिला दिया। वास्तव में कहना सरल है किन्तु करना बड़ा कठिन है। इस आयु में जिस समय संसार के विषय भोग अपनी ओर मुँह फाड़े तैयार हैं ऐसे समय सारे भौतिक सुखों को ठुकराने वाले विरले ही जीव इस संसार में प्राप्त होते हैं।

कु० शीला की मातृभाषा कन्नड़ थी अत. संघ के अतिरिक्त किसी के साथ अधिक बातचीत भी नहीं हो पाती। कभी-कभी ये घबराती कि मैं किससे बात करूँ, कोई मेरी भाषा नहीं समझता। लेकिन पू० माताजी इनके साथ कन्नड़ में बातें करतीं और अध्ययन कराती और भी संघस्थ आर्यिकायें जिनमती, आदिमती को भी कन्नड़ भाषा का ज्ञान हो गया था अतः वे भी थोड़ा बहुत इन्हें अध्ययन करातीं। इस प्रकार धीरे-धीरे इनका मन लगने लगा और हिन्दी संस्कृत विषयों मे शास्त्रों को पढकर धर्मशास्त्री की परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त की।

बडवानी से बाहुबलि के महामस्तकाभिषेक के अवसर पर शीला घर आ गईं। इनके ब्रह्मचर्य व्रत की बात जानकर घर में माता पिता काफी नाराज हुए किन्तु संघ में आने पर मालती ने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त कर दिया। तब से शीला निश्चिन्ततापूर्वक संघ में रहने लगीं। धीरे-धीरे इन्होंने अपना जीवन व्रतिक बना कर २ प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिए। तथा सन् १९७३ में पू० माताजी से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए।

पुनः सन् १९७४ जब राजधानी दिल्ली में आ० धर्मसागर महाराज का विशाल चतुर्विध संघ विराजमान था उस समय पू० माताजी की प्रेरणा से शीला ने दरियागंज दिल्ली के विशाल प्रांगण में आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली और आ० श्री के द्वारा 'शिवमती' संज्ञा को प्राप्त किया।

कु० शीला की माँ ललितम्मा को शीला के लम्बे-लम्बे बालों से बहुत प्रेम था। अतः उन्होंने शीला के उन निर्ममता पूर्वक उखाड़े हुए केशों को बाँधकर बाक्स में संजोकर रख छोड़े हैं।

शीला जब से संघ में आई थीं इनकी साधु वैयावृत्ति में विशेष रुचि थी। ब्रह्मचारिणी अवस्था में भी इन्होंने बड़ी भक्तिपूर्वक चौका लगाकर समस्त साधुओं को आहारदान दिया है। अभी भी बड़ी रुचि पूर्वक पू० माताजी की वैयावृत्ति में अपना काफी समय लगाती हैं। अब तक

इनकी हिन्दी भाषा बिल्कुल शुद्ध हो चुकी है अतः धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय, अध्ययन, संस्कृत स्तोत्रों का पाठ आदि भी बड़ी मधुरतापूर्वक चलता रहता है। आपकी संस्कृत भाषा भी काफी शुद्ध और स्पष्ट है अतः श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर लेती हैं।

जम्बूद्वीप रचना के निमित्त से आर्यिका संघ का हस्तिनापुर अधिक प्रवास के कारण आपको भी विशेष लाभ प्राप्त हो रहा है। प्राकृतिक वातावरण में स्वाध्याय, ध्यान, अध्ययन आदि धर्मक्रियाओं में निराकुल चित्त अतिशय आनन्द को प्राप्त कराता है। सौभाग्य से इस पवित्र क्षेत्र पर ये सभी अनायास ही प्राप्त हो रहे हैं।

वास्तव में इस अनादिकालीन संसार मे परिभ्रमण करते हुए जीव के लिए रत्नत्रय की प्राप्ति हो जाना पूर्वोपार्जित महान् पुण्य कर्मों का उदय ही है। तीर्थंकरों के द्वारा उपदिष्ट इस त्याग के समक्ष सम्यग्दृष्टि का मस्तक अवश्य ही झुक जाता है।

पू० आर्यिका श्री शिवमती माताजी निरन्तर अपने संयम की साधना करते हुए हम सभी को भ० बाहुबलि की दिव्य देशना से लाभान्वित करती रहें।





ब्र० मोतीचन्द जी शास्त्री

लोक में ऐसी किंवदन्ती है—कि समुद्र से चौदह रत्न उत्पन्न हुए थे। ठीक उसी प्रकार से माँ मोहिनी की चौदहवी रत्न संख्या की पूर्ति का श्रेय श्री मोतीचन्द जी सर्राफ, सनावद को है।

कहाँ वह उत्तर पूर्वी प्रांत का अग्रवाल परिवार और कहाँ मध्यप्रदेश सनावद का पोरवाड़ परिवार। जाति, कुल, गोत्र जन्मक्षेत्र सभी कुछ भिन्न होते हुए भी जाने कौन से जन्म के सस्कारों के कारण यह अभिन्नता है।

मोतीचन्द जी का जन्म सन् १९४० मे सनावद (म० प्र०) सुप्रसिद्ध श्रेष्ठी श्री अमोलकचंद जी सर्राफ की धर्मपत्नी श्रीमती रूपाबाई से हुआ।

सन् १९५८ मे इन्होने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण कर लिया। किन्तु माता-पिता के प्रथम ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण घर के मोह को न छोड़ सके और अपनी दैनिक क्रियाओं का पालन करते हुए व्यापार करने लगे। धार्मिक क्रियाओं मे रुचि तो प्रारम्भ से ही थी अतः मंदिर जी मे रात्रि स्वाध्याय और अध्ययन का भार भी इनको ही सम्भालना पड़ता। घर के सुखपूर्ण वातावरण को छोड़कर मोतीचंद जी ने कभी साधु सघ मे रहने की बात सोची भी नही थी किन्तु काललब्धि आने पर बड़े-से-बड़ा परिवर्तन भी हो जाता है।

सन् १९६५ में सनावद में आर्यिका इन्दुमती माता-जी के आर्यिका संघ का चातुर्मास हुआ। संघस्थ आर्यिका सुपार्श्वमती जी के पास ब्र० मोतीचंद जी आते रहते और धर्म चर्चायें करते। इसी प्रकार से धर्माराधन पूर्वक चातुर्मास सम्पन्न हो गया। संघ का बिहार हो गया और ब्र० जी जहाँ की तहाँ अपनी चर्या व व्यापार में मगन रहने लगे।



सनावद के अति निकट सिद्धवरकूट, बड़वानी और उन जैसे तीर्थक्षेत्रों के होने के कारण प्रायः उधर

साधुओं का विहार होता रहता है। सनावद की स्थानीय जैन समाज को भी आये हुए साधुओं से सहज ही लाभ प्राप्त होता रहता है।

जीवन का नया अध्याय

सन् १९६७ में आर्यिका ज्ञानमती माताजी का आर्यिकाओं व क्षुल्लिकाओं सहित सनावद में चातुर्मास हुआ। बस यहीं से ब्र० मोतीचंद जी के जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ होता है।

धर्मप्रेम, धर्मात्माओं के प्रति वात्सल्य तथा साधु संगति से प्रभावित मोतीचंद जी सनावद की जैन समाज के प्रमुख कार्यकर्ताओं के साथ आर्यिका संघ की सेवा में अग्रणी रहे। वहाँ के स्थानीय व्यक्तियों से पू० माताजी के पास चर्चा आई कि मोतीचंद जी कई वर्षों से ब्रह्मचर्यव्रत लेकर भी घर में फँसे हैं। माताजी के लिए तो इशारा ही काफी था, उनके हृदय का मातृत्व भाव जाग उठा और उन्होंने आते-जाते मोतीचंद को सम्बोधित करना शुरू कर दिया। ये तो शुरू से ही संघस्थ जीवन से डरते थे। माताजी की शिक्षास्पद बातों को ध्यान से सुनते थे लेकिन चिकने घड़े की भाँति इनके ऊपर कोई असर नहीं होता था। संघस्थ आर्यिकाएँ जिनमती जी आदि भी इन्हें समझातीं और इनके अन्दर छिपे भय को दूर करने का प्रयास करतीं। धर्मप्रवचन तथा धार्मिक आयोजन शिक्षण शिविर आदि के साथ आर्यिका संघ का चातुर्मास समापन हो गया। आगे बिहार की रूपरेखा मे मुक्तागिरि यात्रा का कार्यक्रम बना। संघ का बिहार हुआ। साथ में सनावद की सेठानी रामकुवरबाई जी आदि चले तथा ब्र० मोतीचंद, उनके मामाजो और उनके चचेरे भाई यशवन्त कुमार भी संघ में हो लिए। माताजी को यात्रा कराने के बाद वापस सनावद ले आये।

कुछ दिनों के पश्चात् ही ज्ञानमती माताजी अपने आर्यिका संघ सहित आ० श्री शिवसागर महाराज के संघ में आ गईं। तभी सन् १९६८ में ब्र० श्री मोतीचंद भी संघ में अध्ययन के उद्देश्य से आये और तभी से संघस्थ शिष्य के रूप में रहने लगे। पूज्य ज्ञानमती माताजी अपनी जिनमती, आदिमती आदि शिष्याओं की भाँति इन्हें भी गोम्मटसार जीवकांड, कातन्त्र रूपमाला व्याकरण, परीक्षामुख, न्यायदीपिका आदि पढ़ाने लगीं। प्रारम्भ में तो वे व्याकरण के कठिन विषय से घबड़ाये किन्तु धीरे-धीरे अपने पढ़े हुए पाठ को कापी पर लिख-लिख कर याद करने लगे। इस प्रकार ३-४ वर्षों के अन्दर मोतीचंद जी ने शास्त्री और न्यायतीर्थ की उपाधि की परीक्षायें उत्तीर्ण कर लीं।

सन् १९६५ से पू० माताजी के मस्तिष्क में जम्बूद्वीप रचना की योजना प्रादुर्भूत हुई थी यह सर्वविदित ही है। उस योजना को साकार रूप देने के लिए माताजी के निर्देशानुसार मोतीचंद जी ने सिद्धवरकूट आदि कई स्थानों का चयन भी किया किन्तु जिस भूमि पर इस रचना निर्माण का योग था वहीं माताजीको आना पड़ा। तात्पर्य यही है कि मोतीचंदजी ने संघ में कदम रखने के पूर्व जिस कार्य के लिए कदम उठाया था और माताजी को यह वचन दिया था कि मैं आपकी इस योजना को सफल बनाने के लिए तन मन धन से हर सम्भव प्रयत्न करूँगा। आज भी वे जम्बूद्वीप निर्माण के लिए माताजी की भक्ति मे अपने वचनों को निभाते हुए निज को समर्पित किये हुए हैं।

आज से ९ वर्ष पूर्व सन् १९७४ में जब हस्तिनापुर की भूमि का क्रय नहीं किया गया था उस समय भाई रत्नेन्द्र जी भी संघ में उपस्थित नहीं थे अकेले मोतीचंद जी ने हस्तिनापुर में कई स्थानों का निरीक्षण किया तथा मवाना निवासी लाला श्री बूलचन्द जी, मेरठ निवासी बाबू सुकुमार-चंद जी आदि के सहयोग से वर्तमान में निर्माण स्थली का कतिपय हिस्सा त्रिलोक शोध संस्थान के

नाम से क्रय किया गया। इस प्रकार अनेकों रेकार्ड उपलब्ध हैं कि ब्र० मोतीचंद जी ने पूज्य माताजी की भक्ति के कारण ज्येष्ठ की दोपहरी या माघ पौष की ठण्ड में भी अपने को हमेशा आगे करके कार्यभार को सँभाला। आज भी उनके हृदय में जो श्रद्धा और भक्ति है वह शायद विरले ही शिष्यों में दृष्टिगत हो सकती है। रात को दिन और दिन को रात भी गुरु आज्ञा के समक्ष स्वीकार करने में किंचित् हिचकिचाहट का अनुभव नहीं होता। चूँकि उन्हें विश्वास है कि माताजी की हर क्रिया और हर वचन आगम के अनुकूल हैं।

वैसे मोतीचंद जी की निश्चित प्रकृति इनकी विशेष पहचान है। कितना ही कार्यभार सिर पर हो आवश्यकतानुसार उनको निपटाकर मस्तिष्क पर बोझ नहीं डालते, यह प्रकृति भी हर एक व्यक्ति में मिलना कठिन है। वर्तमान में भारतवर्ष में भ्रमण कर रही जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति का आप समय-समय पर कुशलतापूर्वक संचालन करते हैं। आप त्रिलोक शोध संस्थान के मूल रूप से कार्य-कर्ता होने के नाते उसके मन्त्री हैं। जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति प्रवर्तन समिति के महामन्त्री हैं तथा सम्यक्-ज्ञान मासिक पत्रिका के कुशल सम्पादक हैं।

काफी दिनों से ब्र० मोतीचंद जी की अन्तरात्मा दीक्षा के लिए आतुर है जो कि कभी-कभी शब्दों से भी स्पष्ट होता है किन्तु अभी कार्यपूर्णता तक अपने को सन्तोषित करके लगनपूर्वक संस्थान का कार्यभार सँभाल रहे हैं। आपका लगभग ३ वर्षों से नमक और मीठा इन दोनों रसों का तथा सेव, सन्तरा आदि फलों का त्याग चल रहा है। यह इनके जीवन का विशेष रस त्याग का अवसर है। जो व्यक्ति कभी घर के भोजन के अलावा अन्य गृहस्थियो के घर का भोजन नही पसन्द करता था उसका यह त्याग अवश्य अन्तरंग की त्याग भावना को सूचित करता है।

आपको अपने घर सनावद से संघ में आये हुए लगभग १५ वर्ष हो गये। इस मध्य पूज्य माताजी की जन्मस्थली टिकैतनगर कई बार गये और माताजी के पूर्व परिवार को ही अपना परि-वार माना। सन् १९७२ में जब माँ मोहिनी ने दीक्षा का कदम उठाया उस समय संघ में अध्ययन-रत ब्र० मालती और रवीन्द्र ने काफी विरोध किया किन्तु मोतीचंदजी ने काफी उत्साहित होकर उनकी दीक्षा में भाग लिया। उनके हृदय में यह उत्कट भावना थी कि मेरी माँ की माँ यदि दीक्षित हो जाती हैं तो हम सभी को उनकी छत्रछाया प्राप्त होगी और उनके आशीर्वाद से प्रत्येक कार्य में चहुँमुखी प्रगति होगी। रत्नमती माताजी की अस्वस्थता मे भी मोतीचंद जी हँसी खुशी का वाता-वरण उपस्थित करके सबको प्रसन्न कर देते हैं।

ब्र० रवीन्द्र जी व ब्र० मालती को भी घर से संघ में लाने का श्रेय मोतीचंद जी को है। संघस्थ सभी के साथ सगे भाई बहनों जैसा व्यवहार ही परिवार की सदस्यता को स्वीकार कराता है। शायद यह कटु सत्य होगा कि आज भी जैन समाज के ५० प्रतिशत लोग मोतीचंद जी को ज्ञानमती के सगे भाई समझते हैं। अब आप सभी स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे कि मोतीचंद जी माता जी के भाई नहीं शिष्य हैं।

जो भी हो, ब्र० मोतीचंद जी निश्चित प्रकृति के धनी, अनन्य गुरुभक्त तथा सहनशीलता के सच्चे प्रतीक हैं। गुरु की कृपा से ये सदैव अपने पथ पर चलते हुए लक्ष्य की सिद्धि करें यही मंगल कामना है।

○ ○



ब्र० रवीन्द्रकुमार जैन

सन् १९५० ज्येष्ठ महीने में माँ मोहिनी ने अपनी पवित्र कुक्षि से आठवीं सन्तान को पुत्र रूप में जन्म दिया। मैना ने उसका नाम रवीन्द्र रखा। मैना जीजी का सबसे अधिक लाड-प्यार बालक रवीन्द्र को ही मिला। एक मिनट भी वह अपनी जीजी को छोड़कर नहीं रह सकता था यहाँ तक कि रात्रि में उनकी धोती पकड़ कर अँगूठा चूसते हुए ही सोता और उनके उठते ही वह भी जाग जाता। अन्त मे सारी ममता बालक रवीन्द्र पर न्यौछावर करके अपना हृदय पत्थर-सा कठोर बनाकर मैना जैनधर्म की कठिन चर्या को पालन करने के लिए चल पड़ी।

सन् १९५२ में जब रोता-बिलखता रवीन्द्र को छोड़कर मैना ज्ञानमती बनने के लिए निकलीं, रवीन्द्र की उम्र मात्र २ वर्ष की थी। महीनों वह अपनी जीजी के गम में बीमार रहा किन्तु समय का चक्र धीरे-धीरे बड़े-से-बड़े घावों को भी भर देता है। बालक रवीन्द्र अपने और भी भाई बहन, माता-पिता के प्यार में कुछ समय बाद सब कुछ भूल गया। कौन जानता था कि रवीन्द्र भविष्य मे पुनः अपनी जीजी को गुरु के रूप में प्राप्त कर उन्हीं को न्यौछावर हो जायेगा। आने वाला समय ही ऐसे होनहार जीवों के लिए उज्ज्वल भविष्य को प्रगट करता है।

रवीन्द्र अपने तीन भाइयों से छोटे हैं। एक माँ से जन्म लेने वाली सभी सन्तानों में पूर्णरूपेण समानता ही हो जाये ऐसी बात नही है। रवीन्द्र बचपन से ही बहुत अधिक होनहार और समझदार बालक था यही कारण था कि पिताजी का इनके प्रति अत्यधिक स्नेह रहा। ये अपनी स्कूल की पढ़ाई करते हुए भी पिताजी की सेवा का, उनकी दवाइयों का बड़ा ध्यान रखते तथा बड़े भाई कैलाशचंदजी के साथ सर्राफे के व्यापार में भी सहयोग करते। गाँव में उपलब्ध शिक्षा के अनुरूप रवीन्द्र ने दसवीं क्लास तक परीक्षा पास की।



उसके बाद पिताजी की इच्छा न होते हुए भी इन्होंने टिकैतनगर से १६ कि.मी. दूर सुमेरगंज के इण्टर कालेज में दाखिला ले लिया। घर से प्रतिदिन सुबह जाकर शाम ५ बजे वापस आना यही दैनिक चर्या बनी हुई थी। कभी-कभी बस से सफर करते या नौकर इन्हें साईकिल पर ले जाता। पिताजी की बीमारी के कारण बहुत सी अनुपस्थितियाँ भी होतीं, पढ़ने का समय घर में भी कम मिलता, दुकान का काम भी देखना होता किन्तु परीक्षा के समय रात्रि में देर तक अध्ययन करते जिसके फलस्वरूप परीक्षा मे हमेशा फर्स्ट डिवीजन में उत्तीर्णता प्राप्त की। २ वर्ष के इस अध्ययन के पश्चात् रवीन्द्र ने लखनऊ यूनिवर्सिटी में एडमीशन करा लिया। इससे पूर्व आप ७५ प्रतिशत से भी अधिक नम्बरों में पास होते थे अतः वजीफा भी आपको अच्छा मिलता था। यही कारण था कि विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने मे कोई कठिनाई नहीं हुई। पिताजी आपको अपने से इतनी दूर लखनऊ भेजना नहीं चाहते थे लेकिन बड़े भाइयों की इच्छा रही कि रवीन्द्र को ऊँची शिक्षा दिलवाई जाये और रवीन्द्र की स्वयं पढ़ने की प्रबल इच्छा थी अतः आप लखनऊ डालीगंज में अपनी जीजी शांति देवी के यहाँ रहकर युनिवर्सिटी में अध्ययन करने लगे। सप्ताह में एक बार घर आकर पिताजी की सन्तुष्टि करते और उनके स्वास्थ्य तथा माँ के स्वास्थ्य की देखभाल भी करते।

दिन बीत रहे थे। पिताजी की हालत अब कुछ ज्यादा खराब होती जा रही थी। रवीन्द्र बी० ए० फाइनल के स्नातक थे। पिताजी अब रवीन्द्र को अपने से दूर नहीं रहने देते अतः उनकी पढ़ाई में काफी व्यवधान पड़ता। लेकिन रवीन्द्र के लिये यह कोई चिन्ता का विषय नहीं था। वे तो पिताजी की अन्तिम सेवा को अपना सौभाग्य समझ रहे थे। सन् १९६९ "क्रिसमिस डे" बड़े दिन की छुट्टियाँ हर स्कूल कालेज की आवश्यक छुट्टियां होती हैं, इन्हीं दिनों रवीन्द्र घर आये हुए थे। पिताजी की हालत दिनों-दिन सीरियस होती जा रही थी। सभी बेटे बहुयें मन लगाकर सेवा करते, णमोकार मंत्र सुनाते। २५ दिसम्बर को बड़ी सावधानी पूर्वक धर्मश्रवण करते-करते उनकी समाधि हो गई। सबको पिताजी का अभाव शूल सा चुभा। रवीन्द्र भी अपने को असहाय महसूस कर रहे थे। खैर! गम के बादल भी धीरे-धीरे छँटते ही हैं। रवीन्द्र को अब अपने कोर्स की तैयारी भी करनी थी अतः वे लखनऊ आकर अध्ययन में रत रहने लगे। सन् १९७० में आप ग्रेजुएट बन गये। अब भाइयों की इच्छा थी कि रवीन्द्र को कोई अच्छा बड़ा व्यापार कराया जाये। क्योंकि विश्वविद्यालय में पढ़ते हुए भी इनकी सात्त्विकता से परिवार वाले अच्छी तरह परिचित थे।

सन् १९७१ के दिसम्बर (मगशिर) महीने में आपकी छोटी बहन कामिनी का विवाह था। उस समय पूज्य ज्ञानमती माताजी के संघ में अध्ययन कर रही आपकी बहन कुमारी मालती भी घर आई हुई थीं। जब वे पुनः संघ में जाने लगीं तो बड़े भाई कैलाशचंद तथा रवीन्द्र उन्हें भेजने गये, संघ उस समय टोंक (राज०) में था। रवीन्द्र की प्राकृतिक तथा शैक्षणिक प्रतिभा देखकर ज्ञानमती माताजी अपने शिष्य संवर्द्धन का लोभ संवरण न कर सकीं और उन्होंने संबोधन स्वरूप रवीन्द्र के प्रति कुछ धार्मिक शिक्षायें भी दीं। रवीन्द्र के मस्तिष्क में कुछ विचार आये कि क्यों न थोड़े दिन यहाँ रहकर धार्मिक अध्ययन कर लिया जाये। व्यापार तो जीवन भर करना ही है शायद उनकी होनहार उन्हें यह सोचने को बाध्य कर रही थी। भाई कैलाशचंद की आज्ञा लेकर रवीन्द्र कुमार धार्मिक अध्ययन के निमित्त २ महीने के लिये माताजी के पास रह गये। बस यहीं से इनके जीवन का नया मोड़ प्रारम्भ होता है।

धार्मिक अध्ययन के प्रारम्भ में ही पूज्य माताजी ने रवीन्द्र को गोम्मटसार कर्मकाण्ड के स्वाध्याय में बैठने को कहा। जिस शास्त्री परीक्षा का कोर्स सभी विद्यार्थी ३ वर्ष में पूर्ण करते थे अपनी बौद्धिक तीक्ष्णता के आधार पर रवीन्द्रजी ने ३ महीने में अष्टसहस्री, राजवार्तिक, आप्त-परीक्षा, गोम्मटसार, संस्कृत व्याकरण आदि विषयों का अध्ययन और मनन करके शास्त्री तीनों खण्डों की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की तथा आगे भी पूज्य माताजी के सान्निध्य मे स्वाध्याय करते और आचार्य संघ की वैयावृत्ति एवं धार्मिक चर्चाओं में भाग लेते। घर से माँ और भाइयों के पत्र आने लगे—रवीन्द्र शीघ्र घर आ जाओ किन्तु रवीन्द्र अब अनोखे ही आनन्द के हिलोरें ले रहे थे। मात्र अध्ययन करना ही उनका ध्येय बना हुआ था।

सन् १९७२ अजमेर में जब माँ मोहिनी ने अपनी आर्यिका दीक्षा का कदम उठाया उस समय रवीन्द्र ने भी माँ की दीक्षा रोकने मे पूर्ण सम्भव प्रयत्न किये, अन्ततोगत्वा रोकने मे असमर्थ रहे और माँ की दीक्षा के पश्चात् भाइयों के आग्रह से घर चले गये। अभी तक रवीन्द्र ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण नहीं किया था अतः विवाह सम्बन्धों की बातें भी चलती रही। रवीन्द्र कुछ बोलते नही। उन्होंने अपने मन मे क्या विचार संजोये थे ईश्वर जाने। घर के कुलदीपक के सदृश रवीन्द्र को भाई भाभियों का प्यार मिल रहा था। सभी उन्हें शीघ्र ही नवदम्पति के रूप में देखने की आशा लगाये थे। रवीन्द्र का घर के प्रति कुछ उदासीन मूड देखकर भाइयों ने इनका ध्यान व्यापार की ओर आकर्षित करना चाहा किन्तु भला उड़ने वाले पंक्षी को कब तक कोई पिंजड़े में बंद करके रख सकता है। अपनी आशाओं को फलीभूत करने के माध्यम से भाइयों ने अतिशीघ्रता से एक नई दुकान का निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया। एक सप्ताह के अंदर दुकान बन कर तैयार हो गई। एक दुकान के ऊपर दुकान, नई डिजाइन, नये फैशन की शोदार दुमंजिली दुकान आसपास के इलाकों के लिये दर्शनीय बनी हुई थी। प्रतिदिन सैकड़ों लोग इस शो रूम को कौतुकता से देखने आते और उसके उद्घाटन की बेसब्री से प्रतीक्षा करते।

शुभ मुहूर्त में १२ अप्रैल १९७२ 'उपहार साड़ी केन्द्र' के नाम से धूमधाम से दुकान का उद्घाटन हुआ। प्रोप्राइटर रवीन्द्रकुमार जैन के नाम से नया शोरूम अपनी अच्छी तरक्की करने लगा। दुकान ऊपर होने के नाते रवीन्द्र को ग्राहकों के अभाव मे स्वाध्याय का भी आनन्द प्राप्त होता। घर में सब खुश थे कि रवीन्द्र को हमने अपने जाल मे फँसा लिया। अब ये इससे मुक्त नहीं हो सकते लेकिन मुक्ति चाहने वाला व्यक्ति तो असम्भव कर्मो को भी सम्भव बना कर उनसे छूट जाता है। दुकान का उद्घाटन हुए ५–७ दिन ही हुए थे कि ज्ञानमती माताजी अपने आर्यिका संघसहित उस समय ब्यावर (राज०) में थीं। संघस्थ ब्र० श्री मोतीचन्दजी न्यायतीर्थ टिकैतनगर पहुँचे और रवीन्द्र से कहा कि नये व्यापार के लिए माताजी का आशीर्वाद तो ले आओ। रवीन्द्र ने विचार किया लेकिन प्रथम सीजन का समय। भाइयों ने कहा कि दो महीने बाद चले जायेंगे। रवीन्द्र भी ढीले पड़ गये लेकिन चलते-चलते भाई मोतीचंदजी के हार्दिक शब्दों ने उन्हें अन्तःकरण से प्रभावित कर दिया और बिना प्लान के ही वे मोतीचंदजी के साथ पू० माताजी का आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु ब्यावर आ गये। ८–१० दिन पू० माताजी के पास रहकर आप भाई मोतीचंदजी के साथ नागौर (राज०) में विराजमान आ० श्री धर्मसागर महाराज के दर्शन के लिए गये और वहाँ पूज्य आचार्यश्री के समक्ष श्रीफल चढ़ाकर आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया। माताजी की आज्ञा स-भावना से ही आप आचार्यश्री के दर्शनों को गये थे। उस समय नागौर का दृश्य भी एक

अनोखा था। ज्ञानमती माताजी के भाई और स्नातक होने के नाते इस असिधारा व्रत को धारण करने से विशेष गौरव का विषय था। नागौर निवासियों ने ब्रह्मचारी रवीन्द्रकुमारजी के सम्मान में एक विशाल जुलूस का आयोजन किया और पुष्पहारों से उनका स्वागत किया। पूज्य आचार्यश्री तथा समस्त साधुओं का आशीर्वाद प्राप्त करके रवीन्द्र पुनः ब्यावर आ गये। पूज्य माताजी को इस शुभ समाचार से अत्यधिक हार्दिक प्रसन्नता हुई मानों माताजी का मूक प्रयास आज पूर्ण सफल हुआ था। ब्यावर में भी उस समय शानदार आयोजन हुआ और रवीन्द्र के इस सत्प्रयास की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। कुछ दिन ब्यावर में रहकर व्यापार के निमित्त को लेकर पुनः घर आ गये। घर में जब भाइयों को यह समाचार विदित हुआ कि रवीन्द्र अब ब्रह्मचारी बनकर आये हैं तो सबकी सैकड़ों आशायें निराशा में बदल गईं किन्तु सिवाय अश्रु बहाने के अब उनके पास कोई चारा नहीं था। फिर भी सबकी इच्छा रही कि अभी रवीन्द्र घर में रहकर व्यापार सम्भालें अतः कुछ दिन उन्होंने अपनी नई दुकान का भार सम्भाला लेकिन अब उन्हें इन कार्यों से अरुचि होने लगी और आखिर सन् १९७३ में ही सबका मोह छोड़ कर अपने अमूल्य समय का सदुपयोग करने के दृष्टिकोण से पूज्य ज्ञानमती माताजी के पास आ गये। उस समय माताजी अपने संघ सहित दिल्ली में थीं। २५०० वाँ महावीर निर्वाणोत्सव के शुभावसर पर राजधानी दिल्ली में विविध मुनिसंघों के सम्मेलन का भी लाभ उठाया तथा पूज्य माताजी द्वारा रचित भगवान् महावीर संबंधी साहित्य प्रकाशन कार्य भी सँभाला।



श्री रवीन्द्रकुमारजी जैन, आचार्य धर्मसागरजी से ब्रह्मचर्य व्रत लेते हुए—नागौर १९७२

इसके पश्चात् रवीन्द्र का मूड साहित्य प्रकाशन एवं निर्माण की ओर बदला। ज्ञानमती माताजी सन् १९७५ में हस्तिनापुर में पधारीं और जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ। उसमें आपका तन, मन, धन से पूर्ण सहयोग रहा और वर्तमान में भी आप पूज्य माताजी के निर्देशन में प्रसारित चहुँमुखी कार्यकलापों में अपना अमूल्य जीवन्त सहयोग दे रहे हैं।

श्री रवीन्द्र कुमारजी की कार्य प्रणाली नियमित रूप से संस्था की प्रगति में अत्यन्त सहायक है। आप भी अपनी माँ के संस्कारों से प्राकृतिक दृढ़ता के बलिष्ठ युवाप्रहरी हैं। परमपूज्य माँ व गुरु के रूप में माता रत्नमतीजी की सेवा स्वास्थ्य परिचर्या में आप विशेष रुचि रखते हैं। आप युवा जगत् के लिए एक अनुकरणीय आदर्श हैं। भविष्य में भी रवीन्द्रजी निश्चित ही एक विश्व प्रसिद्ध आदर्श प्रस्तुत कर चिरस्मरणीय कार्य कलापों से जन-जन को आकर्षित करेंगे ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।



ब्र० कु० मालती शास्त्री

• •

कु० मालती शास्त्री माँ मोहिनी रूपी रत्न सरिता की लहराती उन्नत तरंगों में से एक भाग्यशालिनी रत्न हैं। कहते हैं कि महापुरुषों की संगति मात्र से ही व्यक्ति महान् बन जाते हैं।

मालती का जन्म सन् १९५२ श्रावण मास की पंचमी तिथि को हुआ। आपका यह विशेष सौभाग्य रहा कि सबसे बड़ी बहन की गोद में खेलने का अन्तिम अधिकार आपको ही मिला। इसके पश्चात् जन्म लेने वाली सन्तानें उस पवित्र गोद की पावनता का लाभ न प्राप्त कर सकीं।

मालती ने जब से होश सम्भाला माँ की धार्मिक चर्या में निरन्तर भाग लेती रहीं। जैसा कि हर आने वाली संतान ने माँ के गृहस्थ कार्य का भार सम्भाला था उसी प्रकार जब आपकी बड़ी बहन कुमुदनी की शादी हो गई तब से माँ की दैनिक चर्या का उत्तर-दायित्व भी आपके ऊपर पड़ा। आपने दायित्व को अच्छे ढंग से सम्भालते हुए हमेशा माँ की सेवा में अपना सौभाग्य समझा। माँ की शुद्ध रसोई का भोजन बनाकर स्कूल जाना आपका दैनिक कार्य था। स्कूल भी पास ही होने से कोई परेशानी नहीं थी। लगभग दो वर्षों तक यह क्रम चला पुनः घर में बहुओं के आ जाने के बाद आप अपने लौकिक तथा धार्मिक अध्ययन में अधिक समय देने लगीं।

गाँव में जितना उपलब्ध शिक्षा का क्रम था उसके अनुसार आपने हाईस्कूल तक शिक्षा प्राप्त कर अपने जीवन पथ को समुन्नत बनाने के सपने देखे ही थे कि जैसा कि प्रायः इस घर की परम्परा थी, १६ वर्ष की कन्या के कन्धों पर नई गृहस्थी का भार डालकर उसे परिणय बंधन में बांध दिया जाता था। मालती के लिए भी वह सुहाग की घड़ी आने ही वाली थी कि भाग्य खिला और आपको अपने माता-पिता के साथ



श्री महावीर जी के विशाल पंचकल्याणक में जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। यह सन् १९६९ के फाल्गुन की बात है। यह तीर्थयात्रा आपके जीवन की अनमोल यात्रा बन गई। माता-पिता और परिवार वालों को मालती के प्रति कभी ऐसी आशंका नहीं थी कि यह भी त्याग की कठिन यात्रा अपने जीवन के लिए स्वीकार करेंगी लेकिन अन्तरंग की प्रतिभा को कौन जान सकता है। पुण्य की घड़ी आई और कांति चमक उठी। महावीर जी में पंचकल्याणक समापन हुआ, यात्रा की बस चलने को तैयार हुई। लोग मालती का इन्तजार कर रहे हैं। उधर मालती पू० ज्ञानमती माताजी के पास उनका वैराग्य का उपदेश ग्रहण कर रही है। माताजी की प्रेरणा से इन्होंने वहाँ पर २ वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया तब उन्होंने माताजी से कहा कि आप परिवार वालों से जीवन भर का ब्रह्मचर्य व्रत ही बताना। माताजी ने मालती के कहे अनुसार उनकी माँ को जाते-जाते दो शब्द कह दिये कि मालती को हमने ब्रह्मचर्य व्रत दिला दिया है। माँ ने सुनी, अनसुनी करके मालती की नादानी का कोई महत्त्व नहीं दिया और बस पर आ गईं। सब लोग घर आ गये।

मालती के लिए शादी के प्रयास जारी थे कि प्रबल होनहार टिकैतनगर मे आ० रत्न श्री देशभूषण महाराज के शिष्य मुनि श्री सुबलसागर जी महाराज का ससंघ चातुर्मास हो गया। यही आपके लिए स्वर्ण अवसर था अपनी मनोभावना फलित करने का। इससे पूर्व शादी की बातचीत के दौरान मालती ने अपना मन्तव्य परिवार वालों के भी समक्ष रख दिया था लेकिन उसको महत्त्व नहीं दिया गया। समस्त दर्शनार्थियों की भाँति आप भी पूज्य मुनिराज के दर्शन करने जाती। महाराज किसी से मालती के बारे में ज्ञान कर चुके थे कि यह विवाह नही करना चाहती है अतः सभी दर्शनार्थियों की अपेक्षा आपको पू० महाराज का सान्निध्य अधिक मात्रा मे प्राप्त होने लगा और अवसर पाकर आपने महाराज जी के समक्ष भी अपनी आन्तरिक इच्छा प्रगट की तथा परिवार वालों के द्वारा जबरदस्ती सम्बन्ध तय करने के बारे में भी कहा।

महाराज ने परिवार वालों को तथा उनकी माँ को बुलाकर बहुत समझाया कि यदि आपकी कन्या मोक्षमार्ग की ओर बढ़ना चाहती है तो उसके मार्ग को आप लोगों को अवरुद्ध नही करना चाहिए। किन्तु सबका एक स्वर निकलता—महाराज! दुनियां हमें क्या कहेगी कि लड़कियों की शादी नहीं कर पाये। सारे जीवन का प्रश्न है। अभी लड़की छोटी है क्या समझे, भावुकता है, आप ज्यादा ध्यान न दें। हम लोग जैसा कर रहे हैं ठीक ही कर रहे हैं। महाराज तटस्थ हो जाते।

एक दिन मालती ने दर्शन करके महाराज से पूछा—"गुरुवर! मुझे क्या करना चाहिए दशहरा की विजयादशमी को मेरी सगाई करने जा रहे हैं। मैं किसी भी हालत मे शादी नहीं कर सकती।"

महाराज ने शांतिपूर्वक समझाते हुए कहा—"परिवार के लोग कभी किसी को खुशी से आज्ञा नहीं देते। व्यक्ति का आत्मबल ही परीक्षा मे सफलता प्राप्त कराता है। यह तुम्हारी परीक्षा का समय है, दृढ़ता से काम लो। सब ठीक हो जायेगा।"

अब मालती के अन्दर कुछ और साहस बँधा, परिवार वालों से टक्कर लेने की हिम्मत हो आई।

देखते ही देखते विजयादशमी आ गई। प्रातः मंदिर जाते समय मालती एक श्रीफल लेकर महाराजश्री के पास पहुँच गई और जाते समय माँ से कह गई कि आज मैं सबके समक्ष ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करूँगी। यह बात सुनकर सब लोग जल्दी-जल्दी मंदिर पहुँच गये। पिताजी अस्वस्थ

रहते थे अतः उन्हें कुछ नहीं बताया गया। गाँव में एक ही मंदिर होने के कारण मंदिर में प्रतिदिन के समान उस दिन भी लोगों की काफी भीड़ थी। महाराज के पास हल्लागुल्ला देखकर भीड़ वहाँ जमा हो गई। मालती ने किसी की परवाह किये बिना महाराज के चरणों में श्रीफल चढ़ाकर आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत की प्रार्थना की। महाराज ने समाज तथा परिवार की स्वीकृति की दृष्टि से सबको सम्बोधित करते हुए कहा—किसी माता-पिता की संतान यदि कुमार्ग की ओर बढ़कर अपना अहित करती है तो उसके माँ बाप लाख प्रयत्नों के बावजूद भी उसे रोकने में समर्थ नहीं हो पाते हैं। आधुनिक युग मे आये दिन ऐसी घटनायें घटती रहती हैं। आप लोग सोचें कि धर्म मार्ग पर चलने वाली संतान को अधिक प्रोत्साहित करना चाहिए न कि उसे रोकने का प्रयास करना चाहिए। तीन महीने के अन्तर्गत मैंने इस लड़की की योग्यता और क्षमता की परख कर ली है। मैं समझता हूँ कि जीवन में सदैव उन्नति के पथ पर इस कन्या के कदम बढ़ते रहेंगे।

महाराज की बात समाप्त होने के पश्चात् कु० मालती ने जो उस समय मात्र १६ वर्ष की थी उठकर समाज के समस्त बुजुर्गों को (पन्नालाल जी, बाबूलालजी आदि) सम्बोधित करते हुए कहा—मैं समझती हूँ कि आज मुझे नये जीवन में प्रवेश करने में आप लोग मुझे सहयोग देंगे तथा आशीर्वाद प्रदान करेंगे। मैं अपने माता-पिता तथा भाइयों से भी यही शुभाशीर्वाद चाहती हूँ कि जिस प्रकार उन्होंने मुझे १६ वर्ष तक प्यार और स्नेह दिया है उसी प्रकार भविष्य में मुझे उन्नति पथ पर अग्रसर होने में प्रेरणा देते रहेंगे। समाज के विशिष्ट व्यक्तियों ने मालती से परीक्षा निमित्त तरह-तरह के प्रश्न भी किये। मालती ने उनका गम्भीरता पूर्वक उत्तर देते हुए कहा—कि "मन तो चंचल होता ही है। किन्तु वह हमारे वश में है न कि हम उसके वश में।"

सभी मालती की दृढ़ता से प्रभावित थे अतः अनिच्छा पूर्वक स्वीकृति देनी ही पड़ी। अब मालती की खुशी का ठिकाना नही था। आज उन्हें बिराट युद्ध में वास्तविक विजय प्राप्त हुई थी। सबने भरे मन से बेटी को उसकी निर्विघ्न जीवन यात्रा के लिए आशीर्वाद प्रदान किये। उस दिन का दृश्य भी एक रोमांच कथा प्रस्तुत कर रहा था कि धन्य हैं ऐसे माँ बाप जिन्होंने ऐसी संतानों को जन्म दिया जिनमें कूट-कूट कर वैराग्य भावनायें भरी हुई हैं।

एक दिन पिताजी मालती को अपने पास बुलाकर प्यार से कहने लगे—बेटी इस घर में तुम्हें किस बात की कमी थी, मैने कितनी आशाओं से तुम सबको लाड प्यार से पाला लेकिन क्या तुम्हें मेरे प्रति जरा भी ममत्व नही है। ओह! मेरी मैना क्या इस घर से गई मानो सभी घर ही खाली हुआ जा रहा है। खैर! जो कुछ भी हुआ तुम मेरी एक बात मान लो कि जब तक मैं जीवित रहूँ कही जाने का नाम मत लेना, हमेशा मेरी आँखों के सामने रहना। बेटी! तुम्हें पता नहीं कि मुझे तुम सबसे कितना मोह है। एक भी सन्तान का अभाव मुझे बेहद बेचैन कर देता है। मुझे आशा है कि तुम मेरी बात जरूर मानोगी।

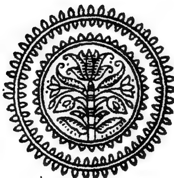
मालती की आंखें सजल हो गई और हाँ में स्वीकृति का सिर हिला दिया। किन्तु पिताजी निरन्तर घट रही घटनाओं से इतने प्रभावित हो चुके थे कि अधिक दिन वे इस सदमे को बर्दाशत न कर सके और २५ दिसम्बर १९६९ को वे समाधि पूर्वक स्वर्गस्थ हो गये। होनहार को कोई नहीं टाल सका।

एक लम्बे अरसे तक यह दुख मालती को भी सताता रहा किन्तु पुनः अपने कर्तव्य का भान कर पूज्य ज्ञानमती माताजी के पास आने की इच्छा प्रगट की। आखिर इनकी इच्छा को कहाँ तक

प्रतिबन्ध लगाया जाता। जब उनका मार्ग ही परिवर्तित हो चुका था तो धार्मिक अध्ययन भी जीवन के लिए आवश्यक था। इसी दृष्टि से आप कुछ ही दिनों बाद सन् १९७० के फरवरी माह में टिकैतनगर से अध्ययन हेतु पूज्य माताजी के पास आ गईं। इस समय का दृश्य भी एक कारुणिक था। सारा समाज अपनी बेटी को भावभीनी विदाई दे रहा था, हर व्यक्ति की आँखों में आँसू नजर आ रहे थे। शायद बेटी को विदा करते समय भी इतनी वेदना नहीं होती होगी जो वेदना उस दृश्य में थी। छोटे बड़े भाई बहन मालती के इस वियोग से अश्रु बहा रहे थे। मालती सबकी शुभ कामना और आशीर्वादों को लिये हुए ज्ञानमती माताजी के संघ में पहुँच गई।

निवाई (राज०) आ० धर्मसागर महाराज का संघ, ज्ञानमती माताजी अपनी शिष्य मंडली सहित यहीं पर थीं। मालती की तीक्ष्ण बुद्धि, गम्भीरता आदि गुणों ने उनकी उन्नति में चार चाँद लगाये। माताजी का स्वास्थ्य कमजोर होने से मालती को अलग से पढ़ाई का समय न मिल पाता अतः जो अध्ययन उस समय साधुवर्गों का, आर्यिकाओं का चलता उसी में मालती को भी भाग लेने के लिए माताजी कहतीं। कर्म का उदय, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, राजवार्तिक, अष्टसहस्री आदि भी आपकी समझ में आने लगी। कुछ ही दिनों में अन्य विद्यार्थियों की भाँति इनका भी शास्त्री कोर्स का फार्म भरवा दिया गया और शास्त्री परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्णता प्राप्त की। इसी प्रकार से धर्मालंकार, विद्यावाचस्पति आदि उपाधि परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्णता प्राप्त की।

विद्यावाचस्पति कु० मालती शास्त्री, धर्मालंकार भविष्य मे भी इससे अधिक प्रभावी व्यक्तित्व एवं कृतित्व से अपने पूर्व साधित लक्ष्य की सिद्धि करती रहें यही मंगल कामना है।





ब्र० कु० माधुरी शास्त्री

पूज्य माँ मोहिनी की सन्तान परम्परा के क्रम मे माधुरी को भी हिस्सा बँटाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। माधुरी का जन्म सन् १९५८ की ज्येष्ठ बदी अमावस्या को हुआ। इन्होंने भी अन्य सभी सन्तानों की भाँति माता पिता का असीम स्नेह प्राप्त किया। इनकी एक विशेष आदत थी कि शाम को जब माँ मन्दिर जाने लगतीं सब बच्चे उनके साथ-साथ जाते। पिताजी मजाक उड़ाते और गुस्सा भी करते कि देवी जी के पीछे सारी फौज चल दी। शायद उन्हें निज का एकाकीपन खटकता था। किन्तु माधुरी माँ के पीछे अवश्य लगी रहती। जब वह मन्दिर से शास्त्र पढ़कर घर वापस आतीं उनके साथ ही वह भी आती। एक दिन पिताजी बोले—माधुरी सदा अपनी माँ के साथ चिपकी ही रहती है ऐसा लगता है कि यही इनकी सारी जिन्दगी सेवा करेगी। ये मधुर शब्द आज भी माधुरी के कानों में गूँजते रहते हैं। उन्हें अपनी माँ से दूर होने तथा उनकी सेवा से विमुख होने का कभी मन नहीं होता। ये ईश्वर से यही प्रार्थना करती रहती हैं कि पिताजी के वे शब्द मेरे जीवन को फलीभूत कर सार्थक बनावें, मैं अन्त तक माँ की हर प्रकार की वैय्यावृत्ति के माध्यम से अपना कर्त्तव्य निर्वाह कर सकूं।

सन् १९६९ आसोज का महीना। जब बड़ी बहन मालती ने ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया था उसके १० दिन पूर्व माधुरी बड़े भाई प्रकाशचंदजी और भाभी के साथ पू० ज्ञानमती माताजी के दर्शन करने जयपुर आई। पिताजी भेजना नही चाहते थे किन्तु इन्होंने अपनी बड़ी बहन जो ज्ञानमती माताजी के रूप में थी उन्हें कभी देखा ही नहीं था और न ही इससे पूर्व कभी आर्यिका, क्षुल्लिकाओं के दर्शन हो किये थे अतः जिद करके दर्शन की इच्छा से भैया के साथ जयपुर आ गई। जयपुर में आ० श्री धर्मसागरजी का



विशाल संघ था। ज्ञानमती माताजी संघ में कई मुनियों को, आर्यिकाओं को तथा अन्य शिष्यों को सारा दिन अध्ययन कराती। सर्वप्रथम दर्शन से इस कन्या को बड़ा आश्चर्य हुआ। मुंडे हुए केश और एक साड़ी में आर्यिकाओं को देख कर कुछ हँसी सी आई। प्रकाश ने इन्हें समझाया कि अच्छे बच्चे हँसते नहीं हैं, ये महान् पदवी धारी आर्यिकायें हैं। उस समय इनकी उम्र मात्र ११ वर्ष थी। प्रकाशचंद ने ज्ञानमती माताजी के पास ले जाकर इन्हें बताया कि ये ही हमारी ज्ञानमती माताजी सबसे बड़ी बहन हैं। माताजी ने भी इसे पहली बार ही देखा था। माधुरी यह नाम भी माताजी से पूछकर ही रखा गया था। एक-दो दिन वहाँ रहने के बाद माताजी ने माधुरी को अपने पास बुलाया और पूछा कि तुम किस क्लास में पढ़ती हो।

ये बोलीं—कक्षा सात में।

पुनः माताजी ने पूछा—कुछ धार्मिक अध्ययन भी किया है।

माधुरी ने कहा—छहढाला की परीक्षा दे चुकी हूँ।

माताजी ने एक दो संस्कृत के श्लोक पढ़वाये और शुद्ध पढ़ देने पर बड़ी खुश हुईं फिर बोलीं—मैं तुम्हें कुछ पढ़ाऊँ तो पढ़ोगी।

बालिका कुछ डरी तो कि पता नहीं मुझे क्या पढ़ायेंगी, समझ में आयेगा या नही। लेकिन स्वीकृति में सिर हिला दिया कि पढ़ूँगी।

माताजी ने गोम्मटसार जीवकाण्ड के दो श्लोक पढ़ाये और दूसरे दिन सुनने को कहा। माधुरी ने पाठ याद किया और सुना दिया। इस प्रकार १२ दिन वहाँ रहकर ३५ श्लोक याद किये।

इसी बीच आसोज सुदी तेरस को घर से पत्र आया कि मालती ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया है। भैया भाभी रोने लगे। वे बोले—मालती अब शादी नही करेगी। अब वह कुछ ही दिनों में घर छोड़कर माताजी के पास ही रहने लग जायेगी। माधुरी बोली—तो क्या हुआ मैं भी वहीं रह जाऊँगी। प्रकाशचंद आश्चर्य से उसका मुँह देखने लगे और बोले—यह कोई हँसी खेल नहीं। तुम जैसे बच्चे अभी क्या समझ सकते हैं। उन लोगों को शायद बहुत अधिक दुःख हो रहा था, रोये जा रहे थे।

कुछ देर बाद पूज्य माताजी ने सबको अपने पास बुलाया।

माताजी बोलीं। माधुरी तुम भी मालती के समान कार्य कर सकती हो। इसमें छोटी या बड़ी उम्र का कोई सवाल नहीं है।

बस फिर क्या था, इनकी आँखों में चमक आ गई। तभी से इन्होंने निश्चित कर लिया कि जीजी के साथ ही रहूँगी चाहे मुझे कैसे भी असम्भव प्रयत्न करने पड़ें। माधुरी ने उसी क्षण माताजी से कहा—मुझे ब्रह्मचर्य व्रत दे दीजिये। मैं भी शादी नहीं करूँगी। माताजी हँसी और कुछ शिक्षायें देकर शांत कर दिया।

माताजी ने उस समय पास में रहने के लिए इसे बहुत घूँटियाँ पिलाईं। माधुरी ने हाँ-हाँ भी कर दिया लेकिन भैया के जाने के समय साथ चल दी।

ये भैया भाभी के साथ घर आ गई। अपनी पढ़ाई करने लगीं। टिकैतनगर में मुनि सुबल-सागरजी ने पूछा—कि माताजी से क्या पढ़कर आई हो तब इसने गोम्मटसार की ३५ गाथायें सुनाईं। महाराज बड़ा कौतुक करते और रोज वे गाथायें सुनते।

सन् १९७२ में इन्होंने हाई स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। परीक्षा के पूर्व अजमेर चातुर्मास के समय दशलक्षण पर्व में माँ एवं भाई कैलाशचंदजी के साथ पुनः इन्हें दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ तब इनकी उम्र १३ वर्ष की थी। मालती माताजी के पास ही रहती थी। वहाँ पर एक दिन माताजी ने पूछा—माधुरी अब तुम्हारा क्या विचार है ? माधुरी ने कहा—शादी तो नहीं करना है। माताजी ने कहा—अब ब्रह्मचर्य व्रत ले सकती हो। और शुभ मुहूर्त में भाद्रपद शुक्ला दशमी (सुगंध दशमी) के दिन पूज्य माताजी ने अजमेर में छोटे धड़े की नशिया के मंदिरजी में श्रीफल लेकर आने को कहा—नियत समय के अनुसार ये पहुँच गईं। माताजी ने कुछ मंत्र पढ़े और नारियल भगवान् के सामने चढ़ाने को कहा। ये अधिक तो समझ नहीं पाईं किन्तु भगवान् के तथा पूज्य माताजी के चरणों में नत होकर इन्होंने इस आशीर्वाद प्राप्ति की कामना की कि भविष्य में मैं सबके संघर्षों को झेलकर निर्विघ्नतया अपने व्रत का पालन करूँ ऐसी शक्ति मेरे अन्दर प्रगट हो।

कुछ समय बीता। वहीं पर माँ ने अपने आत्मबल पर आर्यिका दीक्षा लेने की ठान ली। शुभ मुहूर्त में उनकी दीक्षा हो गई। अब इन्हें भी अपना स्वार्थ सिद्ध करने में अधिक श्रम नहीं करना पड़ा। जबरदस्ती माँ की छत्रछाया में ही कुछ दिन रहने की जिद की। बालहठ तो अच्छे-अच्छे बुजुर्गों को भी परास्त कर देती है। इन्हें भी अपनी हठ पर विजय मिली और संघ में रहने तथा अध्ययन करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। बीच में ये घर भी गईं लेकिन वहाँ स्कूल की परीक्षा पूर्ण कर पुनः संघ में आ गईं। और उसी वर्ष सन् ७२ में ही ३ महीने के अन्तर्गत पू० माताजी के शुभाशीर्वाद एवं कठिन परिश्रम से शास्त्री के तीनों खण्डों की परीक्षायें दीं और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्णता प्राप्त की। तब से लेकर आज तक ये जो कुछ भी हैं माँ की पवित्र कुक्षि के संस्कार और पूज्य ज्ञानमती माताजी का प्रेरणास्पद शुभाशीर्वाद इन्हें आत्मोन्नति में विशेष सहायक हुआ है। इस बीच भाइयों के आग्रह से इन्हें कई बार घर भी जाना पड़ा। विवाह सम्बन्धों की चर्चायें भी सामने आईं किन्तु दृढ़ता के संस्कारों ने उसे ठुकरा कर गुरु की छत्रछाया में रहना स्वीकार किया। दृढ़ प्रतिज्ञ को एक न एक दिन सफलता की उज्ज्वल चाँदनी अवश्य प्राप्त होती है। इन्हें भी अपने संकल्प में विजय प्राप्त हुई।

इन्हें पू० माताजी के पास रहते हुए लगभग ११ वर्ष हो रहे हैं। उनकी अमृतवाणी तथा पू० रत्नमती माताजी की समयोचित शिक्षाओं से ये अपने को धन्य समझती हैं। समय-समय पर आयोजित शिविर और सेमिनारों में भी सक्रिय रूप से भाग लेने के अवसर प्राप्त हुए और हो रहे हैं।

सन् १९८० में फाल्गुन के महीने में टिकैतनगर के विशिष्ट महानुभाव श्री प्रद्युम्नकुमारजी सर्राफ पू० माताजी के दर्शनार्थ देहली पधारे और उन्होंने अपने गाँव में इन्द्रध्वज महामण्डल विधान का आयोजन करने की इच्छा जाहिर की और माताजी से आग्रह किया कि कु० माधुरी को मेरा विधान करवाने के लिये टिकैतनगर भेज दीजिये। माताजी ने स्वीकृति प्रदान की और शुभाशीर्वाद भी।

टिकैतनगर में इन्होंने प्रथम यह महायज्ञ सम्पन्न कराया। गुरु का आशीर्वाद और अनुकम्पा, सारी जैन अजैन जनता में जो नाद गूँजा वह विशाल दृश्य एक दर्शनीय था। भाई प्रद्युम्नकुमारजी

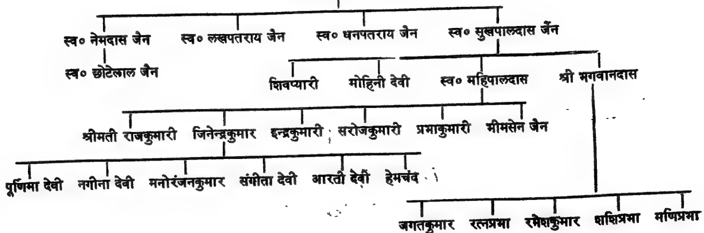
ने खुले दिल से सबका स्वागत किया रथयात्रा जुलूस निकाले और पूरे गाँव का प्रीतिभोज किया तथा माधुरी को ग्राम की बालिका नही प्रत्युत एक विधानाचार्य के रूप में सबने बहुमान दिया। इनके जीवन के वह क्षण भी अविस्मरणीय रहेंगे। इसके दो वर्ष पश्चात् भी उन्हीं के अत्यधिक आग्रह पर माताजी की आज्ञा से टिकैतनगर में दूसरा इन्द्रध्वज विधान इन्होंने ही सन् १९८२ में करवाया जिसमें १५०-२०० इन्द्र इन्द्राणियों ने लाभ लेकर आयोजन को सार्थक किया। पू० माताजी के सान्निध्य में भी इन्होंने कई बार इन्द्रध्वज आदि विधानों को कराने में अपना सौभाग्य समझा है।

सन् १९८१ मगशिर में महमूदाबाद (सीतापुर) जहाँ इनका ननिहाल भी है। बड़े विशाल रूप में इन्द्रध्वज मण्डल विधान वहाँ पर हुआ। कई बार वहाँ के लोगों ने आमंत्रण भेजा और स्वयं हस्तिनापुर लेने भी आये ये वहाँ भी गईं। समाज में अच्छा प्रभाव रहा। वहाँ पर प्राप्त असीम स्नेह और वात्सल्य को भी याद करती हैं।

उधर से ही माधुरी को पू० अभयमती माताजी के सान्निध्य में आयोजित इन्द्रध्वज विधान में लश्कर (ग्वालियर) भी जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह सब गुरु की अनुकम्पा का ही प्रसाद है कि छोटी सी उम्र में भी लोग इनका एक विद्वान् एवं व्रतिक की दृष्टि से मूल्यांकन करते हैं।

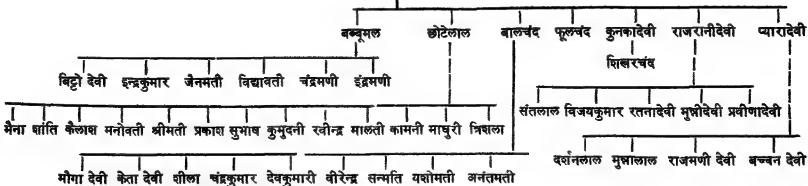
जब ये स्कूल में अध्ययन करती थीं तभी नीतिवाक्यामृत की एक सूक्ति इन्हें बड़ी प्रिय लगती थी "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" इनके मन में सदैव यह भावना उठती रही कि मेरी माँ तो वास्तविक सच्ची जननी है। मैं कब ऐसी योग्यता हासिल कर सकूँगी कि अपनी माँ की जीवनी पर कुछ लिख सकूँ। हालांकि इनका यह भावी प्रयास तो जल में चन्द्रबिम्ब को पकड़ने वाले बालक की तरह अशक्य था क्योंकि भला माँ का जीवन बेटी और वह भी छोटी कैसे अपने शब्दों की सीमा में बाँध सकती है। फिर भी जानें क्यों एक दिन इनकी लेखनी में कुछ साहस सा आया और उसी दिन इन्होंने ५१ पद्यों में माँ मोहिनी से रत्नमतीजी तक का चित्रांकन किया और उन टूटे-फूटे शब्दों को इन्होंने पू० ज्ञानमती माताजी को दिखाया। माताजी इस बालिका की लेखनी का यह प्रथम प्रयास देखकर बहुत प्रसन्न हुईं और शाबाशी भी दी। माताजी के पास ही पं० बाबूलालजी जमादार बैठे हुए थे उन्होंने भी वह कृति देखी और माधुरी के उत्साह को वृद्धिगत करते हुए कहा कि यह 'मातृभक्ति' नाम से पुस्तक छपनी चाहिये। कुछ ही दिनों में इन्होंने पू० ज्ञानमती माताजी की पूजन बनाई और एतद्विषयक ही कुछ भजनों का संकलन किया। यह 'मातृभक्ति' नाम की पुस्तक त्रिलोक शोध संस्थान ने प्रकाशित कराई है। शायद माँ की भक्ति में भी अचिन्त्य शक्ति होती है जिसका फल इन्हे साक्षात् दृष्टिगत हुआ और हो भी रहा है। पू० माताजी का जम्बूद्वीप रचना के निमित्त हस्तिनापुर प्रवास से इन्हें कई प्रकार के प्राकृतिक तथा आध्यात्मिक लाभ भी प्राप्त होते रहते हैं। गत १९८२ में आ० श्री वीरसागर संस्कृत विद्यापीठ के सुयोग्य प्राचार्य श्री गणेशीलालजी साहित्याचार्य के सहयोग से माधुरी ने विद्या-वाचस्पति उपाधि की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। ये अपने उज्ज्वल भविष्य के लिये माँ की छत्रछाया तथा गुरु के वरदहस्त प्राप्ति की सदैव इच्छा रखती हैं। भगवान् इनकी भावना सफल करें।

पितृवंश परम्परा

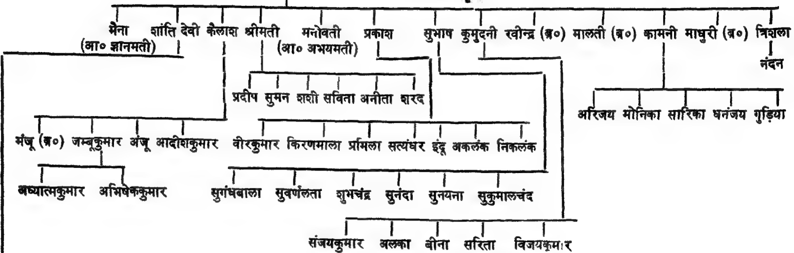


स्वर्गीय पंजाबराय जैन (मित्तल गोत्र)
स्वर्गीय लालताप्रसाद जैन
स्व० नेमदास जैन
स्व० लखपतराय जैन
स्व० धनपतराय जैन
स्व० सुखपालदास जैन
स्व० छोटेलाल जैन
शिवप्यारी
मोहिनी देवी
स्व० महिपालदास
श्री भगवानदास
श्रीमती राजकुमारी
जिनेन्द्रकुमार
इन्द्रकुमारी
सरोजकुमारी
प्रभाकुमारी
भीमसेन जैन
पूर्णिमा देवी
नगीना देवी
मनोरंजनकुमार
संगीता देवी
आरती देवी
हेमचंद
जगतकुमार
रत्नप्रभा
रमेशकुमार
शशिप्रभा
मणिप्रभा

पतिवंश परम्परा

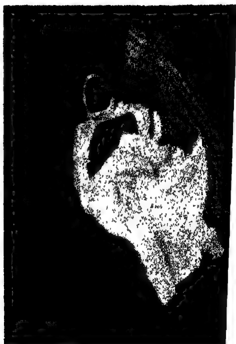


धन्यकुमार अग्रवाल जैन (गोत्र—गोयल)
ध० प० फूलमती जैन
बब्बूमल
छोटेलाल
बालचंद
फूलचंद
कुनकादेवी
राजरानीदेवी
प्यारादेवी
बिट्टो देवी
इन्द्रकुमार
जैनमती
विद्यावती
चंद्रमणी
इंद्रमणी
शिखरचंद
मैना
शांति
कैलाश
मनोवती
श्रीमती
प्रकाश
सुभाष
कुमुदनी
रवीन्द्र
मालती
कामनी
माधुरी
त्रिशला
संतलाल
विजयकुमार
रतनादेवी
मुन्नीदेवी
प्रवीणादेवी
दर्शनलाल
मुन्नालाल
राजमणी देवी
बच्चन देवी
मौगा देवी
केता देवी
शीला
चंद्रकुमार
देवकुमारी
वीरेन्द्र
सन्मति
यशोमती
अनंतमती


श्री छोटेलाल-मोहिनी देवी (रत्नमतीजी)
सन्तान वृक्ष
मैना (आ० ज्ञानमती)
शांति देवी
कैलाश
श्रीमती
मनोवती (आ० अभयमती)
प्रकाश
सुभाष
कुमुदनी
रवीन्द्र (ब्र०)
मालती (ब्र०)
कामनी
माधुरी (ब्र०)
त्रिशला
नंदन
प्रदीप सुमन शशी सविता अनीता शरद
अरिजय मोनिका सारिका धनंजय गुड़िया
मंजू (ब्र०) जम्बूकुमार अंजू आदीशकुमार
वीरकुमार किरणमाला प्रमिला सत्यंधर इंदू अकलंक निकलंक
अध्यात्मकुमार अभिषेककुमार
सुगंधबाला सुवर्णलता शुभचंद्र सुनंदा सुनयना सुकुमालचंद
संजयकुमार अलका बीना सरिता विजयकुमार
सुशील गीता पवन अनुराधा वीरकुमार अजय बब्ली
रूबी गुड्डू मनीष



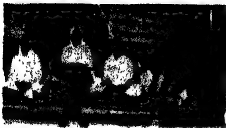
स्वाध्याय करते हुए पूज्य श्री रत्नमती माताजी



रात्रि में विश्राम करते हुए माला हाथ में



हस्तिनापुर में पूज्य माताजी मंदिर जाते हुए



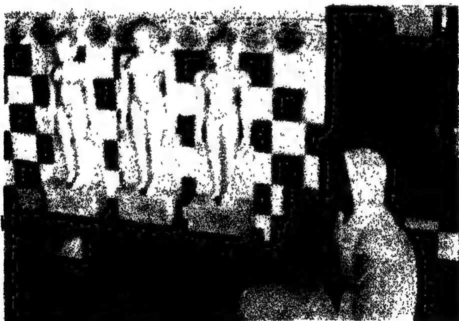
श्री पन्नालाल जी सेठी पूज्यमाताजी के जन्म दिवस पर दीप प्रज्वलित करते हुए ११-१०-८१



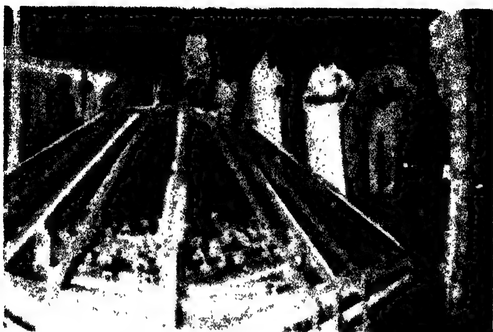
सम्मेद शिखर मे बिहार प्रादेशिक महामहिम राज्यपाल महोदय श्री किदवई जी का ज्ञान-ज्योति के महामंत्री श्री रवीन्द्र कुमार जैन स्वागत करते हुए २७-३-१९८३



जिनेन्द्र भगवान का दर्शन करते हुए रत्नमती माता जी



हस्तिनापुर मे शाति, कुंथु, अरनाथ भगवान का दर्शन
करते हुए पूज्यश्री रत्नमती माताजी



प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरागांधी जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति का प्रवर्तन करती हुई
लालकिला मैदान दिल्ली ४-६-१९८२



दिल्ली में आयोजित जम्बूद्वीप सेमिनार ३१-१०-१९८२ श्री राजीव गांधी जी व श्री जे० के० जैन
संसद सदस्य–उद्घाटन समारोह में



प्रतिक्रमण करते हुए आर्यिकागण



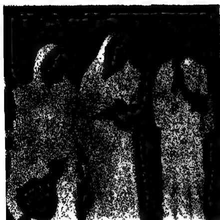
पूज्य माताजी के जन्म दिवस समारोह में भाषण करते हुए श्री प्रकाशचंद जी सेठी
गृहमंत्री भारत सरकार



स्वाध्याय के समय
पूज्य माताजी एवं विद्यापीठ के विद्यार्थीगण



विद्यापीठ के विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए
पूज्य श्रीरत्नमती माता जी



आहार से पूर्व पड़गाहन के लिए
पूज्य श्री रत्नमती माताजी



आहार से पूर्व पाद प्रक्षाल



आहार लेते हुए पूज्य श्री रत्नमती माताजी



गृहत्याग के समय बाराबंकी में कुमारी मैना अपने माता-पिता व छोटे भाई बहनों के साथ (सन् १९५२) बायें से मनोवती (वर्तमान में अभयमतीजी), रवीन्द्र कुमार जैन, मोहनी देवी (वर्तमान में आर्यिका रत्नमतीजी) गोद में कुमारी मालती (२२ दिन की), बीच में बैठी कु० मैना पीछे सबके पिताजी श्री छोटेलाल जी, श्रीमती शांतीदेवी, पीछे खड़ी हुई श्रीमती देवी, उसके आगे कुमुदिनी देवी अन्त में प्रकाश चन्द जैन व सुभाषचन्द जैन।



प्रतापगढ़ (राज०) में संघ दर्शनार्थ आये हुए (अपनी सुपुत्रियां) आर्यिकाद्वय के माता-पिता श्री छोटेलाल जी व मोहिनी देवी। नीचे लाइन में बैठे हैं बड़े सुपुत्र श्री कैलाश चंदजी, श्री रवीन्द्र कुमार जी, जम्बू कुमार, कु० कामनी पुत्रवधू श्रीमती चंदादेवी



[दीक्षा से पूर्व मा मोहिनी (वर्तमान में रत्नमतीजी)



दीक्षा से पूर्व बिदोरी में माँ मोहिनी और उनके साथ हैं दीक्षार्थिनी
कु० विमला तथा ब्र० फूलाबाई अजमेर-१९७१



दीक्षा से पूर्व छोटे धड़े की नसियाजी में दर्शन करती हुई
श्री मोहनी देवी व कु० विमला अजमेर (१९७१)



दीक्षा से पूर्व माँ मोहनी अपनी दीक्षित सुपुत्री आर्यिका ज्ञानमती जी से
दीक्षा के लिए प्रार्थना करती हुई। अजमेर (१९७१)



रत्नमती माताजी ग्राहार ले रही हैं ।



दीक्षा से पूर्व दिगम्बर मुनि को ग्राहार देती हुई
श्री मोहिनी देवी ग्रजमेर (१९७१)



दीक्षा से पूर्व रात्रि में माँ मोहिनी ग्रा० ज्ञानमती, ग्रभयमती समस्त परिवार के साथ ।



महमूदाबाद के जिनालय की मूल वेदी



टिकैतनगर के भव्य जिनालय की मूल वेदी भगवान पार्श्वनाथ का दृश्य



पूज्य श्री रत्नमती माताजी से विचार विमर्श करती हुई
श्री ज्ञानमती माताजी



जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति उद्घाटन समारोह में मंच पर आकर समस्त विशाल जन समुदाय का अभिवादन करती हुई प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी साथ में श्री प्रकाशचन्द जी सेठी गृहमंत्री भारत सरकार एवं रवीन्द्र कुमार जैन, मोतीचंद जैन श्री अमरचन्द जी पहाड़िया, श्री निर्मल कुमार जी सेठी, लाल किला मैदान दिल्ली

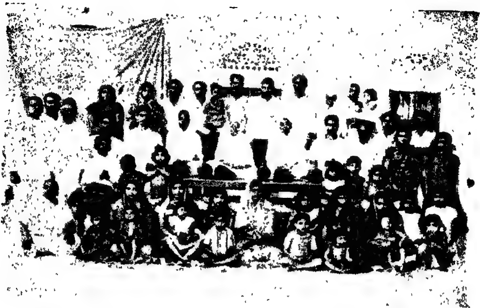
४-६-१९८२



परमपूज्य १०८ आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज श्री मोहिनी देवी के मस्तक पर आर्यिका दीक्षा के संस्कार कर रहे हैं—अजमेर (१९७१)



दीक्षा के बाद प्रथम पारणा के पश्चात् आर्यिका श्री रत्नमती जी आचार्य श्री धर्मसागर जी के समक्ष नमस्कार करते हुए। अजमेर (१९७१)



दीक्षा के बाद आर्यिका श्री रत्नमती जी छोड़े हुए अपने विशाल परिवार के मध्य
समस्त पुत्र, पुत्रियाँ, पुत्र बधुए व उनके नन्हे-मुन्ने बच्चे वगैरहा। अजमेर १९७१



बायें से श्री रत्नमती जी, मध्य में श्री ज्ञानमती माता जी एवं दायें से श्री शिवमती माताजी



जम्बूद्वीप रचना के द्वितीयचरण का शिलान्यास करते हुए साहू श्री श्रेयास प्रसाद जी जैन साहू श्री अशोक कुमार जी जैन एव श्रीमती इन्दू जी जैन ३१-१-८०



जनमंगल कलश का प्रवर्तन करती हुई प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी



टिकैतनगर के भव्य जिनालय के गेट का एक दृश्य



भगवान बाहुबली महामस्ताभिषेक १९८१ के शुभ अवसर पर श्रवण बेलगोला में आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज के सानिध्य मे दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान का अधिवेशन का दृश्य । मंच पर विराजमान संस्थान के प्रतिष्ठित गणमान्य पदाधिकारीगण । २३-२-१९८१



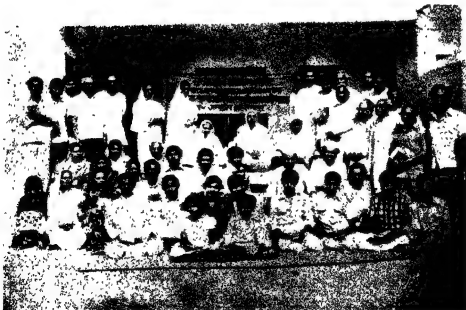
म० भा० दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई के महामंत्री श्री जयचन्दजी लोहाड़े
पूज्य माताजी से आशीर्वाद लेते हुए हस्तिनापुर-१९७८



दिल्ली में आयोजित सन् १९७९ के प्रशिक्षण शिविर के मध्य पूज्य माताजी अक्टूबर १९७९



दिल्ली में आयोजित जम्बूद्वीप सेमिनार १९८२ में विद्वानों
के मध्य पूज्य माताजी



हस्तिनापुर में सम्यग्ज्ञान प्रशिक्षण शिविर जून १९८३ के
समय पूज्य माताजी के साथ विद्वतगण



हस्तिनापुर में निर्माण कार्य का निरीक्षण करती हुई पूज्य श्री रत्नमती माता जी १९७५



हस्तिनापुर मे जम्बूद्वीप स्थल पर विराजमान भगवान महावीर स्वामी की विशाल प्रतिमा के पंचकल्याणक के समय पूज्य माता जी फरवरी १९७५



पचकल्याणक प्रतिष्ठा १९७९ में पूज्य माताजी हस्तिनापुर मे



हस्तिनापुर मे आयोजित प्रशिक्षण शिविर १९७८
पूज्य माताजी सघ सहित एवं प्रशिक्षणार्थी विद्वान् एव श्रेष्ठीगण



दीक्षा से पूर्व दिवस मोहिनी करपात्र में आहार लेती हुई। अजमेर-(१९७१)



आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज से दीक्षा के लिए प्रार्थना करती हुई मा मोहिनी देवी। अजमेर-(१९७१)



दीक्षा के समय मोहिनी देवी के पुत्र व पुत्रवधू श्री सुभाषचन्द जैन, अपनी माँ की दीक्षा के समय दीक्षार्थी के माता-पिता बनकर धार्मिक अनुष्ठान कर रहे हैं। अजमेर-(१९७१)



दीक्षा के समय श्री अभयमती माताजी मोहिनी देवी का केश लोच कर रही है



दीक्षा के समय अपनी गृहस्थ मां मोहिनी देवी का केश लोच करती
हुई ज्ञानमती माता जी अजमेर (१६७१)



दीक्षा से पूर्व बिनोरी का दृश्य अजमेर-(१९७१)



दीक्षा से पूर्व अजमेर (१९७१)



दीक्षा से पूर्व श्री मोहिनी देवी अपने चारो सुपुत्रो के साथ व
दीक्षित दोनो सुपुत्रियाँ



दीक्षा से पूर्व मोहिनी देवी पूजन अनुष्ठान करती हुई अजमेर (१६७१)



संसद सदस्य श्री जे० के० जैन पूज्य माताजी से आशीर्वाद लेते हुए हस्तिनापुर —६ मार्च १९८३



पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती
अभिनन्दन ग्रन्थ

चतुर्थ खण्ड

प्राचीन एवं अर्वाचीन आर्यिकाएँ

प्राचीन आर्यिकायें

आर्यिका ज्ञानमती माताजी

गणिनी आर्यिका ब्राह्मी-सुन्दरी

आदि ब्रह्मा तीर्थंकर ऋषभदेव के दो रानियाँ थीं यशस्वती और सुनन्दा। बडी रानी यशस्वती ने भरत, वृषभसेन आदि सौ पुत्रों को जन्म दिया, पश्चात् एक कन्या को जन्म दिया जिसका नाम ब्राह्मी रक्खा गया। सुनन्दा के कामदेव बाहुबलि पुत्र हुए और एक कन्या हुई जिसका नाम सुन्दरी रक्खा गया। ये दोनों कन्यायें अपनी बालक्रीड़ा से सभी के मन को हरण करती रहती थीं। क्रम-क्रम से इन कन्याओं ने किशोरावस्था को प्राप्त कर लिया।

एक समय तीर्थंकर ऋषभदेव सिंहासन पर सुख से बैठे हुए थे। ये दोनों पुत्रियाँ मांगलिक वेषभूषा में पिता के निकट पहुँची। विनय के साथ उन्हें प्रणाम किया। तब तीर्थंकर देव ने शुभ आशीर्वाद देकर उन दोनों पुत्रियों को उठाकर प्रेम से अपनी गोद मे बिठा लिया। उनके मस्तक पर हाथ फेरा, हँसकर बोले—

"आओ बेटी ! तुम समझती होंगी कि हम आज देवों के साथ अमरवन को जायेंगी परन्तु अब तुम नही जा सकती क्योंकि देवलोग पहले ही चले गये।" इत्यादि प्रकार से कुछ क्षण हास्य विनोद के बाद प्रभु ने कहा—

"पुत्रियो ! तुम दोनों शील और विनय आदि गुणों के कारण इस छोटी सी अवस्था और यह अनुपम शील यदि विद्या से विभूषित किया जाय तो तुम दोनों का यह जन्म सफल हो सकता है। इसलिए हे पुत्रियो ! तुम विद्या ग्रहण करने में प्रयत्न करो। क्योंकि तुम्हारे विद्या ग्रहण करने का यही काल है।"

तीर्थंकर ऋषभदेव ने ऐसा कहकर तथा बार-बार उन्हें आशीर्वाद देकर अपने चित्त मे स्थित श्रुतदेवता को आदरपूर्वक सुवर्ण के विस्तृत पट्टे पर स्थापित किया पुनः 'सिद्धं नमः' मंगलाचरण करके अपनी दाहिनी तरफ बैठी हुई ब्राह्मी को दाहिने हाथ से "अ आ इ ई" आदि वर्णमाला लिख कर लिपि लिखने का उपदेश दिया और बाई तरफ बैठी सुन्दरी पुत्री को बाये हाथ से १, २, ३ आदि अंक लिखकर गणित विद्या को सिखाया। इस प्रकार ब्राह्मी पुत्री ने आदि ब्रह्मा पिता के मुख से स्वर व्यंजन युक्त विद्या सीखी इसी कारण आज वर्णमाला लिपि को ब्राह्मी लिपि कहते हैं। तथा सुन्दरी ने गणित शास्त्र को अच्छी तरह मे सीखा था। वाङ्मय के बिना न तो कोई शास्त्र है और न कोई कला है। व्याकरण शास्त्र, छन्द शास्त्र और अलंकार शास्त्र इन तीनों के समूह को वाङ्मय कहते हैं।

उन दोनों पुत्रियों ने सरस्वती देवी के समान अपने पिता के मुख से संशय, विपर्यय आदि दोषों से रहित शब्द तथा अर्थरूप समस्त वाङ्मय का अध्ययन किया था। उस समय स्वयंभू ऋषभदेव का बनाया हुआ एक बड़ा भारी व्याकरण शास्त्र प्रसिद्ध हुआ था। उसमें सौ से भी अधिक अध्याय थे और वह समुद्र के समान अत्यन्त गम्भीर था। प्रभु ने अनेक अध्याओं में छन्दशास्त्र का उपदेश दिया था और उसके उक्ता, अत्युक्ता आदि छब्बीस भेद भी दिखलाये थे। अनेक विद्याओं के अधिपति भगवान् ने प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, एकद्वित्रिलघुक्रिया, संख्या और अध्वयोग, छन्दशास्त्र

के इन छह् प्रत्ययों का भी निरूपण किया था। प्रभु ने अलंकार संग्रह ग्रन्थ में उपमा, रूपक, यमक आदि अलंकारों का कथन किया था। उनके शब्दालंकार और अर्थालंकार रूप दो भागों का विस्तार के साथ वर्णन और माधुर्य ओज आदि दश प्राण (गुणों) का भी निरूपण किया था।

अनन्तर ब्राह्मी और सुन्दरी दोनों पुत्रियों की पदज्ञान-व्याकरणज्ञान रूपी दीपिका से प्रकाशित हुई समस्त विद्यायें और कलायें अपने आप ही परिपक्व अवस्था को प्राप्त हो गई थीं। इस प्रकार गुरु अथवा पिता के अनुग्रह से समस्त विद्याओं को प्राप्त कर वे दोनों इतनी अधिक ज्ञानवती हो गई थी कि साक्षात् सरस्वती भी उनमें अवतार ले सकती थी।[1]

जगद्‌गुरु ऋषभदेव ने इसी प्रकार अपने एक सौ पुत्रों को भी सर्वविद्या और कलाओं में पारंगत कर दिया था। इसके बाद आदिप्रभु ऋषभदेव असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन ६ कर्मो द्वारा प्रजा को आजीविका के उपाय बतलाकर प्रजापति, ब्रह्मा, विधाता, स्रष्टा आदि नामों से पुकारे गये थे।

एक समय नीलांजना के नृत्य को देखते हुए प्रभु वैराग्य को प्राप्त हो गया और स्वयंबुद्ध हुए प्रभु लौकांतिक देवों के द्वारा स्तुति को प्राप्त करके स्वयं "ॐ नमः सिद्धेभ्य." मंत्रोच्चारण पूर्वक मुनि बन गये। छह महीने का योग धारण कर लिया। उसके बाद जब चर्या के लिये निकले तब किसी को भी आहार विधि का ज्ञान न होने से प्रभु को छह महीने तक आहार नहीं मिला। अनन्तर हस्तिनापुर मे राजा श्रेयांसकुमार को जातिस्मरण द्वारा आहार विधि का ज्ञान हो जाने से यहाँ उन्होंने वशाख सुदी तीज के दिन प्रभु को इक्षुरस का आहार दिया था। दीक्षा के अनन्तर एक हजार वर्ष तक तपश्चरण करने के बाद तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव को पुरिमतालपुर के बाहर उद्यान मे केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। उसी समय देवों ने समवसरण की रचना कर दी।

पुरिमताल नगर के स्वामी वृषभसेन[2] समवसरण मे प्रभु का दर्शन करके दैगम्बरी दीक्षा लेकर भ० के प्रथम गणधर हो गये। उसी क्षण सात ऋद्धियों से विभूषित और मनःपर्ययज्ञान से सहित हो गये। उसी समय सोमप्रभ, श्रेयांस आदि राजा भी दीक्षा लेकर भगवान् के गणधर हुए थे।

ब्राह्मी को दीक्षा

भरत की छोटी बहन ब्राह्मी भी गुरुदेव की कृपा से आर्यिका दीक्षा लेकर वहाँ समवसरण में सभी आर्यिकाओ मे प्रधान गणिनी[3]-स्वामिनी हो गई। बाहुबली की बहन सुन्दरी ने भी उसी समय आर्यिका दीक्षा धारण कर ली। हरिवंशपुराण मे सुन्दरी आर्यिका[4] को ब्राह्मी के साथ गणिनी रूप से माना है। उस काल मे अनेक राजाओं ने तथा राजकन्याओं ने दीक्षा ली थी। भगवान् के साथ जो चार हजार राजा दीक्षित हो भ्रष्ट हो गये थे उनमें मरीचिकुमार को छोड़कर शेष सभी ने समवसरण मे दीक्षा ले ली थी।

उसी काल मे भरत को एक साथ तीन समाचार मिले—पिता को केवलज्ञान की प्राप्ति, आयुधशाला में चक्ररत्न की उत्पत्ति और महल में पुत्ररत्न की प्राप्ति। भरत ने पहले समवसरण में

---

१. आदिपुराण, पर्व १६, पृ० ३५६।
२. ये भगवान् ऋषभदेव के द्वितीय पुत्र थे।
३ आदिपुराण पर्व २४, पृ० ५०१।
४. ब्राह्मी च सुंदरीं श्रित्वा प्रवव्राज सुलोचना। —हरिवंशपुराण, सर्ग १२, पृ० २१२।

पहुँचकर भगवान् ऋषभदेव की पूजा की अनंतर चक्ररत्न की पूजा कर पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। बाद में दिग्विजय के लिए प्रस्थान कर दिया।

भगवान् ऋषभदेव के समवसरण में चौरासी गणधर थे। चौरासी हजार मुनि, ब्राह्मी आदि तीन लाख, पचास हजार आर्यिकायें थीं। दृढ़व्रत आदि तीन लाख श्रावक और सुव्रता आदि पाँच लाख श्राविकायें थीं।

इस प्रकार भगवान् के समवसरण में जितनी भी आर्यिकायें थीं, सबने गणिनी ब्राह्मी आर्यिका से ही दीक्षा ली थी। जैसा कि सुलोचना के बारे में भी आया है। जयकुमार के दीक्षा लेने के बाद सुलोचना[1] ने भी ब्राह्मी आर्यिका से दीक्षा ले ली।

आज जो किंवदन्ती चली आ रही है कि ब्राह्मी सुन्दरी ने पिता से पूछा—"पिताजी ! इस जगत् में आपसे बड़ा भी कोई है क्या।" तब पिता ऋषभदेव ने कहा—हाँ बेटी, जिसके साथ हम तुम्हारा विवाह करेंगे उसे हमें नमस्कार करना पड़ेगा, उसके पैर छूना पड़ेगा। इतना सुनकर दोनों पुत्रियों ने यह निर्णय किया कि हमें ब्याह ही नहीं कराना है, हम ब्रह्मचर्यव्रत ले लेंगी।

यह किंवदन्ती बिल्कुल गलत है। किसी भी दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थ में यह बात नहीं आई है। तीर्थङ्करों का स्वयं का विवाह होता है तो भी वे अपने स्वसुर को नमस्कार नहीं करते यहाँ तक कि वे अपने माता-पिता को भी नमस्कार नहीं करते थे। तीर्थंकर शांतिनाथ चक्रवर्ती थे। उनके ९६००० रानियों में पुत्रियाँ भी होंगी, सभी कुमारिकायें ही नहीं रहीं होंगी। विवाह के बाद जमाई के चरण छूना जरूरी नहीं है। भरत चक्रवर्ती आदि सम्राट् भी अपनी कन्या को विवाहते थे किन्तु वे जमाई आदि किसी के पैर नहीं छूते थे प्रत्युत् सब लोग उन्हीं के चरण छूते थे। अतः यह किंवदन्ती गलत है। ब्राह्मी सुन्दरी ने स्वयं विवाह नहीं किया था।

दूसरी किंवदन्ती यह है कि जब बाहुबली ध्यान में खड़े थे उन्हें केवलज्ञान नहीं हुआ तब ब्राह्मी सुन्दरी ने जाकर सम्बोधन किया—भैया गज से उतरो। यह भी गलत है क्योंकि भगवान् को केवलज्ञान होते ही ब्राह्मी सुन्दरी ने दीक्षा ले ली थी। तभी भरत को चक्ररत्न की प्राप्ति हुई थी। बाद मे भरत ने ६० हजार वर्ष तक दिग्विजय किया है। इसके बाद भरत बाहुबली युद्ध होकर बाहुबली ने दीक्षा ली है। वहाँ भी भरत के नमस्कार करते ही बाहुबली को केवलज्ञान प्रगट हुआ ऐसी बात है, न कि ब्राह्मी सुन्दरी के सम्बोधन की। अतः प्रत्येक व्यक्ति को आदिपुराण का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।



आर्यिका सुलोचना

इसी भरत क्षेत्र में काशी नाम का देश है। उसमें एक वाराणसी नाम की नगरी है। तीर्थंकर ऋषभदेव के द्वारा राज्य को प्राप्त राजा अकम्पन उस नगरी के स्वामी थे। इनके सुप्रभा नाम की देवी थी। नाथवंश के अग्रणी राजा अकम्पन और रानी सुप्रभा ने हेमांगद आदि हजार पुत्रों को जन्म दिया तथा सुलोचना लक्ष्मीमती इन दो पुत्रियों को जन्म दिया। इन पुत्र-पुत्रियों से घिरे हुए

१. आदिपुराण, पर्व ४७।

राजा अकम्पन गृहस्थाश्रम के सर्वोत्तम सुखों का अनुभव कर रहे थे। धीरे-धीरे पुत्री सुलोचना ने किशोरावस्था को प्राप्त कर सर्व विद्या और कलाओं में निपुणता प्राप्त कर ली।

उस सुलोचना ने जिनेन्द्रदेव की अनेक प्रकार की रत्नमयी बहुत सी प्रतिमायें बनवाई थीं और उनके सब उपकरण भी सुवर्ण के बनवाये थे। उनकी प्रतिष्ठा कराके महाभिषेक किया था। अनंतर वह प्रतिदिन उन प्रतिमाओं की महापूजा करती। अर्थपूर्ण स्तुतियों से अर्हंतदेव की भक्ति पूर्वक स्तुति करती, पात्रदान देती, महामुनियों का बार-बार चिंतवन करते हुए सम्यग्दर्शन की शुद्धता प्राप्त कर ली थी। एक बार फाल्गुन की आष्टाह्निका में उसने विधिवत् प्रतिमाओं का अभिषेक, पूजन करके आष्टाह्निकी महापूजा की और उपवास किया था। पूजा के बाद पूजा के शेषाक्षत देने के लिए वह सिंहासन पर स्थित पिता अकम्पन के पास गई। राजा ने भी उठकर और हाथ जोड़कर उसके दिये हुए शेषाक्षत लेकर अपने मस्तक पर रखे तथा कन्या से बोले—

"हे पुत्रि ! तू उपवास से खिन्न हो रही है, अब घर जा। यह तेरे पारणा का समय है।"

स्वयंवर विधि

पुनः उस पुत्री को युवावस्था मे देखकर राजा ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर उसके विवाह के लिए मंत्रणा की। अनेक परामर्श के बाद उसमे से एक सुमति नाम के मन्त्री ने कहा—

"राजन्, प्राचीन पुराणों मे स्वयंवर की उत्तम विधि सुनी जाती है। यदि इस समय सर्व-प्रथम अकम्पन महाराज के द्वारा उस विधि को प्रारम्भ किया जाय तो भगवान् ऋषभदेव और उनके पुत्र भरत के समान इनको प्रसिद्धि भी युग के अन्त तक हो जाय। उस स्वयंवर में यह कन्या जिसे भी स्वीकार करेगी वही इसका स्वामी होगा। ऐसा करने से किसी भी राजा से अपने विरोध की बात नहीं होगी।"

यह बात राजा को अच्छी लगी। तब उन्होंने घर आकर रानी सुप्रभा से, बड़े पुत्र हेमांगद से, कुल परम्परा से आगत वृद्ध पुरुषों से तथा अपने सगोत्री बन्धुओं से भी कही। सबसे पूर्वापर विचार किया। जब सभी ने इसकी सराहना की तब राजा ने सुलोचना के स्वयंवर की घोषणा कर दी। एक विचित्रांगद नाम का देव जो कि पूर्वभव मे राजा अकंपन का भाई था वह सुलोचना के प्रेम से वहाँ आ गया और राजा से स्वीकृति लेकर उसने बहुत ही सुन्दर स्वयंवर मण्डप तैयार किया।

उस समय सभी ने यह कहा था कि—

"इस संसार में कन्यारत्न के सिवाय और कोई उत्तम रत्न नही है। समुद्र अपने रत्नाकर-पने का खोटा अहंकार व्यर्थ ही धारण करता है क्योंकि जिनके यह कन्यारूपी रत्न है उन्ही राजा अकंपन और रानी सुप्रभा के यह रत्नाकरपना सुशोभित होता है।"

राजा अकंपन ने स्वयं जिनेन्द्रदेव की महापूजा की और दीन, अनाथजनों को दान दिया। रानी सुप्रभा ने सुलोचना को मंगलस्नान कराकर नित्य मनोहर चैत्यालय मे ले जाकर अर्हन्तदेव की महापूजा कराई। अनंतर देवनिर्मित रथ मे बैठकर कन्या स्वयंवर मण्डप में आ गई। उसे कंचुकी ने सभी राजाओं का परिचय कराया। अन्त में सुलोचना ने हस्तिनापुर के राजा जयकुमार के गले में वरमाला पहना दी।

इसी भरत क्षेत्र कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नगरी है। ऋषभदेव को आहार देने वाले राजा सोमप्रभ और उनके भाई श्रेयांसकुमार इसी पृथ्वी तल पर प्रसिद्ध ही हैं। सोमप्रभ की रानी लक्ष्मीमती के बड़े पुत्र का नाम जयकुमार था। इनका परिचय इतने से ही समझ लीजिये कि ये जयकुमार चक्रवर्ती भरत के सेनापति थे। चक्रवर्ती के दिग्विजय की सफलता में इनका बहुत बड़ा योगदान रहा है। एक सेनापति रत्न नाम से चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में एक रत्न थे।

सम्राट् भरत के बड़े पुत्र अर्ककीर्ति भी स्वयंवर मण्डप में थे। उनके दुर्मषण नाम के एक सेवक ने आकर अर्ककीर्ति को यद्वा-तद्वा समझाकर युद्ध के लिए भड़का दिया। राजा अकंपन ने बहुत कुछ उपाय से शांति चाही किन्तु वहाँ घोर युद्ध छिड़ गया। तब सुलोचना ने मन्दिर में शांतिपूजा का अनुष्ठान कर कायोत्सर्ग धारण कर लिया था, भयंकर युद्ध मे जयकुमार ने अर्ककीर्ति को पकड़ लिया और महाराज अर्ककीर्ति को समझाने में नियुक्त कर उन्हें उनके स्थान पर भेज दिया और स्वयं अपने परिकर सहित भगवान् के मन्दिर मे जाकर बहुत बड़ी शांतिपूजा की। सुलोचना ने युद्ध की समाप्ति तक चतुराहार त्याग कर कायोत्सर्ग धारण कर लिया था। पिता ने उसकी प्रशंसा कर उसका कायोत्सर्ग समाप्त कराया। अनन्तर बड़े ही उत्सव के साथ इनका विवाह सम्पन्न हुआ।

पुनः राजा अकंपन ने अर्ककीर्ति से क्षमायाचना कर अपनी छोटी पुत्री लक्ष्मीमती उसके लिये समर्पित कर दी। बाद में जयकुमार और अर्ककीर्ति का भी आपस में प्रेम करा दिया।

उपसर्ग से रक्षा

कुछ दिनों बाद जयकुमार सुलोचना के साथ हस्तिनापुर आ रहे थे। मार्ग मे गंगा नदी के किनारे डेरे में हेमांगद और सुलोचना आदि को ठहराकर स्वयं अयोध्या जाकर भरत को प्रणाम किया। भरत ने भी समयोचित वार्तालाप से जयकुमार को प्रसन्न कर अनेक वस्त्र, आभूषणों से उसका सन्मान कर विदा किया। जयकुमार हाथी पर बैठकर गंगा नदी में तैरते हुए वापस अपने डेरे में आ रहे थे कि जहाँ पर सरयू नदी गंगा से मिलती है वहाँ पर एक मगर ने जयकुमार के हाथी का पैर पकड़ लिया और उसे डुबोने लगा। इधर तट पर खड़े हुए हेमांगद आदि भाइयों ने तथा सुलोचना ने जयकुमार पर संकट आया देखकर णमोकार मन्त्र का स्मरण किया।

सुलोचना उपसर्ग समाप्ति तक चतुराहार त्याग कर अपनी सखियों के साथ णमोकार मन्त्र का जप करते हुए गंगा नदी में घुसने लगी। इतने में ही गंगा देवी[1] का आसन कंपायमान होते ही वह वहाँ आ गई और उपसर्ग दूर कर जयकुमार के हाथी को किनारे तट पर ले आई। वह नदी के तट पर उसी क्षण एक भवन बनाकर सुलोचना को सिंहासन पर बैठा कर उसकी पूजा करके बोली—

"हे सति ! सुलोचने ! आपके नमस्कार मन्त्र के प्रसाद से ही मैं गंगा की अधिष्ठात्री देवी हुई हूँ। मुझे आप विंध्यश्री जानो……।"

इस बात को सुनकर जयकुमार ने इसका रहस्य पूछा। तब सुलोचना ने बताया—

"विंध्यपुरी नगरी में विंध्यकेतु राजा की प्रियंगुश्री रानी से विंध्यश्री नाम की एक पुत्री हुई

१. गंगा प्रपात कुंड में एक गंगाकूट है। उसपर गंगा देवी का भवन है। उसमें ये देवी रहती है।

थी। उस राजा का मुझ पर प्रेम विशेष होने से उसने अपनी पुत्री मेरे पास छोड़ दी। यह मेरे पास सर्व गुणों को सीखते हुए मेरी सहेली थी। यह एक दिन उपवन में क्रीड़ा कर रही थी कि उसे एक सर्प ने काट खाया। तब मैंने इसे णमोकार मन्त्र सुनाते हुए सल्लेखना ग्रहण करा दी। जिसके प्रभाव से यह गंगादेवी हो गई है और मेरा प्रत्युपकार करने के लिये आई है।"

अनन्तर गंगादेवी इन दोनों का सम्मान कर अपने स्थान पर चली गई। जयकुमार रानी सुलोचना और अनेक परिकर सहित अपनी हस्तिनापुर नगरी में आ गये। माता-पिता पुत्र पुत्रवधू से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। जयकुमार ने अनेक रानियों के मध्य सुलोचना को पट्ट बाँधकर पट्टरानी बनाया। बहुत काल तक सुखपूर्वक राज्य सुखों का अनुभव करते हुए जयकुमार और सुलोचना का काल क्षण के समान व्यतीत हो गया।

एक समय जयकुमार सुलोचना के साथ कैलासपर्वत पर घूम रहे थे। उस समय स्वर्ग में इन्द्र अपनी सभा मे इन दोनों के शील की प्रशंसा कर रहा था। यह सुनकर ईर्ष्यावश एक रविप्रभ देव ने जयकुमार के शील की परीक्षा के लिये एक कांचना नाम की देव को भेज दिया। इधर सुलोचना जयकुमार से कुछ दूर हटकर फूल तोड़ रही थी। कांचना देवी ने विद्याधरी का रूप रखकर अनेक प्रकार से जयकुमार को रिझाना चाहा किन्तु जयकुमार ने कहा—मुझे परस्त्री का त्याग है इसलिये तू मेरी बहन के समान है। तब देवी राक्षसी वेष बनाकर जयकुमार को उठाकर भागने लगी। उधर सुलोचना ने दूर से देखते ही उस राक्षसी को जोरों से फटकारा जिससे वह देवी उसके शील के प्रभाव से डर कर अदृश्य हो गई। अहो! शीलवती स्त्री से जब देवता भी डर जाते हैं तब औरों की तो बात ही क्या है! कांचना देवी ने उन दोनों के शील को स्वयं देखकर जाकर अपने स्वामी से बताया और बहुत प्रशंसा की।

जयकुमार, सुलोचना की दीक्षा

एक बार जयकुमार अपने अनेक भाइयों और रानियों के साथ भगवान् ऋषभदेव के समवसरण मे पहुँचे। वहाँ दर्शन, पूजन के बाद उपदेश सुना। अनन्तर विरक्त अपने अनेक भाइयों और चक्रवर्ती के अनेक पुत्रों के साथ जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। तत्क्षण ही जयकुमार को मनःपर्ययज्ञान और ऋद्धियाँ प्रगट हो गईं और वे भगवान् के इकहत्तरवें (७१ वे) गणधर हो गये।

पति के वियोग से दुःख को प्राप्त हुई सुलोचना को चक्रवर्ती की पट्टरानी सुभद्रा ने समझाया तब उसने भी विरक्त हो ब्राह्मी आर्यिका के पास आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली[१]। दीक्षा लेकर के सुलोचना ने तपश्चरण के साथ ही ज्ञान की भी विशेष आराधना की जिससे उन्हे ग्यारह अंगों का ज्ञान हो गया।

हरिवंशपुराण में कहा है—

"दुष्ट संसार के स्वभाव को जानने वाली सुलोचना ने अपनी सपत्नियों के साथ सफेद साड़ी पहनकर ब्राह्मी और सुन्दरी के पास जाकर आर्यिका दीक्षा ले ली। मेघेश्वर जयकुमार शीघ्र ही द्वादशांग के पाठी होकर भगवान् के गणधर हो गये और आर्यिका सुलोचना भी ग्यारह अंगों की धारक हो गईं।[२]

१, आदिपुराण पर्व ४७, पृ० ५०३। २. हरिवंशपुराण सर्ग १२, पृ० २१३।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्यिकायें भी ग्यारह अंग तक पढ़ सकती हैं। तथा भगवान् के समवसरण में ब्राह्मी गणिनी के समान ही सुन्दरी भी अपनी बहन के साथ गणिनी स्थान को प्राप्त थी।

इस प्रकार सुलोचना ने जिनेन्द्रदेव की भक्ति और शील में अपना नाम अमर किया वैसे ही आर्यिका बनकर ग्यारह अंगों को पढ़कर आर्यिकाओं में भी अपना नाम उज्ज्वल किया है। संकटहरण विनती में भक्त लोग पढ़ा करते हैं—

हाथी पे चढ़ी जाती थी सुलोचना सती।[1]
गंगा में ग्राह ने गही गजराज की गती।
उस वक्त में पुकार किया था तुम्हें सती।
भय टार के उबार लिया हे कृपापती॥



शीलशिरोमणि आर्यिका सीता

सीता का जन्म

मिथिलापुरी में राजा जनक राज्य करते थे। उनकी रानी विदेहा पातिव्रत्य आदि गुणों से परिपूर्ण परमसुन्दरी थी। एक समय वह गर्भवती हुई। उसके नव महीने बाद उसने पुत्र और पुत्री ऐसे युगल संतान को जन्म दिया। पुत्र के जन्म लेते ही उसके पूर्वभव का वैरी महाकाल नामक असुरकुमार देव ने उस बालक का अपहरण कर लिया। वह उसे मारना चाहता था किन्तु उसके हृदय मे कुछ दया आ गई जिससे उसने उस बालक के कान में कुण्डल पहनाकर उसे पर्णलघ्वी विद्या के बल से आकाश से छोड़ दिया। इधर चन्द्रगति विद्याधर रात्रि के समय अपने उद्यान में स्थित था सो उसने आकाश से गिरते हुए एक बालक को देखा और बीच में अधर ही झेल लिया। उस बालक को ले जाकर अपनी रानी पुष्पवती को दे दिया। रानी के कोई पुत्र नहीं था अतः वह इस पुत्र को पाकर बहुत ही प्रसन्न हुई। वहाँ पर उसका जन्म महोत्सव मनाया गया।

इधर रानी विदेहा पुत्र के अपहरण से बहुत ही दुःखी हुई किन्तु राजा जनक आदि परिजनों के समझाने पर शांत हो पुत्री का लालन पालन करने लगी। इस कन्या का नाम सीता रक्खा गया। धीरे-धीरे किशोरावस्था को प्राप्त हुई। सीता जनक के अंतःपुर में सात सौ कन्याओं के मध्य में स्थित हो अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं से सबके मन को प्रसन्न किया करती थी। क्रम से यह सीता विवाह के योग्य हो गई।

सीता स्वयंवर

एक समय राजा जनक की राजधानी पर म्लेच्छों ने हमला कर दिया। सहायता के लिये राजा ने अपने मित्र अयोध्या के राजा दशरथ को सूचना भेजी। राजा दशरथ के पुत्र राम और

१. कहीं पर जयकुमार के साथ सुलोचना भी हाथी पर बैठी थी ऐसा वर्णन होगा अभी स्तुति में यह पाठ आया है। उपर्युक्त कथा आदिपुराण के आधार से है।

लक्ष्मण मिथिलापुरी आ गये और शत्रुसेना को नष्ट भ्रष्ट कर राजा जनक और उनके भाई कनक दोनों का राज्य निष्कंटक कर दिया। इस उपकार से प्रसन्न होकर राजा जनक ने मंत्रियों से परामर्श कर राम को सीता देने का निश्चय किया। राम-लक्ष्मण विजय दुन्दुभि के साथ अपने अयोध्या नगर को वापस आ गये।

जब नारद ने सुना कि राजा जनक ने अपनी परमसुन्दरी सीता पुत्री राम के लिये देना निश्चित किया है तब वह सीता के सौन्दर्य के देखने के लिए उसके महल में आ गये। सीता अकस्मात् नारद के प्रतिबिम्ब को दर्पण मे देखकर एकदम व्याकुल हो गई और हा मातः ! यह कौन है ? ऐसा कहकर वह वहाँ से अन्दर भागी। तब द्वार की रक्षक स्त्रियों ने नारद को रोक दिया। नारद अपमानित होकर वहाँ से चला आया और सीता से बदला चुकाने को सोचने लगा। उसने उसका एक सुन्दर चित्र बनाकर विजयार्ध पर्वत पर रथनूपुर के उद्यान में रख दिया। उसे देखकर भामण्डल मोहित हो गया। तब नारद ने उसे सीता का पूरा पता बता दिया। राजा चन्द्रगति को जब मालूम हुआ कि भामण्डल जनक की पुत्री सीता को चाहता है तब उसने युक्ति से जनक को वहीं बुला लिया और अपने पुत्र के लिये सीता की याचना की।

जनक ने सारी बात बताते हुए स्पष्ट कह दिया कि मैंने सीता कन्या को राम के लिये देना निश्चित कर लिया है और राम की बहुत प्रशंसा की। तब राजा चन्द्रगति ने कहा—

"हे राजन् ! सुनो, हमारे यहाँ एक वज्रावर्त नाम का धनुष है और दूसरा सागरावर्त। देवगण इन दोनों की रक्षा करते हैं। यदि राम वज्रावर्त धनुष को चढ़ाने में समर्थ हैं तब तो वे अधिक शक्तिमान हैं ऐसा मैं समझूँगा और तभी वे सीता को प्राप्त कर सकेंगे अन्यथा हम लोग सीता को जबरदस्ती लाकर भामण्डल के लिये दे देंगे।"

राजा जनक ने विद्याधरों की यह शर्त स्वीकार कर ली। ये लोग दोनों धनुष लेकर यहाँ मिथिला नगरी आ गये। सीता के स्वयंवर की घोषणा हुई। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न भी वहाँ पर आ गये। उस स्वयंवर में कोई भी राजपुत्र उस धनुष के निकट भी आने में समर्थ नहीं हो सका, किन्तु महापुरुष राम ने उस वज्रावर्त धनुष को चढाकर सीता की वरमाला प्राप्त कर ली। लक्ष्मण ने सागरावर्त धनुष चढ़ाकर चन्द्रवर्धन विद्याधर की अठारह कन्यायें प्राप्त कर लीं। तथा जनक के भाई राजा कनक ने अपनी पुत्री लोकसुन्दरी दशरथ के पुत्र भरत के लिये समर्पित की। वहाँ मिथिलानगरी मे इन दशरथ के पुत्रों के विवाह सम्पन्न हुए। अनन्तर राम, लक्ष्मण, भरत आदि अपनी-अपनी रानियों के साथ अयोध्या नगरी वापस आ गये।

कुछ दिनों बाद भामण्डल को जाति स्मरण होने से यह मालूम हो गया कि सीता मेरी सगी बहन है तब उसे पश्चात्ताप हुआ। पुन. वह अयोध्या में आकर बहन से मिलकर बहुत ही प्रसन्न हुआ।

राम का वनवास

एक समय राजा दशरथ विरक्त हो दीक्षा लेना चाहते थे। तब अपने बड़े पुत्र रामचन्द्र के राज्याभिषेक की तैयारी कराने लगे। इसी बीच रानी कैकेयी ने आकर अपना धरोहर 'वर' माँगा। राजा ने देने की स्वीकृति दे दी। तब कैकेयी ने कहा—

"हे नाथ ! मेरे पुत्र भरत के लिये राज्य प्रदान कीजिये।"

राजा दशरथ ने उसकी बात मान ली और राम को बुलाकर सारी स्थिति से अवगत करा दिया। राम ने पिता को सान्त्वना देकर भरत को भी समझाया तथा सोचने लगे—

"सूर्य के समान जब तक मैं इस अयोध्या के समीप भी रहूँगा तब तक भरत की आज्ञा नहीं चल सकेगी।"

यद्यपि भरत पिता के साथ दीक्षा लेना चाहता था किन्तु लाचारी में उसे राज्य सँभालना पड़ा। पिता दशरथ दिगम्बर दीक्षा लेकर आत्म-साधना में निरत हो गए। श्री रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता के साथ अयोध्या से निकल पड़े। भरत, माता कैकेयी और सारी प्रजा के अनुनय, विनय को न गिनकर श्रीराम आगे चले गये। ये तीनों बहुत काल तक पैदल ही पृथ्वी पर वन-वन में विचरण करते हुए अनेक सुख-दुःख मिश्रित प्रसंगों में भी सदा प्रसन्न रहते थे। इस वनवास के प्रसंग में रामचन्द्र ने पता नहीं कितनों का उपकार किया था।

एक समय रामचन्द्र ने वन में चारणऋद्धि मुनियों को आहारदान दिया था। उस समय एक गृद्ध (गीध) पक्षी वहाँ मुनियों को देखकर जातिस्मरण को प्राप्त हो गया। अतः वह मुनियों के चरणोदक में गिर पड़ा और उसे पीने लगा। तब उसका सारा शरीर सुन्दर वर्ण का हो गया। आहार के बाद मुनि ने उसे उपदेश देकर सम्यक्त्व और अणुव्रत ग्रहण करा दिये तब सीता ने उसे अपने पास ही रख लिया और उसको 'जटायु' इस नाम से पुकारने लगी।

सीता हरण

रावण की बहन चन्द्रनखा का पुत्र शंबूक वंशस्थल पर्वत पर बाँस की झाड़ी मे बैठकर सूर्यखड्ग सिद्ध कर रहा था। उसकी माता प्रतिदिन विद्या के बल से वहाँ आकर उसे भोजन दे जाया करती थी। बारह वर्ष के बाद वह खड्ग सिद्ध हो गया और वह बाँस मे ऊपर लटक रहा था। शंबूक ने उसे लेने में प्रमाद किया। सोचा, अभी ले लूँगा। इधर राम, लक्ष्मण, सीता उसी वन में जाकर ठहर गये। लक्ष्मण अकेले घूमते हुए वहाँ पहुँचे। उन्होंने वह खड्ग हाथ में ले लिया। तभी विद्या देवता ने आकर उन्हें प्रणाम किया। लक्ष्मण ने खड्ग की तीक्ष्णता परखने के लिए उसी बाँस के बीड़े को काट डाला। उसमें शंबूक बैठा था। उसका शिर धड़ से अलग हो गया। इधर लक्ष्मण को यह कुछ पता नहीं चला। वे अपने स्थान पर आकर भाई के पास बैठ गए।

चन्द्रनखा ने आकर जब पुत्र का सिर देखा वह मूर्च्छित हो गई। सचेत होकर विलाप करते हुए खूब रोई। अनंतर उसी वन में शत्रु को खोजते हुए घूमने लगी। उसने राम, लक्ष्मण को देखा तो इनके सौन्दर्य पर मोहित हो कन्या का रूप लेकर वहाँ आकर राम से अपने वरण के लिए प्रार्थना करने लगी। राम, लक्ष्मण ने उसकी ऐसी चेष्टा से उसके प्रति उपेक्षा कर दी। तब वह क्रोध से पागल जैसी हुई आकाश मार्ग से अपने स्थान पर जाकर अपने पति खरदूषण से बोली— हे नाथ ! उस वन में मेरे पुत्र को मार कर खड्ग लेकर दो पुरुष बैठे हुए हैं जो कि मेरा शील भंग करना चाहते थे।"

इत्यादि बात सुनकर खरदूषण अपनी सेना के साथ आकाशमार्ग से आकर युद्ध के लिये तैयार हो गया।

इस युद्ध के प्रसंग में लक्ष्मण खरदूषण की सेना के साथ युद्ध कर रहे थे। रामचन्द्र, सीता सहित अपने स्थान पर बैठे थे। बहनोई की सहायता के लिए रावण अपने पुष्पक विमान में बैठकर

वहाँ आ गया। दूर से उसने राम के साथ सीता को देखा। उसके ऊपर मोहित हुआ उसे हरण करने का उपाय सोचने लगा। उसने अवलोकिनी विद्या के द्वारा सारा परिचय प्राप्त कर लिया। मायाचारी से सिंहनाद करके "राम !! राम !!" ऐसा उच्चारण किया। राम ने समझा, लक्ष्मण संकट मे हैं वे सीता को पुष्पमालाओं से ढककर जटायु पक्षी को उसकी रक्षा में नियुक्त कर लक्ष्मण के पास पहुँचे। इसी बीच रावण ने सीता का हरण कर लिया। जब जटायु ने रावण का सामना किया तब रावण ने उस बेचारे पक्षी को घायल कर वही डाल दिया और स्वयं सीता को पुष्पक विमान में बिठाकर आकाश मार्ग से लंका आ गया। मार्ग में सीता ने बहुत ही विलाप किया तब एक विद्याधर ने उसको छुड़ाना चाहा। रावण ने उसकी भी विद्यायें नष्ट कर उसे भूमि पर गिरा दिया।

इधर लक्ष्मण ने राम को देखते ही कहा—

"भाई ! आप यहाँ कैसे ! जल्दी वापस जाइये।"

रामचन्द्र ने वापस आकर देखा, जटायु पड़ा सिसक रहा है। उसे महामन्त्र सुनाया। वह मर कर स्वर्ग चला गया। पुनः वे सीता को न पाकर बहुत ही दुःखी हुए। खरदूषण के युद्ध में लक्ष्मण विजयी हुए। तब आकर राम से मिले और सीता को ढूँढ़ने लगे। सीता का अपहरण हुआ जानकर श्रीराम शोक मे विह्वल हो गये।

पुनः विद्याधरो की सहायता से रावण द्वारा सीता का अपहरण जानकर श्रीरामचन्द्र ने हनुमान को सीता के पास भेजा। हनुमान ने वहाँ जाकर सीता को रामचन्द्र का समाचार दिया। तब सीता ने ग्यारह उपवास के बाद पारणा की। अनन्तर सुग्रीव आदि विद्याधरों की सहायता से राम, लक्ष्मण ने लंका को घेर लिया। भयंकर युद्ध हुआ। अन्त मे रावण ने अपना चक्र लक्ष्मण पर चला दिया। वह चक्ररत्न लक्ष्मण की प्रदक्षिणा देकर उसके पास ठहर गया और लक्ष्मण ने उसी चक्र से रावण का वध कर दिया। इसके बाद राम सीता से मिले। तब देवों ने भी सीता के शील की प्रशंसा करते हुए उन पर पुष्पवृष्टि की। वहाँ का राज्य विभीषण को सौंपकर त्रिखण्ड के अधिपति राम-लक्ष्मण छह वर्ष तक वही रहे। पुनः माता की याद कर अयोध्या आ गये। तब भरत ने दैगम्बरी दीक्षा ले ली।

सीता की अग्नि परीक्षा

रामचन्द्र आठवें बलभद्र और लक्ष्मण आठवें नारायण प्रसिद्ध हुए। श्रीराम ने अपनी आठ हजार रानियों में सीता को पट्टरानी बनाया।

एक बार सीता ने स्वप्न में देखा "मेरे मुख में दो अष्टापद प्रविष्ट हुए हैं और मैं पुष्पक विमान से गिर गई हूँ।" उसने इनका फल श्रीराम से पूछा। रामचन्द्र ने कहा—"तुम युगल पुत्रों को जन्म दोगी।" तथा दूसरे स्वप्न का फल अनिष्ट जानकर उसकी शांति के लिए जिनमंदिर में पूजन, अनुष्ठान कराया गया। एक समय राम की सभा में कुछ प्रमुख पुरुषों ने कहा कि—

"प्रभो ! इस समय प्रजा मर्यादा रहित होती जा रही है। दुष्ट लोग बलात् दूसरे की स्त्री का हरण कर लेते हैं। प्रायः लोग कह रहे हैं कि राजा दशरथ के पुत्र राम ज्ञानी होकर भी रावण के द्वारा हृत सीता को वापस ले आये हैं।"

इस बात को सुनकर रामचन्द्र एक क्षण विषाद को प्राप्त हुए। पुनः प्रजा को आश्वासन देकर भेज दिया। और स्वयं यह निर्णय लिया कि सीता को वन में भेज दिया जाय। लक्ष्मण के बहुत

कुछ अनुनय विनय करने पर भी रामचन्द्र नहीं माने और कृतांतवक्त्र सेनापति को बुलाकर समझा-कर उसके साथ सीता को तीर्थवंदना के बहाने घोर जंगल मे छुड़वा दिया। वहाँ सेनापति से वन में छोड़ आने का समाचार सुनकर सीता बहुत ही दुःखी हुई फिर भी उसने कहा—

"सेनापते ! तुम जाकर श्री रामचन्द्र से कहना कि जैसे लोकापवाद के डर से मुझे छोड़ दिया है ऐसे ही जिनधर्म को नहीं छोड़ देना।"

और सेनापति को बिदा कर दिया। उस समय सीता गर्भवती थी और वन मे घोर विलाप कर रही थीं। वहाँ जंगल में रुदन सुनकर पुण्डरीकपुर का राजा वज्रजंघ उसके पास आया और सीता को अपनी बहन के समान समझकर बहुत कुछ सान्त्वना देकर पुण्डरीकपुर लिवा लाया। वहाँ सीता ने युगल पुत्रों को जन्म दिया। जिनका नाम अनंगलवण और मदनांकुश रखा गया। इन पुत्रों को सिद्धार्थ नाम के क्षुल्लक ने पढ़ाया। एक बार नारद ने आकर इन दोनों के सामने राम का वैभव बताया तथा सीता के वन मे छोडने की बात कही। तब ये दोनों बालक सीता के बहुत कुछ मना करने पर भी राम से युद्ध करने के लिए चल पड़े। वहाँ पर दोनों पक्ष में किसी की हार जीत न देखकर नारद ने रामचन्द्र से कहा कि—

"ये दोनों आपके पुत्र हैं। सीता से जन्मे हैं।"

अनन्तर पिता-पुत्र मिलन के बाद सुग्रीव, हनूमान आदि राम की आज्ञा लेकर सीता को अयोध्या ले आये। राम ने सीता की शुद्धि के लिए अग्नि परीक्षा लेना चाहा। तब विशाल अग्नि-कुण्ड निर्मित हुआ। सीता ने कहा—

"हे अग्निदेवते ! यदि मैंने स्वप्न मे भी परपुरुष को नही चाहा हो तो तू जल हो जा अन्यथा मुझे जला दे।"

इतना कहकर वह अग्नि में कूद पड़ी। शील के प्रभाव से तत्क्षण ही अग्नि जल हो गई और देवों ने सीता को कमलासन पर बिठा दिया। तब रामचन्द्र ने सीता से क्षमायाचना की। और घर चलने के लिए कहा—सीता उस क्षण विरक्त हो बोली—

"हे बलदेव ! मैंने आपके प्रसाद से बहुत कुछ सुख भोगे है। फिर भी अब मै सर्व दुःखों का क्षय करने की इच्छा से जैनेश्वरी दीक्षा धारण करूँगी।"

ऐसा कहकर उसने अपने केश उखाड़कर रामचन्द्र को दे दिये। रामचन्द्र उसी क्षण मूर्च्छित हो गये।

सीता की दीक्षा

इधर जब तक रामचन्द्र सचेत हों तब तक सीता ने जाकर 'पृथ्वीमती' आर्यिका के पास आर्यिका दीक्षा ले ली। जब रामचन्द्र होश मे आये, सीता के वियोग से विक्षिप्त हो उन्हें लिवाने के लिए उद्यान मे आये। वहाँ सर्वभूषण केवली के समवसरण मे पहुँच कर दर्शन करके धर्मोपदेश सुना। अनन्तर श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण के साथ यथाक्रम से साधुओं को नमस्कार कर विनीतभाव से आर्यिका सीता के पास पहुँचे। भक्ति से युक्त हो नमस्कार कर बोले—

"हे भगवति ! तुम धन्य हो, उत्तम शीलरूपी सुमेरु को धारण कर रही हो।"

इत्यादि प्रशंसा कर पुनः कहने लगे—

"हे सुनये ! मेरे द्वारा जो भी अच्छा या बुरा कार्य हुआ है वह सब आप क्षमा कीजिये।"

इस प्रकार क्षमायाचना कर पुनः पुनः उनकी प्रशंसा करते हुए राम तथा लक्ष्मण लवण और अंकुश को साथ लेकर अपने स्थान पर वापस आ गये।

सीता की कठोर तपश्चर्या

जिस सीता का सौन्दर्य देवांगनाओं से भी बढ़कर था वह तपश्चर्या से सूखकर ऐसी हो गई जैसे जली हुई माधवी की लता ही हो। जिसकी साड़ी पृथ्वी की धूलि से मलिन थी तथा स्नान के अभाव में पसीना से उत्पन्न मल से जिसका शरीर भी धूसरित हो रहा था। जो चार दिन, एक पक्ष तथा ऋतुकाल आदि के शास्त्रोक्त विधि से पारणा करती थी। शीलव्रत और मूलगुणों के पालन मे तत्पर, रागद्वेष से रहित और अध्यात्म के चिन्तन में निरत रहती थी। अत्यन्त शांत थी। अपने मन को अपने अधीन कर रखा था। अन्य मनुष्यों के लिए दुःसह, अत्यन्त कठिन तप किया करती थी। उसके शरीर का मास सूख गया था मात्र हाड़ और आतों का पंजर ही दिख रहा था। उस समय वह आर्यिका लकड़ी आदि से बनी प्रतिमा के समान जान पड़ती थी। उसके कपोल भीतर घुस गये थे।

ऐसी सीता आर्यिका चार हाथ आगे जमीन देखकर ईर्यापथ से चलती थी। शरीर की रक्षा के लिए कभी-कभी आगम के अनुसार निर्दोष आहार ग्रहण करती थी। तपश्चर्या से उसका रूप ऐसा बदल गया था कि विहार के समय उसे अपने और पराये लोग भी नही पहचान पाते थे। ऐसी उस सीता को देखकर लोग सदा उसी की कथा करते रहते थे। जो लोग उसे एक बार देखकर पुनः देखते थे वे उसे "यह वही है" इस प्रकार नही पहचान पाते थे। इस महासती आर्यिका सीता ने अपने शरीर को तपरूपी अग्नि से सुखा डाला था। इस प्रकार महाश्रमणी पद पर अधिष्ठित सीता ने बासठ[१] वर्ष तक उत्कृष्ट तप किया। अनन्तर सल्लेखना धारण कर ली। तेंतीस दिन के बाद इस उत्तम सल्लेखना से शरीर को छोड़कर अच्युत (१६ वें) स्वर्ग में प्रतीन्द्र पद को प्राप्त कर लिया। सम्यग्दर्शन और संयम के माहात्म्य से स्त्रीलिंग से छूटकर देवेन्द्र की विभूति का वरण कर लिया। यह सीता का जीव अच्युत स्वर्ग के सुखों का अनुभव कर भविष्य में इसी भरत क्षेत्र में चक्ररथ नाम का चक्रवर्ती होगा। अनन्तर तपोबल से अहमिन्द्र पद को प्राप्त करेगा। पुनः जब रावण तीर्थंकर होगा तब यह अहमिन्द्र उनका प्रथम गणधर होकर उसी भव से निर्वाण प्राप्त कर लेगा। ऐसी शील शिरोमणि महासती आर्यिका सीता को नमस्कार होवे।



गणिनी आर्यिका राजीमती

श्रीकृष्ण तथा होनहार तीर्थंकर के पुण्य से कुबेर ने इन्द्र की आज्ञा पाकर द्वारावती नगरी की रचना कर दी। समुद्रविजय, वसुदेव आदि राजा श्रीकृष्ण के साथ वहीं रहने लगे। नेमिनाथ के गर्भ मे आने के छह माह पूर्व ही कुबेर ने समुद्रविजय की रानी शिवादेवी के आँगन में रत्नों की वर्षा करना शुरू कर दिया। कार्तिक शुक्ला षष्ठी के दिन अहमिन्द्र का जीव जयंत विमान

१. पद्मपुराण, पर्व १०९, तृतीय भाग पृष्ठ ३२९।
२. पद्मपुराण, पर्व १२३ ,, ,, पृष्ठ ४१९।

से च्युत होकर शिवादेवी के गर्भ में आ गया। उसी समय इन्द्रों ने यहाँ आकर भगवान् का गर्भ महोत्सव मनाया। नव महीने बाद श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन पुत्र का जन्म होते ही देवों ने आकर उसे सुमेरु पर ले जाकर १००८ कलशों से जन्म अभिषेक करके जन्म कल्याणक महोत्सव मनाया। पुनः नेमिनाथ यह नामकरण करके जिनशिशु को लाकर माता-पिता को सौंप दिया। नेमिनाथ की आयु एक हजार वर्ष की थी और शरीर की ऊँचाई दश धनुष (१०×४=४० हाथ) थी। क्रम से ये तीर्थंकर युवावस्था को प्राप्त हो गये।

एक बार श्रीकृष्ण, नेमिकुमार आदि वन क्रीड़ा को गये थे। साथ में श्रीकृष्ण की रानियाँ भी थीं। वहाँ जल क्रीड़ा में नेमिकुमार ने अपने गीले वस्त्र निचोड़ने के लिये सत्यभामा को कह दिया। तब उसने चिढ़कर कहा—क्या आप श्रीकृष्ण है कि जिन्होंने नागशय्या पर चढ़कर शांर्ग नाम का दिव्य धनुष चढ़ा दिया और दिगदिगन्त व्यापी शंख फूँका था। क्या आपमें वह साहस है कि जिससे आप मुझे अपना वस्त्र धोने को बात कहते हैं। नेमिकुमार ने कहा—"मैं यह कार्य अच्छी तरह कर दूँगा।" वे तत्क्षण ही आयुधशाला मे गये। वहाँ नागराज के महामणियों से सुशोभित नागशय्या पर अपनी ही शय्या के समान चढ़ गये और शांर्ग धनुष को चढ़ा दिया तथा योजन व्यापी महाशब्द करने वाला शंख फूंक दिया।

श्रीकृष्ण को इस बात का पता चलते ही आश्चर्यचकित हुए। पुनः उन्होंने विचार किया कि "श्री नेमिकुमार का चित्त बहुत समय बाद राग से युक्त हुआ अतः इनका विवाह करना चाहिये।" इसके बाद विमर्श कर वे स्वयं राजा उग्रसेन के घर पहुँचे और बोले—"आपकी पुत्री राजीमती तीन लोक के नाथ तीर्थंकर नेमिकुमार की प्रिया हो।" उग्रसेन ने कहा—"हे देव! तीन खण्डों में उत्पन्न हुए रत्नों के आप ही स्वामी हैं। आपकी आज्ञा मुझे सहर्ष स्वीकार है।"

राजा समुद्रविजय श्रीकृष्ण आदि बारात लेकर (जूनागढ़) आ गये। इसी मध्य श्रीकृष्ण ने सोचा—इन्द्रों द्वारा पूज्य तीर्थंकर नेमिनाथ महाशक्तिमान हैं कहीं मेरा राज्य न ले लें।........ पुनः सोचा—"ये नेमिकुमार कुछ ही वैराग्य का कारण पाकर दीक्षा ले सकते हैं।" ऐसा सोचकर एक षड्यंत्र किया और बहुत से मृग आदि पशु इकट्ठे कराकर, एक बाड़े में बन्द करा कर द्वारपाल को समझा दिया।

जब नेमिकुमार उधर से निकलें, बाड़े में बन्द और चिल्लाते हुए पशुओं को देखकर पूछा—"इन्हें क्यों बन्द किया गया है?"

द्वारपाल ने कहा—"प्रभो! आपके विवाहोत्सव में इनका व्यय (वध) करने के लिये इन्हें इकट्ठा किया गया है।" उसी क्षण अपने अवधिज्ञान से श्रीकृष्ण की सारी चेष्टा जानकर तथा पूर्वभवों का भी स्मरण कर नेमिनाथ विरक्त हो गये। तत्काल ही लौकांतिक देव आकर स्तुति करने लगे। पुनः इन्द्रों ने आकर भगवान् की पालकी उठायी और प्रभु दीक्षा के लिये वन मे पहुँच गये। वह वन सहस्राम्र नाम से प्रसिद्ध था जो कि आज सिरसा वन कहलाता है। वहाँ पर श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन दीक्षा ले ली। तेला के बाद उनका प्रथम आहार राजा वरदत्त के यहाँ हुआ है। उस समय उसके घर मे साढ़े बारह करोड़ रत्नों की वर्षा हुई थी। अनन्तर छप्पन दिन बाद भगवान् को आसोज वदी एकम के दिन केवलज्ञान प्रगट हो गया।

हरिवंशपुराण में लिखा है कि—

"नेमिनाथ के दीक्षा लेने के बाद राजीमती बहुत ही दुःखी हुई और वियोग के शोक से रोती रहती थी। भगवान् को केवलज्ञान होने के बाद समवसरण में राजा वरदत्त ने दीक्षा ले ली और भगवान् के प्रथम गणधर हो गये। उसी समय छह हजार रानियों के साथ दीक्षा लेकर राजीमती[1] आर्यिकाओं के समूह की गणिनी बन गई।"

आज जो यह किंवदन्ती है कि राजीमती ने गिरनार पर्वत आकर नेमिनाथ से वार्तालाप किया। अनेक बारहमासा और भजन गाये जाते हैं। वे सब कल्पित हैं क्योंकि जब तीर्थंकर दीक्षा ले लेते हैं। वे केवलज्ञान होने तक मौन ही रहते हैं पुनः वार्तालाप व संबोधन का सवाल ही नहीं उठता। भगवान् को केवलज्ञान होने के बाद ही राजीमती ने आर्यिका दीक्षा लेकर गणिनी पद प्राप्त किया है। "राजीमती का नव भव से नेमिनाथ के साथ सम्बन्ध चला आ रहा था।" यह प्रकरण भी हरिवंश पुराण, उत्तर पुराण में नहीं है अन्यत्र कहीं ग्रन्थों में हो सकता है। 'नेमिनिर्वाण' काव्य में नेमिनाथ के पूर्वभवों का वर्णन इस प्रकार है—

"इस भरतक्षेत्र में विन्ध्याचल पर्वत पर एक भील रहता था। एक दिन वह शिकार के लिये निकला। कुछ दूर पर दो मुनिराज थे। उनके ऊपर बाण चलाने को तैयार हुआ। उसी क्षण उसकी भार्या ने आगे आकर कहा—हे प्रियतम! आप मेरे ऊपर बाण छोड़ो किन्तु इन्हें न मारो। ये दो मुनिराज मान्य हैं, मारने योग्य नही हैं। मैं एक बार नगर में सामान खरीदने गई थी वहाँ मैंने देखा कि राजा भी इन्हें प्रणाम कर रहा था। इतना सुनकर भील ने धनुष बाण एक तरफ रख दिया। पत्नी के साथ गुरु के दर्शन करके उनका उपदेश सुना। पुनः उसने शिकार खेलना और मांस खाना छोड़ दिया। इस व्रत के प्रभाव से वह वृषदत्त की पत्नी से इभ्यकेतु नाम का पुत्र हुआ। उसे स्वयंवर में राजा जितशत्रु की पुत्री कमलप्रभा ने वरण किया था। इस कमलप्रभा के एक सुकेतु नाम का पुत्र हुआ। उसे राज्य देकर इभ्यकेतु दीक्षा लेकर अंत में मरणकर माहेन्द्र स्वर्ग मे देव हो गया। जम्बूद्वीप के सिंहपुर नगर में राजा जिनदास के वह देव अपराजित नाम का पुत्र हो गया। इसने भी कालान्तर में तपश्चरण कर अच्युत स्वर्ग मे इन्द्रपद को प्राप्त कर लिया। पुनः कुरुजांगल देश की हस्तिनापुर नगरी के श्रीचन्द्र राजा का सुप्रतिष्ठ नाम का पुत्र हो गया। इस सुप्रतिष्ठ ने भी दीक्षा लेकर तीर्थंकर प्रकृति का बँध कर लिया तथा अनेक व्रतों का अनुष्ठान कर जयंत विमान में अहमिन्द्र हो गया। वहाँ से आकर ये अहमिन्द्र का जीव यदुवंशी राजा समुद्रविजय की रानी शिवा देवी के पुत्र नेमिनाथ हुए है।[2]

जिस भीलनी ने इन्हें मुनिवध से रोका था वे ही राजीमती हुई हैं ऐसी प्रसिद्धि है। जो भी हो यह कथन इस काव्य में नहीं है।

पांडव पुराण में भी श्री नेमिनाथ के दशभव के नाम आए हैं—१. विन्ध्य पर्वत पर भिल्ल, २. इभ्यकेतु सेठ, ३. देव, ४. चिंतागतिविद्याधर, ५. देव, ६. अपराजित राजा, ७. अच्युत स्वर्ग के इन्द्र, ८. सुप्रतिष्ठ राजा, ९. जयन्त अनुत्तर में अहमिन्द्र, १०. तीर्थंकर नेमिनाथ।[3] इस पुराण में भी राजीमती के भवों का वर्णन नहीं है।

---

१. षट्सहस्रनृपस्त्रीभिः सह राजीमती तदा। प्रव्रज्याग्रेसरी जाता सार्यिकाणां गणस्य तु ॥ १४६ ॥
—हरिवंश पुराण, सर्ग ५७, पृ० ६५६

२, नेमिनिर्वाण काव्य, सर्ग १३।

३. पाण्डवपुराण, पर्व २५, पृ० ५१०।

भगवान् नेमिनाथ के समवसरण में अठारह हजार मुनि, चालीस हजार आर्यिकायें, एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकायें थी। उस काल में कुन्ती, सुभद्रा, द्रौपदी आदि ने गणिनी राजीमती से ही दीक्षा ली थी।[1]

अन्त में नेमिनाथ ने आषाढ़ शुक्ला सप्तमी के दिन गिरनार पर्वत से निर्वाण को प्राप्त किया है। राजीमती, कुन्ती, सुभद्रा, द्रौपदी ये चारों आर्यिकाओं ने धर्मध्यान से सल्लेखना करके स्त्रीवेद का नाश कर सोलहवें स्वर्ग मे देवपद प्राप्त कर लिया। वहाँ की २२ सागरोपम आयु को पूर्ण कर पुरुष होकर तपश्चरण करके निर्वाण प्राप्त करेंगी।[2]



सती द्रौपदी

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी अङ्गदेश में एक चम्पापुरी नाम की नगरी है। उसी नगरी में एक सोमदेव ब्राह्मण रहता था, उसकी भार्या का नाम सोमिला था। उन दोनों के सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति ये तीन पुत्र थे जो कि वेदवेदांगों के पारगामी थे। इनके मामा अग्निभूति की अग्निला स्त्री से तीन कन्यायें हुई थीं जिनका नाम धनश्री, मित्रश्री और नागश्री था। अग्निभूति ने अपनी तीनों कन्याओं का क्रम से तीनों भानजों के साथ विवाह कर दिया।

किसी एक समय सोमदेव ब्राह्मण ने विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। अनन्तर एक दिन आहार के समय धर्मरुचि नाम के महातपस्वी मुनिराज को अपने घर की तरफ आते देखकर सोमदत्त ने अपने छोटे भाई की पत्नी से कहा कि हे नागश्री ! तू इन मुनिराज का पड़गाहन कर इन्हें विधिवत् आहार करा दे। नागश्री ने मन मे सोचा कि "यह सदा सभी कार्य के लिये मुझे ही भेजा करता है। यह सोचकर वह बहुत ही क्रुद्ध हुई और उसी क्रुद्धावस्था में उन तपस्वी मुनिराज को विष मिला हुआ आहार दे दिया। मुनिराज ने संन्यास धारण कर आराधना पूर्वक मरण किया। जिससे वे सर्वार्थसिद्धि नामक अनुत्तर विमान में उत्पन्न हो गये। जब सोमदत्त आदि तीनों भाइयों को नागश्री के द्वारा किये हुए इस अकृत्य का पता चला तब उन्होंने वरुणार्य नाम के महामुनि के पास जाकर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। यह देख धनश्री और मित्रश्री ने भी गुणवती आर्यिका के समीप जाकर आर्यिका दीक्षा ले ली। इस प्रकार ये पांचों ही जीव आराधनाओं की आराधना करते हुए अन्त में मरण कर आरण और अच्युत स्वर्ग में सामानिक देव हो गये। इधर नागश्री भी पाप के फल से कुत्सित परिणामों से मरण कर पाँचवें नरक में चली गई। वहाँ पर असंख्य दुःखों को भोगकर निकली तो स्वयंप्रभ द्वीप में दृष्टिविष नाम का सर्प हो गई। फिर मर कर दूसरे नरक गई वहाँ पर तीन सागर तक दुःख भोगती रही। वहाँ से निकलकर दो सागर तक त्रस-स्थावर योनियों मे परिभ्रमण करती रही।

इस प्रकार संसार सागर में भ्रमण करते-करते जब उसके पाप का उदय कुछ मंद हुआ तब चंपापुर नगर में चांडाली हो गई। किसी एक दिन इतने समाधिगुप्त मुनिराज को देखकर उन्हें

१. उत्तरपुराण, पर्व ७२ पृ० ४२४। २. पांडवपुराण, पृ० ५०९।

नमस्कार किया। मुनिराज ने करुणा से उसे उपदेश दिया जिससे उसने मधु और मांस का त्याग कर दिया। इस त्याग के निमित्त से वह उस पर्याय से छूटकर वहीं के सुबन्धु सेठ की धनदेवी स्त्री से पुत्री हुई। उसका नाम सुकुमारी रक्खा गया। यहाँ पर भी उसके पाप का उदय शेष रहने से उसके शरीर से बहुत दुर्गन्ध आती थी। जब वह युवावस्था में आई तब माता-पिता को उसके विवाह की चिन्ता हो गई। इसी नगर में एक धनदत्त सेठ रहता था उसकी अशोकदत्ता स्त्री से दो पुत्र हुए थे। बड़े का नाम जिनदेव और छोटे का नाम जिनदत्त था। सुबन्धु के आग्रह से धनदत्त अपने पुत्र जिनदेव के साथ सुकुमारी का विवाह करना चाहा किन्तु जिनदेव को इस बात का पता चलते ही वह वहाँ से चला गया और सुव्रतमुनि के पास उसने मुनि दीक्षा ले ली। माता-पिता के आग्रह से जिनदत्त ने उस दुर्गंधित सुकुमारी के साथ विवाह तो कर लिया किन्तु उसकी दुर्गंधि से घृणा करता हुआ वह स्वप्न में भी उसके निकट नहीं गया। इस प्रकार पति के विरक्त होने से सुकुमारी सदा ही अपने पूर्वकर्मों की निन्दा किया करती थी।

एक दिन इस सुकुमारी ने उपवास किया था। उसी दिन उसके यहाँ आहार के लिए आर्यिकाओं के साथ सुव्रता नाम की आर्यिका आई थीं। सुकुमारी ने उनको वंदना कर प्रधान आर्यिका से पूछा कि हे माताजी ! इन दो आर्यिकाओं ने किस कारण से दीक्षा ली है। तब प्रधान आर्यिका ने कहा कि—"ये दोनों पूर्वजन्म में सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र की विमला और सुप्रभा नाम की प्रिय देवियाँ थीं। किसी दिन ये दोनों सौधर्म इन्द्र के साथ नंदीश्वर द्वीप में जिनेन्द्र देव की पूजा करने गई हुई थी। वहाँ इनका चित्त विरक्त हो गया तब इन दोनों ने आपस में यह संकल्प किया कि "हम दोनों इस पर्याय के बाद मनुष्य पर्याय पाकर तप करेंगी।" आयु के अन्त में वहाँ से च्युत होकर ये दोनों साकेत नगर के स्वामी श्रीषेण राजा की श्रीकान्ता रानी से हरिषेणा और श्रीषेणा नाम की पुत्रियाँ हो गईं।

यौवन अवस्था में इन्हें देखकर राजा श्रीषेण ने इन दोनों के लिए स्वयंवर मण्डप बनवाया और उसमें अनेक राजपुत्र आकर बैठ गये। ये दोनों कन्यायें अपने हाथ में माला लेकर स्वयंवर मण्डप में आई ही थीं कि इन्हें अपने पूर्वभव की प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया। उसी समय इन दोनों ने अपने पिता को पूर्व भव की बात बतलाकर तथा समस्त सुख वैभव का त्याग कर ,आकर आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली है।

यह कारण सुनकर सुकुमारी बहुत ही विरक्त हुई। उसने सोचा—देखो, इन दोनों सुकोमलगात्री राजपुत्रियों ने तो सब सुख छोड़कर दीक्षा ले ली है और मुझे तो यहाँ सुख उपलब्ध भी नहीं है। शरीर में दुर्गन्धि आने से कोई पास भी नहीं बैठता। इत्यादि प्रकार से चिंतवन करके उसने अपने कुटुम्बी जनों से आज्ञा लेकर उन्हीं आर्यिका के पास दीक्षा ले ली[1]। किसी एक दिन वन में वसंतसेना नाम की वेश्या आई हुई थी, बहुत से व्यभिचारी मनुष्य उस वेश्या को घेरकर उससे प्रार्थना कर रहे थे। सुकुमारी आर्यिका ने यह देखा तो उसके मन में ऐसा भाव आया कि मुझे भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो। पश्चात् अपनी गणिनी के पास जाकर आलोचना करके प्रायश्चित्त ग्रहण कर लिया। कालांतर में आयु पूरी कर अच्युत स्वर्ग में जो इसके नागश्री भव के पति ब्राह्मण सोमभूति देव हुए थे उनकी देवी हो गई।

---

१. उत्तरपुराण, पृ० ४२४।

उन तीन ब्राह्मणों के जीव स्वर्ग से चयकर क्रम से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन हो गये। तब धनश्री और मित्रश्री के जीव नकुल और सहदेव हो गये। सुकुमारी का जीव देवी पर्याय से च्युत होकर कांपिल्य नगर के राजा द्रुपद की रानी दृढ़रथा के द्रौपदी नाम की पुत्री हुई। यही द्रौपदी अर्जुन की रानी हुई है। पूर्व जन्म में जो इसने वसंतसेना वेश्या जैसा सौभाग्य प्राप्त करने का भाव कर लिया था उसी से उसे द्रौपदी पर्याय में पंचभर्तारी का असत्य आरोप लगा है। वास्तव में द्रौपदी सती थी। युधिष्ठिर और भीम उसके जेठ थे और नकुल, सहदेव देवर थे। फिर भी पूर्वकृत कर्म के उदय से उसे अकारण ही अवर्णवाद—निन्दा को सहना पड़ा है। अन्त में द्रौपदी[1] ने भगवान् नेमिनाथ के समवसरण में गणिनी राजीमती आर्यिका से दीक्षा लेकर स्त्री पर्याय छेदकर अच्युत स्वर्ग में देवपद को प्राप्त कर लिया है।

•

आर्यिका मैनासुन्दरी

इसी भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में उज्जयिनी नाम की नगरी है। उसमें राजा पुहुपाल शासन करते थे। उनकी रानी निपुणसुन्दरी के सुरसुन्दरी और मैनासुन्दरी दो कन्यायें थीं। बड़ी पुत्री शैवगुरु के पास पढ़ी तथा मैनासुंदरी ने आर्यिका के पास सभी विद्याओं और शास्त्रों का अच्छा अध्ययन कर लिया था। एक दिन पिता ने कहा—बेटी! तू अपनी इच्छा से अपने लिए वर का निर्णय बता दे। मैना ने इसपर मना कर दिया। और कहा मेरे भाग्य से जैसा होगा ठीक है। पिता ने भाग्य के नाम से चिढ़कर मैना का कोढ़ी पति के साथ विवाह कर दिया। यद्यपि रानी और मंत्रियों ने अत्यधिक मना किया था फिर भी राजा ने नहीं सुना।

चम्पापुर के राजा अरिदमन की रानी कुंदप्रभा के एक पुत्र हुआ। जिसका नाम श्रीपाल था। पिता के दीक्षित होने के बाद ये राज्य संचालन कर रहे थे। अकस्मात् भयंकर कुष्ठ रोग से ग्रसित होने से प्रजा को उनकी बदबू सहन नहीं हुई तब श्रीपाल ने अपने चाचा वीरदमन को राज्य सम्भलाकर आप अपने ७०० योद्धाओं के साथ देश से निकल कर वनों में विचरने लगे।

राजा पुहुपाल ने इनके साथ ही पुत्री का विवाह कर दिया। मैनासुन्दरी पतिव्रत आदि गुणों से युक्त पतिसेवा करने लगी। एक दिन उसने मंदिर में जाकर निर्ग्रंथ मुनि से पति के रोग निवारण के लिए पूछा। मुनिराज ने कहा—

"हे भद्रे! तुम कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ की आष्टाह्निका में आठ-आठ दिन व्रत करके सिद्धचक्र की आराधना करो। मैनासुन्दरी ने गुरु से व्रत लेकर प्रथम ही कार्तिक के महीने में व्रत किया। मंदिर में जाकर जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा का अभिषेक[2] करके विधिवत् सिद्धचक्र पूजा की, अनंतर गंधोदक लाकर अपने पति के सर्वांग में लगाया। साथ में रहने वाले ७०० योद्धाओं के

---

१. उत्तरपुराण, पृ० ४२४।

२. अथैकदा सुता सा च सुधीः मदनसुंदरी।
कृत्वा पंचामृतस्नानं जिनानां सुखकोटिदम्॥ —श्रीमन्नेमिचन्द्रकृत, श्रीपाल चरित, प० ६

ऊपर भी छिड़का। केवल आठ ही दिनों में श्रीपाल का कुष्ठरोग नष्ट हो गया और साथ ही ७०० योद्धा भी रोगमुक्त हो गये। मैनासुन्दरी की जिनभक्ति के प्रभाव को देखकर सभी बहुत ही प्रभावित हुए।

श्रीपाल की माता कुंदप्रभा को जब दिव्यज्ञानी मुनिराज से पता चला कि श्रीपाल मैनासुन्दरी पत्नी के प्रभाव से स्वस्थ होकर उज्जयिनी नगरी के बगीचे में महल में रह रहे हैं, तब माता वहाँ आ गईं और पुत्र को स्वस्थ देखकर प्रसन्न हुईं।

आकस्मिक एक दिन मैनासुंदरी की माता निपुणसुंदरी मंदिर में अपनी पुत्री को अत्यन्त सुन्दर पुरुष के साथ बैठे देख रोने लगी। उसने सोचा—"ओह! मेरी पुत्री ने रुग्णपति को छोड़कर किसी अन्य ही राजकुमार के साथ सम्बन्ध कर लिया है।" मैना माता के भावों को समझ गई तब उसने सारी बातें माता को बता दीं। माता सुनकर प्रसन्न हुईं और पुत्री की बहुत ही सराहना की।

कुछ दिनों बाद श्रीपाल मैनासुन्दरी को अपनी माँ के पास छोड़कर विदेश चले गये। वहाँ अनेक सुख-दुःखों का अनुभव किया। १२ वर्ष बाद आठ हजार रानियों को तथा बहुत बड़ी सेना को लेकर वापस आ गये।

अनंतर अपने चम्पापुर जाकर चाचा वीरदमन से युद्ध करके अपना राज्य वापस ले लिया और आठ हजार रानियों के मध्य में मैनासुन्दरी को पट्टरानी बना दिया और कुछ दिनों बाद मैनासुन्दरी के क्रम से तीन पुत्र हुए जिनके नाम महापाल, देवरथ और महारथ रक्खे गये। अन्य तीन रयनमंजूषा, गुणमाला आदि रानियों के भी पुत्र हुए। राजा श्रीपाल के सभी १२ हजार पुत्र थे और वे सभी धर्म कार्यों में दत्तचित्त रहते थे।

एक बार चम्पापुर केवली भगवान् का समवसरण आया। राजा ने सपरिवार जाकर वंदना पूजा की। अनंतर अपने पूर्वभव पूछे, केवली भगवान् ने कहा—

इसी भरत क्षेत्र के रत्नसंचय पुर में श्रीकण्ठ नाम का राजा रहता था। वह विद्याधर था। उसकी रानी श्रीमती बहुत ही धर्मात्मा थी। एक दिन दोनों ने मुनिराज के पास श्रावक के व्रत ग्रहण किये। घर आकर राजा ने व्रतों को छोड़ दिया और जैन धर्म की निन्दा करने लगे। एक दिन वे ७०० वीरों के साथ वन-क्रीडा के लिए गये थे। वहाँ गुफा में ध्यानमग्न एक महान् योगी मुनिराज को देखा।

"यह कोढ़ी है, कोढ़ी है" ऐसा कहकर उन्होंने अपने किंकरों से उन्हें समुद्र में गिरवा दिया। समुद्र में भी मुनि को ध्यान मग्न देखकर राजा ने दया बुद्धि से बाहर निकलवा दिया और अपने स्थान वापस आ गये। किसी एक दिन पुनः अत्यन्त कृशकाय दिगम्बर मुनि को देखकर राजा ने कहा—

"अरे निर्लज्ज दिगम्बर! नग्न घूमते हुए तुझे शर्म नहीं आती।.........तेरा मस्तक काट डालना चाहिए।"

इतना कहकर मारने के लिए राजा ने तलवार उठाई कि तत्क्षण ही उनके हृदय में दया का स्रोत उमड़ आया। तब वे तलवार को म्यान में रखकर वापस घर आ गये। ऐसे परम तपस्वी मुनिराज पर उपसर्ग करने से राजा को महान् पाप का बंध हो गया। एक दिन स्वयं राजा ने अपनी रानी श्रीमती से ये सारी बातें बता दीं। रानी बहुत ही चिंतित हुई, चिन्ता से संतप्त मन उसने

भोजन भी छोड़ दिया। जब राजा को पता चला कि रानी इस कारण दुःखी हैं कि मैंने श्रावक के व्रत ग्रहण कर छोड़ दिये और मुनि पर उपसर्ग किया है। तब राजा ने पश्चात्ताप कर रानी की तुष्टि के लिए मंदिर में जाकर मुनिराज से अपने पापों को शांति का उपाय पूछा। मुनिराज ने राजा को सम्यक्त्व का उपदेश देकर मिथ्यात्व का त्याग करा दिया। पुनः श्रावक के व्रत देकर सिद्ध-चक्र विधान करने को कहा। राजा ने रानी के साथ विधिवत् आठ वर्ष तक आष्टाह्निक पर्व में सिद्धचक्र की आराधना की। अनंतर उद्यापन करके संन्यास विधि से मरण कर स्वर्ग में देवपद प्राप्त किया। रानी भी स्वर्ग में देवांगना हुई।

इस भव में राजा श्रीकण्ठ का जीव ही तुम श्रीपाल हुए हो और रानी श्रीमती का जीव यह मैनासुन्दरी हुआ है। तुमने जो मुनि को कोढ़ी कहा था, सो कोढ़ी हुए हो। जो मुनि को समुद्र में डलवाया था सो धवलदत्त सेठ ने तुम्हें समुद्र में गिरा दिया था। इत्यादि भवों को सुनकर धर्म के प्रति अत्यधिक श्रद्धावान हो गया।

एक दिन विद्युत्पात देखकर राजा श्रीपाल को वैराग्य हो गया तब उसने अपने बड़े पुत्र को राज्य देकर वन में जाकर महामुनि के पास दीक्षा धारण कर ली। उस समय उसके ७०० योद्धा पुरुषों ने भी दीक्षा ले ली। माता कुंदप्रभा और मैनासुन्दरी ने भी दीक्षा ले ली। साथ ही ८००० रानियों ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। निर्दोष चर्या का पालन करते हुए मुनि श्रीपाल ने घोर तपश्च-रण करके केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

आर्यिका मैनासुन्दरी ने भी घोर तपश्चरण के द्वारा कर्मों को कृश कर दिया तथा सम्यक्त्व के प्रभाव से स्त्रीलिंग को छेदकर सोलहवें स्वर्ग में देवपद प्राप्त कर लिया। आगे वह देव मनुष्य भव प्राप्त कर दीक्षा लेकर मोक्षपद प्राप्त करेगा। मैनासुन्दरी की पतिसेवा और सिद्धचक्र आराधना आज भी भारतवर्ष में सर्वत्र प्रसिद्धि को प्राप्त है।

●

आर्यिका अनन्तमती

भरतक्षेत्र के अंगदेश की चम्पापुरी के राजा वसुवर्धन की रानी का नाम लक्ष्मीमती था। यहीं पर एक सेठ प्रियदत्त थे। उनकी पत्नी अंगवती थी। अंगवती के सुन्दर कन्या हुई। उसका नाम अनंतमती रक्खा गया। यह पुत्री सर्वगुणों की खान थी। जब वह ८-९ वर्ष की थी, आष्टा-ह्निक पर्व में सेठ प्रियदत्त अपनी रानी और पुत्री के साथ जिनमंदिर गये। भगवान् के दर्शन करके मुनिराज के पास जाकर आठ दिन के लिये पत्नी के साथ ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया। पुत्री ने भी व्रत लेना चाहा तब पिता ने उसे भी दिला दिया।

जब वह विवाह योग्य हुई तब पिता ने उसके विवाह की चर्चा की। तब अनन्तमती ने कहा—पिताजी मैंने तो आपसे आज्ञा लेकर ब्रह्मचर्य व्रत लिया था। पिता ने कहा—बेटी! वह तो विनोद में दिलाया गया था और फिर आठ दिन की बात थी। अनंतमती ने कहा—उस समय आठ दिन की मेरे लिए बात नहीं थी। जो भी हो, अनंतमती दृढ़ थी अतः माता-पिता ने विवाह की बात खतम कर दी।

एक दिन अनंतमती अपने बगीचे में झूला झूल रही थी। उसी समय एक विद्याधर उसे हरण कर ले गया। पुनः अपनी पत्नी के डर से उसे वन में छोड़ दिया। वन में अनंतमती अकेली रो रही थी। इसी बीच वहाँ एक भीलों का राजा आया। उसने अपने महल में ले जाकर पत्नी बनाना चाहा तब कन्या की दृढ़ता के प्रभाव से वन देवी ने उसकी रक्षा की। तब उस भील ने उस कन्या को एक पुष्पक नाम के सेठ के हाथों सौंप दी। सेठ ने भी उसे अपने अधीन करना चाहा किन्तु अनंतमती के शील की दृढ़ता से वह डर गया। अनंतर उसने एक वेश्या के पास उसे छोड़ दिया। कामसेना वेश्या ने भी अनंतमती को वेश्या बनाना चाहा किन्तु असफल रही। तब उसने उसे सिंहराज नाम के राजा को सौंप दिया। सिंहराज ने भी अनंतमती से बलात्कार करना चाहा तब वनदेवी ने आकर उसकी रक्षा की। तब सिंहराज ने उसे जंगल मे छुड़वा दिया। वहाँ पर निर्जन वन में अनंतमती मंत्र का स्मरण करते हुए आगे बढ़ी और चलती ही गई। कई एक दिनों में वह अयोध्या पहुँच गई। वहाँ पद्मश्री आर्यिका के दर्शन किये और उनसे अपना सारा हाल सुना दिया।

आर्यिका अनंतमती की छोटी सी उम्र में उसने इतने कष्ट झेले हैं देखकर बहुत ही दुःखी हुई और करुणा से हृदय आर्द्र हो गया। उन्होंने अनंतमती को अपने पास रक्खा, सान्त्वना दी तथा संसार को स्थिति का उपदेश देते हुए उसके वैराग्य को ओर भी दृढ़ कर दिया। वह अनंतमती तब से उन आर्यिका के पास ही रहती थी और सतत धर्मध्यान में अपना समय बिता रही थी।

अनंतमती के पिता प्रियदत्त पुत्री के हरण हो जाने के बाद सर्वत्र खोज कराकर थक चुके थे और उसके वियोग के दुःख से बहुत ही व्याकुल रहते थे। वे मन की शांति देने हेतु तीर्थयात्रा को निकले हुए थे। अयोध्या में आ गये और अपने साला जिनदत्त के यहाँ ठहर गये। उनसे अपनी पुत्री के हरे जाने का समाचार सुनाया जिससे ये लोग भी दुःखी हुए।

दूसरे दिन जिनदत्त की भार्या ने घर में चौका बनाया था सो वह आर्यिका पद्मश्री के पास में स्थित बालिका को अपने घर बुला लाई। उसे भोजन का निमन्त्रण दे दिया तथा घर के आँगन में चौक पूरने को कहा। कन्या ने रत्न चूर्ण की रांगोली से बहुत ही सुन्दर चौक बनाया। कुछ देर बाद सेठ प्रियदत्त उस चौक की सुन्दरता को देखकर अपनी पुत्री को याद कर रो पड़ा और पूछने लगा—यह चौक किसने पूरा है उसे मुझे दिखा दो। कन्या को देखते ही उसने उसे अपने हृदय से लगा लिया। पिता पुत्री के इस मिलन को देखकर सभी को आश्चर्य हुआ और महान् हर्ष भी।

अनंतर पिता ने पुत्री से घर चलने को कहा किन्तु अनंतमती पूर्ण विरक्त हो चुकी थी। अतः उसने पिता से प्रार्थना की कि आप मुझे अब दीक्षा दिला दीजिए। बहुत कुछ समझाने के पश्चात् भी अनंतमती ने घर जाने से इन्कार कर दिया और वहीं आर्यिका पद्मश्री से दीक्षा लेकर आर्यिका बन गई। इन्होंने दीक्षित अवस्था में महीने-महीने के उपवास करके बहुत ही तपश्चरण किया है। उसकी इतनी छोटी उम्र, ऐसा कोमल शरीर और ऐसा महान् तप देखकर लोग आश्चर्यचकित हो जाते थे।

देखो, अनंतमती कन्या ने अबोध अवस्था में विनोद से दिलाये गये ब्रह्मचर्यव्रत को भी महान् समझा, उसका संकट काल में भी निर्वाह किया और युवावस्था में ही आर्यिका बनकर

और तपश्चरण किया है। अनंतर अंत में सल्लेखना विधि से मरण कर स्त्रीपर्याय को छेदकर बारहवें स्वर्ग में देव हो गई हैं।[1]



गणिनी आर्यिका चन्दना

वैशाली नगरी के राजा चेटक की रानी सुभद्रा के दश पुत्र और सात पुत्रियां थीं। धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, सुदत्त, सिंहभद्र, सुकुंभोज, अकंपन, पतंगक, प्रभंजन और प्रभास ये पुत्रों के नाम थे और प्रियकारिणी (त्रिशला), मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलनी, ज्येष्ठा और चन्दना ये कन्याओं के नाम थे। बड़ी पुत्री प्रियकारिणी विदेह देश के कुण्डपुर नगर के राजा सिद्धार्थ की रानी हुई। इन्होंने ही भगवान् महावीर को जन्म दिया था। अन्य कन्यायें भी राजपुत्रों से ब्याही गयी थीं।

चेलनी का विवाह राजगृही के राजा श्रेणिक के साथ हुआ था। ज्येष्ठा ने यशस्वती आर्यिका के पास दीक्षा ले ली थी। तब चन्दना ने उन्हीं यशस्वती आर्यिका से सम्यग्दर्शन और श्रावक के व्रत ले लिए थे। यह चन्दना युवावस्था को प्राप्त हुई। तभी एक दिन अपने बगीचे में क्रीड़ा कर रही थी। अकस्मात् विजयार्ध पर्वत का एक मनोवेग नाम का विद्याधर राजा अपनी रानी के साथ आकाशमार्ग से जाता हुआ उधर से निकला। उसने चन्दना को देखा तब वह अपनी रानी को घर भेजकर चंदना का अपहरण कर लिया। उसी समय मनोवेगा रानी ने राजा के मनोभाव को न जानकर उसका पीछा किया और तर्जना की। वह मनोवेग विद्याधर रानी से डरकर उस कन्या को पर्णलघ्वी विद्या के बल से विमान से नीचे गिरा दिया। कन्या चंदना भूत-रमण वन में ऐरावती नदी के किनारे गिर गई।

पंच नमस्कार मंत्र का जाप करते हुए चंदना ने वन में रात्रि बड़े कष्ट से बिताई। प्रातःकाल वहाँ एक कालक नाम का भील आया। चंदना ने उसे अपने बहुमूल्य आभूषण दे दिए और धर्मोपदेश भी दिया जिससे वह बहुत ही संतुष्ट हुआ। तब उस भील ने चंदना को ले जाकर अपने भीलों के राजा सिंह को दे दी। सिंह भील कन्या से काम सम्बन्धी वार्तालाप करने लगा। चंदना की दृढ़ता को देख उस भील की माता ने उसे समझाकर चंदना की रक्षा की।

अनन्तर भील ने चंदना को कौशाम्बी नगरी के एक मित्रवीर को सौंप दिया। इसने अपने स्वामी सेठ वृषभसेन के पास चंदना को ले जाकर दिया और बदले में बहुत सा धन ले आया। सेठ ने चन्दना को उत्तम कुलीन कन्या समझकर उसे अपनी पुत्री के समान रक्खा था। एक दिन चन्दना सेठ के लिए जल पिला रही थी। उस समय उसके केशों का कलाप छूट गया था और जल से भीगा हुआ पृथ्वी पर लटक रहा था। उसे वह यत्न से एक हाथ से सँभाल रही थी। सेठ की स्त्री भद्रा ने जब चंदना का वह रूप देखा तो शंका से भर गई। उसने मन में समझा कि मेरे पति का इसके साथ संपर्क है। ऐसा मानकर वह बहुत ही कुपित हुई।

उस दुष्टा ने चन्दना को सांकल से बाँध दिया तथा उसे खाने के लिए मिट्टी के शकोरे में

१. आराधना कथा कोश।

काँजी से मिला हुआ कोदों का भात दिया करती थी। ताड़न मारण आदि के द्वारा वह उसे निरंतर कष्ट पहुँचाने लगी थी। परन्तु चन्दना निरन्तर आत्मनिंदा करती रहती थी। उसने यह सब समाचार वहीं कौशाम्बी की महारानी अपनी बड़ी बहन मृगावती को भी नहीं कहलाया।

किसी एक दिन तीर्थंकर महावीर स्वामी मुनि अवस्था में वहाँ आहार के लिए आ गए। उसी समय चन्दना भगवान् के सामने जाने के लिए खड़ी हुई। तत्क्षण ही उसके सांकल के बंधन टूट गये। उसके मुंड़े हुए सिर पर बड़े-बड़े केश दिखने लगे और उसमें मालती पुष्प की मालायें लग गईं। उसके वस्त्र आभूषण सुन्दर हो गये। उसके शील के माहात्म्य से मिट्टी का सकोरा सुवर्ण पात्र बन गया और कोदों का भात शाली चावलों का भात बन गया।[1] उस समय बुद्धिमती चंदना ने बहुत ही भक्तिभाव से भगवान् का पड़गाहन किया और नवधाभक्ति करके विधिवत् भगवान् को खीर का आहार दिया। उसी समय देवगण आ गए, आकाश से पंचाश्चर्य वृष्टि होने लगी। जय जयकार की ध्वनि से सारा नगर गूँज उठा। वहाँ बेशुमार भीड़ इकट्ठी हो गई। रानी मृगावती अपने पुत्र उदयन के साथ वहाँ आ गई। अपनी बहन चंदना को पहचान कर उसे अपनी छाती से चिपका लिया पुनः स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेर कर सारा समाचार पूछा। चंदना ने भी अपहरण से लेकर आज तक का सब हाल सुना दिया। सुनकर मृगावती बहुत ही दुःखी हुई पुनः चंदना को अपने घर ले आई।

यह देख भद्रा सेठानी और वृषभसेन सेठ दोनों ही भय से घबराए और मृगावती की शरण में आ गए। दयालु रानी ने उन दोनों से चंदना के चरणकमलों में प्रणाम कराया और क्षमा याचना कराई। चंदना ने भी दोनों को क्षमा कर दिया। तब वे बहुत ही प्रसन्न हुए और अनेक प्रकार से चंदना की प्रशंसा करते हुए चले गए। वैशाली में यह समाचार पहुँचते ही उसके वियोग से दुःखी माता-पिता, भाई-भावज आदि सभी लोग वहाँ आ गये और चंदना से मिलकर बहुत ही संतुष्ट हुए।[2]

भगवान् महावीर को वैशाख सुदी १० के दिन केवलज्ञान प्रगट हो गया। इन्द्र ने समवशरण की रचना कर दी। किन्तु गणधर के अभाव में भगवान् की दिव्यध्वनि नहीं खिरी। श्रावण वदी एकम को ६६ दिन बाद इन्द्र गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति ब्राह्मण को वहाँ लाए। उन्होंने भगवान् के दर्शन से प्रभावित हो जैनेश्वरी दीक्षा ले ली और भगवान् के प्रथम गणधर हो गए। चंदना ने भी तभी आकर भगवान् के पास आर्यिका दीक्षा ले ली। और सर्व आर्यिकाओं में गणिनी हो गई।

भगवान् के समवसरण में ११ गणधर, चौदह हजार मुनि, छत्तीस हजार आर्यिकायें, एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकायें थीं। उस समय सभी आर्यिकाओं ने चंदना से ही दीक्षा ली थी। यहाँ तक कि उनकी बड़ी बहन चेलना ने भी उन्हीं चंदना से ही दीक्षा ली थी। आजकल जो चन्दनबाला के नाटक में सेनापति द्वारा पिता को मारना, माता को मारना और चंदना को कष्ट देना आदि लिखा है सो गलत है और जो चंदना के बारे में लिखा है कि वह सेठ के पैर धो रही थी। सेठजी उसके केशों को हाथ से उठा रहे थे। यह भी गलत है। चंदना का विद्याधर

---

१. शीलमाहात्म्यसंभूतपृथुहेमशराविका। शाल्यन्नभावत्कोद्रवोदनं विधिवत्सुधीः ॥

—उत्तरपुराण, पर्व ७४, पृ० ४६६

२. उत्तरपुराण, पृ० ४८६

द्वारा अपहरण हुआ तब उसके माता-पिता आदि दुःखी हुए हैं, एव वह सेठ के यहाँ रहती हुई सेठ को जल पिला रही थी। यहाँ उत्तरपुराण में यह बात स्पष्ट है अतः उत्तरपुराण का स्वाध्याय करके सही ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

●

आर्यिका विजया

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में हेमांगद नाम का देश है। इस में राजपुरी नाम की राजधानी थी। उसमे सत्यंधर राजा राज्य करते थे। पट्टरानी का नाम विजया था। राजा सत्यंधर को विजया रानी के प्रति अत्यधिक स्नेह होने से उन्होंने अपने मंत्रियों के मना करने पर भी मंत्री काष्ठांगार को अपना राज्यभार सँभाल दिया और आप महल में रहने लगे। एक बार रात्रि के पिछले भाग में रानी ने तीन स्वप्न देखे, उसने पति से कहा—हे आर्यपुत्र ! मैंने पहले स्वप्न में अशोक वृक्ष देखा है पुनः देखा वज्र के गिरने से वह वृक्ष गिर गया। और उसी के निकट एक दूसरा अशोक वृक्ष निकल आया तथा उस वृक्ष के अग्रभाग पर स्वर्ण मुकुट है और उसमे आठ मालायें लटक रही हैं। राजा ने कहा—अशोक वृक्ष और उसमें आठ मालाओं से तुम पुत्र को प्राप्त करोगी उसके आठ रानियां होगी। और प्रथम वृक्ष का पतन मेरे अमंगल को सूचित कर दिया। इतना सुनकर रानी शोक से मूच्छित हो गई। राजा ने अनेक प्रकार से समझाकर रानी को सान्त्वना दी। कुछ दिनों बाद रानी ने गर्भ धारण किया। राजा ने एक मयूर यंत्र बनवाया और रानी को उसमें बिठाकर मनोहर वनों में क्रीड़ा किया करते थे।

इसी मध्य काष्ठांगार ने राज्य को हड़पने के भाव से राजा पर चढ़ाई कर दी। तब राजा सत्यंधर जैसे-तैसे विजया रानी को समझाकर मयूरयंत्र में बिठाकर उड़ा दिया और आप युद्ध के लिए निकला। युद्ध करते हुए राजा ने अपना मरण देख वहीं पर परिग्रह का त्याग कर सल्लेखना धारण कर ली जिससे स्वर्ग में देव हो गया। मयूर यंत्र ने रानी को नगर के निकट श्मशान में गिरा दिया था। राजा के मरते क्षण ही रानी ने श्मशान में ही पुत्ररत्न को जन्म दिया।

रानी पुत्र को गोद में लेकर विलाप कर रही थी कि उसी समय वहाँ एक देवी ने आकर रानी को सान्त्वना देकर पुत्र को वहीं रखकर छिप जाने को कहा और समझाया—हे मातः, एक वैश्यपति इसे पालन करेगा। उसी क्षण राजपुरी नगरी का ही सेठ गंधोत्कट अपने मृतक पुत्र को वहाँ छोड़कर निमित्तज्ञानी के कहे अनुसार वहाँ पुत्र को खोज रहा था। उसने इसे उठा लिया। उधर रानी ने "जीव" ऐसा आशीर्वाद दिया। गंधोत्कट ने घर लाकर जीवन्धर ऐसा नामकरण कर दिया। पुत्र जन्म का उत्सव मनाया। कुछ दिन बाद गंधोत्कट की पत्नी सुनंदा ने एक पुत्र जन्म दिया जिसका नंदाढ्य नाम रक्खा गया।

उधर वह देवी विजया को पास के तपोवन में ले गई, वहाँ वह अपने प्रच्छन्न वेष से रहने लगी।

एक बार एक तापसी को भस्मक व्याधि थी। जीवंधर से उसे अपने हाथ से एक ग्रास दे

दिया जिससे उसकी क्षुधाव्याधि शांत हो गई। इससे उस तापसी आर्यनन्दी ने उस बालक को ले जाकर सभी शास्त्रों में विद्याओं में निष्णात बना दिया। एवं तुम राजा सत्यंधर के पुत्र हो यह बता दिया। किसी समय जीवंधर ने कुत्ते के मरणासन्न स्थिति में णमोकार मन्त्र सुनाया था जिससे वह सुदर्शन नाम का यक्षेन्द्र हो गया था। उसने आकर जीवंधर को नमस्कार कर कृतज्ञता ज्ञापन की और किसी भी आदि संकट के समय स्मरण करने को कहकर चला गया।

इधर जीवंधर ने सोलह वर्ष तक अनेक सुख दुःखों का अनुभव किया और इनका आठ कन्याओं के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। अनंतर तपोवन में माता विजया से मिलकर उन्हें राजपुरी ले आये। अपने मामा जो विन्द महाराज के साथ मिलकर काष्ठांगार से युद्ध करके उसे मारकर विजयी हुए। उसी समय वहाँ घोषणा कर दी गई कि ये जीवंधर कुमार राजा सत्यंधर के पुत्र हैं। तभी वहाँ पर बड़े ही महोत्सव के साथ जीवंधर का राज्याभिषेक हुआ।

जब विजयारानी ने पुत्र को पिता के पद पर प्रतिष्ठित हुआ देख लिया तब वे बहुत ही सन्तुष्ट हुईं। लालन-पालन करने वाले पिता गंधोत्कट और माता सुनन्दा भी वहीं जीवंधर के पास रहते थे। अब विजया को पूर्ण वैराग्य हो चुका था। उसने पुत्र जीवंधर कुमार से अनुमति लेकर जाकर सुनन्दा के साथ गणिनी आर्यिका के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। दोनों माताओं के दीक्षा ले लेने से राजा जीवंधर बहुत ही दुःखी हुए। वहाँ पहुँच कर दोनों आर्यिका माताओं का दर्शन किया। पुनः विषाद करने लगे। तब गणिनी आर्यिका ने इन्हें बहुत कुछ धर्मोपदेश दिया और समझाया। जिससे कुछ-कुछ सान्त्वना को प्राप्त होकर उन्होंने दोनों आर्यिकाओं के बार-बार चरणस्पर्श किये। पुनः यह प्रार्थना की कि "हे मातः, आपको इसी नगरी में रहना चाहिये अन्यत्र विहार करने का स्मरण भी नहीं करना चाहिये' ।"

इस बात का अत्यधिक आग्रह करके वे वहीं पर बैठे रहे। जब दोनों आर्यिकाओं ने तथास्तु कहकर जीवंधर कुमार की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली, तभी वे वहाँ से वापस चलकर अपने घर आये।

अनंतर तीस वर्ष तक राज्य सुख का अनुभव कर जीवंधर स्वामी ने भी अपने पुत्र को राज्य देकर भगवान् महावीर के समवसरण में दीक्षा ले ली। उनकी आठों रानियों ने भी आर्यिका दीक्षा ले ली। घोर तपश्चरण के द्वारा घातिया कर्मों का नाश करके जीवंधर स्वामी ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। अन्त में सर्व कर्मों से मोक्ष पद को प्राप्त हो गये। महारानी विजया सुनन्दा आदि आर्यिकाओं ने भी स्त्रीपर्याय को छेदकर स्वर्ग में देवपद प्राप्त कर लिया है।



१. पुनः पुनः प्रगृह्य पादं प्रसवित्र्योः 'अत्र नगर्यामासिका कर्तव्या। न च स्मर्तव्याऽन्यत्र यात्रा' इति ययाचे।
—गद्यचिंतामणि, पृ० ४०१।

आर्यिका ज्ञानमती माताजी

क्षुल्लिका अभयमती

यौधेय देश में राजपुर नाम का नगर है। वहाँ का राजा मारिदत्त बहुत ही पराक्रमी था किन्तु धर्म से शून्य मिथ्यादृष्टि था। एक बार नगर में एक भैरवाचार्य आया। उसने राजा से कहा—मैं आपको आकाश गमन की शक्ति प्रदान करूँगा। आप मेरे कहे अनुसार बलिकर्म कीजिये। महाराज ने उसके कहे अनुसार बहुत से पशु पक्षियों के युगल एकत्रित करा दिये। उसने गाँव के बाहर उद्यान में बने हुए चंडमारी देवी के मंदिर में बलि का आयोजन रक्खा। समय पर राजा पहुँच गया किन्तु उस भैरवाचार्य ने कहा—महाराज! मनुष्य युगल की कमी है। राजा की आज्ञानुसार किंकर मनुष्य युगल को लेने निकल पड़े।

इधर श्री दिगम्बर मुनि सुदत्ताचार्य अपना चतुर्विध संघ लेकर अगले दिन वहाँ आकर गाँव के एक तरफ पर्वत पर ठहर गए थे। उन्होंने अपने अवधिज्ञान से यह जान लिया कि—

"आज यहाँ महाहिंसा का दिवस है। चंडमारी के मंदिर में सैकड़ों पशुओं की बलि होने वाली है। यह हिंसाकार्य हमारे संघस्थ क्षुल्लक युगल के निमित्त से रुकने वाला है।"

उन्होंने स्वयं उपवास[1] ग्रहण कर लिया तथा संघ के अन्य साधु साध्वियों को आस पास गाँवों में आहार करने हेतु भेज दिया और क्षु० अभयरुचि तथा क्षुल्लिका अभयमती को आदेश दिया कि—

"तुम दोनों इसी राजपुरी मे आहार के लिए चले जाओ।"

गुरुदेव के आज्ञा, यह क्षुल्लक युगल हाथ में पिच्छी कमण्डलु लिए आहार के लिए जा रहे थे कि मध्य में राजकिंकरों ने आकर इन्हें पकड़ लिया और चंडमारी देवी के मंदिर मे ले जाकर राजा मारिदत्त के सामने खड़े कर दिया। राजा ने इन्हें देखा कि उसके हृदय मे करुणा रस उमड़ आया। उसने उन दोनों से पूछा—

"तुम दोनों इतनी छोटी उम्र में ऐसी कठोर दीक्षा लेकर क्यों घूम रहे हो।"

क्षुल्लक ने पहले अपनी बहन को सान्त्वना दी और कहा—

"हे बहन! यदि यमराज भी आ जाय तो भी तुम अपने को रक्षकहीन मत समझना। क्योंकि संयमी साधु पुरुषों की सम्यग्ज्ञान पूर्ण तपश्चर्या समस्त ग्रामो व पर्वतों मे उनकी रक्षा करती है।"[2]

तब अभयमती ने कहा—

"हे विशिष्टज्ञानी बंधु! पूर्वजन्म में (चंद्रमती माताजी की पर्याय में) किए गए स्नेह का फल मैंने पा लिया है। इसलिए अब आप भी अपने व मेरे शरीर से ममत्व छोड़कर आत्महित में ही अपना चित्त लगाओ।"

बहन की उत्तम वाणी सुनकर क्षुल्लक निश्चिंत हो गए और राजा के पूछे जाने पर अपना परिचय सुनाने लगे। बोले—

---

१. वह दिवस चैत्र सुदी नवमी का था। "हिंसादिवसत्वात् नवमीदिनेऽपि उपोषितवान्।"

—यशस्तिलकचंपू, मूल संस्कृत, पृ० १३४

२. विशुद्धबोधं तप एव रक्षा, ग्रामेष्वरण्येषु च संयतानाम्।
अतः कृतान्तेऽपि समीपवृत्ती, मातर्मनो मास्म कृथा निरीशम् ॥१३९॥

"राजन् ! मेरा इतिहास आपके हृदय को द्रवित कर देने वाला है।

इसी भरत क्षेत्र मे उज्जयिनी नाम की नगरी है। वहाँ के राजा यशोघ की रानी का नाम चंद्रमती था। उनके यशोधर नाम का पुत्र हुआ। राजा ने यशोधर को राज्य देकर दीक्षा ले ली। एक समय यशोधर ने अपनी रानी अमृता देवी को कुबड़े के साथ व्यभिचार करते देख लिया तब विरक्तमन हो दीक्षा के लिए जाने लगे तथा माता से बोले कि मुझे खोटा स्वप्न हुआ है अतः मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। माता चंद्रमती ने पुत्रमोह में आकर पुत्र को चंडमारी देवी के सामने शांति के लिए बलि करा दी। इधर अमृता देवी को कुछ सन्देह हो जाने से उसने मुझे और मेरी माताजी चन्द्रमती को विष भोजन देकर मार दिया। मरकर माता का जीव कुत्ता हुआ और मैं मयूर हुआ। दोनों यशोधर के पुत्र राजा यशोमति के यहाँ आ गए। वहाँ कष्ट से मरकर नकुल सर्प हुए। वहाँ एक दूसरे को मारकर मरकर संसुमार और मत्स्य हुए। ये भी यशोमति के यहाँ तेल में तले गए, मारे गए, ब्राह्मणों को श्राद्ध मे खिलाए गए। पुनः ये बकरा बकरी हो गए। पुनरपि बकरा और भैंसा हुए। यहाँ भी ये काटे पकाए गए और पिता यशोधर की तृप्ति के लिए श्राद्ध में खिलाए गए। अनंतर कुक्कुट युगल हुए। तब राजा यशोमति के बाण से घायल हुए कि इतने में ही मुनिराज का उपदेश सुनकर ये प्रबुद्ध हुए और राजा यशोमति की रानी कुसुमावली के गर्भ मे आ गए। नव महीने बाद पुत्र पुत्री के युगल में उनका जन्म हुआ। जिनका नाम अभयरुचि और अभयमती रक्खा गया। वे दोनों बालक कुछ बड़े हुए तभी उन्हें गुरु का उपदेश मिला और जाति स्मरण भी हो गया। राजा यशोधर और माता चंद्रमती की पर्याय से लेकर सारी बातें याद हो आईं तब वे दोनों विरक्त हो महामुनि के पास क्षुल्लक-क्षुल्लिका बन गए। सो वे दोनो हम ही हैं। राजन् ! मैं अपनी पुत्रवधू कुसुमावली के गर्भ से जन्मा हूँ और ये मेरी बहन अपनी पौत्रवधू से जन्मी हैं। मेरी माता कुसुमावली के आप सगे भाई हैं अतः मेरे मामा हैं।

हे राजन् ! मैंने तो मात्र आटे के मुर्गे की ही बलि करके कई भवों तक महान् दुःख झेला है और यदि आप इन जीवित सैकड़ों पशुओं की बलि करेंगे तो पता नहीं किस गति में जायेंगे।"

इतना सुनकर राजा मारिदत्त का हृदय कांप उठा और तो क्या साक्षात् चंडमारी देवी प्रगट होकर क्षुल्लक-क्षुल्लिका के चरणो में गिर पड़ी और बोली—

"हे भगवन् ! क्षमा कीजिए और मुझे धर्म का उपदेश देकर मेरे अगले भव को सुधारिए।"

पुनः देवी ने क्षुल्लक से धर्मोपदेश सुनकर सारे पशुओं को बंधनमुक्त कर दिया और उस मंदिर मे सदा के लिए अभय की घोषणा कर दी और क्षुल्लक से सम्यक्त्व को ग्रहण कर लिया।

इसी बीच वहाँ स्वयं सुदत्ताचार्य मुनिराज आ गए। क्षुल्लक आदि सभी ने उठकर उन्हे नमस्कार किया और उन्हें उच्च आसन पर विराजमान किया। गुरुदेव ने भी वहाँ पर विशेषरीत्या अहिंसा का उपदेश दिया।

राजा मारिदत्त विरक्त होकर गुरु के समीप दीक्षित हो, मुनि बन गए। क्षुल्लक ने भी गुरु से मुनि दीक्षा ले ली और क्षुल्लिका अभयमती ने संघ की गणिनी से आर्यिका दीक्षा ले ली। अन्य और भी अनेक स्त्री पुरुषो ने दीक्षा ली थी तथा अनेक जनों ने श्रावक के व्रत स्वीकारें।

इस कथानक से यह स्पष्ट है कि पूर्वकाल में मुनि, आर्यिका और क्षुल्लक क्षुल्लिका सहित चतुर्विध संघ सतत विहार करता रहता था। ●

आदिपुराण में वर्णित आर्यिकायें

○ ○ ○

आर्यिका ज्ञानमती माताजी

आर्यिका ब्राह्मी-सुन्दरी

भगवान् ऋषभदेव को केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद उनकी पुत्री ब्राह्मी[1] जो कि भरत की छोटी बहन थी उन्होंने भगवान् के समवसरण में सर्वप्रथम आर्यिका दीक्षा ग्रहण की थी। ब्राह्मी की छोटी बहन सुन्दरी ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली थी। ये ब्राह्मी आर्यिका तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में तीन लाख, पचास हजार आर्यिकाओं मे प्रधान गणिनी हुई थी।



विदेह क्षेत्र की आर्यिकायें

विदेह क्षेत्र में एक पुण्डरीकिणी नाम की नगरी है। वहाँ के राजा वज्रदंत चक्रवर्ती थे। इनकी लक्ष्मीमती रानी से श्रीमती कन्या का जन्म हुआ था।

इसी जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में पुष्कलावती देश है। उसमें उत्पलखेट नगर के राजा वज्रबाहु की रानी वसुन्धरा के वज्रजंघ नाम का पुत्र हुआ था। इन वज्रजंघ के साथ चक्रवर्ती की कन्या का विवाह हुआ था। ये वज्रजंघ इस भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड मे युग की आदि में धर्मतीर्थ के प्रवर्तक ऋषभ तीर्थंकर हुए हैं और श्रीमती का जीव हस्तिनापुर के राजकुमार दानतीर्थ के प्रवर्तक श्रेयांसकुमार हुए हैं।

चक्रवर्ती वज्रदंत ने विरक्त होकर यशोधर तीर्थंकर के शिष्य गुणधर मुनि के समीप जाकर अपने पुत्र, स्त्रियों तथा अनेक राजाओं के साथ जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की थी। महाराज वज्रदंत के साथ साठ हजार रानियों[2] ने, बीस हजार राजाओं ने और एक हजार पुत्रों ने दीक्षा धारण की थी। उसी समय श्रीमती की सखी पंडिता ने भी अपने अनुरूप दीक्षा धारण की थी—व्रत ग्रहण किये थे। वास्तव में पांडित्य वही है जो संसार से उद्धार कर दे।



---

१. भरतस्यानुजा ब्राह्मी दीक्षित्वा गुर्वनुग्रहात्।
गणिनीपदमार्याणां सा भेजे पूजितामरैः ॥ १७५ ॥—आदिपुराण, पर्व २४
ये सभी इसी भरतक्षेत्र की आर्यिकायें हैं।

२. देव्य. षष्टिसहस्राणि तत्र्यंशप्रमिता नृपाः।
प्रभुं तमन्वदीक्षन्त सहस्रं च सुतोत्तमाः ॥ ८५ ॥—महापुराण, पर्व ८
ये विदेह क्षेत्र की आर्यिकायें थीं।

गणिनी आर्यिका अमितमती

इस जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में एक पुण्डरीकिणी नाम की नगरी है, जो कि पुष्कलावती देश के मध्य में स्थित है। उस नगरी के राजा का नाम प्रजापाल था। राजा का कुबेरमित्र नाम का एक राजश्रेष्ठी था। कुबेरमित्र के धनवती आदि बत्तीस स्त्रियाँ थीं। इन सेठ के महल में एक कबूतर-कबूतरी का जोड़ा था जिनका नाम रतिकर और रतिषेणा रक्खा था। कुबेरदत्त के धनवती स्त्री से एक पुत्र हुआ था जिसका नाम कुबेरकान्त रखा गया था। इस कुबेरकांत का एक प्रियसेन नाम का मित्र था।

उसी नगर में एक समुद्रदत्त सेठ था। इनकी बहन धनवती कुबेरमित्र को ब्याही थी और कुबेरमित्र की बहन कुबेरमित्रा इन समुद्रदत्त की भार्या थी। समुद्रदत्त सेठ के प्रियमित्रा आदि बत्तीस कन्यायें थीं।

कुबेरमित्र के पुत्र कुबेरकांत के साथ समुद्रदत्त सेठ ने अपनी प्रियदत्ता पुत्री का विवाह कर दिया। इस विवाह के समय ही विरक्त होकर राजा प्रजापाल की पुत्री गुणवती और यशस्वती ने आर्यिका अमितमती[1] और अनंतमती के समीप दीक्षा धारण कर संयम ग्रहण कर लिया था। कुछ समय बाद राजा प्रजापाल ने भी अपने पुत्र लोकपाल को राज्य देकर शीलगुप्त मुनि के पास संयम धारण कर लिया तब उनकी कनकमाला आदि रानियों ने भी दीक्षा ले ली थी।

किसी समय अमितमती और अनन्तमती दोनों गणिनी आर्यिकायें जो कि गृहस्थाश्रम में जगत्पाल चक्रवर्ती की पुत्री थीं सो अपनी संघस्थ आर्यिका यशस्वती और गुणवती के साथ यहाँ पुण्डरीकिणी नगरी में आईं। आर्यिका के समाचार को विदित कर राजा लोकपाल और सेठ कुबेर-कांत सभी लोग अपनी भार्याओं के साथ-साथ उन आर्यिकाओं का दर्शन करने के लिए वहाँ आये। उपदेश सुना, तत्पश्चात् उन्हें आहार दान आदि दिया। उन लोगों ने बहुत दिनों तक आर्यिकाओं से समीचीन धर्म का उपदेश प्राप्त किया तथा दान आदि शुभकार्यों में प्रवृत्ति की।

एक दिन कुबेरकांत के घर दो जंघाचारण मुनि पधारे। उस समय कुबेरकांत आदि ने बड़ी भक्ति से उनका पड़गाहन किया। उन मुनियों के दर्शन मात्र से ही कबूतरी को जातिस्मरण हो गया जिससे कबूतरयुगल ने अपने पंखों से मुनिराज के चरण कमलों का स्पर्श कर उन्हें नमस्कार किया और परस्पर की प्रीति छोड़ दी। यह देखकर उन मुनियों को भी संसार की स्थिति का विचार करते हुए वैराग्य हुआ और वे बिना आहार किये ही सेठ के घर से वापस चले गये। जब राजा लोकपाल को मुनि के इस प्रकार चले जाने का कारण विदित नहीं हुआ तब उसने गणिनी अमितमती आर्यिका के पास जाकर विनय से इसका कारण पूछा। अमितमती ने भी जैसा सुना था वैसा सुनाना शुरू किया—

इसी विदेह क्षेत्र के पुष्कलावती देश में जो विजयार्ध पर्वत है, उसके निकट के वन के पास एक शोभानगर नाम का विशाल नगर है। वहाँ के राजा का नाम प्रजापाल और रानी का नाम देवश्री था। उस राजा के सामंत का नाम शक्तिषेण था और उसकी पत्नी का नाम अटवीश्री था। इन दोनों के एक पुत्र था जिसका नाम सत्यदेव था। इन सभी ने मेरे द्वारा धर्मोपदेश सुनकर मांस और मदिरा का त्याग कर दिया। शक्तिषेण ने यह नियम कर लिया कि मैं मुनियों के आहार का

---

१. आदिपुराण, पृ० ४५४। ये विदेह क्षेत्र की आर्यिकायें थीं।

समय टालकर भोजन करूँगा। अटवीश्री ने अनुप्रबुद्ध कल्याण नाम का उपवास व्रत ग्रहण कर लिया तथा सत्यदेव ने साधुओं की स्तुति करने का नियम ले लिया।

एक दिन शक्तिषेण मृणालवती नगरी के समीप सर्पसरोवर के तट पर ठहरा हुआ था। उसी समय एक घटना घटी सो इस प्रकार है—उस मृणालवती में एक सेठ का नाम सुकेतु था। उसकी भार्या का नाम कनकश्री था। इनके पुत्र का नाम भवदेव था किन्तु दुराचारी होने से उसे लोग दुर्मुख कहते थे। उसी नगर में श्रीदत्त सेठ थे उनकी सेठानी विमलश्री के रतिवेगा कन्या थी। यह दुर्मुख उस रतिवेगा से विवाह करना चाहता था किन्तु उसके माता-पिता ने यह कन्या सुकांत को ब्याह दी थी। दुर्मुख ने कुपित हो इन दोनों सुकांत और रतिवेगा को मारना चाहा तब ये दोनों डर कर भागे और सरोवर के तट पर ठहरे हुए शक्तिषेण के पास आ गये। यह देखकर वह दुर्मुख वापस चला गया।

इधर शक्तिषेण ने एक दिन दो चारणमुनियों को आहारदान देकर महान् पुण्य संचित कर लिया था। दान की अनुमोदना से सुकांत और रतिवेगा ने भी बहुत बड़ा पुण्य प्राप्त कर लिया था। उसी पास में एक मेरुकदत्त सेठ अपनी धारिणी भार्या और भूतार्थ, शकुनि, बृहस्पति तथा धन्वन्तरि इन चार मन्त्रियो के साथ आकर वहाँ ठहर गये थे। एक दिन ये सभी वहाँ वार्तालाप करते हुए बैठे थे कि इतने में ही वहाँ एक विकलांग पुरुष आया। उसे देखकर सेठ ने मंत्रियों से उसके हीन अंग होने का कारण पूछा। वे लोग अपनी-अपनी बुद्धि की चतुरता से कुछ न कुछ कारण बता रहे थे तभी उसका पिता खोजते हुए वहाँ आ गया। जब वह पुत्र उसके साथ नहीं गया तब उसने विरक्त होकर दीक्षा ले ली। अन्त मे संन्यास विधि से मरण कर लोकपाल हो गया। उधर दुर्मुख ने एक दिन समय पाकर सुकांत और रतिवेगा को जलाकर मार डाला तब वे दोनों मरकर सेठ कुबेरकांत के घर में कबूतर-कबूतरी हुए है।[१] सेठ मेरुकदत्त और उनकी पत्नी ने भी दीक्षा ले ली थी। वे ही इस पर्याय मे कुबेरकांत के माता-पिता हुए हैं और शक्तिषेण का जीव कुबेरकांत हुआ है। शक्तिषेण ने पूर्वजन्म मे सर्पसरोवर के निकट डेरे में जिन दो चारण मुनियों को आहार दिया था वे ही मुनिराज इस समय इस कुबेरकांत के यहाँ आये थे किन्तु इन्हे कबूतर युगल को देखकर दया उत्पन्न हो गई इसलिए वे निराहार वापस चले गये हैं। उन्ही के उपदेश से यह भवावली सुनकर मैंने तुम्हें सुनाई है। इस पूर्वभव के विस्तार को सुनकर कुबेरमित्र की स्त्री धनवती ने तथा उन दोनों आर्यिकाओं की माता कुबेरसेना ने भी अपनी पुत्री गणिनी आर्यिका अमितमती के समीप आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर लीं[२]।

इस प्रकार से जैन सिद्धांत में संयम की ही पूज्यता है। देखो, माता भी पुत्री से दीक्षा लेकर उनका शिष्यत्व स्वीकार कर उनके संघ में रहते हुए उन्हे पहले नमस्कार करती है। उनसे प्रायश्चित्त ग्रहण करती हैं और उनके अनुशासन को पालते हुए संघ की मर्यादा को निभाती हैं। दीक्षा लेने के बाद गृहस्थावस्था के माता-पिता से मुनि या आर्यिका का कोई भी सम्बन्ध नहीं रह जाता है। अतएव वे हो माता-पिता दीक्षित हुए अपने पुत्र या पुत्री को गुरु ही मानते हैं। यही प्राचीन आगम परम्परा है और यही आज भी साधु संघों मे देखने में आ रहा है।



१. ये कबूतर युगल ही आगे जयकुमार और सुलोचना हुए हैं।   २. आदिपुराण पर्व ४६।

आर्यिका ज्ञानमती माताजी

आर्यिका कनकश्री

जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में एक वत्सकावती देश है। उसमें प्रभाकरी नाम की एक नगरी है। उसके राजा स्तिमितसागर की वसुन्धरा रानी से अपराजित नाम का पुत्र हुआ तथा राजा की अनुमति रानी से अनंतवीर्य पुत्र हुआ। ये दोनों भाई बलभद्र और नारायण थे। उनके यहाँ बर्बरी और चिलातिका नाम की दो नृत्यकारिणी थीं। किसी एक दिन राजा सभा में उन नृत्यकारिणियों का नृत्य देख रहे थे कि इसी बीच नारदजी वहाँ आ गये। दोनों भाइयों ने नृत्य देखने में तन्मय होने से नारदजी का यथोचित आदर नहीं किया। जिससे वे कुपित हुए बाहर निकल गये। वे घूमते हुए शिवमंदिर नगर के राजा दमितारि यहाँ पहुंचे। ये राजा चक्ररत्न के स्वामी थे और तीन खण्ड पर अपना शासन कर रहे थे। नारदजी का वहाँ बहुत सम्मान हुआ। तब नारदजी ने राजा से उन नर्तकियों की बात कह दी। दमितारि ने प्रभाकरी नगरी को दूत भेज दिया। ये होनहार अपराजित और अनंतवीर्य कुछ परामर्श कर स्वयं नर्तकी का वेष बनाकर वहाँ पहुँच गये और दमितारि की सभा में नृत्य करने लगे। राजा दमितारि ने नृत्य को देखकर उन नर्तकियों से कहा कि तुम मेरी पुत्री कनकश्री को नृत्यकला सिखा दो।

उन दोनों ने कनकश्री को नृत्य सिखाना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन दोनों ने गान कला में निपुण अनंतवीर्य के गुणों का वर्णन किया। तब राजपुत्री ने पूछा ये कौन हैं? तब उसने पूरा परिचय बता दिया। कनकश्री ने पूछा क्या वह देखने को मिल सकता है। तब उन नर्तकियों ने अपना साक्षात् रूप दिखा दिया। उस कनकश्री को अपने मे आसक्त देख अनंतवीर्य ने नर्तकी का वेष बनाकर उसका अपहरण कर लिया और वहाँ से निकलकर आकाशमार्ग से जाने लगे। तब राजा दमितारि को सूचना मिलते ही उसने युद्ध के लिए सेना भेज दी। बलभद्र अपराजित ने अनंतवीर्य और कनकश्री को दूर रखकर स्वयं युद्ध करके सभी योद्धा पराजित कर दिये। तब राजा दमितारि ने पता लगाया कि ये नर्तकी कौन हैं? ये स्वयं प्रभाकरी के राजा अपराजित और अनंतवीर्य हैं। ऐसा ज्ञातकर स्वयं बहुत बड़ी सेना लेकर युद्ध के लिए निकल पड़ा। बहुत देर तक युद्ध चलता रहा अन्त से दुर्दैव से प्रेरित हो दमितारि ने अपना चक्र अनन्तवीर्य के ऊपर चला दिया। वह चक्र अनंतवीर्य की प्रदक्षिणा देकर उनके दाहिने कंधे पर ठहर गया जिससे अनंतवीर्य ने अर्धचक्रवर्ती दमितारि को मारकर आप अर्धचक्री नारायण प्रसिद्ध हो गया।

इस तरह युद्ध समाप्त कर ये दोनों भाई कनकश्री को साथ लेकर आकाशमार्ग से जा रहे थे कि उनके विमान सहसा रुक गये। नीचे देखा तो समवसरण दिखाई दिया। ये उतरकर भक्ति से समवसरण में पहुँचे। वहाँ भगवान् की वन्दना की। ये दमितारि के पिता कीर्तिधर थे। इन्होंने शांतिकर मुनिराज के समीप दीक्षा लेकर तपश्चरण किया। एक बार एक वर्ष का प्रतिमायोग लेकर विराजमान थे, तभी इनको केवलज्ञान प्रगट हो गया तब देवों ने आकर समवसरण की रचना की और दिव्यध्वनि के द्वारा उनका दिव्य उपदेश अगणित भव्यों ने प्राप्त किया है। इन अपराजित और अनंतवीर्य ने भगवान् की दिव्यध्वनि में धर्मकथायें सुनीं। कनकश्री ने अपने पितामह को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और पुनः प्रश्न किया—हे भगवन्! मैने ऐसा कौन सा पाप किया था।

कि जिससे मेरे कारण मेरे पूज्य पिता का मरण हो गया ? जिनेन्द्रदेव ने अपनी दिव्यध्वनि से कहना शुरू किया—

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र की भूमि पर एक शंख नाम का नगर था। उसमें देविल नाम का वैश्य रहता था। उसकी बन्धुश्री नाम की स्त्री थी। उनके कई पुत्रियाँ हुईं जिनमें से तू बड़ी पुत्री श्रीदत्ता हुई थी जो बहुत ही सेवाभावी और सती थी। तेरी जो छोटी बहनें थीं वे कुष्ठी, लंगड़ी, टोंटी, बहरी, कुबड़ी, कानी और खंजी थीं। तू इन सबका पालन स्वयं करती थी। तूने किसी समय सर्वशैल नामक पर्वत पर विराजमान सर्वयश मुनिराज की वंदना करके मन में बहुत ही शांति प्राप्त की, उनसे अहिंसाव्रत लिया और परिणाम निर्मल करके गुरु से धर्मचक्र नाम का व्रत ग्रहण कर विधिवत् उपवास किया।

किसी दूसरे दिन तूने सुव्रता नाम की आर्यिका का पड़गाहन कर उन्हें आहारदान दिया। उन आर्यिका ने पहले उपवास किया हुआ था। इसलिए आहार लेने के बाद उन्हें वमन हो गया। तब सम्यग्दर्शन न होने से तूने उन आर्यिका से घृणा की। तूने जो अहिंसा व्रत पाला था और धर्म-चक्र व्रत के उपवास किये थे उसके पुण्य से तू आयु के अन्त में मरकर सौधर्म स्वर्ग में सामानिक जाति की देवी हुई और वहाँ से चयकर राजा दमितारि की मंदरमालिनी नाम की रानी से कनकश्री नाम की पुत्री हुई है। तूने जो आर्यिका से घृणा की थी उसका फल यह हुआ कि ये लोग तेरे बलवान पिता को मारकर तुझे हरण कर ले आये और तुझे पितृवियोग का दुःख हुआ है। यही कारण है कि बुद्धिमान लोग साधुओं से घृणा नहीं करते हैं।[1]

यह सब सुनकर कनकश्री कर्म के फल का विचार करते हुए जिनेन्द्रदेव की वंदना कर नारायण और बलभद्र के साथ प्रभाकारी नगरी में आ गई किन्तु उसके हृदय में पिता के मरने का बहुत ही शोक रहता था।

इधर सुघोष और विद्युद्दंष्ट्र कनकश्री के भाई थे। वे बल से उद्धत थे और अपने शिवमंदिर नगर में ही अनंतवीर्य के पुत्र अनंतसेन के साथ युद्ध कर रहे थे। यह सुन कर बलभद्र तथा नारायण को बहुत ही क्रोध आया। उन्होंने उन दोनों को बाँध लिया। यह सुनकर कनकश्री उनके दुःख को सहन नहीं कर सकी और अपने पक्षबल के बिना कांतिहीन तथा क्षीण हो गई। शोक से अत्यन्त दुःखी हो उसने कामभोग की सब इच्छा छोड़ दी, वह केवल भाइयों के दुःख दूर करना चाहती थी। उसने बलभद्र और नारायण से प्रार्थना कर अपने दोनों भाइयों को बन्धन से छुड़वाया। तथा स्वयंप्रभ नामक तीर्थंकर के समवसरण में जाकर धर्मरूपी रसायन का पान कर सुप्रभा नाम की गणिनी के पास आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली। कनकश्री ने आर्यिका जीवन में घोर तपश्चरण किया। अपना सम्यग्दर्शन निर्मल किया पुनः अन्त में समाधि से मरण कर सौधर्म स्वर्ग में देवपद को प्राप्त कर लिया है।



---

१. ....विचिकित्साफलं त्विदं ॥५००॥
सबलं पितरं धृत्वा त्वं नीतासि दुःखिनी।
विचिकित्सां न कुर्वन्ति तस्मात्साधौ सुधीजनाः ॥ —उत्तरपुराण पर्व ६३, पृ० १७२।
(ये विदेह क्षेत्र की आर्यिका हैं)

आर्यिका सुमतिमती

जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में वत्सकावती नाम का देश है। उस देश में प्रभाकरी नाम की एक नगरी है। किसी समय वहाँ पर अपराजित और अनंतवीर्य नाम के दो भाई बलभद्र और नारायण पद पर स्थित होकर तीन खण्ड वसुन्धरा पर शासन कर रहे थे। बलभद्र अपराजित के सुमति नाम की एक कन्या थी जो अतिशय गुणों से सम्पन्न और सौन्दर्य की खान थी।

एक समय राजा अपराजित ने दमवर नामक चारणऋद्धिधारी मुनि को आहार दिया। उसी समय देवों ने आकाश से रत्नवृष्टि, पुष्पवृष्टि आदि पंचाश्चर्य किये। उस अवसर पर कन्या सुमति वहाँ खड़ी हुई थी। राजा की दृष्टि सहसा उस पर पड़ी और उन्होंने सोचा—पुत्री विवाह के योग्य हो गई है अतः इसके लिए उचित वर की खोज करनी चाहिये। राजा अपराजित ने अपने छोटे भाई अनन्तवीर्य नारायण से परामर्श कर स्वयंवर की घोषणा कर दी।

चक्रवर्ती द्वारा निर्मित कराये गये विशाल स्वयंवर मण्डप में करोड़ों राजपुत्र उपस्थित थे। कन्या सुमति पिता की आज्ञा से रथ में बैठकर स्वयंवर मण्डप में आ गई। उसी क्षण एक देवी अपने दिव्य विमान में बैठकर आकाशमार्ग से आई और सुमति से कहने लगी—सखि ! तुम्हें याद है क्या ? हम दोनों कन्यायें स्वर्ग में रहा करती थीं। उस समय हम दोनों के बीच यह प्रतिज्ञा हुई थी कि जो पृथ्वी पर पहले अवतार लेगी उसे दूसरी कन्या समझावेगी। हम दोनों के पूर्वभवों का क्या सम्बन्ध है सो बता रही हूँ तुम ध्यान से सुनो।

पुष्कराधंद्वीप में भरतक्षेत्र के नन्दनपुर नामक नगर में एक अमितविक्रम नाम का राजा था। उसकी आनंदमती नाम की रानी से हम दोनों धनश्री और अनन्तश्री नाम की कन्यायें हुई थीं। किसी एक दिन हम दोनों ने सिद्धकूट में विराजमान नन्दन नाम के मुनिराज से धर्म का स्वरूप सुना, व्रत ग्रहण किये तथा सम्यग्ज्ञान के साथ-साथ अनेक उपवास किये।

किसी एक समय त्रिपुरनगर का स्वामी वज्रांगद विद्याधर अपनी वज्रमालिनी स्त्री के साथ मनोहर नामक वन में जा रहा था कि वह हम दोनों को देखकर आसक्त हो गया। वह उसी समय वापस अपनी नगरी को चला गया। वहाँ अपनी पत्नी को छोड़कर शीघ्र ही वापस आकर हम दोनों को पकड़ कर आकाशमार्ग से जाने लगा कि उसी बीच में उसकी पत्नी संदिग्ध हो वहाँ आ गई। तब भय से उस वज्रांगद ने हम दोनों को वहीं से नीचे गिरा दिया। हम दोनों वंशवन मे धीरे-धीरे गिर कर जमीन पर आ गईं। उस समय वहाँ निर्जन वन मे जीवन का कोई उपाय न देखकर संन्यास विधि से मरण किया। जिससे मैं तो व्रत और उपवास के पुण्य से सौधर्म इन्द्र की नवमिका नाम की देवी हुई हूँ। और तू कुबेर की रति नाम की देवी हुई थी।

एक बार दोनों देवियाँ परस्पर मिलकर नन्दीश्वर द्वीप में महामहयज्ञ पूजा देखने गयी थीं। वहाँ से लौटकर मेरु पर्वत की वंदना करने लगी। वहीं पर वन में विराजमान धृतिषेण नामक चारणऋद्धिधारी मुनि के दर्शन किये थे। अनन्तर उनसे प्रश्न किया था कि—

हे भगवन् ! हम दोनों की मुक्ति कब होगी ? तब मुनिराज ने बताया था कि इस भव के चौथे भव में तुम दोनों मुक्ति प्राप्त करोगी। हे बुद्धिमती सुमते ! उन सारी बातों को अवधिज्ञान से जानकर मैं इस समय तुम्हें यहाँ समझाने आई हूँ। इतना सुनकर सुमति को वैराग्य हो गया। उसने उसी समय अपने पिता से आज्ञा लेकर सुव्रता नाम की आर्यिका के पास जाकर सात सौ

४९

कन्याओं के साथ आर्यिका दीक्षा ले ली ।[1]

इस घटना से समवसरण में रंग में भंग हुआ देखकर सभी राजा लोग उस कन्या के ज्ञान और वैराग्य की प्रशंसा करते हुए अपने अपने नगर को चले गये। सुमति ने आर्यिका बनकर बहुत काल तक उग्र-उग्र तपश्चरण किया और आयु के अन्त में समाधि से मरणकर के सम्यक्त्व के प्रभाव से स्त्रीलिंग से छूटकर आनत नामक तेरहवें स्वर्ग के अनुदिश विमान में देवपद को प्राप्त कर लिया।

●

गणिनी आर्यिका विमलमती

जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्वविदेह के रत्नसंचय नामक नगर में राजा क्षेमंकर राज्य करते थे। उनकी कनकचित्रा रानी के एक पुत्र हुआ उसका नाम वज्रायुध रखा गया। पुत्र के युवा होने पर उसका विवाह लक्ष्मीमती से सम्पन्न हुआ। इस लक्ष्मीमती के पुत्र का नाम सहस्रायुध था। इन सहस्रायुध की भार्या श्रीषेणा के पुत्र का नाम कनकशांत था। इस प्रकार राजा क्षेमंकर पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि परिवार से घिरे हुए राज्य कर रहे थे।

किसी समय राजा क्षेमंकर को वैराग्य हुआ ज्ञातकर लौकांतिक देव आ गये, और उनके वैराग्य की स्तुति करने लगे। यह क्षेमंकर महाराज तीर्थंकर थे। देवों द्वारा की गई तप कल्याणक पूजा को प्राप्त कर इन्होंने वज्रायुध पुत्र को राज्य देकर आप जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। इधर वज्रायुध के यहाँ चक्ररत्न उत्पन्न हो जाने से ये चक्रवर्ती हो गये।

इधर वहीं के विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी मे शिवमंदिर नगर है। वहाँ के राजा मेघवाहन की रानी विमला ने एक पुत्री को जन्म दिया। उसके जन्मकाल मे अनेक उत्सव मनाये गये और उसका नाम कनकमाला रखा गया। युवती होने पर उसका विवाह सहस्रायुध के पुत्र कनकशांत के साथ हुआ। किसी समय कनकशांत ने महामुनि विमलप्रभ के दर्शन करके विरक्त हो उन्हीं से दीक्षा धारण कर ली।

तब कनकशांत की कनकमाला और वसंतसेना नाम की दोनों रानियो ने विमलमती[2] आर्यिका के पास आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली क्योंकि सनातन परम्परा में कुलीन स्त्रियों का यही कर्तव्य माना गया है। किसी समय पूर्वजन्म के बँधे हुए वैर से रानी वसंतसेना का भाई (साला) चित्रचूल विद्याधर कनकशांत महामुनि पर उपसर्ग करने लगा। महामुनि ने उपसर्ग सहनकर घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। जब वज्रायुध चक्रवर्ती को नाती (पोता) का केवलज्ञान समाचार मिला तब उन्होंने अपने पुत्र सहस्रायुध को राज्य देकर अपने पिता क्षेमंकर तीर्थंकर के समवसरण मे जाकर दीक्षा ले ली।

इधर इन कनकमाला आदि आर्यिकाओं ने घोर तपश्चरण कर अन्त में सल्लेखना में मरण कर स्वर्ग के वैभव को प्राप्त किया है।

●

---

१. ....प्राव्राजीत् सुव्रतान्तिके ।
कन्यकाभिः शतैः सार्धं, सप्तभिः सा महातपा ॥ —उत्तरपुराण पर्व ६३, पृ० १७६ ।
(ये विदेहक्षेत्र की आर्यिका हैं)

२, उत्तरपुराण पृ० १८४ (ये विदेहक्षेत्र की आर्यिका हैं ।

आर्यिका रामदत्ता

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सिंहपुर नाम का नगर है। उस नगर के राजा का नाम सिंहसेन था। उनकी रामदत्ता रानी पातिव्रत्य आदि गुणों की खान थी। उस राजा के श्रीभूति मन्त्री का सत्यवादी होने से सत्यघोष यह नाम प्रसिद्ध हो गया था। उसी देश के पद्मखण्डपुर नगर में एक भद्रमित्र सेठ रहता था। वह सेठ एक बार सत्यघोष के पास अपने कुछ रत्न रख दिये और बाद में जब उसने माँगा तब सत्यघोष झूठ बोल गया कि मैं तेरे रत्नों को क्या जानूं ? तब भद्रमित्र पागल की तरह चिल्लाने लगा। वह प्रतिदिन प्रातःकाल तक वृक्ष पर चढ़कर बार-बार रत्नों के बारे में रोया करता था। प्रतिदिन उसकी एक सी बात सुनकर रानी रामदत्ता ने यह सोचा कि यह पागल नहीं है। राजा से यह बात कही कि इसका सही न्याय होना चाहिए। पुनः राजा की आज्ञा लेकर सत्यघोष मन्त्री के साथ जुआ खेलकर उसकी यज्ञोपवीत और अँगूठी जीत ली। अनंतर निपुणमती धाय के हाथ से श्रीभूति के घर भेजकर उसकी पत्नी से वह भद्रमित्र का रत्नों का पिटारा मँगवा लिया। उसमें अपने भी कुछ रत्न मिलाकर राजा ने भद्रमित्र को दिखाया। तब भद्रमित्र ने उसमें से अपने रत्न पहचान कर निकाल लिये।

इस घटना से राजा ने श्रीभूति-सत्यघोष को दण्डित किया। वह मरकर अगंधन सर्प हो गया जो कि राजा के भांडागार में रहने लगा। इधर भद्रमित्र मरकर रानी रामदत्ता के पुत्र हुआ जिसका नाम सिंहचन्द्र रक्खा गया। एक दिन सत्यघोष के जीव अगंधन सर्प ने राजा को डस लिया। तब गारुड़ी ने मन्त्र से सर्व सर्पों को बुलाकर कहा कि तुम लोगों में जो निर्दोष हो वह अग्नि मे प्रवेश कर परीक्षा देवे तब सभी सर्प क्रम-क्रम से अग्नि में प्रवेश कर बिना जले बाहर निकल आये किन्तु वह अगंधन सर्प अग्नि में जलकर मर गया और वन में चमरी जाति का मृग हो गया। राजा सिंहसेन भी सर्प के विष से मरकर सल्लकी वन में हाथी हो गया।

राजा के मरण के बाद सिंहचन्द्र राजा हुआ और पूर्णचन्द्र को युवराज पट्ट बाँधा गया। एक दिन राजा सिंहसेन की मृत्यु का समाचार सुनकर दांतमती और हिरण्यमती नाम की संयम धारण करने वाली आर्यिकायें रानी रामदत्ता के पास आईं।[1] रामदत्ता भी उनका धर्मोपदेश सुनकर उन्हीं से संयम ग्रहण कर आर्यिका हो गई। इस माता के वियोग से दुःखी होकर सिंहचन्द्र ने भी मुनि से धर्मोपदेश श्रवण कर भाई पूर्णचन्द्र को राज्य देकर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली और कुछ ही दिनों में तप के प्रभाव से आकाशचारण ऋद्धि तथा मनःपर्ययज्ञान प्राप्त कर लिया।

किसी समय रामदत्ता आर्यिका ने सिंहचन्द्र मुनिराज के दर्शन किये तो बहुत ही हर्ष हुआ। अनंतर उसने पूछा—

"हे महामुने ! पूर्णचन्द्र धर्म को छोड़कर भोगों में प्रीति कर रहा है सो वह कभी धर्म को ग्रहण करेगा या नहीं ?"

सिंहचन्द्र मुनि ने उत्तर दिया—

"तुम खेद मत करो। मैं तुम्हें कुछ इतिहास सुनाता हूँ सो जाकर उसे सुनाओ और संबोधन करो वह तुम्हारे धर्मोपदेश से ही धर्म को स्वीकारेगा। मेरे पिता राजा सिंहसेन सर्प के डसने से मरकर हाथी हो गये थे। एक बार मैं सल्लकी वन में था तब वह मुझे मारने को दौड़ा। मुझे

१. उत्तरपुराण, पर्व ५९। —ये भरतक्षेत्र की आर्यिका हैं।

आकाशचारण ऋद्धि थी अतः मैंने आकाश में स्थित होकर उसके पूर्वभव का सम्बन्ध बताकर उपदेश दिया जिससे उस भव्य ने शीघ्र ही संयमासंयम-अणुव्रत ग्रहण कर लिया। वह उस वन में लगातार एक-एक माह के उपवास कर सूखे पत्तों की पारणा किया करता था। उसका शरीर तपश्चरण से अति दुर्बल हो गया था। एक बार वह नदी में पानी पी रहा था कि सत्यघोष का जीव जो मरकर सर्प हुआ था पुनः चमरी मृग हुआ था पुनः मरकर कुक्कुट जाति का सर्प हो गया था। उसने उस हाथी को काट खाया जिससे वह हाथी उस समय समाधिमरण से मरा और बारहवें स्वर्ग में श्रीधर नाम का देव हो गया।

इधर एक व्याध ने उस मरे हुए हाथी के दोनों दाँत निकाले तथा उसके गण्डस्थल से मोती निकाले। उन्हें लाकर धनमित्र सेठ को दे दिया। धनमित्र ने उन दोनों वस्तुओं को लाकर राजा पूर्णचन्द्र को भेंट कर दिया है। पूर्णचन्द्र ने उन दोनों दाँतों के चार पाये बनाकर अपने पलंग में लगवाये हैं और मोतियों का हार बनवाकर गले में पहन लिया है। इतना सुनकर रामदत्ता आर्यिका पुत्र के मोह से पूर्णचन्द्र के पास गई और सारी घटना सुनाई। सुनकर उसको बहुत ही दुःख हुआ कि मैं पिता के शरीर के दाँत और मोतियों से अपने सुखोपभोग सामग्री को बनवाकर सुखी हो रहा हूँ। उसने दाँत और मोतियों की अन्त्येष्टि क्रिया की तथा उसने श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिये। इधर रामदत्ता ने पुत्र को धर्म का मर्म समझाकर संतुष्ट हो घोर तपश्चरण किया जिसके फलस्वरूप समाधिमरण से मरकर दशवें महाशुक्र स्वर्ग में देवपद को प्राप्त कर लिया है। यह रामदत्ता आर्यिका का जीव इससे नवमें भव में भगवान् विमलनाथ का मेरु नाम का गणधर हुआ है। जिसने सात ऋद्धियों से सम्पन्न होकर उसी भव से मोक्ष को प्राप्त कर लिया है।

●

आर्यिका नंदयशा

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के मंगलादेश में भद्रिलपुर नाम का एक नगर है। उसमें मेघरथ नाम का राजा राज्य करता था। उसी भद्रिलपुर नगर में एक धनदत्त सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम नंदयशा था। इन दोनों के धनपाल, देवपाल, जिनदेव, जिनपाल, अर्हद्दत्त, अर्हद्दास, जिनदत्त, प्रियमित्र और धर्मरुचि ये नव पुत्र हुए थे तथा प्रियदर्शना और ज्येष्ठा ये दो पुत्रियाँ भी हुई थी।

किसी एक दिन सुदर्शन नाम के वन में मन्दिरस्थविर नाम के मुनिराज पधारे। राजा मेघरथ और सेठ धनदत्त अपने परिवार सहित दर्शन करने आये। उनकी वंदना, पूजा करने के बाद गुरुदेव के मुख से धर्मोपदेश सुना। राजा मेघरथ संसार से विरक्त होकर अपने पुत्र दृढ़रथ को राज्य देकर मुनि बन गये। धनदत्त सेठ भी अपने नौ पुत्रों के साथ मुनि बन गया। नंदयशा[1] सेठानी ने भी अपनी दोनों पुत्रियों के साथ सुदर्शना नाम की आर्यिका के पास आर्यिका व्रत लेकर साध्वी बन गई।

क्रम-क्रम से विहार करते हुए ये सब मुनि, आर्यिकायें बनारस आ गये और वहाँ बाहर सघन वृक्षों से युक्त प्रियंगुखण्ड नाम के वन में जाकर विराजमान हो गये। वहाँ पर सबके गुरु मंदिरस्थविर, राजा मेघरथ और धनदत्त सेठ ये तीनों ही मुनि ध्यान कर केवलज्ञानी हो गये। इनकी गंधकुटी रचना देवों ने आकर की और केवलज्ञान की पूजा करके सभा में बैठ गये। केवली भगवान् ने

१ उत्तरपुराण, पर्व पृ० ३५१। —ये भरतक्षेत्र की आर्यिका हैं।

दिव्यध्वनि से दिव्य उपदेश दिया। आयु के अन्त में राजगृह नगर के समीप सिद्धशिला से सिद्धपद को प्राप्त कर लिया है।

कुछ दिन बाद धनदेव आदि नौ भाई, दोनों बहनों और नंदयशा ने उसी शिलातल पर विधिवत् संन्यास ग्रहण कर लिया। पुत्र-पुत्रियों से युक्त नंदयशा ने उन्हें देखकर निदान कर लिया कि "जिस प्रकार ये सब इन जन्म में मेरे पुत्र-पुत्रियाँ हुई हैं, उसी प्रकार परजन्म में भी ये मेरे ही पुत्र-पुत्रियाँ हों और इन सबके साथ मेरा सम्बन्ध परजन्म में भी बना रहे।' ऐसा निदान कर उसने स्वयं संन्यास धारण कर लिया और मरकर उन सबके साथ तेरहवें आनत स्वर्ग के शातंकर नामक विमान में उत्पन्न हो वहाँ के दिव्य सुखों का अनुभव करने लगी।

इधर कुशार्य देश के शौर्यपुर नगर का स्वामी राजा अन्धकवृष्टि राज्य कर रहा था। उसकी रानी का नाम सुभद्रा था। यह सुभद्रा उसी नंदयशा का जीव था। जो धनदेव आदि नौ पुत्र स्वर्ग गये थे वे क्रम क्रम से वहाँ से च्युत होकर रानी सुभद्रा के समुद्रविजय, स्तिमितसागर, हिमवान्, विजय, विद्वान्, अचल, धारण, पूरण, पूरितार्थीच्छ और अभिनन्दन ये नौ पुत्र हुए हैं। अन्त में दशवें पुत्र का नाम वसुदेव रक्खा गया तथा प्रियदर्शना और ज्येष्ठा के जीव क्रम से कुंती और माद्री नाम की कन्यायें हुई थीं।

ये कुंती और माद्री राजा पांडु को ब्याही गई थीं। कुन्ती से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा माद्री से नकुल और सहदेव ये पुत्र हुए जो कि पाँच पांडव कहलाये थे। किसी समय पांडु राजा ने संन्यास विधि से मरण कर सौधर्म स्वर्ग प्राप्त किया था। उसी समय पति के साथ ही माद्री ने भी संन्यास मरण से प्राण छोड़कर सौधर्म स्वर्ग प्राप्त किया था। तथा संन्यास के समय उसने अपने नकुल, सहदेव पुत्रों को कुन्ती के पास छोड़ दिया था।

जब पाँचों पांडव पुत्रों ने भगवान् नेमिनाथ के पादमूल में दीक्षा ली थी तब कुन्ती ने भी राजीमती आर्यिका के पास दीक्षा ले ली और घोर तपश्चरण करके सम्यक्त्व के प्रभाव से स्त्रीलिंग का छेद कर दिया तथा अच्युत नाम के सोलहवें स्वर्ग में देवपद प्राप्त कर लिया है।[1]

●

आर्यिका प्रीतिमती

पुष्करार्ध द्वीप के पश्चिम विदेहक्षेत्र में गंधिला नाम का महादेश है। उसके विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में सूर्यप्रभ नगर है। वहाँ पर सूर्यप्रभ राजा राज्य कर रहा था। उसकी रानी का नाम धारिणी था। उनके चिंतागति, मनोगति और चपलगति नाम के तीन पुत्र थे।

उसी विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में अरिन्दमपुर नगर है। वहाँ के राजा अरिजंय की अजितसेना रानी से प्रीतिमती नाम की कन्या उत्पन्न हुई थी। उस कन्या ने युवती अवस्था में नियम कर लिया कि मुझे जो गतियुद्ध में जीतेगा मैं उसी के गले में वरमाला डालूँगी।" तब चिंता गति आदि तीनों भाइयों ने आकर मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा में उसके साथ गतियुद्ध प्रारम्भ किया। इसमें अनेक विद्याधर राजपुत्र भी इस कन्या से पराजित हो चुके थे। इस समय पहले मनोगति ने उसके साथ मेरु की तीन प्रदक्षिणायें लगाईं किन्तु कन्या आगे हो गई। पुनः चपलगति भी हार गया। तत्पश्चात् तू चिंतागति ने प्रीतिमती के साथ मेरु की प्रदक्षिणा में उसे पीछे छोड़कर आगे

१. पांडवपुराण।

निकलकर उस कन्या को जीत लिया। तब प्रीतिमती चिंतागति के गले में वरमाला डालने को तैयार हुई। उस समय उसने कहा कि तू मेरे भाई के गले में माला डालकर उनका वरण कर। प्रीतिमती ने कहा—जिसने मुझे जीता है उसके सिवाय मैं अन्य के गले में यह माला नहीं डालूंगी। तब चिंतागति ने कहा—"चूंकि तूने पहले उन्हें प्राप्त करने की इच्छा से ही उन मनोगति, चपलगति के साथ गतियुद्ध किया है अतः तू मेरे लिए त्याज्य है।"

चिंतागति के इन वचनों के सुनते ही वह संसार से विरक्त हो गई और उसने विवृता नाम की आर्यिका के पास जाकर आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली।[1] कन्या प्रीतिमती के इस साहस को देखकर ये तीनों भाई भी विरक्त हो गये और उन्होंने दमवर मुनि के पास जाकर मुनिव्रत ग्रहण कर लिया। इन तीनों मुनियों ने उत्कृष्ट संयम को पालते हुए आठों प्रकार की शुद्धियों मे अपना मन लगाया। अन्त में संन्यास विधि से मरकर चौथे माहेन्द्र स्वर्ग में सामानिक जाति के देव हो गये। आगे चलकर इससे सातवें भव में यह चिंतागति का जीव बाईसवाँ तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ हुआ है।

•

सत्यभामा आदि आठ आर्यिकायें

श्रीकृष्ण की सत्यभामा आदि आठों पट्टरानियों ने भगवान् नेमिनाथ के समवसरण में श्रीवरदत्त गणधर से अपने-अपने पूर्व भवों को पूछा था। तब गणधर देव ने क्रम से आठों रानियों के पूर्व भव सुनाये थे।

सत्यभामा ने भगवान् श्री नेमिनाथ के समवसरण में श्रीवरदत्त गणधर से अपने पूर्वभव पूछे। श्री गणधर देव ने कहा—

शीतलनाथ के तीर्थ में जब धर्म का विच्छेद हुआ तब भद्रिलपुर नगर में राजा मेघरथ राज्य करता था, उसकी रानी का नाम नंदा था। उस नगर में भूतिशर्मा नाम का एक ब्राह्मण था, उसकी कमला नाम की भार्या से मुण्डशालायन नाम का पुत्र हुआ था। मुण्डशालायन भोगों में आसक्त होकर राजा और प्रजा के लिए सुवर्णदान, भूमिदान आदि का उपदेश देता रहा और सच्चे तपश्चरण का विरोध करता रहा। इस पाप से मरकर वह सातवें नरक चला गया। वहां से निकलकर तिर्यंच हुआ। इसी तरह नरक तिर्यंच योनि में घूमता रहा। अनुक्रम से वह गंधमादन पर्वत से निकली गंधवती नदी के समीप भल्लकी नाम की पल्ली में भील हुआ जिसका नाम काल था।

इस भील ने किसी दिन वरधर्म मुनिराज के निकट धर्मोपदेश सुनकर मद्य, मांस और मधु इन तीन मकारों का त्याग कर दिया। उसके फलस्वरूप विजयार्ध पर्वत पर अलकानगरी के राजा पुरबल और उसकी रानी ज्योतिर्माला के हरिबल नाम का पुत्र हुआ। उसने अनंतवीर्य नाम के मुनिराज के पास द्रव्यसंयम धारण कर लिया—मुनि बन गया जिसके प्रभाव से वह मरकर सौधर्म

१. उत्तरपुराण, पृ० ३४० (ये पुष्करार्ध के विदेहक्षेत्र की आर्यिका हैं)

स्वर्ग में देव हो गया। वहाँ से च्युत होकर उसी विजयार्ध पर्वत पर रथनूपुर नगर के राजा सुकेतु के स्वयंप्रभा रानी से तुम सत्यभामा नाम की पुत्री हुई हो तथा अर्धचक्रवर्ती श्रीकृष्ण की पट्टरानी हुई हो।

•

आर्यिका रुक्मिणी

इसी भरत क्षेत्र संबंधी मगध देश के अन्तर्गत एक लक्ष्मीग्राम नाम का ग्राम है। उसमें सोम नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी स्त्री का नाम लक्ष्मीमती था। किसी एक दिन लक्ष्मीमती दर्पण मे मुख देख रही थी। इतने मे ही समाधिगुप्त नाम के महामुनि भिक्षा के लिये आ गये। "इसका शरीर पसीने से लिप्त है और यह दुर्गन्ध दे रहा है।" इस प्रकार क्रोध करती हुई लक्ष्मीमती ने घृणा से युक्त निंदा के वचन कहे। मुनिनिंदा के पाप से उसका सारा शरीर उदुंबर नामक कुष्ठ से व्याप्त हो गया। दुर्गन्धि से युक्त जहाँ भी जाती लोग उसे कुत्ती के समान दुतकार कर भगा देते। तब वह दुःखी हो सूने मकान में पड़ी रहती थी। अंत में पति के प्रेम में मोहासक्त हो मर-कर उसी ब्राह्मण के घर दुर्गन्धयुक्त छछूंदर हुई। पूर्व स्नेह के कारण बारबार पति के ऊपर दौड़ती तब सोम ब्राह्मण ने क्रोधित हो उसे पकड़ कर बाहर ले जाकर बड़ी दुष्टता से दे पटका, जिससे वह मरकर उसी घर में साँप हो गई। फिर मरकर पाप कर्म के उदय से वहीं गधा हुई। वह गधा संस्कार वश बार बार ब्राह्मण के घर आता तब ब्राह्मण कुपित हो उसे लाठी तथा पत्थर से ऐसा मारा कि उसका एक पैर टूट गया। घाव होकर उसमें कोड़े पड़ गये। जिनसे व्याकुल होकर वह कुँए में पड़ गया और वेदना से पीड़ित हुआ मर गया। फिर अंधा साँप हुआ, फिर अंधा सुअर हुआ। उस सुअर को गाँव के कुत्तों ने खा लिया। वह सुअर मरकर मंदिर नामक गाँव में नदी पार कराने वाले मत्स्य नामक धीवर को मण्डूकी नाम की स्त्री से पूतिका नाम की पापिनी पुत्री हुई। उत्पन्न होते ही उसका पिता मर गया। अनंतर माता भी मर गई। तब नानी ने उसका पालन किया। वह कन्या सब प्रकार से अशुभ थी और सभी लोग उससे घृणा करते थे।

किसी एक दिन यह पूतना नदी के किनारे बैठी थी। वहीं पर उसे उन समाधिगुप्त मुनि-राज के दर्शन हुए जिनकी उसने लक्ष्मीमती पर्याय में निंदा की थी। वे मुनि प्रतिमायोग से विराजमान थे। पूतिका की काललब्धि अनुकूल थी। इसलिये वह शांतभाव को प्राप्त कर रात्रि भर मुनिराज के शरीर पर बैठने वाले मच्छर आदि दूर हटाती रही। प्रातःकाल के समय प्रतिमायोग समाप्त कर मुनिराज शिलातल पर बैठ गये। मुनिराज ने उसे धर्मोपदेश दिया। उसको सुनकर प्रसन्नचित्त हो उसने पर्व के दिनों में उपवास करने का नियम ले लिया। दूसरे दिन वह जिनेन्द्रदेव के दर्शन करने जा रही थी कि वहीं उसे एक आर्यिका के दर्शन हो गये। वह उन्हीं आर्यिका के साथ दूसरे गाँव तक चली गई। वहीं पर उसे भोजन भी प्राप्त हो गया। इस तरह वह प्रतिदिन ग्रामान्तर से लाये हुए भोजन से अपने प्राणों की रक्षा करती और पाप से भयभीत हो अपने आचार की रक्षा करती हुई किसी पर्वत की गुफा में रहने लगी।

एक आर्यिका जी के दर्शन के करने लिये एक श्राविका आई हुई थी। आर्यिका ने उससे कहा—देखो यह पूतिका नीचकुल में उत्पन्न होकर भी इस तरह सदाचार का पालन कर रही है

यह आश्चर्य की बात है। आर्यिका की बात सुनकर उस श्राविका को बड़ा ही कौतुक हुआ। जब पूतिका आर्यिका की पूजा भक्ति कर चुकी तब श्राविका स्नेहवश उसकी प्रशंसा करने लगी। इसके उत्तर में पूतिका ने कहा—हे माता ! मैं तो महापापिनी हूँ, मुझे आप पुण्यवती क्यों कहती हैं। इतना कहकर उसने समाधिगुप्त मुनिराज से जैसे अपने पूर्वभव सुने थे वैसे ही सब कह सुनाये। वह श्राविका पूतिका की पूर्वभव की सखी थी। पूतिका के मुख से सारा वृत्तांत विदित कर उसने सान्त्वना देते कहा—

यह जीव पाप का भय होने से ही जैनधर्म को ग्रहण करता है। इस संसार में पूर्वभव में अर्जित पाप कर्म के उदय से कुरूपता, सरोगता, दुर्गन्धता और निर्धनता आदि प्राप्त हुआ करती हैं। इसलिए तू शोक मत कर। अब जो तूने व्रत, शील और उपवास के नियम लिए हैं। ये सब तुझे अगले जन्म में सुखी बनायेंगे। तू अब भय मत कर। इस प्रकार उस श्राविका ने उसे खूब उत्साह दिया। आगे जीवन भर पूतिका ने अपने व्रतों की रक्षा की। अंत में समाधिमरण कर अच्युत इन्द्र की अतिशय प्यारी देवी हुई। और वहाँ पचपन पल्य तक सुख का अनुभव कर अन्त में च्युत हो यहाँ भरत क्षेत्र के विदर्भ देश के कुण्डलपुर नगर में वासव राजा की श्रीमती रानी से रुक्मिणी पुत्री होकर श्रीकृष्ण की पट्टरानी हुई है।

•

जाम्बवती

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती नाम का देश है। उसके वीतशोकनगर में दमक नामक वैश्य रहता था। उसकी स्त्री देवमती थी, उसके देविला नाम की एक पुत्री थी। वह पुत्री वसुमित्र को ब्याही गई परन्तु कुछ दिन बाद विधवा हो जाने से उसने विरक्त होकर जिनदेव नाम के मुनिराज से व्रत ग्रहण कर लिये और आयु के अन्त में मरकर मेरु पर्वत के नंदन वन मे व्यंतर देवी हो गई। वहाँ की ८४ हजार वर्ष की आयु पूर्ण कर वहाँ से च्युत होकर पुष्कलावती देश के विजयपुर नगर में मधुषेण वैश्य की बंधुमती पत्नी से अतिशय सुन्दरी बंधुयशा नाम की पुत्री हुई। वहीं के एक जिनदेव सेठ की पुत्री जिनदत्ता इसकी सखी थी। उसके साथ इस बंधुयशा ने उपवास किए जिसके फल से मरणकर प्रथम स्वर्ग में कुबेर की देवांगना हो गई। वहाँ से चयकर पुण्डरीकिणी नगरी मे वज्र नामक वैश्य और उसकी सुभद्रा स्त्री के सुमति नाम की कन्या हुई।

इस सुमति ने एक दिन सुव्रता नाम की आर्यिका को आहार दान दिया। और उनके उपदेश से रत्नावली नाम का उपवास किया। जिससे ब्रह्मस्वर्ग में श्रेष्ठ अप्सरा हुई। वहाँ की आयु पूर्ण कर इसी जम्बूद्वीप के विजयार्ध पर्वत की उत्तरश्रेणी पर जाम्बव नाम के नगर में राजा जाम्बव की रानी जंबुषेणा के जाम्बवती पुत्री हुई है और युवती होने पर श्रीकृष्ण की पट्टरानी हुई है।

•

सुसीमा

धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्ध भाग के पूर्व विदेह में मंगलावती देश है, उसमें रत्नसंचय नाम का एक नगर है। उस नगर के राजा विश्वदेव और रानी अनुन्दरी थी। किसी एक दिन अयोध्या

के राजा ने राजा विश्वदेव को मार डाला। इसलिए अत्यन्त शोक के कारण मंत्रियों के निषेध करने पर भी रानी अग्नि में प्रवेश कर जल मरी। मरकर वह विजयार्ध पर्वत पर दश हजार वर्ष की आयु वाली व्यंतरी देवी हो गई। वहाँ की आयु पूर्ण कर वह अपने कर्मों के अनुसार संसार में परिभ्रमण करती रही।

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में एक शालिग्राम नगर है। वहाँ पर एक यक्ष नाम का वैश्य था। उसकी पत्नी देवसेना के गर्भ से वह अनुंदरी का जीव कन्या हुआ जिसका नाम यक्षदेवी रक्खा गया। किसी एक दिन उसने धर्मसेन मुनिराज के पास जाकर व्रत ग्रहण किये और एक समय एक माह के उपवासी मुनिराज को आहार दान दिया। यह यक्षदेवी एक दिन वनक्रीड़ा के लिए गई हुई थी वहाँ अचानक अत्यधिक वर्षा हो जाने से वह एक गुफा में चली गई। वहाँ पर एक अजगर सर्प था उसने इसे निगल लिया। किन्तु दान के प्रभाव से मरकर यह हरिवर्ष क्षेत्र की भोगभूमि में उत्पन्न हो गई। वहाँ की आयु पूर्णकर नागकुमारी देवी हुई। फिर वहाँ से चयकर विदेह क्षेत्र के पुष्कलावती देश सम्बन्धी पुण्डरीकिणी नगरी में राजा अशोक और सोमश्री रानी के श्रीकान्ता नाम की पुत्री हुई। किसी एक दिन इसने जिनदत्ता आर्यिका के पास दीक्षा लेकर उत्तम उत्तम व्रतों का पालन किया, चिरकाल तक तपस्या की और कनकावली नाम का कठिन उपवास किया। इन सबके प्रभाव से वह माहेन्द्र स्वर्ग में देवी हुई। वहाँ के दिव्य सुखों का अनुभव कर अन्त मे वहाँ से च्युत होकर यहाँ भरत क्षेत्र के सुराष्ट्रवर्धन राजा की रानी सुज्येष्ठा के सुसीमा नाम की पुत्री हुई। तथा श्रीकृष्ण की पट्टरानी होकर सुखों का अनुभव कर रही हो।

●

लक्ष्मणा

इसी जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में एक पुष्कलावती नाम का देश है। उसके अरिष्टपुर नगर में राजा वासव की वसुमती रानी से एक सुषेण नाम का पुत्र था। किसी एक दिन राजा वासव ने विरक्त होकर सागरसेन मुनिराज के समीप जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। किन्तु पुत्रमोह के कारण रानी ने गृहवास नहीं छोड़ा। अन्त में कुत्सित भावों से मरकर भीलनी हो गई। एक दिन उसने नंदिवर्धन नामक चारण मुनि के पास जाकर श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिये। आयु के अन्त में मरकर व्रत के प्रभाव से आठवें स्वर्ग के इन्द्र की प्यारी नृत्यकारिणी हुई। वहाँ से चयकर जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी पर चन्द्रपुर नगर के राजा महेन्द्र की रानी अनुन्दरी के गर्भ से कनकमाला नाम की पुत्री हुई। और सिद्धविद्य नाम के स्वयंवर में इसने हरिवाहन के गले में माला डालकर उसका वरण कर लिया।

किसी एक दिन कनकमाला ने सिद्धकूट पर विराजमान यमधर नाम के मुनि के पास में अपने पूर्वभवों को सुना, अनंतर उन्हीं से मुक्तावली नाम का उपवास ग्रहण कर आयु के अन्त में मरकर तीसरे स्वर्ग के इन्द्र की इन्द्राणी हो गई। वहाँ पर नौ पल्यों तक दिव्य सुखों का अनुभव कर वहाँ से च्युत होकर यहाँ के सुप्राकार नगर के राजा संवर की श्रीमती रानी से लक्ष्मणा नाम की पुत्री हुई और श्रीकृष्ण की पट्टरानी हुई है।

●

गान्धारी

इसी जम्बूद्वीप में एक सुकोशल नाम का देश है। उसकी अयोध्या नगरी में रुद्र नाम का राजा राज्य करता था, उसकी रानी का नाम विनयश्री था। किसी एक दिन रानी ने सिद्धार्थ वन में पधारे हुए बुद्धार्थ नाम के मुनिराज को आहारदान दिया। पश्चात् आयु के अन्त में मरकर उत्तरकुरु भोगभूमि में उत्पन्न हुई। वहाँ की आयु पूरी कर चन्द्रमा की चन्द्रवती नाम की देवी हुई। वहाँ से च्युत होकर जम्बूद्वीप के विजयार्ध पर्वत पर गगनवल्लभ नगर में राजा विद्युद्वेग की रानी विद्युद्वेगा के सुरूपा नाम की पुत्री हुई। यह विद्या और पराक्रम से सुशोभित नित्यालोकपुर के राजा महेन्द्रविक्रम को दी गई। किसी एक दिन ये दोनों सुमेरु पर्वत पर चैत्यालयों की वंदना पूजा करने के लिये गये थे। वहाँ पर विराजमान चारणऋद्धिधारी मुनि के मुख से धर्मरूपी अमृत के पान से बहुत ही तृप्त हुए। राजा महेन्द्रविक्रम ने उन्हीं मुनिराज के समीप दीक्षा ले ली। तब रानी सुरूपा ने भी सुभद्रा नाम की आर्यिका के पास जाकर संयम धारण कर लिया। आयु पूरी कर सौधर्म स्वर्ग में देवी हुई। वहाँ से चयकर गान्धार देश के पुष्कलावती नगर के राजा इन्द्रगिरि को मेरुमती रानी से गान्धारी पुत्री हुई तथा श्रीकृष्ण की पट्टरानी हुई है।

●

पद्मावती

इसी भरत क्षेत्र की उज्जयिनी नगरी में विजय नाम के राजा थे, उनकी रानी का नाम अपराजिता था। इन दोनों के विनयश्री नाम की एक पुत्री थी। राजा ने उसे हस्तशीर्षपुर के राजकुमार हरिषेण से विवाहा था। विनयश्री ने एक बार समाधिगुप्त मुनिराज को आहार दान देकर भोगभूमि की आयु बाँध ली। और आयु के अन्त में मरकर हैमवत क्षेत्र मे उत्पन्न हो गई। चिरकाल तक कल्पवृक्षों के भोगों का अनुभव कर वहाँ से मरकर वह चंद्रमा की रोहिणी नाम की देवी हो गई। वहाँ से चयकर मगधदेश के शाल्मलि गाँव में रहने वाले विजय की देविला स्त्री से पद्मदेवी नाम की पतिव्रता पुत्री हुई। उसने एक बार वरधर्म नाम के मुनिराज के पास "मैं कष्ट के समय भी अनजाना फल नहीं खाऊँगी।" ऐसा नियम ले लिया।

किसी एक समय भीलों ने उस गाँव को लूट लिया। उस समय सब लोग पद्मदेवी को एक महाअटवी में ले गये। वहाँ पर सब लोग भूख से पीड़ित हो वन के फलों को खाने लगे। परन्तु पद्मदेवी ने अनजाने फल को नहीं खाया अतः वह अकेली बच गई और सभी लोग मर गये, चूँकि वे फल विषफल थे। इसलिये वह आहार जल का त्याग कर मरणकर हैमवत भोगभूमि में उत्पन्न हो गई। वहाँ की आयु पूर्ण कर स्वयंप्रभद्वीप में स्वयंप्रभ नामक देव की स्वयंप्रभा नाम की देवी हुई। वहाँ से चयकर इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र संबंधी जयंतपुर नगर के राजा श्रीधर और रानी श्रीमती के विमलश्री नाम की सुन्दर कन्या हुई। वह भद्रिलपुर के राजा मेघरथ की प्रिय रानी हुई। एक दिन राजा ने धर्म नाम के मुनिराज के पास दीक्षा ले ली। तब रानी विमलश्री ने भी पद्मावती नामक आर्यिका के पास आर्यिका दीक्षा ले ली, और आचाम्लवर्धन नाम का उपवास

किया। आयु के अन्त में मरकर उपवास आदि के फलस्वरूप वह बारहवें स्वर्ग में देवी हो गई। वहाँ से चयकर अरिष्टपुर नगर के राजा हिरण्यवर्मा की रानी श्रीमती के पद्मावती कन्या हुई। पश्चात् युवती होने पर श्रीकृष्ण की पट्टरानी हुई है।

जब समवसरण में श्रीकृष्ण के पूछने पर भगवान् की दिव्यध्वनि खिरी—हे भद्र ! बारह वर्ष बाद मदिरा का निमित्त पाकर यह द्वारावती नगरी द्वीपायन के द्वारा निर्मूल नष्ट हो जायेगी। तथा जरत्कुमार के द्वारा श्रीकृष्ण का मरण होगा। तीर्थंकर भगवान् का यह उपदेश सुनकर द्वीपायन तो उसी समय संयम धारण कर दूसरे देश को चला गया तथा जरत्कुमार कौशाम्बी के वन में जा पहुँचा। तथा श्रीकृष्ण ने तीर्थंकर प्रकृति के बंध के कारणभूत सोलह कारण भावनाओं का चिंतवन किया तथा स्त्री बालक आदि सबके लिये घोषणा कर दी कि मैं तो दीक्षा लेने में समर्थ नहीं हूँ परन्तु जो समर्थ हों—लेना चाहें उन्हें मैं रोकता नहीं हूँ।

यह सुनकर श्रीकृष्ण की सत्यभामा, रुक्मिणी, जाम्बवती, सुसीमा, लक्ष्मणा, गान्धारी, गौरी और पद्मावती इन आठों महारानियों ने श्रीकृष्ण से आज्ञा लेकर भगवान् के समवसरण में जाकर गणिनी आर्यिका राजीमती के पास आर्यिका दीक्षा ले ली।[1]

हरिवंशपुराण में भी बतलाया गया है कि श्रीवरदत्त गणधर ने इन रानियों के पूर्व भव सुनाये और बतलाया कि तुम सभी इसी भव में तपश्चरण कर स्वर्ग में देवपद को प्राप्त करोगी। पश्चात् वहाँ से च्युत होकर मनुष्य पर्याय में आकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर उसी भव से मोक्ष प्राप्त करोगी।[2]

इस प्रकार इन आठों रानियों ने आर्यिका दीक्षा लेकर सम्यक्त्व और संयम के प्रभाव से स्त्रीलिंग को छेदकर स्वर्ग मे देवपद को प्राप्त कर लिया है। आगे ये तीसरे भव में नियम से मोक्ष प्राप्त करेंगी।



१. उत्तरपुराण पृ० ४१९।
२. हरिवंशपुराण पृ० ७०६ से ७१५ तक (ये भरत क्षेत्र की आर्यिकाएँ हैं)

आर्यिका ज्ञानमती माताजी

आर्यिका मनोदया

अयोध्या नगरी में विजय राजा के पुत्र सुरेन्द्रमन्यु थे। सुरेन्द्रमन्यु की रानी का नाम कीर्तिसमा था। इनके वज्रबाहु और पुरंदर ये दो पुत्र हुए। हस्तिनापुर के राजा इभवाहन की रानी चूड़ामणि के मनोदया नाम की सुन्दर कन्या थी। और उदयसुन्दर नाम का पुत्र था। कन्या के युवती होने पर राजा ने अयोध्या के राजपुत्र वज्रबाहु के साथ उसका विवाह कर दिया। कदाचित् भ्राता उदयसुन्दर बहन मनोदया को लेने के लिए अयोध्या पहुँचे। मनोदया के साथ वज्रबाहु भी चलने के लिए उद्यत हो गये। ये सभी लोग बड़े वैभव के साथ हस्तिनापुर की ओर आ रहे थे। मार्ग में अनेक पड़ाव डालते थे और वन की शोभा देखते हुए प्रसन्न हो रहे थे।

चलते-चलते उनकी दृष्टि एक वसंत नाम के पर्वत पर पड़ी। वज्रबाहु आगे बढ़े वहाँ पर्वत पर एक शिला पर महामुनि ध्यान कर रहे थे। वज्रबाहु एकटक उनकी ओर देखते हुए कुछ सोच रहे थे, तभी उदयसुन्दर ने मुस्कराकर हँसी करते हुए कहा—

"आप इन मुनिराज को बड़ी देर से देख रहे है सो क्या आप इस दीक्षा को लेना चाहते हैं ?"

इतना सुनते ही वज्रबाहु ने अपने मनोभाव छिपाकर पूछा—

"हे उदय ! तुम्हारा क्या भाव है सो तो कहो।"

उसे अन्तर से विरक्त न जानकर उदयसुन्दर ने व्यंगपूर्वक हँसते हुए कहा—

"यदि आप इस दीक्षा को ग्रहण करते है तो मैं भी आपका सखा बन जाऊँगा। अहो कुमार ! आप इस मुनिदीक्षा से बहुत अच्छे दीखोगे।"

वज्रबाहु ने कहा—

"तथास्तु—ऐसा ही हो।"

इतना कहकर वे हाथी से उतर कर पर्वत पर चढ़ गये। तब मनोदया आदि स्त्रियाँ जोर-जोर से रोने लगी। उसी समय उदयसुन्दर ने भी कहा—

"हे देव ! प्रसन्न होओ, यह क्या कर रहे हो ? मैंने तो हँसी की थी।"

तब मधुर शब्दों में सान्त्वना देते हुए वज्रबाहु ने उदयसुन्दर से कहा—

"हे महानुभाव ! मै संसाररूपी कुंए मे गिर रहा था सो तुमने निकाला है। तीनों लोकों में तुम्हारे समान दूसरा कोई मेरा मित्र नही है। हे सुन्दर ! संसार में जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है ......हे भद्र ! तेरी हँसी भी मेरे लिए अमृत के समान हो गई। क्या हँसी में पी गई औषधि रोग को नही हरती ? लो अब मैं दीक्षा लेता हूँ। तुम अपने अभिप्राय के अनुसार कार्य करो।"

इतना कहकर वे गुणसागर मुनिराज के पास गये और इन्हें नमस्कार कर दीक्षा की याचना की। मुनिराज ने भी उसके इस कार्य को सराहा। तत्क्षण ही वज्रबाहु विवाह सम्बन्धी वस्त्राभूषण त्याग कर पद्मासन से बैठ गया और गुरु की आज्ञा के अनुसार केशलोंच करने लगा। उसे दीक्षा

लेते देख उदयसुन्दर का हृदय भी वैराग्य से भर गया। उसके साथ अन्य २५ राजकुमारों ने भी मुनिराज को नमस्कार कर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।

यह दृश्य देखकर भाई के स्नेह से भीरु मनोदया[1] ने भी बहुत भारी संवेग से युक्त हो आर्यिका की दीक्षा ले ली। आगे चलकर इस मनोदया आर्यिका ने बहुत ही तपश्चरण किया है। अस्नान व्रत को पालन करने वाली इस आर्यिका का शरीर पसीने और धूलि से मलिन हो रहा था किन्तु धर्मध्यान के प्रभाव से इसका अन्तरंग निर्मल हो गया था। इस प्रकार अनेक आर्यिकाओं के साथ मनोदया ने अपनी स्त्री पर्याय को छेद करने वाला ऐसा संयम धारण कर अपना जीवन सफल बनाया था।

गणिनी आर्यिका वरधर्मा

वैजयंतपुर के राजा पृथ्वीधर की सभा में एक दूत आया और उसने पत्र दिया। पत्र को पढ़कर राजा ने समझा कि नंद्यावर्त नगर का राजा अतिवीर्य अयोध्या पर चढ़ाई करने जा रहा है। उसने सहायता के लिए मुझे बुलाया है। दूत को एक तरफ भेजकर पृथ्वीधर ने राम-लक्ष्मण से परामर्श किया चूँकि ये लोग वनवास के प्रसंग में इस समय यहीं ठहरे हुए थे। इन राजा की पुत्री वनमाला से लक्ष्मण का विवाह किया गया था। राजा से गुप्त मंत्रणा कर रामचन्द्र स्वयं लक्ष्मण और सीता को साथ लेकर बहुत से जनों के साथ वहाँ से निकले और स्वयं गुप्त वेष में ही भरत का उपकार करना उचित समझा।

रामचन्द्र ने रास्ते में चलते हुए एक जगह डेरा डाला और वहाँ रात्रि सुख से व्यतीत की। दूसरे दिन डेरे से निकल कर राम ने एक जिनमन्दिर देखा जिसमें आर्यिकाओं का संघ ठहरा हुआ था। भीतर प्रवेश कर जिनप्रतिमाओं के दर्शन करके आर्यिकाओं को नमस्कार किया। वहाँ आर्यिकाओं मे प्रमुख 'वरधर्मा' नाम की गणिनी थीं। उनके पास में सीता को रक्खा तथा सीता के पास ही अपने सब शस्त्र छोड़े। तदनन्तर राम, लक्ष्मण ने गुप्त रूप से नर्तकियों का वेष बनाया। नंद्यावर्त नगर में राजा अनन्तवीर्य की सभा में पहुँच गये। वहाँ सभा में नृत्य देखने के लिये नगर के बहुत ही स्त्री-पुरुषों की भीड़ इकट्ठी हो गई।

नृत्य करते हुए इन दोनों नर्तकियों ने कुछ क्षण बाद राजा भरत की प्रशंसा करते हुए अनन्तवीर्य से कहा कि "तुम उससे युद्ध करके अपने प्राण मत गमाओ।" अनन्तवीर्य ने कुपित होकर इनको मारने के लिए तलवार उठाई कि इन्होंने तलवार छीनकर अनंतवीर्य को जीवित ही बाँध लिया और बोले—"यदि तुम लोगों को अपना जीवन प्रिय है तो राजा भरत की शरण लेवो और अनंतवीर्य का पक्ष छोड़ दो।" इतना कहकर ये नर्तकी वेषधारी महापुरुष अनंतवीर्य को साथ लेकर अपने हाथी पर सवार हो अपने परिजन के साथ वहाँ से चलकर जिनमंदिर मे आ गये। जहाँ सीता को छोड़कर गये थे।

जिनमंदिर में भगवान् की पूजा करके राम ने सीता के साथ सर्वसंघ के मध्य विराजमान गणिनी वरधर्मा आर्यिका की बड़ी भक्ति से पूजा की।[2] अनंतर श्रीराम ने अंनतवीर्य को लक्ष्मण के

१. पद्मपुराण, पर्व २१, प्रथम भाग, पृ० ४५३। (ये भरत क्षेत्र की आर्यिका थी)।

२. वरधर्मापि सर्वेण संघेन सहितापरम्।
राघवेण ससीतेन नीता तुष्टेव पूजनम्॥—पद्मपुराण, पर्व ३७। (ये भरत क्षेत्र की आर्यिका थीं)

हाथों सौंप दिया। लक्ष्मण उसका वध करना चाहते थे कि सीता ने मधुर शब्दों में समझाकर उसे छोड़ने को कहा। तब लक्ष्मण ने भावज की आज्ञा से अनंतवीर्य को बंधन मुक्त कर दिया।

इस घटना से अनंतवीर्य को वैराग्य हो गया। उसने उन महापुरुषों की प्रशंसा कर मुकुट उतार दिया और वन में जाकर श्रुतधर मुनिराज के समीप जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली। जब भरत को यह समाचार मिला तब उन्होंने मन में सोचा—

"क्या कोई शासन देव ने ऐसा प्रच्छन्न कार्य किया है या किसने किया है?" जो भी हो भरत महाराज अपने परिवार के साथ वहाँ आकर अनंतवं.र्य को नमस्कर कर उनकी स्तुति करके प्रसन्न हुआ।

उधर अंनतवीर्य के पुत्र विजयरथ ने भरत का अनुशासन स्वीकार कर अपनी बहन विजय-सुन्दरी भरत को समर्पित करके भरत का बहुत ही सम्मान किया।

इस कथानक से यह विदित होता है कि उस काल में आर्यिकाओं के संघ जिनमंदिर में ठहरते थे। और बलभद्र रामचन्द्र जैसे महापुरुष भी उनकी पूजा किया करते थे अतः आर्यिकायें सभी के द्वारा पूजा के योग्य हैं। ●

गणिनी आर्यिका अनुद्धरा

एक समय पद्मिनीनगरी में मतिवर्धन नाम के महातपस्वी दिगम्बर आचार्य अपने चतुर्विध संघ सहित आये। वहाँ गाँव के बाहर वसंततिलक नाम के बगीचे में ठहर गये। इनके संघ में बहुत ज्ञानी, ध्यानी, स्वाध्याय प्रेमी और तपस्वी मुनिराज थे। तथा आर्यिकायें भी अपने अनुकूल व्रत, संयम को पालते हुए ज्ञान, ध्यान के अभ्यास में तत्पर थीं। इन आर्यिकाओं की गणिनी अनुद्धरा[1] नाम की आर्यिका थीं। वहाँ का राजा विजयपर्वत इस महान् संघ के दर्शन करने के लिये आया। संघ के नायक आचार्य से अपनी अनेक शंकाओं का समाधान किया, पुनः विरक्त हो, अपना राज्यपाट छोड़कर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।

इस कथानक से ज्ञात होता है कि चतुर्थकाल में आचार्यों के संघ में आर्यिकाओं का समूह भी रहा करता था। तभी तो चतुर्विध संघ की व्यवस्था चलती थी। मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका ये चतुर्विध संघ कहलाता है। ●

आर्यिका मन्दोदरी

रावण की मृत्यु के बाद इन्द्रजीत और मेघवाहन दोनों पुत्रों ने जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। तब रानी मन्दोदरी को शोक में विह्वल देख आर्यिका शशिकांता ने उसे उत्तम वचनों से समझा-कर प्रतिबोधित किया। उस समय परम संवेग को प्राप्त हुई रानी मन्दोदरी ने तथा रावण की बहन चन्द्रनखा ने उन्हीं शशिकांता आर्यिका के पास एक श्वेत साड़ी धारण कर आर्यिका दीक्षा ले ली। उसी दिन वहीं लंका में उन्हीं आर्यिका के पास ४८ हजार स्त्रियों ने आर्यिका दीक्षा धारण की थी। कथा का सन्दर्भ यह है कि रावण की मृत्यु के अनंतर उसी दिन सायंकाल में वहीं पर ५६००० आकाशगामी[2] मुनियों का संघ आ गया था। उस संघ के आचार्य श्री अनंतवीर्य महा-मुनि थे। इन्हें उसी रात्रि में केवलज्ञान उत्पन्न हो गया था। तब देवों ने आकर गंधकुटी की रचना

१. अनुद्धरेति विख्याता धर्मध्यानपरायणा। महत्तरा तदा चासीदार्यिका गणपालिनी॥—पद्मपुराण, पर्व ३९
२. पद्मपुराण, पर्व ७८। (ये सब इसी भरत क्षेत्र की आर्यिकायें थीं)

की थी। ये शशिकांता शायद उन्हीं के समवसरण में आर्यिकाओं की गणिनी हो सकती हैं। इनका योग्यता विशेष से ही मंदोदरी आदि ४८००० महिलाओं ने इनके पास संयम धारण किया था। आर्यिका दीक्षा को संयम शब्द से कहा है। यथा 'मन्दोदरी संयता, संयममाश्रितानि' आदि। इससे स्पष्ट है कि आर्यिकायें संयमिनी मानी गई हैं। ●

आर्यिका केकयी

भगवान् देशभूषण केवली के समवसरण (गंधकुटी) में श्री भरत ने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली। तभी भरत के अनुराग से प्रेरित हो कुछ अधिक १००० (एक हजार) राजाओं ने क्रमागत राज्यलक्ष्मी का परित्याग कर मुनि दीक्षा ले ली। उस समय माता केकयी शोक से विह्वल हो रही थी। श्रीराम और लक्ष्मण ने उसे बहुत कुछ समझाया तब कुछ शांत होकर संवेग को प्राप्त हुई केकयी[1] ने निर्मल सम्यक्त्व को धारण करती हुई तीन सौ स्त्रियों के साथ पृथ्वीमती आर्यिका के पास दीक्षा धारण कर ली। भगवान् देशभूषण की सभा में एक तरफ तो महातेजस्वी मुनियों का समूह विद्यमान था। और दूसरी ओर श्वेत साड़ियों से आवृत आर्यिकाओं का समूह विद्यमान था। इन चतुर्विध संघ से युक्त वह सभा बहुत ही सुन्दर दिख रही थी। ●

आर्यिका बन्धुमती

हनूमान ने धर्मरत्न नामक मुनिराज के पास दीक्षा ले ली। ये मुनिराज अनेक आकाशगामी मुनि एवं चारण ऋषियों से आवृत थे। उसी समय वैराग्य और स्वामिभक्ति से प्रेरित हो ७५० विद्याधर राजाओं ने भी अपने अपने पुत्रों को राज्य देकर मुनिपद धारण कर लिया। तब हनूमान की रानियों ने तथा अन्य भी राजस्त्रियों ने गणिनी आर्यिका बन्धुमती जी[2] के पास जाकर भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार कर उनकी उत्तम विधि से पूजा की। तदनंतर उन्हीं के पास आर्यिका दीक्षा धारण कर ली। ●

आर्यिका सीता

सीता ने अग्नि परीक्षा के बाद पृथ्वीमती[3] आर्यिका के पास दीक्षा ले ली। इनका वर्णन पहले किया जा चुका है। ●

गणिनी आर्यिका श्रीमती

जब श्रीराम ने आकाशगामी महामुनि सुव्रत आचार्य के समीप निर्ग्रन्थ दीक्षा ले ली। यह मुनिसंघ बहुत विशाल था। इसमें हजारों निर्ग्रन्थ मुनि विद्यमान थे। शत्रुघ्न, विभीषण, सुग्रीव, नील, चन्द्रनख, नल, क्रव्य और विराधित आदि राजाओं ने भी दीक्षा ले ली। उस समय कुछ अधिक सोलह हजार राजा साधु हुए थे। और सत्ताईस हजार (२७०००) प्रमुख प्रमुख स्त्रियाँ श्रीमती[4] नामक श्रमणी के पास आर्यिका हो गईं। यहाँ आर्यिकाओं को श्रमणी कहा है। इससे विदित होता है कि आर्यिकायें भी श्रमणचर्या को पालन करने से 'महाव्रती श्रमणी' कहलाती हैं।

●

---

१. पद्मपुराण, पर्व ८६। २. पद्मपुराण, पर्व ११३। ३. पद्मपुराण, पृ० २८४। ४. पद्मपुराण, पर्व ११९।
(ये सब इसी भरत क्षेत्र की आर्यिकायें थी)

समवसरण में चतुर्विध संघ में आर्यिकाओं की संख्या

आर्यिका ज्ञानमती माताजी

प्रत्येक तीर्थंकर भगवान् के समवसरण में मुनि, आर्यिका और श्रावक श्राविकाओं का चतुर्विध संघ रहता है। यहाँ यह संख्या तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ के आधार से ली गई है। यह संख्या तीर्थंकरों के समवसरण में स्थित चतुर्विध संघ की है। उनके शासन काल में अगणित आर्यिकायें हो चुकी हैं।

	गणधर संख्या	मुख्य गणधर	मुनि संख्या	आर्यिका संख्या	मुख्य आर्यिका	श्रावक	श्राविका
आदिनाथ	८४	ऋषभसेन	८४०००	३५००००	ब्राह्मी	३०००००	५०००००
अजितनाथ	९०	सिंहसेन	१०००००	३२००००	प्रकुब्जा	३०००००	५०००००
संभवनाथ	१०५	चारुदत्त	२०००००	३३००००	धर्मश्री	३०००००	५०००००
अभिनंदननाथ	१०३	वज्रचमर	३०००००	३३०६००	मेरुषेणा	३०००००	५०००००
सुमतिनाथ	११६	वज्र	३२००००	३३००००	अनन्ता	३०००००	५०००००
पद्मप्रभ	१११	चमर	३३००००	४२००००	रतिषेणा	३०००००	५०००००
सुपार्श्वनाथ	९५	बलदत्त	३०००००	३३००००	मीना	३०००००	५०००००
चन्द्रप्रभु	९३	वैदर्भ	२५००००	३८००००	वरुणा	३०००००	५०००००
पुष्पदन्तनाथ	८८	नाग	२०००००	३८००००	घोषा	२०००००	४०००००
शीतलनाथ	८७	कुंथु	१०००००	३८००००	धरणा	२०००००	४०००००
श्रेयांसनाथ	७७	धर्म	८४०००	१३००००	चारणा	२०००००	४०००००
वासुपूज्य	६६	मंदिर	७२०००	१०६०००	वरसेना	२०००००	४०००००
विमलनाथ	५५	जय	६८०००	१०३०००	पद्मा	२०००००	४०००००
अनंतनाथ	५०	अरिष्ट	६६०००	१०८०००	सर्वश्री	२०००००	४०००००
धर्मनाथ	४३	सेन	६४०००	६२४००	सुव्रता	२०००००	४०००००
शांतिनाथ	३६	चक्रायुध	६२०००	६०३००	हरिषेणा	२०००००	४०००००
कुंथुनाथ	३५	स्वयम्भू	६००००	६०३५०	भाविता	१०००००	३०००००
अरहनाथ	३०	कुम्भ	५००००	६००००	कुंथुसेना	१०००००	३०००००
मल्लिनाथ	२८	विशाख	४००००	५५०००	मधुसेना	१०००००	३०००००
मुनिसुव्रत	१८	मल्लि	३००००	५००००	पूर्वदत्ता	१०००००	३०००००
नमिनाथ	१७	सुप्रभ	२००००	४५०००	मार्गिणी	१०००००	३०००००
नेमिनाथ	११	वरदत्त	१८०००	४००००	यक्षी	१०००००	३०००००
पार्श्वनाथ	१०	स्वयम्भु	१६०००	३८०००	सुलोका	१०००००	३०००००
महावीर	११	इन्द्रभूति	१४०००	३६०००	चंदना	१०००००	३०००००



अर्वाचीन आर्यिकायें

आ० अभयमती माताजी

आप आचार्य धर्मसागर महाराज की शिष्या हैं। इनका परिचय इसी अभिनन्दन ग्रन्थ में दिया गया है। सो देखें।

●

आर्यिका अनन्तमती जी

आर्यिका अनन्तमती जी के पार्थिव शरीर का जन्म १३ मई १९३५ ई० के दिन स्थानकवासी मान्यता विश्वासी श्री मिट्ठनलाल जी एवं श्रीमती पार्वती देवी के घर गढ़ीगाँव में हुआ था। इस स्थानकवासी दम्पति ने तीन पुत्र और ४ पुत्रियों को जन्म दिया। जिनमें से चौथी पुत्री इलायची देवी ने इलायची की कहानी दुहरा दी।

दिगम्बर श्रमण परम्परा से प्रभावित होकर इलायची देवी ने आचार्य देशभूषण से १८ वर्ष की अवस्था में आर्यिका दीक्षा ली और आर्यिका अनन्तमती संज्ञा से विभूषित हुईं।

●

आर्यिका आदिमती जी

क्षणभंगुर संसार की कोई भी वस्तु स्थायी नहीं है। क्योंकि राजस्थान के भरतपुर मण्डलान्तर्गत कामा निवासी श्री सुन्दरलाल जी एवं श्रीमती मोनीबाई की पुत्री मैनाबाई लाड़प्यार में पली और कोसी (मथुरा) निवासी श्री कपूरचन्द्र जैन से विवाह हुआ किन्तु दुर्भाग्य से उन्हें एक वर्ष बाद ही वैधव्य ने आ घेरा।

संसार को असार जान उन्होंने वि० सं० २०१७ में कम्पिलाजी की पावन धरा पर क्षुल्लिका दीक्षा ली। तदुपरान्त श्रावकोचित व्रतों का पालन करते हुए चारित्र की अभिवृद्धि की जिसके परिणामस्वरूप वि० सं० २०२१ में मुक्तागिरि पावन क्षेत्र पर आचार्यश्री विमलसागर जी से आर्यिका व्रत ग्रहण कर आदिमती नाम से विख्यात हुईं। अब अपना तपस्वी जीवन जिनेन्द्र आराधना में समर्पित किये हुए हैं।

●

आर्यिका अरहमती जी

परिवर्तनशील संसार में उत्तम संस्कार, उत्तम प्रेरणा और उत्तम वातावरण प्राणी को चरम उन्नति पर पहुँचा देता है। ये कारण ही तो वीरगाँव के निवासी श्री गुलाबचन्द्र जी एवं श्रीमती हरिणीबाई की सन्तान वीरबाला कुन्दनबाई को मिले। तभी तो खण्डेलवाल जाति पहाड़िया गोत्रज कुन्दनबाई ने लौकिक शिक्षा न के बराबर होते हुए भी सत्संग और धर्म श्रवण से महान् लाभ उठाया।

बाल्यावस्था के संस्कार सबल हुए। वैधव्य जीवन में विरक्ति की भावना जाग गयी। जिसके ज्येष्ठ (मुनि चन्द्रसागर जी), काका (आचार्य वीरसागर जी), पुत्र (मुनि श्री श्रेयांससागर जी) महान् आदर्श पुरुष हुए हों और जो १५ वर्षों तक १०८ मुनिश्री सुपार्श्वसागर जी के सान्निध्य में धार्मिक पवित्र वातावरण में रही हों, वे अपना कल्याण क्यों न करें। फलस्वरूप वि० सं० २०२० में मुनिश्री सुपार्श्वसागर से क्षुल्लिका दीक्षा ओर एक वर्ष पश्चात् ही वि० सं० २०२१ में आचार्यश्री १०८ शिवसागर महाराज से शान्तिवीर नगर महावीर जी क्षेत्र पर आर्यिका दीक्षा लेकर चरम लक्ष्य प्राप्त कर लिया। आचार्य प्रदत्त आर्यिका दीक्षा की अरहमती संज्ञा ही वरदान सिद्ध है।

●

क्षुल्लिका अरहमती माताजी

'जिसने संसार को असार देखा उसने सार पा लिया।' संसार को असार देखने वाली क्षु० अरहमती का जन्म वीरमगाँव में हुआ था। बचपन का नाम कुन्दनमती था। इनके पिता खण्डेलवाल जातीय श्री कुन्दनलाल जैन हैं। दीक्षा मुनिश्री १०८ सुपार्श्वसागर महाराज से रामपुर में ग्रहण की थी। सम्प्रति आप क्षु० अरहमती लक्ष्यप्राप्ति में संलग्न हैं।

●

आर्यिका श्री इन्दुमती जी

ऋषियों और वीरों की जन्मभूमि राजस्थान प्रान्तान्तर्गत 'नागौर' मण्डल के डेह ग्राम के निवासी श्री चरणमल जी पाटनी की धर्मपत्नी ने वि० सं० १९६४ में एक नन्हीं-मुन्नी को जन्म दिया था। जिसका नाम मोहिनीबाई रखा गया। मोहिनी बाई का विवाह १२ वर्ष की अल्पायु मे श्री चम्पालाल सेठी जी के साथ बारसोई (पूर्णियाँ) में हुआ था किन्तु दुर्भाग्य वश छः महीने के अनन्तर पति का देहान्त हो गया।

पति वियोग ने मोहिनी की दिशा परिवर्तित कर दी। वह प्रेयमार्ग से हटकर श्रेयमार्ग की ओर उन्मुख हुई। जिससे उन्होंने आचार्यकल्प श्री १०८ चन्द्रसागर जी महाराज से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। वि० सं० २००० मिती आश्विन सुदी ११ को क्षुल्लिका दीक्षा ली। मुनिश्री के स्वर्गारोहण के बाद आपने आचार्यश्री वीरसागर जी से आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर इन्दुमती रूप अभिधान को अलंकृत किया।

वर्तमान में संघ का संचालन करती हुई अनेकानेक तीर्थों एवं नगरों में भ्रमण कर हजारों नर-नारियों को असत् कार्यों से पराङ्मुख कराकर सन्मार्ग पर लगाया। जिससे उन प्राणियों ने दिगम्बर मुनि, आर्यिका, क्षुल्लिका एवं ब्रह्मचारी बनकर आत्मकल्याण और जनकल्याण का मार्ग चयन किया।

अभूतपूर्व तप, त्याग और साधना के फलस्वरूप आपका निर्मल चारित्र इन्दु के समान शीतल रश्मियों से स्वयं को और अन्य भव्य जीवों को शान्ति प्रदान कर रहा है।

●

आर्यिका कनकमती माताजी

मध्यप्रदेश का परिक्षेत्र जिनधर्मानुयायियों की सन्तति के विकास का स्थान है। इसके अन्तर्गत टीकमगढ़ जनपद है, जिसकी सीमा का निकटवर्ती बड़ागाँव नामक ग्राम है। बड़ागाँव में दि० गोलापूर्व जाति के श्री हजारीलाल जी जैन एवं श्रीमती परमाबाई दम्पति ने ६० वर्ष पूर्व एक बालिका को जन्म दिया था। बालिका का नाम चिरोंजाबाई रखा था। चिरोंजाबाई का विवाह बारह वर्ष की अल्पायु में हुआ था किन्तु दुर्भाग्य ने ४ वर्ष बाद उन्हें शोक सागर में डुबा दिया। अर्थात् ये १६ वर्ष की अल्पायु में ही विधवा हो गयीं।

अनन्तर आचार्यश्री १०८ विमलसागर जी महाराज की सत्संगति से आप में वैराग्य प्रवृत्ति जागृत हुई। आपने शिवसागर महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर ली। अनन्तर वैसाख सुदी ११ सं० २००९ के दिन शान्तिवीर नगर में श्री महावीर जी की परमपावन धरा पर आचार्य १०८ शिव-सागर महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर स्वयं को धन्य किया। वर्तमान में धर्माराधन पूर्वक जीवन यापन कर रही हैं।



आर्यिका कल्याणमती जी

राष्ट्र का गौरवशाली उत्तर प्रदेश प्रान्त अनेक मण्डल, नगर और ग्रामों से सुसज्जित है। उन्हीं के अन्तर्गत मुबारिकपुर (मुजफ्फरनगर) नामक ग्राम है, जिसमें श्री समयसिंह एवं श्रीमती समुद्रीबाई से विलासमती का जन्म हुआ था। विलासमती की शिक्षा साधारण हुई थी और विवाह भी हुआ था।

आ० सन्त गणेशप्रसाद वर्णी की सत्संगति के कारण विलासमती के हृदय में वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी फलस्वरूप सम्मेदशिखर के परमपावन स्थल पर सातवी प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिए। इसके बाद इन्होंने आचार्यश्री १०८ शिवसागर जी से वि० सं० २०२२ शान्तिनगर महावीर जी में क्षुल्लिका दीक्षा ली और कल्याणमती संज्ञा से विभूषित हो गयीं। अनन्तर आचार्यश्री शिवसागर से ही कोटा नगर के मध्य आर्यिका के महाव्रत लिए। सम्प्रति चारित्र शुद्धिव्रत की उपासना से निर्मल-चित्त होकर धर्मप्रभावना मे लीन हैं।



क्षुल्लिका कमलश्री माताजी

शान्त स्वभाव, गुरुभक्ति, धर्मप्रचार और आत्मकल्याण के साथ जनकल्याण करने वाली कमलश्री माताजी का दीक्षा के पूर्व का नाम पद्मावती था। पद्मावती का जन्म अक्षय तृतीया के दिन १९१५ ई० को वसगडे जिला कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री तासोबा सौंदे और माता का नाम श्रीमती गान्धारी था। पद्मावती का विवाह श्री बाबूराव किणे के साथ ६ वर्ष की अल्प आयु में हो गया था। धर्मपरायण होने से आ० विशालमती की सत्प्रेरणा से ई० १९५५ में आचार्य देशभूषण महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा लेकर कमलश्री सम्पन्न अब धर्मकार्य में दत्तचित्त हैं।



क्षुल्लिका कीर्तिमती जी

बचपन से ही वैराग्यमयी परिणामसम्पन्न आपका जन्म कुसुम्बा जिला धूलिया (महाराष्ट्र) में हुआ। पिता का नाम श्री हीरालाल व्रजलाल शहा तथा माता का नाम श्रीमती क्षमकोर बाई है। १५ वर्ष की आयु में विवाह हुआ और दो बच्चे भी हुए किन्तु संसार के प्रति अनासक्ति होने से २४ वर्ष की आयु में ही सप्तम प्रतिमा के व्रत आचार्य देशभूषण से ग्रहण कर लिए। महाराजश्री के संघ में रह रही थीं कि फलटण में क्षु० चारित्रसागर से भेंट हुई। उनके साथ सम्मेदशिखर में पहुँचकर आचार्यश्री विमलसागर जी से फाल्गुन शुक्ला ५ सं० २०३३ को क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर लीं। आप शांतस्वभावी सतत अध्ययनशील हैं।



आर्यिका गुणमती माताजी

अतिशय क्षेत्र महावीर जी का पावन परिसर जन-जन की भावनाओं को विशुद्ध करने में परम सहायक है। इसी परिसर के मध्य श्री मूलचन्द्र जी एवं श्रीमती बदामीबाई के यहाँ एक बालिका का जन्म हुआ था। इन्होंने उस बालिका का नाम असर्फीबाई रखा क्योंकि इसके जन्म होने पर उन्हें असर्फी प्राप्त हुई थीं। असर्फीबाई की लौकिक शिक्षा कक्षा ४ तक थी किन्तु धार्मिक शिक्षा शास्त्री पर्यंत। विवाह सेठ भँवरलाल से हुआ और दो पुत्र एक पुत्री थी। धार्मिक संस्कार और अनेक मुनियों आर्यिकाओं के सम्पर्क से वैराग्यरूप बीजाङ्कुर प्रस्फुटित हुआ कि आचार्यश्री १०८ धर्मसागर से दीक्षा लेकर आर्यिका गुणमती रूपी कल्पतरु हो गया। जिसमें महाव्रत, देशसंयम आदि रूप फल फलित हैं।



आर्यिका चन्द्रमती माताजी

अनेक अरण्य, महीधर, सरिता एवं उद्यान आदि प्राकृतिक सुरम्य दृश्यों से मनोरम उत्तर प्रदेश के मैनपुरी मण्डलान्तर्गत बेलार ग्राम निवासी श्री लालाराम जी एवं श्रीमती कस्तूरीबाई नाम दम्पति से आपके पार्थिव शरीर का उदय हुआ था। आपका जन्मकाल अगहन कृष्णा २ विक्रम सं० १९८२ है और बचपन का नाम चन्द्रकली है। संसार की असारता देखकर स्वयं वैराग्य भावना से प्रेरित होकर आर्यिका विमलमती एवं आर्यिका विजयमती की उपस्थिति में गुरुवर्य से अपनी ३० वर्ष की अल्पायु में आर्यिका नाम्नी जिनदीक्षा ग्रहण की थी। वर्तमान में जिनेन्द्रमार्ग का प्रचार प्रसार करती हुई आत्मसाधना रत हैं।



आर्यिका चन्द्रमती माताजी

भवभ्रमण से मुक्त होने का संकल्प सुलोचना बाई ने किया। सुलोचना बाई जैन केसरिया (ऋषभदेव) राजस्थान निवासी श्री अमरचन्द्र जैन एवं ललिताबाई जैन की संतान हैं। इनका जन्म कार्तिकवदी अमावस्या वीरनिर्वाण के शुभ दिन हुआ था।

सुलोचना बाई के संकल्प ने माघ सुदी ३ सं० २०३२ के शुभमुहूर्त में १०८ आचार्यश्री सुमतिसागर महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर साकाररूपता प्राप्त की। आर्यिका महाव्रत ग्रहण के अनन्तर गुरुप्रदत्त चन्द्रमती नाम को सार्थक करती हुई धर्म भावना में तत्पर हैं।

●

आर्यिकाश्रेष्ठ चन्द्रमती माताजी

महाराष्ट्र प्रान्त के पूना मण्डलान्तर्गत 'वाल्हे गाँव' नामक ग्राम अनेक श्रावक श्राविकाओं का आवासस्थल है। इसी वाल्हेगांव में माता चन्द्रमती का जन्म विश्रुत श्रावक कुल में हुआ था। गृहस्थ जीवन में आपको केसरबाई नाम से पुकारा जाता था। केसरबाई का पाणिग्रहण तेरह वर्ष की अल्पायु में हो गया था। इनका शरीर शक्तिशाली था। जो भी इनके सुदृढ़ और गम्भीर व्यक्तित्व को देखता था, वह पूर्ण प्रभावित हो जाता था।

इन्होंने प्रारम्भ में बम्बई के श्राविकाश्रम में शिक्षा ग्रहण करने की इच्छा अभिव्यक्त की। श्राविकाश्रम की संचालिका महिलारत्न मगनबाई और उनकी सहायिका कंकूबाई और ललिताबाई थीं। संयोगवश केसरबाई के पिता ने अपनी दुहिता केसरबाई को पं० नाना जी नाग के तत्त्वावधान में घर ही शिक्षण दिलाया।

नारी कल्याण का शुभ दिन आया कि चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने केसरबाई को सत्पात्र विचार कर दीक्षा दे दी। महाराजश्री ने अनेक महिलाओं को अनेकशः प्रार्थना करने पर भी दीक्षा नहीं दी थी किन्तु केसरबाई को यह कहकर दीक्षित किया था कि नमूना तो बनो। ये वर्तमान समय की प्रथम आर्यिका दीक्षित हुई थीं। इनके पूर्व उत्तर भारत में आर्यिका पद पर कोई भी विद्यमान नहीं था। इन्होंने ५०० वर्ष से विच्छिन्न श्रमणामार्ग को पुनः उत्तर भारत में गौरवान्वित किया।

माताजी को व्रत उपवास करने में बड़ा आनन्द आया करता था। इन्होंने चारित्रशुद्धि व्रत किया था, जिसमें १२३४ उपवास होते हैं। इनकी पवित्र और उज्ज्वल भावनाओं का जन-जन पर अमिट प्रभाव पड़ता था। दिल्ली के सुप्रसिद्ध नये मन्दिर जी में शुभ्रवर्णी सहस्रकूट चैत्यालय एवं दि० जैन लालमन्दिर जी के उद्यान में सुन्दर मानस्तम्भ इनकी और इनके साथ रहने वाली आर्यिका विद्यामती माताजी की प्रेरणा के प्रतिफल हैं।

माता चन्द्रमती का स्वभाव बड़ा सरल था और वाणी मधुर थी। निर्दोष संयम पालने से आत्मा में अद्भुत शक्तियाँ विकसित होती है। संयम व्रत नियम और चर्या का परिपालन करते हुए अपने शताधिक वर्षों की आयु पूर्ण कर स्वर्गपुरी को अलंकृत किया।

●

क्षुल्लिका चन्द्रमती माताजी

अक्षय तृतीया (दि० १४-५-७५) का वह दिन कोई नहीं भूल सकता जिस दिन सौ० अनघा चन्द्रकांत दोशी पूज्य क्षुल्लिका चन्द्रमती माताजी के रूप में दुनिया के सामने आईं। आपका जन्म

दि० १७-४-४४ को बेजापुर (महाराष्ट्र) में हुआ था। पिता छगनलाल और माता सौ० सोनुबाई हैं। जन्म नाम कु० हीरनमाला तथा विद्यालयीय नाम कु० शकुन्तला है। लौकिक शिक्षण में आपने बी० ए० आनर्स तथा H M D.S वैद्यकीय उपाधि प्राप्त की है। विवाह डॉ० चन्द्रकांत गुलाबचन्द्र दोशी (वर्तमान में पूज्य १०८ वीरसागर महाराज) के साथ हुआ था। आपने अनेक आध्यात्मिक जैन ग्रन्थों का सूक्ष्मरीत्या अध्ययन किया है। सम्प्रति प्राणियों को आत्मोन्नति का उपाय दर्शाती हुई साधनारत हैं।

●

क्षुल्लिका चन्द्रमती जी

वयोवृद्ध, शान्त और स्वाध्यायशीला आपका जन्म अलवर निवासी श्री सरदार सिंह एवं श्रीमती भूरीबाई के यहाँ हुआ था। धर्मभावना के फलस्वरूप आपने आचार्यश्री महावीरकीर्ति महाराज से क्षुल्लिका रूप श्रावकव्रत ग्रहण किये हैं। आपकी सत्प्रेरणा से वासुपूज्य भ० के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण स्थान पर ७० फुट ऊँचा मानस्तम्भ २४ टोंक, भ० वासुपूज्य की २५ फुट ऊँची प्रतिमा, स्वाध्याय भवन आदि कार्य हो रहे हैं।

●

क्षुल्लिका चेलनामती जी

आपका जन्म २५ जुलाई १९२८ के दिन श्री प्रकाशचन्द्र जैन की धर्मपत्नी श्रीमती त्रिशलावती जी की कुक्षि से हुआ था। जन्मस्थान गढ़ी हसनपुर, जिला मुजफ्फरनगर (उ० प्र०) है। आपने आचार्य देशभूषण महाराज से ब्रह्मचारी दीक्षा और श्री सम्मेदशिखर जी की पावन पुण्यभूमि पर आचार्यश्री १०८ विमलसागर महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की। आप कषाय की पकड़ से छूटने में प्रयत्नशील हैं।

●

आर्यिका श्री जिनमती जी

"यदि कल्याण की इच्छा है, तो विषयों को विष के समान त्याग देना चाहिए। क्षमा, सरलता, दया, पवित्रता और सत्य को अमृत के समान ग्रहण करना चाहिए" इस तथ्य का बोध प्रभावती को हुआ और आर्यिकारत्न ज्ञानमती के सान्निध्य में व्रती बन गईं। प्रभावती के पिता श्री फूलचन्द्र जैन और माता श्री कस्तूरी देवी थीं, किन्तु दुर्भाग्य से पितृ मातृ वियोग बचपन मे ही हो गया। जिसके कारण लालन-पालन मातुल गृह पर हुआ। इनका जन्म फाल्गुन शुक्ला १५ सं० १९९० के दिन म्हसवड़ (महाराष्ट्र) नामक स्थान पर हुआ था।

आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती जी की सत्संगति के कारण प्रभावती की वैराग्य भावना तीव्र होती गयी। फलस्वरूप श्री १०८ आचार्य वीरसागर महाराज से वि० सं० २०१२ में माधोराजपुरा में

क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। श्रावक के व्रतों का पालन करते हुए आर्यिका ज्ञानमती से न्याय, व्याकरण और सैद्धान्तिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। अपनी कुशाग्रबुद्धि के कारण परम विदुषी हो गईं और गुरुवर्य से प्राप्त 'जिनमती' नाम को सार्थक किया।

ज्ञान और चारित्र की बढ़ती धारा ने महाव्रत धारण की क्षमता उत्पन्न करा दी। परिणाम स्वरूप कार्तिक शुक्ला ४ वि० सं० २०१६ के दिन सीकर (राजस्थान) के मनोरम समारोह में आचार्यश्री शिवसागर महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर लीं।

संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी भाषा का सम्यक्रीत्या अध्ययन होने से आपने न्याय, व्याकरण, कोष एवं सैद्धान्तिक ग्रन्थों का परायण किया और प्रमेयकमलमार्तण्ड जैसे महान् दार्शनिक ग्रन्थ की हिन्दी टीका करके दार्शनिक क्षेत्र की महती पूर्ति की है।

●

आर्यिका श्री जिनमती जी

धर्म भावना में तल्लीन आप (जिनमती जी) का जन्म पाडवा (सागावाडा) में विक्रम संवत् १९७३ में हुआ था। बाल्यावस्था में आपको मंकुबाई नाम से पुकारा जाता था। मंकुबाई के पिता नरसिंहपुरा जाति के श्री चन्दुलाल जी एवं माता श्रीमती दुरीबाई हैं। दो भाई और दो बहिन और थी। मंकुबाई का विवाह पारसोला में हुआ था किन्तु ६ माह बाद ही वैधव्य के दुःख से आक्रान्त हो गयीं।

वैधव्य ने जीवन दिशा को मोड़ दिया जिससे महावीरकीर्ति महाराज से प्रथम प्रतिमा के व्रत लिए। अनन्तर वर्धमानसागर महाराज से सातवीं प्रतिमा और २०२४ में क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की। श्रावकोचित व्रतोपवास आदि नियमों का पालन करती रहीं और चारित्र की विशुद्धि करती रहीं। फलस्वरूप सम्मेदशिखर के परमपावन स्थल पर आचार्यश्री विमलसागर से आर्यिका के महाव्रतों के साथ जिनमती रूप अभिधान को हस्तगत किया। आप संघ की तपस्विनी आर्यिका हैं।

●

क्षु० जयमती जी

भारतीय नारी सन्मान की पात्रा हैं किन्तु यदा-कदा उसे अपमान भी सहना पड़ता है। इस अपमानित जीवन को निन्द्य मानकर शान्ति देवी ने १७ सितम्बर १९६९ में क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर ली। शान्ति देवी के पिता श्री पदमचन्द जैन एवं माता श्रीमती मैना देवी जैन, मुजफ्फरनगर (उ० प्र०) निवासी हैं। आपने लौकिक अध्ययन इण्टर मीडिएट पर्यंत किया किन्तु धार्मिक षट्-खण्डागम आदि ग्रन्थों के भी स्वाध्याय से ज्ञानार्जन में तल्लीन हैं।

●

क्षुल्लिका जयश्री जी

विषय वासनाओं के प्रति आसक्ति और क्रोध के आवेश को वश में कर लेने पर आत्मबल बढ़ता है और यही सफलता का रहस्य है। विषय वासना के आधीन न होने वाली मातुश्री जयश्री

का जन्म अक्कलकोट जिला सोलापुर (महाराष्ट्र) में हुआ था। आपने ३९ वर्ष पर्यंत उदासीनतापूर्वक घर में निवास किया क्योंकि आप बचपन से ही धर्म के प्रति रुचि रखने वाली थीं। अतएव आपने विवाह न कर २० वर्ष की आयु में ही स्वर्गीय आचार्य पायसागर से सातवीं प्रतिमा के व्रत ले लिए थे। आचार्य देशभूषण के संघ में सम्मिलित हो आप्तमीमांसा, आप्तपरीक्षा, न्यायदीपिका आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर ई० १९५९ श्रवणबेलगोल में उन्हीं से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर ली।

●

आर्यिका दयामती माताजी

विशालकाय सरोवर एवं जिनालयों से मण्डित सागर नगर के मध्य सिंघई गोरेलाल जैन के सुखसम्पन्न परिवार में आपका जन्म हुआ था। बाल्यावस्था का नाम नन्हींबाई है। प्रारम्भिक काल में सामान्य अध्ययन कर वैवाहिक जीवन यापन करने वाली आपके गार्हस्थिक जीवन में वज्रपात हुआ कि वैधव्य जीवन में आ गयीं। समय के साथ दुःख दूर हुआ और एक नया अभ्युदय हुआ कि आपका कनकमती जी से सम्पर्क हुआ। अनन्तर उनकी प्रेरणा से आचार्य शिवसागर महाराज से दीक्षा ग्रहण की और दयामती रूप वर्णों को अलंकृत करते हुए महाव्रती जीवन अपनाया। वर्तमान में आचार्य १०८ अजितसागर महाराज के संघ में विराजमान हैं।

●

क्षुल्लिका दयामती जी

प्रगतिशील मनुष्य के मार्ग में आने वाला एक मात्र बाधक भय है। इस भय को ललितपुर निवासी काशीराम जैन एवं श्रीमती केशरबाई की पुत्री और श्री भागचन्द्र जैन की पत्नी जमनाबाई ने तिलाञ्जलि दी। सिद्धक्षेत्र सोनागिर के मनोरम प्रांगण में आचार्यश्री सुमतिसागर महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर दयामती संज्ञा को प्राप्त किया। दयावन्त जीवन को व्यतीत करती हुई कर्म बेड़ी को जीर्ण कर रही हैं।

●

महासाध्वी आर्यिकाश्री धर्ममती माताजी

नारी महान् गौरव की अधिष्ठात्री है क्योंकि उसके गर्भ से तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण और बलभद्र जैसे महापुण्यशाली महापुरुषों ने जन्म लिया है। ऐसी नारी जब संयम और चारित्र के अलंकरणों से सुसज्जित होती है तब उसकी पूजनीयता और भी अधिक बढ़ जाती है।

संयम और चारित्र से अलंकृत महासाध्वी आ० धर्ममती माताजी का जन्म १८९८ ई० में कुचामन नगरी के समीपस्थ लूणवाँ नामक ग्राम के निवासी श्री चम्पालाल जैन के घर हुआ था। श्री चम्पालाल जी की सुपुत्री का विवाह वर्धा निवासी श्री लखमीचन्द्र कासलीवाल से हुआ था

किन्तु १४ वर्ष की अल्पायु में ही सौभाग्य अस्त हो गया। जिससे वे संसार की असारता का अनुभव कर व्रतानुष्ठान में तत्पर हो गयीं।

अनन्तर ई० सन् १९३६ में श्री कुन्थलगिरि क्षेत्र के पावन स्थल पर १०८ श्री जयकीर्ति महाराज से आपने परम श्रेयस्कारिणी आर्यिका दीक्षा लेकर धर्ममती नाम प्राप्त किया। आपकी सौम्य मुद्रा, शान्त मुखाकृति, गम्भीर प्रकृति, कठोर तपश्चर्या, निरन्तर अध्ययन, नाना प्रकार से व्रत उपवास करना आदि क्रियाओं को देखकर महान् हर्ष होता है।

आपने सन् १९३६ के भींगुर चातुर्मास से लेकर १९४७ के कुचामन चातुर्मास पर्यन्त १२ चातुर्मासों के अन्तर्गत आगम विहित क्रमशः आचाम्ल व्रत, एकावली व्रत, चान्द्रायण व्रत, पुनः एकावली व्रत, मुक्तावली व्रत, सिंहनिष्क्रीडित व्रत, सर्वतोभद्र व्रत, दुकावली व्रत, रत्नावली व्रत, शान्तकुम्भव्रत व मेरुपंक्ति व्रतों का साधन किया। इन व्रतों में उपवासों की कुल संख्या ५५३ एवं पारणाओं की संख्या २२७ है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आप महान् तपस्विनी के रूप में जीवन व्यतीत कर रही हैं।

●

क्षुल्लिका धर्ममती माताजी

विचार स्वयं ही कार्य में परिणत होने के लिए मार्ग खोज लेता है। यह तथ्य क्षु० धर्ममती के साथ पूर्णरूप से घटित होता है। आप कोथली निवासी सेठ कालीशाह एवं श्रीमती घुंघुबाई की पुत्री इन्दु से क्षु० धर्ममती बनीं। आपने अपने विचार के अनुरूप क्षुल्लिका दीक्षा मुनिवर १०८ श्री निर्मणसागर से सोनागिर पर प्राप्त की है। सम्प्रति मोक्षरूपी कार्य की सिद्धि हेतु प्रयत्नशील हैं।

●

आर्यिका नंगमती जी

सरलस्वभावी, मृदुभाषी एवं गुरुभक्त सुधर्माबाई का जन्म १९५१ ई० में इन्दौर निवासी श्री माणिकचन्द्र जी कासलीवाल की गृहिणी श्रीमती माणिकबाई की कुक्षि से हुआ था। समस्त परिवार धार्मिक संस्कारों से संस्कारित होने से सुधर्मा में धर्म के प्रति तीव्र अभिरुचि जागृत हुई और १८ वर्ष की अवस्था में ही श्री १०८ ज्ञानभूषण महाराज से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। शनैः-शनैः अध्यवसायी सुधर्मा ने जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर परीक्षा उत्तीर्ण की और श्रावण शुक्ला १५ (रक्षाबन्धन) तदनुसार ८।८।१९७९ के शुभ दिन चन्द्रप्रभु के प्रांगण वाले सोनागिरि तीर्थक्षेत्र पर आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर जीवन की परीक्षा उत्तीर्ण की। गुरुप्रदत्त नंगमती संज्ञा से विभूषित आप ज्ञान और चारित्र में अभिवृद्धि को प्राप्त कर रही हैं।

●

आर्यिका नन्दामती जी

संसार एक रंगमंच है। इसमें प्रत्येक प्राणी की दशा बदलती रहती है। संसार रूपी मञ्च पर जयमाला देवी के जीवन में भी अचानक परिवर्तन आया कि आप के पति आगरा निवासी श्री सुगन्धीलाल जैन का सार्धद्वय वर्ष में ही देहावसान हो गया।

जयमाला के पिता श्री मुन्नीलाल एवं माता श्रीमती कपूरी देवी को भी गहरा आघात पहुँचा। उन्होंने १९२९ ई० में जन्मी अपनी बेटी जयमाला देवी को अध्यापन करने की सलाह दी। अतएव अध्यापिका का कार्य करती हुई जयमाला देवी को आचार्य विमलसागर ने व्रत ग्रहण करने की प्रेरणा दी। जिससे पुनः एक नवीन परिवर्तन आया कि श्री विमलसागर महाराज से १९६९ ई० में जयमाला ने क्षुल्लिका के व्रत ग्रहण कर लिये। इसके अनन्तर कार्तिक शुक्ल २ मंगलवार वि० सं० २०३० आ० विमलसागर महाराज से ही आर्यिका दीक्षा के साथ नन्दामती संज्ञा को ग्रहण किया। आप शान्त एवं भद्रपरिणामी विदुषी आर्यिका हैं।

●

आर्यिका निर्मलमती माता जी

ग्रीष्मकाल की तीव्र गर्मी से सन्तप्त प्राणियों को जलदान से जीवनदान देने वाले सरोवर, नदी, पुष्करिणी विहीन राजस्थान की धरा पर वीरों ऋषियों मुनियों आर्यिकाओं आदि प्रभावक जनों का प्रादुर्भाव सतत होता रहा है। इसी धरा के प्रधान नगर जयपुर मण्डल के अन्तर्गत बैराठ ग्राम है। बैराठ ग्राम के निवासी श्री महादेव सिंघई की धर्मपत्नी गोपालीबाई ने मगसिर वदी १२ सं० १९८० के दिन एक बालिका को जन्म दिया था। इस बालिका का मनफूल बाई नामकरण किया गया था। मनफूल बाई का विवाह १३ वर्ष की अल्पायु में हो गया था किन्तु ११ महीने बाद वैधव्य जीवन को अपनाना पड़ा।

इस शोकसागर में निमग्न होने के कारण संसार से विरक्ति धारण कर आचार्य धर्मसागर महाराज से आर्यिका के महाव्रतों को अङ्गीकार किया। वर्तमान में जिनधर्म प्रभावना करतीं हुई भारतधरा पर विहार कर रही हैं।

●

आर्यिका नेमवती माता जी

अनादिकाल से विद्यमान दिगम्बर जैनधर्म की परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। इसके अनुयायी श्रमण श्रमणा श्रावक श्राविका भी शक्त्यनुसार धर्माराधन करते हुए जीवन रेखा पर आरूढ हैं। इसी मार्ग का आश्रय लेने वाली आर्यिका नेमवती का जन्म फफोतू (टूंडला) आगरा (उ० प्र०) के श्री प्यारेलाल एवं श्रीमती जयमाला जैन श्रावक युगल से मई १९३० ई० में हुआ था। आपका गृहस्थावस्था का नाम बिट्टूबाई था। धार्मिक अध्ययन करते हुए जीवन यापन कर रही थी कि आपको संसार से वैराग्य हो गया। अनन्तर आपने अप्रैल १९७५ ई० में कलकत्ता नगर के मध्य आचार्यश्री १०८ सन्मतिसागर महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। वर्तमान में तपस्वी जीवन को व्यतीत करती हुई निरन्तर व्रतोपवस तथा धर्म साधना में तल्लीन रहती हैं।

●

आर्यिका नेमीमती माता जी

जो कोई भी ज्ञान के विषयों की परख करता है उसे संसार के प्रति अरुचि होना स्वाभाविक है। ज्ञानार्जन में दत्तचित्त भँवर कुमारी का जन्म श्रावण कृष्णा ७ वि० १९५५ की शाम को जयपुर में हुआ था। इनके पिता श्री रिखबचन्द्र जी विन्दायक्या और मातुश्री मेहताब बाई थीं। लौकिक शिक्षण कक्षा चार तक है किन्तु चारों अनुयोगों के अध्ययन से ज्ञान की यथार्थ परख की। इनके पति लाला गणेशलाल विलाला जयपुर स्टेट के काल में चाँदी की टकसाल के आफिसर थे। पति और पत्नी दोनों जिनसाधुओं की वैयावृत्ति में लगे रहते थे। पति के वियोग के अनन्तर भँवर कुमारी ने आचार्य शिवसागर से क्षुल्लिका एवं वि० सं० २०१७ में सुजानगढ़ नगर के मध्य आर्यिका के महाव्रतों को ग्रहण किया। देश संयम रूप व्रतों का यथाविधि पालन करती हुई साधनारत हैं।



क्षुल्लिका निर्मलमती जी

बाल्यकाल से वैराग्य भाव को धारण करने वाली मुन्नी जैन का जन्म कटनी (म० प्र०) में हुआ। आपके पिता श्री कपूरचन्द्र जैन एवं माता श्रीमती चेन बाई हैं। आपने १६ वर्ष की अल्पायु मे आचार्य सन्मतिसागर महाराज से आषाढ़ कृष्णा ११ वि० सं० २००८ मे क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर क्षु० निर्मलमती नाम पाया। वैराग्य मय जीवन के साथ अब सन्मार्ग पर अवस्थित हैं।



क्षुल्लिका निर्माणमती माता जी

मध्यप्रदेश के पन्ना मण्डल के निकटस्थ खवरा नामक ग्राम है। इस ग्राम में श्री हीरालाल और केसरबाई नामधेय श्रावक युगल धर्माराधन करते हुए रह रहे थे किन्तु पारिवारिक परिस्थितियों वश जबलपुर प्रवासी हो गये। इस श्रावक युगल ने तीन पुत्र और दो पुत्रियों को जन्म दिया था। युगल परिवार में रहते हुए भी धर्म भावना मे तल्लीन रहता था। कालान्तर में श्री हीरालाल जी क्षुल्लक दीक्षा और केसर बाई ने वि० सं० २०३६ की फाल्गुन शुक्ला २ के दिन आचार्यकल्प श्री सन्मतिसागर महाराज से सम्मेदशिखर नामक तीर्थस्थल के पावन परिक्षेत्र में क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की थी। वर्तमान में क्षुल्लिका निर्माणमतो व्रत उपवास आदि धर्मकार्यों में संलग्न हैं।



आर्यिका प्रज्ञामती माता जी

राजस्थान प्रान्त के उदयपुर जिले के कुण्डा नामक ग्राम में नरसिंहपुरा जैन जाति के श्री रामचन्द्र जी रहते थे। इनकी धर्मपत्नी श्रीमती कूनग बाई से ९ सन्तान हुई थीं उनमें एक पुत्री का नाम ललिता था। ललिता सामान्य अध्ययन करती थी कि उसी समय १४ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह हो गया। दुर्दैव के कारण चार वर्ष के अनन्तर पति का देहावसान हो गया। तभी से धर्माराधन पूर्वक जीवन व्यतीत करने वाली ललिता अपने पिता के बड़ौत नगर में ई० स० १९७५

के चातुर्मास हेतु विराजमान धर्मसागर के दर्शनार्थ आयीं। महाराजश्री से ७ वीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर श्रावकोचित क्रियाओं में दत्तचित्त हो गयीं। कालान्तर में घाटोल पञ्चकल्याणक के अवसर पर अक्षय तृतीया के शुभ दिन में महाराजश्री से आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर लीं। इस समय प्रज्ञामती नाम धारिणी आप महिलाओं को संयम, व्रत नियम, स्त्रीपर्याय उच्छेद आदि सैद्धान्तिक उपदेशों को देती हुई स्थान-स्थान पर मुनिसंघ में विहार कर रही हैं।



स्व० आर्यिका पार्श्वमती माता जी

राजस्थान प्रान्त के मध्य 'जयपुर' नगरी अनेक नरनारियों की आकर्षण स्थली है। इसी स्थली के समीपस्थ खेड़ा ग्राम में श्री मोतीलालजी एवं श्रीमती जड़ाबाई निवास करते थे। इनकी पुत्री का नाम गेन्दाबाई था। गेन्दाबाई की लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा साधारण हुई थी, खण्डेलवाल जाति के बोरा गोत्रज थीं, आठ वर्ष में विवाह हुआ था किन्तु २४ वर्ष की अवस्था में विधवा हो गयीं।

आचार्यश्री शान्तिसागर के संघ दर्शन के कारण वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी और उनसे सातवीं प्रतिमा के व्रत लिए। अनन्तर आचार्यश्री वीरसागर महाराज से वि० सं० १९९७ में क्षुल्लिका के व्रत ग्रहण कर श्रीमती गेन्दाबाई क्षु० पार्श्वमती हो गयीं। इसके बाद साधना मे रत आपने विक्रम संवत् २०-२ मे आचार्यश्री वीरसागर महाराज से ही आर्यिका के व्रत झालरापाटन में ग्रहण किये। दीक्षा के अनन्तर अनेक स्थानो पर चातुर्मास कर धर्मप्रभावना की थी।



आर्यिका पार्श्वमती माता जी

विहार प्रान्त की केन्द्रविन्दु आरा नगरी शोभा प्रतिष्ठानों से समलंकृत है। इस प्रसिद्ध नगरी के निवासी श्री महेन्द्रकुमार जैन एवं श्रीमती राजदुलारी जैन की सुपुत्री बृजमोहिनी बाई ने आचार्यश्री १०८ सुमतिसागर महाराज से श्रावण शुक्ला ९ संवत् २०३० के शुभ दिन आर्यिका के महाव्रतों को ग्रहण किया। आर्यिका के रूप में पार्श्वमती अलंकरण से अलकृत हो मध्यभारत में जिन प्रभावना कर रही हैं।



आर्यिका पार्श्वमती माताजी

भारतवर्ष धर्मप्रधान देश है। इसकी प्रत्येक श्वास में धर्म है। इसके जीवन की ज्योति धर्म है। धर्म ही इसका रक्षक है और धर्म ही इसका ध्येय है। इस धर्म के प्रतिपादक वीतराग जिनेन्द्र हैं। उन्हीं के द्वारा प्रतिपादित मार्ग पर पार्श्वमती माता जी चल रही हैं। इनका जन्म मगसिर वदी १२ सं० १९५६ के दिन अजमेर (राजस्थान) में हुआ था। बचपन में बारसीबाई नाम से पुकारी जाती थीं। बारसी के पिता श्री सौभाग्यमल जैन एवं माता श्रीमती सुरजीबाई हैं।

जो खण्डेलवाल जाति के हैं। इन्होंने ब्रह्मचारिणी,, क्षुल्लिका और आर्यिका दीक्षाएँ स्व० गुरुवर्य श्री चन्द्रसागर जी महाराज से ग्रहण की थीं। वर्तमान में शरीर के क्षीण होने पर भी सतत साधना रत हैं।

●

क्षुल्लिका प्रवचनमतीजी

कर्नाटक प्रान्त के बेलगाँव मण्डलान्तर्गत ग्राम सदलगा में श्री मल्लप्पा जी की धर्मपत्नी श्रीमती देवी की कुक्षि से श्रावण शुक्ला १५ (रक्षा बन्धन) वि० सं० २०१२ के दिन आपका जन्म हुआ था। आपके गृहस्थ जीवन के माता-पिता वर्तमान में जैनेश्वरी दीक्षा में हैं। जिनके नाम आर्यिका समयमती एवं मुनि श्री १०८ मल्लिसागर जी हैं। परमपूज्य आचार्यश्री विद्यासागर महाराज आपके गृहस्थ जीवन के भाई हैं। आप धर्मनिष्ठ परिवार में उत्पन्न हुई और कक्षा सातवीं तक अध्ययन किया। वैराग्य भावना प्रबल होने से आपने माघ शुक्ला ५ वि० सं० २०३२ के दिन मुजफ्फरनगर में आचार्य धर्मसागर से आर्यिका के महाव्रत ग्रहण किये किन्तु अशुभ कर्मों की बलवत्ता के कारण बहुत बीमार रहने लगी तब १०८ मुनिश्री विद्यानन्द ने आपको क्षुल्लिका के व्रत पालन की आज्ञा दी। तब से क्षु० के रूप में धर्माराधन कर रही हैं।

●

क्षुल्लिका पद्मश्री जी

स्वाध्याय जप तप और वैयावृत्ति में ही जीवन व्यतीत करने वाली आप (क्षु० पद्मश्री) का बाल्यावस्था का नाम सीधारबाई था। सीधारबाई के पिता का नाम श्री पूनमचन्द्र, माता का नाम श्रीमती रूपीबाई था। विवाह श्री दीपचन्द्र जी के साथ हुआ था और एक पुत्र को भी जन्म दिया था। संसार से विरक्ति होने के कारण दूसरी प्रतिमा मुनिश्री शान्तिसागर से, सातवीं प्रतिमा आ० महावीरकीर्ति जी से एवं आचार्य विमलसागर से फाल्गुन शुक्ल १४ के शुभ दिन पार-सोला (प्रतापगढ़) नामक अपने जन्म स्थान से क्षुल्लिका के व्रत के साथ पद्मश्री संज्ञा को प्राप्त किया।

●

आर्यिका ब्रह्ममती जी

संयम के अभाव में मनुष्य का ज्ञान अथवा धन सम्पत्ति उसके लिए लाभप्रद नहीं है। इसका विचार कर श्राणी जिला उदयपुर (राजस्थान) निवासी श्री होम जी एवं श्रीमती चम्पाबाई की सुपुत्री शक्कर बाई ने आर्यिका शान्तिमती के सदुपदेश से संयम लेने का नियम लिया। शक्कर बाई का दोषी (दसा ऊमड़) जाति के श्री कुरीसन जी के साथ विवाह हुआ। संयम के नियम के फलस्वरूप श्रावण की पूर्णिमा (रक्षा बन्धन) १९७१ के शुभ दिन राजगृही पावन क्षेत्र पर आचार्य श्री विमलसागर महाराज से सीधे आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। देश संयम का परिपालन करती हुई आप आ० ब्रह्ममती जी धर्माराधन में समय बिता रही हैं।

●

आर्यिका भद्रमती जी

जगत् में आरोह अवरोह क्रम चलता ही रहता है। इसी आरोह अवरोह के चक्र में पुत्री-बाई का जीवन घूमा है। इनका जन्म कुण्डलपुर की मनोज्ञस्थली के समीपस्थ कुहनारी (दमोह) म० प्र० में हुआ था। पिता का नाम श्री परमलाल जैन एवं माता का नाम हीराबाई था। जाति सवैया, शिक्षा सामान्य, विवाह हुआ किन्तु १ वर्ष बाद ही वैधव्य की विडम्बना ने आ घेरा। वैधव्य के अनन्तर ६ वर्ष तक आरा आश्रम में अध्ययन किया।

आर्यिका वासुमती जी की सत्संगति से एवं जग की असारता के ज्ञान होने से पुत्तीबाई की वैराग्य भावना जाग उठी। विक्रम संवत् २०२० में खुरई के भव्य समोरह के मध्य आचार्य धर्म-सागर जी से क्षुल्लिका के व्रत ले लिए। अनन्तर वि० सं० २०२३ में उन्हीं आचार्यप्रवर से आर्यिका के महाव्रत ग्रहण किये और भद्रमती संज्ञा से विभूषित होकर धर्माराधन में तत्पर हैं।



आ० यशोमती माता जी

आप दिल्ली पहाडी धीरज पर रहने वाली धार्मिक विचारों की महिला थीं। आपका गृहस्थ नाम मीनाबाई था। वृद्धावस्था के बढ़ते हुए कदमों में भी आपने अपना जीवन सार्थक किया। सन् १९७२ में पू० आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से दिल्ली में आचार्य देशभूषण महाराज से आर्यिका दीक्षा प्राप्त की और यशोमती नाम प्राप्त हुआ। आप अपने संयम को निरति-चार पालन करते हुए धर्मप्रभावना कर रही है।



आर्यिका यशोमती माताजी

भगवज्जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित निर्ग्रन्थ मार्ग पर आरूढ़ परमपूज्य बालब्रह्मचारिणी आर्यिका यशोमती माताजी का जन्म स्थान उदयपुर (राजस्थान) है। आपने आचार्यश्री १०८ धर्मसागर महाराज से आश्विन मास संवत् २०३५ में उदयपुर नगर के विशाल जन समूह के मध्य आर्यिका दीक्षा को ग्रहण किया। वर्तमान में संयम को परिपालन करती हुई उपासनारत हैं।



आर्यिका रत्नमती माताजी

आप आचार्य धर्मसागर महाराज की दीक्षित शिष्या हैं। वर्तमान मे पू० आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी के संघ में रह रही हैं। प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ इन्हीं के सम्मान में प्रकाशित हो रहा है।



आर्यिका श्री राजमती माताजी

मध्यप्रदेश के 'मुरेना' मण्डलान्तर्गत 'अम्बा' नामक ग्राम में आर्यिका श्री राजमती माता जी के पार्थिव शरीर का उदय हुआ था। आपके शरीर विकास के साथ धर्मभावना का भी विकास हुआ। शनैः-शनैः जब धर्मभावना का चिन्तवन बढ़ता गया तब उसका परिणाम यह हुआ कि आपने आचार्यश्री १०८ सुमतिसागर महाराज से आर्यिका के महाव्रतों को धारण कर स्वयं को धन्य किया। वर्तमान में आप धर्मप्रभावना में तत्पर हैं। जिसके उदाहरण कोटा (राजस्थान) में जैन औषधालय वा जैन विद्यालय, सागर (म० प्र०) में वर्णीभवन, वाकल (म० प्र०) में पाठशाला एवं पाण्डिचेरी में जिनालय आदि हैं।

●

क्षुल्लिका राजमती माता जी

सच्चा साधक वही है, जो अनासक्त होता है। अनासक्त भावप्रवण क्षु० राजमती जी का बचपन का नाम पार्वती था। पार्वती का जन्म बूचाखेड़ी निवासी श्री शीलचन्द्र जैन एवं श्रीमती अंगूरी देवी जैन से हुआ था। संसार से विरक्त होकर आपने वैसाखसुदी १२ बुधवार के शुभ दिन कोल्हापुर में क्षुल्लिका राजमती रूप में चारित्र पथ ग्रहण किया। आप १५०० उपवास कर चुकी हैं। देवलपुर में दीक्षा से पूर्व अपने द्रव्य से आपने वेदी प्रतिष्ठा करायी थी जिसमें आदिनाथ और और महावीर स्वामी की मनोरम प्रतिमाएँ हैं। १४ वर्ष कातन्त्र का अध्ययन एवं सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थों का अध्ययन किया।

समस्त भारत की पैदल यात्रा कर चुकी हैं और साधना रत हैं।

●

आर्यिका विजयमती जी

विवेक में अद्भुत शक्ति होती है। उसके अनुसार ही मनुष्य के मानस पटल पर विचारों का आविर्भाव होता है। इसी विवेक का आश्रय लेकर अहिल्याबाई ने आचार्यश्री १०८ निर्मल-सागर के शिष्य मुनिश्री सन्मतिसागर जी से कार्तिक सुदी ३ सं० २०३२ में कोटा (राजस्थान) में दीक्षा लेकर आर्यिका विजयमती नाम को प्राप्त किया। अहिल्याबाई का जन्म पिड़ावा (राजस्थान) ई० १९२८ में श्री राजमल एवं श्रीमती कस्तूरी देवी के घर हुआ था। इन्हें सामान्य हिन्दी एवं राजस्थानी का बोध है किन्तु चारित्र की विशुद्धि से वर्तमान में विजयमतीरूप को सार्थक कर रही हैं।

●

आर्यिका विजयमती जी

ज्ञान ही मनुष्य के मन पर तथा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रख सकता है। यही विचार कर श्रीमती सरस्वती बाई ने उसकी प्राप्ति का निश्चय किया। सरस्वती बाई का जन्म वैसाख शुक्ला १२ सं० १९८४ के दिन ग्राम कामा जिला भरतपुर (राजस्थान) निवासी श्री सन्तोषीलाल

जैन की धर्मपत्नी श्रीमती चिरोंजी बाई से हुआ था। आप खण्डेलवाल जाति के भूषण हैं। आपका विवाह श्री भगवानदास जी बी० ए० लश्कर वालों से हुआ था परन्तु दुर्भाग्य से वैधव्य प्राप्त हुआ।

वैधव्य होने पर अपने ज्ञान प्राप्ति के निश्चय को साकार करने हेतु आचार्यश्री विमलसागर महाराज से २४ मार्च १९६० के दिन आगरा नगर के भव्य समारोह में आर्यिका के महाव्रत ग्रहण किये।

आर्यिका दीक्षा के बाद आपने श्री १०८ आचार्य महावीरकीर्ति जी से शिक्षा ग्रहण की। अपने अध्यवसाय एवं गुरुवर्य के आशीर्वाद से गहन अध्ययन किया। कालान्तर में आपने ग्रन्थों की रचना की। ग्रन्थ रचना—(१) आत्मानुभव (२) आत्मान्वेषण नारी। हिन्दी टीका—(१) भगवती आराधना (२ भाग)।

आपकी प्रतिभा और आचार विचार की उच्चता से प्रभावित होकर आचार्य महावीरकीर्ति द्वारा गणिनी एवं आचार्य विमलसागर महाराज द्वारा विद्यावारिधि, सिद्धान्त-विशारद अलंकरणों से अलंकृत किया गया। आप देश के प्रत्येक भाग को अपने ज्ञान की ज्योति से प्रकाशित कर रही हैं।



आर्यिका विद्यामती माताजी

जीवन के विकास का मार्ग आदि से अन्त तक कठिनाइयों से भरा हुआ है। उस पर चलने वाला यात्री तभी आगे बढ़ सकता है, जब उसका हृदय दृढ़ हो और आशंकाओं से रहित हो। इसी सिद्धान्त की अनुगामिनी आ० विद्यामती जी हैं। आपका जन्म नाम लक्ष्मीबाई है। जन्म स्थान उदयपुर और पिता माता के नाम क्रमशः श्री उदयलाल जी, श्रीमती सुहागदेवी है। पतिनाम ताराचन्द्र है। लक्ष्मीबाई ने संवत् २०३८ में मुरेना नामक स्थान के भव्य प्रागण मे आचार्य-श्री सुमतिसागर महाराज से दीक्षा लेकर आर्यिका विद्यामती रूप गौरव को प्राप्त किया।



आर्यिका विद्यामती जी

जिस प्रकार रथ के पहिये का एक हिस्सा ऊपर और एक हिस्सा नीचे क्रमानुसार होता है, उसी प्रकार सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख भी क्रमशः आता रहता है। ठीक यही नियम लागू होता है श्री नेमीचन्द्र वाकलीवाल की पुत्री शान्तिबाई के साथ। शान्तिबाई का जन्म फाल्गुन कृष्णा १३ वि० सं० १९९२ के शुभदिन लालगढ़ (बीकानेर) निवासी श्री नेमीचन्द्र वाकलीवाल के सुख समृद्धि सम्पन्न परिवार में हुआ। वैसाख कृष्णा ४ वि० सं० २००५ के दिन श्री मूलचन्द्र जी के साथ पाणिग्रहण करा कर प्यारी बिटिया को श्री भँवरलाल वाकलीवाल और श्री नेमीचन्द्र वाकलीवाल ने घर से विदा किया।

सुख के बाद दुःख ने आ घेरा कि वैसाख सुदी ६ वि० सं० २००८ के दिन शान्ति के पति श्री मूलचन्द्र जी कलकत्ता से एकाएक कहीं चले गये। दुःखी शान्ति की आँखें राह देखतीं-देखतीं थक गयीं किन्तु कुछ समय पश्चात् आर्यिका १०५ इन्दुमती जी एवं आर्यिका सुपार्श्वमती से सम्पर्क हुआ कि दुःख की प्रकृति सुख में परिवर्तित हो गयी। इनके साथ ज्ञानगंगा में स्नान कर

आचार्यश्री १०८ शिवसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा वि० सं० २०१७ मिती कार्तिक शुक्ला १३ के शुभ दिन सुजानगढ़ के विशाल प्रांगण में आर्यिका इन्दुमती और आ० सुपार्श्वमती सहित अपार जनसमूह के मध्य ग्रहण की। दीक्षोपरान्त आचार्य श्रेष्ठ ने नवीन नामकरण विद्यामती जी किया। साक्षात् विद्या का रूप धारण कर रहीं आप ज्ञान ध्यान में तल्लीन हैं।

●

आर्यिका विमलमती माताजी

सच्चे धर्म की लौ जब जल उठती है तो भेदभाव का अन्धकार पलायन हो जाता है। संयम और चारित्र रूपी आलोक उदित हो जाता है। इसकी निदर्शन आर्यिका विमलमती जी हैं।

आपका बाल्यावस्था का नाम मथुराबाई है। मथुराबाई मध्यप्रदेशवर्ती शाहगढ़ के निकटस्थ मुँगावली नगर निवासी परवार जातीय श्री रामचन्द्र जैन की छठवीं छोटी पुत्री हैं। तत्कालीन बाल विवाह की प्रथानुसार १२ वर्ष की बालिका मथुराबाई का विवाह संस्कार भोपाल निवासी श्री बाबू हीरालाल जी के साथ कर दिया गया। किन्तु दुर्दैव से कुछ ही दिन बाद श्री हीरालाल जी का देहावसान हो गया।

मथुराबाई के जीवन को शान्तिमय बनाने हेतु पिता श्री रामचन्द्र ने आपको श्री मगनबाई दि० जैन श्राविकाश्रम बम्बई में भर्ती किया। ज्ञानावरणी कर्म के तीव्र क्षयोपशम से थोड़े ही दिनों में मथुराबाई ने संस्कृत, हिन्दी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

अध्ययन समाप्त कर नागौर में अध्यापन करने लगीं। सौभाग्य से नागौर में मुनिश्री चन्द्रसागर जी पधारे। उनके वचनामृत से प्रभावित होकर आपने अपनी जीवन दृष्टि बदली और त्याग मार्ग मे अवतरित हो गयीं। मुनिश्री चन्द्रसागर से कार्तिक कृष्णा ५ वि० सं० २००० के दिन क्षुल्लिका के व्रत लिए। आपका नामकरण 'मानस्तम्भिनी' हुआ। अनन्तर आपने शास्त्रीय ज्ञान और आत्मशुद्धि में प्रगति की, जिससे पू० आचार्यश्री वीरसागर जी से आर्यिका के महाव्रत ग्रहण कर नवीन 'विमलमती' नाम को प्राप्त किया।

निमल बुद्धि सम्पन्न होने से अनेक बाल ललनाओं को धर्मपरायण बनाया है। सौम्य आकृति, स्वाध्याय शील, व्यवहारकुशल आप 'विमलमती' यथार्थ नाम वाली हैं।

●

आर्यिका वीरमती जी

धार्मिक नियमादि परिपालन करने में निपुण श्री दादा भगदुम और श्रीमती कृष्णाबाई की पुत्री पद्मावती का जन्म नसलापुर ताल्लुका रायबाग जिला बेलगाँव (कर्नाटक) में हुआ था। इनका जन्म १९२५ में हुआ था। बाल्यावस्था से ही मुनिसेवा, जिनदर्शन एवं धार्मिक कार्यों में अभिरुचि होने से पद्मावती २ मई १९७६ में आर्यिका सुवर्णमती से दीक्षित होकर आर्यिका वीरमती हो गयी। वर्तमान में आर्यिका वृत्ति का आचरण करती हुई साधु संगति में गाँव-गाँव में भ्रमण कर रही हैं।

●

आर्यिका वीरमती जी

नश्वर जीवन को सफल बनाने का एक मात्र आधार संयम है अतएव लोनी (उत्तर प्रदेश) निवासी श्री बंसीलाल एवं श्रीमती सुन्दरबाई की पुत्री जमनाबाई ने आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी से आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर आ० वीरमती अभिधान को प्राप्त किया। देशसयम यथाविधि पालन कर रही हैं।

●

आर्यिका वीरमती माताजी

जीवन मे सुख और दु ख आते रहते हैं किन्तु उनके कारण उत्साह और अनुत्साह का अनुभव मात्र वे व्यक्ति ही करते हैं जो अपनी आत्मशक्ति को नही पहचानते है। ब्र० चाँदबाई ने अपनी आत्मशक्ति को पहचाना इसीलिए तो पति श्री कपूरचन्द्र भैंवसा के वियोग के दु ख को सहन किया। ससार के स्वरूप का चिन्तवन किया और अपने वैधव्य जीवन को शान्ति और धर्म की गोद मे समर्पित करने का निश्चय किया।

बाल्यकाल के संस्कार चाँदबाई के युवा और वृद्धावस्था की शोभा बने, क्योकि पिता श्री जमनालाल जी सोनी और माता श्रीमती गुलाबबाई धार्मिक सस्कारो वाले थे। लगभग वि० सं० १९८८ मे जब चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागर जी महाराज जयपुर मे मुनिसघ सहित विराजमान थे तब उनके समीप अपने माता के साथ चाँदबाई ने आजीवन शूद्रजल का परित्याग कर दिया। उसी चातुर्मास काल मे सातवी प्रतिमा भी ग्रहण कर ली थी।

चारित्रिक विशुद्धि बढ़ती गयी और चाँदबाई पौषवदी ५ वि० स० १९९५ के दिन सिद्धवरकूट के परमपावन स्थान पर आचार्यश्री वीरसागर से क्षुल्लिका दीक्षा लेकर क्षु० वीरमती बन गयी। समय की गति के साथ पूज्य माता जी के ज्ञान और चारित्र की अभिवृद्धि हुई कि मातुश्री ने आचार्य वीरसागर महाराज से महाव्रत ग्रहण की वाछा प्रगट की। महाराजश्री ने कार्तिक सुदी ११ स० १९९६ के शुभदिन इन्दौर के विशाल समारोह मे मातुश्री को आर्यिका के गौरव से गौरवान्वित किया। अनन्तर आचार्य शिवसागर और आचार्य धर्मसागर क सघो मे आपको आर्यिका प्रमुख का सम्मान प्राप्त है।

●

आर्यिका वीरमती माताजी

आचार्यशिरोमणि देशभूषण महाराज ने अनेक नर नारियो को सम्यक् मोक्षमार्ग का अवलम्बन कराया है। इन्ही की शिष्य परम्परा की एक कडी आर्यिका वीरमती माताजी है। इनका गृहस्थावस्था का नाम उमादेवी है। उमादेवी के पिता देवप्पा और माता गंगाबाई थी। इनके पति सखाराम पाटील ग्राम मागूर जिला बेलगाव (कर्नाटक) के रहन वाले थे।

सासारिक जोवन से मुक्त होने के लिए मुनिसघ के साथ विहार करके श्रीमती उमादेवी ने आचार्य देशभूषण से मागूर (कर्नाटक) मे आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर वीरमती नाम को प्राप्त कर जीवन को सार्थक बनाया।

●

आर्यिका विशुद्धमती माता जी

भारत वसुन्धरा के मध्यभाग में विद्यमान जबलपुर मण्डलान्तर्गत रीठी नामक ग्राम में श्रीमान् सिंघई लक्ष्मणलाल जैन एवं सौ० मथुराबाई दिगम्बर जैन गोलापूर्व जाति के श्रावक-दम्पति निवास करते थे। इस दम्पति ने वि० संवत् १९८६ चैत्र शुक्ला तृतीया शुक्रवार दिनाङ्क १२।४।१९२९ ई० के दिन एक सौम्य बालिका को जन्म दिया। बालिका ने शनैः-शनैः समय के अनुकूल वृद्धि को प्राप्त किया। माता पिता ने अपनी लालित पालित बालिका का सुमित्राबाई नामकरण किया। सुमित्राबाई के श्री नीरज जैन एवं श्री निर्मलकुमार जैन नामक दो सहोदर हैं। इनमें नीरज जैन वर्तमान युग के प्रसिद्ध गीतकार एवं लेखक हैं।

सुमित्राबाई ने गृहस्थ जीवन का निर्वाह करते हुए साहित्यरत्न एवं विद्यालंकार, शिक्षकीय अनुभव, धर्म विषय में शास्त्री पर्यन्त लौकिक शिक्षण मान्य डॉ० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य से प्राप्त किया। श्री दि० जैन महिलाश्रम (विधवाश्रम) का सुचारुरीत्या संचालन करते हुए प्रधानाध्यापिका पद पर लगभग १२ वर्ष पर्यन्त कार्य किया एवं अपने सत्प्रयत्नों से संस्था में १००८ श्री पार्श्वनाथ चैत्यालय की स्थापना कराई।

परमपूज्य आचार्य १०८ श्री धर्मसागर महाराज के सन् १९६२ सागर (म० प्र०) चातुर्मास में महाराजश्री की शान्तवृत्ति एवं संघस्थ १०८ श्री सन्मतिसागरजी महाराज के मार्मिक संबोधन से सुमित्राबाई की वैराग्य भावना उद्दीप्त हो गयी। अनन्तर अध्यात्मवेत्ता दिगम्बराचार्य १०८ श्री शिवसागर महाराज से सं० २०२१ श्रावण शुक्ला सप्तमी दि० १४ अगस्त १९६४ ई० के दिन अतिशय क्षेत्र पपौरा (म० प्र०) में आर्यिका दीक्षा ग्रहण की जिससे सुमित्राबाई की वैराग्यभावना फलवती हुई और विशुद्धमती से अभिधान को प्राप्त कर अपना जीवन धन्य किया।

आर्यिका विशुद्धमती ने आचार्यकल्प श्रुतसागर महाराज तथा अजितसागर महाराज से सैद्धान्तिक जैन ग्रन्थों का अध्ययन किया। अपनी विशुद्धमती के फलस्वरूप नेमिचन्द्राचार्य प्रणीत त्रिलोकसार एवं भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक जैसे करणानुयोग के महान् ग्रन्थों की हिन्दी टीका करके जिनधर्म की प्रभावना में महान् सहयोग दिया है। इनकी मौलिक कृतियाँ—(१) श्रुत निकुञ्ज के किञ्चित् प्रसून, (२) गुरु-गौरव, (३) श्रावक सोपान और बारह भावना, संपादन—(१) समाधिदीपक (२) श्रमणचर्या, (३) दीपावली पूजन विधि, (४) श्रावक सुमन संचय। संकलन—(१) शिवसागर स्मारिका (२) आत्म प्रसून।

उपर्युक्त कृति परिणामों से स्पष्ट है कि विदुषी आर्यिका विशुद्धमती धर्मप्रभावना में समर्पित हैं। इन्होंने अनेक महिलाओं और पुरुषों को व्रत देकर उन दिग्भ्रमित जनों को विशुद्ध मार्ग पर लगाया अतएव आपके विशुद्ध परिणाम एवं विशुद्ध कार्य विशुद्धमती नाम को सार्थक कर रहे हैं।

आर्यिका शान्तमती माताजी

संसारचक्र में भ्रमित यह जीव अनेक आघातों और प्रत्याघातों से पीड़ित है। इसलिए भयंकर वेदना से छुटकारा पाने हेतु सद्गुरु का आश्रय लेता है। सद्गुरु आचार्यश्री १०८ विमलसागर महाराज से कार्तिक शुक्ला ? संवत् २०२९ (२।११।१९७२) के शुभ दिन सम्मेदशिखर जी के परमपावन स्थल पर शान्तमती माता जी ने आर्यिका के महाव्रतों को ग्रहण कर मानव पर्याय का उपयुक्त उपयोग किया। आपका जन्म कोल्हापुर गाँव कवलापुर जिला सांगली (महाराष्ट्र) में हुआ था। आप व्रत उपवास आदि नियम पूर्वक आत्मशुद्धि में तत्पर हैं।

●

आर्यिका शीतलमती जी

धर्म पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं होता। प्रत्येक स्थिति और प्रत्येक समय में उसे अपनाया जा सकता है। इसमे बाल वृद्ध का अन्तर नहीं है। आर्यिका शीतलमती जी ने बचपन से ही धर्म का आश्रय लिया। आप बाल ब्रह्मचारिणी हैं। आपका जन्म ग्रा० सिरसापुर, जिला परभणी (महाराष्ट्र) में हुआ था। आपके दीक्षागुरु आचार्य महावीरकीर्ति महाराज है। आपकी आर्यिका दीक्षा नासिक (महाराष्ट्र) मे श्रावण शुक्ला ६ संवत् २०१५ में हुई थी। तभी से पञ्चम गुणस्थानवर्ती आचरण का यथाविधि पालन कर रही हैं।

●

आर्यिका श्री शान्तिमती माताजी

साधनारूपी राजमार्ग पर चलने के लिए आचार और विचार दोनों ही संबल हैं, पाथेय हैं। इस बात को समझकर ही श्री अम्बालाल जी बड़जात्या (खण्डेलवाल) एवं फुन्दी देवी की पुत्री गुलाबबाई ने साधनारूपी सन्मार्ग पर गमन करने हेतु आचार्यश्री १०८ सन्मतिसागर महाराज से आर्यिका रूप आचार को ग्रहण किया। शान्तिमती नामधेय प्राप्त करके शान्ति की खोज में दत्तचित्त हुईं। आपका जन्म अमेरपुर (जयपुर) वि० सं० १९६७ में और आर्यिका दीक्षा मगसिर कृष्णा ६ सं० २०२८ मे हुई थी। व्रत, उपवास, स्वाध्याय पूर्ण जीवन काल यापन कर रही हैं।

●

आर्यिका शान्तिमती माताजी

शरीर धर्मसाधना करने के लिए प्रधान साधन हैं। इस साधन के बिना साधना संभव नहीं है। शरीर यन्त्र रूपी साधन से लखुआ निवासी श्री नाथूराम एवं श्रीमती फूलाबाई की पुत्री कलावती ने धर्म साधना की सिद्धि का निश्चय किया। साधारण हिन्दी का परिज्ञान होने मात्र से भी कल्याण के मार्ग का अन्वेषण किया। आचार्य सुमतिसागर महाराज से क्षुल्लिका एवं आचार्यश्री कुन्थुसागर महाराज से पोरसास्थान में आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर स्वयं को उच्च आदर्शों की खोज में लगाया।

●

आर्यिका शीतलमती माताजी

दीर्घदृष्टि से देखने पर हमें विश्व में दो प्रकार के प्राणी ही दिखाई देते हैं—ज्ञानी और अज्ञानी। ज्ञानी विचार और विवेक से युक्त होते है, और कर्तव्य तथा अकर्तव्य के अन्तर को समझकर अपने कल्याण का मार्ग खोज निकालते हैं। उन्हीं भव्य प्राणियों मे शीतलमती माताजी हैं। इनका जन्म सं० १९९५ में गामड़ी (राजस्थान) के निवासी श्री निहालचन्द्र जी एवं श्रीमती जनकूबाई जैन से हुआ था। बचपन में इनका नाम ब्र० गेन्दीबाई था। इन्होने स्त्रीपर्याय उच्छेद हेतु माघ शुक्ला ५ सं० २०१९ को क्षुल्लिका एवं मगसिर कृष्णा १० सं० २०२३ के शुभदिन रेनवाल नगर के मध्य आचार्यकल्प श्री १०८ श्रुतसागर महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। वर्तमान में निर्विघ्न रीति से आर्यिका के महाव्रतों का पालन कर रही हैं।

●

क्षुल्लिका शीतलमती जी

संसार के भयावह दुःखों के नाश का मूलभूत हेतु धर्म है। इसीलिए संसार के दुखों से बचने के लिए इन्दौर निवासी चौथमल एवं केशरबाई की पुत्री ने वि० सं० २०२६ में जयपुर के जन-समूह के मध्य आचार्यश्री देशभूषण महाराज से सद्धर्ममार्गभूत क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की। साथ में शीतलमती अभिधान को प्राप्त कर श्रावक के व्रतों का यथाविधि परिपालन कर रही है।

●

क्षुल्लिका शुद्धमती माताजी

बुन्देलखण्ड की शोभास्थली ग्वालियर नगरी दुर्ग, उद्यान, जिनालयों से मण्डित है। इस प्रमुख नगरी में ज्ञानमती का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम श्री उदयराज जैन और माता का नाम प्यारीबाई जैन है। कालान्तर में ज्ञानमती ने आचार्यश्री १०८ सुमतिसागर महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ली और शुद्धमती नामकरण को अलंकृत किया। वर्तमान में आप व्रत उपवास आदि नियमों का परिपालन करती हुई आत्मशोधन कर रही हैं।

●

आर्यिका शुभमती जी

संयम बिना जनम नर तेरा, नहीं सार्थ हो पायेगा।
विषय वासना में रत होके, दुर्गति दुःख उठायेगा॥

इन पंक्तियों के भाव की किञ्चित् झलक कुमारी विमला के मानस पटल पर झलकी और वह आर्यिका ज्ञानमती, आ० संभवमती, आ० जिनमती के सम्पर्क में पहुँचीं। अबोध बालिका विमला का जन्म वैसाख शुक्ला ३ सं० २००४ के शुभदिन खुरई (सागर) म० प्र० में हुआ था। इनके पिता श्री गुलाबचन्द्र जैन एवं माता श्रीमती शान्ति देवी हैं।

सामान्य ज्ञानसम्पन्न कु० विमला ने आर्यिकारत्न ज्ञानमती जी से अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन किया। अनन्तर आर्यिका जिनमती के सान्निध्य में अध्ययन रत रहीं। ज्ञान के साथ

विमला की वैराग्य भावना बढ़ती गयी जिसके फलस्वरूप मगसिर वदी ३ वि० सं० २०२८ के शुभ दिन अजमेर (राजस्थान) के मध्य आचार्यश्री १०८ धर्मसागर महाराज से आर्यिका के महाव्रतों को ग्रहण किया। जिनमती के साथ अनेकानेक ग्रन्थों का अध्ययन और मनन करती हुई व्रती जीवन बिता रही हैं।

●

क्षुल्लिका श्रीमती जी

शान्त, भद्रपरिणामी, अध्ययनशील आप (क्षु० पद्मश्री) का जन्म रुकड़ी कोल्हापुर में हुआ था। गृहस्थावस्था का नाम मालतीबाई है। आप पिता श्री नेमीचन्द्र और माता श्रीमती सोनी बाई की पुत्री हैं। आपका विवाह छोरी शिरहदी (बेलगाँव) निवासी श्री पारिखा आदिनाथ उपाध्याय से हुआ था। किन्तु १० वर्ष के अनन्तर वैधव्य ने आ घेरा। पुत्री का भी वियोग हो गया। पति और पुत्री के वियोग से संसार के प्रति अरुचि उत्पन्न हो गयी। अतएव चैत्र शुक्ला ४ वि० सं० २०२९ तदनुसार १८।३।१९७२ के शुभ दिन राजगृह क्षेत्र पर आ० विमलसागर महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर ली। श्रावकोचित व्रतों का पालन कर रही हैं।

●

आर्यिका श्रुतमती जी

जिनके हृदय में धर्म का सच्चा रूप होता है, वे उदार हृदय वाले व्यक्ति संसार के प्रति विरक्त भाव होते हैं। धर्महृदय सुशीलाबाई भी संसार से अन्यमनस्क थीं। इनका जन्म १५ अगस्त १९४७ ई० के दिन कलकत्ता निवासी श्री फागूलाल जैन की पत्नी श्री बसंतीबाई की कुक्षि से हुआ था। आर्यिकारत्न ज्ञानमती के सम्पर्क से वैराग्य का बीजाङ्कुर फूट पड़ा। जिसके कारण उनके सामीप्य मे अध्ययन करती रहीं और काललब्धि आने पर मगसिर कृष्णा १० वि० सं० २०३१ के दिन आचार्यश्री धर्मसागर से आर्यिका के महाव्रत ग्रहण कर स्वयं को कृतकृत्य किया।

●

आर्यिका श्रेयांसमतो माताजी

मनुष्य को सदा स्मरण रखना चाहिए कि शरीर और मन की अपार शक्ति जीवन के उच्च आदर्शों की सिद्धि के लिए प्राप्त हुई है। इसी विवेक का आश्रय लेकर पूना (महाराष्ट्र) निवासी श्री दुलीचन्द्र एवं श्रीमती सुन्दरबाई की सुपुत्री लीलावती ने आचार्यश्री शिवसागर महाराज से आर्यिका के महाव्रत ग्रहण किये। लीलावती का विवाह श्री मूलचन्द्र पहाड़े से हुआ था, जो आगे चलकर मुनि श्रेयांससागर जी हुए। लीलावती का जन्म १० अगस्त १९२५ में हुआ था। मूलतः खण्डेलवाल जातीय हैं। दीक्षा के अनन्तर श्रेयांसमती नाम के साथ महाव्रतों को धारण कर श्रेयमार्ग पर आरूढ हैं।

●

आर्यिका श्रेष्ठमती जी

जब तक विषयभोगों में आसक्ति रहती है तब तक स्वयं को जानना कठिन है। आत्मस्वरूप के जानने की इच्छुक श्रीमती रतनबाई ने विषयभोगों को तिलाञ्जलि दे दी। इनका जन्म फतेहपुर (सीकरी) राजस्थान निवासी श्री वासुदेव जी एवं श्रीमती इन्द्रा देवी के परिवार में हुआ था। परिवार में दो भाई एवं दो बहिन हैं। विवाह श्री नेमीचन्द्र जैन के साथ हुआ किन्तु आपके नगर में शिवसागर महाराज का संघ पहुँचा जिससे आपकी वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी। वि० सं० २०१९ में १०८ आचार्य शिवसागर महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर आर्यिका ज्ञानमती के सान्निध्य में धार्मिक ज्ञान बढ़ाती रही। अनन्तर आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर श्रेष्ठमती नामकरण के साथ श्रेष्ठ चारित्र में चरण कर रही हैं। चारित्र शुद्धि व्रत के उपवास करती हैं जिससे बाह्य जगत् से पूर्ण अनासक्त रहती हैं।

●

आ० संयममती जी

आप दिल्ली पहाड़ीधीरज की रहने वाली थीं। गृहस्थावस्था का नाम मनभरी था। सन् १९७२ में पू० आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से दिल्ली में आ० देशभूषण महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा धारणकर मनोवती नाम प्राप्त किया। और सन् १९७४ निर्वाणोत्सव पर आ० धर्मसागर के करकमलों से दिल्ली में ही आर्यिका दीक्षा धारण कर संयममती संज्ञा प्राप्त कर आत्म-साधना करते हुए धर्म की प्रभावना कर रही हैं।

●

क्षुल्लिका संयममती जी

१०५ क्षुल्लिका संयममती जी का जन्म नाम सीताबाई था। आपका जन्म वि० सं० १९८७ में निवारी (भिण्ड) म० प्र० में हुआ था। आपके पिता श्री सनोखनलालजी एवं माता श्रीमती लठैनाबाई थी। आप गोलालारीय जाति की भूषण हैं। लौकिक शिक्षण साधारण है। सं० २००० में शादी हुई। सुखमय जीवन व्यतीत कर रही थी किन्तु वैराग्य भावना जागृत हो गयी। वैराग्य भावना आचार्य विमलसागर की संगति से बढ़ी थी अतएव इन्हीं से वि० सं० २०२६ सुजानगढ़ में क्षुल्लिका के व्रत ग्रहण कर लिए। आप णमोकार मंत्र में बड़ी आस्था रखती हैं।

●

क्षुल्लिका सगुणमती जी

आपका जन्म नाम बसन्तीबाई और जन्मस्थान हालनूल (राजस्थान) है। आप खण्डेलवाल जैन जाति के श्री गुलाबचन्द्र जी एवं श्रीमती आसराबाई की सुपुत्री हैं। आपकी क्षु० दीक्षा श्रावणसुदी ९ वीर सं० २४९८ १६।८।७२ के दिन हुई थी। वर्तमान में फलटण, गजपन्था, नाँदगाँव आदि का भ्रमण करती हुई व्रतों का पालन कर रही हैं।

●

आर्यिका सन्मतिमती माता जी

जिस व्यक्ति के हृदय में सच्ची लगन और विचारों में दृढ़ संकल्प होता है, वह अपनी प्रच्छन्न शक्तियों का विकास करके अपने जीवन को ऊँचा उठा सकता है। इन्हीं विचारों की निदर्शन आर्यिका सन्मतिमती माताजी हैं। आपका जन्म चैत्र शुक्ला ९ संवत् १९७५ के शुभदिन बनगोठड़ी जिला सीकर (राजस्थान) निवासी श्री भूरामल जी कासलीवाल की धर्मपत्नी श्रीमती सूरजबाई की कुक्षि से हुआ था। बचपन का नाम कमलाबाई था। कमलाबाई की शादी मदाल (राजस्थान) निवासी श्री कस्तूरचन्द्र जी काला से हुई थी और एक कन्या को जन्म दिया था।

कालान्तर में संसार को असार जानकर अपने विचार एवं संकल्प के अनुसार आपने आचार्यश्री शिवसागर महाराज से कार्तिक शुक्ल १० सं० २०२२ के दिन श्रीमहावीर जी पर क्षुल्लिका एवं कोटा नगर में भाद्र कृष्णा २ सं० २०२३ के दिन आर्यिका दीक्षा ग्रहण की थी। आर्यिका के व्रतों का परिपालन करती हुई सन्मति नामकरण को अलंकृत कर रही हैं।

●

आर्यिका समयमती माताजी

दक्षिण भारत का बहुभाग जिनधर्म प्रभावना का प्रमुख स्थान है। इसमें मुनियों, आर्यिकाओं, क्षुल्लक एवं क्षुल्लिकाओं के विशाल संघ सदैव विद्यमान रहते हैं। समस्त परिक्षेत्र जिन मन्दिर एवं स्वाध्याय केन्द्रों से मण्डित है। अतएव यहाँ के श्रावक-श्राविकाएँ धर्मप्रवण होती हैं। इन्हीं धर्मवत्सल श्रावक-श्राविकाओं के समुदाय में श्री मल्लपा जी एवं श्रीमती धर्मभावना में तल्लीन महानुभाव सदलगा नामक ग्राम में रहते थे। यह सदलगा ग्राम कर्नाटक प्रान्त का हिस्सा है।

श्री मल्लपा जी की धर्मगृहिणी श्रीमती जी का जन्म बेलगाँव जिले के अन्तर्गत अकोला में मातेश्वरी बहिणाबाई की कोख से हुआ था। इनका लौकिक शिक्षण मात्र ४ कक्षा पर्यन्त था। श्रीमतीजी ने सुख समृद्धि पूर्ण परिवार में रहते हुए चार पुत्र एवं दो पुत्रियों को जन्म दिया। उन पुत्र-पुत्रियों को आपने सुसंस्कारों से संस्कारित किया जिससे मात्र ज्येष्ठ पुत्र को छोड़कर सभी मोक्षमार्ग में रत हैं। युवाचार्य आचार्यप्रवर विद्यासागर आपकी ही देन हैं। छोटी पुत्री प्रवचनमती हैं।

श्री मल्लपा जी के साथ आपने भी जिनदीक्षा ग्रहण की और अपने पुत्र पुत्रियों को भी दीक्षित करा दिया। आप सबकी दीक्षा विशाल जनसमुदाय के मध्य मुजफ्फरनगर (उ० प्र०) में आचार्यश्री धर्मसागरजी द्वारा हुई। दीक्षा के अनन्तर श्रीमती से समयमती आर्यिका बनीं। वर्तमान में आप धर्माराधन पूर्वक जिनधर्म की प्रभावना करती हुई यत्र यत्र भ्रमण कर रही हैं।

●

आर्यिका सरलमती माता जी

बुन्देलखण्ड का धराधाम प्राकृतिक सुषमा का अधिष्ठान है। इस धराभाग का अञ्चल टीकमगढ नगर है। टीकमगढ़ (म० प्र०) के निवासी श्री चुन्नीलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती सगुनबाई जैन ने श्रावण शुक्ला १३ सं० १९८० के दिन नन्हीं मुन्नी बच्ची को जन्म दिया था। अनन्तर अपनी नन्ही बालिका का श्रावक युगल ने सुमित्राबाई नाम रखा। सुमित्राबाई की सामान्य शिक्षा टीकमगढ़ मे ही हुई। शनैः-शनैः जीवन पथ पर आरूढ सुमित्राबाई ने अपनी गृहस्थावस्था का काल व्यतीत किया।

समय ने करवट ली, सुमित्राबाई की वैराग्य भावना जागृत हुई जिसके परिणामस्वरूप आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर महाराज से उन्होंने वैसाख सुदी १० सवत् २०२६ के दिन उदयपुर नामक राजस्थान के शोभास्थल पर आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर स्वयं को जिनमार्ग पर आरूढ किया। सम्प्रति श्रमणा आर्यिका के पद को अलंकृत किये हुए आत्मकल्याण में दत्तचित्त हैं।



आर्यिका सिद्धमती माताजी

प्रत्येक धर्म क्रिया में तथा भगवान् का स्मरण करने मे सर्वप्रथम सत्यता और सरलता आवश्यक है। सत्यता और सरलता का मूलभूत साधन त्याग है। अतएव वैसाख शुक्ला १५ संवत्, १९७१ के दिन श्री केसरलाल जैन एवं श्रीमती बच्चीबाई जैन से जन्म लेने वाली कल्ली बाई ने गृह त्याग का निश्चय किया। कालान्तर में अपनी जन्मभूमि खोर जैसानपुरा का परित्याग कर आचार्य धर्मसागर के संघ में पहुँच गयी। कार्तिक शुक्ला १२ सं० २०२९ के शुभ दिन जयपुर नगर के मध्य आचार्यश्री १०८ धर्मसागर महाराज से आर्यिका के महाव्रतों के साथ सिद्धमती नामकरण को प्राप्त कर स्वयं को कृतार्थ किया। सत्यता और सरलता की ओर बढ़ती हुई परमपद को प्राप्त करने मे प्रयत्नशील हैं।



आर्यिका श्री सुपार्श्वमती जी

संसार रूपी रंगमंच पर जन्म-मरण के नाटक का अभिनय अनादिकाल से हो रहा है उसी के अन्तर्गत वि० सं० १९८५ मिती फाल्गुन सुदी ९ को राजस्थान के 'मैनसेर' ग्राम निवासी श्री हरखचन्द्र जी चूड़ीवाड़ के यहाँ पुत्री का जन्म हुआ, जिसका भँवरीबाई नामकरण किया। बालिका का रूप बाला होने जा रहा था कि पिता ने नागोर (राजस्थान) निवासी श्री छोगमल बड़जात्या के सुपुत्र श्री इन्द्रचन्द्र जी के साथ इनका विवाह सम्पन्न कर दिया। विवाह के ३ माह पश्चात् ही पति वियोग के असह्य दुःख ने आ घेरा।

समय परिवर्तन ने जीवन की वास्तविक ध्वनि को उद्घोषित कर दिया कि 'मुझे शान्ति चाहिए, मुझे सुख चाहिए' मुझे निराकुलता चाहिए यह ध्वनि कृत्रिम नही थी, स्वाभाविक थी फलतः हृदय वैराग्य की ओर झुक गया। वि० सं० २००६ में श्री इन्दुमती संघ मैनसेर पहुँचा।

सघ के समक्ष भँवरीबाई ने आजीवन लवण का त्याग कर सप्तम प्रतिमा को ग्रहण किया। माघ शुक्ला ४ को बन्धुबान्धवो का मोह छोडकर पूर्णतया आध्यात्मिक जीवन अपना लिया।

इन्दुमती संघ के साथ पवित्र तीर्थ स्थलो पर भ्रमण कर वैराग्यभावना से ओतप्रोत होकर भाद्र सुदी ६ वि० स० २०१४ को खानिया (जयपुर) मे आ० महावीरकीर्ति आर्यिका श्री इन्दुमती जी आदि विशाल सघ और जनसमुदाय के मध्य आचार्यश्री १०८ वीरसागर महाराज से आर्यिका के महाव्रत ग्रहण किये। मति को भलीभाँति अपने समीपस्थ करने के कारण सुपार्श्वमती अभिधान को अलकृत किया। सतत अध्ययन के परिणाम स्वरूप आपने जैन सिद्धान्त, व्याकरण, न्याय, ज्योतिष मन्त्र-तन्त्र आदि का ज्ञान अर्जन कर अनेक कृति परिणामो से ज्ञानपिपासु और जिज्ञासुओ को ज्ञानसुधा का पान कराकर तृप्त कर रही हैं।

●

आर्यिका सुप्रभामती जी

स्वाध्याय मे तल्लीन रहनेवाली आपका जन्म पिता श्री नेमीचन्द्र जी जैन के घर कुरडवाडी (महाराष्ट्र) मे हुआ था। बाल्यावस्था की सीमा का अतिक्रमण कर ही नही पायी कि बालिका श्री मोतीलाल जी के साथ संसारबन्धन में बँध गयी। बाला के चरणो मे लगी मेहदी की लाली हल्की भी न हो पायी कि उतर गई। शीघ्र ही अपना चित्त धर्मध्यान की ओर लगाया तथा न्याय प्रथमा के साथ लौकिक इन्टर परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। तत्पश्चात् सोलापुर मे राजुमती श्राविकाश्रम मे १५ संवत्सर पर्यन्त अध्यापन कार्य किया। वि० स० २०२४ मिती कार्तिक शुक्ला १२ के शुभ मुहूर्त कुम्भोज बाहुबली के प्रागण मे आचार्यश्री १०८ समन्तभद्र जी महाराज से आर्यिका के महाव्रतो के साथ सुप्रभामती सज्ञा को प्राप्त कर जीवन का सर्वस्व प्राप्त कर लिया। आर्यिका इन्दुमती और आ० सुपार्श्वमती के साथ ज्ञान की अभिवृद्धि करने मे लीन है।

●

आर्यिका सुरत्नमती माता जी

आपका जन्म पन्ना मण्डल के गुनौर नामक ग्राम मे १९।४।१९५६ ई० के दिन गोलालारीय श्री बैनीप्रसाद जैन की धर्मपत्नी श्रीमती कमलाबाई की कुक्षि से हुआ था। बाल्यावस्था का नाम सुधा है। सुधा के पाँच भाई और एक बहिन है। इन्ही के भाई क्षु० सुरत्नसागर महाराज है।

बालब्रह्मचारिणी सुधा जैन ने आचार्य धर्मसागर महाराज से ५ फरवरी १९७६ के दिन मुजफ्फरनगर के भव्य समारोह मे आर्यिका दीक्षा ग्रहण की थी। महाराजश्री से सुरत्नमती अभिधान रूप अलकरण को ग्रहण कर लक्ष्यरूप कर्तव्य मार्ग पर आरूढ होकर आप अपनी स्त्रीपर्याय के उच्छेद मे सलग्न हैं।

●

आर्यिका सुशीलमती जी

मानव के अन्दर ज्ञान नामक जो चेतनाशील तत्त्व है, उसकी तुलना ससार की किसी भी वस्तु से नही हो सकती है। अतएव अतुलनीय उस ज्ञान की प्राप्ति हेतु मस्तापुर (म० प्र०)

निवासी श्री मोहनलाल एवं गंगादेवी की सुपुत्री तथा गदयाना वाले श्री धर्मचन्द्र जैन की धर्मपत्नी काशीबाई (जन्म सं० १९७३) ने गृहस्थ जीवन के परित्याग का दृढ़ निश्चय किया। निश्चय के फलस्वरूप सं० २००९ मे घर छोड़कर आचार्य शिवसागर से पपौरा में ब्रह्मचर्य व्रत लिया। अनन्तर इन्हीं आचार्यप्रवर से २०२२ में श्री महावीर की पावनभूमि में क्षुल्लिका और कतिपय दिनों के व्यतीत होने पर कोटा मे आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर अपने जीवन को कृतार्थ किया। ज्ञान और चारित्र से समन्वित स्वयं को सन्मार्ग में लगाये हुए हैं।

●

आर्यिका सूर्यमती माताजी

अज्ञानरूपी तिमिर से आच्छादित चक्षुओं को ज्ञानाञ्जन की शलाका से उन्मीलित करने वाला एक मात्र गुरु होता है। ऐसे गुरुवर्य आचार्यश्री १०८ विमलसागर महाराज ने बुढ़ार (विलासपुर) निवासी श्री विशाललाल जैन एवं श्रीमती ललिताबाई जैन की सुपुत्री ब्रह्मचारिणी गेन्दाबाई को आषाढ़ कृष्णा ८ सं० २०१७ के दिन खण्डगिरि उदयगिरि में क्षुल्लिका एवं माघ कृष्णा १४ सं० २०२१ के शुभ दिन मुक्तागिरि तीर्थ क्षेत्र के पावन प्रांगण में आर्यिका दीक्षा प्रदान कर संसारसागर से पार होने के रास्ते को दर्शाया। ब्र० गेन्दाबाई ने आर्यिका के महाव्रतों के साथ सूर्यमती नामरूपी अलंकरण को गुरुवर्य से प्राप्त कर अपने जीवन को कृतकृत्य किया।

●

आर्यिका स्वर्णमती जी

शैशवावस्था के उत्तम संस्कार भविष्य में उत्तम परिणति कराते हैं। उत्तम संस्कारों में सोनाबाई श्री सावकाप्पा एवं श्रीमती सत्यवती की सुपुत्री हैं। इनका जन्म ग्राम सीरगुप्पी, तालुका जमकण्डी जिला बीजापुर (कर्नाटक) में हुआ था। सोनाबाई ने १८ वर्ष की अवस्था में ही ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था। अनन्तर श्रावण शुक्ला ५ हस्तनक्षत्र तदनुसार ७ अगस्त १९७० ई० को शेडवार में श्री १०८ मुनि आदिसागर से आर्यिका के महाव्रत ग्रहण कर सोनाबाई से आर्यिका स्वर्णमती हो गयीं। विद्याभ्यास करती हुई आप धर्मभावना में संलग्न हैं।

●

क्षुल्लिका सुशीलमती जी

प्रत्येक प्राणी को चाहिए कि जो श्रेयस्कर है उसे प्राप्त करे। अतएव क्षत्रीग्राम निवासी सुन्दरलाल जी एवं हलकीबाई की पुत्री रतनमाला ने भारत की राजधानी दिल्ली में आचार्य कुन्थुसागर महाराज से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर अपना श्रेयमार्ग खोज निकाला।

●

आर्यिका स्याद्वादमती जी

ऋषियों मुनियों की प्राञ्जल वाग्धारा प्राणी को यथार्थ मार्ग पर पहुँचा देती है। आ० कल्प श्री ज्ञानभूषण जी महाराज के सदुपदेश ने कु० ऐरावती पाटनी की जीवनधारा ही परिवर्तित कर दी। जिससे इन्होने महाराजश्री से अपनी १६ वर्ष की अल्पायु में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। कु० ऐरावती का जन्म १४ मई १९५३ ई० के दिन इन्दौर (म० प्र०) निवासी श्रीधन्नालाल पाटनी और श्रीमती कमला देवी नाम श्रावक दम्पति के यहाँ हुआ था। स्नातक पर्यन्त अध्ययन करने पर अपने जीवन को साध्वी रूप में व्यतीत करने का निश्चय किया।

सांसारिक सुखों को तिलाञ्जलि देकर आत्मसाक्षात्कार करने के लिए श्रावण शुक्ला १२ ता० ५।८।१९७९ रविवार के दिन ऐरावती ने सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पर आचार्यश्री विमलसागर महाराज के द्वारा क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की। उस समय नाम बदल कर अनंगमती रखा गया। वर्तमान में आप आ० स्याद्वादमती के पद अलंकृत करते हुए आचार्यश्री के संघ में धर्मध्यान में तत्पर हैं।



आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी

हस्तिनापुर मे बन रही महान् जम्बूद्वीप रचना की पावन प्रेरिका पू० आर्यिकाश्री से सारा देश परिचित है। आपका परिचय प्रस्तुत अभिनंदन ग्रंथ में दिया गया है। सो देखें।



आर्यिका ज्ञानमती माताजी

सौराष्ट्र के अन्तर्गत पोशीना (साबरकाण्डा) नामक नगर है। इस नगर के श्री सांकलचन्द्र जी एवं श्रीमती मणिबाई जैन नामक श्रावक दम्पति से कञ्चनबाई नामक बाला का जन्म हुआ था। कंचनबाई जैन सदैव जिनेन्द्र भगवान् की उपासना में तल्लीन रहती थी। संयोगवश मगसिर कृष्णा ५ संवत् २०३१ के शुभ दिन कंचनबाई ने क्षुल्लिका दीक्षा आचार्यश्री १०८ सुमतिसागर महाराज से ली थी। अनन्तर माघ शुक्ला ३ संवत् २०३२ को इन्ही महाराजश्री से आर्यिका के महाव्रतों के साथ ज्ञानमती नाम को ग्रहण किया। आप ज्ञान का संवर्द्धन करती हुई बालब्रह्मचारी जीवन का यापन कर रही है।





पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती
अभिनन्दन ग्रन्थ

पंचम खण्ड

जैनदर्शन एवं सिद्धान्त



णमोकार मंत्र का अर्थ एवं माहात्म्य

आर्यिका सुपार्श्वमती जी

जिस प्रकार बीज और वृक्ष की उत्पत्ति में सर्वप्रथम या अन्त किसका यह ज्ञात नहीं किया जा सकता उसी प्रकार महामंत्र णमोकार में इस मंत्र की उत्पत्ति या अन्त ज्ञात करना छद्मस्थ प्राणियों के लिये अशक्य है।

णमोकार मंत्र को अगर जैन दर्शन का प्राण कह दिया जाय तो अतिशयोक्ति नहीं। जिस प्रकार किसी वृक्ष को पल्लवित करने की अभिलाषा वाला पुरुष उस वृक्ष के शाखा या पत्रों को सिंचित कर उसकी सुरक्षा नहीं करता अपितु उस वृक्ष की मूल जड़ उसे अभिसिंचित करके फिर पत्र और शाखाओं के अभ्युदय की आकांक्षा से उस वृक्ष को अवलोकित करता है। उसी प्रकार जैन दर्शन रूपी वृक्ष को पल्लवित करने के लिये उसकी शाखा प्रशाखा के सिंचन की अपेक्षा सर्वप्रथम महामंत्र रूप मूल जड़ को पोषित करने रूप सिंचित करना पड़ता है फिर जैन संस्कृति पल्लवित होती है। अतः णमं.कार मंत्र जैन संस्कृति की आधारशिला है।

जैन दर्शन को अगर भव्य भवन कहा जाय तो णमोकार मंत्र उसकी नींव होगी। जिस नींव पर खड़ा विशाल जैन दर्शन रूपी प्रासाद भव्य प्राणियों के आश्रय का कारण होगा।

यह मातृक मंत्र है अर्थात् माता के समान शान्ति, पुष्टता को प्रदान करने वाला है। इस मंत्र का एक-एक पद त्रिलोकपूजित एवं मनन चिन्तन के योग्य है।

परमेष्ठी—

णमोकार मंत्र पंच परमेष्ठी वाचक है—परमपदे त्रिलोकपूजितपदे तिष्ठतीति परमेष्ठी—जो तीन लोक में पूजित परम पद में स्थित हैं उनको परमेष्ठी कहते हैं। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं सर्व

साधु यह पाँच परमेष्ठी हैं। इनका पद सर्वोत्कृष्ट है। अनादि काल से होते आये हैं और अनन्त काल तक होते रहेंगे। ऐसे अनादि निधन पंच परमेष्ठी का जिस मंत्र में स्मरण किया जाता है, ध्यान किया जाता है उसको पंच परमेष्ठी मंत्र कहते हैं जो इस प्रकार है :—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

मंत्र शब्द मन धातु (दिवादि ज्ञाने) से ष्ट्रन प्रत्यय लगाकर बनाया जाता है। इसकी व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ होता है मन्यते ज्ञायते आत्मादेशो येन इति मंत्रः—अर्थात् जिसके द्वारा आत्मा का आदेश निजानुभव जाना जाता है वह मंत्र है। दूसरी विधि तनादि गणीय मन धातु से (तनादि अवबोधे) ष्ट्रन प्रत्यय लगाकर मंत्र शब्द बनता है। इसकी व्युत्पत्ति के अनुसार मन्यते विचार्यते आत्मादेशो येन स मंत्रः—अर्थात् जिसके द्वारा आत्मादेश पर विचार किया जाता है वह मंत्र है। तृतीय प्रकार से सम्मानार्थक मन धातु से ष्ट्रन प्रत्यय लगाकर मंत्र शब्द व्युत्पन्न होता है। इसका व्युत्पत्ति अर्थ है मन्यन्ते सत्क्रियन्ते परमपदे स्थिताः आत्मानः वा यक्षादिशासनदेवता अनेन इति मंत्रः। जिसके द्वारा परम पद में स्थित पंच परमेष्ठी का मनन वा यक्षादि शासन देवताओं का सत्कार एवं आवाहन किया जाता है, उनको मंत्र कहते है। मंत्र का वास्तविक अर्थ है कि जिससे महापुरुषों की आराधना करके आत्मशान्ति प्राप्त की जाय।

मोहजन्य वासनायें जो मानव के हृदय का मंथन करके विषयों की ओर प्रेरित करती हैं जिससे व्यक्ति के जीवन में अशान्ति का सूत्रपात होता है उन पर विजय प्राप्त करना ही मंत्र का मुख्य लक्ष्य है। उस मंत्र के माध्यम से महापुरुषो के नामाक्षरों के चिंतवन एवं मनन से मन का निरोध करके आत्मशान्ति वा आत्मानुभूति प्राप्त करना।

मन धातु से मंत्र बनता है उसका अर्थ है मनन से जो त्राण करता है वह मंत्र है। मनन शब्द का काफी गहरा तल है किन्तु इसके आगे भी एक तल है जो आत्मानुभूति कही जाती है। जब मंत्र शब्द रटन से हटकर आत्मानुभूति रूप हो जाता है तब वह सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण बन जाता है। मंत्र की परिभाषा करते हुए लोग मात्र शब्दसमूह को मंत्र कहते हैं परंतु कोरमकोर मंत्र शब्द मात्र कार्यकारी नहीं है वरन् वह हमारी आत्मिक गहराई से स्वयं की गहराइयों को जोड़ता है। शब्द की और साधक की गहराइयों के तादात्म्य का नाम मंत्र है। सिर्फ मंत्र कह देने से वा मंत्र शब्दसमूह के उच्चारण मात्र से मंत्र नहीं होता। वह घटित है तब जब साधक की गहराइयाँ उससे जुड़ती हैं।

विद्युत् धारा जब तक किसी आसन से नही जुड़ती तब तक अपनी शक्ति को प्रकट करने में समर्थ नही होती किन्तु जैसे ही उसे कोई बल्ब हीटर पंखा फ्रीज या अन्य कोई यंत्र का आधार प्राप्त होता है वैसे ही उसकी सार्थकता घटित होती है और उसकी शक्ति शीघ्र ही प्रकट हो जाती है। उसी प्रकार साधक की गहराई के संबंध होते ही मंत्र शक्ति प्रज्वलित हो जाती है। जैसे लौकिक यंत्र की शक्ति के लिये आधार की आवश्यकता है उसी प्रकार मंत्रशक्ति को प्रकट करने के लिये साधक के विचारशुद्धि आदि आधार की आवश्यकता है।

जैन शास्त्रों में अनेक मंत्रों की उपलब्धि है उनमें मुख्य महामंत्र ही है। शेष सारे मंत्र इसकी शाखा उपशाखा हैं। फल शाखा उपशाखा में लगते हैं परन्तु जल जड़ में ही सींचा जाता

है उसी प्रकार और मंत्रों से फल की प्राप्ति होने पर भी मूल मंत्र णमोकार मंत्र ही है। इस णमोकार मंत्र में द्वादशांग गर्भित है। इसके समान कोई दूसरा मंत्र जगत् में नहीं है।

णमोकार मंत्र में पंच परमेष्ठी निहित हैं जो परम शुद्धात्मतत्त्व के प्रतीक हैं अर्थात् जिन्होंने शुद्धात्मोपलब्धि प्राप्त कर ली है—जो मोक्षपद को प्राप्त हो चुके हैं तथा मोक्षमार्ग के पथिक हैं उन महापुरुषों का चिंतवन, मनन, अध्ययन करके परमात्मा पद को प्राप्त करना ही इस मंत्र का मुख्य ध्येय है।

इस मंत्र की चिंतवन क्रिया ध्यान का रूप धारण करती है। जिस अक्षरों के मेलापक से मंत्र बनते हैं उनका समन्वय इस प्रकार किया जाता है जैसे धातु रासायनिक पदार्थों को विचारपूर्वक मिलाकर विद्युत् शक्ति उत्पन्न की जाती है। ऐसी कोई वनस्पति नहीं है जो औषधि नहीं और ऐसा कोई अक्षर नहीं जिसमें शक्ति नहीं। यद्यपि मंत्र शब्द की शक्ति अपरिमित है तथापि शब्द-शक्ति के साथ प्रयोक्ता की आध्यात्मिक शक्ति विशेष है। मंत्र-प्रयोक्ता की जैसी आध्यात्मिक शक्ति होगी वैसी मंत्रशक्ति विशेष होगी। जैसे जितना शक्तिशाली विशेष होगा उतनी ही उसकी मार विशेष लगेगी। उसी प्रकार मंत्रप्रयोक्ता की विशेष शक्ति से मंत्र विशेष फलदायक होता है इसीलिए मंत्रप्रयोक्ता मंत्री के विचार आदि का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

णमो अरिहंताणं–अ–अव्यय, व्यापक आत्मा के एकत्व का सूचक है। शुद्ध बुद्ध ज्ञानरूप शक्ति द्योतक प्रणव बीज का जनक है।

र—अग्नि बीज, कार्य साधक है। समस्त प्रधान बीजों का—जनक शक्ति का प्रस्फोटक है।

इ—गत्यर्थक लक्ष्मी प्राप्ति का साधक, कठोर कर्मों का बाधक बह्नि बीज का जनक है।

ह—शांति पौष्टिक और मांगलिक कार्यों का उत्पादक है। साधना के लिये परमोपयोगी और लक्ष्मी उत्पत्ति का साधक है।

त—आकर्षक बीज शक्ति का आविष्कारक कार्य साधक सारस्वत बीज का सर्व सिद्धि दायक है।

ण—शान्ति का सूचक एवं शक्ति का स्फोटक है।

इन सर्व सुखों का उत्पादक बीजाक्षरों से अरिहंत शब्द बना है। अथवा—

अ—विष्णु, शिव, ब्रह्मा, वायु, वैश्वानर, अनुकम्पा आदि अनेक अर्थ में आता है।

राति-ददाति-इति–र–देने वाले को र कहते हैं।

हंत—आनन्ददायक है। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव, महेश्वर, व्याप्नोतीति विष्णुः जिसके ज्ञान में तीन लोक की सर्व वस्तुएँ प्रतिभासित होती हैं–कल्याणकारी हैं, वायु के समान परिग्रह रहित हैं।

वायु—मूर्तिरसंगात्मा। वैश्वानर–पाप को जलाने वाला होने से अग्नि है। बह्निमूर्तिर-धर्मधक-सर्व व आनन्द दायक है–वह अरहंत कहलाता है अथवा अरहंत शब्द में अकार से लेकर हकार पर्यन्त सर्व स्वर और व्यजनों का समावेश है। स्वर एवं व्यजनों से द्वादशांग की उत्पत्ति होती है इसलिए यह द्वादशांग का द्योतक है।

अ–१–शुद्धात्मा का द्योतक है

र–२–निश्चय नय व्यवहार नय

ह्–८–अष्ट गुण का द्योतक है

त–६–छह द्रव्य का द्योतक है

इस प्रकार शुद्धात्मा जिसमें सर्व द्रव्य प्रतिभासित होते हैं। ऐसे पूजा के योग्य अरहंत को नमस्कार हो उसको णमो अरहंताणं कहते हैं।

णमो अरिहंताणं—अरिहननात् अरिहंत–ध० १–१–१।

नर-नारकादि अनेक योनियों में परिभ्रमण में कारणभूत संक्लेश आदि अनेक दुःखों का कारक होने से मोहनीय कर्म को अरि कहते हैं तथा सर्व कर्मों के बन्धन का कारण भी मोहनीय कर्म है। इसके अस्तित्व के बिना शेष कर्म बंध को प्राप्त नहीं हो सकते तथा जो बँधे हुए कर्म हैं वे शीघ्र नष्ट हो जाते हैं इसलिए मोहनीय कर्म ही जीव का शत्रु है तथा जीव के अनन्त ज्ञान दर्शन सुखादि का घात करने में भी प्रधान कारण मोहनीय कर्म है इसलिए मोहनीय कर्म को शत्रु कहते हैं। इस मोहनीय कर्म के हंता (नाशक) को अरिहंत कहते हैं।

सर्वकर्मों में मोहनीय कर्म बलिष्ठ है। यह कर्म भी है तथा कर्म बंध में कारण भी है क्योंकि कर्मबंध के कारणभूत मिथ्यादर्शन अविरति कषाय एवं प्रमाद ये सब मोहनीय कर्म के पर्यायवाची शब्द हैं। यदि मोहनीय कर्म का अभाव हो जाय तो अन्तर्मुहूर्त्त बाद नियम से ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय तथा अन्तराय कर्म का नाश हो जाता है और आत्मा निर्मल निष्कलंक जीवन्मुक्त हो जाता है अर्थात् अरिहंत अवस्था को प्राप्त हो जाता है। इसलिए मोहनीय कर्म को अरि कहते हैं।

ज्ञानावरणी और दर्शनावरणी कर्मधूलि के समान बाह्य एवं अन्तरंग समस्त त्रिकाल के विषयभूत अनंत अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय रूप वस्तुओं का विषय करने वाले बोध और अनुभव का घातक वा प्रतिबन्धक होने से रज कहलाते हैं। मोहनीय कर्म को भी रज कहते है। क्योंकि जिसका मुख भस्म से व्याप्त होता है उनमें कार्य की मंदता देखी जाती है उसी प्रकार मोह से जिनकी आत्मा व्याप्त रहती है उनकी स्वानुभूति में कालुष्य—मंदता पायी जाती है।

रहस्य (अन्तराय) के अभाव में भी अरिहंत संज्ञा प्राप्त होती है क्योंकि अन्तराय कर्म के नाश हो जाने पर शेष तीन घातिया कर्मों का नाश हो जाता है तथा अन्तराय कर्म के अभाव में चार अघातिया कर्म दग्ध बीज के समान निःशक्त हो जाते हैं। इसलिए अन्तराय कर्म भी अरि है। इसलिए इनमें कर्म शत्रु के अभाव में अरिहंत संज्ञा प्राप्त हो जाती है।

अथवा सातिशय पूजा के योग्य होने से अर्हन् संज्ञा प्राप्त होती है। क्योंकि गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवल और निर्वाण इन पाँचों कल्याणों में देवों द्वारा की गई पूजा को प्राप्त होते है तथा देव मनुष्य आदि सर्व प्राणियों के द्वारा पूजनीय हैं। इसलिए अरहंत हैं।

अरहंति णमोकार अरिहा पूजा सुरूत्तमा लोए।
रजहंता अरिहंति य अरहंता तेण उच्चंदे॥—मूलाराधना गा० ५–५

जो पूजा के योग्य हैं इसलिए अरहंत तथा ज्ञानावरणी आदि घातिया कर्म रूपी शत्रुओं के घातक होने से अरिहंत कहलाते हैं।

अरिहननाद् जो हनन (स्या) भावाच्च परिप्राप्तानंतचतुष्टयस्वरूपः सन् इन्द्रनिर्मितामतिशयवतीं पूजामर्हतीति अर्हन्। घातिक्षयजमनंतज्ञानादिचतुष्टयं विभूत्याद्यं यस्येति वार्हन्॥ (अमरकीर्ति विरचित नाममाला का भाष्य—पृ०५८–५९)

अ–अरि–मोहनीय कर्म–र–रज ज्ञानावरणी दर्शनावरणी (रहस्य) अन्तराय इस प्रकार ज्ञानावरणी दर्शनावरणी मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मरूपी शत्रुओं का नाश होने से जिनने चार अनन्तचतुष्टय प्राप्त कर लिया है तथा इन्द्रनिर्मित अतिशयकारी पूजा को प्राप्त होने से अर्हन् तथा घातिया कर्म के क्षय से उत्पन्न अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख एवं अनंत वीर्य रूप अनंतचतुष्टय को प्राप्त होने से अरहंत कहलाते हैं।

सप्त स्मरणानि पुस्तक में लिखा है कि—णमो अरिहंताणं–णमो–नमस्कारः केभ्यः अर्हद्भ्यः शक्रादिकृतां पूजां सिद्धिगतिं चार्हन्तः तेभ्यः। जिन्होंने इन्द्रों के द्वारा पूजा प्राप्त की है तथा जो सिद्ध गति को प्राप्त होने योग्य हैं इसलिए अर्हंद (अर्हन्त) कहलाते हैं। अरीन् रागद्वेषादीन् घ्नन्तीति अरिहंतारः तेभ्योऽरिहन्तृभ्यः। रागद्वेष रूपी शत्रुओं के घातक होने से अरिहंत तथा न रोहन्ति–नोत्पद्यन्ते दग्धकर्मबीजत्वात् पुनः संसारे न जायन्ते इत्यरुहन्तः तेभ्योऽरुहद्भ्यो नमः नमस्कारोऽस्तु। कर्म बीज के जल जाने से संसार में उत्पन्न होने की शक्ति नही है। इसलिए अरुहद् को नमस्कार हो। इस प्रकार जैन ग्रन्थों में अरिहंत अरहंत तथा अरुह यह तीन नाम कहे हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ने पंचगुरु भक्ति में अरुहा सिद्धारिया आदि में अरिहंत को अरुह कहा है।

अरिहंति वंदण मंस णाई अरहंति पूय सक्कारं।
सिद्धिगमणं च अरहा अरिहंता तेण वुच्चंति॥
देवासुर मणुयाणं अरिहा पूया सुसत्तमा जम्हा।
अरिणो हंता रयं हंता अरिहंता तेण वुच्चंति॥

वंदना पूजा सत्कार के तथा सिद्धि गति को प्राप्त करने योग्य होने से अरहंत अरि (मोहनीय कर्म) रज (ज्ञानावरणी दर्शनावरणी) रहस्य (अंतराय) इसके नाशक होने से अरिहंत कहलाते हैं।

विशेषावश्यकभाष्य ३५८४–३५८५–इस प्रकार णमो अरिहंताणं, णमो अरहंताणं, णमो अरुहंताणं यह तीन पद णमो अरिहंताणं के मिलते हैं। उसमें विशेष प्रचलित अरहंताणं वा अरिहंताणं है। प्राकृत में अरहंताणं में अरहंताणं और अरुहंताणं का संस्कृत मे अर्हंत पद निष्पन्न होता है। परंतु दोनों के अर्थ में अन्तर है अरुह का अर्थ है पुनर्जन्म नहीं होना—अरहंत का अर्थ है देवों के द्वारा पूजातिशय को प्राप्त।

मणुयणाइंदसुर धरिय छत्तत्तया, पंचकल्याण सोक्खा वलीपत्तया दंसणं णाणझाणं अणंतं बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं॥ जिसके सिर पर मनुष्य धरणेन्द्र सौधर्मादि देव तीन छत्र लगाये खड़े हैं जो गर्भादि पंचकल्याणों को प्राप्त हुए हैं तथा अनंत दर्शन ज्ञान सुख एवं वीर्य के धारी हैं वे अरहंत प्रभु हमारा कल्याण करें।

णमो सिद्धाणं—सिद्ध शब्द का अर्थ कृत-कृत्य है अर्थात् जिन्होंने अपने करने योग्य कार्य को कर लिया है। जिन्होंने अनादि काल के बँधे हुए ज्ञानावरणादि प्रचण्ड कर्मसमूह को शुक्ल ध्यानरूपी अग्नि से भस्म कर दिया है ऐसे कर्मप्रपंचमुक्त आत्मा को मुक्त कहते है।

सितं बद्धमष्टप्रकारं कर्मेन्धनं ध्मातं दग्धं जाज्वलमानशुक्लध्यानानलेन येस्ते सिद्धाः। भगवती सूत्र—

सि—(सितं) अनादि काल से बँधे हुए ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकार के कर्म को।

द्ध—(ध्मातं) देदोप्यमान शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि की ज्वाला से दग्ध कर दिया है उनको सिद्ध कहते हैं।

षिधु—गतौ–षिध् धातु गमन अर्थ में आता है जिसका अर्थ है जो मुक्ति नगर में पहुँच गये हैं पुनः वहाँ से लौट कर संसार में नहीं आयेंगे अथवा षिधु धातु का अर्थ है निष्ठितार्थ अर्थात् जो कृतकृत्य हो चुके हैं। अब कुछ करना शेष नहीं रहा है, उनको सिद्ध कहते हैं—भगवती सूत्र में कहा है—

ध्मातं सितं येन पुराणकर्म यो वा गतो निर्वृति–सौधमूर्ध्नि।
ख्यातोऽनुशास्ता परिनिष्ठितार्थो यः सोऽस्तु सिद्धः कृतमंगलो मे॥

जिन्होंने पुरातन कर्म भस्म कर दिये हैं, जो मोक्षरूपी महल में स्थित है अपने आपका अनुशास्ता है, कृतकृत्य है वह मेरे लिए मंगल करें।

षिधु—धातु संराधन के अर्थ में भी आती है जिसका अर्थ है जिन्होंने आत्मीय गुणों को प्राप्त कर लिया है, जिनकी आत्मा मे अपने स्वाभाविक अनन्त गुणों का विकास हो गया है उनको सिद्ध कहते हैं।

अट्ठविहा कम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा॥

आठ प्रकार के कर्मों से सहित सम्यग्दर्शनादि अष्टगुणों से सहित शांत निरंजन कृतकृत्य और लोक के अग्रभाग पर स्थित सिद्ध भगवान् होते हैं। आत्मा का वास्तविक स्वरूप इस सिद्ध पर्याय में उत्पन्न यही आत्मा का शुद्ध व्यंजन एवं अर्थपर्याय है। उन सिद्धों को मेरा नमस्कार हो।

जेहिं झाणग्गिवाणेहिं अइ दढयं, जम्म नर मरण णयरतयं दड्ठयं।
जेहि पत्तं सिव सासयं ठाणयं, ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं॥२॥

जिन्होंने ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा अति दृढ़ जन्म जरा एवं मरणरूपी तीन नगर को जला दिया है तथा कल्याणकारी शाश्वत मुक्तिरूपी नगर को प्राप्त कर लिए हैं वे सिद्ध भगवान् मेरे पर खुश होवें। णमो सिद्धाणं। अथवा जिन्होंने नाना भेद रूप आठ कर्मों का नाश कर दिया है जो लोक के अग्रभाग पर स्थित है। दुःख से निर्मुक होकर सुखरूपी सागर में निमग्न है, निरंजन है, नित्य है सम्यक्त्वादि गुणों से युक्त है जो सर्व द्रव्य और पर्यायों को युगपत् जानते हैं। वज्र शिला निर्मित अभग्न प्रतिमा के समान अभेद्य आकार से युक्त है, पुरुषाकार होते हुए भी इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है। इस प्रकार अचल कृतकृत्य शुद्ध अनंतचतुष्टय के धनी आत्माओं का णमो सिद्धाणं इस पद से नमस्कार किया है।

णमो आइरियाणं—पंचविधमाचारं चरन्ति चारयन्तीत्याचार्याः चतुर्दशविद्यास्थानपारगाः एकदशांगधराः। आचारांगधरो वा तात्कालिकस्वसमयपरसमयपारगो वा मेरुरिव निश्चलः क्षितिरिव सहिष्णुः सागर इव बहिःक्षिप्तमलः सप्तभयविप्रमुक्त आचार्यः। ध० १-१-१।४८।

जो दर्शन ज्ञान चरित्र तप और वीर्य इन पांच आचारों का स्वयं आचरण करते है तथा अपने शिष्यों से आचरण कराते हैं जो चौदह विद्या (१४ पूर्व ११ अंग) के पारगामी होते है अथवा आचाराग के कुछ अंश को जानते है तथा तात्कालिक स्वसमय (अपने मत) परसमय (परवादियों) के पारगामी हैं जो समुद्र के समान गम्भीर, मेरु के समान निश्चल, पृथ्वी के समान सहनशील एवं

समुद्र के समान दोषों को बाहिर फेंकने वाले (जैसे समुद्र कचरे को बाहिर फेंक देता है) उसी प्रकार दोष लगने पर आचार्य शीघ्र ही प्रायश्चित्त लेते हैं एवं अपने मानसिक विकारों को उत्पन्न नहीं होने देते हैं। सात प्रकार के भय से निर्मुक्त हैं वह आचार्य कहलाते हैं। मूलाचार में लिखा है कि—

गंभीरो दुद्धरिसो सूरो धम्मप्पहावणासीलो।
खिदि ससि सायर सरिसो कमेण तं सो दु संपत्तो ॥ १५६ ॥

गम्भीर, सूर, धर्मप्रभावनाशील, पृथ्वी के समान सहनशील, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कीर्तिधारी, समुद्र के समान गम्भीर आचार्य होते हैं। आचार्य परमेष्ठी वही बन सकता है जिसका देश, कुल, जाति शुद्ध है। जिनका शरीर अत्यन्त सौम्य है, जो अंतरंग एवं बहिरंग परिग्रह से रहित है।

देश कुल जाइ सुद्धा विसुद्ध मण वयण काय संजुत्ता।
तुम्हं पायपयोरुहमिह मंगलमत्थु मे णिच्चं ॥—कुन्दकुन्द कृत आ० भक्ति।

जो देश, कुल, जाति से शुद्ध है। शुद्ध मन, वचन, काय से युक्त है उन आचार्य के चरण कमलों में मैं नमस्कार करता हूँ।

आ—मर्यादा तद्विषयविनयरूपया चर्यन्ते जिनशासनार्थोपदेशकतया तदाकांक्षिभिः इत्याचार्यः।

आ—का अर्थ है मर्यादा। उस मर्यादा के विषय के विनयरूप से जिनशासन के कांक्षी जिनकी सेवा करते हैं, आचरण करते हैं उसको आचार्य कहते हैं।

आ—ईषद् अपरिपूर्ण इत्यर्थः। चारा हेरिका ये ते आचाराः—चारकल्पा इत्यर्थः। जो अपरिपूर्ण है, आत्म आचरण जिन्हों का अर्थात् जो मोक्ष मार्ग में स्थित पूर्ण आत्म स्वरूप में आचरण नहीं कर रहे हैं अर्थात् ईषद् आचरण कर रहे हैं, जो संघ की मर्यादाभूत हैं।

१. आचारित्व—जो पंचाचार का पालन करते हैं, कराते हैं तथा संघ के अधिपति हैं उसको आचारित्व कहते है।
२. आधारित्व—जो प्रत्याख्यान पूर्व को पढ़ते हैं, पढ़ाते हैं।
३. व्यवहारित्व—व्यवहाराश्रित मुनिचर्या का पालन करते हैं, कराते हैं।
४. प्रकारकत्व—मरण के समय समाधि करने वाले मुनियों की चर्या करते हैं, उदार भावों से वैयावृत्ति करके धर्म का प्रचार करते हैं।
५. आयापायदर्शि—जो मुनियों की सारी आलोचना को सुनकर उनके दोषों को दूर करते हैं, उनको हेयोपादेय का ज्ञान कराते हैं।
६. उत्पीड़कत्व—जो मुनि आलोचना करने में मायाचार करते हैं उनको उनके दोषों को अपनी वाणी से प्रकट करवा लेते है।
७. अपरिस्रावी—मुनियों के द्वारा कहे हुए दोषों को छिपा करके रखता है किसी के सामने प्रकट नहीं करता है।
८. निर्विपकत्व—क्षुधा, तृष्णा आदि से पीड़ित मुनियों को कथा पुराण आदि के कथनामृत से संतुष्ट करते हैं।
९. आचेलक्यत्व—सर्व प्रकार के परिग्रह एवं वस्त्रों का त्याग करना।

१०. आछेलिक पिण्डोज्झितत्व—उच्छिष्ट भोजन के त्यागी होते हैं।
११. शय्याधरपिण्डोज्झित—जिसकी वसति का है उसके घर में आहार न लेना।
१२. राजकीय पिण्डत्याग—राजा प्रधान मंत्री आदि प्रभुतामिश्रित आहार एवं कामोत्पादक आहार के त्यागी होते हैं।
१३. कृति कर्म कुशल—जो षट् आवश्यक क्रिया में कुशल होते हैं।
१४. व्रतारोपणयोग्यत्व—जो मुनि व्रतों में दूषण लगाते हैं उनके दूषण निकाल कर पुनः व्रतों का आरोपण करते हैं।
१५. सर्व ज्येष्ठत्व—व्रत नियम उपवास आदि के पालन करने में सर्व संघ के मुनियों से श्रेष्ठ होते हैं।
१६. प्रतिक्रमण पंडितत्व—जो मन, वचन, काय से रात-दिन मे लगे हुए दोषों को दूर करने के लिए प्रतिक्रमण करते हैं।
१७. षड्मासयोगित्व—छह महीने का उपवास करते हैं, एकासन से खड़े रहते हैं।
१८. वर्षायोग युक्त—चातुर्मास में जीवों की रक्षा करने के लिए चार महीने तक आहार का त्याग करके खड़े रहते हैं।
१९. अनशन तपोधारकत्व—इन्द्रिय एवं मनरूपी घोड़ों को कस कर वश में करने के लिए अनेक उपवास करते हैं।
२०. अवमौदर्य तपोमंडित—३२ ग्रास में से १-२ आदि ग्रास लेना या भूख से कम खाना।
२१. वृत्तिपरिसंख्यान—आहार को जाते समय घर ग्राम गली आदि का नियम करना।
२२. रसपरित्याग—दूध, दही, घृत, नमक, तैल, गुड़ आदि रसों का त्याग करना।
२३. विविक्त शय्यासन—जीव जन्तु रहित स्थान में स्वाध्याय एवं ब्रह्मचर्य की वृद्धि के लिए अकेले बैठना, सोना।
२४. काय क्लेश गुणांचित—अनेक प्रकार के शीत उष्ण आदि सहन करना।
२५. प्रायश्चित्त तप धारक—अपने किये या व्रतों में दूषण लगने पर प्रायश्चित्त लेना।
२६. विनय तपोमंडित—विषय कषायों पर विजय प्राप्त करने के लिए गुणी जनों का विनय करने वाले।
२७. वैयावृत्यकरणोद्यत—दश प्रकार के साधुओं को वैयावृत्ति करने वाले।
२८. स्वाध्याय निरत—निरन्तर पाँच प्रकार के स्वाध्याय में मग्न रहने वाला।
२९. व्युत्सर्ग तपोमंडितत्व—अन्तरंग बहिरंग परिग्रह का त्याग करना।
३०. सामायिक पारंगत—सर्व जीवों मे समता रखना।
३१. ध्यानमग्नत्व—आर्त्त, रौद्र ध्यान को छोड़कर धर्म ध्यान में लीन रहना।
३२. स्तवन निरत—चतुर्विंशति तीर्थंकरों की स्तुति करने वाला।
३३. वन्दना कुशल—३२ दोष टालकर त्रिकाल वन्दना करने वाला।
३४. प्रतिक्रमण पंडितत्व—रात्रिक, दैवसिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, वार्षिक, ईर्यापथिक एवं उत्तमार्थ इन सात प्रकार के प्रतिक्रमण को करने वाला।
३५. प्रत्याख्यान विशारदत्व—सर्वपापों का त्याग करने वाला।
३६. कायोत्सर्गधारित्व—निद्रा, आलस्य एवं इंद्रियों के विषयों को जीतने के लिए शरीर के ममत्व का त्याग करना।

इस प्रकार आचार्य के ३६ गुण कहे हैं और भी अनेक गुण हैं। खून जाति कुल शुद्धि आदि गुणों का जो आचार्य परमेष्ठी में वर्णन किया है उसका अभिप्राय है कि आचार्य संघ की मर्यादाभूत है, अनुशास्ता है। यदि अनुशास्ता योग्य नहीं होगा तो अनुशास्य उद्दंड बनेंगे, धर्म की निन्दा होगी। इसलिए अनुशास्ता आचार्य कैसा होना चाहिए जिसका शिष्यों पर अच्छा असर पड़े—शिष्य सन्मार्ग में लगें।

पंचाचार पंचाग्गि संसाह् या वार संगाइ सुअजलहि अवगाहया।
मोक्ख लच्छी महंती महंते सया सूरिणो दिंतु मोक्खंगया संगया॥

जो पंचाचार रूपी पंचाग्नि के साधक हैं, द्वादशांग रूपी समुद्र में अवगाहन करने वाले हैं, मोक्ष के कारणभूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से युक्त हैं वे आचार्य परमेष्ठी हमको उत्कृष्ट मोक्षलक्ष्मी देवें।

णमो उवज्झायाणं—विनयेनोपेत्य यस्माद् व्रतशीलभावनाधिष्ठानादागमश्रुताख्यमधीयते इत्युपाध्यायः॥ राजवा०—९।२४।४।६२३।१३।

जिन व्रतशील भावनाशाली महानुभाव के समीप जाकर भव्यजन विनय पूर्वक श्रुत का अध्ययन करते हैं, वे उपाध्याय हैं। जो साधु १४ पूर्वरूपी समुद्र में प्रवेश करके मोक्षमार्ग मे स्थित हैं तथा मोक्ष के इच्छुक शील संयमी मुनियों को उपदेश देते हैं उन मुनिवरों को उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं।

११ अंग १४ पूर्व का पठन पाठन करना ही इनका मुख्य कर्त्तव्य है। मोक्षमार्ग के उपदेशक हैं, शिष्यों को सन्मार्ग में लगाते हैं वे उपाध्याय परमेष्ठी हैं।

सप्त स्मरण नामक पुस्तक में लिखा है कि जिनके समीप जाकर मुनिगण अध्ययन करते हैं तथा जो ११ अंग एवं १४ पूर्व के पाठी है उनको उपाध्याय कहते हैं। अथवा इक स्मरणे इक धातु स्मरण में आता है इस इक धातु में उप-उपसर्ग लगाकर उपाध्याय शब्द बनता है जिसका अर्थ है जो जिनेश्वर के प्रवचन का स्मरण करते हैं जो उपाध्याय की उपाधि से विभूषित हैं उनको उपाध्याय कहते हैं। उन उपाध्याय परमेष्ठी को नमस्कार हो यह अथवा इङ—अध्ययने इङ धातु का अर्थ अध्ययन होता है इसमें उप एवं अधि उपसर्ग लगाने से उपाध्याय बनता है जिसका अर्थ पठन-पाठन करने वाला होता है।

अथवा आधीनां—मनःपीडानामायो—लाभः आध्यायः ? अधियां वा नञः कुत्सार्थत्वात् कुबुद्धिनामायोऽध्यायः ध्यै चिन्तायां इत्यस्य धातोः प्रयोगान्नञः कुत्सार्थत्वादेव च दुर्ध्यानं वाध्यायः उपहतः अध्यायः आध्यायो वा येस्ते उपाध्यायः॥

आधि (मानसिक पीड़ा) के आय (लाभ) को आध्याय कहते हैं अथवा धी का अर्थ है बुद्धि अ—का अर्थ है कुत्सित अर्थात् खोटी बुद्धि को आध्याय कहते हैं। ध्यै धातु चिंता अर्थ में है इस धातु के प्रयोग में नञ् समास कुत्सित अर्थ में होता है जिसका अर्थ है कुबुद्धि या दुर्ध्यान। उपहत (नष्ट) किया है शिष्यों के मानसिक पीड़ा और दुर्ध्यान को जिसने वह उपाध्याय कहलाते हैं अथवा उपधानमुपाधिः संनिधिस्तेनोपाधिना उपाधौ वा आयो लाभः श्रुतस्य येषां उपाधीनां वा विशेषणानां प्रक्रमाच्छोभनानामायो लाभः येभ्यः ते उपाध्यायः। जिनके सान्निध्य से श्रुत का लाभ होता है उनको उपाध्याय कहते हैं।

घोर संसार भीमाडवी काणवे, तिक्खवियरालणह पाव पंचाणणे।
णट्ठ मग्गाण जीवाण पहृदेसिया वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया।

तीक्ष्ण नख वाले पापरूपी विकार सिंह जहाँ विचरण कर रहे हैं। ऐसे घोर संसाररूपी भयानक अटवियों में मार्ग भूले हुए जीवों का जो पथ प्रदर्शक है उन उपाध्यायों को मेरा सदा नमस्कार हो। णमो उवज्झायाणं।

णमो लोए सव्वसाहूणं

णिव्वाण साधए जोगे सदा जुंजंति साधवो।
समा सव्वेसु भूदेसु तम्हा ते सव्व साधवो ॥ ५१२ ॥ (मूल आराधना)

जो मुक्ति के साधनों में निरन्तर संलग्न हैं तथा सर्व जीवों के साथ जिनका समता भाव है किसी के साथ जिन को वैमनस्य नही है वे सर्व साधु कहलाते हैं।

विषयाशावशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते। (रत्नकरण्डश्रावकाचार)

विषयों की आशा नहि जिनके साम्य भाव धन रखते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत् के दुःख समूह को हरते हैं॥

जो विषय वासनाओं के त्यागी हैं, आरम्भ परिग्रह से रहित हैं तथा निरन्तर ज्ञान ध्यान तप में लीन रहते हैं वही साधु प्रशंसा का पात्र होते हैं। जो अपने आत्मा की सिद्धि करता है। चारित्रसार में ऋषि यति मुनि एवं अनगार के भेद से साधुओं के चार भेद किये हैं। सामान्य साधु को अनगार कहते हैं अथवा योऽनीहो देह-गेहेऽपि सोऽनगारः सतां मतः। (यशस्तिलक) शरीर रूपी घर में स्नेह नहीं रखते हैं इसलिए अनगार कहलाते हैं।

यति—उपशमक्षपकश्रेण्यारूढा यतयः भण्यन्ते। (चारित्रसार)

उपशम क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ मुनियों को यति कहते हैं।

यत्—धातु प्रयत्न करने में होती है इसलिए यो देहमात्रारामः सम्यग्विद्यानौलाभेन तृष्णा-सरित्तरणाय योगाय शुक्लध्यानधर्म ध्यानाय यतते स यतिः ॥

जो सम्यग्विद्यारूपी नौका के द्वारा तृष्णारूपी नदी को तैरने का प्रयत्न करते हैं उनको यति कहते हैं।—यः पापनाशाय यतते स यतिर्भवेत् ॥ (य० चम्पू)

जो पाप नाश करने का प्रयत्न करते है उसको यति कहते है।

मुनि—मुनयोऽवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनश्च कथ्यन्ते। (चारित्रसार)

अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी को मुनि कहते है।

अथवा—तपःप्रभावात् सर्वैर्मन्यते इति मुनिः। मन्यतेः किरतः उच्च मनु अवबोधने मान्यत्वादसाविद्यानां महद्भिः कीर्त्यते मुनिः।

मन धातु मानने पूजने अर्थ में आता है इसलिये तप के प्रभाव से सबके द्वारा माननीय पूजनीय होते हैं इसलिये मुनि कहलाते हैं। मनु धातु ज्ञान अर्थ में है इसलिये आध्यात्म विद्यार्थी (केवलज्ञानादि) की प्राप्ति से पूज्य होने के कारण मुनि कहलाते हैं।

ऋषि—ऋद्धि प्राप्त मुनियों को ऋषि कहते हैं। देवर्षि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि और परमर्षि के भेद से वे चार प्रकार के हैं। आकाशगामी ऋद्धि से युक्त मुनि देवर्षि, विक्रिया एवं अक्षीण ऋद्धि को प्राप्त राजर्षि, बुद्धि और औषधि ऋद्धि को प्राप्त ब्रह्मर्षि और केवलज्ञानी परमर्षि कहलाते हैं।

ऋषिशुचिगृनाभ्युपधात्किः ॥ व्याकरण से ऋषि धातु जानने अर्थ में है। ऋषति कालत्रयं जानातीति ऋषिः ॥ जो तीनों कालों की बात जानते हैं वह ऋषि हैं। अथवा रेषणात्क्लेशराशिनामृषिमाहुर्मनीषिणः ॥ जो क्लेशराशि को नाश करने का प्रयत्न करते हैं वह ऋषि हैं। सिद्धि साधयति साधयिष्यति वा साधुः ॥ जो अपने साध्य (स्वात्मोपलब्धि) की सिद्धि कर रहा है या करेगा उसको साधु कहते हैं अथवा शिष्याणां दीक्षादिदानाध्यापनपराङ्मुखसकलकर्मोन्मूलनसमर्थः मोक्षमार्गोऽनुष्ठानपरो यः स साधुः। स व्याख्याति न शास्त्रं न ददाति दीक्षादिकं च शिष्याणां कर्मोन्मूलनशक्तो (धर्म) ध्यानः स चात्र साधुर्ज्ञेयः। (अमरकीर्त्ति भाष्य) जो न तो व्याख्यान देते हैं और न शिष्यों को दीक्षादि देते हैं केवल आत्मध्यान में लीन रहते हैं उनको साधु कहते हैं। क्योंकि शिष्यों का ग्रहण, ग्रहण किये हुए का पोषण उनका शिक्षण आदि कार्य करने की मुख्यता आचार्य की है।

मानमायामदामर्षक्षपणात्क्षपणः ॥ मान, माया, घमण्ड, क्रोधादि, विकार भावों को क्षय करने वाले होने से क्षपण कहलाते हैं। यशस्तिलक चम्पू—

यो न श्रान्तो भवेद् भ्रान्तेस्तं विदुः श्रमणं बुधाः ॥

जो ईर्यासमिति पूर्वक विहार करके वा आत्मध्यान करके थकते नहीं हैं—ग्लान नहीं होते इसलिए श्रमण कहलाते हैं।

युज धातु जुड़ने में आता है इसलिये अपने ध्यान में लीन रहते हैं उनको योगी कहते हैं।

सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी या उन्नत, बैल के समान भद्र प्रकृति, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह, गोचरीवृत्ति करने वाले, पवन के समान निस्संग होकर सब जगह बिचरने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी, सकल तत्त्व के प्रकाशक, सागर के समान गम्भीर, मेरु के समान अकम्प वा अडोल, चन्द्रमा के समान शांतिदायक, मणि के समान प्रभापुंज युक्त, पृथ्वी के समान सहनशील, सर्प के समान अनियत वसतिका में रहने वाले और आकाश के समान निर्लेप निरावलम्बी वे महाधैर्यशाली साधुगण निरंतर परमात्मा पद का अन्वेषण करते हैं।

समसत्तुबन्धुवग्गो समसुहदुक्खो पंसण-णिंदणसमो।
समलोट्ठ-कंचणो पुण जीवितमरणे समो समणो ॥ २४१ ॥ प्रवचनसार

जिनके शत्रु-मित्र, सुख-दुख, निंदा-प्रशंसा, लोष्ठ-सुवर्ण और जीवन-मरण समान हैं। निष्परिग्रही निरारंभी भिक्षा चर्या में शुद्ध भाव रखने वाला एकाकी ध्यान में लीन होकर अनन्त ज्ञानादिरूप शुद्धात्मा की साधना करता है वह श्रमण साधु कहलाता है। ऐसे सर्व लोक में स्थित साधुओं को मेरा नमस्कार हो।

णमो लोए सव्वसाहूणं

जिनका उग्र तपश्चरण के करने से शरीर क्षीण हो गया है, जो धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान में लीन हैं, तपोलक्ष्मी से विभूषित हैं वे साधु परमेष्ठी मुझे मोक्षमार्ग दिखलावें।

यद्यपि व्यवहार नय से आचार्य उपाध्याय और साधु यह भेद है तथापि वास्तव में देखा जाय तो तीनों एक ही हैं। क्योंकि दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार २८ मूलगुण शुद्धात्मा की भावना क्रिया परीषहजय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र आदि गुण

आचार्यादि में समान हैं अथवा अरिहंत आचार्य उपाध्याय एवं सर्व साधुओं की गणना एक भी आती है। क्योंकि तीन घाट नौ करोड़ मुनीश्वरों की संख्या में आचार्यादि सर्व गर्भित हो जाते हैं।

णमोकार मंत्र का माहात्म्य

हमारे आगम में इस मंत्र की बड़ी भारी महिमा बतलाई है। यह सभी प्रकार की अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला है। आत्मशोधन का हेतु होते हुए भी नित्य जाप करने वाले के रोग, शोक, आधि, व्याधि आदि सभी बाधायें दूर हो जाती हैं। पवित्र अपवित्र, रोगी, दु:खी, सुखी आदि किसी भी अवस्था में इस मंत्र का जप करने से समस्त पाप भस्म हो जाते हैं तथा बाह्य और अभ्यन्तर पवित्र हो जाता है। यह समस्त विघ्नों को दूर करने वाला तथा समस्त मंगलों में प्रथम मंगल है। किसी भी कार्य के आदि में इसका स्मरण करने से वह कार्य निर्विघ्नतया पूर्ण हो जाता है ऐसा बताया गया है।

एसो पंचणमोयारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं ॥
अपराजितमंत्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषो निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥

यह णमोकार मंत्र अपराजित है, अन्य किसी मंत्र द्वारा इसकी शक्ति प्रतिहत—अवरुद्ध नहीं की जा सकती है। इसमें अद्‌भुत सामर्थ्य निहित है। समस्त विघ्नों को क्षण भर में नष्ट करने में समर्थ है। इसके द्वारा भूत, पिशाच, शाकिनी, डाकिनी, सर्प, सिंह, अग्नि आदि के विघ्नों को क्षण भर में ही दूर किया जा सकता है। जिस प्रकार हलाहल विष तत्काल अपना फल देता और उसका फल अव्यर्थ होता है उसी प्रकार णमोकर मंत्र भी तत्काल शुभ पुण्य का आस्रव करता है तथा अशुभोदय के प्रभाव को क्षीण करता है। यह मंत्र सन्मति प्राप्ति करने का एक प्रधान साधन है तथा सम्यक्त्व की वृद्धि में भी सहायक होता है। मनुष्य जीवन भर पापास्रव करने पर भी अन्तिम समय में इस महामंत्र के प्रभाव से स्वर्गादि सुखों को प्राप्त कर लेता है। इसीलिये इस मंत्र का महत्त्व बतलाते हुए कहा गया है कि—

कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा जन्तुशतानि च।
अमुं मंत्र समाराध्य तिर्यंचोऽपि दिवं गताः ॥

अर्थात् तिर्यन्च पशु-पक्षी जो मांसाहारी क्रूर हैं जैसे सर्प, सिंहादि जीवन में सहस्रों प्रकार के पाप करते हैं। ये अनेक प्राणियों की हिंसा करते हैं। मांसाहारी होते हैं तथा इनमें क्रोध, मान, माया और लोभ कषायों की तीव्रता होती है फिर भी अन्तिम समय में किसी दयालु द्वारा णमोकार मंत्र का श्रवण करने मात्र से उस निंद्य तिर्यंच पर्याय का त्याग कर स्वर्ग में देव गति को प्राप्त होते हैं।

भैया भगवतीदास ने णमोकार मंत्र को समस्त सिद्धियों का दायक बताया और अहर्निश

इसके जाप करने पर जोर दिया है। इस मंत्र के जाप करने से सभी प्रकार की बाधायें नष्ट हो जाती हैं, ऐसा कहा है—

जहाँ जपें णमोकार वहाँ अघ कैसे आवें।
जहाँ जपें णमोकार वहाँ वितर भग जावें॥
जहाँ जपें णमोकार वहाँ सुख सम्पति होई।
जहाँ जपें णमोकार वहाँ दुःख रहे न कोई॥
णमोकार जपत नवनिधि मिलें, सुख समूह आवे निकट।
भैया नित जपबो करो, महामंत्र णमोकार है॥

यह णमोकार मंत्र सभी प्रकार की आकुलताओं को दूर करने वाला है और सभी प्रकार की शांति एवं समृद्धियों का दाता है। इसकी अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से बड़े-बड़े कार्य क्षणभर में सिद्ध हो जाते हैं। जिस प्रकार रसायन के सम्पर्क से लोहभस्म आरोग्यप्रद हो जाता है उसी प्रकार इस महामंत्र की ध्वनियों के स्मरण, मनन से सभी प्रकार की अद्‌भुत सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। आचार्य वादीभसिंह ने क्षत्रचूड़ामणि में बताया है—

मरणक्षणलब्धेन येन श्वा देवताऽजनि।
पंच मंत्र पदं जप्यमिदं केन न धीमता॥

अर्थात् मरणोन्मुख कुत्ते को जीवन्धर स्वामी ने करुणावश णमोकार मंत्र सुनाया था इस मंत्र के प्रभाव से वह पापाचारी श्वान देवता के रूप में उत्पन्न हुआ। अतः यह सिद्ध है कि यह मंत्र आत्मविशुद्धि का बहुत बड़ा कारण है।

ध्यान करने का विषय—ध्येय णमोकार मंत्र से बढ़कर और कोई पदार्थ नहीं हो सकता है। पूर्वोक्त नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चारों प्रकार के ध्येयों द्वारा णमोकार मंत्र का ही विधान किया गया है। साधक इस मंत्र की आराधना द्वारा अनात्मिक भावों को दूर कर आत्मिक भावों का विकास करता जाता है और गुणस्थापना रोहण कर निर्विकल्प समाधि के पहले तक इस मंत्र का या इस मंत्र में वर्णित पंच परमेष्ठी का अथवा उनके गुणों का ध्यान करता हुआ आगे बढ़ता रहता है। ज्ञानार्णव में बताया गया है कि—

गुरुपंचनमस्कारलक्षणं मंत्रमूर्जितम्।
विचिन्तयेज्जगज्जन्तुपवित्रीकरणक्षमम्॥
अनेनैव विशुद्धयन्ति जन्तवः पापपंकिताः।
अनेनैव विमुच्यन्ते भवक्लेशान्मनीषिणः॥

इस णमोकार मंत्र का जप, मनन, चिंतवन करने वाले पापी मानव के पाप नष्ट हो जाते हैं और भवक्लेश शांत हो जाते हैं।

हेमचन्द्राचार्य ने पदस्थ ध्यान का वर्णन करते हुए बताया है कि—

यत्पदानि पवित्राणि समालम्ब्य विधीयते। तत्पदस्थं समाख्यातं ध्यानं सिद्धांतपारगैः॥

पवित्र णमोकार मंत्र के पदों का अवलम्बन लेकर जो ध्यान किया जाता है उसको पदस्थ ध्यान कहते हैं। रूपस्थ ध्यान में अरहंत के स्वरूप का वा आकृति विशेष का, रूपातीत में ज्ञानावरणादि कर्मों से रहित लोकाकाश के अग्र भाग मे स्थित सिद्ध पद का ध्यान किया जाता है। इस महामंत्र की आराधना से समता भाव की प्राप्ति होती है। प्रवचनसार में कुन्दकुन्दाचार्य जी ने कहा है कि—

जो जाणदि अरिहंताणं दव्वत्त-गुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥

जो द्रव्य गुण और पर्याय रूप से अरिहंत को जानते हैं वह अपने आप को जानते हैं और उनका दर्शन मोह (मिथ्यात्व) एक क्षण भर में नष्ट हो जाता है तथा स्वभाव दृष्टि प्राप्त हो जाती है। इसलिये सम्यग्दर्शन तथा समाधि के इच्छुक महामुनि इसका निरन्तर चितवन करते हैं।

श्रावक तथा मुनियों की कोई ऐसी क्रिया नहीं है जिसकी प्रारम्भ में णमोकार का चितवन नहीं किया हो। अमितगति आचार्य ने कहा है कि—

सप्तविंशतिरुच्छ्वासाः संसारोन्मूलनक्षमे।
संति पंचनमस्कारे नवधा चिन्तिते सति॥

२७ श्वासोच्छ्वास में णमोकार मंत्र का जप करने से जन्म-जन्मान्तर के पाप नष्ट हो जाते हैं। संसार लता को उखाड़ने के लिये कुठार का काम करता है।

आ० कुन्दकुन्द ने पंचभक्ति में लिखा है—

एण थोत्तेण जो पंच गुरु वंदये, गुरुय संसार धनवल्ली।
सो छिंदए लहइ सो सिद्ध सोक्खाई बहुमाणणं कुणइ॥
कम्मिंधणं पुंज पज्जालणं॥

इस प्रकार स्तोत्र से पंच गुरु की भक्ति करता है, वन्दना करता है वह बड़ी भारी संसार बेल को उखाड़ कर फेंक देता है। कर्मरूपी ईंधन को जला देता है और महान् लक्ष्मी को प्राप्त करता है।

अरहंत णमोक्कारो संपहिय बंधादो असंखेज्जगुणकम्मक्खउकारओ त्ति तत्थ मुणीणं पवुत्ति-प्पसंगादो उत्तं च—

अरहंत णमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयडमदी।
सो सव्व दुक्ख मोक्खं पावइ अचिरेण कालेण॥—कषायपाहुड

जो निश्चल चित्त होकर अरिहंतों को नमस्कार करते हैं उनके तत्काल बंध की अपेक्षा असंख्यात गुणी निर्जरा होती है इसलिये मुनियों को इसमें प्रवृत्ति करना चाहिये, निरन्तर इसका जाप करना चाहिये जो प्रयत्न प्रति भावों से अरिहंत को नमस्कार करते हैं वे शीघ्र ही सर्व दुखों का नाश कर मुक्ति को प्राप्त करते हैं। इसलिये—

उत्तिष्ठन्निपिबन्नलन्नपि धरापीठे लुठन् वा स्मरेत्
जाग्रद्वा प्रहसन् स्वपन्नपि वने बिभ्यन्निषीदन्नपि।
गच्छन् वर्त्मनि वेश्मनि प्रतिपदं कर्म प्रकुर्वन्नपि।
यः पंचप्रभुमंत्रमेकमनिशं किं तस्य नो वांछितं॥ ४॥

—णमोकार मंत्र माहात्म्य उमास्वामी कृत।

उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते, पृथ्वी पर लोटते, जाग्रत अवस्था में, स्वप्न अवस्था में, वन वा निर्जन स्थान पर भय लगने पर और मार्ग में चलते हुए पद-पद में जो मानव णमोकार मंत्र का जाप करता है उसके सारे मनोवांछित कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

इस णमोकार मंत्र की महिमा का क्या वर्णन करूँ। मैंने इसको आजमाया है। रोग में, आपत्ति में, सर्प के काटने में तत्काल रोग दूर हो जाता है। मैं अपनी अनुभूत बात को इसमें लिखना अच्छा

नहीं समझती—क्योंकि आज का मानव अश्रद्धालु है। मुख में राम बगल में छूरी वाला है। सोचेगा अपनी ख्याति के लिए लिखा है परन्तु ऐसी बात नहीं है। मैं १२ साल की उम्र से इस महामंत्र का प्रयोग करती हूँ और मुझे इसमें सफलता मिली है। पानी नहीं था, कुँवें में इस मंत्र के प्रभाव से पानी भर गया। बरसात आती बन्द हो गई—गर्मी में बादल छा जाते।

बिच्छू का विष तो कितनी बार उतारा है। सर्प का विष एक क्षण में नष्ट हो जाता है परन्तु आज यह मंत्र हमारे घर का हो गया लोगों का विश्वास ही उठ गया। अन्य मंत्रों की आराधना करते दौड़ रहे हैं, इस महामंत्र को भूल रहे हैं।

जो साधक इस मंत्र के द्वारा उत्पन्न होने वाली शक्ति को नहीं भी समझता है वह निश्चल भावों से इसके जाप से सांसारिक एवं अलौकिक अभ्युदय को प्राप्त होता है। विषय कषायों पर विजय प्राप्त करने के लिए जाप अमोघ अस्त्र है। यद्यपि जिसने साधना की प्रारम्भिक सीढ़ी पर पैर रखा है मंत्र जाप करते समय उसके मन में दूसरे विकल्प आयेंगे पर उनकी परवाह नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार आरम्भ में अग्नि जलाने पर नियमतः धुंआँ निकलता है परन्तु अग्नि जब कुछ देर तक जलती रहती है तो धुँआँ का निकलना बन्द हो जाता है। इसी प्रकार प्रारम्भिक साधना के समक्ष नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प आते हैं पर साधना पथ के कुछ आगे बढ़ जाने पर संकल्प-विकल्प अपने आप रुक जाते हैं। अतः दृढ़ श्रद्धापूर्वक इस मंत्र का जाप करना चाहिए। मुझे इसमें रत्तीभर भी शक नहीं है कि यह मंगल मंत्र हमारी जीवन डोर होगा और संकटों से हमारी रक्षा करेगा। इस मंत्र का चमत्कार है हमारे विचारों के परिमार्जन में। यह अनुभव प्रत्येक साधक को थोड़े दिन में होने लगता है कि पंच महाव्रत, मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भावना के साथ दान, शील, तप एवं ध्यान की प्राप्ति इस मंत्र की दृढ़ श्रद्धा द्वारा ही सम्भव है। वासनाओं का जाल क्रोधादि कषायों की कठोरता आदि को इसी मंत्र की साधना से नष्ट किया जा सकता है।

नमस्कार मंत्र के माहात्म्य में लिखा है—

जिण सासणस्स सारो चउद्दस पुव्वाण सो समुद्धारो।
जस्स मणे णवकारो संसारे तस्स किं कुणइ॥

यह णमोकार मंगल मंत्र जिनशासन का सार एवं चतुर्दश पूर्वों का समुद्धार है जिसके मन में यह णमोकार मंत्र है, संसार उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता।

जो मानव अपने परिणामों को जितना अधिक लगायेगा उसे उतना ही अधिक फल प्राप्त होगा। यह सत्य है कि इस मंत्र की साधना से शनैः-शनैः आत्मा नीरोग, निर्विकार होता है और आत्मबल बढ़ जाता है।

यह णमोकार मंत्र जिनागम का सार है। समस्त द्वादशांग का रूप है अर्थात् इस महामंत्र में श्रुतज्ञान निहित है। स्वर और व्यजनों के समुदाय से द्वादशांग उत्पन्न होता है। इस णमोकार मंत्र में सर्व स्वर और व्यंजन गर्भित हैं।

अ, आ, इ, उ, ए पांच स्वर हैं। प्राकृत में ऋ वर्ण के स्थान र का उच्चारण होता है जैसे ऋषि (रिसि)। दीर्घ ऊ दीर्घ ई ऐ ओ औ यह संयोगी अक्षर हैं अर्थात् इ, उ आदि के संयोग से बनते हैं। च वर्ग का ज झ। ट वर्ग का ण–त वर्ग का न, द, ध, प वर्ग का म, य, र, ल, व, ह, स प्राकृत में एक ही होता है। स सिर्फ कवर्ग नहीं है परन्तु व्याकरण मे ह अक्षर का घ हो जाता है। जैसे अंह्रि, अंघ्रि इसलिये हकार से क वर्ग का ग्रहण होता है और सर्व स्वर एवं व्यजन से गर्भित होने

से णमोकार मंत्र द्वादशांग का सार है। क्योंकि व्यंजन एवं स्वरों से द्वादशांग की उत्पत्ति होती है। इस मंत्र में ३५ अक्षर, ३४ स्वर एवं ३० व्यंजन है। इनका योग होता है ६४।६४ स्थान पर दो के अंक को लिखकर परस्पर गुणा करने से एकट्ठी प्रमाण संख्या उत्पन्न होती है। उसमें से एक घटाने से जिन वाणी के अंकों की संख्या निकल जाती है।

णमोकार मंत्र में पाँच पद ३५ अक्षर ३४ स्वर ३० व्यंजन ५८ मात्रा है। इसका परस्पर योग करने पर गुणस्थान, जीवसमास मार्गणा, छह द्रव्य कर्म प्रकृति आदि सर्व इसी में निहित हो जाते हैं। जैसे पाँच पद में पाँच परमेष्ठी, पंच महाव्रत, पंच अणुव्रत, पंच ज्ञान, पंच समिति, पाँच भाव, पाँच गति चरित्र पाँच पाप गर्भित है।

३५ अक्षरों का इनका परस्पर गुणा करने पर ३ × ५ = १५ होते हैं। इनसे १५ प्रमाद, १५ योग होते है। यदि इनका परस्पर संकलन किया जाय तो ३ + ५ = ८ आठ कर्म, सिद्धों के आठ गुण, सम्यग्दर्शन के आठ अंग, आठ मद निकलते हैं।

इस णमोकार मंत्र को अक्षर संख्या को ईकाई संख्या मे दहाई रूप संख्या को घटाने से मूल द्रव्य संख्या नय संख्या भाव संख्या आदि आती है। जैसे ३५ अक्षर में ईकाई पाँच दहाई ३ है पाँच में से तीन घटाने पर दो शेष रहते हैं। वे दो नय व्यवहार निश्चय द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक शुद्ध अशुद्ध अर्थ नय व्यंजन नय जीव अजीव वा मूर्तिक अमूर्तिक, चेतन अचेतन दो द्रव्य, सामान्य विशेष अंतरंग बहिरंग—राग-द्वेष द्रव्य हिंसा भाव हिंसा ४ शुद्ध अशुद्ध उपयोग प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण अणुव्रत महाव्रत संसार मोक्ष द्रव्य कर्म भाव कर्म घातिया अघाति आदि जितने ही दो की संख्या के द्रव्य निकलते हैं।

णमोकार मंत्र के स्वर संख्या के ईकाई दहाई रूप अंकों का गुणा कर देने पर श्रावक के व्रत आदि की संख्या निकलती है। जैसे स्वर संख्या ३४ है। इनका ३ × ४ = १२ होता है। इसका अर्थ है १२ नय १२ चक्रवर्ती १२ अविरति १२ अनुप्रेक्षा १२ श्रावकों के व्रत भिक्खु प्रतिमा आदि। इन्हीं स्वर संख्या को परस्पर जोड़ देने से सात तत्व सप्तभंगी नैगमादि सात भय आदि का ज्ञान होता है। जैसे ३ + ४ = ७ इनमें ३ – ४ = १ भाग देने से एक लब्ध आता है वह एक एकत्व राग द्वेष रहित शुद्धात्मा का द्योतक है। स्वर ३४, व्यंजन ३० इनको परस्पर जोड़ने से ६४ इनका परस्पर गुणा करने पर ६ × ४ = २४ – तीर्थंकर २४ कामदेव आदि की संख्या निकलती है। इनको ६ + ४ जोड़ने से १० उत्तम क्षमादि धर्म आज्ञाविचयादि १० धर्म १० प्रकार का मुंडन आदि की संख्या निकलती है। ३४ व्यंजन ३० स्वर घटाने पर ४ बचते हैं यह चार अनन्त चतुष्टय चार आराधना चार प्रकार का ध्यान ४ विकथा चार कषाय आदि का द्योतक है।

मात्राओं में स्वर एवं व्यंजनों की संख्या का योग कर देने पर कर्मोदय संख्या निकल जाती है। ५८ + ३० × ३० + १२२।

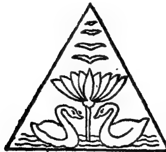
णमोकार मंत्र के स्वर व्यंजन और अक्षरों की संख्या का योग कर देने पर प्राप्त योग का संख्या पृथक्त्व के अनुसार अन्योन्य योग करने पर पदार्थ संख्या आती है। जैसे ३४ स्वर ३० व्यंजन और ३५ अक्षर हैं इनको ३४ + ३० + ३५ = ९९ हुआ। इस प्राप्त योग का फल का अन्योन्य योग किया तो १८ हुआ। पुनः अन्योन्य योग पर ९ हुआ। यह ९ पदार्थ नौ नारायण नौ प्रति-नारायण नव बलभद्र आदि की संख्या आती है।

णमोकार मन्त्र के समस्त स्वर और व्यंजन की संख्या को सामान्य पद से गुणा करके स्वर संख्या का भाग देव तो शेष बचेगा वह गुणस्थान मार्गणा स्थान संख्या आती है। स्वर व्यंजन की संख्या ६४ x ५ = ३२० – ०९ ल ३१६ शेष १४ यह गुणस्थान मार्गणा १४ चक्रवर्ती का रत्न १४ अंतरंग परिग्रह १४ जीवसमास आदि संख्या प्राप्त होती है। ५८ मात्रा का योग करने से १३ प्रकार का चारित्र निकलता है।

स्वर व्यंजन मात्रा एवं अक्षर इनका संकलन ३४ + ३० + ५८ + ३५ – १५७ इसमें ९ घटाने पर कर्मों की संख्या १४८ निकलती है। इस प्रकार और भी भेद-प्रभेद निकाले जाते हैं। इसलिये इस णमोकार मंत्र में सर्व श्रुत निहित हैं। जो इस णमोकार मंत्र का जाप करता है वह द्वादशांग का पाठ करता है। इस णमोकार मंत्र का १०८ बार जप करने से एक उपवास का फल प्राप्त होता है अर्थात् एक उपवास करने से जितने कर्मों की निर्जरा होती है उतनी निर्जरा १०८ बार णमोकार मंत्र का जाप करने से हो जाती है। इस मंत्र की महिमा अगम्य है। इस मंत्र का बार-बार उच्चारण किसी सोते हुए को जगाने के समान हैं। भावपूर्वक णमोकार मंत्र के जप, ध्यान और मनन से अधःपतन की अवस्था दूर हो जाती है। राग-द्वेष की दीवाल जर्जरित होकर टूटने लगती है। मोह की प्रधान शक्ति मिथ्यात्व शिथिल हो जाता है। मानसिक विकार रूपी भूत भाग जाते हैं।

इच्छित फल देने के लिए यह मंत्र कल्पवृक्ष है। चिंतित फल देने के लिये चिंतामणि है। सर्प आदि के विष को दूर करने के लिए विषापहार मणि है। मोक्षपुर में ले जाने के लिये रथ है। सर्व जगत् को वश में करने के लिये वशीकरण मंत्र है। यही कामधेनु है। इसलिये निर्मल भावों से इस महामंत्र का चिंतन मनन स्मरण एवं ध्यान करना चाहिये।

अरुहा सिद्धाइरिया उवज्झाया साहु परमेट्ठी।
एदे पंच णमोकारो भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥७॥





सोलहकारणभावनाओं का मूलस्रोत

डॉ० पन्नालाल साहित्याचार्य, सागर

'तरन्ति भव्या येन तत् तीर्थं'—भव्य जीव जिसके द्वारा संसार सागर से पार होते हैं उसे तीर्थ कहते हैं। ऐसे तीर्थ को करने वाले—प्रवर्तने वाले पुरुष तीर्थंकर या तीर्थंकर कहलाते हैं। यह महत्त्वपूर्ण पद अत्यन्त दुर्लभ है। सम्पूर्ण मनुष्य लोक—अढ़ाई द्वीप में विद्यमान ७९२२८१६२५१४२६४३३७-५९३५४३९५०३३६ पर्याप्तक मनुष्यों में [1]यदि एक साथ हों तो १७० से अधिक तीर्थंकर नहीं हो सकते। इसी से इस पद की दुर्लभता का अनुमान लगाया जा सकता है।

तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध केवली या श्रुतकेवली के सन्निधान में चतुर्थ से लेकर आठवें गुणस्थान के छठवें भाग तक विद्यमान सम्यग्दृष्टि को होता है। सम्यग्दर्शन मे औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक का नियम नही है। किसी भी कर्मभूमिज सम्यग्दृष्टि मनुष्य को इसका बन्ध हो सकता है। सम्यग्दर्शन के रहते हुए अपायविचय धर्म्यध्यान में लीन मनुष्य के लोककल्याण करने का जो प्रशस्त राग होता है उसी से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है। यदि यह प्रशस्तराग क्षायिक सम्यग्दृष्टि को नहीं है तो उसे बन्ध नहीं होगा और किसी क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को है तो उसे बन्ध हो जायगा। जबकि क्षायिक सम्यग्दर्शन पूर्णतः निर्दोष रहता है और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन में सम्यक्त्व प्रकृति उदय रहने से चल, मल तथा अगाढ़ दोष लगते हैं।

तीर्थंकर गोत्र के बन्ध की चर्चा करते हुए, दो हजार वर्ष पूर्व रचित षट्खण्डागम के बन्धस्वामित्वविचय नामक अधिकार खण्ड ३, पुस्तक ८ में श्री भगवन्त पुष्पदन्त भूतबलि आचार्य ने—



---

१. पांच मेरु सम्बन्धी १६० विदेह, ५ भरत और ५ ऐरावत क्षेत्र को मिलाकर १७० तीर्थंकर एक साथ हो सकते हैं।

कदिहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामगोदं कम्मं बंधंति ॥३९॥

इस सूत्र में तीर्थंकर नाम-कर्म के बन्धप्रत्ययदर्शक सूत्र की उपयोगिता बतलाते हुए लिखा है कि 'यह तीर्थंकर-गोत्र, मिथ्यात्व प्रत्यय नहीं है' अर्थात् मिथ्यात्व के निमित्त से बँधने वाली सोलह प्रकृतियों में इसका अन्तर्भाव नही होता क्योंकि मिथ्यात्व के होने पर उसका बन्ध नहीं पाया जाता। असंयमप्रत्यय भी नहीं है क्योंकि संयतों के भी उसका बन्ध देखा जाता है। कषाय-सामान्य-प्रत्यय भी नहीं है क्योंकि कषाय होने पर भी उसका बन्धव्युच्छेद देखा जाता है अथवा कषाय के रहते हुए भी उसके बन्ध का प्रारम्भ नहीं पाया जाता। कषाय की मन्दता भी कारण नहीं है क्योंकि कषाय की तीव्रतावाले नारकियों के भी इसका बन्ध देखा जाता है। तीव्रकषाय भी बन्ध का कारण नहीं है क्योंकि सर्वार्थसिद्धि के देव और अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती मनुष्यों के भी बन्ध देखा जाता है। सम्यक्त्व भी बन्ध का कारण नहीं है क्योंकि सभी सम्यग्दृष्टि जीवों के तीर्थंकर कर्म का बन्ध नहीं पाया जाता और मात्र दर्शन की विशुद्धता भी कारण नहीं है क्योंकि दर्शनमोह का क्षय कर चुकने वाले सभी जीवों के उसका बन्ध नहीं पाया जाता, इसलिए तीर्थंकर-गोत्र के बन्ध का कारण कहना ही चाहिए।

इस प्रकार उपयोगिता प्रदर्शित कर—

'तत्थ इमेहिं सोलसेहिं कारणेहिं जीवा तित्थयरणामगोदं कम्मं बंधंति' ॥४०॥

इस सूत्र में कहा है कि आगे कहे जाने वाले सोलहकारणों के द्वारा जीव तीर्थङ्कर नाम-गोत्र को बाँधते हैं। इस तीर्थङ्कर नामगोत्र का प्रारम्भ मात्र मनुष्यगति में होता है क्योंकि केवल-ज्ञान से उपलक्षित जीवद्रव्य का सन्निधान मनुष्यगति मे ही सम्भव होता है अन्य गतियों में नहीं।

इसी सूत्र की टीका मे वीरसेन स्वामी ने कहा है कि पर्यायार्थिक नय का आलम्बन करने पर तीर्थङ्कर-कर्मबन्ध के कारण सोलह है और द्रव्यार्थिकनय का आलम्बन करने पर एक ही कारण होता है अथवा दो भी कारण होते हैं, इसलिए ऐसा नियम नहीं समझना चाहिए कि सोलह ही कारण होते है।

अग्रिम सूत्र में इन सोलह कारणों का नामोल्लेख किया गया है—

'दंसणविसुज्झदाए विणयसंपण्णदाए सीलवदेसु णिरतिचारदाए आवासएसु अपरिहीणदाए खणलवपडिबुज्झणदाए लद्धिसंवेगसंपण्णदाए जधाथामे तथा तवे साहूणं पासुजपरिचागदाए साहूणं समाहिसंधारणाए साहूणं वज्जावच्चजोगजुत्तदाए अरहंतभत्तीए बहुसुदभत्तीए पवयणवच्छलदाए पवयणप्पमावणदाए अभिक्खणं अभिक्खणं णाणोवजोगजुत्तदाए इच्चेदेहि सोलसेहि कारणेहि जीवा तित्थरणामगोदं कम्मं बंधंति' ॥४१॥

१. दर्शनविशुद्धता, २. विनयसंपन्नता, ३. शीलव्रतेष्वनतीचार, ४. आवश्यकापरिहीणता, ५. क्षणलवप्रतिबोधनता, ६. लब्धिसंवेगसंपन्नता, ७. यथास्थाम—यथाशक्ति तप, ८. साधूनां प्रासुक-परित्यागता, ९. साधूनां समाधिसंधारणा, १०. साधूनां वैयावृत्त्ययोगयुक्तता, ११. अरहन्तभक्ति, १२. बहुश्रुतभक्ति, १३. प्रवचनभक्ति, १४. प्रवचनवत्सलता, १५. प्रवचनप्रभावना और १६. अभिक्षण अभिक्षण—प्रत्येक समय ज्ञानोपयोगमुक्तता, इन सोलह कारणों से तीर्थङ्कर नामगोत्र कर्म का बन्ध करते हैं।

दर्शनविशुद्धता आदि का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है।

१. **दर्शनविशुद्धता**—तीन मूढ़ता तथा शंका आदिक आठ मलों से रहित सम्यग्दर्शन का होना दर्शनविशुद्धता है। यहाँ वीरसेनस्वामी ने निम्नांकित शंका उठाते हुए उसका समाधान किया है।

शंका—केवल उस एक दर्शनविशुद्धता से ही तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध कैसे हो सकता है क्योंकि ऐसा मानने से सब सम्यग्दृष्टि जीवों के तीर्थङ्कर नामकर्म के बन्ध का प्रसङ्ग आता है।

समाधान—शुद्धनय के अभिप्राय से तीन मूढ़ताओं और आठ मलों से रहित होने पर ही दर्शनविशुद्धता नहीं होती किन्तु पूर्वोक्त गुणों से स्वरूप को प्राप्तकर स्थित सम्यग्दर्शन का, साधुओं के प्रासुक परित्याग में, साधुओं की संधारणा में, साधुओं के वैयावृत्यसंयोग मे, अरहन्तभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचनवत्सलता, प्रवचनप्रभावना और अभिक्षण-अभिक्षण ज्ञानोपयोग से युक्तता में प्रवर्तने का नाम दर्शनविशुद्धता है। उस एक ही दर्शनविशुद्धता से जीव तीर्थङ्कर कर्म को बाँधते हैं।

२. **विनयसम्पन्नता**—ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विनय से युक्त होना विनयसम्पन्नता है।

३. **शीलव्रतेष्वनतीचार**—अहिंसादिक व्रत और उनके रक्षक साधनों में अतिचार—दोष नहीं लगाना शीलव्रतेष्वनतीचार है।

४. **आवश्यकापरिहीणता**—समता, स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और व्युत्सर्ग इन छह आवश्यक कामों में हीनता नहीं करना अर्थात् इनके करने में प्रमाद नहीं करना आवश्यकापरिहीणता है।

५. **क्षणलवप्रतिबोधनता**—क्षण और लव कालविशेष के नाम हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, व्रत और शील आदि गुणों को उज्ज्वल करना, दोषों का प्रक्षालन करना अथवा उक्त गुणों को प्रदीप्त करना प्रतिबोधनता है। प्रत्येक क्षण अथवा प्रत्येक लव में प्रतिबुद्ध रहना क्षणलवप्रतिबोधनता है।

६. **लब्धिसंवेगसंपन्नता**—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में जीव का जो समागम होता है उसे लब्धि कहते हैं। उस लब्धि में हर्ष का होना संवेग है। इस प्रकार के लब्धिसंवेग से—सम्यग्दर्शनादि की प्राप्तिविषयक हर्ष से संयुक्त होना लब्धिसंवेगसंपन्नता है।

७. **यथास्थामतप**—अपने बल और वीर्य के अनुसार बाह्य तथा अन्तरङ्ग तप करना यथास्थाम तप है।

८. **साधूनां प्रासुकपरित्यागता**—साधुओं का निर्दोष ज्ञान, दर्शन, चारित्र तथा निर्दोष वस्तुओं का जो त्याग—दान है उसे साधुप्रासुकपरित्यागता कहते हैं।

९. **साधूनां समाधिसंधारणा**—साधुओं का सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र में अच्छी तरह अवस्थित होना साधुसमाधिसंधारणा है।

१०. **साधूनां वैयावृत्ययोगयुक्तता**—व्यावृत—रोगादिक से व्याकुल साधु के विषय में जो किया जाता है उसे वैयावृत्य कहते हैं अथवा जिन सम्यक्त्व तथा ज्ञान आदि गुणों से जीव वैयावृत्य में लगता है उन्हें वैयावृत्य कहते हैं। उनसे संयुक्त होना सो साधुवैयावृत्ययोगयुक्तता है।

११. **अरहन्तभक्ति**—चार घातिया कर्मों को नष्ट करने वाले अरहन्त अथवा आठों कर्मों को नष्ट करने वाले सिद्ध परमेष्ठी अरहन्त शब्द से ग्राह्य हैं। उनके गुणों में अनुराग होना अरहन्तभक्ति है।

१२. **बहुश्रुतभक्ति**—द्वादशांग के पारगामी बहुश्रुत कहलाते हैं उनकी भक्ति करना सो बहुश्रुतभक्ति है।

१३. **प्रवचनभक्ति**—सिद्धान्त अथवा बारह अङ्गों को प्रवचन कहते हैं, उसकी भक्ति करना प्रवचनभक्ति है।

१४. **प्रवचनवत्सलता**—देशव्रती, महाव्रती अथवा असंयत सम्यग्दृष्टि प्रवचन कहलाते हैं, उनके साथ अनुराग अथवा ममेदंभाव रखना प्रवचनवत्सलता है।

१५. **प्रवचनप्रभावना**—आगम के अर्थ को प्रवचन कहते हैं उसकी कीर्ति का विस्तार अथवा वृद्धि करने को प्रवचनप्रभावना कहते हैं।

१६. **अभिक्षण-अभिक्षण ज्ञानोपयोगयुक्तता**—क्षण-क्षण अर्थात् प्रत्येक समय ज्ञानोपयोग से युक्त होना अभिक्षण-अभिक्षणज्ञानोपयोगयुक्तता है।

ये सभी भावनाएँ एक दूसरे से सम्बद्ध हैं इसलिए जहाँ ऐसा कथन आता है कि अमुक एक भावना से तीर्थंकर कर्म का बन्ध होता है वहाँ शेष भावनाएँ उसी एक में गर्भित हैं ऐसा समझना चाहिए।

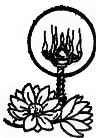
इन्हीं सोलह भावनाओं का उल्लेख आगे चलकर उमास्वामी महाराज ने तत्त्वार्थसूत्र के षष्ठ अध्याय मे इस प्रकार किया है—

'दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नताशीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिवैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य'।

दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधुसमाधि, वैयावृत्यकरण, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना और प्रवचनवत्सलत्व—इन सोलह कारणों से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है।

इन भावनाओं में षट्खण्डागम के सूत्र मे वर्णित क्रम को परिवर्तित किया गया है। क्षणलव प्रतिबोधनता को छोड़कर आचार्यभक्ति रखी गई है तथा प्रवचनभक्ति के नाम को परिवर्तित कर मार्गप्रभावना नाम रखा गया है। अभिक्षण-अभिक्षणज्ञानोपयोगयुक्तता के स्थान पर संक्षिप्त नाम अभीक्ष्णज्ञानोपयोग रखा है। क्षणलवप्रतिबोधनता भावना को अभीक्ष्णज्ञानोपयोग में गतार्थ मान कर छोड़ा गया है, ऐसा जान पड़ता है और ज्ञान के समान आचार को भी प्रधानता देने को भावना से बहुश्रुतभक्ति के साथ आचार्यभक्ति को जोड़ा गया है। शेष भावनाओं के नाम और अर्थ मिलते-जुलते है। इन सोलहभावनाओं का चिन्तन करने से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है। श्रद्धालु जन भाद्रपद, माघ और चैत में षोडशकारणव्रत को करते हैं।

○ ○



अनुयोगों में द्वादशांग वाणी

श्री सागरमल जैन, विदिशा

ओंकार धुनिसार, द्वादशांग वाणी विमल।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै॥

कविवर द्यानतराय जी के साथ ही द्वादशांग वाणी को जो सदा विमल रूप है हृदय में धारण करके भक्ति पूर्वक वन्दना करता हूँ क्योंकि अनंत ज्ञान को प्रगट करने एवं अज्ञान रूपी जड़ता को हरने वाली यह ओंकार ध्वनि सारभूत है।

यह ध्वनि देवाधिदेव परमदेव तीर्थङ्कर परमात्मा की है। जिनसेनाचार्य महाराज हरिवंशपुराण में लिखते हैं—

जिनभाषाऽधरस्पंदमंतरेण विजृंभिता।
तिर्यग्देवमनुष्याणां दृष्टिमोहमनीनशत्॥

यह जिनेन्द्र की दिव्यध्वनि ओंठ कम्पन के बिना उत्पन्न हुई है, तिर्यंच, देव और मनुष्यों की दृष्टि सम्बन्धी मोह को दूर करती है। पूज्यपाद स्वामी कहते है—यह वाणी कान और हृदय को उत्तम और परम सुख देने वाली है। प्रतिदिन की पूजा की पंक्तियाँ स्मरण होती है :—

जिनकी ध्वनि है ओंकार रूप निरअक्षरमय महिमा अनूप,
दश अष्ट महा भाषा समेत लघु भाषा सात शतक सुचेत।
सो स्याद्वाद मय सप्तभंग गणधर गूंथे बारह सु अंग,
रविशशि न हरै सो तम हराय सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय॥

यह ओंकार वाणी १८ महा भाषा एवं ७०० लघु भाषाओं मे अपने आप परिणत हो जाती है। आचार्य यतिवृषभ तिलोयपण्णत्ति में कहते हैं—भव्य जीवों को एक ही समय में अपनी-अपनी भाषा में सुनाई देती है। कैसी महिमा है वाणी की। श्रोताओं के कान तक पहुँचने तक तो अनक्षरात्मक रहती है पश्चात् अक्षर रूपता को धारण कर लेती है। इस स्याद्वाद वाणी से ही आज हम



मोक्षमार्ग की, पुण्य पाप की या धर्म की चर्चा कर लेते हैं। स्वामि समन्तभद्राचार्य तो इस जिनवर की वाणी को सर्व भाषा स्वभाव वाली कहते हैं। वे इसे अमृत की तुलना में रखकर कहते हैं—

तव वागमृतं श्रीमत्सर्वभाषास्वभावकम्।
प्रीणयत्यमृतं यद्वत्प्राणिनो व्यापि संसदि॥

हे प्रभो आपकी वाणी श्री सहित सर्व भाषा स्वभाव वाली है। आपकी अमृत वाणी अमृत की तरह सब प्राणियों को आनन्द देने वाली है।

इस वाणी को गणधर देव झेलते हैं। वे चार ज्ञान के धारी द्वादशांग की रचना करते हैं। वे गणधर देव भी बीज बुद्धि ऋद्धिधारी होने के कारण झेल पाते हैं। धवला टीका में कहा गया है "बारहंगाणं चौद्दस पुव्वाणं च गंथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण कमेंण रयणा कदा।"

आचार्य कहते हैं यह दिव्य ध्वनि जिसमें छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्त्वों का युक्ति-युक्ति पूर्वक अनेक हेतुओं के द्वारा भव्य जीवों को निरूपण करती है, जयवंत हो। द्यानतराय जी तो कहते हैं—

जा वाणी के ज्ञान में सूझे लोक अलोक।
द्यानत जग जयवन्त हो सदा देत हों धोक॥

तीर्थङ्कर देव की इस वाणी को गणधर देव ने द्वादशांग के रूप में गूथी, आचार्यों ने अनुयोग रूप में विभाजित की। उनके नाम जान लेना भी आवश्यक है।

१. आचारांग—मुनिवरों के आचरण का वर्णन है। इसमें १८ हजार पद हैं।
२. सूत्रकृतांग—जिनेन्द्र देव के श्रुत के आचरण करने की विनय क्रिया का वर्णन है। सूत्र रूप से ज्ञान और धार्मिक रीतियों का वर्णन है। स्व समय और पर समय का विशेष वर्णन है। इसमें ३६ हजार पद हैं।
३. स्थानांग—षट् द्रव्यों का एकादि अनेक स्थान का वर्णन है विशेषकर इसमें एक से दस तक गिनती का विस्तार से बर्णन है जैसे :—एक केवलज्ञान एक मोक्ष, एक आकाश, एक धर्म, एक अधर्म। दो मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शन राग-द्वेष। तीन रत्नत्रय, तीन सत्य, तीन दोष, तीन प्रकार का कर्म—भाव कर्म, द्रव्य कर्म, नोकर्म, तीन वेद। चार गतिचतुष्टय, चार कषाय। पाँच महा-व्रत, पंचास्ति काय, पांच प्रकार का ज्ञान। छह द्रव्य, छह लेश्या। सात तत्व नरक-व्यसन। आठ कर्म-मद-आठ गुण अष्टांग निमित्त। नौ पदार्थ, नवधा भक्ति। दस धर्म दस दिशा इत्यादि की चर्चा है। इसमे ४२००० पद हैं।
४. समवायांग—इसमें द्रव्यादि की अपेक्षा एक दूसरे मे सहयोग का कथन है यानि जीवादिक पदार्थों का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के आश्रित समानता का वर्णन है। इसमें १ लाख ६४ हजार पद है।
५. व्याख्याप्रज्ञप्ति—जीव का अस्ति नास्ति रूप से ६० हजार प्रश्नों के उत्तर हैं। इसमें २ लाख २८ हजार पद हैं।
६. ज्ञातृधर्म कथाग—जीवादि द्रव्यों के स्वभाव का विशेष वर्णन है। तीर्थंकर देवों का माहात्म्य, दिव्य ध्वनि दश धर्म रत्नत्रय आदि इसमे ५ लाख ५६ हजार पद है।
७. उपासकाध्ययनांग—गृहस्थों का चरित्र, श्रावक के व्रत शील आचार क्रियाओं का सम्पूर्ण वर्णन ११ लाख ७० हजार पद में है।

८. अन्तःकृत दशांग—प्रत्येक तीर्थंकर के काल में दस-दस महामुनि घोर उपसर्ग सहन करके केवली परमात्मा हुए उनके चरित्र का वर्णन २३ लाख २८ हजार पद में है।
९. अनुत्तरोपादक दशाग—प्रत्येक तीर्थंकर के काल में दस-दस महामुनिवर घोरातिघोर उपसर्ग सहकर अनुत्तर विमानों में जन्मे उनकी कथाएँ १ लाख ४४ हजार पदों में वर्णित हैं।
१०. प्रश्नव्याकरणांग—इसमे नष्ट-मुष्टि, लाभ-अलाभ, सुख-दुख, जीवन-मरण आदि के प्रश्नों का वर्णन है। विक्षेपिणी, संवेगिनी, निरवेदिनी आदि कथाओं का वर्णन है। इसमें १ लाख १६ हजार पदों में वर्णन है।
११. विपाक सूत्रांग—इसमें कर्मों के उदय उदीरणा और सत्ता का वर्णन है। १ करोड़ ८४ लाख पदों में कर्म सिद्धांत का वर्णन किया गया है।
१२. दृष्टिवादांग—इस अंग के वर्णन में १०८ करोड़ ६८ लाख ५६ हजार पाँच पद हैं।

दृष्टिवाद अंग के पाँच भेद हैं :—

परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्व और चूलिका।

परिकर्म के भी ५ भेद हैं—

१. चन्द्र प्रज्ञप्ति—६ लाख ५ हजार पद।
२. सूर्य प्रज्ञप्ति—५ लाख ३ हजार पद।
३. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति—३ लाख २५ हजार पद।
४. द्वीपसागर प्रज्ञप्ति—५२ लाख ३६ हजार पद।
५. व्याख्या प्रज्ञप्ति—८४ लाख ५६ हजार पद।

दृष्टिवाद अंग का दूसरा भेद सूत्र है इसमें ८८ लाख पद हैं। तीसरे प्रथमानुयोग में पाँच हजार पद हैं। चौथा भेद पूर्व है। यह १४ भेदो मे विभाजित है इसमें ९५ करोड़ ५० लाख पाँच पद हैं।

१. उत्पादपूर्व २. अग्रायणी ३. वीर्यवाद ४. अस्ति-नास्ति प्रवाद ५. ज्ञान प्रवाद ६. कर्म प्रवाद ७. सत्य प्रवाद ८. आत्म प्रवाद ९. प्रत्याख्यान १०. विद्यानुवाद ११. कल्याणपूर्व १२. प्राण प्रवाद १३. क्रिया विशाल १४. त्रैलोक्य बिदुसार।

दृष्टिवादाग के पाँच भेदों में अन्तिम चूलिका है इसमे १० करोड ४९ लाख ४६ हजार पद हैं जिनके नाम १. जलगता चूलिका २. स्थलगता चूलिका ३. मायागता चूलिका ४. रूपगता चूलिका ५. आकाशगता चूलिका।

उमास्वामि महाराज के तत्त्वार्थसूत्र के प्रथम अध्याय में २०वें सूत्र 'श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेक-द्वादशभेदम्'—श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है उस श्रुतज्ञान के दो भेद हैं एक अंगबाह्य दूसरा अंगप्रविष्ट। अंगप्रविष्ट के बारह भेद हैं जिनका वर्णन ऊपर किया गया है। अंग बाह्य के अनेक भेद हैं इन्हे भी चौदह प्रकीर्णक भेद में कहा गया है। समस्त द्वादशांग वाणी में १८४ शंख ४६ पद्म ७४ नील ४० खरब ७३ अरब ७० करोड़ ९५ लाख ५१ हजार ६१५ अपुनरुक्त अक्षर हैं। इस वाणी की रचना करके गणधर देव ने कितना उपकार किया है। भगवान् महावीर स्वामी के बाद ६८३ वर्ष तक इस श्रुत की धारा यह ज्ञानगंगा बहती रही। इस वाणी का विभाजन चार अनुयोगों के किया गया। यह अनुयोग जिनमें यह द्वादशांग वाणी है तीर्थंकर परमात्मा के द्वारा ही कही गई है।

संस्कृत भावसंग्रह में कहा गया है—

चतुर्णामनुयोगानां जिनोक्तानां यथार्थतः ।
अध्यापनमधीतिर्वा स्वाध्यायः कथ्यते हि सः ॥५९९॥

भगवान् देवाधिदेव तीर्थंकर परमात्मा के द्वारा कहे गये चार अनुयोगों प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और व्यानुयोग के शास्त्रों को यथार्थरूप से पढ़ना और पढ़ाने का नाम स्वाध्याय है ।

अनुयोगों की कथन पद्धति में कहीं विरोधाभास नही आता क्योंकि ये वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के द्वारा कहे गये हैं । स्वामि समन्तभद्राचार्य कृत रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा है—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम् ।
तत्त्वोपदेशकृत् सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥९॥

जो सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान् का कहा हुआ हो, इसी कारण जो वादि-प्रतिवादियों द्वारा खण्डन न किया जा सके तथा जिसमें कहे हुए सिद्धातों मे प्रत्यक्ष तथा अनुमान से विरोध न आवे तथा जीवादि सात तत्त्वों का जिसमे निरूपण हो, सर्व कल्याण का करने वाला हो तथा मिथ्या मार्ग का खण्डन करने वाला हो वही सच्चा शास्त्र है ।

आश्चर्य तो इस बात का है कि आज का मुमुक्षु इन अनुयोगों में भी उत्तम मध्यम जघन्य का भेद कर रहे हैं, कोई तीव्र कषाय के वशीभूत द्रव्यानुयोग को महत्त्व देकर अन्य अनुयोगों को गौण करते हैं उनकी बुद्धि पर तरस तो आता ही है साथ में दया भी आती है । प्रथमानुयोग को कथानक कहकर जितनी उपेक्षा का भाव हो सकता है किया जा रहा है जब कि चारों ही अनुयोग उपादेय हैं । उत्तरपुराण मे गुणभद्राचार्य चारों अनुयोगों को सच्चा शास्त्र कहते हैं—

पूर्वापरविरोधादिदूरं हिंसादिनाशनं ।
प्रमाणद्वयसंवादि शास्त्रं सर्वज्ञभाषितम् ॥६८॥

जो पूर्वापर विरोध रहित हो, निर्दोष हो, हिंसादि पापों को नाश करने वाला हो, प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण से विरोध रहित हो एवं सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा द्वारा कहा गया हो, वही सच्चा शास्त्र है उसके चार भेद हैं—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग ।

इन अनुयोगों के लक्षण भेद को आचार्य समन्तभद्राचार्य ने रत्नकरण्डश्रावकाचार में चार श्लोकों में अनुयोगों की व्याख्या की है । सम्यग्ज्ञान रूप धर्म के वर्णन मे कहा है—

प्रथमानुयोगमाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम् ।
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनम् ॥४३॥

पं० प्रवर सदासुखदास जी की भाषा में चारों शास्त्रों का अर्थ देखिये—'सम्यग्ज्ञान है, सो प्रथमानुयोग में जाने हैं । कैसाक है प्रथमानुयोग जे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप चार पुरुषार्थ तिनका है कथन जामें, बहुरि चरित कहिये एक पुरुष के आश्रय है कथा जामें बहुरि त्रिषष्टिशलाका पुरुषनि का कथनी का सम्बन्ध का प्ररूपक यातें पुराण हैं । बहुरि बोधि समाधि को निधान है । सो सम्यग्दर्शनादि नाही प्राप्त भये, तिनकी प्राप्ति होना सो बोधि है अर प्राप्त भये जे सम्यग्दर्शनादिकनि की जो परिपूर्णता सो समाधि है सो यो प्रथमानुयोग रत्नत्रय की प्राप्ति को अर परिपूर्णता को निधान है, उत्पत्ति को स्थान है अर पुण्य होने का कारण तातें पुण्य है । ऐसा प्रथमानुयोग कूं सम्यग्ज्ञान ही जाने है ।

ऐसे रत्नत्रय की प्राप्ति का हेतु और पुण्य रूप इस अनुयोग को आज उपेक्षा के रूप में देखा जा रहा है। आचार्यकल्प की उपाधि से विभूषित पं०प्रवर टोडरमलजी के मोक्षमार्ग प्रकाशक के आठवें अधिकार में प्रथमानुयोग का प्रयोजन वर्णन करते हुए पुण्य को धर्म की संज्ञा दी है। 'प्रथमानुयोग विषें तो संसार की विचित्रता, पुण्य पाप का फल, महन्त पुरुषनि की प्रवृत्ति इत्यादि निरूपण करि जीवनिकों धर्म विषे लगाये हैं। जे जीव तुच्छ बुद्धि होंय ते भी तिसकरि धर्म सन्मुख होय है।"

आज के भौतिक युग में जहाँ हमारा जीवन अर्थ के हेतु पाप के अर्जन में ही लगा हुआ है वहाँ यह प्रथमानुयोग का स्वाध्याय परम उपयोगी है। इस अनुयोग का उद्देश्य ही पाप से छुड़ाकर धर्म में लगाने का है। यही आशय आचार्यों का रहा है।

करणानुयोग को दर्पण के समान कहा गया है—

लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च।
आदर्शमिव तथा मतिरवैति करणानुयोगं च ॥४४॥

"तैसे ही मति कहिये सम्यग्ज्ञान जो है, सो करणानुयोग जो है, ताहि जाने हैं। कैसाक है करणानुयोग ? लोक अर अलोक के विभाग को अर उत्सर्पिणी के छह काल अर अवसर्पिणी के षट काल के परिवर्तन कहिये पलटने का अर चार गतिनि के परिभ्रमण का आदर्शमिव कहिये दर्पण वत दिखाने वाला है।" गणित की मुख्यता लिए हुए होने से यह महान् उपकारी अनुयोग हमारे क्षयोपशम के बाहर है किन्तु कर्मसिद्धान्त को अमर किये हुए है। जब हम गोमट्टसार का अध्ययन करते हैं तब कर्म की विचित्रता को देखकर कषायों मे मंदता तत्काल आ जाती है। मल्ल जी के शब्दों मे देखिये "करणानुयोग विषें जीवनि की व कर्मन की विशेषता वा त्रिलोकादिक की रचना निरूपन करि जीवनि की धर्म विषैं लगाए है। जे जीव धर्म विषै उपयोग लगाया चाहै ते जीवनि का गुणस्थान मार्गणा आदि विशेष अर कर्मनिका कारण अवस्था फल कौन-कौन के कैसे-कैसे पाइए, इत्यादि विशेष अर त्रिलोक विषैं नरक स्वर्गादिक के ठिकाने पहिचान पाप तै विमुख होय धर्म विषैं लागे हैं। बहुरि ऐसे विचार विषै उपयोग रमिजाय, तब पाप प्रवृत्ति छूटि स्वमेव तत्काल धर्म उपजै है। तिस अभ्यास करि तत्त्वज्ञान की प्राप्ति शीघ्र होय है।"

मल्ल जी ने पुण्य को धर्म की संज्ञा देकर वर्णन किया है। आश्चर्य है मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रंथ के पढ़ने वाले कैसे इन अनुयोगों की उपेक्षा करते हैं। किसी ग्रथ के किसी एक अध्याय को पढ़ना और एक को छोड़ना आश्चर्य है। किसी एक ग्रन्थ में भी उपादेय और हेय छाँटने वालों की बुद्धि पर तरस आता है और साथ में दया भी।

चरणानुयोग की पद्धति का वर्णन करते हुए आचार्य समन्तभद्राचार्य महाराज लिखते हैं—

गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्ति वृद्धिरक्षाङ्गम्।
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥४५॥

"गृह में आसक्त हैं बुद्धि जिनकी ऐसे गृहस्थी, अर गृहतै विरक्त होय गृह का त्यागी ऐसा अनगार कहिये यति, तिनके चारित्र जो सम्यक् आचरण ताकि उत्पत्ति अर वृद्धि, अर रक्षा इनका अंग कहिये कारण ऐसा चरणानुयोग सिद्धान्त ताहि सम्यग्ज्ञान ही जाने है।"

हमारी भूमिका में यदि सबसे अत्यधिक उपयोगी अनुयोग है तो वे दो हैं एक प्रथमानुयोग दूसरा चरणानुयोग। देखिये—मल्ल जी ने मोक्षमार्गप्रकाश ग्रन्थ के आठवें अध्याय में चरणानुयोग का

प्रयोजन निरूपण करते हुए लिखा है—"चरणानुयोग विर्षे नाना प्रकार धर्म के साधन निरूपण करि जीवनि कौं धर्म विर्षे लगाइए है, जे जीव हित अहित को जाने नाहीं, हिंसादिक पाप कार्यनिविर्षे तत्पर होय रहे हैं, तिनकौं जैसे वे पाप कार्य कौं छोड़ि धर्म कार्यनिविर्षे लागें तैमें उपदेश दिया, ताकों जानि धर्म आचरण करने कौं सन्मुख भये ते जीव गृहस्थ धर्म का विधान सुनि आप तैं जैसा धर्म सधै तैसा धर्म साधन विर्षे लागे हैं। ऐसे साधन तैं कषाय मंद होय है ताके फलतैं इतना तो होय है जो कुगति विर्षे दुख न पावें अर सुगति विर्षे सुख पावें। बहुरि ऐसे साधन तैं जिनमत का निमित्त बन्या रहें।

निश्चय धर्म विर्षे तो किछू ग्रहण त्याग का विकल्प नाही अर याकै नीचली अवस्था विर्षे बिकल्प छूटता नाहीं तातें इस जीव को धर्म विरोधी कार्यनिकों छुड़ावने का अर धर्म साधनादि कार्यनिके ग्रहण करावने का उपदेश या बिर्षे हैं।" व्यवहार धर्म का उपकार एवं चरणानुयोग की उपयोगिता का मार्मिक वर्णन देखिये "बहुरि जे जीव कर्म प्रबलता तैं निश्चय मोक्षमार्ग कों प्राप्त होय सकें नाही, तिनका इतना ही उपकार किया—जो उनको व्यवहार धर्म का उपदेश देय कुगति के दुखनि का कारण पाप कार्य छुड़ाय सुगति के इन्द्रिय सुखनि का कारण पुण्य कार्यनि विर्षे लगाया। जेता दुख मिट्या तितना ही उपकार भया। बहुरि पापी के तो पाप वासना ही रहे अर कुगति विर्षे जाय तथा धर्म का निमित्त नाहीं तातैं परम्पराय दुख ही कौं पाया करै।"

कुगति से छुड़ाने वाला अनुयोग उसकी अवहेलना करने से आज का धर्मी चूक नहीं रहा है। आचरण प्रधान मंद कषाय का प्रबल निमित्त ऐसा उपकारी अनुयोग। धन्य हैं वे जीव जो उनके अनुसार चलते हैं। अणुव्रत और महाव्रत इन्हें पालने वाले महान् जीव चरणानुयोग की व्याख्या के अनुसार ही चलते हैं। मोक्षमार्ग के प्रत्यक्ष पथिक मुनिवर ही है।

दो कषायों के अभाव हुए बिना जीव अणुव्रत नहीं ले सकता और तीन कषायों के बिना महाव्रती नहीं बन सकता। किन्तु इतना होते हुए भी यदि इन महान् ग्रन्थों का स्वाध्याय करे तो कुगति से तो बच ही सकता है। इसे जिनमत का फिर-फिर संयोग बनता रहेगा।

द्रव्यानुयोग के स्वरूप का श्लोक ४६ रत्नकरण्डश्रावकाचार का देखिये—

जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च।
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥४६॥

यहाँ द्रव्यानुयोग को दीपक कहा गया है। महान् अन्धकार में भटकने वालों को दीपक के समान है। "यो द्रव्यानुयोग नाम दीपक है, सो जीव अर अजीव ये दोय जे निर्बाध तत्त्व तिन में अर पुण्य पाप में अर बंध मोक्ष जे हैं तिन में भावश्रुत ज्ञान रूप प्रकाश हो तैसें विस्तारै हैं।"

मल्लजी के कथन को जरा गम्भीर दृष्टि से देखिये—"द्रव्यानुयोग विर्षे द्रव्यनिका वा तत्वनिका निरूपण करि जीवनिको धर्म बिर्षे लगाइए हैं। जे जीवादिक द्रव्यनिकों वा तत्वनिकों पहिचाने नाहीं, आपा परकों भिन्न जाने नाहीं, तिनको हेतु दृष्टांत युक्ति करि व प्रमाण नयादिक करि तिनका स्वरूप ऐसे दिखाया जैसे याकै प्रतीत होय जाय। ताके अभ्यास तैं अनादि अज्ञानता दूरि होय।"

इसका स्पष्ट अर्थ है कि जो जीवाजीवादिक द्रव्यों को व तत्त्वों को नहीं पहचानते, आप और पर को भिन्न नहीं जानते उन्हें हेतु दृष्टांत युक्ति द्वारा व प्रमाण नयादि द्वारा उनका स्वरूप इस प्रकार दिखाया है जिससे उनको प्रतीत हो जाये।

संयम के बिना मुक्ति नहीं और संयम का विधि-विधान सिर्फ चरणानुयोग में ही है देखिये "यदि बाह्य संयम से कुछ सिद्धि न हो तो सर्वार्थसिद्धिवासी देव सम्यग्दृष्टि बहुत ज्ञानी हैं उनके तो चौथा गुणस्थान होता है और गृहस्थ श्रावक मनुष्यों के पंचम गुणस्थान होता है सो क्या कारण है ? तथा तीर्थंकरादिक गृहस्थ पद छोड़कर किसलिये संयम ग्रहण करें ? इसलिए यह नियम है कि बाह्य संयम साधन बिना परिणाम निर्मल नहीं हो सकते। इसलिये बाह्य साधन का विधान जानने के लिये चरणानुयोग का अभ्यास अवश्य करना चाहिये।"

मुनिवर तो पञ्चम काल तक रहेंगे, श्रावक श्राविका होंगे और उन वीरांगज मुनिवर को देशावधि अवधिज्ञान भी प्रगट होगा, जिनवाणी रहेगी, जिनवर के प्रतीक जिनमन्दिर होंगे, ये प्रतिमा रहेंगी, यह सब कुछ रहेगा किन्तु हम कल रहेंगे या नहीं ? इसका हमें ज्ञान नही है। ऐसे पाप से जिन्हें भय नहीं लगता उनकी क्या चर्चा करूँ ? अपना भला बुरा तो अपने ही परिणामों से होता है। इसलिये यह जिनवर की वाणी, यह शास्त्र, यह द्वादशांग वाणी, यह चारों अनुयोग सदाकाल जयवन्त रहेंगे। हम सब विवादों से हटकर यदि अपने हित के लिए स्वाध्याय करते हैं तो हमारा कल्याण तो होगा ही जगत् का भी होगा। वर्णीजी से एक जिज्ञासु ने पूछा था—बाबाजी पहले क्या पढ़ूँ और क्रम से पढ़ें तो कैसे ? उन्होंने कहा—भैया पहले पद्मपुराण पढ़ना फिर रत्नकरण्डश्रावकाचार फिर आत्मानुशासन, छहढाला, मोक्षमार्ग प्रकाशक और अन्त मे समयसार पढ़ना, तुम्हारा कल्याण होगा। आज नवीन प्रकाशन के नाम पर शास्त्रों के अर्थों में संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन हो रहा है। कहीं विवाद के लिए तेरा पंथ-बीस पंथ की चर्चा, कहीं द्रव्यलिंगी भावलिंगी, कहीं पूजन अभिषेक का विरोध रूप पुस्तकें यह सब पंचम काल में होना ही था सो शुरू हो गया। जिन जीवों की खोटी गति का बंध पड़ गया है वे क्या करें। विचारे वे तो दया के पात्र हैं।

अच्छा तो यह हो कि स्वाध्याय के करने वाले इन सभी विवादों से दूर हटकर अपने सुख के लिये प्रथमानुयोग के ग्रंथों का स्वाध्याय पापों के भावों से और पाप की क्रियाओं से भयभीत होकर उन्हे छोड़ दें। फिर श्रावकाचार के अनुसार अपनी शक्ति को देखकर संयमी बनकर व्रतों को अंगीकार करें। करणानुयोग के अनुसार आश्रव का निरोध कर, सरल परिणामी हो संवर को आदरें, निर्जरा में अग्रसर हों। समयसार रूपी आत्मा के जब दर्शन हो जावेंगे तब उनका तो भला होगा ही जगत् के लाख-लाख लोगों का स्वयमेव उपकार हो जायेगा। द्यानतरायजी के साथ मैं भी इसे पढ़ता हूँ।

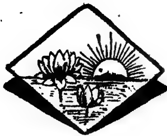
जन्म जरा मृत्यू क्षय करे हरे कुनय जड रीति।
भव सागर सौं ले तिरे पूजें जिनवच प्रीति॥

क्योंकि यह वाणी—

तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमयी।
सो जिनवर वाणी, शिवसुख दानी, त्रिभुवन मानी पूज्यमयी॥

मैं तीर्थंकर परमात्मा की दिव्य ध्वनि चार ज्ञान के धारी मुनीन्द्र गणधर देव ने सुनकर बारह अंगों में रचना की है। वह ज्ञानमयी है क्योंकि जिनेन्द्र की वाणी है, मोक्षसुख को देने वाली है। तीन लोक में पूज्यता को प्राप्त हुई है। ऐसी वाणी जिसे चार अनुयोगों में आचार्यों ने गूँथा है वह सदा-सदा जयवन्त हो।





जैनदर्शन में सर्वज्ञता-विमर्श

डॉ० दरबारीलाल कोठिया न्यायाचार्य, वाराणसी

पृष्ठभूमि

भारतीय दर्शनों में चार्वाक और मीमांसक इन दो दर्शनों को छोड़कर शेष सभी—न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, वेदान्त, बौद्ध और जैन दर्शन सर्वज्ञता की सम्भावना करते तथा युक्तियों द्वारा उसकी स्थापना करते हैं। साथ ही उसके सद्भाव में आगम प्रमाण भी प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत करते हैं।

चार्वाक दर्शन का दृष्टिकोण

चार्वाक दर्शन का दृष्टिकोण है कि 'यद्दृश्यते तदस्ति, यन्न दृश्यते तन्नास्ति'—इन्द्रियों से जो दिखे वह है और जो न दिखे वह नहीं है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार भूततत्त्व ही दिखायी देते हैं, अतः वे हैं। पर उनके अतिरिक्त कोई अतीन्द्रिय पदार्थ दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः वे नहीं हैं। सर्वज्ञता किसी भी पुरुष में इन्द्रियों द्वारा ज्ञात नहीं है और अज्ञात पदार्थ का स्वीकार उचित नहीं है। स्मरण रहे कि चार्वाक प्रत्यक्ष प्रमाण के अलावा अनुमानादि कोई प्रमाण नहीं मानते। इसलिए इस दर्शन में अतीन्द्रिय सर्वज्ञ की सम्भावना नहीं है।

मीमांसक दर्शन का मन्तव्य

मीमांसकों का मन्तव्य है कि धर्म, अधर्म, स्वर्ग, देवता, नरक, नारकी आदि अतीन्द्रिय पदार्थ तो हैं, पर उनका ज्ञान वेद द्वारा ही सम्भव है, किसी पुरुष के द्वारा नहीं।[1] पुरुष रागादि दोषों से युक्त हैं तथा वे किसी भी पुरुष से सर्वथा दूर नहीं हो सकते। ऐसी हालत में रागी-द्वेषी-अज्ञानी पुरुषों के द्वारा उन धर्मादि अतीन्द्रिय पदार्थों का ज्ञान सम्भव नहीं है। शबर स्वामी अपने मीमांसा-भाष्य (१-१.५) में लिखते हैं–



१. तथा वेदेतिहासादिज्ञानातिशयवानपि।
न स्वर्ग-देवताऽपूर्व-प्रत्यक्षकरणे क्षमः॥
—भट्ट कुमारिल, मी० श्लो० वा०।

'चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमित्येवंजातीयकमर्थमवगमयितुमलं नान्यत् किञ्चनेन्द्रियम् ।'

इससे विदित है कि मीमांसक दर्शन सूक्ष्मादि अतीन्द्रिय पदार्थों का ज्ञान चोदना (वेद) द्वारा स्वीकार करता है, किसी इन्द्रिय के द्वारा उनका ज्ञान सम्भव नहीं मानता। शबर स्वामी के परवर्ती प्रकाण्ड विद्वान् भट्ट कुमारिल ने भी मीमांसाश्लोकवार्तिक में विस्तार के साथ किसी पुरुष में सर्वज्ञता की सम्भावना का खण्डन किया है।[1] पर वे इतना स्वीकार करते हैं कि हम केवल धर्मज्ञ अथवा धर्मज्ञता का निषेध करते हैं। यदि कोई पुरुष धर्मातिरिक्त अन्य सब को जानता है तो जाने, हमें कोई विरोध नहीं है—

धर्मज्ञत्वनिषेधस्तु केवलोऽत्रोपयुज्यते ।
सर्वमन्यद्विजानंस्तु पुरुषः केन वार्यते ॥
सर्वप्रमातृ-सम्बन्धि-प्रत्यक्षादिनिवारणात् ।
केवलागमगम्यत्वं लप्स्यते पुण्य-पापयोः ॥[2]

किसी पुरुष को धर्मज्ञ न मानने में कुमारिल का तर्क यह है कि पुरुषों का अनुभव परस्पर विरुद्ध एवं बाधित देखा जाता है।[3] अतः वे उसके द्वारा धर्माधर्म का यथार्थ साक्षात्कार नहीं कर

१. यज्जातीयैः प्रमाणैस्तु यज्जातीयार्थदर्शनम् ।
दृष्टं सम्प्रति लोकस्य तथा कालान्तरेऽप्यभूत् ॥
यत्राप्यतिशयो दृष्टः स स्वार्थानतिलंघनात् ।
दूर-सूक्ष्मादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोत्रवृत्तिता ॥
येऽपि सातिशया दृष्टाः प्रज्ञामेधादिभिर्नराः ।
स्तोकस्तोकान्तरत्वेन न त्वतीन्द्रियदर्शनात् ॥
प्राज्ञोऽपि नरः सूक्ष्मानर्थान् द्रष्टुं क्षमोऽपि सन् ।
स्वजातीरनतिक्रामन्नतिशेते परान्नरान् ॥
एकशास्त्रविचारे तु दृश्यतेऽतिशयो महान् ।
न तु शास्त्रान्तरज्ञानं तन्मात्रेणैव लभ्यते ॥
ज्ञात्वा व्याकरणं दूरं बुद्धिः शब्दापशब्दयोः ।
प्रकृष्यति न नक्षत्र-तिथि-ग्रहणनिर्णये ॥
ज्योतिर्विच्च प्रकृष्टोऽपि चन्द्रार्कग्रहणादिषु ।
न भवत्यादिशब्दानां साधुत्वं ज्ञातुमर्हति ॥
दशहस्तान्तरे व्योम्नि यो नामोत्प्लुत्य गच्छति ।
न योजनमसौ गन्तुं शक्तोऽभ्यासशतैरपि ॥
तस्मादतिशयज्ञानैरतिदूरगतैरपि ।
किंचिदेवाधिकं ज्ञातुं शक्यते न त्वतीन्द्रियम् ॥—अनन्तकीर्ति द्वारा बृहत्सर्वज्ञसिद्धि में उद्धृत ।

२. इन दो कारिकाओं में पहली कारिका को शान्तरक्षित ने तत्त्वसंग्रह (का. ३१२८) में और दोनों को अनन्तकीर्ति ने बृहत्सर्वज्ञसिद्धि (पृ० १३७) में उद्धृत किया है।

३. सुगतो यदि सर्वज्ञः कपिलो नेति का प्रमा ।
तावुभौ यदि सर्वज्ञौ मतभेदः कथं तयोः ॥—अष्टस० पृ० ३, उद्धृत ।

सकते। वेद नित्य, अपौरुषेय और त्रिकालाबाधित होने से उसका ही धर्माधर्म के मामले में प्रवेश है (धर्मे चोदनैव प्रमाणम्)। ध्यान रहे, बौद्धदर्शन में बुद्ध के अनुभव, योगिज्ञान को और जैनदर्शन में अर्हन् के अनुभव केवलज्ञान को धर्माधर्म का यथार्थ साक्षात्कारी बतलाया गया है। जान पड़ता है कि कुमारिल को इन दोनों दर्शनों की मान्यता (धर्माधर्मज्ञता स्वीकार) का निषेध करना इष्ट है। उन्हें त्रयीविद् मन्वादि का धर्माधर्मादिविषयक उपदेश मान्य है, क्योंकि वे उसे वेदप्रभव बतलाते हैं।[1] कुछ भी हो, कुमारिल किसी पुरुष को स्वयं धर्मज्ञ स्वीकार नहीं करते। वे मनु आदि को भी वेद द्वारा ही धर्माधर्मादि का ज्ञाता और उपदेष्टा मानते हैं।

बौद्ध दर्शन में सर्वज्ञता के विषय में मत

बौद्ध दर्शन में अविद्या और तृष्णा के क्षय से प्राप्त योगी के परम प्रकर्षजन्य अनुभव पर बल दिया गया है और उसे समस्त पदार्थों का, जिनमें धर्माधर्मादि अतीन्द्रिय पदार्थ भी सम्मिलित हैं, साक्षात्कर्त्ता कहा गया है। दिङ्नाग आदि बौद्ध चिन्तकों ने सूक्ष्मादि पदार्थों के साक्षात्करण रूप अर्थ में सर्वज्ञता को निहित प्रतिपादन किया है। परन्तु बुद्ध ने स्वयं अपनी सर्वज्ञता पर बल नहीं दिया। उन्होंने कितने ही अतीन्द्रिय पदार्थों को अव्याकृत (व्याख्यान के अयोग्य) कह कर उनके विषय में मौन ही रखा।[2] पर उनका यह स्पष्ट उपदेश था कि धर्म जैसे अतीन्द्रिय पदार्थ का साक्षात्कार या अनुभव हो सकता है। उसके लिये किसी धर्म पुस्तक की शरण में जाने की आवश्यकता नहीं है। बौद्ध तार्किक धर्मकीर्ति ने भी बुद्ध को धर्मज्ञ बतलाया है और सर्वज्ञता को मोक्षमार्ग में अनुपयोगी कहा है—

---

१. उपदेशो हि बुद्धादेर्धर्माधर्मादिगोचरः।
अन्यथा चोपपद्येत सर्वज्ञो यदि नाभवत्॥
बुद्धादयो ह्यवेदज्ञास्तेषां वेदादसम्भवः।
उपदेशः कृतोऽतस्तैर्व्यामोहादेव केवलात्॥
येऽपि मन्वादयः सिद्धाः प्राधान्येन त्रयीविदाम्।
त्रयाविदाश्रितग्रन्थास्ते वेदप्रभवोक्तय.॥
नरः कोऽप्यस्ति सर्वज्ञः स च सर्वज्ञ इत्यपि।
साधनं यत्प्रयुज्येत प्रतिज्ञामात्रमेव तत्॥
सिसाधयिषितो योऽर्थः सोऽनया नाभिधीयते।
यस्तूच्यते न तत्सिद्धौ किंचिदस्ति प्रयोजनम्॥
यदीयागमसत्यत्वसिद्धौ सर्वज्ञतेष्यते।
न सा सर्वज्ञसामान्यसिद्धिमात्रेण लभ्यते॥
यावद् बुद्धो न सर्वज्ञस्तावत्तद्वचनं मृषा।
यत्र क्वचन सर्वज्ञे सिद्धे तत्सत्यता कुतः॥
अन्यस्मिन्नहि सर्वज्ञे वचसोऽन्यस्य सत्यता।
सामानाधिकरण्ये हि तयोरङ्गाङ्गिभावता भवेत्॥
ये कारिकाएँ कुमारिल के नाम से अनन्तकीर्ति ने बृ० स० सि० में उद्धृत की हैं।

२. मज्झिम निकाय २-२-३ के चूलमालुक्य सूत्र का संवाद।

तस्मादनुष्ठानगतं ज्ञानमस्य विचार्यताम् ।
कीटसंख्यापरिज्ञाने तस्य नः क्वोपयुज्यते ॥
हेयोपादेयतत्त्वस्य साभ्युपायस्य वेदकः ।
यः प्रमाणमसाविष्टो न तु सर्वस्य वेदकः ॥—प्रमाणवार्तिक ३१, ३२ ।

"मोक्षमार्ग में उपयोगी ज्ञान का ही विचार करना चाहिये। यदि कोई जगत् के कीड़े-मकोड़ों की संख्याओं को जानता है तो उससे हमें क्या लाभ ? जो हेय और उपादेय तथा उनके उपायों को जानता है वही हमारे लिये प्रमाण—आप्त है, सबका जानने वाला नहीं।"

यहाँ उल्लेखनीय है कि जहाँ मीमांसक कुमारिल ने धर्मज्ञ का निषेध करके सर्वज्ञ के सद्भाव को इष्ट प्रकट किया है वहाँ धर्मकीर्ति ने ठीक उसके विपरीत धर्मज्ञ को सिद्ध करके सर्वज्ञ का निषेध किया है और उसे अनावश्यक बतलाया है। शान्तरक्षित और उनके शिष्य कमलशील ने बुद्ध में धर्मज्ञता के साथ सर्वज्ञता की भी सिद्धि की है।[1] पर वे भी धर्मज्ञता को मुख्य और सर्वज्ञता को प्रासङ्गिक बतलाते हैं।[2] इस तरह हम बौद्ध दर्शन में सर्वज्ञता की सिद्धि देखकर भी, वस्तुतः उसका विशेष बल हेयोपादेयतत्त्वज्ञता पर ही है, ऐसा निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

न्याय-वैशेषिक दर्शन में सर्वज्ञता

न्याय-वैशेषिक ईश्वर में सर्वज्ञत्व मानने के अतिरिक्त दूसरे योगी आत्माओं में भी उसे स्वीकार करते हैं।[3] परन्तु उनका वह सर्वज्ञत्व अपवर्ग प्राप्ति के बाद नष्ट हो जाता है, क्योंकि वह योग तथा आत्ममनःसंयोगजन्य गुण अथवा अणिमा आदि ऋद्धियों की तरह एक विभूति मात्र है। मुक्तावस्था में न आत्ममनःसंयोग रहता है और न योग। अतः ज्ञानादि गुणों का उच्छेद हो जाने से वहाँ सर्वज्ञता भी समाप्त हो जाती है। हाँ, वे ईश्वर की सर्वज्ञता अवश्य अनादि-अनन्त मानते हैं।

सांख्य-योग दर्शन में सर्वज्ञता

निरीश्वरवादी सांख्य प्रकृति मे और ईश्वरवादी योग दर्शन ईश्वर में सर्वज्ञता स्वीकार करते हैं। सांख्यदर्शन का मन्तव्य है कि ज्ञान बुद्धितत्त्व का परिणाम है और बुद्धितत्त्व महत्तत्त्व तथा महत्तत्त्व प्रकृति का परिणाम है। अतः सर्वज्ञता प्रकृति तत्त्व में निहित है और वह सर्वज्ञता प्रकृति को अपवर्ग (मुक्ति) हो जाने पर समाप्त हो जाती है। ध्यान रहे इस दर्शन में प्रकृति (सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः) मे ही बन्ध और मोक्ष माने गये हैं (बद्ध्यते मुच्यते प्रकृतिः) और पुरुषतत्त्व (आत्मा) को पुष्कर पलाश की तरह निर्लेप (अबन्ध, अमोक्ष) स्वीकार किया गया है।

---

१. स्वर्गापवर्गसम्प्राप्तिहेतुज्ञोऽस्तीति गम्यते ।
साक्षान्न केवलं किन्तु सर्वज्ञोऽपि प्रतीयते ॥—तत्त्व सं० ३३० ।

२. मुख्यं हि तावत् स्वर्गमोक्षसम्प्रापकहेतुज्ञत्वसाधनं भगवतोऽस्माभिः क्रियते । यत्पुनः अशेषार्थपरिज्ञातृत्वसाधनमस्य तत्प्रासङ्गिकम् ।'—तत्त्व स० पृ० ८६३ ।

३. 'अस्मद्विशिष्टानां युक्तानां योगजधर्मानुगृहीतेन मनसा स्वात्मान्तराकाशदिक्कालपरमाणुवायुमनस्सु तत्समवेतगुणकर्मसामान्यविशेषसमवाये चावितथं स्वरूपदर्शनमुत्पद्यते, वियुक्तानां पुनः········ ।'

—प्रशस्तपादभाष्य, पृ० १८७ ।

(पुरुषस्तु पुष्करपलाशवन्निर्लेपः) । योगदर्शन का दृष्टिकोण है[1] कि ईश्वर पुरुष विशेष रूप है और उसमें नित्य सर्वज्ञता है तथा योगियों की सर्वज्ञता, जो सर्वविषयक 'तारक' विवेक ज्ञानरूप है, अपवर्ग के बाद नष्ट हो जाती है। अपवर्ग अवस्था में पुरुष चैतन्य मात्र में, जो ज्ञान से भिन्न है, अवस्थित रहता है।[2] यह भी आवश्यक नही कि हर योगी को वह सर्वज्ञता प्राप्त हो। तात्पर्य यह कि योगदर्शन में सर्वज्ञता की संभावना तो की गयी है। पर वह योगज विभूतिजन्य होने से अनादि-अनन्त नहीं है, केवल सादि-सान्त है।

वेदान्त दर्शन में सर्वज्ञता

वेदान्त दर्शन का मन्तव्य है कि सर्वज्ञता अन्तःकरणनिष्ठ है और वह जीवन्मुक्त दशा तक रहती है। उसके बाद वह छूट जाती है। उस समय जीवात्मा अविद्या से मुक्त होकर विद्यारूप शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्ममय हो जाता है और सर्वज्ञता आत्मज्ञता में विलीन हो जाती है। अथवा उसका अभाव हो जाता है।

जैनदर्शन में सर्वज्ञताविषयक विस्तृत विमर्श

जैनदर्शन में ज्ञान को आत्मा का स्वरूप अथवा स्वाभाविक गुण माना गया है और उसे स्वपरप्रकाशक स्वीकार किया गया है।[3] यदि आत्मा का स्वभाव ज्ञत्व (जानना) न हो तो वेद के द्वारा भी सूक्ष्मादि ज्ञेयों का ज्ञान नहीं हो सकता। आचार्य अकलङ्कदेव ने लिखा है कि ऐसा कोई ज्ञेय नही जो ज्ञस्वभाव आत्मा के द्वारा जाना न जाय। किसी विषय में अज्ञता का होना ज्ञानावरण तथा मोहादि दोषों का कार्य है। जब ज्ञानके प्रतिबन्धक ज्ञानावरण तथा मोहादि दोषों का क्षय हो जाता है तो विना रुकावट के समस्त ज्ञेयों का ज्ञान हुए बिना नहीं रह सकता। इसी को सर्वज्ञता कहा गया है। जैन मनीषियों ने प्रारम्भ से त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती अशेष पदार्थों के प्रत्यक्षज्ञान के अर्थ मे इस सर्वज्ञता को पर्यवसित माना है। जैनागमों एवं दार्शनिक ग्रन्थों में हमे सर्वज्ञता का प्रतिपादन मिलता है। वह षट्खण्डागमसूत्रों में कहा है कि 'केवली भगवान् समस्त लोकों, समस्त जीवों और अन्य समस्त पदार्थो को सर्वदा एक साथ जानते व देखते हैं[6]।' महान् चिन्तक एवं आगमवेत्ता कुन्दकुन्द ने भी लिखा है[7] कि आवरणों के अभाव से उद्भूत केवलज्ञान वर्तमान, भूत, भविष्यत्, सूक्ष्म, व्यवहित आदि सब तरह के ज्ञेयों को पूर्ण रूप से युगपत् जानता है। जो त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती सम्पूर्ण पदार्थों को नहीं जानता वह अनन्त पर्यायों वाले एक द्रव्य को भी पूर्णतया नहीं जान सकता और जो अनन्त पर्याय वाले एक

---

१. 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।'—पतञ्जलि, योगसूत्र।

२. 'तदा दृष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'—योगसूत्र १-१-३।

३. 'उपयोगो लक्षणम्'—त० सू० २-८।

४. 'णाणं सपरपयासयं'।

५. न खलु ज्ञस्वभावस्य कश्चिदगोचरोऽस्ति यन्न क्रमेत, तत्स्वभावान्तरप्रतिषेधात्।—अष्ट श०, अष्टस० पृ० ४७।

६. 'सयं भयवं उप्पण्णणाणदरिसी .... सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सव्वं समं जाणदि पस्सदि विहरदि त्ति।' षट्खं० पयदि० सू० ७८।

७. प्र० सा० १—४७, ४८ ४९ आदि।

द्रव्य को नहीं जानता वह समस्त द्रव्यों को कैसे एक साथ जान सकता है। प्रसिद्ध विचारक भगवती आराधनाकार शिवार्य[1] और आवश्यकनिर्युक्तिकार भद्रबाहु[2] बड़े स्पष्ट और प्रांजल शब्दों में सर्वज्ञता का प्रबल समर्थन करते हुए कहते हैं कि वीतराग भगवान् तीनों कालों, अनन्त पर्यायों से सहित समस्त ज्ञेयों और लोकों को युगपत् जानते व देखते हैं।

आगम युग के बाद जब तार्किक युग में आते हैं तो हम स्वामी समन्तभद्र, सिद्धसेन, अकलङ्क, हरिभद्र, पात्रस्वामी, वीरसेन, विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र, वादिराज, हेमचन्द्र प्रभृति जैन तार्किकों को भी सर्वज्ञता का प्रबल समर्थन एवं उपपादन करते हुए पाते है। इनमे अनेक लेखकों ने तो सर्वज्ञता स्थापना में महत्त्वपूर्ण स्वतंत्र ग्रन्थ ही लिखे हैं। समन्तभद्र की आप्तमीमांसा, जिसे अकलंक देव ने **'सर्वज्ञ विशेष परीक्षा'** भी कहा है' स्वयं अकलंक की 'सिद्धि विनिश्चय' गत 'सर्वज्ञ सिद्धि; वादीभसिंह की 'स्याद्वाद-सिद्धि' गत 'सर्वज्ञ सिद्धि' आदि कितनी ही उल्लेखनीय कृतियाँ हैं, जिनमें सर्वज्ञता का सविशेष साधन किया गया है। यदि कहा जाय कि सर्वज्ञता पर जितना चिन्तन और लेखन जैन दार्शनिकों ने किया है उतना अन्य दार्शनिकों ने नही, तो अत्युक्ति न होगी।

सर्वज्ञता की स्थापना में समन्तभद्र ने जो युक्ति दी है वह बड़े महत्त्व की है वे कहते हैं कि सूक्ष्मदि अतीन्द्रिय पदार्थ भी किसी पुरुष विशेष के प्रत्यक्ष है, क्योंकि वे अनुमेय हैं, जैसे अग्नि। यथा—

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः ॥—आप्तमी० का०

समन्तभद्र एक दूसरी युक्ति के द्वारा सर्वज्ञता के रोकने वाले अज्ञानादि दोषों और ज्ञानावरणादि आवरणों की किसी आत्मविशेष में अभाव सिद्ध करते हुए कहते है कि 'किसी पुरुषविशेष में ज्ञान के प्रतिबन्धकों का पूर्णतया क्षय हो जाता है, क्योंकि उनकी अन्यत्र न्यूनाधिकता देखी जाती है। जैसे सुवर्ण में बाह्य और अन्तरंग दोनों प्रकार के मेलों का अभाव देखा जाता है। प्रतिबन्धकों के हट जाने पर ज्ञस्वभाव आत्मा के लिए कोई ज्ञेय अज्ञेय नही रहता[3]। ज्ञेय का अज्ञान या तो आत्मा में उन सब ज्ञेयों को जानने को सामर्थ्य न होने पर होता है या ज्ञान के प्रतिबन्धकों के रहने से होता है। चूँकि आत्मज्ञ है और तपश्चर्या, संयमादि की आराधना द्वारा प्रतिबन्धकों का अभाव पूर्णतया सम्भव है, ऐसी स्थिति मे उस वीतराग महायोगी को कोई कारण नहीं कि अशेष ज्ञेयों का ज्ञान न हो अन्त में इस सर्वज्ञता को समन्तभद्र ने अर्हंत में सम्भाव्य बतलाया है उनका वह प्रतिपादन इस प्रकार है—

---

१. पस्सदि जाणदि य तहा तिण्णि वि काले सपज्जए सव्वे।
तह वा लोगमसेसं भयवं विगयमोहो ॥—भ० आ० गा० २१४१।

२. संभिण्णं पासंतो लोगमलोगं च सव्वओ सव्वं।
तं णत्थि जं न पासइ भूयं भव्वं भविस्सं च ॥—आ० नि० गा० १२७।

३. ध्यातव्य है कि समन्तभद्र ने आप्त के आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य तीन गुणों एवं विशेषताओं में सर्वज्ञता को नितान्त आवश्यक बतलाया है, उसके बिना वह आप्त हो ही नही सकता। यथा—

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥—रत्नक० श्लोक, ५।

दोषावरणयोर्हानिर्निश्शेषाऽस्त्यतिशायनात् ।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः ॥
स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक् ।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ॥

—आ० मी० का० ५,६

समन्तभद्र के उत्तरवर्ती सूक्ष्म चिन्तक अकलङ्क देव ने सर्वज्ञता की सम्भावना में जो महत्त्वपूर्ण युक्तियाँ दी है, वे भी यहाँ उल्लेखनीय हैं। अकलंक की प्रथम युक्ति यह है कि आत्मा में समस्त पदार्थों को जानने की सामर्थ्य है। इस सामर्थ्य के होने से कोई पुरुष विशेष वेद के द्वारा भी सूक्ष्मादि ज्ञेयों को जानने में समर्थ हो सकता है, अन्यथा नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि संसारी आत्मा ज्ञानावरण और अज्ञानादि दोषों से युक्त होने के कारण सब ज्ञेयों को नहीं जान पाता। जिस तरह हम लोगों का ज्ञान सब ज्ञेयों को नहीं जान पाता, कुछ सीमितों को ही जान पाता है। पर जब ज्ञान के प्रतिबन्धकों (कर्मावरणों) का पूर्ण क्षय हो जाता है तो उस विशिष्ट इन्द्रियानपेक्ष और आत्ममात्र सापेक्ष ज्ञान को, जो स्वयं अप्राप्यकारी भी है, अशेष ज्ञेयों को जानने में क्या बाधा है ?[1]

उनकी दूसरी युक्ति यह है कि यदि पुरुषों को धर्माधर्मादि अतीन्द्रिय ज्ञेयों का ज्ञान न हो तो सूर्य, चन्द्र आदि ज्योतिग्रहों की ग्रहण आदि भविष्यत् दशाओं और उनसे होने वाला शुभाशुभ का अविसंवादी उपदेश कैसे हो सकेगा ? इन्द्रियों की अपेक्षा किये बिना ही उनका अतीन्द्रियार्थ विषयक उपदेश सत्य और यथार्थ स्पष्ट देखा जाता है। अथवा जिस तरह सत्य स्वप्न दर्शन इन्द्रियादि की सहायता के बिना ही भावी राज्यादि लाभ का यथार्थ बोध कराता है उसी तरह सर्वज्ञ का ज्ञान भी अतीन्द्रिय पदार्थों में संवादी और स्पष्ट होता है और उसमें इन्द्रियों की आंशिक भी सहायता नहीं होती। इन्द्रियाँ तो वास्तव में कम ज्ञान को ही करती हैं। वे अधिक और सर्व विषयक ज्ञान में उसी तरह बाधक हैं जिस तरह सुन्दर प्रासाद में बनी हुई खिड़कियाँ अधिक प्रकाश को रोकती हैं।

अकलंक की तीसरी युक्ति यह है कि जिस प्रकार परिमाण अणु परिमाण से बढ़ता-बढ़ता आकाश में महापरिमाण या विभुत्व का रूप ले लेता है, क्योंकि उसकी तरतमता देखी जाती है,

---

१. कथञ्चित्स्वप्रदेशेषु स्यात्कर्मपटलाच्छता ।
संसारिणां तु जीवानां यत्र ते चक्षुरादयः ॥
साक्षात्कर्तुं विरोधः, कः सर्वथाऽऽवरणात्यये ।
सत्यमर्थं तथा सर्वं यथाऽभूद्वा भविष्यति ॥
सर्वार्थग्रहणसामर्थ्याच्चैतन्यप्रतिबन्धनाम् ।
कर्मणां विगमे कस्मात् सर्वान्नर्थान् न पश्यति ॥
ग्रहादिगतयः सर्वाः सुख-दुःखादिहेतवः ।
येन साक्षात्कृतास्तेन किन्न साक्षात्कृतं जगत् ॥
ज्ञस्यावरणविच्छेदे ज्ञेयं किमवशिष्यते ।
अप्राप्यकारिणस्तस्मात्सर्वार्थावलोकनम् ॥—न्यायविनि० का० ३६१, ६२, ४१०, ४१४, ४१५ ।

उसी तरह ज्ञान के प्रकर्ष में भी तारतम्य देखा जाता है। अतः जहाँ वह ज्ञान सम्पूर्ण अवस्था (निरतिशयपने) को प्राप्त हो जाये वहीं सर्वज्ञता आ जाती है। इस सर्वज्ञता का किसी व्यक्ति या समाज ने ठेका नहीं लिया। वह प्रत्येक योग्य साधक को प्राप्त हो सकती है।

उनकी चौथी युक्ति यह है कि सर्वज्ञता का कोई बाधक प्रमाण नहीं है। प्रत्यक्ष आदि पाँच प्रमाण तो इसलिये बाधक नहीं हो सकते, क्योंकि वे विधि (अस्तित्व) को विषय करते हैं। यदि वे सर्वज्ञता के विषय में दखल दें तो उनसे उसका सद्भाव ही सिद्ध होगा। मीमांसकों का अभाव प्रमाण भी उसका निषेध नहीं कर सकता, क्योंकि अभाव प्रमाण के लिये यह आवश्यक है[1] कि जिसका अभाव करना है उसका स्मरण और जहाँ उसका अभाव किया जाता है वहाँ उसका प्रत्यक्ष दर्शन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। जब हम भूतल में घड़े का अभाव करते हैं तो वहाँ पहले देखे गये घड़े का स्मरण और भूतल का दर्शन होता है, तभी हम यह कहते हैं कि यहाँ घड़ा नहीं है, क्योंकि वह उपलब्ध नहीं है। किन्तु तीनों (भूत, भविष्यत् और वर्तमान) कालों तथा तीनों (ऊर्ध्व, मध्य और अधो) लोकों के अतीत, अनागत और वर्तमान कालीन अनन्त पुरुषों में सर्वज्ञता नहीं थी, नहीं है और न होगी, इस प्रकार का ज्ञान उसी को हो सकता है जिसने उन तमाम पुरुषों का साक्षात्कार किया है। यदि किसी ने किया है तो वही सर्वज्ञ हो जायेगा। साथ ही सर्वज्ञता का स्मरण सर्वज्ञता के प्रत्यक्ष (अनुभव) के बिना संभव नहीं और जिन त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती अनन्त पुरुषों (आधार) में सर्वज्ञता का अभाव करना है उनका प्रत्यक्ष दर्शन भी संभव नहीं। ऐसी स्थिति में सर्वज्ञता का अभाव प्रमाण भी बाधक नहीं है। इस तरह जब कोई बाधक नहीं[2] तो कोई कारण नहीं कि सर्वज्ञता का सद्भाव सिद्ध न हो।

निष्कर्ष यह है कि आत्मा 'ज्ञ'—ज्ञाता स्वभाव है और उसके इस ज्ञान स्वभाव को ढँकने वाले दोष एवं आवरण दूर हो सकते हैं। अतः आवरणों एवं दोषों के विच्छिन्न हो जाने पर 'ज्ञ' स्वभाव आत्मा के लिए फिर शेष जानने योग्य क्या रह जाता है? अर्थात् कुछ नहीं। अप्राप्यकारी ज्ञान से सकलार्थ विषयक ज्ञान होना अवश्यम्भावी है। इन्द्रियाँ और मन सकलार्थ परिज्ञान में साधक न होकर बाधक हैं। वे जहाँ नहीं हैं और आवरणों एवं दोषों का पूर्णतया अभाव है वहाँ त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती यावज्ज्ञेयों का साक्षात् ज्ञान होने में कोई बाधा नहीं है।

आ० वीरसेन[3] और आ० विद्यानन्द ने[4] भी इसी आशय का एक महत्त्वपूर्ण पूर्वाचार्य द्वारा रचित श्लोक प्रस्तुत करके उसके द्वारा 'ज्ञ' स्वभाव आत्मा में सर्वज्ञता की सिद्धि की है। वह श्लोक यह है—

ज्ञो ज्ञेये कथमज्ञः स्यादसति प्रतिबन्धने।
दाह्येऽग्निर्दाहको न स्यादसति प्रतिबन्धने॥

---

१. गृहीत्वा वस्तुसद्भावं स्मृत्वा च प्रतियोगिनम्।
मानसं नास्तिताज्ञानं जायतेऽक्षानपेक्षया॥—कुमारिल, मी० श्लो० वा०।

२. अस्ति सर्वज्ञः सुनिश्चितासम्भवद्बाधकप्रमाणत्वात्, सुखादिवत्।'
—सिद्धिवि० वृ० ८-६ तथा अष्टस० का० ५।

३. जयधवला, प्रथम पुस्तक, पृ० ६४ से ६६। ४. आप्तपरीक्षा, अष्टसहस्री।

अग्नि में दाहकता हो और दाह्य—ईंधन सामने हो तथा बीच में कोई रुकावट न हो तो अग्नि अपने दाह्य को क्यों नहीं जलावेगी ? ठीक उसी तरह आत्मा ज्ञ (ज्ञातास्वभाव) हो और ज्ञेय (अखिल पदार्थ) सामने हों तथा उनके बीच में कोई रुकावट न रहे तो ज्ञाता आत्मा उन ज्ञेयों को क्यों नहीं जानेगा ? आवरणों के अभाव में ज्ञस्वभाव आत्मा के लिए आसन्नता और दूरता ये दोनों भी निरर्थक हो जाती हैं।

उपसंहार

जैनदर्शन में प्रत्येक आत्मा में आवरणों और तज्जन्य दोषों के अभाव में सर्वज्ञता का होना अनिवार्य है। वेदान्त दर्शन में मान्य आत्मा की सर्वज्ञता से जैनदर्शन की सर्वज्ञता में यह अन्तर है कि जैनदर्शन में सर्वज्ञता को आवृत करने वाले आवरण और दोष मिथ्या नहीं है, जब कि वेदान्त दर्शन में अविद्या को मिथ्या कहा गया है। इसके अलावा जैनदर्शन में सर्वज्ञता को जहाँ सादि-अनन्त स्वीकार किया गया है और प्रत्येक मुक्त आत्मा में वह पृथक्-पृथक् स्वीकृत है, अतएव अनन्त सर्वज्ञ हैं, वहाँ वेदान्त मे मुक्त आत्माएँ अपने पृथक् अस्तित्व को न रखकर एक अद्वितीय सनातन ब्रह्म मे विलीन हो जाती है और उनकी सर्वज्ञता अन्तःकरण सम्बन्ध तक रहती है, बाद को वह नष्ट हो जाती है या ब्रह्म में ही उसका विलीनीकरण हो जाता है।





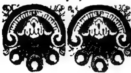
जंबूद्वीप

आर्यिका ज्ञानमती माताजी

एक लाख योजन विस्तृत गोलाकार (थाली सदृश) इस जम्बूद्वीप मे हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी इन छह कुलाचलों से विभाजित सात क्षेत्र हैं—भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत। भरत क्षेत्र का दक्षिण उत्तर विस्तार ५२६, ६/१९ योजन है। आगे पर्वत और क्षेत्र के विस्तार विदेह क्षेत्र तक दूने-दूने हैं पुनः आधे-आधे हैं।

इनमें से भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र के आर्यखण्ड में षट्काल परिवर्तन से भोगभूमि और कर्मभूमि की व्यवस्था चलती रहती है जो अशाश्वत कहलाती है। हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र में जघन्य भोगभूमि की व्यवस्था है। हरि और रम्यक क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि की व्यवस्था है। विदेह क्षेत्र में दक्षिण-उत्तर मे देवकुरु-उत्तरकुरु नाम से क्षेत्र हैं जहाँ पर उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था है। ये छहों भोगभूमियाँ शाश्वत हैं। विदेह क्षेत्र मे पूर्व-पश्चिम मे १६ वक्षार पर्वत और १२ विभंगा नदियों के निमित्त से ३२ क्षेत्र हो जाते हैं। जिनके नाम कच्छा, सुकच्छा आदि हैं। इन बत्तीसों विदेह क्षेत्रों में कर्मभूमि की व्यवस्था सदा काल एक जैसी रहती है अतः इन्हें शाश्वत कर्मभूमि कहते हैं।

विदेह क्षेत्र का विस्तार (दक्षिण-उत्तर) ३३६८४, ४/१९ योजन है और इसकी लम्बाई (पूर्व-पश्चिम) १००००० योजन है। इस विदेह के ठीक मध्य में सुदर्शन मेरु पर्वत है जो एक लाख चालीस योजन ऊँचा है। पृथ्वी पर इसकी चौड़ाई १० हजार है और घटते-घटते ऊपर जाकर ४ योजन मात्र की रह गई है। इस सुमेरु की चारों विदिशाओं में एक-एक गजदंत पर्वत हैं जो कि एक तरफ से सुमेरु का स्पर्श कर रहे हैं और दूसरी तरफ से निषध-नील पर्वत को छूते हुए हैं। इन पर्वतों के निमित्तों से भी विदेह की चारों दिशायें पृथक्-पृथक् विभक्त हो गई हैं। सुमेरु से उत्तर की ओर उत्तरकुरु में ईशान कोण में जम्बूवृक्ष है और सुमेरु से दक्षिण की ओर देवकुरु है जिसमें आग्नेय कोण में शाल्मली वृक्ष है। इन दोनों कुरुओं



में दश प्रकार के कल्पवृक्ष होने से वहाँ पर सदा ही उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था रहती है।

सुमेरु के पूर्व-पश्चिम में विदेह क्षेत्र में सीता-सीतोदा नदियाँ बहती हैं। इससे पूर्व-पश्चिम विदेह में भी दक्षिण-उत्तर भाग हो जाते हैं। सुमेरु के पूर्व में और सीता नदी के उत्तर में सर्व प्रथम भद्रसालवन की वेदिका है, पुनः क्षेत्र है, पुनः वक्षार पर्वत है जो कि ५०० योजन विस्तृत, १६५९२, २/१९ योजन लम्बा तथा नील पर्वत के पास ४०० योजन एवं सीता नदी के पास ५०० योजन ऊँचा है। यह पर्वत सुवर्णमय है। इस पर चार कूट हैं। जिनमें से नदी के पास के कूट पर जिनमन्दिर एवं शेष तीन कूटों पर देव-देवियों के आवास हैं। इस पर्वत के बाद क्षेत्र, पुनः विभंगा-नदी, पुनः क्षेत्र, पुनः वक्षार पर्वत ऐसे क्रम से चार वक्षार पर्वत और तीन विभंगा नदियों के अंतराल से तथा एक तरफ भद्रसाल की वेदी और दूसरी तरफ देवारण्यवन की वेदी के निमित्त से इस एक तरफ के विदेह में आठ क्षेत्र हो गये हैं। ऐसे ही सीता नदी के दक्षिण तरफ ८ क्षेत्र पश्चिम विदेह में सीतोदा नदी के दक्षिण-उत्तर में ८-८ क्षेत्र ऐसे बत्तीस क्षेत्र हैं।

बत्तीस विदेह क्षेत्रों के नाम

कच्छा, सुकच्छा, महाकच्छा, कच्छकावती, आवर्ता, लांगलावर्ता, पुष्कला, पुष्कलावती, वत्सा, सुवत्सा, महावत्सा, वत्सकावती, रम्या, सुरम्या, रमणीया, रम्यकावती, पद्मा, सुपद्मा, महापद्मा, पद्मकावती, शंखा, नलिनी, कुमुद, सरित, वप्रा, सुवप्रा, महावप्रा, वप्रकावती, गंधा, सुगंधा, गंधिला और गंधमालिनी।

कच्छा विदेह का वर्णन

यह कच्छा विदेह क्षेत्र पूर्व-पश्चिम में २२१२, ७/८ योजन विस्तृत है और दक्षिण-उत्तर में १६५९२, २/१९ योजन लम्बा है। इस क्षेत्र के बीचों बीच में ५० योजन चौड़ा २२१२,७/८ योजन लम्बा और २५ योजन ऊँचा विजयार्ध पर्वत है। इस विजयार्ध में भी भरत क्षेत्र के विजयार्ध के समान दोनों पार्श्व भागों में दो-दो विद्याधर श्रेणियाँ हैं। इन दोनों तरफ की श्रेणियों पर विद्याधर मनुष्यों की ५५-५५ नगरियाँ हैं। इस विजयार्ध पर्वत पर ९ कूट हैं, इनमें से एक कूट पर जिन-मन्दिर और शेष ८ कूटों पर देवों के भवन हैं। नील पर्वत की तलहटी मे गंगा-सिन्धु नदियों के निकलने के लिए दो कुण्ड बने हैं। इन कुण्डों से ये दोनों नदियाँ निकलकर सीधी बहती हुई विजयार्ध पर्वत की तिमिस्र गुफा और खण्डप्रपात गुफा में प्रवेश कर बाहर निकलकर क्षेत्र में बहती हुई आगे आकर सीता नदी में प्रवेश कर जाती है। इस कच्छा देश में विजयार्ध और गंगा-सिंधु के निमित्त से छह खण्ड हो जाते हैं। इनमें से नदो के पास के मध्य मे आर्य खण्ड है। और शेष पाँचों म्लेच्छ खण्ड हैं। यह आर्यखण्ड के बीचों बीच में क्षेमा नाम की नगरी है, जो कि मुख्य राजधानी है। यह एक कच्छा विदेह देश का वर्णन है। इसी प्रकार से महाकच्छा आदि इकतीस विदेहदेशों की व्यवस्था है ऐसा समझना।

विदेह क्षेत्र की व्यवस्था

प्रत्येक विदेह में ९६ करोड़ ग्राम, २६ हजार नगर, १६ हजार खेट, २४ हजार खर्वड, ४ हजार मडंब, ४८ हजार पत्तन, ९९ हजार द्रोण, १४ हजार संवाह और २८ हजार दुर्गाटवी हैं।

जो चारों ओर काँटों की बाड़ से वेष्टित हो, उसे ग्राम कहते हैं। चार दरवाजों युक्त कोट से वेष्टित को नगर कहते हैं। नदी और पर्वत दोनों से वेष्टित को खेट कहते हैं। पर्वत से वेष्टित

खर्वड हैं। ५०० ग्रामों से संयुक्त मडंब हैं। जहाँ रत्नादि वस्तुओं की निष्पत्ति होती है, वे पत्तन हैं। नदी से वेष्टित को द्रोण, समुद्र की वेला से वेष्टित को संवाह और पर्वत के ऊपर बने हुए को दुर्गाटवी कहते हैं।

प्रत्येक विदेह देश में प्रधान राजधानी और महानदी के बीच स्थित आर्यखण्ड में एक-एक उपसमुद्र है और उस उपसमुद्र मे एक-एक टापू है, जिस पर ५६ अन्तरद्वीप, २६ हजार रत्नाकर, और रत्नों के क्रय-विक्रय के स्थानभूत ऐसे ७०० कुक्षिवास होते हैं।

सीता-सीतोदा नदियों के समीप जल में पूर्वादि दिशाओं में मागध, वरतनु और प्रभास नामक व्यंतर देवों के तीन द्वीप हैं।

विदेह क्षेत्र में वर्षा ऋतु

विदेह क्षेत्र में वर्षाकाल में सात प्रकार के कालमेघ सात-सात दिन तक अर्थात् ४९ दिनों तक और द्रोण नाम वाले बारह प्रकार के श्वेत मेघ सात-सात दिन तक (१२ × ७ = ८४) दिनों तक बरसते हैं। इस प्रकार वहाँ वर्षा ऋतु में कुल ४९ × ८४ = १३३ दिन मर्यादा पूर्वक वर्षा होती है।

विदेह देश में क्या-क्या नहीं है ?

विदेह क्षेत्र में सर्वत्र कभी दुर्भिक्ष नहीं पड़ता है। सात प्रकार की "ईति" नहीं हैं। १. अति वृष्टि, २. अनावृष्टि ३. मूषक प्रकोप ४. शलभ प्रकोप (टिड्डी) ५. शुक प्रकोप ६. सचक्र प्रकोप और ७. परचक्र प्रकोप ये सात ईतियां वहां नहीं हैं। तथा गाय या मनुष्य आदि जिसमें अधिक मरने लगें उसे मारि रोग कहते हैं वह भी वहां नहीं है। वहाँ कुदेव, कुलिंगी साधु और कुमत भी नहीं हैं। अर्थात् वहाँ पर दुर्भिक्ष, ईति, मारिरोग, कुदेव, कुलिंगी और कुमतों का अभाव है।

यहाँ विदेह में हमेशा चतुर्थकाल सदृश ही वर्तना रहती है। अर्थात् सतत ही उत्कृष्ट ५०० धनुष की अवगाहना वाले मनुष्य होते हैं और वहाँ मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक कोटि पूर्व वर्ष की है। वहाँ पर क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ण ही होते हैं। जो कि असि, मषि, कृषि आदि के द्वारा आजीविका करते हैं। वहाँ पर हमेशा गृहस्थ धर्म और मुनि धर्म चलता रहता है। वहाँ पर हमेशा तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायण होते रहते हैं। इस जम्बूद्वीप के ३२ विदेहों में यदि अधिक तीर्थंकर आदि होते हैं तो ३२ होते है और कम से कम ४ अवश्य होते हैं। वहाँ चार तीर्थंकर आज भी विद्यमान हैं जिनके नाम हैं—सीमंधर, युगमंधर, बाहु और सुबाहु। ये विहरमाण तीर्थंकर भी कहलाते हैं। ऐसे ही पाँचों मेरु संबंधी ३२ × ५ = १६० विदेह होते हैं। उनमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि भी अधिक रूप से १६० और कम से कम २० माने गये हैं।[१]

चौदह नदियाँ

हिमवान् आदि छह पर्वतों पर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ऐसे छह सरोवर है। इनमें पद्म तथा पुण्डरीक सरोवर से तीन-तीन एवं शेष चार सरोवरों से दो-दो नदियाँ निकलती हैं। जिनके नाम हैं—गंगा, सिंधु, रोहित-रोहितास्या, हरित-हरिकान्ता, सीता-सीतोदा, नारी-नरकांता, सुवर्ण-कूला-रूप्यकूला और रक्ता-रक्तोदा। ये चौदह नदियाँ दो-दो मिलकर भरत आदि सात क्षेत्रों में बहती हैं।

---

१. त्रिलोकसार गाथा ६७४ से ६८० तक। २. वही, ६८१।

इस क्षेत्र का विस्तार ५२६,६/१९ योजन है। इसके बीच में पूर्व-पश्चिम लम्बा ५० योजन चौड़ा और २५ योजन ऊँचा एक विजयार्ध पर्वत है। इसमें दक्षिण उत्तर बाजू में विद्याधरों की नगरियाँ हैं। इस पर्वत में दो गुफायें हैं। जिनके नाम हैं—तमिस्र गुफा, खण्डप्रपात गुफा। हिमवान पर्वत के पद्म सरोवर के पूर्वतोरण द्वार से गंगा नदी एवं पश्चिम तोरण द्वार से सिंधु नदी निकलकर ५००-५०० योजन तक पूर्व-पश्चिम दिशा में पर्वत पर ही बहकर पुनः दक्षिण की ओर मुड़कर पर्वत के किनारे आ जाती है। वहाँ पर गोमुख आकार वाली नालिका से नीचे गिरती है। हिमवान पर्वत की तलहटी में नदी गिरने के स्थान पर गंगा सिंधु कुण्ड बने हुए हैं। जिनमें बने कूटों पर गंगा सिंधु देवी के भवन हैं। भवन की छत पर फूले हुए कमलासन पर अकृत्रिम जिन-प्रतिमा विराजमान हैं उन प्रतिमा के मस्तक पर जटाजूट का आकार बना हुआ है। ऊपर से गिरती हुई गंगा सिंधु नदियाँ ठीक भगवान् की प्रतिमा के मस्तक पर अभिषेक करते हुए के समान पड़ती हैं। पुनः कुण्ड से बाहर निकल कर क्षेत्र में कुटिलाकार से बहती हुई पूर्व-पश्चिम की तरफ लवण समुद्र में प्रवेश कर जाती हैं।

इसलिए इस भरत क्षेत्र के विजयार्ध पर्वत और गंगा-सिंधु नदी के निमित्त से छह खण्ड हो जाते हैं। इनमें से जो दक्षिण की तरफ में बीच के खण्ड हैं वह आर्यखण्ड है, शेष पाँच म्लेच्छ खण्ड हैं। उत्तर की तरफ के तीन म्लेच्छ खण्डों में से बीच वाले म्लेच्छ खण्ड में एक वृषभाचल पर्वत है। चक्रवर्ती जब इन छहों खण्डों को जीत लेता है तब अपनी विजय प्रशस्ति इसी पर्वत पर लिखता है।

भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड के मध्य में अयोध्या नगरी है। इस अयोध्या के दक्षिण में ११९ योजन की दूरी पर लवण समुद्र की वेदी है और उत्तर की तरफ इतनी ही दूर पर विजयार्ध पर्वत की वेदिका है। अयोध्या से पूर्व में १००० योजन की दूरी पर गंगा नदी की तट वेदी है और पश्चिम में १००० योजन दूरी पर सिन्धु नदी की तट वेदी है अर्थात् आर्यखण्ड की दक्षिण दिशा में लवण समुद्र, उत्तर दिशा में विजयार्ध, पूर्व दिशा में गंगा नदी एवं पश्चिम दिशा में सिंधु नदी हैं ये चारों आर्यखण्ड की सीमारूप है।

अयोध्या से दक्षिण में ४७६००० मील (चार लाख छियत्तर हजार मील) जाने से लवण समुद्र है और उत्तर में ४,७६००० मील जाने से विजयाध पर्वत है। उसी प्रकार अयोध्या से पूर्व में ४०००००० (चालीस लाख) मील दूर पर गंगा नदी तथा पश्चिम मे इतनी ही दूर पर सिंधु नदी है। आज का उपलब्ध सारा विश्व इस आर्यखण्ड मे है। हम और आप सभी इस आर्यखण्ड में ही (भारतवर्ष में) रहते हैं। इस भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड से विदेह क्षेत्र की दूरी २० करोड़ मील से अधिक ही है। भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र के आर्यखण्ड मे सदा ही अरहट घड़ी यंत्र के समान छह कालों का परिवर्तन होता रहता है।

षटकाल परिवर्तन

"भरत और ऐरावत क्षेत्र में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी इन दो कालों के द्वारा षट्काल परिवर्तन होता रहता है। इनमें अवसर्पिणी काल में जीवों के आयु शरीर आदि की हानि एवं उत्सर्पिणी में वृद्धि होती रहती है।"[1]

---

१. भरहेसुरेवदेसु य ओसप्पुस्सप्पिणित्ति कालदुगा।
उस्सेधाउबलाणं हाणीवड्ढी य होंतित्ति ॥७७९॥ –त्रिलोकसार।

अवसर्पिणी के सुषमा-सुषमा, सुषमादुःषमा, दुःषमासुषमा, दुःषमा और अतिदुःषमा ऐसे छह भेद हैं। ऐसे ही उत्सर्पिणी के इनसे उल्टे अर्थात् दुःषमादुःषमा, दुषमा, दुःषमसुषमा, सुषमादुःषमा, सुषमा और सुषमासुषमा ये छह भेद हैं।

अवसर्पिणी के सुषमासुषमा की स्थिति ४ कोड़ाकोड़ी सागर, सुषमा की ३ कोड़ाकोड़ी सागर, सुषमादुःषमा की २ कोड़ाकोड़ी सागर, दुषमासुषमा की ४२ हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर, दुषमा की २१ हजार वर्ष की एवं अतिदुःषमा की २१ हजार वर्ष की है। ऐसे ही उत्सर्पिणी में २१ हजार वर्ष से समझना।

इन छह कालों में से प्रथम, द्वितीय और तृतीय काल में क्रम से उत्तर, मध्यम और जघन्य भोगभूमि की व्यवस्था रहती है तथा चौथे, पाँचवें और छठे काल में कर्मभूमि की व्यवस्था हो जाती है। उत्तम भोगभूमि में मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई तीन कोश और आयु तीन पल्य प्रमाण होती है। मध्यम भोगभूमि में शरीर की ऊँचाई दो कोश, आयु दो पल्य की होती है और जघन्य भोगभूमि में शरीर की ऊँचाई एक कोश और आयु एक पल्य की है। यहाँ पर दश प्रकार के कल्प-वृक्षों से भोगोपभोग सामग्री प्राप्त होती है। चतुर्थकाल में उत्कृष्ट अवगाहना सवा पाँच सौ धनुष और उत्कृष्ट आयु एक पूर्व कोटि वर्ष है। पंचम काल में शरीर की ऊँचाई ७ हाथ और आयु १२० वर्ष है। छठे काल में शरीर २ हाथ का और आयु २० वर्ष है।

इस वर्तमान की अवसर्पिणी में

"तृतीय काल में पल्य का आठवाँ भाग शेष रहने पर प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमकर, क्षेमन्धर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वी, अभिचन्द्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित्, नाभिराय और उनके पुत्र ऋषभदेव ये कुलकर उत्पन्न हुए हैं।"[1]

अर्थात् अन्यत्र ग्रन्थों में नाभिराय को १४वें अन्तिम कुलकर माने हैं। यहाँ पर नाभिराय के पुत्र प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को भी कुलकर संज्ञा दे दी है।

इस युग में कर्मभूमि के प्रारम्भ में तीर्थंकर ऋषभदेव के सामने जब प्रजा आजीविका की समस्या लेकर आई, तभी प्रभु की आज्ञा से इन्द्र ने ग्राम, नगर आदि की रचना कर दी पुनः प्रभु ने अपने अवधिज्ञान से विदेह क्षेत्र की सारी व्यवस्था को ज्ञातकर प्रजा में वर्ण व्यवस्था बनाकर उन्हें आजीविका के साधन बतलाये। यही बात श्री नेमिचन्द्राचार्य ने भी कही है—

नगर, ग्राम, पत्तन आदि की रचना, लौकिक शास्त्र, असि, मषि, कृषि आदि लोक व्यवहार और दया प्रधान धर्म का स्थापन आदि ब्रह्मा श्री ऋषभनाथ तीर्थंकर ने किया है।"[2]



---

१. त्रिलोकसार गाथा ७९२-७९३-७९४।

२. पुरगामपट्टणादी लोहियसत्थं च लोयववहारो।
धम्मो वि दयामूलो विणिम्मियो आदिबह्मेण ॥८०२॥ —त्रिलोकसार।

क्षेत्र और पर्वत	विस्तार दक्षिण-उत्तर	लम्बाई पूर्व-पश्चिम	ऊँचाई पर्वत की	भोगभूमि या कर्मभूमि क्षेत्रों में	वर्ण पर्वत के	कूट संख्या पर्वतों पर	कूटों की ऊँचाई	चौड़ाई मूल में	चौड़ाई अंत में
क्षेत्र भरत	५२६ $\frac{6}{19}$ यो	१४४७१ $\frac{5}{19}$		कर्मभूमि भोगभूमि अशाश्वत					
पर्वत—हिमवान	१०५२ $\frac{12}{19}$	२४९३१ $\frac{18}{19}$	१००		सुवर्णमय	११	२५यो.	२५	१२,१/२
क्षेत्र—हैमवत	२१०५ $\frac{5}{19}$	३७६७४ $\frac{16}{19}$		भोगभूमि जघन्य					
पर्वत—महाहिमवान	४२१० $\frac{10}{19}$	५३९३१ $\frac{6}{19}$	२००		रततमय	८	५०	५०	२५
क्षेत्र—हरि	८४२१ $\frac{1}{19}$	७३९०१ $\frac{17}{19}$		भोगभूमिमध्यम					
पर्वत—निषध	१६८४२ $\frac{2}{19}$	९४१५६ $\frac{2}{19}$	४००		तप्तसुवर्ण	९	१००	१००	५०
क्षेत्र—विदेह	३३६८४ $\frac{4}{19}$	१०००००		कर्मभूमि (पू. प. में शाश्वत भोगभूमि (द. उ. में) उत्कृष्ट					
पर्वत—नील	१६८४२ $\frac{2}{19}$	९४१५६ $\frac{2}{19}$	४००		वैडूर्यमणि	९	१००	१००	५०
क्षेत्र—रम्यक	८४२१ $\frac{1}{19}$	७३९०१ $\frac{17}{19}$		भोगभूमिमध्यम					
पर्वत—रुक्मी	४२१० $\frac{10}{19}$	५३९३१ $\frac{6}{19}$	२००		रजतमय	८	५०	५०	२५
क्षेत्र—हैरण्यत	२१०५ $\frac{12}{19}$	३७६७४ $\frac{16}{19}$		भोगभूमिजघन्य					
पर्वत—शिखरी	१०५२ $\frac{12}{19}$	२४९३१ $\frac{18}{19}$	१००		सुवर्णमय	११	२५	२५	१२,१/२
क्षेत्र—ऐरावत	५२६ $\frac{6}{19}$	११४७१ $\frac{5}{19}$		कर्मभूमि और भोग-भूमि। अशाश्वत					



अयोध्या नगरी की ऐतिहासिकता

'इतिहासमनीषी' डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ

आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति मे किसी व्यक्ति, स्थान या घटना की ऐतिहासिकता पुष्ट ऐतिहासिक तथ्यो के आधार पर मान्य की जाती है। धार्मिक अनुश्रुतियो अथवा परम्परया मान्यताओ के अनुसार लोक जिस तथ्य के अस्तित्व मे प्राय असंदिग्ध रूप से विश्वास करता आता है, यह आवश्यक नही है कि वह ऐतिहासिक भी हो। जब तक उसकी ऐतिहासिकता प्रमाण सिद्ध नही हो जाती वह ऐतिहासिक स्वीकार नही किया जा सकता। तब भी उसकी ऐतिहासिकता उसी सीमा तक मान्य की जाती है जितना कि वह सिद्ध होती है।

जहाँ तक पवित्र तीर्थभूमि अयोध्या का प्रश्न है, उसके सम्बन्ध मे भी यही प्रक्रिया लागू होती है। किन्तु साथ ही इस विषय मे दा प्रकार से विचार किया जाता है। एक तो अयोध्या नाम एव उसके लोक प्रचलित माहात्म्य की प्राचीनता क्या और कितनी है। दूसरे जिस स्थान के साथ वर्तमान मे उक्त प्राचीन पौराणिक अयोध्या को चीह्ना जाता है, उसक साथ उक्त नाम के सम्बद्ध रहने की प्राचीनता क्या और कितनी है। दोनो ही प्रक्रियाओ मे शुद्ध ऐतिहासिकता प्रमाणा की सीमा मे ही विचार किया जाता है।

जैनो के धार्मिक विश्वास एव जैन पौराणिक अनुश्रुतियो के अनुसार जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के अन्तर्गत आर्यखड मे, जिसक उत्तर मे हिमवान् पर्वत और दक्षिण मे विजयार्ध पर्वत है, तथा पश्चिम मे महानगरी सिन्धु और पूर्व मे महानदी गगा प्रवाहित है, उस क्षेत्र के प्राय केन्द्र मे अयाध्या की स्थिति है। प्रत्येक कल्पकाल की अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी के चतुर्थ-काल मे जो एक के पश्चात् एक चौबीस तीर्थंकर होते है, उन सबका जन्म इस देवनिर्मित अयोध्या नगरी मे ही होता है। इस प्रकार भरत-क्षेत्रीय तीर्थंकरो की जन्मभूमि की स्थिति और उसका अयोध्या नाम शाश्वत है। परन्तु तन्नाम नगरी शाश्वत नही है क्योकि छठे काल के अन्त मे जब प्रलय होता है तो इस क्षेत्र के समस्त नगर, बस्तिया व मनुष्यकृत समस्त निर्माण सर्वथा ध्वस्त एवं नाम शेष हो जाते है। पुन जब चतुर्थ जन्म का प्रारम्भ होता है और तत्सम्बन्धी चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर का



काल होने को होता है तो सर्वप्रथम अयोध्या नगरी का ही निर्माण होता है और उसकी सत्ता तत्तद् कर्मयुग के अन्त तक बनी रहती है। भोगयुग या भोगभूमि की रचना में नगर, गाँव आदि कुछ नहीं होते, केवल अकृत्रिम कल्पवृक्ष ही प्रकट होते हैं और बने रहते हैं।

वर्तमान में अवसर्पिणी नामक कल्पार्ध का पाँचवाँ आरा या काल चल रहा है। यह अवसर्पिणी कालदोष से हुण्डावसर्पिणी कहलाई क्योंकि इसमें सनातन नियमों से हटकर अनेक अपवाद घटित हुए। इसके पहले, दूसरे और तीसरे कालों में इस क्षेत्र में भोगभूमि की रचना रही। किन्तु जब कि कर्मभूमि का प्रारम्भ चौथे काल का प्रारम्भ होने पर होना था, वह तीसरे काल के अन्त के पूर्व हो गया। उस काल के अन्तिम भाग में चौदह कुलकर हुए जिनमें से अन्तिम सात का निवास वही क्षेत्र था जहाँ कालान्तर में अयोध्या नगरी बसी, अन्तिम कुलकर या मनु नाभिराय के समय तक समस्त कल्पवृक्ष शनैः-शनैः नष्ट हो गये थे, केवल 'सर्वतोभद्र' नामक एक विशाल कल्पवृक्ष बचा था, जिसमें वह स्वयं अपनी चिरसंगिनी मरुदेवी के साथ सुख से निवास करते थे। देवराज इन्द्र ने छः मास पूर्व ही यह जानकर कि माता मरुदेवी की कुक्षि में आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव का गर्भावतरण होने वाला है, अपने सहायक कुबेर को नगरी के निर्माण का आदेश दिया। अनादिनिधन अकृत्रिम स्वस्तिक चिह्न से स्थान की पहिचान करके और उक्त सर्वतोभद्र प्रासाद को मध्य में लेकर कुबेर ने पौषकृष्ण द्वितीया के शुभ दिन वहाँ एक अप्रतिम सुन्दर एवं विशाल नगरी का निर्माण किया तथा तदनन्तर छः मास पर्यन्त उक्त नगरी में नित्य स्वर्ण एवं रत्नों की वर्षा की। आदिपुराणकार स्वामी जिनसेन के कथनानुसार 'बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी, समस्त आश्चर्यों का निधान इस अयोध्या महानगरी की सुन्दरता का बखान कौन कर सकता है, जिसका सूत्रधार स्वयं देवराज इन्द्र था, व्यवस्थापक कुबेर था, शिल्पी स्वर्ग के देव थे और जिसकी निर्माण सामग्री के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी पड़ी थी। यहीं भगवान् आदिदेव का आषाढ़ कृष्ण द्वितीया के दिन गर्भावतरण हुआ, यहीं चैत्र कृष्ण नवमी के शुभ दिन उनका जन्म हुआ, और यहीं उन्होंने कर्मयुग एवं मानवी इतिहास के समय युग का ॐ नमः किया। अन्त में अपने लौकिक दायित्वों का चिरकाल पर्यन्त निर्वाह करके तथा ज्येष्ठ पुत्र महाभाग भरत को अयोध्या का राज्यभार सौंपकर, चैत्र कृष्ण नवमी के ही दिन नगर के बाहिर भाग में स्थित सिद्धार्थक नामक वन में प्रभु ने जैनेश्वरी दीक्षा ली, तथा छः मास पर्यन्त कायोत्सर्ग योग से स्थित रहकर तपश्चरण किया। इस प्रकार भरत क्षेत्र के वर्तमान युग की आद्यनगरी तथा प्रथम तीर्थंकर की जन्मभूमि अयोध्या का आविर्भाव हुआ। कालान्तर में प्रथमपुरी, ऋषभपुरी, इक्ष्वाकुपुरी या इक्ष्वाकु भूमि, साकेत, विनीता, कोशल, सुकोशला, कोशलपुरी, रामपुरी, अवधपुरी आदि कई अपरनाम भी उसे प्राप्त हुए। भगवान् ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र महाराज भरत इस युग के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् हुए और उन्हीं के नाम पर इस महादेश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

अन्य २३ तीर्थंकरों का जन्म भी नियमानुसार अयोध्या में ही होना था, किन्तु हुंडावसर्पिणी के दोष से केवल अजितनाथ (२ रे), अभिनंदननाथ (४ थे), सुमतिनाथ (५ वें) और अनन्तनाथ (१४ वें)—ऋषभदेव सहित कुल पाँच तीर्थंकरों का जन्म ही वहाँ हुआ, शेष का अन्य नगरों में हुआ। यों कई अन्य शलाकापुरुषों का जन्म अयोध्या में हुआ। २०वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थ में उत्पन्न दासरथि महाराज राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न के जन्म तथा रामराज्य के सौभाग्य का लाभ भी इसी नगर को मिला। प्रायः सभी तीर्थंकरों के समवसरण यहाँ

आये और अनेक जैन पुराण कथाओं से इस नगरीका सम्बन्ध रहा। अतएव अयोध्या जैन परम्परा की न केवल आदि तीर्थभूमि है वरन् उसके सर्वोपरि पावन तीर्थ क्षेत्रों में परिगणित है। साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि अयोध्या जिनधर्मानुयायियों का सनातन तीर्थ तो है किन्तु अयोध्या नगर शाश्वत नहीं है प्रत्येक कल्पार्ध के दस कोड़ाकोड़ी सागर में से अधिक से अधिक केवल एक कोड़ाकोड़ी सागर के कर्मयुग में ही उसका अस्तित्व या विद्यमानता रहती है, शेष नौ कोड़ाकोड़ी सागर जैसे सुदीर्घ काल में उसका कहीं कोई चिन्ह नहीं रहता।

वर्तमान में उक्त पुराणप्रसिद्ध अयोध्या की पहचान भारतीय राष्ट्र के उत्तर प्रदेश में अवध भू-भाग के फैजाबाद जिले के अन्तर्गत, फैजाबाद नगर से ७ कि० मी० तथा उत्तरी रेलवे की मेन लाइन के अयोध्या रेल स्टेशन से २ कि० मी० की दूरी पर, सरयू (घाघरा) नदी के दक्षिण तट पर स्थित अयोध्या नामक नगर से की जाती है। अब प्रश्न यह है कि क्या यह पहचान सही है, और क्या भगवान् ऋषभ के समय से लेकर अब तक इसका उसी रूप में इसी स्थान पर अस्तित्व निरन्तर बना रहा है ? यदि नहीं, तो उसकी ऐतिहासिक प्राचीनता क्या और कितनी है।

तिलोयपण्णत्ति, लोकविभाग, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिसंग्रह, त्रिलोकसार आदि जैन शास्त्रों में जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, भरतक्षेत्र के छः खंडों उसके हिमवत्, विजयार्ध, वृषभाचल आदि पर्वतों तथा गंगा, सिंधु आदि नदियों के आकार-प्रकार, विस्तारों व अन्य भौगोलिक स्थितियों के जो विशद वर्णन प्राप्त हैं, उनके आधार से उक्त पौराणिक अयोध्या नगरी की स्थिति का निर्णय अथवा सही पहचान कर पाना प्रायः असम्भव है। दूसरे, आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव को निर्वाण गये भी लगभग एक कोड़ाकोड़ी सागर बीत चुका है, और एक सागर का कालमान आज के हिसाब से संख्यातीत, गणनातीत एवं अनुमानातीत है। भारतवर्ष की जो अयोध्या, वाराणसी, हस्तिनापुर, मथुरा, उज्जयिनी आदि पांच सात सर्वप्राचीन नगरियाँ हैं, उनमें से किसी भी की ऐतिहासिक प्राचीनता चार-पाँच हजार वर्ष से अधिक नहीं है, और इस बीच भी उनमें से अधिकतर कई बार सर्वथा उजड़कर पुनः-पुनः बसीं वा निर्मित हुई हैं अतएव यह कहना अत्यन्त दुष्कर है कि जैन शास्त्रों में वर्णित अयोध्या उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले में स्थित वर्तमान अयोध्या ही है।

ऐसी स्थिति में जैन शास्त्रों, पुराणों आदि को एक ओर रखकर ही यह विचार किया जा सकता है कि वर्तमान अयोध्या की ऐतिहासिकता प्राचीनता क्या और कितनी है, तथा जैनधर्म के साथ उसके संबंधों की भी ऐतिहासिक प्राचीनता क्या और कितनी है ?

ऐतिहासिक आधारों में सर्वप्रथम साहित्यिक साक्ष्य आते हैं और उनमें ऋग्वेदादि वेदों को प्राथमिकता दी जाती है। किन्तु ब्राह्मणीय वेदत्रयी में अयोध्या अथवा कोशल के नामोल्लेख भी नहीं मिलते, केवल अथर्ववेद (खंड २) में एक स्थल पर लिखा है कि 'देवताओं की बनाई अयोध्या में आठ महल, नवद्वार और हिरण्यमय धन का भंडार है। यह स्वर्ग की भाँति समृद्धिसम्पन्न है। शतपथ ब्राह्मण में केवल एक स्थान पर कोशल नाम आया है, पाणिनीय व्याकरण के एक सूत्र में भी कोशल नाम प्राप्त है तथा उस पर लिखित पातंजल महाभाष्य में यवनों द्वारा साकेत पर आक्रमण करने का उल्लेख है। प्रायः उसी काल (ईसापूर्व दूसरी-पहली शती) में रचित वाल्मीकीय रामायण से अयोध्या और उसके राजा रामचन्द्र की विशेष लोकप्रसिद्धि हुई। ब्राह्मणीय पुराणों के अनुसार वैवस्वत मनु इस प्रथमपुरी का निर्माता था और उसका पुत्र इक्ष्वाकु उसका प्रथम राजा

था, जिसकी ३८वी पीढ़ी में सगर चक्रवर्ती हुआ, ६३वीं पीढ़ी में रामचन्द्र, ९३वीं मे महाभारत युद्ध में भाग लेने वाला बृहद्बल और १२५वीं पीढ़ी में सुमित्र हुआ जिसे ई० पू० ४ थी शती में मगध के नंद सम्राट् ने समाप्त किया। इतिहासकार लगभग २० वर्ष की एक पीढ़ी मानकर उपरोक्त पौराणिक अनुश्रुति को व्यवस्थित करते हैं, अतः मनु द्वारा अयोध्या को स्थापना अब से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व, दाशरथि राम का समय लगभग चार हजार वर्ष पूर्व, महाभारत काल लगभग साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्व अनुमान करते हैं। इस आधार से भी वर्तमान अयोध्या की प्राचीनता पाँच हजार वर्ष से अधिक नहीं जाती। पुरातात्त्विक उत्खननों के परिणाम इस स्थान की प्राचीनता तीन हजार वर्ष सूचित करते हैं। राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से भगवान् महावोर और गौतम बुद्ध के समय (ई० पू० ६ठी शती) में यह नगर विद्यमान था, ई० पू० ४ थी शती में नंदनरेश ने अयोध्या के मणिपर्वत पर एक जैन स्तूप बनवाया था, ई० पू० २ री व १ ली शती के शिलालेख, सिक्के तथा कतिपय भग्नावशेष भी वहाँ मिले हैं। तबसे वर्तमान पर्यन्त किसी न किसी रूप में यह स्थान तथा इसका अयोध्या नाम बने रहे हैं।

इस प्रसंग में यह ध्यातव्य है कि अतीत में जब से भी इस अयोध्या के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं, एक पवित्र प्राचीन तीर्थ क्षेत्र के रूप में इसका संबंध जैनधर्म के साथ भी जुड़ा मिलता है। बल्कि प्राचीन ब्राह्मणीय एवं बौद्ध साहित्य में अयोध्या के विषय में जो मौन या उपेक्षा लक्षित होती है, उसका कारण यही प्रतीत होता है कि उस समय तक अर्थात् वाल्मीकीय रामायण के प्रचार के पूर्व उसका जैन परम्परा के साथ ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहता आया था। ब्राह्मणीय अनुश्रुतियों में भी जैन अनुश्रुतियों की ही तद्विषयक ध्वनि गूँजती दृष्टिगोचर होती है।

अस्तु इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आधुनिक ऐतिहासिक दृष्टि से, जब से भी वर्तमान अयोध्या के अस्तित्व के प्रमाण उपलब्ध हैं, और वे उसे कम से कम अढ़ाई सहस्र वर्ष पुरानी सूचित करते हैं तभी से अपने पवित्र तीर्थ क्षेत्र के रूप में प्रथम तीर्थंकर आदिदेव ऋषभ, प्रथम चक्रवर्ती भरत, चार अन्य तीर्थंकरों व कई अन्य शलाकापुरुषों की जन्मभूमि लीलाभूमि कल्याणक क्षेत्र आदि के रूप में जिनधर्मानुयायियों में इसकी मान्यता चली आ रही है। उन्होंने समय-समय पर यहाँ अनेक धर्मायतन बनवाये, धर्मोत्सव किए और सम्पूर्ण देश के कोने-कोने से इस तीर्थ की यात्रार्थ आते रहे है।





जैनदर्शन में भूगोल और खगोल

क्षु० श्री पूर्णसागरजी

जैनदर्शन में विश्व की सिद्धि बड़े रोचक ढंग से सत्य सरल और सुगम रीति से की गयी है, कि जो अनेक द्रव्यों का समुदाय है उसका नाम विश्व है। ऐसे विश्व में द्रव्यें एक दूसरे को बाधा न देते हुए ठसाठस भरी हुई हैं। विश्व में ऐसा कोई भी स्थान शेष नही है जहाँ द्रव्यों का अस्तित्व नहीं हो, अर्थात् सम्पूर्ण विश्व में द्रव्य ठसाठस भरी हुई है।

द्रव्यें जाति अपेक्षा से छः हैं—जीव द्रव्य, पुद्गल द्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, और काल द्रव्य। प्रत्येक द्रव्यों के प्रदेश संख्या आदि पृथक्-पृथक् हैं जैसे—

द्रव्य	प्रदेश	संख्या
जीव द्रव्य	असंख्यात	अनंत
पुद्गल द्रव्य	एक, संख्यात, असंख्यात, अनंत	[जीव की अपेक्षा] अनंतानंत
धर्म द्रव्य	असंख्यात	एक
अधर्म द्रव्य	असंख्यात	एक
आकाश द्रव्य	अनंत	एक
काल द्रव्य	एक	असंख्यात

छहों द्रव्यों में सबसे अधिक प्रदेश आकाश द्रव्य के हैं। वह आकाश द्रव्य सबसे बड़ा है, अखंड है फिर भी दो रूप है—लोकाकाश और अलोकाकाश। जहाँ छहों द्रव्यों की विद्यमानता रहती है उसका नाम लोकाकाश है, और जहाँ मात्र एक ही आकाश द्रव्य रहता है उसका नाम अलोकाकाश है। लोकाकाश पुरुषाकार है—जैसे कोई पुरुष अपनी कमर पर दोनों हाथ रखकर दोनों पैरों को फैलाकर खड़ा हो जाये, बस उसी आकार का लोकाकाश है। यह लोकाकाश—१४ राजू लम्बा, ७ राजू मोटा और क्रमशः नीचे से लेकर सात राजू, एक राजू, पाँच राजू और एक राजू चौड़ा है। इस लोक के बीचों बीच चौदह राजू लम्बी और एक राजू चौड़ी एक त्रस नाली है, जिसमें कि त्रस स्थावर जीव रहते हैं। त्रस जीवों का निवास १३ राजू में है। अन्त के [नीचे] एक राजू



लोकाकाश में निगोद है अर्थात् एकेन्द्री निगोदिया जीवों का निवास है, इस प्रकार गणित करने पर लोक का क्षेत्रफल ३४३ घन राजू होता है।

यह लोक सभी तरफ से तीन वातवलयों से वेष्टित है। अर्थात् लोक घनोदधि वातबलयों से, घनोदधि वातवलय घन वातवलय से, और घनवात वलय तनुवात वलय से वेष्टित है तथा तनुवातवलय आकाश के आश्रय है। इस प्रकार यह लोक तीन रूप है। ऊर्ध्व लाक, मध्यलोक और अधोलोक।

मेरु पर्वत की जड़ से अधोलोक प्रारम्भ होता है वह अधोलोक सात राजू लम्बा [ऊँचा] सात राजू मूल से घटता-घटता एक राजू प्रमाण चौड़ा तथा सात राजू गहरा है। इस अधोलोक में चित्रा भूमि से नीचे खर भाग में असुरकुमार, भवनवासी तथा व्यंतर देवों के निवासस्थान हैं। पंक भाग में असुर तथा राक्षसों के निवासस्थान हैं। इनके नीचे अब्बहुल भाग वा छः पृथ्वियाँ [नरक] हैं।

नरक	पृथ्वी	मोटाई	ऊँचाई	बिल	प्रसतार
१ घम्मा	रत्नप्रभा	१,८०,००० यो०	कुछ कम १ राजू	३०,०००००	१३
२ वंशा	शर्कराप्रभा	३२,००० यो०	" "	२५,०००००	११
३ मेघा	वालुकाप्रभा	२८,००० यो०	" "	१५,०००००	९
४ अंजना	पंकप्रभा	२४,००० यो०	" "	१०,०००००	७
५ अरिष्टा	धूमप्रभा	२०,००० यो०	" "	३,०००००	५
६ मघवी	तमःप्रभा	१६,००० यो०	" "	९९९९५	३
७ माघवी	महातमःप्रभा	८,००० यो०	" "	^	१
			एक राजू प्रमाण नीचे निगोद है	कुल ५	

लोक के ठीक बीचोंबीच झल्लरी के आकार वाला मध्य लोक है। जिसका दूसरा नाम तिर्यक लोक है जो कि एक राजू चौड़ा तथा १,०००४० योजन ऊँचा और सात राजू गहरा है।

इस प्रकार यह मध्य लोक असंख्यात द्वीप समुद्रों से वेष्टित है। इसके बीच वाले द्वीप का नाम जम्बूद्वीप है जो थाली के आकार का है। यहाँ पर जम्बू [जामुन] वृक्ष के आकार वाला पृथ्वी काय एक बड़ा विशाल वृक्ष है। जिससे इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ा।

इस जम्बूद्वीप को चारों ओर से घेरे हुए असंख्यात समुद्र वा द्वीप हैं। जैसे—लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र, पुष्करवर समुद्र, वारुणीवर समुद्र, क्षीरवर समुद्र, घृतवर समुद्र, स्वयंभूरमण आदि समुद्र। समुद्रों का जल विभिन्न प्रकार के रंग वा स्वाद वाला है।

समुद्र	रंग वा स्वाद	जीव है या नहीं
लवण समुद्र	नमक के समान	जीव पाये जाते हैं।
कालोदधि समुद्र	सामान्य पानी सदृश	जीव पाये जाते हैं।
पुष्करवर समुद्र	सामान्य पानी सदृश	जीव नहीं पाये जाते।
वारुणीवर समुद्र	मद्य के सदृश	जीव नही पाये जाते।
क्षीरवर समुद्र	दूध के सदृश	जीव नही पाये जाते।

घृतवर समुद्र	घी के सदृश	जीव नहीं पाये जाते।
स्वयंभूरमण समुद्र	सामान्य जल के सदृश	जीव पाये जाते हैं।

शेष समुद्र मधुर रस वाले सुस्वादु है। तथा जीवों से रहित हैं।

इस प्रकार मध्य लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। वे एक दूसरे से दूने दूने विस्तार वाले हैं। ऐसे उस मध्य लोक के बीचों बीच जो जम्बूद्वीप है उसमें सात महाक्षेत्र हैं। प्रत्येक क्षेत्र से लगा हुआ एक एक महापर्वत हैं। उन पर्वतों की भी संख्या छः है।

पर्वत	ऊँचाई	रंग	तालाब	नदियाँ
हिमवान	१०० योजन	सोने के समान	पद्म	३ गंगा सिन्धु रोहितास्या
महाहिमवान	२०० योजन	चाँदी के समान	महापद्म	२ रोहित हरिकान्ता
निषध	४०० योजन	तप्त स्वर्ण समान	तिगिञ्छ	२ हरित सीतोदा
नील	४०० योजन	वैडूर्य मणि	केसरी	२ सीता नरकान्ता
रुक्मी	२०० योजन	चाँदी के सदृश	पुण्डरीक	२ नारी रूप्यकूला
शिखरी	१०० योजन	सुवर्ण के सदृश	महापुण्डरीक	३ स्वर्णकूला, रक्ता, रक्तोदा

प्रत्येक पर्वत पर एक एक तालाब है। वह भी अपनी अपनी सीमा को लिए हुए है। उनमें से १४ महानदियाँ निकली हैं। पहले और छठवें तालाब से ३-३ नदियाँ निकली तथा शेष तालाबों से २-२ नदियाँ निकली हैं जो कि क्रमशः पूर्व और पश्चिम दिशा की ओर बह कर समुद्र में मिली हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीप की रचना जैसी उत्तर में है वैसे ही पूर्व में समझना चाहिए। जम्बूद्वीप के बीचों बीच सुमेरु पर्वत है जिसको ज्योतिषवासी देव १,१२१ योजन छोड़कर प्रदक्षिणा पूर्वक भ्रमण करते रहते हैं। इन ज्योतिषवासी देवों के विमान चमकीले हैं। ज्योति जैसे प्रकाशमान हैं। इसलिए इन्हें ज्योतिष्क देव कहते हैं। इनके विमान चित्रा पृथ्वी से लेकर ७९० योजन के ऊपर ९०० योजन के नीचे हैं अर्थात् ११० योजन में समस्त ज्योतिर्वासी देवों का निवास स्थान है। जैसे चित्रा भूमि से ७९० योजन ऊपर तारे, उनसे १० योजन ऊपर सूर्य, उनसे ८० योजन ऊपर चन्द्र, वहाँ से ४ योजन ऊपर नक्षत्र, उनसे ४ योजन ऊपर बुध, वहाँ से ३ योजन ऊपर शुक्र, वहाँ से ३ योजन ऊपर बृहस्पति, वहाँ से तीन योजन ऊपर में मंगल है, वहाँ से तीन योजन ऊपर शनैश्चर विचरण करते हैं। ये देव जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड, पुष्करार्द्ध ढ़ाईद्वीप तथा लवण और कालोदधि दो समुद्र में ही विचरण करते हैं, बाहर नहीं, बाहर गमन से रहित होते हैं। इसलिये ढाई द्वीप के बाहर रात-दिन क्रम नहीं होता।

मेरु पर्वत की चोटी [अग्रभाग से १ एक बाल के अन्तराल] से ऊर्ध्वलोक शुरू हो जाता है, ऊर्ध्व लोक १ लाख, ६१ योजन, ४२५ धनुष और एक बाल कम ७ राजू प्रमाण है। इसमें १६ स्वर्ग, ९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश, ५ अनुत्तर और सिद्धशिला है।

१६ स्वर्ग

कल्प	अवगाहना	आयु उत्कृष्ट	आयु जघन्य	लेश्या
सौधर्म	७ हाथ	२ सागर से अधिक	एक पल्योपम से अधिक	मध्यम पीत लेश्या
ईशान	७ हाथ	" " "	" " "	मध्यम पीत
सानत्कुमार	६ हाथ	७ " "	२ " "	उ० पीत म० पद्म ले०
माहेन्द्र	६ हाथ	" " "	" " "	" " " "
ब्रह्म	५ हाथ	१० " "	७ " "	मध्यम पद्म लेश्या
ब्रह्मोत्तर	५ हाथ	" " "	" " "	" " " "
लांतव	५ हाथ	१४ " "	१० सागर से अधिक	मध्यम पद्म लेश्या
कापिष्ठ	५ हाथ	१४ " "	१० " "	" " " "
शुक्र	४ हाथ	१६ " "	१४ " "	म० पद्म ज० शु० ले०
महाशुक्र	४ हाथ	१६ " "	१४ " "	" " " "
सतार	४ हाथ	१८ " "	१६ " "	" " " "
सहस्रार	४ हाथ	१८ " "	१६ " "	" " " "
आनत	३½ हाथ	२० सागर	१८ " "	शुक्ल लेश्या
प्राणत	३½ हाथ	२० सागर	१८ " "	" " " "
आरण	३ हाथ	२२ सागर से अधिक	२० सागर	" " " "
अच्युत	३ हाथ	२२ " "	२० सागर	" " " "

इस प्रकार सोलह स्वर्ग हैं। इनके ऊपर नौ ग्रैवेयक हैं। वे इस प्रकार हैं—

९ ग्रैवेयक

सुदर्शन	१½ हाथ	२३ सागर	२२ सागर	मध्यम शुक्ल ले०
अमोघ	" "	२४ सागर	२३ सागर	" " "
सुप्रबुद्ध	" "	२५ सागर	२४ सागर	" " "
यशोधर	" "	२६ सागर	२५ सागर	" " "
सुभद्र	" "	२७ सागर	२६ सागर	" " "
सुविशाल	" "	२८ सागर	२७ सागर	" " "
सुमनस	" "	२९ सागर	२८ सागर	" " "
सौमनस	" "	३० सागर	२९ सागर	" " "
प्रीतिंकर	" "	३१ सागर	३० सागर	" " "

इस प्रकार नौ ग्रैवेयक हैं। इसके ऊपर नौ अनुदिश हैं। वे इस प्रकार हैं—

९ अनुदिश

अर्चि	एक हाथ	३२ सागर	३१ सागर	उत्कृष्ट शुक्ल ले०
अर्चिमालिनी	" "	३२ सागर	३१ सागर	" " "
वैर	" "	३२ सागर	३१ सागर	" " "
वैरोचन	" "	३२ सागर	३१ सागर	" " "
सोम	" "	३२ सागर	३१ सागर	" " "
सोमरूप	" "	३२ सागर	३१ सागर	" " "
अंक	" "	३२ सागर	३१ सागर	" " "
स्फटिक	" "	३२ सागर	३१ सागर	" " "
आदित्य	" "	३२ सागर	३१ सागर	" " "

इस प्रकार नौ अनुदिश हैं। इनमें से आदित्य विमान मध्य में, अर्चि अर्चिमालिनी आदि ४ क्रम से पूर्वादिक चार दिशाओं में हैं। एवं सोम आदि चार विमान विदिशा में हैं। दिशा में जो विमान हैं उन्हें श्रेणीबद्ध विमान कहते हैं और विदिशा में जो विमान है उन्हें प्रकीर्णक कहते है।

इनके ऊपर पाँच अनुत्तरविमान हैं।

विजय	एक हाथ	३३ सागर	३२ सागर	उत्कृष्ट शुक्ल ले०
वैजयंत	" "	३३ सागर	३२ सागर	" " "
जयंत	" "	३३ सागर	३२ सागर	" " "
अपराजित	" "	३३ सागर	३२ सागर	" " "
सर्वार्थसिद्धि	" "	३३ सागर	३२ सागर	" " "

इस प्रकार पाँच अनुत्तर विमानों के मध्य में सर्वार्थसिद्धि है और चारों दिशाओं में विजय आदि शेष विमान श्रेणीबद्ध हैं। सर्वार्थसिद्धि के ऊपर सिद्धशिला है जो कि १ राजू चौड़ी, ७ राजू गहरी वा आठ योजन ऊँची है। उस सिद्धशिला के ऊपरी भाग में तीन वातवलय हैं। जहाँ कि अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठियों का आवास है। ऐसे त्रिलोकीनाथ, नित्य-निरंजन निर्विकार, निराकार, सच्चिदानंदी, अनंत गुणों के सागर, त्रिलोकवंदनीय ऐसे सर्वसिद्धों को मेरा बारम्बार नमस्कार है।



नय-व्यवस्था

पं० छोटेलाल बरैया धर्मालंकार, उज्जैन

जैनदर्शन में वस्तु विचार के लिये दो विभाग किये हैं—एक प्रमाण और दूसरा नय। जिनागम में नय को दो विभागों में विभक्त किया है—एक द्रव्यार्थिक दूसरा पर्यायार्थिक नय। पर्याय नय या पर्यायार्थिक नय सामान्य और विशेष इन दोनों में रहने वाले अंशों (धर्मों) को अविरोध रूप से रहने वाले अनेक धर्मयुक्त पदार्थ को समग्र रूप से जानना प्रमाण ज्ञान है। यह वही है ऐसा प्रतीत सामान्य और प्रतिक्षण में परिवर्तित होने वाली पर्यायों को प्रतीति विशेष कहते हैं।

सामान्य ध्रौव्य रूप में सदैव रहा करता है, और विशेष पर्याय रूप में। प्रमाणात्मक ज्ञान दोनों अंशों को युगपद् ग्रहण करता है, नय एक-एक अंश को पृथक्-पृथक्। पर्यायों को गौण करके द्रव्य को मुख्यता से कथन किया जाना द्रव्यार्थिक नय है। इस भेद-प्रभेद की ओर दृष्टि नहीं रहा करती है। अंशों का नाम पर्याय है। उन अंशों में अंशांश है और उन अंशांशों का जो विषय है वही पर्यायार्थिक नय है। पर्यायार्थिक नय को ही व्यवहार नय कहते हैं। व्यवहार नय का स्वरूप "व्यव-हरणं-व्यवहारः" वस्तु के भेद कर कथन करना व्यवहार नय है। यह गुणगुणी का भेद करके वस्तु का निरूपण करता है। इसलिये इसे अपरमार्थिक कहकर बतलाया है।

व्यवहार नय के जिनागम में जैनाचार्यों ने तीन भेद बतलाये हैं—एक सद्भूत, दूसरा असद्भूत और तीसरा उपचरित या अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय। इस प्रकार तीन विभागों में विभक्त कर नय व्यवस्था कायम की है।

१. एक खण्ड को भेद रूप विषय करने वाले ज्ञान को सद्भूत व्यवहार नय कहते हैं। जैसे—जीव के केवलज्ञानादि मतिज्ञानादिक गुणों का ग्रहण करना उसे सद्भूत व्यवहार नय कहते हैं।

२. मिले हुए भिन्न पदार्थो को अभेद रूप ग्रहण करना। जैसे यह शरीर मेरा है। मिट्टी के घड़े को घी का घड़ा कहना। यह असद्भूत व्यवहार नय है।

३. अत्यन्त भिन्न पदार्थ को अभेद रूप ग्रहण करना। जैसे हाथी, घोड़ा, महल, मकान, स्त्री पुत्रादिक मेरे है इस प्रकार की मान्यता को उपचरित या अनुपचरित नय कहते हैं।

वास्तव में शुद्ध द्रव्य की अपेक्षा से क्रोधादिक जीव के भाव नहीं है, ये तो कर्मों के सम्बन्ध से आत्मा के विकृत परिणाम हैं। दोनों के उपचरित या अनुपचरित ये दो भेद हैं। पदार्थ के भीतर की शक्ति को विशेष की अपेक्षा से रहित सामान्य दृष्टि से निरूपण करने को उपचरित नय कहा जाता है। अवरुद्धतापूर्वक किसी हेतु से उस वस्तु का उसी वस्तु में उपचार नहीं किया जाता है यह उपचरित नय का विषय है।

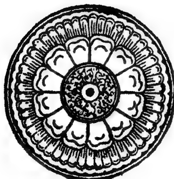
अबुद्धिपूर्वक होने वाले क्रोधादिक भावों में जीव के भावों की विवक्षा करना उपचरित व्यवहार नय है। औदयिक क्रोधादिक भाव बुद्धि पूर्वक हों उन्हें जीव का कहना भी उपचरित नय का विषय है।

व्यवहार नय का विषय व्यवहरण में है उसके विपरीत प्रतिपादक निश्चय नय कहलाता है। क्यों कि निश्चय नय वस्तु के वास्तविक स्वरूप पर प्रकाश डालता है या कहता है अथवा बतलाता है। जबकि व्यवहार नय जीव के केवलज्ञान आदि का स्वामी निरूपण करता है उसी को निश्चय नय (जीव को) अनन्त गुणों का अखंड पिण्ड स्वीकार करता है। क्योंकि जीव अनन्त गुणों का अखंड स्वामी है। अभिन्नता में गुण-गुणी का भेद करना ही व्यवहार है निश्चय नय उसका निषेध करता है।

द्रव्यार्थिक नय का दूसरा नाम निश्चय नय है। निश्चय नय निषेध के द्वारा ही वस्तु के अवक्तव्य स्वरूप का प्रतिपादन करता है। जीव का जो इस शरीर के साथ सम्बन्ध है वह व्यवहार नय की दृष्टि से। इसी नय की अपेक्षा देव पूजा, गुरु उपासना, दानादि धर्म है। एकान्त रूप से न केवल व्यवहार नय ग्राहक है और न निश्चय नय। दोनों ही नय अपने अपने स्थान पर मान्य हैं।

यदि कोई व्यक्ति एकान्त पकड़ता है तो वह व्यक्ति अपनी आत्मवंचना ही करता है। इसीलिये आचार्यों ने नाशवान् शरीर के साथ जीव के सम्बन्ध का जो संकेत किया है वह निश्चय नय की दृष्टि द्वारा अपने स्वरूप का चिन्तवन करने की विधा है। व्यवहार नय की अपेक्षा यह मोह आदि आत्मा का विकृत स्वरूप है। लेकिन निश्चय नय की अपेक्षा से आत्मा का स्वरूप नहीं है।

अतः उपरोक्त दोनों नयों को जानकर वाद-विवाद में पड़ना ही अपना अहित करना है। पर पदार्थों से ममत्व हटाकर वस्तु स्वरूप को यथार्थ नय दृष्टि द्वारा समझ कर अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहिये। आगम नय व्यवस्था का प्रतिपादक है उस समय दर्पण में यथार्थ प्रतिबिम्ब देख अपने आत्मकल्याण में लीन होना चाहिये।





कर्म और कर्मबन्ध

श्री राजीव प्रचंडिया, एडवोकेट, अलीगढ़

सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं का बना हुआ सूक्ष्म/अदृश्य शरीर वस्तुतः कार्माणशरीर कहलाता है। यह कार्माणशरीर आत्मा में व्याप्त रहता है। आत्मा का जो स्वभाव (अनन्त ज्ञान-दर्शन, अनन्त आनन्द शक्ति आदि) है, उस स्वभाव को जब यह सूक्ष्म शरीर विकृत/आच्छादित करता है तब यह आत्मा सांसारिक/बद्ध हो जाता है अर्थात् राग-द्वेषादिक काषायिक भावनाओं के प्रभाव में आ जाता है अर्थात् कर्मबन्ध में बँध जाता है जिसके फलस्वरूप यह जीवात्मा अनादिकाल से एक भव/योनि से दूसरे भव/योनि में अर्थात् अनन्त भवों/योनियों में इस संसार-चक्र में परिभ्रमण करता रहता है।

'कर्म' जैसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त का सूक्ष्म तथा वैज्ञानिक विश्लेषण जितना जैनदर्शन करता है उतना विज्ञानसम्मत अन्य दर्शन नहीं। जैनदर्शन के समस्त सिद्धान्त/मान्यताएँ वास्तविकता से अनुप्राणित, प्रकृति अनुरूप तथा पूर्वाग्रह से सर्वथा मुक्त हैं। फलस्वरूप जैनधर्म एक व्यावहारिक तथा जीवनोपयोगी धर्म है।

'कर्म-बन्धन' की प्रणाली को समझने के लिये जैनदर्शन में निम्न पाँच महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख निरूपित है यथा—१. आस्रव, २. बंध, ३. संवर, ४. निर्जरा, ५. मोक्ष।

मनुष्य जब कोई कार्य करता है, तो उसके आस-पास के वातावरण में क्षोभ उत्पन्न होता है जिसके कारण उसके चारों ओर उपस्थित कर्म-शक्तियुक्त सूक्ष्म पुद्गल परमाणु/कार्माणवर्गणा/कर्म आत्मा की ओर आकर्षित होते हैं। इनका आत्मा की ओर आकृष्ट होना आस्रव तथा आत्मा के साथ क्षेत्रावगाह (एक ही स्थान में रहने वाला) सम्बन्ध बन्ध कहलाता है। इन परमाणुओं को आत्मा की ओर आकृष्ट न होने देने की प्रक्रिया वस्तुतः संवर है। निर्जरा आत्मा से इन सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं के छूटने का विधि-विधान है तथा आत्मा का सर्व प्रकार के कर्म-परमाणुओं से मुक्त होना मोक्ष है। वास्तव में कर्मों के आने का द्वार आस्रव है जिसके माध्यम से कर्म आते हैं। संवर के माध्यम से यह द्वार बन्द



होता है अर्थात् नवीन कर्मों का आगमन रुक जाता है तथा जो कर्म आश्रव द्वार द्वारा पूर्व ही बद्ध/सचित किये जा चुके है निर्जरा अर्थात् तप/साधना द्वारा ही दूर/क्षय किया जा सकता है। इस प्रकार सवर और निर्जरा मुक्ति के कारण है तथा आस्रव और बन्ध संसार-परिभ्रमण के हेतु हैं। इन उपर्युक्त पाँच बातो को जैनदर्शन मे तत्त्व कहा गया है। यह निश्चित है कि तत्त्व को जाने/समझे बिना कर्म रहस्य को समझ पाना नितान्त असम्भव है। मोक्षमार्ग मे तत्त्व अपना विशिष्ट महत्त्व रखते है।

तस्य भावस्तत्त्वम्' अर्थात् वस्तु के सच्चे स्वरूप को जानना तत्त्व कहलाता है अर्थात् जो वस्तु जैसी है, उस वस्तु के प्रति वही भाव रखना, तत्त्व है। किन्तु वस्तु स्वरूप के विपरीत जानना और मानना मिथ्यात्व/उल्टी मान्यता/यथार्थ ज्ञान का अभाव है। यह मिथ्यात्व काषायिक भावनाओ [क्रोध-मान-माया और लोभ) तथा अविरति (हिंसा-झूठ-प्रमाद) आदि मनोविकारो को जन्म देता है, जिसमे कर्मो का आस्रव-बन्ध होता है। उपरोक्त तत्त्वो को सही-सही रूप मे जान लेने/सम्यग्दर्शन के पश्चात् पर-स्वभेद बुद्धि को समझकर/सम्यग्ज्ञान के तदनन्तर इन तत्त्वो के प्रति श्रद्धान तथा भेद-विज्ञान पूर्वक इन्हे स्व मे लय करने/सम्यग चारित्र से कर्मों का सवर-निर्जरा होता/होती है। निजरा हो जाने पर तथा समस्त कर्मों से मुक्ति मिलने पर ही जीव ससार के आवागमन से छूट जाता है/निर्वाण पद प्राप्त कर लेता है।

जैनदर्शन मे कार्माणवर्गणा/कर्मशीलयुक्त परमाणु/कर्म को मूलत दो भागो मे विभक्त किया गया है। एक तो वे कर्म जो आत्मा के वास्तविक स्वरूप का घात करते है, घातिकर्म कहलाते है जिनके अन्तर्गत ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्म आते है तथा दूसरे वे कर्म जिनके द्वारा आत्मा के वास्तविक स्वरूप के आघात की अपेक्षा जीव की विभिन्न योनियाँ, अवस्थाएँ तथा परिस्थितियाँ निर्धारित हुआ करती हैं, अघातिकर्म कहलाते है इनमे नाम, गोत्र, आयु और वेदनीयकर्म समाविष्ट है।

ज्ञानावरणीयकर्म—कार्माणवर्गणा/कर्म-परमाणुओ का वह समूह जिससे आत्मा का ज्ञान गुण प्रच्छन्न रहता है, ज्ञानावरणीयकर्म कहलाता है। इस कर्म के प्रभाव मे आत्मा के अन्दर ज्ञान-शक्ति क्षीण होती जाती है। फलस्वरूप जीव रूढि-क्रियाकाण्डो मे ही अपना सम्पूर्ण जीवन नष्ट करता है। इस कर्म के क्षय के लिए सतत स्वाध्याय अपेक्षित है।

दर्शनावरणीयकर्म—कर्म शक्ति युक्त परमाणुओ का वह समूह जिसके द्वारा आत्मा का अनन्त दर्शन स्वरूप अप्रकट रहता है, दर्शनावरणीय कर्म कहलाता है। इस कर्म के कारण आत्मा अपने सच्चे स्वरूप को पहिचानने मे असमर्थ रहता है। फलस्वरूप वह मिथ्यात्व का आश्रय लेता है।

मोहनीयकर्म—इस कर्म के अन्तर्गत वे कार्माणवर्गणाएँ आती है जिनके द्वारा जीव मे मोह उत्पन्न होता है। यह कर्म आत्मा क शान्ति-सुख-आनन्द स्वभाव को विकृत करता है। मोह के वशीभूत जीव स्व-पर का भेद विज्ञान भूल जाता है। समाज मे व्याप्त सघर्ष इसी के कारण हैं।

अंतरायकर्म—आत्मा मे व्याप्त ज्ञान-दर्शन-आनन्दस्वरूप के अतिरिक्त अन्य सामर्थ्य शक्ति को प्रकट करने मे जो कम-परमाणु बाधा उत्पन्न करते हैं वे सभी अन्तरायकर्म के अन्तर्गत आते

हैं। इस कर्म के कारण ही आत्मा में व्याप्त अनन्त शक्ति का ह्रास होने लगता है। आत्मविश्वास की भावना, संकल्पशक्ति तथा साहस वीरता आदि मानवीय गुण प्रायः लुप्त हो जाते हैं।

नामकर्म—इस कर्म के द्वारा जीव एक योनि से दूसरी योनि में जन्म लेता है तथा उसके शरीरादि का निर्माण भी इन्हीं कर्म-वर्गणाओं के द्वारा हुआ करता है।

गोत्रकर्म—कर्म परमाणुओं का वह समूह जिनके द्वारा यह निर्धारित होता है कि जीव किस गोत्र, कुटुम्ब, वंश, कुल, जाति तथा देश आदि में जन्म ले, गोत्रकर्म कहलाता है। ये कर्म परमाणु जीव में अपने जन्म की स्थिति के प्रति मान-स्वाभिमान तथा ऊँच-नीच भाव आदि का बोध कराते हैं।

आयुकर्म—इस कर्म के द्वारा जीव की आयु निश्चित हुआ करती है। स्वर्ग-तिर्यञ्च-नरक-मनुष्य गति में कौन सी गति जीव को प्राप्त हो, यह इसी कर्म पर निर्भर करता है।

वेदनीयकर्म—इस कर्म द्वारा जीव को सुख-दुःख की वेदना का अनुभव हुआ करता है।

इन अष्टकर्मों की एक सौ अड़तालीस उत्तर प्रकृतियाँ जैनागम में उल्लिखित हैं जिनमें ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की नौ, वेदनीय की दो, मोहनीय की अट्ठाईस, आयु की चार, नाम की तेरानवे, गोत्र की दो, तथा अन्तराय की पाँच उत्तर प्रकृतियाँ हैं।

उपरोक्त कर्म-परमाणुओं के भेद-प्रभेदों का सम्यक्ज्ञान होने के उपरान्त यह सहज में कहा जा सकता है कि घाति-अघाति कर्म आत्मा के स्वभाव को आच्छादित कर जीव में ज्ञान, दर्शन व सामर्थ्य शक्ति को क्षीण करते हैं तथा ये कर्म जीव पर भिन्न-भिन्न प्रकार से अपना प्रभाव डालते हैं जिसके फलस्वरूप संसारी जीव सुख-दुःख के घेरे में घिरे रहते हैं।

इन अष्टकर्मों के अतिरिक्त 'नोकर्म' का भी उल्लेख आगम में मिलता है। कर्म के उदय से होने वाला वह औदारिक शरीरादि रूप पुद्गल परिणमन जो आत्मा के सुख-दुःख में सहायक होता है, वस्तुतः 'नोकर्म' कहलाता है। ये 'नोकर्म' भी जीव पर अन्य कर्मों की भाँति अपना प्रभाव डाला करते हैं।

जैनदर्शन की मान्यता है कि प्रत्येक प्राणी अपने ही कृतकर्मों से कष्ट पाता है। आत्मा स्वयं अपने द्वारा ही कर्मों की उदीरणा करता है, स्वयं अपने द्वारा ही उनकी गर्हा-आलोचना करता है और अपने कर्मों के द्वारा कर्मों का संवर—आस्रव का निरोध भी करता है। यह निश्चित है कि व्यक्ति जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। ऐसा कदापि नही होता कि कर्म कोई करे और उसका फल कोई अन्य भोगे। इस दर्शन के अनुसार 'अप्पो वि य परमप्पो कम्म-विमुक्को य होई फुडं' अर्थात् प्रत्येक आत्मा कृतकर्मों का नाश करके परमात्मा बन सकता है। यह एक ऐसा दर्शन है जो आत्मा को परमात्मा बनने का अधिकार प्रदान करता है तथा परमात्मा बनने का मार्ग भी प्रस्तुत करता है किन्तु यहाँ परमात्मा के पुनःभवावतरण की मान्यता नहीं दी गई है। वास्तव में सर्व आत्माएँ समान तथा अपने आप में स्वतन्त्र और महत्त्वपूर्ण हैं। वे किसी अखण्ड सत्ता का अंश रूप नही हैं। किसी कार्य का कर्त्ता यहाँ परकीय शक्ति को नही माना गया है। अतः जैनदर्शन कर्मफल देने वाला कोई अन्य विशेष चेतन व्यक्ति अथवा ईश्वर को नहीं मानता। फलस्वरूप प्राणी अपने-अपने कर्मानुसार स्वयं कर्त्ता और उसका भोक्ता है।

जैनदर्शन में 'कर्म-बंध' के पाँच मुख्य हेतु—मिथ्यात्व, असंयम, प्रमाद, कषाय तथा योग (काय-मन-वचन की क्रिया)—उल्लिखित हैं। इनमें लिप्त रहकर जीव कर्म-जाल में बुरी तरह से जकड़ा रहता है। इनके मुक्त्यर्थ जीव को अपने भावों को सदैव शुद्ध रखने के लिये कहा गया है क्योंकि कोई भी कार्य करते समय यदि जीव की भावना शुद्ध तथा 'राग-द्वेष-निर्लिप्त, वीतरागी है, तो उस समय शारीरिक कार्य करते हुए भी किसी भी प्रकार का कर्मबन्ध जीव में नहीं होता। मूलतः जीव के मनोविकार ही कर्मबन्ध की स्थिति को स्थिर किया करते हैं। कार्य करते समय जिस प्रकार का भाव जीव के मन में उत्पन्न होता है, उसी भाव के तद्रूप ही जीव में कर्मबन्ध स्थिर हुआ करता है। प्रायः यह देखा-सुना जाता है कि विभिन्न व्यक्तियों द्वारा एक ही प्रकार के कार्य करने पर भी उनमें भिन्न-भिन्न प्रकार का कर्मबन्ध होता है। इसका मूल कारण है कि एक ही प्रकार के कार्य करते समय इन व्यक्तियों के भाव सर्वथा भिन्न प्रकार के होते हैं; फलस्वरूप इनमें भिन्न-भिन्न प्रकार का कर्मबन्ध होता है।

जैनदर्शन में कर्मबन्ध को चार भागों में विभाजित किया गया है यथा—१. प्रकृतिबन्ध, २. स्थितिबन्ध, ३. अनुभाग/अनुभवबन्ध, ४ प्रदेशबन्ध।

प्रकृतिबंध— जो बन्ध कर्मों की प्रकृति/स्वभाव स्थिर करता है, प्रकृतिबन्ध कहलाता है।

स्थितिबंध—यह बन्ध कर्म-फल की अवधि/काल को निश्चित करता है।

अनुभागबंध—कर्मफल की तीव्रता या मन्द शक्ति की निश्चितता अनुभागबन्ध कहलाती है।

प्रदेशबंध—कर्मबन्ध के समय आत्मा के साथ कार्माणवर्गणा कर्म का सम्बन्ध जितनी संख्या या शक्ति के साथ होता है, प्रदेशबन्ध कहलाता है।

इन चार प्रकार के कर्मबंधों में प्रकृति और प्रदेशबंध योग के निमित्त से तथा कषाय-मिथ्यात्व-अविरति-प्रमाद के निमित्त से स्थिति और अनुभागबंध हुआ करते हैं। जैनदर्शन के अनुसार मोह और योग के निमित्त से होने वाले आत्मा के गुणों का तारतम्य गुणस्थान/जीवस्थान कहलाता है। अर्थात् जीव के आध्यात्मिक विकास का क्रम गुणस्थान है। ये गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि के भेद से चौदह होते हैं जिनमें प्रारम्भ के बारह गुणस्थान मोह से सम्बन्धित हैं तथा अन्तिम दो गुणस्थान योग से। इन गुणस्थानों में कर्मबंध की स्थिति का वर्णन करते हुए जैनाचार्यों ने बताया कि प्रथम दस गुणस्थान तक चारों प्रकार के बन्ध उपस्थित रहते हैं तथा चौदहवें गुणस्थान में ये दोनों भी समाप्त हो जाते हैं। तदनन्तर चारों प्रकार के बंध से मुक्त होकर यह जीवात्मा सिद्ध/परमात्मा हो जाता है।

यह निश्चित है कि आत्मा, कर्म और नोकर्म, जो पौद्गलिक हैं, से सर्वथा भिन्न है। इस पर पौद्गलिक वस्तुओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ा करता, यह अनुभूति भेद-विज्ञान कहलाती है, जो जीव को तप/साधना की ओर प्रेरित करती है। आगम में तप की परिभाषा में कहा गया है कि 'परं कर्मक्षयार्थं यत्तप्यते तत्तपः स्मृतम्' अर्थात् कर्मों का क्षय करने के लिये जो तपा जाय वह तप है। जैनदर्शन में तप के मुख्यतया दो भेद किए गए हैं—बाह्य तप और आभ्यंतर तप। बाह्य तप के अन्तर्गत उपवास, ऊनोदर, रसपरित्याग, वृत्तिपरिसंख्यान, विविक्त-शय्यासन और कायक्लेश तथा आभ्यंतरतप में—विनय, वैयावृत्य, प्रायश्चित्त, स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग नामक तप आते हैं। आभ्यंतर तप की अपेक्षा बाह्यतप व्यवहार में प्रत्यक्ष परिलक्षित है किन्तु कर्मक्षय और आत्मशुद्धि के लिए तो इन दोनों ही प्रकार के तप का विशेष महत्त्व है। वास्तव में तप के माध्यम

से ही जीव अपने कर्मों का परिणमन कर निर्जरा कर सकता है। इसके द्वारा कर्म आस्रव समाप्त हो जाता है और अन्ततः सर्व प्रकार के कर्म-जाल से जीव सर्वथा मुक्त हो जाता है। कर्म मुक्ति अर्थात् मोक्षप्राप्त्यर्थ जैनदर्शन का लक्ष्य रहा है—वीतराग-विज्ञानता की प्राप्ति। यह वीतरागता सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी रत्नत्रय की समन्वित साधना से उपलब्ध होती है। वस्तुतः श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र का मिला-जुला पथ जीव को मुक्ति या सिद्धि तक ले जाता है क्योंकि ज्ञान से भावो (पदार्थों) का सम्यक् बोध, दर्शन से श्रद्धा तथा चारित्र से कर्मों का निरोध होता है। जब जीव सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र से युक्त होता है तब आस्रव से रहित होता है जिसके कारण सर्वप्रथम नवीन कर्म कटते। छँटते है, फिर पूर्वबद्ध/सचित कर्म क्षय/दूर होने लगते हैं। कालान्तर मे मोहनीय कर्म सम्पूर्ण रूप मे नष्ट हो जाते हैं। तदनतर अन्तराय, ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय—ये तीनो कर्म भी एक साथ सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो जाते हैं। इसके उपरात शेष बचे चार अघाति कर्म भी नष्ट हो जाते है। इस प्रकार समस्त कर्मों का क्षय करके जीव निर्वाण/मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। जैसा कि आगम मे स्पष्टत उल्लेख है कि कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्ष।' उपर्युक्त कथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि कर्म मल से दूर हटने के लिए जीवन मे रत्नत्रय की समन्वित साधना नितान्त उपयोगी एव सार्थक है।





जैनदर्शन एवं अनेकान्त

श्री शिवचरन लाल जैन, मैनपुरी

जैनधर्म सम्यक् अथवा प्रामाणिक आचार और विचार का समन्वित योगभूत प्रयोग है। प्रामाणिक विचार का नाम ही जैन दर्शन है। यह जीवमात्र की प्रगति हेतु आध्यात्मिक प्रक्रिया अथवा मोक्षमार्ग पर वैज्ञानिक दृष्टिपात करता है एव उसको पुष्ट करता है।

दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तसयम सुधम्म च।
णिग्गथ णाणमय जिणमग्गे दसण भणिय ॥ बोध पाहुड १४ ॥

आचार्य कुन्दकुन्द कहते है कि जो सम्यक्त्व, सयम, उत्तम क्षमादि रूप धर्म तथा ज्ञानमय निर्ग्रन्थ रूप से युक्त मोक्षमार्ग को दिखाता है उसे जिनमार्ग मे दर्शन कहा है।

दर्शन शासन अर्थात् जिनोपदेश ही दर्शन है।

प्रसिद्धता से जिसमे धर्म का ग्रहण होता है ऐसे मत को दर्शन कहते है। (दर्शनपाहुड की टीका मे प० जयचन्द छाबडा)

उपरोक्त परिभाषाओ का साराश यह है कि परमागम का सार ही जैन दर्शन है। यह वह प्रकाश है जिसमे आत्मोन्नति का मार्ग स्पष्ट परिलक्षित होता है। यह वस्तुतत्त्व को साक्षीभूत होकर प्रस्तुत करता है। प्रकाशित धर्माचरण को ग्रहण करने पर ही दर्शन की सार्थकता है। प्रकाश अतर्कशील है क्योकि वह किसी का पक्षपात नही करता। प्रकाशस्तम्भ तो छोटे बडे की अपेक्षा न रखकर प्रकाश करता है वह समता का प्रतीक है। ऐसा ही दर्शन है। दर्शन के प्रकाश मे ही प्रव्रज्या होती है।

'परमागमस्य जीव' जैन दर्शन का प्राण अनेकान्त है। जैसे आत्मा की पर्याय मनुष्य है वैसे अनेकान्त की पर्याय जैनशासन या या परमागम है। अन्य दर्शनो से जैन दर्शन की विशेषता का कारण अनेकान्त है। अनेकान्त दर्शन ही जैन दर्शन है। यह विसवादो को हटाकर समता एव सह अस्तित्व को प्रसारता है।



विश्व में प्रत्येक वस्तु स्वभाव से अनन्त धर्मात्मक है। प्रकृत में धर्म शब्द का अर्थ गुण, स्वभाव अथवा शक्ति है। जैसे अग्नि दाहकत्व, प्रकाशकत्व विरेचकत्व आदि विभिन्न गुणों को धारण करती है। उसमें परस्पर विरोधी ज्ञात होने वाले धर्म भी पाये जाते हैं। काष्ठ-ज्वलन आदि के रूप में वह उष्ण अनुभव में आती है तो रेफ्रीजरेटर में शीतगुण रूप अनुभव में आती है। इस प्रकार पदार्थ के अनेक पार्श्व (पहलू हैं)। अनेकान्त दर्शन का उद्गम ही पदार्थों के अनेक स्वभावों की समष्टि के कारण है। सारे तत्व ही स्वयं अपने धर्मों की दूकान लिए बैठे हैं, अनेकान्त उनका ग्राहक है। वह उन सबका अस्तित्व स्वीकार करता है और उनका यथोचित मूल्यांकन करता है। उसकी दृष्टि में परस्पर विरोधी धर्म भी पदार्थों के सत्ताधार ही हैं।

कुछ परिभाषायें

—को अणेयंतो णाम। जच्चंतरत्तं। (धवला) जात्यन्तर के भाव को अनेकान्त कहते हैं। अनेक स्वभावों के एक रसात्मक मिश्रण से जो स्वाद (जात्यन्तर भाव) प्रकट होता है उसे अनेकान्त कहते हैं।

—यदेव तत् तदेवातत्, यदेवैकं तदेवानेकं, यदेव सत् तदेवासत्, यदेव नित्यं तदेवानित्यं इत्येकवस्तुनि वस्तुत्वनिष्पादकपरस्परविरुद्धशक्तिद्वयप्रकाशनमनेकान्तः। (आ० अमृतचन्द्र समयसार आत्मख्याति परिशिष्ट)

—अनेके अन्ताः धर्माः सामान्यविशेषपर्यायाः गुणा यस्येति सिद्धोऽनेकान्तः।
(आ० धर्मभूषण न्यायदीपिका)

यतः जब वस्तु ही नित्य-अनित्य आदि परस्पर विरुद्ध शक्तियों को धारण करती है तो उनके प्रतिपादक अनेकान्त को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

आचार्य समन्तभद्र स्वयंभू स्तोत्र में कहते हैं—

अनेकमेकं च तदेव तत्त्वं भेदान्वयज्ञानमिदं हि सत्यम्।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे तच्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम्॥

जो अनेक है वही एक है यह भेद और अन्वय ज्ञान ही सत्य है। यदि इनमें से एक धर्म को लुप्त किया जाता है तो दूसरा भी स्वतः समाप्त हो जाता है। जैसे मनुष्य की बाल्य, युवा एवं वृद्ध अवस्थाओं के भेद होने पर भी वह एक मनुष्य ही रहता है। किसी अवस्था का लोप (सत्ता की अस्वीकृति) होने से मनुष्य का ही अभाव हो जाता है। द्रव्य अपेक्षा एकता है पर्याय अपेक्षा अनेकता है। अनेकान्त यथार्थ की भित्ति पर खड़ा है।

विभिन्न जैनेतर दर्शन पदार्थ के एक ही अंग पर दृष्टिपात करते हैं। जैसे सांख्य आत्मा को नित्य रूप ही मानता है, बौद्ध क्षणिक मानता है इनमें जैन दर्शन समन्वय करता हुआ प्रकाशित होता है। उसका स्पष्ट घोष है कि आत्मा द्रव्य दृष्टि से नित्य है तो पर्याय दृष्टि से अनित्य है। मनुष्य पर्याय समाप्त होकर देव पर्याय उत्पन्न होती है साथ ही जीव अपने गुणों सहित अवस्थित रहता है। ब्रह्माद्वैतवादी एक ईश्वर का ही अस्तित्व मानते हैं विश्व को माया या स्वप्नवत् असत्य मानते हैं। जैन दर्शन यहाँ भी सामञ्जस्य स्थापित करता है। महासत्ता रूप द्रव्य सामान्य एक रूप में जैन दर्शन को स्वीकार है साथ ही प्रत्येक जीवात्मा के सुख दुःख, इच्छा, प्रयत्न आदि

की अपेक्षा जीव द्रव्यों की विभिन्न स्वतन्त्र सत्तायें एवं अजीवों के विभिन्न परिणमनरूप ईश्वर से भिन्न पदार्थों की सत्तायें भी स्वीकृत हैं। जो सत्तायें है उसका कभी नाश नहीं होता, इससे सिद्ध होता है अद्वैत के साथ ही द्वैत भाव भी है। ईश्वर का अनादि अस्तित्व है तो इस जगत् की भी अनादि स्थिति है।

जैन दर्शन ने वस्तुसिद्धि के लिए विभिन्न सापेक्ष दृष्टिकोण (Points of view) प्रस्तुत किये हैं वे दृष्टिकोण परस्पर में सापेक्ष (Relative) हैं उन्हें सम्यक् एकान्त कहते हैं। सम्यक् एकान्तों के समूह का नाम सम्यक् अनेकान्त है। एक व्यक्ति अपने गुरु की अपेक्षा शिष्य है तो अपने शिष्य की अपेक्षा गुरु भी है। इन दोनों भावों को न मानकर एक भाव को ही सत्य मानना और विरुद्ध भाव की सत्ता को न मानना या उपचार मात्र (कथनमात्र है ऐसा है नही, मानना मिथ्या एकान्त है। मिथ्या एकान्त को दृष्टिविष संज्ञा दी गई है। अनेकान्त के सभी दृष्टिकोणों का लक्ष्य एक पदार्थ होता है अनेकान्त के विषय दो पदार्थ नहीं हैं। हमारे ही बन्धु इस तथ्य को न समझकर यह कहते है कि अनेकान्त दो वस्तुओं मे होता है। वे कहते हैं कि 'जीव द्रव्य तो त्रिकाल सर्वथा शुद्ध है उसमें अशुद्धता है ही नहीं।' साथ ही कहते हैं कि पर्याय अशुद्ध है इसी प्रकार पदार्थ को सर्वथा ध्रुव व पर्याय को क्षणिक मानते हैं। यह मान्यता ठीक नही हैं। प्रथम तो पर्याय और द्रव्य दो चीजें नहीं हैं। पदार्थ (जीव) ही शुद्ध प्रवृत्ति से शुद्ध तथा ध्रुव है एवं वही पदार्थ संसारी पर्याय अपेक्षा अशुद्ध एवं अर्थ पर्याय अपेक्षा क्षणिक है। पर्याय द्रव्य का ही परिणाम हैं। पर्याय अशुद्ध हो और द्रव्य शुद्ध बना रहे यह न्याय विरुद्ध है।

आ० कुन्दकुन्द प्रवचनसार में कहते हैं—

उप्पादट्ठिदि भंगा विज्जन्ते पज्जयेसु पज्जाया।
दव्वे हि सन्ति णियदं तम्हा दव्वं हवे सव्वं ॥२-९॥

उत्पाद व्यय पर्याय में है तो ध्रौव्य भी पर्याय में है और पर्यायें निश्चित रूप से द्रव्य में हैं अतः द्रव्य ही उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप आदि सब कुछ है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने स्वयं समयप्राभृत में अपने शुद्धनय का जब प्रयोग किया तो सावधान भी किया है—एकान्त से मानोगे तो सांख्य बुद्धि बन जाओगे। उन्होंने स्वयं ही जीवों के स्वसमय और परसमय दो भेद किए हैं। सब सर्वथा समान नही हैं। वर्तमान में हम भगवान् के समान नहीं हैं। हाँ, हो सकते हैं। आ० अमृतचन्द्रजी ने कलश में कहा है—

'मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः।'

और मात्र जीव को शुद्ध और अशुद्ध मानने से मोक्ष नहीं होगा।

'दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा।' सिद्धि रत्नत्रय से होगी। अनेकान्त की व्याख्या करने वाला स्याद्वाद है। अनेकान्त सिद्धान्त है तो स्याद्वाद उपदेश हैं। अनेकान्त द्योतक है, स्याद्वाद उसका वाचक है। अनेकान्त समुद्र है तो स्याद्वाद उसकी लहर हैं। स्यात् शब्द का अर्थ अपेक्षा या कथञ्चित् है। अनेकान्त को प्रस्तुत करने के लिए सापेक्ष एवं कुशल वचन विलास का नाम स्याद्वाद है। अनेकान्तात्मक वस्तु का सम्पूर्ण विवेचन अशक्य है। वक्ता का अभिप्राय जिस धर्म से होता है वह उस समय उसी का वर्णन करता है और वहाँ वह धर्म विवक्षित, अर्पित या मुख्य होता है और अन्य विरोधी या अविरोधी धर्म गौण, अनर्पित होते हैं, अस्तित्वशून्य नहीं हो

जाते हैं वे भी रहते हैं। जैसे चित्रकला में परस्पर विरोधी रंग चित्र या आलेखन की शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार वस्तु के विरोधी धर्म सापेक्ष प्रकाशित होकर उसकी शोभा बढ़ाते हैं।

वस्तुतत्त्व को ग्रहण करने के लिए जैनी नीति अनेकांत-स्याद्वाद है। आ० अमृतचन्द्र जी के शब्दों में—

एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनीनीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी॥ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय २२५॥

जैसे ग्वालिनी दही में से मक्खन निकालने के लिए मथानी की रस्सी के एक छोर को खींचती है व दूसरे को ढीला करती है इसी प्रकार जैनी नीति वस्तुतत्त्व को ग्रहण करने के लिए अनेकान्त के एक धर्म को मुख्य तो दूसरे को गौण करके विजय को प्राप्त होती है। केवल अपने ही दृष्टिकोण को सर्वथा सत्य न मानकर दूसरे के मन्तव्य को भी किसी अपेक्षा स्वीकार करना स्याद्वाद का आदर है। स्याद्वादी 'ही' के स्थान पर 'भी' का प्रयोग करता है। एवकार का प्रयोग एक दृष्टि के साथ हो सकता है सभी दृष्टियों से नहीं, सर्वथा नहीं। निष्पक्षता या सापेक्षवाद को ही स्याद्वाद कहते हैं। आ० समन्तभद्र कहते हैं—

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात्किंवृत्तचिद्विधिः।
सप्तभंगनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः॥ आप्तमीमांसा १०४॥

सर्वथा एकान्त के त्याग से ही स्यद्वाद होता है। कथञ्चित् इत्यादि इसके पर्यायवाची नाम हैं। यह सप्तभ ग और नयों की अपेक्षा वाला है। हेय और उपादेय तत्त्व की व्यवस्था इसी स्याद्वाद से होती है।

विश्व में प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा अस्तिरूप है और पर की अपेक्षा देखें तो वही नास्तिरूप है। उसका समग्र स्वरूप अवर्णनीय है। इन्हीं विधि, निषेध एवं अवक्तव्य से स्याद्वाद सप्त भंगों के रूप में फलित होता है। स्यात् पद सहित वे भंग हैं, अस्ति, नास्ति, अस्ति-नास्ति, अवक्तव्य, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य, अस्तिनास्ति अवक्तव्य। इसका विशेष अध्ययन ग्रन्थों से करना चाहिए।

अनेकान्त के साधन के रूप में प्रमाण और नयों का स्वरूप भी जानना आवश्यक है। 'अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः।' स्वयंभूस्तोत्र १०३।

प्रमाण और नय की परिभाषा आ० विद्यानन्द स्वामी के शब्दों में—

अर्थस्यानेकरूपस्य धीः प्रमाणं तदंशधीः।
नयोधर्मान्तरापेक्षी दुर्णयस्तन्निराकृतिः॥ अष्टसहस्री।

—अनेक रूप वाले पदार्थ का (समग्र) ज्ञान प्रमाण है उसके अंश का ज्ञान नय है जो अन्य धर्म का आपेक्षी है। जो नय दूसरे धर्म का निराकरण करता है वह दुर्णय है। प्रमाण के द्वारा ग्रहीत पदार्थ के किसी एक अंश के अर्थ पर पहुँचाता है वह नय है नयतीति नयः। नय प्रमाण का अंश है। जैसे समुद्र की लहर न तो समुद्र है और न असमुद्र उसी प्रकार कोई भी नय न तो प्रमाण है और न अप्रमाण।

'तावद्वस्तुन्यनेकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्पणात्साध्यविशेषस्य याथात्म्यप्रापणप्रवणः प्रयोगो नयः'। आ० पूज्यपाद-सर्वार्थसिद्धि ॥

अनेकान्तात्मक वस्तु में विरोध के बिना हेतु की मुख्यता से साध्य विशेष की यथार्थता के प्राप्त कराने में समर्थ प्रयोग को नय कहते हैं।

मोटे रूप में अनेकान्त को ही प्रमाण एवं स्याद्वाद को नय कह सकते हैं, प्रमाण ज्ञानात्मक है (सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं) तो नय वचनात्मक है। स्याद्वाद नय-संस्कृत वाणी लोक में सुखशान्ति एवं समता का संचार करती है।

नय के असंख्य भेद हैं जितने वचनमार्ग हैं उतने ही नय हैं। फिर सामान्य से आगम अपेक्षा द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिक एवं अध्यात्म अपेक्षा निश्चयनय एवं व्यवहारनय, दो भेद हैं। सूत्र में सात नय भी बताये हैं।

'गुणपर्ययवद्द्रव्यं'। यतः पदार्थ में द्रव्यांश जितना सत्य है उतना ही पर्यायांश भी। तो दोनों अंशों के ग्राहक दोनों नय वास्तविक हैं। वे कुछ अवस्तुभूत को कहते नहीं। किसी एक नय की सत्यार्थता या असत्यार्थता तो प्रयोजन पर निर्भर है। जब शुद्ध आत्मतत्त्व को दिखाना होता है वहाँ शुद्ध निश्चयनय उपादेय है। जहाँ संसारी पर्याय परिणत अशुद्ध आत्मतत्त्व प्रकट करना होता है या शुद्ध आत्म तत्त्व के साधनभाव को प्रमुखता होती है वहाँ व्यवहार नय उपादेय होता है। परमभावदर्शियों को शुद्ध नय ज्ञातव्य है किंतु साधक दशा में व्यवहार नय प्रयोजनवान है (समयसार गाथा १२)। नयों का काम संकेत करके चला जाना है। नय कोई पकड़ने की चीज नहीं। पकड़ना तो विभिन्न दृष्टिकोणों के विषयभूत आत्मा को चाहिए किन्तु अज्ञानी मनुष्य विकल्प और वाग्जाल रूप किसी एक नय को ही पकड़ कर भ्रम से अपने को मोक्षमार्गी मान बैठता है।

आ० कुन्दकुन्द ने कहा है—

दोण्णवि णयाणभणिदं जाणइ णवरिं तु समयपडिबद्धो।
णदु णयपक्खंगिण्हदि किंचिव णयपक्ख परिहीणो। समयसार—१४३

व्यवहारनय निश्चयनय का साधक है। मोक्षमार्ग के प्रकरण मे :—

निश्चयव्यवहाराभ्यां मोक्षमार्गो द्विधास्थितः।
तत्राद्यः साध्यरूपः स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनः॥ तत्त्वार्थसार॥ आ० अमृतचंद्र।

अध्यात्म में व्यवहार और निश्चय का यह क्रम है कि व्यवहार तो निश्चय तक पहुँचाता है और निश्चय, साधक को विकल्पातीत करके चला जाता है। दोनों नय विकल्प हैं। समयसार तो निर्विकल्प एवं सर्वनयपक्षरहित शुद्ध स्वरूप है।

वर्तमान में जैन समाज में निश्चय-व्यवहार नयों की बड़ी चर्चा है। मोक्ष तो किसी एकान्त-नयावलम्बी को नहीं होना है। व्यवहाराभासी अपने शुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि तत्काल नहीं कर पाता किंतु स्वयं स्वर्गादिक गति प्राप्त करता है और समाज, राष्ट्र का कल्याण करता है और यदि एकांत को त्याग देता है तो परंपरा मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। परन्तु निश्चयाभासी स्वयं तो अपने को भ्रम से शुद्ध मान व्यवहार धर्म की उपेक्षा कर अव्रत आदि के कारण नरकादिक कुगति का पात्र होता है एवं मोक्षमार्ग से दूर होता चला जाता है साथ ही समाज को भी पत्थर की नौका के समान भवसागर में डुबो देता है।

हमें तीर्थंकर प्रभु से नयचक्र मिला तो कर्म शत्रुओं-रागादि पर विजय प्राप्त करने के लिए, समता अहिंसा आदि के लिए एवं सह अस्तित्व के लिए किंतु इसके प्रयोग के अज्ञान से एवं पक्ष और कषाय से इस अस्त्र से हम अपना मस्तक ही काट रहे हैं जिस प्रकार सुदर्शन चक्र के हजार आरे होते हैं उंगली में धारण कर यदि किसी भी आरे पर ही सब शक्ति लगा दी जाती तो संतुलन बिगड़ जाता है और चक्र दूर न जाकर धारक का हो मस्तक काट देता है।

अत्यन्तनिशितधारं दुरासदं जिनवरस्य नयचक्रं।
खण्डयति धार्यमाणं मूर्धनि झटिति दुर्विदग्धानाम् ॥ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ५९

सारांश यह है कि जैनदर्शन के प्राण अनेकान्त को न भूलें एवं स्वपर हित के परिप्रेक्ष्य में उसका प्रयोग सापेक्षवाद की शैली में सम्यक् नयों की योजना से करें। अनेकान्त अहिंसा के लिए है अतः विश्व शान्ति के लिए अनेकान्त का समुचित मूल्यांकन करना चाहिए। विसंवादों का अन्त अनेकान्त में ही निहित है।



श्री दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

संक्षिप्त परिचय

ब्र० रवीन्द्र कुमार जैन, मंत्री

सस्थान का उद्भव

भगवान् महावीर स्वामी का २५सौवा निर्वाण महोत्सव सन् १९७४ मे राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाया जा रहा था उसी समय सन् १९७२ मे राजस्थान मे विहार करते हुए पूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी का मगल पदापण देहली मे हुआ। चातुर्मास का समय नजदीक था। पहाडी धीरज दिगम्बर जैन समाज के विशष आग्रह पर पूज्य मानाजा ने सघ सहित अपना मगल चातुर्मास पहाडी धीरज पर स्थापित किया। चातुर्मास के मध्य दिल्ली क प्रमुख मुनिभक्त डा० श्री कैलाशचन्द जैन श्री श्यामलाल जी ठेकेदार वैद्य शातिप्रसाद जी कैलाशचन्द जेन आदि महानुभाव पूज्य माताजी के निकट परिचय मे आये और उन्होने सघ की सेवा करके पुण्योपाजन किया।

कुछ वष पहले पूज्य माताजी का चातुर्मास श्रवणबेलगोला कर्नाटक मे हुआ था जहा पर भगवान् बाहुबली क समक्ष ध्यान करते हुए पूज्य माताजी का अकृत्रिम जिनालयो का बडा स्पष्ट रूप प्रतिभासित हुआ। वही से पूज्य माताजी के मन मे अकृत्रिम चत्यालयो म यत्त एक रचना निर्माण की मन मे भावना उत्पन्न हुई और उसको साकार करने का योग अब प्राप्त हुआ। पूज्य माताजा के आशीर्वाद व प्ररणा से दिल्ली के श्रीमतो ने दिगम्बर जन त्रिलोक शोध सस्थान नाम की एक सस्था का निर्माण किया। जो सोसाइटी एक्ट के अन्तगत रजिस्टर्ड है।

भगवान् महावीर स्वामी का निर्वाण महोत्सव १९७४ मे धूमधाम से राजधानी मे मनाया गया। जिसमे आचायश्री धमसागर जी महाराज आचायश्री देशभूषण जी महाराज मुनिश्री विद्यानन्द जी आदि दिगम्बर आचार्यो के सघ तथा श्वेताम्बर समाज के अनेक सघ काफी सख्या मे दिल्ली मे विराजमान थे। निर्वाण महोत्सव की समाप्ति के बाद पूज्य माताजी का मगल पदापण हस्तिनापुर क्षेत्र की ओर हुआ। इस शुभ अवसर पर आचायश्री धमसागर जी महाराज व मुनि श्री विद्यानन्द जी महाराज का भी हस्तिनापुर मे मंगल पदापण हुआ था।

हस्तिनापुर में निर्माण कार्य प्रारम्भ

सन् १९७४ मे दिगम्बर जैन त्रिलाक शोध संस्थान के नाम से एक छोटी सी जमीन हस्तिनापुर मे खरीदी गई और उसमे जम्बूद्वीप रचना का निर्माण काय प्रारम्भ किया गया। जिसमे सबसे पहल सुदर्शन मेरु का निर्माण काय प्रारम्भ हुआ इसी बीच फरवरी १९७५ मे हस्तिनापुर मे प्राचीन मन्दिर के अन्तर्गत भगवान् बाहुबली स्वामी का मन्दिर व जल मन्दिर की पचकल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन था। इस आयोजन के साथ ही जम्बूद्वीप स्थल पर भी भगवान् महावीर स्वामी की सवा नौ फीट ऊँची प्रतिमा स्थापित करके अल्प समय मे एक छोटे से मन्दिर का निर्माण होकर प्रतिमाजी का पचकल्याणक महोत्सव मनाया गया। इस महोत्सव म आचायश्री धमसागर जी महाराज ने सस्थान को अपना मगल आशीर्वाद प्रदान किया तथा उन्हो के संघ सान्निध्य म यहा का सम्पूर्ण महोत्सव सम्पन्न हुआ।

इस मन्दिर निर्माण के पश्चात् सस्थान मे एक कार्यालय का निर्माण हुआ पश्चात् एक

फ्लैट श्री उम्मेदमल जी पांड्या की ओर से निर्मित किया गया। इस कार्य के अलावा सुदर्शन मेरु का निर्माण कार्य भी तेजी से प्रारम्भ किया गया। सुदर्शन मेरु का निर्माण पूर्ण होने में लगभग ४ वर्ष का समय लगा और १६ जिन चैत्यालयों से सहित संगमरमर पत्थर से जडित ८४ फुट ऊँचा सुदर्शन मेरु १९७९ में बनकर तैयार हो गया। सुदर्शन मेरु के जिनमन्दिरों का पंचकल्याणक महोत्सव २९ अप्रैल से ३ मई तक विभिन्न आयोजनों के साथ प्रभावना के साथ सम्पन्न किया गया।

संस्थान की भूमि

पंचकल्याणक महोत्सव के बाद अनेक लोगों की यह प्रेरणा रही कि संस्थान के पास भूमि कम है अतः प्रतिष्ठा के पश्चात् ४ अन्य भूमि खरीदी गयी, इस समय संस्थान के पास कुल १४ एकड़ (लगभग ७० हजार वर्ग गज) भूमि है। समस्त भूमि का रजिस्ट्रेशन **दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान** के नाम से कराया गया।

निर्माण कार्य

भूमि खरीदने के बाद अब तक लगभग ५० कमरों का निर्माण संस्थान की भूमि पर हो चुका है तथा रत्नत्रयनिलय का निर्माण श्री लाला उग्रसेनजी, हेमचन्द जी जैन पहाड़गंज दिल्ली की ओर से कराया गया, जिसमें साधुगणों का निवास रहेगा। यात्रियों के भोजन की सुविधा की दृष्टि से डाईनिंग हाल का भी निर्माण किया गया तथा दर्शन पूजन व मण्डल विधान आदि समारोह के लिए एक बड़ा मन्दिर का निर्माण हो चुका है। इस मन्दिर का हाल ५० फीट चौड़ा एवं ६२ फीट लम्बा है। इस हाल में भगवान् आदिनाथ, बाहुबली एवं भरत स्वामी की खड्गासन प्रतिमाएँ विराजमान की जायेंगी। जम्बूद्वीप रचना का निर्माण भी तेजी से चल रहा है इस निर्माण की पूर्ति १९८४ के अन्त तक करने का पूरा-पूरा प्रयास है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला की स्थापना

पूज्य माताजी के आशीर्वाद से सन् १९७४ में वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला की स्थापना की गई जिसमें पूज्य माताजी द्वारा लिखित लगभग ६० ग्रन्थ भारी संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। सर्व-प्रथम अष्टसहस्री प्रथम भाग का प्रकाशन हुआ था जिसका विमोचन अक्टूबर १९७४ में राजधानी दिल्ली में आचार्य संघों के सान्निध्य में उपराज्यपाल के करकमलों से सम्पन्न हुआ था, पूज्य माताजी द्वारा लिखित बाल विकास के ४ भाग बच्चों के नैतिक शिक्षण के लिए प्रकाशित किये गये जिसको आज अनेक पाठशालाओं के पाठ्यक्रमों में पढ़ाया जा रहा है। बाल विकास का प्रकाशन हिन्दी भाषा के अतिरिक्त मराठी, तमिल, गुजराती व कन्नड में भी किया गया है। जिनका प्रचार उन-उन भाषा के प्रदेशों में हो रहा है। इसी प्रकार भगवान् बाहुबली सहस्राब्दी महोत्सव के समय सन् १९८१ में पूज्य माताजी के द्वारा लिखित विपुल साहित्य का विक्रय श्रवणबेलगोल में हुआ उसमें भी अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, तमिल आदि भाषाओं में संस्थान ने साहित्य का प्रकाशन किया था। आज भी अनेकों पुस्तकों का प्रकाशन कार्य चालू है।

सम्यग्ज्ञान हिन्दी मासिक पत्रिका का प्रकाशन

संस्थान के अन्तर्गत ही एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन जुलाई १९७४ से प्रारम्भ किया गया, जिसका नाम सम्यग्ज्ञान रखा गया। आज सम्यग्ज्ञान अपनी विशुद्ध रीतिनीति से निरन्तर प्रगति की ओर है और जैन समाज की सर्वाधिक लोकप्रिय पत्रिका मानी जाती है। इस सम्यग्ज्ञान

के प्रकाशन में पूज्य माताजी के द्वारा लिखित चारों अनुयोगों के लेख इसके मुख्य आकर्षण हैं तथा जैन समाज के प्रभावना के समाचार इस पत्रिका में प्रकाशित किये जाते हैं। सम्यग्ज्ञान पत्रिका के प्रथम अंक का विमोचन आचार्य प्रवर श्री धर्मसागर जी महाराज के करकमलों से जुलाई १९७४ में लाल किला दिल्ली मे किया गया था।

आचार्यश्री वीरसागर संस्कृत विद्यापीठ शोध केन्द्र की स्थापना

समाज में विद्वानों की कमी को देखकर पूज्य माताजी के आशीर्वाद से विद्यापीठ की स्थापना जुलाई १९७९ में की गई। जिसमें विद्यार्थियों को सम्पूर्ण निःशुल्क सुविधा प्रदान की जाती है। विद्यार्थियों की संख्या की दृष्टि से संख्या तो कम है फिर भी यहाँ के विद्यार्थी पूर्ण अनुशासित, चरित्रवान, गुरुभक्त एवं आर्ष परम्परा के प्रचार करने के लिए तैयार हो रहे हैं। कुछ विद्यार्थी तो इन्द्रध्वज विधान, सिद्धचक्र विधान आदि बड़े-बड़े अनुष्ठान कराने में सक्षम हो चुके हैं तथा पर्यूषण पर्व, शिविर आदि में प्रवचनार्थ बाहर भी जाते हैं। श्री गणेशीलाल जी साहित्याचार्य आगरा निवासी प्रारम्भ से ही इस विद्यापीठ के प्राचार्य पद पर सुशोभित हैं। संस्थान ने अपने नाम के अनुरूप शोध केन्द्र की स्थापना भी की है। जिसमें भूगोल के साथ अन्य विषयों पर भी शोध की व्यवस्था की गई है।

जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति का प्रवर्तन

भगवान् महावीर स्वामी के अहिंसामयी दिव्य सन्देशों का प्रचार करने के लिए जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति का प्रवर्तन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के करकमलों से ४ जून, १९८२ को लाल किला मैदान दिल्ली से प्रारम्भ किया गया था, भारत के सम्पूर्ण प्रदेशों में जम्बूद्वीप का प्रचार करते हुए यह ज्ञान ज्योति अपने प्रगति के चरणों मे चल रही है। इस ज्ञानज्योति के प्रवर्तन से धर्म-सहिष्णुता, राष्ट्रव्यापी चरित्र का निर्माण का जो भारी प्रचार हुआ है वह राष्ट्र निर्माण के लिए संस्थान का एक महान् कार्य है। इस ज्ञानज्योति का प्रवर्तन १९८४ तक चलेगा एवं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के समय समापन समारोह हस्तिनापुर में विशाल पैमाने पर मनाया जायेगा।

इस ज्ञानज्योति के प्रवर्तन पर राज्यों के महामहिम राज्यपाल, मन्त्रीगण एवं राजकीय नेताओं का निरन्तर सहयोग प्राप्त हुआ है। समाज का भी बहुत बड़ा सहयोग प्राप्त हुआ है तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी, गृहमन्त्री श्री प्रकाशचन्द जी सेठी एवं संसद सदस्य श्री जे० के० जैन का पूर्ण सहयोग इस ज्ञानज्योति के साथ है।

शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर एवं सेमिनारों का आयोजन

पूज्य माताजी के आशीर्वाद से प्रतिवर्ष संस्थान की ओर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया जाता है जिसमें बच्चों को, महिलाओं को, पुरुषों को धर्म की प्रारम्भिक पढ़ाई बाल विकास, छहढाला, द्रव्य संग्रह एवं रत्नकरण्डश्रावकाचार आदि के माध्यम से करायी जाती है। विद्वानों को प्रशिक्षित करने के लिए प्रशिक्षण शिविर भी आयोजित किये जाते हैं। जिसमें पं० मोतीलाल जी कोठारी फलटण, डॉ० पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य, सागर आदि वरिष्ठ विद्वान् आर्ष विद्वानों को प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। विगत दो वर्षों से जम्बूद्वीप सेमिनार का आयोजन किया गया। जिसमे सन् १९८२ के सेमिनार का उद्घाटन ३१ अक्टूबर, १९८२ को संसद सदस्य श्री राजीव गांधी के करकमलों से फिक्की ऑडिटोरियम दिल्ली में हुआ था। इस सेमिनार में देश

के ख्याति प्राप्त अनेक भूगोलविद् विभिन्न सम्प्रदायों से सम्मिलित हुए थे। उसी शृङ्खला में १९८४ का सेमिनार हस्तिनापुर में जैन गणित एवं जैन त्रिलोक विज्ञान पर में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित किया जा रहा है। इस सेमिनार में देश एवं विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के भूगोलविद् व गणित के ख्यातिप्राप्त विद्वान् भाग ले रहे हैं।

निष्पक्ष पंथ का निर्णय

समाज की स्थिति को देखते हुए पूज्य माताजी ने इस रचना के अन्दर किसी पंथ विशेष का आग्रह न रखकर खुले हृदय से ऐसी परम्परा को स्थापित किया है, जिससे समस्त जैन समाज लाभान्वित हो सके और उसके लिए १५ अप्रैल, सन् १९७५ की बैठक में एक प्रस्ताव पास किया गया जो इस प्रकार है—"दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा निर्मित मन्दिर एवं जम्बूद्वीप रचना में अभिषेक एवं पूजन दिगम्बर आम्नाय के अनुकूल होगा। इस समय दिगम्बर आम्नाय में १३ पंथ एवं २० पंथ दो परम्परा प्रचलित हैं। दोनों आम्नाय वाले अपनी-अपनी परम्परा के अनुसार अभिषेक एवं पूजन कर सकते हैं।"

इस प्रकार हर व्यक्ति को अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार पूजन अभिषेक करने की छूट दी गई है। इसका अनुकरण अन्य क्षेत्रों को भी करना चाहिए।

स्थायी पूजन फंड

पूज्य मुनि श्री निर्वाणसागर जी महाराज की प्रेरणा से यह निर्णय किया गया कि वर्ष के ३६५ दिनों के लिए १०१/ रु० के हिसाब से एक-एक दिन के एक-एक सदस्य बना लिए जावें। इस प्रकार ३६५ सदस्यों का सारा रुपया बैंक में फिक्स्ड डिपोजिट कर दिया जाये तथा उसके ब्याज से हमेशा पूजन की व्यवस्था चलती रहे। इस कार्य में प्रातःस्मरणीय १०८ श्री निर्वाणसागर जी महाराज की प्रेरणा से ३६५ सदस्य बन चुके हैं।

स्थायी अखण्ड ज्योति फण्ड

इसी प्रकार स्थायी अखण्ड ज्योति फण्ड के भी ३६५ सदस्य बनाने की योजना पूज्य श्री निर्वाणसागर जी की प्रेरणा से प्रारम्भ हुई और ३६५ सदस्य उसके भी पूरे हो चुके हैं।

स्थायी भोजन निधि

क्षेत्र पर आने वाले यात्रियों को भोजन की सुविधा प्राप्त हो सके, इस बात को दृष्टि में रखकर एक स्थायी भोजन निधि की व्यवस्था रखी गई है। इस योजना में भी २५१/ रु० के प्रत्येक सदस्यों के हिसाब से ३६५ सदस्यों को बनाकर उनका सारा रुपया बैंक में फिक्स्ड डिपोजिट किया जायेगा, जिससे क्षेत्र पर आने वाले यात्रियों को भोजन की सुविधा प्राप्त हो सके और उनका जो अधिक समय भोजन बनाने में व्यय हो जाता है, वह समय धर्म ध्यान में लग सके। इसके भी काफी सदस्य बन चुके हैं।

सरस्वती भवन लाइब्रेरी

शोध केन्द्र एवं विद्यापीठ के छात्रों के लिए एक बहुत ही सुन्दर लाइब्रेरी की योजना चालू की गई है। वर्तमान में यह कार्य भी प्रगति पर है।

इस प्रकार त्रिलोक शोध संस्थान को सरकार का, समाज का पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त हो रहा है और संस्थान अपने उद्देश्यों में सफलता के साथ धर्म एवं समाज की सेवा में संलग्न है। ●



मुनि और आर्यिका की चर्या में अन्तर

आर्यिका जिनमती माताजी

साधु का लक्षण वीतरागता है, पूर्ण वीतरागता यथाख्यात-चारित्र में होती है, उस परमोच्च भाव का ध्येय बनाकर भव्य जीव मोक्षमार्ग पर आरूढ़ होते हैं, "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि-मोक्षमार्गः" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्षमार्ग है। जीवादि सात तत्त्वों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं अथवा निज आत्मा के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। संशयादि दोषों से रहित जीवादि तत्त्वों का याथात्म्यरूप जानना सम्यग्ज्ञान है। कर्म-बन्ध के कारणभूत क्रियाओं से विरक्त होना सम्यक्चारित्र है, जैसा कि कहा है—भावानां याथात्म्यप्रतिपत्तिविषयं श्रद्धानं""सम्यग्-दर्शनं, येन येन प्रकारेण जीवादिपदार्था व्यवस्थितास्तेन तेनावगमः सम्यग्ज्ञानं, संसारकारणनिवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतः कर्मादान-निमित्तक्रियोपरमः सम्यक्चारित्रम्। [सर्वार्थसिद्धि सूत्र १]

कर्मबंध की कारणभूत क्रिया मुख्यतया पाँच हैं—हिंसा, अनृत, स्तेय, अब्रह्म एवं परिग्रह इन पंच पाप रूप क्रियाओं से विरत होना चारित्र है। यह प्रतिषेध रूप कथन है। विधि रूप विवेचन आचारसत्रों में पाया जाता है।

वदसमिदिंदियरोधो लोचावास्सयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥ २०८ ॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
तेसु पमत्तो समणो छेदोवट्ठावगो होदि[1] ॥ २०९ ॥

गाथार्थ—पंचव्रत, पंच समिति, पंच इन्द्रियों का निरोध, केशों का लोंच, छह आवश्यक अचेल [वस्त्र त्याग] अस्नान, भूमिशयन, अदंतधावन, स्थित भोजन, एकभक्त ये अट्ठावीस मूल गुण जिनेन्द्र भगवान् ने श्रमणों के लिये प्रतिपादित किये हैं। इन मूल गुणों का विवरण—

अहिंसा महाव्रत—अंतरंग में भाव प्राणों का रक्षण और अन्य त्रस स्थावर सम्पूर्ण षट् जीव निकाय का मन वचन आदि नव कोटि से रक्षण करना।



१. प्रवचनसार

सत्य महाव्रत—सत् प्रशस्त वचन बोलना, सर्व प्रकार की कर्कश, परुष, पैशुन्य आदि भाषा का त्याग, और जनपद सत्य आदि दस प्रकार की भाषा रूप व्यवहार होना।

अचौर्य महाव्रत—अदत्तरूप सम्पूर्ण वस्तुओं का त्याग और दत्त होने पर भी श्रामण्य के योग्य वस्तु का ग्रहण।

ब्रह्मचर्य महाव्रत—जगत् के यावन्मात्र स्त्रियों का त्याग, उनके हाव-भाव विलास विभ्रमादि को नहीं देखना, अपने ही ब्रह्मस्वरूप आत्मा में रमण करना, नवकोटि से पूर्ण ब्रह्मभाव को प्राप्त करना।

परिग्रहत्याग महाव्रत—अभ्यंतर चौदह और बहिरंग दश प्रकार के परिग्रह से निवृत्त होना।

ईर्यासमिति—गमनागमन करते समय प्रासुक मार्ग से अग्रिम साढ़े तीन हाथ भूमि देखकर चलना। आलम्बन शुद्धि, मार्गशुद्धि, उद्योत शुद्धि एवं उपयोग शुद्धि पूर्वक गमन।

भाषा समिति—हित मित एवं प्रिय वचनालाप।

एषणा समिति—आहार सम्बन्धी छियालीस दोष और बत्तीस अन्तराय टाल कर आहार लेना।

आदान निक्षेपण समिति—पुस्तकादि पदार्थों को नेत्र द्वारा देखकर एवं पिच्छिका से प्रमार्जन कर लेना और रखना।

प्रतिष्ठापन समिति—मल, मूत्र, कफ आदि को प्रासुक स्थान पर विसर्जित करना।

य निरोध—अष्ट प्रकार के स्पर्शों में इष्टानिष्ट विकल्पों का त्याग।

न्द्रिय निरोध—पंच प्रकार के रसों में से अपने को अच्छे लगने वाले में राग का त्याग, न वाले में द्वेष का त्याग।

घ्राणेन्द्रिय निरोध—सुगन्ध और दुर्गन्ध में रति और अरति का त्याग।

चक्षुरिन्द्रिय निरोध—पंच प्रकार के वर्ण, स्त्रियों के मनोहर रूप एवं अन्य विषयों को देख कर उनमें रागादि नहीं करना।

कर्णेन्द्रिय निरोध—षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत एवं निषाद स्वरों में तथा अन्य शब्द भाषादि में रागादि नहीं करना।

केशलोंच—उत्कृष्ट रूप से दो मास में, मध्यम रूप से तीन मास में, जघन्य रूप से चार मास में मस्तक, दाढ़ी, मूँछ के केशों का स्वहस्त या परहस्त से उखाड़ना।

समता-आवश्यक—जगत् के संपूर्ण पदार्थों में राग द्वेष का अभाव, त्रिसंध्याओं में सामायिक, देव वंदना करना।

स्तव-आवश्यक—चतुर्विंशति तीर्थंकरों की भाव पूर्वक स्तुति करना। नमस्कार करना।

वंदना-आवश्यक—एक तीर्थंकर या सिद्ध और साधु की कृतिकर्म सहित वंदना स्तोत्रादि करना।

प्रतिक्रमण-आवश्यक—अहोरात्रि में होने वाले दोषों का शोधन करना।

प्रत्याख्यान-आवश्यक—आगामी काल में अयोग्य वस्तुओं का त्याग।

कायोत्सर्ग-आवश्यक—स्तव आदि क्रियाओं में शास्त्रोक्त विधि से श्वासोच्छ्वास की विधि से युक्त एवं जिनगुण चिंतन सहित नमस्कार मंत्र जपना।

अचेलक-गुण—पंच प्रकार के वस्त्र एवं आभूषणों का त्याग निर्विकार यथाजात रूप नग्नता धारण करना।

अस्नान—जलस्नान, उबटन, सुगन्धि लेपन का यावज्जीवन त्याग।

क्षितिशयन—पृथ्वी पर शयन, बिछौना, पलंगादि का त्याग।

अदंतधावन—दातौन नहीं, अर्थात् मंजन का त्याग।

स्थिति भोजन—खड़े होकर आहार, भित्ति स्तंभ आदि का सहारा लिए बिना खड़े-खड़े स्वपाणि पात्र में आहार लेना।

एकभक्त—दिन में एक बार भोजन। सूर्योदय के अनंतर तीन घड़ी बाद से लेकर सूर्यास्त होने के तीन घड़ी [७२ मिनिट] पहले तक साधुओं के आहार का योग्य समय है उक्त काल में यथा-समय एक बार आहार लेना।

इस प्रकार ये जैन दिगम्बर साधुओं के अट्ठावीस मूलगुण हैं। उत्तरगुण चौरासी लाख हैं। जिनकी पूर्णता चौदहवें गुणस्थान में होती है। परीषह सहन, उपसर्ग सहन, द्वादश तप इत्यादि उत्तरगुण हैं। इन उत्तरगुणों के पालन में विकल्प हैं अर्थात् शक्ति हो तो पाले, शक्ति न हो तो न पाले।

साधुओं की समाचार विधि दश प्रकार की है, जैसा कि कहा है—

इच्छा मिच्छाकारो तधाकारो य आसिका णिसिही।
आपुच्छा पडिपुच्छा छंदन सणिमंतणा य उवसंपा ॥—[मूलाचार]

अर्थ—इच्छाकार—रत्नत्रय धर्म में हर्षपूर्वक प्रवृत्ति।

मिथ्याकार—अतिचार होने पर उनसे निवृत्त होना।

तथाकार—गुरु से सूत्रार्थ सुनकर उनको सत्य कहकर अनुराग होना।

आसिका—जिनमंदिरादि से निकलते समय पूछकर निकलना।

निषेधिका—जिनमंदिरादि में प्रवेश करते समय पूछकर प्रवेश।

आपृच्छा—संशय दूर करने के लिए विनयपूर्वक पूछना।

प्रतिपृच्छा—निषिद्ध अथवा अनिषिद्ध वस्तु के विषय में पुनः पूछना।

छंदन—जिनके पुस्तकादि लिए हैं उनके स्वभाव के अनुकूल प्रवृत्ति करना।

सनिमंत्रणा—दूसरे के पुस्तकादि को सत्कारपूर्वक वापिस देना।

उपसंपत्—गुरुचरणों में अपने को अर्पण करना।

प्रतिदिन के साधुओं के आचरण को पदविभागी समाचार कहते हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त दश प्रकार का औघिक समाचार और प्रतिदिन सम्बन्धी पदविभागी समाचार का वर्णन एवं मूलगुण और उत्तरगुणों का वर्णन मूलाचार आदि ग्रन्थों में पाया जाता है। इन संपूर्ण आचरणों को मुनि और आर्यिका समान रूप से आचरण करते हैं। जैसा कि कुन्दकुन्द आचार्य देव ने कहा है—

एसो अज्जाणंपि य समाचारो जहाक्खिओ पुव्वं।
सव्वम्हि अहोरत्ते विभासिदव्वो जधाजोग्गं ॥[1]

---

१. मूलाचार।

अर्थ—यह जो कहा गया समाचार है वह आर्यिकाओं को भी आचरण करना चाहिये, दिन-रात्रि सम्बन्धी जो आचार एवं मूलगुण पूर्व में कहे हैं उनमें आर्यिकाओं को यथायोग्य प्रवृत्ति करनी चाहिये।

और भी कहा है—एवं विधाणचरियं चारित्तं जे साधवो य अज्जाओ।
ते जगपुज्जं कित्ति सुहं च लद्धूण सिज्झंति॥[1]

अर्थात्—इस प्रकार कहे गये विधि विधान के अनुसार जो मुनि और आर्यिका चारित्र पालन करते हैं वे जगत् पूज्य होते हैं। कीर्ति और सुख को प्राप्त कर क्रमशः सिद्ध हो जाते हैं।

मुनि के समान आर्यिकाओं को दीक्षा देते समय महाव्रतों का आरोप किया जाता है।

मुनि और आर्यिकाओं की चर्या में अन्तर यह है कि मुनि निर्वस्त्र निरावरण होते हैं और आर्यिका सवस्त्र सावरण होती हैं क्योंकि आर्यिकाओं को भगवत् कुन्दकुन्द आचार्य देव की आज्ञा है कि—

लिंगं इच्छीणं हवदि भुंजइ पिंडं सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एक्कवत्था वत्थावरणेण भुंजेइ[2] ॥२२॥

अर्थ—स्त्रियों के योग्य आचरण यह है कि वे एक बार निर्दोष एषणा समिति युक्त भोजन करें। एक वस्त्रधारिणी आर्यिका है वस्त्रयुक्त ही आहार ग्रहण करें इत्यादि। अतः एक साड़ी धारण करना ही इसका गुण है अन्यथा जिनाज्ञा भंग का दोष होगा। इसी प्रकार आर्यिका बैठकर भोजन करें ऐसी आचार्यों की आज्ञा है, अतः यह मुनि के समान खड़े होकर आहार न करके बैठ कर एक ही स्थिर आसन से आहार करती हैं यह एक अन्तर है। सामान्यतया ये दो अन्तर सवस्त्रता और बैठकर आहार मुनि और आर्यिकाओं में पाये जाते हैं।

आर्याओं को प्रतिमायोग धारण करना, वृक्षमूल, आतापन एवं अभ्रावकाश योग करने का निषेध है, यह मुनि और आर्या में अन्तर है।

वर्तमान पंचम काल में मुनि और आर्यिका दोनों के एकाकी विहार का निषेध है, चतुर्थ काल में मुनि यदि उत्तम संहननधारी एवं श्रुतज्ञ होवे तो उन्हें एकाकी विहार की आज्ञा है अन्य मुनि को नहीं, कर्मभूमि की स्त्रियों को सर्वकाल में हीन संहनन होने से चतुर्थ काल में भी एकाकी विहार की आज्ञा नहीं है। चतुर्थकाल की अपेक्षा मुनि आर्यिका में यह एक अन्तर है

किसी का कहना है कि आर्यिकायें सिद्धान्त ग्रन्थ अथवा सूत्र ग्रन्थ—गणधरादि रचित ग्रन्थ नहीं पढ़ सकतीं। किन्तु यह कथन उचित नहीं है। श्री कुन्दकुन्ददेव स्वरचित मूलाचार मे सूत्र का लक्षण करने के अनन्तर लिखते हैं कि—

तं पढिदुमसज्झाये णो कप्पदि विरद इत्थिवग्गस्स।
एत्तो अण्णो गंथो कप्पदि पढिदुं असज्झाए[3] ॥

अर्थ—उक्त सूत्रग्रन्थ अस्वाध्याय काल में मुनि और आर्यिका न पढ़ें, अस्वाध्याय काल में तो सूत्रग्रन्थ से अन्य जो आराधना आदि ग्रन्थ हैं वे पढ़ने योग्य हैं। यदि आर्यिका को सूत्रग्रन्थ पढ़ना निषिद्ध होता तो वह एकादशांग ज्ञानधारिणी कैसे हो सकती थी? जैसा कि कहा है—

१. मूलाचार। २. सूत्र पाहुड। ३. मूलाचार।

दुःसंसारस्वभावज्ञा सपत्नीभिः सितांबरा।
ब्राह्मीं च सुन्दरीं श्रित्वा प्रवव्राज सुलोचना ॥५१॥
द्वादशांगधरो जातः क्षिप्रं मेघेश्वरो गणी।
एकादशांगभृज्जाता साऽऽर्यिकापि सुलोचना[1] ॥५२॥

अर्थ—भरत चक्रेश्वर के प्रमुख सेनानी जयकुमार की पट्टमहिषी प्रिया सती सुलोचना ने जगत् एवं काय के स्वभाव को दुःखस्वरूप ज्ञात कर सपत्नियों के साथ पूज्या ब्राह्मी और सुन्दरी नाम की आदिनाथ भगवान् के समवशरण में स्थित प्रमुख आर्यिकाओं के निकट दीक्षा धारण की। जयकुमार ने उसके पूर्व दीक्षा ग्रहण की थी। उनको शीघ्र ही द्वादशांग का ज्ञान हुआ और वे भगवान् आदि प्रभु के गणधर बने। साध्वी सुलोचना आर्या भी एकादशांग ज्ञानधारिणी बनीं। आर्यिकाओं को सम्पूर्ण द्वादशांग का ज्ञान तो नहीं होता, किन्तु ग्यारह अंग तक ज्ञान हो सकता है यह उपर्युक्त श्लोकार्थों से स्पष्ट है।

स्त्रीवेदोदयजन्य कुछ कमियाँ या दोष आर्यिकाओं में सम्भव हो सकता था। उनके लिये आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव ने कहा है कि—

अण्णोण्णणुकूलाओ अण्णोण्णहिरक्खणाभिजुत्ताओ।
गयरोसवेरमाया, सलज्जमज्जाद किरियाओ ॥६८॥

अर्थ—आर्यिकायें आपस में मिलकर रहें, एक-दूसरे के अनुकूल व्यवहार करें, एक-दूसरे की रक्षा में तत्पर रहें, स्त्रियों में स्वभावतः रोष शीघ्र आता है, वैर विरोध माया का आधिक्य भी रहता है अतः कहा है कि आर्यिकायें वैर एवं माया को छोड़ दें। लज्जा एवं मर्यादा का संरक्षण भी उन्हें अवश्य करना होगा। आर्यिकाओं के निवास के लिये कहा है—

अगिहत्थ मिस्सणिलये असण्णिवाए विसुद्धसंचारे।
दो तिण्णि व अज्जाओ बहुगीओ वा सहत्थंति[2] ॥

अर्थ—आर्यिका गृहस्थ से मिश्रित स्थान पर न रहे, परस्त्री लंपट, दुष्ट तथा पशु आदि से रहित स्थान में रहे, जहाँ पर गुप्त संचार योग्य अर्थात् मल मूत्रादि के उत्सर्ग का प्रदेश न हो ऐसे स्थानों में दो तीन अथवा बहुत-सी आर्यिकाओं के साथ निवास करे।

आर्यिकाओं का वेष—

अविकारवत्थवेसाजल्लमलविलित्त चत्तदेहाओ।
धम्मकुलकित्तिदिक्खापडिरूव विसुद्ध चरियाओ[3] ॥

अर्थ—स्त्रियों में स्वभावतः शृंगार प्रवृत्ति अधिक है, अतः कहा है कि आर्यिकायें विकार-रहित वस्त्र पहरें अर्थात् शुक्ल साड़ी साड़ी मात्र पहरें, सिले हुए वस्त्र (पेटीकोट, ब्लाउज आदि) न पहने। शरीर के एकदेश तथा सर्व देशस्थ मलयुक्त रहें, शरीर के ममत्व भाव से रहित होवें। जिनधर्म, अपने माता आदि का कुल तथा दीक्षादायक गुरु का कुल, उनकी कीर्त्ति-प्रसिद्धि आदि के अनुसार प्रशस्त व्यवहार युक्त होवे।

---

१. हरिवंशपुराण, सर्ग १२। २. मूलाचार। ३. मूलाचार।

आहारार्थ आर्यिकाओं का गमन—

तिण्णि व पंच व सत्त व अज्जाओ अण्णमण्णरक्खाओ ।
थेरेहिं सहंतरिदा भिक्खाय समोदरंति सदा ॥

अर्थ—तीन या पाँच अथवा सात आर्यिकायें आहारार्थ श्रावक के वसति में जावें, मार्ग में परस्पर रक्षा करती हुई जावें, साथ की वृद्धा आर्याओं से अन्तरित होकर गमन करें। भाव यह है कि ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये अकेली स्त्री असमर्थ होती है अतः आहार कार्य में भी आर्या एकाकी न जावें, जहाँ सर्वथा परिचित श्रावक हैं उनके गृह में अकेली आहार के लिये जाना निषिद्ध नहीं है।

उनके लिये निषिद्ध क्रियायें—

रोदणण्हावण भोयण पयणं सुत्तं च छव्विहारंभे ।
विरदाण पादमक्खण धोवण गेयं च णवि कुज्जा ॥

अर्थ—स्त्रियों में स्वभावतः रोना, गाना, भोजन पकाना, अनेक तरह का कूटना, पीसना आदि आरम्भ क्रिया में प्रवृत्ति होती है, अतः कहा है कि वे आर्यायें रुदन न करें, बालकों का स्नानादि न करावें, कपड़ा न सीवें, रसोई न बनावें। मुनिजनों का पादमर्दन, पाद प्रक्षालन न करें तथा गीत, नृत्य न करें, बाजे आदि न बजावें।

उनके करने योग्य कार्य—

अज्झयणे परियट्टे सवणे तहाणुपेहाये ।
तवविणयसंजमेसु य अविरहिदुवओगजुत्ताओ ॥

अर्थ—आर्यिकायें मुनिजनों के समान ही अपना समय अध्ययन अर्थात् नवीन ग्रन्थों का वाचन, परिवर्तन, अधीत ग्रन्थ का पुनः अनुशीलन, अपूर्व अथवा पूर्व शास्त्रों का श्रवण करती रहें, बारह भावनाओं का सतत चिंतवन करें। द्वादश तप, पंच प्रकार का विनय, बारह प्रकार के संयमों में अपना उपयोग लगावें। सदा मन, वचन और काय की प्रवृत्ति शुभ रक्खें। इस प्रकार यह आर्या की प्रवृत्ति बतायी गयी है।

इस प्रकार मूलाचार, आचारसार आदि ग्रन्थों से यह निश्चय होता है कि मुनि और आर्यिकाओं के चर्या में विशेष अन्तर नहीं है।

इति शुभं भूयात्





आर्यिकाओं की चर्या

आर्यिका अभयमती माताजी

जैनसिद्धान्त के अनुसार जब किसी भी बालिका, सौभाग्यवती महिला या विधवा को संसार, शरीर और भोगों से वैराग्य हो जाता है तब वह संसार के चतुर्गति दुःखों से छूटने के लिये दीक्षा लेकर साध्वी बन जाती है और आत्म कल्याण में प्रवृत्त हो जाती है। दीक्षा लेने के पूर्व वह किसी भी प्रमुख आर्यिका के पास जाकर उन्हें अपने आपको समर्पित कर उनसे दीक्षा की प्रार्थना करती है। वह गणिनी आर्यिका उसे कुछ दिन अपने पास रखकर पुनः उसें दीक्षा के योग्य समझ कर वे स्वयं दीक्षा दे देती हैं। अथवा यदि संघ में हैं तो संघ के आचार्य महाराज से दीक्षा दिला देती हैं।

दीक्षा

महिलाओं में दीक्षा के दो प्रकार हैं—क्षुल्लिका और आर्यिका। क्षुल्लिका दीक्षा में उसे ग्यारह प्रतिमा के व्रत दिये जाते हैं। तथा पिच्छी कमंडलु और शास्त्र भी दिया जाता है। ये साड़ी और एक दुपट्टा धारण करती हैं। इनके लिए केशलोच अनिवार्य नही है और बैठकर थाली में या कटोरे में भोजन करती हैं।

आर्यिका दीक्षा में मुनियों की दीक्षा विधि के सारे संस्कार किये जाते हैं। उन्हें अट्ठाईस मूल गुण दिये जाते हैं—पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय निरोध, छह आवश्यक क्रिया, केशलोंच, आचेलक्य, अस्नान, क्षितिशयन, अदंतधावन, स्थिति भोजन और एकभक्त ये अट्ठाईस मूलगुण हैं।

आर्यिकाओं को स्त्रीलिंग की दृष्टि से दो साड़ी[1] रखना होता है जिसमें से वे एक पहनती हैं और दूसरी धोकर सुखा देती है। तृतीय वस्त्र रखने का उनके लिए विधान नहीं है। श्रावकों के घर में पड़गाहन के बाद दिन में एक बार शुद्ध प्रासुक आहार लेती हैं। यह आहार भी बैठकर अपने करपात्र में ही ग्रहण करती हैं। मुनियों की चर्या से इन आर्यिकाओं की चर्या में इन दो बातों का ही अन्तर है फिर भी इनके अट्ठाईस मूलगुण माने गये हैं।

आचार्य वीरसागर जी महाराज कहते थे कि एक साड़ी धारण करना और बैठकर आहार करना ये ही इनके मूलगुण हैं।



१. वस्त्रयुग्मं सुबीभत्सलिंगप्रच्छादनाय च।
आर्याणां संकल्पेन तृतीये मूलमिष्यते ॥—प्रायश्चित्त ग्रन्थ

दीक्षा के समय इन्हें मयूरपंख की पिच्छी, काठ का कमंडलु और शास्त्र दिया जाता है। शयनासन में ये लकड़ी का पाटा, चावल या कोदों की घास और तृण की चटाई का प्रयोग करती हैं।

इन आर्यिकाओं के लिये जैसे अट्ठाईस मूलगुण बताये गये हैं वैसे ही ये चौंतीस उत्तरगुणों का पालन भी कर सकती हैं। बारह तप और बाईस परीषहजय ये उत्तर गुण हैं।

वसतिका

जो स्थान साधुओं के निवास से दूर हो, गृहस्थों के स्थान से न अति दूर हो न अति पास हो, जहाँ व्यसनी, चोर आदि का प्रवेश न हो, जिसमें मल-मूत्र विसर्जन के लिये मर्यादित स्थान हो, ऐसी वसतिका आर्यिकाओं के लिये योग्य मानी गई है। इसमें वे आर्यिकायें २ से ३०, ४० तक भी रह सकती हैं। आर्यिकाओं के लिए अकेली रहने का विधान नहीं है।

दैनिकचर्या

जो मुनियों के अहोरात्र सम्बन्धी २८ कायोत्सर्ग कहे गये हैं, वे ही आर्यिकाओं के लिये हैं। ये सोकर उठने के बाद पिछली रात्रि से लेकर रात्रि में सोने तक किये जाते हैं।

२८ कायोत्सर्ग—पूर्वाह्ण, अपराह्ण, पूर्वरात्रिक, अपररात्रिक इन चारों काल के स्वाध्याय[1] के ३-३ मिलकर १२, दैवसिक, रात्रिक प्रतिक्रमण के ४-४ मिलकर ८, त्रैकालिक देव वन्दना के २-२ मिलकर ६, रात्रियोग प्रतिष्ठापना और निष्ठापना के १-१ ऐसे २, कुल मिलाकर २८ हुए। इन्हीं का स्पष्टीकरण—

पिछली रात्रि में निद्रा से उठकर हाथ पैर आदि शुद्ध करके स्वाध्याय करना 'अपररात्रिक' स्वाध्याय है। स्वाध्याय प्रारम्भ करने से पहले श्रुत भक्ति[2] और आचार्य भक्ति सम्बन्धी दो कायोत्सर्ग होते हैं। अनंतर स्वाध्याय के बाद श्रुत भक्ति सम्बन्धी एक कायोत्सर्ग होता है। ऐसे स्वाध्याय के तीन कायोत्सर्ग हुए। पुनः सूर्योदय से दो घड़ी आदि से पहले रात्रि सम्बन्धी दोषों का शोधन करने के लिए 'रात्रिक' प्रतिक्रमण किया जाता है। इसमें सिद्ध भक्ति, प्रतिक्रमण भक्ति, वीर भक्ति और चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति इन चार भक्तियों सम्बन्धी चार कायोत्सर्ग होते है। पुनः रात्रियोग निष्ठापन में योगभक्ति सम्बन्धी एक कायोत्सर्ग होता है। अनंतर पूर्वाह्ण सामायिक (देववंदना) में चैत्यभक्ति, पंचगुरु भक्ति सम्बन्धी दो कायोत्सर्ग होते हैं।

पुनः लघु सिद्ध भक्ति, लघु श्रुत, लघु आचार्य भक्ति पढ़कर आचार्य वन्दना की जाती है। ये कायोत्सर्ग गिनती में नहीं आते हैं।

सूर्योदय के दो घड़ी बाद स्वाध्याय का काल प्रारम्भ हो जाता है। अतः सुविधानुसार पौर्वाह्णिक स्वाध्याय करे ,उसमें पूर्वोक्त तीन कायोत्सर्ग हो जाते हैं।

---

१. स्वाध्याये द्वादशेष्टा षड् वंदनेऽष्टौ प्रतिक्रमे।
कायोत्सर्गा योगभक्तौ द्वौ चाहोरात्रगोचराः ॥—अनगारधर्मामृत पृ० ५९७।

२. इसकी विधि यह है—"अथ अपररात्रिकस्वाध्यायप्रारंभक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।"

इसके बाद आर्यिकायें शुद्ध वस्त्र बदल कर यदि आचार्य संघ में हों तो आचार्य के दर्शनार्थ मन्दिर में जावें। अन्यथा अपनी गणिनी आर्यिका के समीप पहुँचकर उनकी वन्दना करके और उनके आहारार्थ निकलने के बाद उनके पीछे क्रम से आहार को निकलें। आहार से वापस आकर गुरु या गुर्वानी के समीप प्रत्याख्यान ग्रहण करना होता है।

पुनः मध्याह्न में सामायिक की जाती है। अनन्तर मध्याह्न की चार घड़ी बीत जाने पर 'अपराह्निक' स्वाध्याय किया जाता है।

जो नव दीक्षित हैं, अल्पज्ञ हैं वे विद्यार्थिनी के रूप में अपनी गुर्वानी से या उनकी आज्ञानुसार अन्य विद्वानों से बड़ी आर्यिकाओं के संरक्षण मे ही बैठ अध्ययन करें। व्याकरण, न्याय, सिद्धान्त, छन्द, अलंकार आदि ग्रन्थों को पढ़कर अपने ज्ञान को वृद्धिगत करें।

इसके बाद सायंकाल के पहले ही दिवस सम्बन्धी दोषों का शोधन करने के लिये 'दैवसिक' प्रतिक्रमण करें। बाद में आचार्य की या गणिनी की वन्दना करें। अनन्तर आर्यिकायें मुनि के स्थान से जाकर अपनी वसतिका में रात्रियोग प्रतिष्ठापना के लिये योग भक्ति करें। "आज रात्रि में मैं इसी वसतिका में रहूँगी" ऐसा नियम रात्रियोग प्रतिष्ठापना कहलाता है। चूँकि साधु या साध्वी गण रात्रि में यत्र तत्र विचरण नहीं करते हैं। मल मूत्रादि विसर्जन के लिये भी दिन में जगह देख लेनी चाहिये। रात्रि में वहीं निकट में ही जाना चाहिये।

अनन्तर सूर्यास्त काल में 'अपराह्निक' सामायिक की जाती है। सामायिक के बाद पुनः 'पूर्वरात्रिक' स्वाध्याय करना होता है। जो शिष्यायें अध्ययन करती है वे अपना पाठ याद करती हैं। बाद में णमोकार मंत्र का स्मरण करते हुए चटाई, पाटा आदि पर सोना चाहिये। आर्यिका कभी भी अकेली शयन न करे क्योंकि अपाय अथवा लोकापवाद का भय रहता है। इसलिये दो-चार आदि आर्यिकायें एक कमरे में शयन करें। तथा दिन में भी मिलकर ही रहे। संक्षेप मे यह दिगम्बर जैन सम्प्रदाय की आर्यिकाओं की चर्या है।

प्रातः उजेला हो जाने पर अपना संस्तर (सोने के तख्त, पाटे, चटाई या घास) का शोधन करके इन्हें हटा कर उचित स्थान पर रख देना चाहिये और शाम को उजले मे ही देख शोध कर इन्हें बिछा लेना चाहिये। इसे ही 'संस्तर प्रतिलेखन' कहते हैं।

मुनि अथवा आर्यिकायें जो कुछ भी पुस्तक, कमंडलु, पाटा आदि रखते उठाते हैं सभी कार्यों में मयूरपिच्छिका से झाड़कर शोधकर ही रखते उठाते हैं। चूँकि यह पिच्छी जीवरक्षा हेतु संयम का उपकरण है।

आर्यिकाओं में संघ में गणिनी आर्यिका या उनकी आज्ञा से अन्य विदुषी आर्यिकायें प्रातः या मध्याह्न समय श्रावक, श्राविकाओं को उपदेश भी सुनाती हैं।

वंदना और आशीर्वाद

आर्यिकायें आचार्य, उपाध्याय, साधुओं को लघु सिद्धभक्ति आदि पढ़कर विधिवत् नमोऽस्तु कहकर गवासन से बैठकर नमस्कार करती हैं। मुनिजन आर्यिकाओं को 'समाधिरस्तु' आशीर्वाद देते हैं। आर्यिकायें अपनी गणिनी को और अपने से दीक्षा में बड़ी आर्यिकाओं को गवासन से बैठकर 'वंदामि' कहकर वंदना करती हैं। वे भी उन्हें वापस 'वंदामि' कहकर प्रतिवंदना करती हैं।

क्षुल्लक-क्षुल्लिकायें भी आर्यिका को 'वंदामि' करते हैं। ऐलक भी वंदामि कहकर नमस्कार करते हैं। तब आर्यिकायें उन्हें 'समाधिरस्तु' आशीर्वाद देती हैं। ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी और व्रत आदि प्रतिमाधारी के द्वारा वंदामि करने पर वे उन्हें भी 'समाधिरस्तु' आशीर्वाद देती हैं। अव्रती श्रावक श्राविकाओं के द्वारा नमस्कार करने पर उन्हें 'सद्धर्मवृद्धिरस्तु' आशीर्वाद देती हैं। जैनेतर द्वारा वंदना किये जाने पर 'धर्मलाभोऽस्तु' आशीर्वाद देना होता है और पामर लोगों के नमस्कार करने पर 'पापक्षयोऽस्तु' आशीर्वाद देने का विधान है। आर्यिकायें कभी भी अपने विद्यागुरु, माता-पिता आदि असंयतजनों को नमस्कार नहीं करती हैं।

प्रायश्चित्त

व्रतों में कुछ भी दोष लग जाने पर अथवा चतुर्दशी आदि का बड़ा प्रतिक्रमण करने पर आर्यिकायें अपनी गणिनी से प्रायश्चित्त लेती हैं। यदि वे आचार्य संघ में हैं तो गणिनी को आगे कर आचार्य के पास जाकर प्रायश्चित्त लेती हैं। गणिनी आर्यिका आचार्य के पास प्रायश्चित्त लेते समय अन्य मुनि या एक अन्य आर्यिका को अवश्य बिठाती हैं क्योंकि अकेले आचार्य के पास अकेली आर्यिका कभी भी नहीं बैठती हैं।

पूज्यता

आर्यिकायें उपचार महाव्रती होते हुए भी संयतिका, श्रमणी महाव्रतिनी आदि कही गई हैं। अतः वे मुनि के समान ही पूज्य हैं, नमस्कार और पूजा के योग्य हैं। आहार के समय उनकी नवधाभक्ति भी की जाती है। चूँकि स्त्रीपर्याय में उन्होंने सर्वोत्कृष्ट संयम को धारण किया हुआ है। श्री कुन्दकुन्द देव ने भी मूलाचार में यही कहा है कि—

एसो अज्जाणं पि य सामाचारो जहाक्खिओ पुव्वं।
सव्वम्हि अहोरत्ते विभासिदव्वो जहाजोग्गं[1] ॥३४॥

इससे पूर्व मुनियों की समाचारी विधि का जैसा वर्णन किया है, वैसा सभी आर्यिकाओं के लिए भी समझना चाहिये। अर्थात् दिवस रात्रि सम्बन्धी सभी क्रियायें मुनियों के ही सदृश हैं। अन्तर इतना ही है कि वृक्षमूल योग, आतापन योग, अभ्रावकाश योग और भी दिन प्रतिमा योग आदि करने का आर्यिकाओं के लिए निषेध है, क्योंकि वह उनकी आत्मशक्ति के बाहर है।

इसलिये इनकी पूज्यता भी मुनियों के समान ही है। पुराण शास्त्रों में भी ऐसे उदाहरण पाये जाते हैं। "श्री रामचन्द्र ने मन्दिर में विराजमान आर्यिका संघ में प्रधान वरधर्मा गणिनी की पूजा की थी। यथा—"श्रीरामचन्द्र ने हाथी से उतर कर मन्दिर में प्रवेश कर जिनेन्द्रदेव की बड़ी भारी पूजा की। पुनः वरधर्मा गणिनी आर्यिका की बड़े भक्ति भाव से सीता के साथ मिलकर पूजा की[2]।" जब बलभद्र महापुरुष श्रीरामचन्द्र जी भी आर्यिकाओं की पूजा करते थे तब आर्यिकाओं की पूज्यता में क्या सन्देह है। आज भी आचार्य शांतिसागरजी, आ० वीरसागर आदि बड़े आचार्य संघों में बराबर आर्यिकाओं की पूजा की परम्परा चली आ रही है।

---

१. मूलाचार।

२. वरधर्माऽपि सर्वेण संघेन सहितापरम्।
राघवेण ससीतेन नीता तुष्टेन पूजनम् ॥—पद्मपुराण, पर्व ३७, पृ० १६४।

प्राचीन-अर्वाचीन आर्यिकाओं की चर्या

आदिपुराण आदि ग्रन्थों के स्वाध्याय से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में आर्यिकायें मुनियों के संघ में भी रहती थीं। तथा अलग भी आर्यिकाओं के विशाल संघ रहते थे। जैसे वरधर्मा गणिनी का स्वतन्त्र संघ था। यशस्तिलकचंपू को देखें तो श्री सुदत्ताचार्य का चतुर्विध संघ था। उनकी चर्या मूलगुण-उत्तरगुण आदि सब ये ही थे जो कि आज कहे गये हैं। हाँ, शक्ति और काल की अपेक्षा उनकी सहनशीलता और उनके तपश्चरण विशेष कहे जा सकते हैं।

आज भी मासोपवास करने वाली आर्यिकायें मैंने स्वयं देखी हैं। प्रत्युत मेरे संघ में ही थीं जिनकी सन् १९७१ में अजमेर में सल्लेखना हुई।[1] आज भी ज्ञानाराधना में और धर्म प्रभावना में विशेष स्थान को प्राप्त आर्यिकायें हैं। वास्तव में मुनि और आर्यिकाओं की चर्या अनादि निधन एक सदृश होने से जो चतुर्थ काल में थी सो ही आज पंचम काल में है। मात्र उत्तरगुणों का पालन और तपश्चरण आदि में ही अन्तर हो सकता है मूलगुणों में नहीं। वही केशलोंच करना, दिन में एक बार करपात्र में आहार लेना, मुनि के लिए नग्न रहना, आर्यिकायें के लिये एक वस्त्र धारण करना आदि जो पहले था सो ही आज भी है। तिलोयपण्णत्ति में लिखा है कि—पंचम काल के अन्त तक मुनि, आर्यिका रहेंगी, चतुर्विध संघ रहेगा।[2] इसलिये आज के मुनि-आर्यिकाओं को भी पूर्व के सदृश मानकर उनकी भक्ति वन्दना पूजा आदि करना चाहिये। यदि कोई साधु या साध्वी सदोष हो तो उनके निमित्त से सभी की अवहेलना या उपेक्षा नहीं करना चाहिये क्योंकि यह मोक्ष मार्ग चतुर्विध संघ से ही चलता है और चतुर्विध संघ पंचम काल के अन्त तक रहेगा ही रहेगा।



१. आर्यिका शांतिमती, आर्यिका पद्मावती।

२. 'तेत्तियमेत्ते काले जम्मिस्सदि चउवण्णसंघाओ'।—तिलोयप०, अ० ४ गाथा १४९४, ९५।



आर्यिकाओं का धर्म एवं संस्कृति के विकास में योगदान

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल
एम० ए०, पी-एच० डी०, शास्त्री, जयपुर

भगवान् ऋषभदेव से लेकर महावीर स्वामी तक सभी तीर्थंकरों के युग में आर्यिकाओं का साधु समाज में समादरणीय स्थान रहा है। भगवान् महावीर के संघ में मुनियों से आर्यिकाओं की संख्या अधिक थी। वे सर्वत्र विहार करती हुई धर्म एवं संस्कृति की अपूर्व सेवा करती रहती थीं। चन्दनबाला जैसी आर्यिका ने अपने जीवन से त्याग एवं तपस्या का आदर्श प्रस्तुत किया था। उनके पश्चात् देश में आर्यिकाओं की परम्परा में बराबर वृद्धि होती गयी और आचार्यों के संघो में रहते हुए उनके द्वारा जैन संस्कृति के विकास मे बराबर योगदान मिलता रहा। लेकिन जिस प्रकार आचार्यों का इतिहास सुरक्षित रखा गया तथा आचार्य परम्परा का पट्टावलियों मे उल्लेख होता रहा उस प्रकार आर्यिकाओं का कोई पृथक् इतिहास नहीं मिलता और न उनकी परम्परा को ही समाज द्वारा मान्यता प्राप्त हुई। इसका प्रमुख कारण उनका मुनि संघों में रहना था। वहाँ उनके व्यक्तित्व का विकास नही हो सका। यही कारण है कि आर्यिकाओं का कोई व्यवस्थित इतिहास नहीं मिलता।

भट्टारक युग में भट्टारकों के संघ में मुनियों एवं ब्रह्मचारियों के समान आर्यिकायें भी वहीं रहती थीं तथा धर्म, संस्कृति एवं समाज के अभ्युत्थान में जितना योग हो सकता था उतना देती रहती थीं। भट्टारक सकलकीर्ति-नुराम मे इस प्रकार का उल्लेख मिलता है कि उनके संघ में महाव्रती, ब्रह्मचारी, आर्यिका, क्षुल्लिका आदि सभी थीं।[1] उक्त उल्लेख के अतिरिक्त, एक अन्य भट्टारक पट्टावली में भट्टारकों के संघ मे निम्न प्रकार आर्यिकाओं की संख्या एवं उनके नाम आदि मिलते हैं—

१. भट्टारक विजयकीर्ति (१४वी शताब्दी) के संघ में आर्यिकाओं की संख्या १५ थी।
२. भट्टारक रत्नकीर्ति के संघ में १५ आर्यिकायें थीं। पट्टावली में उनके नाम निम्न प्रकार दिये हैं।

आर्यिका बाई, माणीकश्री, बाई पमाई, बाई पुरी, बाई अमरी



---

१. महाव्रती ब्रह्मचारी घणा, जिणदास गोलागार प्रमुख अपार।
आर्यिका क्षुल्लिका सयलसंघ गुरु सोभित सहित सकल परिवार ॥

रंगो, डाहो, कोहोति, बाल्ही, होरू, रुखमाई, अबांइ, नाकू, पुणी एवं चंपाई।

३. मडलाचार्य यशकीर्ति के संघ में १३ आर्यिकाएँ रहती थीं जिनमें बाइ हीरा, वसि, कान्हि, हर्षा, अदा, गागो, चंगी, के नामों का उल्लेख किया गया है।

इसी तरह और भी भट्टारकों एवं मंडलाचार्यों के संघ मे रहने वाली आर्यिकाओं के नाम गिनाये है जिनसे पता चलता है कि भट्टारक युग में ये साध्वियाँ आर्यिकाएँ एवं ब्रह्मचारिणियों के पद पर रह कर निवृत्ति मार्ग पर चलती थीं।

उक्त उल्लेखों के अतिरिक्त जैन ग्रंथ प्रशस्तियों में कुछ ऐसे भी पाठ मिले हैं जिनके अध्ययन से पता चलता है कि १६वीं एवं १७वीं शताब्दो में आर्यिकाएँ स्वतन्त्र रूप से जो विहार करती थीं और आत्म-साधना के अतिरिक्त ये जैन साध्वियाँ प्राचीन ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ करवा कर उनको साधुओं एवं साध्वियों को अध्ययन के लिये देती रहती थी इनमें से कुछ उल्लेख निम्न प्रकार हैं—

(i) संवत् १५४३ आसोज सुदी ४ गुरुवार के दिन हिसारपेरोज कोट में साध्वी कमलश्री ने महाकवि पुष्पदन्त के आदिपुराण की प्रतिलिपि करवा कर मन्दिर में विराजमान किया था। कमलश्री ने यह कार्य अनेक व्रत विधान एवं तप आदि करने के पश्चात् किया।[1]

(ii) संवत् १५९३ में आर्यिका विनयश्री एक विदुषी आर्यिका हुई थीं। वह अपभ्रंश, संस्कृत आदि भाषाओं के ग्रंथों का खूब स्वाध्याय करती थीं इसलिये पं० जयमित्रहल विरचित वर्द्धमान चरित की प्रतिलिपि करवा कर धाना अजमेरा की पत्नी नेमी ने उसे भेंट स्वरूप प्रदान की थी।[2]

इन्हीं आर्यिका विनयश्री को संवत् १५९५ के भाद्रपद्र शुक्ला १३ को सुरजिन अजमेरा की धर्मपत्नी सुनखती ने दशलक्षण व्रत के उद्यापन पर महाकवि सिंह के अपभ्रंश काव्य पज्जुण्णचरिउ की प्रतिलिपि करवा कर भेंट की थी। उक्त दोनों प्रशस्तियों से ज्ञात होता है कि १९ वीं शताब्दी में आर्यिकाएँ प्राकृत अपभ्रंश की भी अच्छी विदुषी होती थीं।[3]

(iii) संवत् १६९१ भादवा सुदी ३ शुक्रवार का एक और उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार आर्यिका बाई करपा ने ब्रह्म कामराज विरचित जयकुमारपुराण की प्रतिलिपि करवा कर स्वाध्याय के लिये उसे मन्दिर मे विराजमान किया।[4]

(iv) विद्वानों के पढ़ने के लिए भी ग्रन्थों की प्रतिलिपि करवा कर उन्हें भेंट दिया करते थे। संवत् १६६८ भाद्रपद शुक्ला १२ रविवार का भी इसी प्रकार उल्लेख मिलता है जिसमें आर्यिका बाई हीरा ने सकलकीर्ति के वर्द्धमान पुराण की प्रतिलिपि करवा कर पं० सकलचन्द्र को पढ़ने के लिये प्रदान की थी।[5]

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची-भाग तीसरा, पृष्ठ संख्या २२२।

२. प्रशस्ति संग्रह—सं० डॉ० कासलीवाल—पृष्ठ संख्या १७०।

३. प्रशस्ति संग्रह सम्पादक डॉ० कासलीवाल पृ० १२८।

४. वही, पृष्ठ संख्या १३।

५. वही, पृष्ठ संख्या ५६।

इस प्रकार ग्रन्थप्रशस्तियों के आधार पर ऐसे पचासों लेख मिल सकते हैं जिनमें इन आर्यिकाओं की साहित्य सेवा अथवा साहित्यिक रुचि का उल्लेख मिलता है। इन्द्रनन्दियोगीन्द्र के ज्वालिनी कल्प नामक मन्त्रशास्त्र के ग्रन्थ में उल्लेख आता है कि ज्वालामालिनी देवी के आदेश से "ज्वालिनी मत" नाम का एक ग्रन्थ मलय नामक दक्षिण देश हेम नामक ग्राम में द्रवणाधीश्वर हेलाचार्य ने बनाया था। इनके संघ में आर्यिका "सांतिरसव्वा" के होने का उल्लेख भी मिलता है।[1] उक्त उल्लेख से पता चलता है कि आर्यिका "सांतिरसव्वा" मन्त्रशास्त्र की अध्ययनशीला साध्वी थी।

लेकिन संवत् १९०० के पश्चात् भट्टारकों का प्रभाव क्षीण होने लगा इसलिये उनके संघ में पहिले के समान अन्य साधु साध्वियाँ कम होती गयी और कुछ ही वर्षों में मुनि एव आर्यिकाओं का मिलना कठिन हो गया और समाज में साधु संस्था प्रायः समाप्त हो गयी। लेकिन आचार्य शांतिसागर महाराज के उत्तर भारत मे पदार्पण के साथ ही साधु संस्था को फिर से बल मिला और उसी के फलस्वरूप आज देश मे साधु संस्था के प्रतीक आचार्य, उपाध्याय, मुनि एवं क्षुल्लकों का यत्र तत्र विहार होता रहता है। और फिर से साधु संस्था ने समाज को प्रभावित किया है।

साधुओं के समान साध्वियों की संख्या भी कम नही है। लेकिन वे मुनि सघों मे तो रहती ही हैं स्वतन्त्र रूप से भी अपना संघ चलाती हैं और साहित्य एवं संस्कृति की अपूर्व सेवा कर रही है। वर्तमान आर्यिकाओं मे आर्यिका विशुद्धमती जी, आर्यिका सुपार्श्वमती जी, विजयमती जी, आर्यिका ज्ञानमती जी एवं आर्यिका अभयमती जी, इन्दुमती जी, जैसी बीसों आर्यिकायें है जो विदुषी है तथा जैनधर्म एवं दर्शन की प्रौढ़ प्रवक्ता हैं।

आर्यिका इन्दुमती माताजी का अभी इसी मार्च ८३ में अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है जिसमे माताजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ ही उनकी तप साधना एवं लोकप्रियता पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। यह प्रथम अवसर है जब किसी आर्यिका को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया हो। अभिनन्दन ग्रन्थ मे समाज के १०० से भी अधिक साधुओं, विद्वानों एवं श्रेष्ठियों ने आर्यिका माताजी को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किये हैं। इन्दुमती माताजी का अपना स्वतन्त्र संघ है जिसमें आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी जैसी विदुषी तथा जैन तत्त्वज्ञान की शीर्षस्थ अध्येता उनकी शिष्या हैं। उनके सम्बन्ध में एक लेखक ने लिखा है कि "आसाम, बंगाल, बिहार, नागालैण्ड आदि प्रान्तों मे अपूर्व धर्म प्रभावना करने का आपको श्रेय प्राप्त है। वे महान् विद्यानुरागी, श्रेष्ठ वक्ता, प्रकाण्ड विदुषी एवं न्याय व्याकरण एवं सिद्धान्त की मर्मज्ञा हैं। माताजी को अब तक परमाध्यात्मतरंगिणी (अनुवाद), सागारधर्मामृत हिन्दी अनुवाद, नारी का चातुर्य, भगवान् महावीर और उनका सन्देश जैसी बीसों पुस्तकों को लिखने का श्रेय प्राप्त है।"

आर्यिका विशुद्धमती माताजी वर्तमान युग की अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी साध्वी है। आपने त्रिलोकसार एवं सिद्धान्तसार जैसे महान् ग्रन्थों की हिन्दी टीका की है। गुरु गौरव, श्रावक सोपान जैसी मौलिक कृतियाँ लिखने का आपको श्रेय प्राप्त है। इन दिनों आप आचार्य यतिवृषभ के महान् ग्रंथ "तिलोयपण्णत्ति" के सम्पादन में लगी हुई हैं। आप आचार्य धर्मसागरजी महाराज के संघ की आर्यिका हैं।

रत्नमती माताजी तपस्विनी आर्यिका हैं जो अपने शेष जीवन को त्याग एवं तपस्या में लगाये हुए हैं।

---

१. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह—पृष्ठ संख्या ६१।

आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी वर्तमान युग की लोकप्रिय आर्यिका हैं जो साहित्य एवं संस्कृति की सेवा में लगी रहती हैं। आपकी पुनीत प्रेरणा से वीर निर्वाण संवत् २४९८ में हस्तिनापुर में दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना हो सकी है जिसके अन्तर्गत वहाँ जम्बूद्वीप की रचना का कार्य चल रहा है। 'जम्बूद्वीप' की रचना में आर्थिक सहयोग तथा जन-जन को जम्बूद्वीप सम्बन्धी जानकारी देने के लिए 'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति' का देश के सभी प्रदेशों में पदार्पण हो रहा है।

ज्ञानमती माताजी साहित्य रचना के क्षेत्र में वर्तमान आर्यिकाओं में सबसे आगे हैं। आपने जैन न्याय के महान् ग्रन्थ अष्टसहस्री के सम्पादन करने का गौरव प्राप्त किया है। आपकी अब तक ५० से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें जैन ज्योतिर्लोक, त्रिलोक भास्कर, न्यायसार, जम्बूद्वीप, इन्द्रध्वज विधान, तीस चौबीसी विधान, नियमसार, भगवान् बाहुबलि, ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर, दिगम्बर मुनि, जैन भारती के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। बालकों को वर्तमान पद्धति से जैनधर्म की शिक्षा देने के लिए आपने "बाल विकास" के चार भाग तैयार किये हैं जो बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं। आपके निर्देशन में जम्बूद्वीप निर्माण का जो कार्य चल रहा है, जब कभी वह पूरा होगा जैन भूगोल को जानने के लिए एक महत्त्वपूर्ण सामग्री सिद्ध होगा।

माताजी परम विदुषी हैं। प्राकृत, संस्कृत के ग्रन्थों पर आपकी अच्छी गति है। जम्बूद्वीप पर आयोजित सेमिनारों में जब आप विभिन्न ग्रन्थों के आधार पर अपना प्रवचन करती हैं तो सभी उपस्थित विद्वान् आपके सूक्ष्म अध्ययन के प्रति नतमस्तक हो जाते हैं। विद्वानों के प्रति आपका सहज आदर रहता है।

उक्त आर्यिकाओं के अतिरिक्त देश में और भी आर्यिकायें हैं जो विदुषी हैं तथा साहित्य निर्माण में लगी हुई हैं। ऐसी आर्यिकाओं में आर्यिका अभयमती जी हैं जो प्राकृत एवं संस्कृत ग्रन्थों का हिन्दी पद्यानुवाद करने में दक्ष हैं। जब वे अपनी रचनाओं का सस्वर पाठ करती हैं तो श्रोतागण मंत्र मुग्ध हो जाता है।

इस प्रकार आर्यिकाओं ने भगवान् ऋषभदेव से लेकर आज तक समाज को जो दिया है उसका वर्णन करना कठिन है। वर्तमान में आर्यिका माताजी अपने-अपने संघों के साथ स्वतन्त्र विहार करती हैं और समाज एवं देश को त्याग, संयम एवं तपस्वी जीवन की ओर मोड़ने में लगी हुई हैं। मुझे आर्यिकारत्न विशुद्धमती जी, सुपार्श्वमती जी एवं ज्ञानमती जी तीनों के ही दर्शन करने का सौभाग्य मिला है। उनकी विद्वत्ता एवं गहन तत्त्वज्ञान से अवगत होने का भी अवसर मिला है इसलिए मैं तीनों के प्रति ही अपनी श्रद्धा अर्पित करता हूँ।

●



जैनधर्म और नारी

क्षु. ब्र. विद्युल्लता, हीराचन्द्र शाह
श्राविका संस्थानगर, सोलापुर

• •

मानव समाज के विकास में स्त्री व पुरुष दोनों को समान स्थान प्राप्त है। स्त्री और पुरुष दोनों होने से एक घटक को अधिक महत्त्व दिया जाता है तो समाज सर्वांगीण उन्नति नही कर सकता। इसलिए समाज की निर्मिति व मानव जाति का विकास और सामाजिक प्रगति के लिए नारी पुरुष के साथ बराबर काम करती रही है।

अन्य किसी भी धर्म की अपेक्षा जैनधर्म में नारी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसी धर्म ने पुराने मूल्यों को बदलकर उसके स्थान पर परिष्कृत मूल्यों की स्थापना की है। जैनधर्म की दृष्टि से नर और नारी दोनों समान हैं। भगवान् महावीर ने प्रत्येक जीव की स्वतन्त्रता निश्चय से स्वीकार की है। इसलिए व्रत धारण करने का जितना अधिकार श्रावक को दिया गया है, उतना ही अधिकार श्राविका का बताया है। जैन शास्त्रों में नारी जाति को गृहस्थ जीवन में धम्मसहाया (धर्म सहायिका), धर्म-सहचारिणी, देवगुरुजनसंकाशा इत्यादि शब्दों में जगह-जगह प्रशंसित किया है। नारी को समाज मे सम्माननीय और आदरणीय माना गया है। यद्यपि नारी पर्याय मुक्ति के लिए बाधक है तथापि अपना विकास चरमोत्कर्ष करके परम्परा से वह उत्कर्ष साधक है।

महिलाओं को सामाजिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में दिये हुए समान अधिकार का बीज जैनधर्म के अत्यन्त प्राचीन काल में वृषभनाथ तीर्थंकर ने बोया था। उन्होंने गृहस्थावस्था में ब्राह्मी और सुन्दरी इन दोनों कन्याओं को अक्षरविद्या और अंकविद्या, अध्यात्मविद्या प्रदान की थी। इतना ही नहीं भगवान् वृषभनाथ से उन दोनों ने आर्यिका व्रत की दीक्षा ली थी। चतुर्विध संघ के आर्यिका संघ की गणिनी (प्रमुख) आर्यिका ब्राह्मी ही थी। दीक्षा ग्रहण करने का अधिकार स्त्रियों को उस काल में प्राप्त होना यह आध्यात्मिक जगत् में क्रान्ति ही थी। यह परम्परा आज भी अक्षुण्ण रूप में चली आ रही है। आर्यिका महाव्रती बनकर परमोच्च आदर्श संस्थापित करती है।



राजा उग्रसेन की कन्या राजुलमती नेमिनाथ के दीक्षा ग्रहण करते ही आर्यिका की दीक्षा ग्रहण कर आत्मकल्याण की ओर अग्रसर हुई। वैशाली के चेटक राजा की कन्या चन्द्रासनी ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर भगवान् महावीर से दीक्षा ली। सती चन्दनबाला ने वैवाहिक बन्धन में न बँधकर भगवान् महावीर से आर्यिका की दीक्षा ली और साध्वियों की प्रमुख बनी। इस प्रकार जब अन्य धर्म मनीषियों ने स्त्रियों को पुरुषों का केवल अनुवर्ती माना उस समय भगवान् महावीर ने स्त्रियों की स्वतन्त्रता और उनके समान अधिकार की घोषणा की। आज भी भारत में हजारों साध्वियाँ आर्यिका का कठिन व्रत धारण कर आत्मकल्याण के साथ-साथ महिलाओं में आत्मिक जागृति का कार्य कर रही हैं।

सामाजिक कार्य और जैन नारी

जैन शास्त्रों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि महावीर के समय में और उसके पूर्व महिलाओं को आजन्म अविवाहित रहकर समाजसेवा और आत्मकल्याण करने की अनुज्ञा थी। आदिपुराण पर्व १९ श्लोक ७६ के अनुसार इस काल में पुरुषों के साथ ही कन्याओं के भी विविध संस्कार किये जाते थे। राज्य परिवार से सम्बन्धित महिलाओं को विशेषाधिकार प्राप्त थे। कन्या पिता की सम्पत्ति में से दान भी कर सकती थी। उदाहरण के लिए सुलोचना ने कौमार्यावस्था में रत्नमयी जिनप्रतिमा की निर्मिति की थी और उन प्रतिमाओं को प्रतिष्ठा करने के लिए बड़े ढंग से पूजाभिषेक विधि का भी आयोजन किया था।

कुछ जैन महिलाएँ राज्य व्यवहार में पूर्ण निपुण थीं। साथ में राज्य की रक्षा के लिए युद्ध में प्रत्यक्ष भाग लिया था। इसके लिए अनेक ऐतिहासिक उदाहरण दिये जा सकते हैं। मंजिरि देश के प्रसिद्ध सविध राजा की राज्यकन्या अर्धांगिनी ने खारवेल राजा के विरुद्ध किये गये आक्रमण में उसे सहयोग दिया था। इतना ही नहीं उसने इस युद्ध के लिए महिलाओं की स्वतन्त्र सेना भी खड़ी की थी। युद्ध में राजा खारवेल का विजय पाने पर खारवेल राजा के साथ उसका विवाह हुआ था। गंग घराने के सरदार नामर्का लड़की और राजा विश्वर लोक विद्याधर की पत्नी सामिरस बेन युद्ध की सभी कलाओं में पारंगत थी। सामिरसबेन के मर्मस्थलपर बाण लगने से उसे मूर्च्छा आ गयी और भगवान् जिनेन्द्र का नामस्मरण करते उसने इहलोक की यात्रा समाप्त की।

विजयनगर की सरदार चम्पा की कन्या राणी भैरव देवी ने राज्य नष्ट होने के बाद अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया था और वहाँ मातृसत्ताक पद्धति से कई बरसों तक राज्य चलाया था। नालजकोंड देश के अधिकारी नागार्जुन की मृत्यु के बाद कदंबराज ने उनकी देवी वीरांगना जक्कमव के कंधो पर राज्य के कारभार की जिम्मेदारी रखी। आलेखों में उसे 'युद्ध-शक्ति मुक्ता और जिनेन्द्र शासन भक्ता' कहा गया है। अपने अन्तकाल तक उसने राज्य कारभार की जिम्मेदारी सम्भाली।

गंग राजवंश की अनेक नारियों ने राज्य कारभार की जिम्मेदारी सम्भालकर अनेक जिनमन्दिर व तालाब बनाये। चम्पल राणी का नाम जिनमन्दिर निर्मिति और जैनधर्म की प्रभावना के लिए अधिक प्रसिद्ध है। उसी प्रकार श्रवणबेलगोल लेख क्र० ४९६ से पता चलता है कि जिक्कमब्वे शुभचन्द्र देवकी शिष्या थी। योग्यता और कुशलता से राज्य कारभार करने के साथ ही धर्म प्रचार के लिए इन्होंने अनेक जैन प्रतिमाओं की स्थापना की थी।

जैन नारियों के द्वारा शिल्प व मन्दिरों का निर्माण किया था। इसका उल्लेख शिलालेखों में मिलता है। कलिंगपति राजा खारवेल की रानी ने कुमारी पर्वत पर जैन गुफाओं का निर्माण किया था। सोरे के राजा की पत्नी ने अपने पति का रोग हटाने के लिए एक मन्दिर व तालाब का निर्माण किया था। यह मन्दिर आज भी 'मुक्ति' के नाम से प्रसिद्ध है। आहवमल्ल के राजा के सेनापति मल्लम की कन्या 'अत्तिमब्बे' दानशूर व जैनधर्म पर श्रद्धा रखनेवाली थी। उसने चाँदी और सोने की अनेक जैन प्रतिमाओं का निर्माण कराया था। उसने लाखों रुपयों का दान दिया था। उसे अनेक ग्रन्थों में "दानचिंतामणि" पदवी से भूषित किया गया है। विष्णुवर्धन राजा की रानी शांतल देवी ने सन् ११२३ में श्रवणबेलगोल में भगवान् जिनेन्द्र की विशालकाय प्रतिमा स्थापित की थी। सन् ११३१ में सल्लेखना व्रत का पालन कर शरीर त्याग किया था।

साहित्य क्षेत्र में कार्य

अनेक जैन नारियों ने लेखिका और कवियित्री के रूप में साहित्य जगत् में प्रसिद्धि प्राप्त की है। सन् १५६६ में कवयित्री 'रणमति' ने 'यशोधर काव्य' नामका काव्य लिखा। आर्यिका रत्नमती की 'समकितरास' यह हिन्दी-गुजराती मिश्र काव्य रचना उपलब्ध है। महाकवयित्री रत्न ने अपनी अमरकृति अजितनाथ पुराण की रचना दानचिंतामणि अत्तिमब्बे के सहकार्य से ही ई० स० ९९३ में पूर्ण की थी। श्वेताम्बर साहित्य में चारदत्त-चरित्र लिखनेवाली पद्मश्री, कनकावती-आख्यान लिखनेवाली हेमश्री महिलाएँ प्रसिद्ध हैं। अनुलक्ष्मी, अवन्ती, सुन्दरी, माधवी आदि विदुषियाँ प्राकृत भाषा में लिखनेवाली प्रसिद्ध कवयित्रियाँ है। उनकी रचनाएँ प्रेम, संगीत, आनन्द, व्यथा, आशा-निराशा, जिनेन्द्रभक्ति आदि गुणों से युक्त हैं। यद्यपि प्राचीन आचार्यों के समान स्त्री आचार्य के आगम या धर्मग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं—किन्तु आज आर्यिका माताओं ने साहित्यिक देन मौलिक दी है। पूज्य ज्ञानमती जी की रचनाएँ—खोजपूर्ण हैं। अष्टसहस्री जैसा न्यायग्रन्थ, भौगोलिक विषय पर नयी रचना, शिक्षा के लिए—इतना साहित्य एवं सम्यग्ज्ञान का एकछत्री सम्पादन हमारे लिए गौरव की बात है।

माताजी—सुपार्श्वमतीजी के कई ग्रन्थ स्वाध्यायोपयोगी तथा रोचक प्रकाशन में आये हैं। पूज्या विशुद्धमतीजी के त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति जैसे महान् ग्रन्थ सरल हिन्दी में आधुनिक नक्शे के साथ प्रकाशित देखकर चकाचौंध होती है। पूज्या जिनमती जी, विजयमती जी, आदिमती जी—ये सभी विदुषी माताजी का साहित्य क्षेत्र में नेत्रदीपक कार्य मंजूर हो रहा है।

गृहस्थ धर्म का सुचारु रूपेण पालन कर अन्त में—स्वयं आर्यिका-व्रत स्वीकार करके स्व-पर कल्याणकारी जीवन-यात्रा करनेवाली आर्यिका-माताएँ धन्य हैं। जैन नारी की शक्ति का सर्वांगीण विकास प्राचीन काल से हम पुरुष के समान देखते हैं। अतः सार्थ वचन है।

नारी गुणवती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदम्।

●



तमिलनाडू में आर्यिकाओं का स्थान

ए. सिम्हाचंद शास्त्री, मद्रास

भारत धर्म प्रधान देश है। संस्कृति और कला का उन्नायक स्थान है। साहित्य और इतिहास का खान है। साहित्य समाज का दर्पण है। इतिहास समाज का जीवन है। प्राचीनता साहित्य का देन है। जैन साहित्य जैनधर्म की प्राचीनता का द्योतक है। इस तथ्य का प्रामाणिक आधार विविध भाषाओं में विरचित जैन साहित्य, अभिलेख ग्रन्थ, प्रशस्तियां आदि हैं। इनमें यत्र तत्र सर्वत्र यतिधर्म का विशेष उल्लेख उपलब्ध है। जैनधर्म के उन्नायक व पुनरुद्धारक तीर्थंकरों का गर्भ, जन्म, दीक्षा, ज्ञान और मोक्ष आदि पाँचो परम पावन कल्याणक उत्तर भारत मे ही हुए हैं। परन्तु उन तीर्थंकरों की दिव्य वाणी को लिपिबद्ध करके प्रचार प्रसार करनेवाले आचार्यगण दक्षिण भारत मे हुए। यह संयोग अत्यन्त अनूठा एवं आश्चर्यजनक है। उनमें भी जैन सिद्धान्त, साहित्य, न्याय, व्याकरण आदि विषयों के प्रतिपादक आचार्यों का जन्मस्थान कर्णाटक और तमिलनाडू में है।

इतिहास साक्षी है कि जब अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी उत्तर भारत से दक्षिण भारत आये तब उनके संघ मे बारह हजार नग्न दिगम्बरमुद्राधारी मुनिगण थे। इनका संघ कर्णाटक प्रदेश स्थित श्रवणबेलिगोला में आ ठहर गया। चन्द समयानन्तर आचार्यश्री भद्रबाहु स्वामी का आदेश पाकर संघ में स्थित प्रमुख आचार्यवर्य श्री विशाखाचार्य ने अपने साथ आठ हजार मुनिगण सहित तमिल प्रदेश मे विहार कर धर्म का प्रचार किया। तमिलनाडू मे स्थित पर्वतों में "अष्टसहस्र" (एण्णायिरम्) नामक एक छोटी पहाड़ी वर्तमान में प्रख्यात है। अनुश्रुति है कि आठ हजार मुनि पुङ्गवों में कुछ संतगण इस लघुकाय पर्वत पर आकर ठहर गये थे इसलिए इस पहाड़ी का नाम अष्टसहस्र (एण्णायिरम्) पड़ा। इससे यह पता चलता है कि भद्रबाहु के आगमन के पूर्व ही तमिलनाडू में जैन जनता व श्रावकों का निवास था।



हमें यह विचार करना है कि नग्न दिगम्बर जैन साधु स्वच्छन्द

विहार करने वाले हैं। वे किसी के आधिपत्य में रहनेवाले नहीं। वे यत्रतत्र प्राप्त प्रासुक आहार को ही ग्रहण करनेवाले हैं। उनमें संघ की व्यवस्था है। संघ में झुण्ड के झुण्ड मुनिगण रहते हैं। सदाचारी श्रावक के अपने लिए प्रासुक रूप से बनाये गये आहार को ही वे ग्रहण करते हैं। जहाँ पर उनके लिए आहार देने योग्य श्रावक समाज रहेगी वहाँ पर ही इनका विहार होना अनिवार्य है अतः इनके लिए आहार देने योग्य श्रावक समाज जहाँ विद्यमान होगा वहाँ पर इनका विहार होगा। इतिहास ग्रन्थ से पता चलता है कि तमिलनाडू में ईस्वी पूर्व तीसरी व चौथी शताब्दी में जैन धर्म का अस्तित्व था।

जैन धर्म का प्राचीन इतिहास द्वितीय भाग में निम्न उल्लेख प्राप्त है। "भद्रबाहु श्रुतकेवली होने के साथ-साथ अष्टांग महानिमित्त के भी पारगामी थे। उन्हें दक्षिण देश में जैन धर्म के प्रचार की बात ज्ञात थी तभी उन्होंने बारह हजार साधुओं के विशाल संघ को दक्षिण की ओर जाने की अनुमति दी।

भद्रबाहु ने सब संघ को दक्षिण के पाण्ड्यादि देशों की ओर भेजा, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि वहाँ जैन साधुओं के आचार का पूर्ण निर्वाह हो जायगा। उस समय दक्षिण भारत में जैनधर्म पहले से प्रचलित था। यदि जैनधर्म का प्रचार वहाँ न होता तो इतने बड़े संघ का निर्वाह वहाँ किसी तरह भी नही हो सकता था। इससे स्पष्ट है कि वहाँ जैनधर्म प्रचलित था। लंका में भी ईस्वी पूर्व चतुर्थ शताब्दी मे जैनधर्म का प्रचार था और संघस्थ साधुओं ने भी वहाँ जैनधर्म का प्रचार किया। तमिल प्रदेश के प्राचीनतम शिलालेख मदुरा और रामनाड जिले से प्राप्त हुए हैं जो अशोक के स्तम्भों में उत्कीर्ण लिपि में हैं। उनका काल ई० पूर्व तीसरी शताब्दी का अन्त और दूसरी शताब्दी का प्रारम्भ माना गया है। उनका सावधानी से अवलोकन करने पर "पल्ली" "मदुराई" जैसे कुछ तमिल शब्द पहचानने में आते हैं। उस पर विद्वानों के दो मत हैं। प्रथम के अनुसार उन शिलालेखों की भाषा तमिल है। जो अपने प्राचीनतम अविकसित रूपों में पाई जाती है और दूसरे मत के अनुसार उनकी भाषा पैशाची प्राकृत है जो पाण्ड्य देश में प्रचलित थी। जिन स्थानों से उक्त शिलालेख प्राप्त हुए हैं उनके निकट जैन मन्दिरों के भग्नावशेष और जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ पाई जाती हैं, जिन पर सर्प का फण या तीन छत्र अंकित है।"[1]

इसके अलावा "जैन कला और स्थापत्य" के आधार पर भी उक्त बातों का प्रमाण अधिक मात्रा में उपलब्ध है। अतः ईस्वी पूर्व तीसरी या चौथी शताब्दी मे तमिलनाडू में जैनधर्मानुयायी रहते थे। उस समय का समाज समृद्धिशाली और धर्मनिष्ठ था। इसीलिए तो आठ हजार दिगम्बर मुनियों का इस प्रांत में विहार हो सका। उस समय के श्रावक-श्राविकायें सहस्रों संख्या में उनकी परिचर्या में संलग्न थे। उस संघ में आर्यिकाओं की संख्या की भी बहुलता थी। तभी से तमिलनाड में आर्यिकाओं की परम्परा चली आ रही है।

तमिल साहित्य में मुनि एवं आर्यिकाओं का अभिधान

तमिलनाडू का जैन इतिहास जैसे प्राचीनता का स्थान पाता है उसी प्रकार तमिल भाषा का जैन साहित्य भी प्राचीनता को प्राप्त करता है। जैन साधु महात्माओं ने जैन साहित्य के लिए

---

१. जैनधर्म का प्राचीन इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४९।
सम्पादक परमानन्द शास्त्री, प्रकाशक रमेशचन्द जैन मोटरवाले, दिल्ली।

जितना योगदान दिया है उतना योगदान अन्य सम्प्रदाय वालों ने नहीं दिया। यह कथन जैनेतर विद्वानों का है। काव्य, व्याकरण, न्याय, गणित, ज्योतिष, वैद्यक, संगीत, कोष, नीतिशास्त्र, प्रबन्ध, आदि विषयों के ग्रन्थ रचना करके जैन आचार्यों ने तमिल भारती को अलंकृत किया है। तमिल साहित्य में जैन मुनियों के लिए 'कुरवर", आर्यिकाओं के लिए "कुरत्तियर" शब्द का प्रयोग पाया जाता है। तमिल भाषाशास्त्र की दृष्टि से कुरवर और कुरत्तियर शब्द अति पवित्र माना जाता है। जैन संत जिस स्थान में विराजमान रहते थे वह स्थान "पल्लि" नाम से प्रख्यात था। वर्तमान में वह पल्लि शब्द "पाठशाला" के लिए प्रयोग किया जाता है। वर्तमान में तिरुचिरापल्लि नामक जो नगर है वह प्राचीन काल में "तिरुजिन पल्लि" नाम से अभिहित था। तिरु शब्द "श्री" के लिए प्रयुक्त है। वर्तमान में जिन-जिन स्थानों के आगे तिरु शब्द प्रयोग किया गया है वे स्थान प्राचीन काल में जैनियों का ही वास था। जैसे तिरुचिरापल्लि, तिरुवैयारु, तिरुनेल्वेलि, तिरुसमुद्र, तिरुप्पापुल्लियूर आदि।

तमिलनाडु की आर्यिकायें

निम्नलिखित स्थानों के अभिलेख एवं प्रशस्तियों में आर्यिकाओं के नाम उपलब्ध हैं। जो तमिल साहित्य की सेवा करने में और धर्म प्रचार में विपुल मात्रा में योगदान दिया है। कन्या-कुमारी जिले के निकटस्थ तिरुचारण मलै (मलै-पर्वत) में स्थित वरगुण नरेश के अभिलेख में और तिरुनेलवेलि जिले के अन्तर्गत कलुगुमलै में स्थित अभिलेख में अरिष्टनेमि भट्टारक की शिष्या का नाम कुणन्दागी कुरत्ति का जिक्र है। इसके अलावा इसी पर्वत में स्थित भगवान् की मूर्ति के पीठ पर अच्चनन्दि, काट्टांपल्लि के अच्चनन्दि अडिगल, तिरुचारणत्तु पट्टाणि भट्टारक के शिष्य वरगुण भट्टारक तिरुनरुंकोण्डै मेलिर पल्लि के वीरनन्दि आदि के नाम अङ्कित हैं। इसी अच्चनन्दि का नाम एरवाडी नामक गाँव में स्थित अभिलेख में भी उपलब्ध है। इसमें कई आर्यिकाओं (कुरत्तियर) के नाम भी हैं।

कलुगुमलै में स्थित अभिलेख में अनेक मुनि (कुरवर) आर्यिका (कुरत्तियर) के नाम पाये जाते हैं। उनमें पुष्पनन्दि उत्तरनन्दि, विमलचन्द्र आदि मुनि पुंगवों के नाम के साथ तिरुच्चारणत्तु कुरत्तियर (तिरुच्चारण के आर्यिकाओं) के नाम भी हैं। कलुगुमलै का अभिलेख ईस्वी आठवीं शताब्दी का है अतः ये साधु और आर्यिकायें आठवीं शताब्दी या उसके पूर्व काल के होना चाहिये। यहाँ पर बृहदाकार अखण्ड शिला पर दो या तीन कतारों में पद्मासन और खड्गासन की मुद्रा में करीब ढाई सौ मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं और बृहदाकार की अति विशाल गुफा भी है। गुफा के अन्दर भी कई मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं। ब्राह्मी और वट्टेलेत्तु के अभिलेख भी विद्यमान हैं। यह स्थान तिरुनेल-वेलि जिला के अन्तर्गत कोविल पट्टी तहसील के निकट है। परन्तु यह पर्वत और तहलटी का मन्दिर जैनेतरों के अन्तर्गत है। मन्दिर तो सम्पूर्ण रूप से परिवर्तित होकर शिव मन्दिर का रूप बन गया है। वर्तमान में यहाँ पर जैन का घर एक भी नहीं है।

कन्याकुमारी जिले में स्थित नागरकोइल नगर में नागराजा टेंपल के नाम से एक मन्दिर है जो पहले पार्श्वनाथ भगवान् का मन्दिर था अब उसमें पार्श्वनाथ की मूर्ति नहीं है। नागराजा मन्दिर के नाम से अभिहित है। मन्दिर के अन्दर स्थित खंभे पर तीर्थंकरों और पद्मावती देवी की मूर्ति उत्कीर्ण है जो वर्तमान में भी स्थित है। इस मन्दिर के अभिलेख में कमलवाहन पण्डित, गुण-

वीर पंडित आदि दो श्रमण पंडितों के नाम और अनेक आर्यिकाओं के नाम उपलब्ध हैं। यहाँ पर आठवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक के श्रमण इतिहास के अभिलेख अवस्थित हैं।

आर्यिका जैन महिला महाविद्यालय

उत्तर आर्काड जिले के अन्तर्गत विडाल नामक एक गाँव में एक पहाड़ी है उसमें कंदरा और मंडप भी है। यहाँ एक अभिलेख है जिसमें इस मंडप के निर्माता के नाम एवं उसका जीवनवृत्त लिखा हुआ है। यहाँ एक जैन महिला महाविद्यालय होने का संकेत है। इसमें आर्यिकाओं के नाम भी अङ्कित हैं। पल्लव नरेशों के शासन काल में नन्दिवर्म पल्लव के समय एवं चोल साम्राज्य के आदित्य चोल के समय में यह विद्यालय अत्यन्त उज्ज्वल दशा में होने का जिक्र है। नन्दिवर्म का अभिलेख इस स्थान को "विडाल पल्लि" के नाम से व्यक्त करता है। आदित्यचोल का अभिलेख इस विद्यालय को "मादेवी आरान्दि मंगलम्" के नाम से अभिव्यक्त करता है। साथ-साथ उस समय स्थित आर्यिकाओं के संबंध में अनेक बातों का संकेत है। उस विद्यालय की संचालिका "**कनकवीरकुरत्ति**" थी जो आर्यिकाओं की नेत्री और महावीर भट्टारक नाम के मुनि की शिष्या थी। आदित्यचोल नरेश ने अपने शासन काल के चौदहवें वर्ष (ईस्वी ८८५-६) में इस संस्था के लिए जमीन दान में दिया था। कनकवीर कुरत्ति (आर्यिका) के नेतृत्व में ५०० छात्राएँ व बाल-कन्यायें अध्ययन करती थीं।

तिरुप्पानगिरि के निकटस्थ विलापाक्कम् नामक स्थान पर आर्यिकाओं का महाविद्यालय था। प्रथम परान्दकचोल शासन काल में यहां पर अरिष्टनेमि भट्टारक की शिष्या "पट्टणिकुरत्ति" ने इस विद्यालय का संचालन किया। चौबीस सदस्यों की एक समिति के द्वारा यहां के मन्दिर और महाविद्यालय का संरक्षण किया गया। और भी एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि "तिरुप्पाण-गिरि" पर स्थित मूर्तियां इस पर्वत प्रदेश के निकटस्थ जैनियों के संरक्षण में थीं। पल्लव शासन काल से लेकर प्रथम राजराज चोल के शासन काल तक इस प्रदेश में जैनधर्म का प्रचार अति उन्नत दशा में था।

"सिलप्पदिकारम्" नाम एक प्रसिद्ध तमिल साहित्य ग्रन्थ है जो जैन आचार्य "इलंगोव-डिगल" की कृति है। यह तमिल साहित्याकाश में प्रकाशमान इन्दु विम्बवत् उत्कृष्ट शब्द भंडार से अलंकृत करने के साथ-साथ जैन सिद्धान्त की बातों को आत्मसात किया हुआ अनुपम ग्रन्थ है। इसके ग्रन्थकर्ता ने "कौन्दिअडिगल" नामक आर्यिका का उल्लेख किया है। ये आर्यिका माता ने इस ग्रन्थ के मुख्य पात्र "कोवलन और कण्णगी" को अहिंसामय सिद्धान्त का प्रतिबोध देकर उनको दयामय मार्ग में चलाने की चेष्टा की है।

इस प्रकार के तमिल जैन साहित्यों ऐतिहासिक ब्राह्मी और वट्टेलुत्तु के अभिलेखों से प्रामाणिक बातों का प्रबोध प्राप्त होता है कि तमिलनाडु में धर्मनिष्ठ नर-नारियां और आर्यिकायें केवल धर्मकार्य में अधिष्ठात्री न होकर त्यागमय साध्वी जीवन व्यतीत कर धार्मिक क्षेत्र में अग्रसर होकर गुरु और आचार्य के तुल्य प्रशंसनीय कार्य किया है।

●

परिशिष्ट

विनयाञ्जलि

ब्र० सूरजमल प्रतिष्ठाचार्य, निवाई (राजस्थान)

पूज्य १०५ आर्यिका रत्नमती माताजी परम शान्त सौम्यमूर्ति हैं। वर्षों से पूज्य माताजी का संपर्क रहा है। उनकी कुक्षि धन्य है जो परमपूज्य अपार ज्ञान भंडारी १०५ आ० ज्ञानमती माताजी तथा पू० आ० अभयमती माताजी जैसी कुल दीपिकाओं को जन्म देकर उन्हें संसार पूज्य बनाकर स्वयं भी संसार शरीर से उदासीन होकर संसारोच्छेदनी दीक्षा धारण करके तप करते हुए कर्मों की निर्जरा कर रही हैं। हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि पूज्य माताजी दीर्घायु रहकर हमें सदुपदेश देती रहें।

•

विनयाञ्जलि

ब्र० धर्मचन्द्र शास्त्री, जयपुर

(आचार्य धर्मसागर जी संघस्थ)

दिगम्बर जैन समाज में अनेक साध्वी संयमिनी विदुषी हैं उनकी प्रतिभा, विद्वत्ता आदि गुण श्लाघनीय ही नहीं, अनुकरणीय हैं।

शान्त मौन-मूर्ति—यह है उसका सर्वाङ्ग सम्पूर्ण परिचय। कम से कम बोलना यह पूज्य रत्नमती माताजी की विशिष्टता। मैं पू० माताजी के दीक्षा काल से परिचित हूँ। ललित वाणी धारिका आर्ष परम्पराओं की रक्षिका पू० आर्यिका रत्न श्री ज्ञानमती जैसी महान् लोकोपकारी महान् साध्वी को जन्म देकर जैन समाज का महान् उपकार किया है। जैन समाज इस उपकार को कभी नहीं भुला सकती। यदाकदा पू० माताजी के दर्शनों को मैं जब आता हूँ तब आपके सामने पहुँचते ही आचार्यश्री एवं संघस्थ साधु साध्वियों के रत्नत्रय की कुशल क्षेम पूछतीं। चाहे स्वास्थ्य कितना ही नरम क्यों न हो पर आचार्यश्री का नाम सुनते ही आपके अन्दर की अनन्य श्रद्धा प्रगट होती है। वह शब्दों द्वारा लिख नहीं पा रहा हूँ।

अभिनन्दन करते हुए हम उनकी मोक्षमार्गी साधना की सफल कामना करता हूँ। तथा उनके प्रति विनम्र विनयाञ्जलि अर्पित करता हूँ। पू० माताजी शतायु होकर भव्य जीवों के अभ्युत्थान में मार्ग दर्शन करें। यही प्रार्थना है।

•

श्रद्धासुमन

श्री नरेन्द्रकुमार जैन, राजरानी जैन, दिल्ली

भारत में प्राचीन काल से ही साधु और साध्वियों की परम्परा चली आ रही है। वर्तमान की २०वीं शताब्दी में भी जैन साधुओं के दर्शन हमें सुलभतया प्राप्त हो रहे हैं। जहाँ तक मुझे अनुभव है कि मैंने भी जीवन में साधुओं के दर्शन किये किन्तु सन् १९७९ का १५ अगस्त का दिन

चिरस्मरणीय रहेगा। जब हमने मोरीगेट स्थित (दिल्ली) जैन धर्मशाला में 'पूज्य ज्ञानमती माताजी' के समक्ष दर्शन किये और तभी से वास्तविक रूप में अपने जीवन की सफलता को समझकर सच्चे देवशास्त्रगुरु की महानता का अनुभव किया। 'पूज्य रत्नमती माताजी' तो वास्तव मे गुणों की खान है। उनका त्याग तपस्या एवं आत्मशान्ति हम सबको नई स्फूर्ति प्रदान करती है। हम जिनेन्द्र भगवान् से यही प्रार्थना करते हैं कि पूज्य माताजी चिरकाल तक समस्त संसारी जीवों के लिए कल्याण का पथ प्रशस्त करती रहे। अन्त में आर्यिका श्री के चरणों में शत-शत वन्दन।

●

स्नेहमयी माता

श्री विजेन्द्रकुमार जैन, दिल्ली

यद्यपि समय समय पर मुझे श्रद्धेय साधुजनों के दर्शन एवं वन्दन का अवसर मिलता रहता है, तथापि पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी के दर्शन का विशिष्ट ही अनुभव है। पूज्य माताजी की आगम एवं परम्परानुकूल साधु चर्या के अन्तर्गत जब भी मैं उनके पास शास्त्र स्वाध्याय या उपदेश श्रवण के निमित्त बैठता हूँ तब मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे मैं अपने ही घर मे एकान्त में बैठकर आत्मचिन्तन कर रहा हूँ। यह बात उनकी मार्गदर्शन की विशिष्ट शैली तथा आत्मीय व्यवहार के कारण है।

आपने न केवल स्वयं को धर्माराधन एवं आत्म कल्याण हेतु समर्पित किया है। अपितु सन्तानों मे भी गृहस्थाश्रम में ऐसे संस्कार डाले जो कि निरन्तर अपना प्रतिफल दिखा रहे हैं। पूज्य आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी, आ० अभयमती माताजी, कु० मालती शास्त्री एवं माधुरी शास्त्री का त्यागमय जीवन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

धन्य हैं ऐसी माताजी एवं उनका सान्निध्य।

●

सम्यक्चारित्र की प्रतिमूर्ति

राजवैद्य पं० भैया शास्त्री, काव्यतीर्थ, शिवपुरी

भौतिकवाद के इस युग मे सम्यक् चारित्र और ज्ञान के अवलम्बन स्वरूप आत्मविभूति के साक्षात् दर्शन मातेश्वरी पूज्य आर्यिका रत्नमती माताजी के जीवन से होता है, जिन्होंने अपनी पवित्र कुक्षि से तपस्या की प्रतिमूर्ति, ज्ञान और सरस्वती की साक्षात् अवतार पूज्य ज्ञानमती माताजी तथा अभयमती माताजी आदि सम्यक् चारित्र रूपी रत्नों को जन्म देकर आदर्श उपस्थित किया।

ऐसे रत्नों को जन्म देने वाली रत्नमती माताजी के युगमश्री चरणों में उज्ज्वल कामना के साथ अनन्त श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत है।

●